



# कल्याण

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।  
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणाथ्ये दिवाकर ॥

वर्ष ६६ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१७, जनवरी १९९२ ई. { संख्या ९  
पूर्ण संख्या ७८२

## भगवान् नर-नारायणकी वन्दना

तस्मै नमो भगवते पुत्राय भूषे विष्णवे विष्णुगुरवे परदेवतायै ।  
नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संवत्तिगे निगमेक्षराय ॥  
यद्दर्शने निगम आत्मरहःप्रकाशे मुह्यन्ति यत्र कवयोऽजपरा घतनः ।  
तं सर्ववादाविषयप्रतिरूपशीले वन्दे महापुरुषमात्मनि गृह्योद्धमम् ॥

(श्रीमद्भागवत १२।८।४७, ४९)

( महर्षि मार्कण्डेयजी कहते हैं— ) भगवन् ! आप अनार्यभी, सर्वव्यापक, सर्वस्वरूप, जगद्गुरु, परमाश्रय और शुद्धस्वरूप हैं। समस्त लौकिक और वैदिक वाणी आपके अधीन है। आप ही वेदमार्गिक प्रवर्तक हैं। मैं आपके इस युगलस्वरूप नरोत्तम नर और ऋषिवर नारायणको नमस्कार करता हूँ। प्रभो ! वेदमें आपका साक्षात्कार करानेवाला यह ज्ञान पूर्णरूपसे विद्यमान है, जो आपके स्वरूपका रहस्य प्रकट करता है। कदा आदि बड़े-बड़े प्रतिभाशाली मनीषी उसे प्राप्त करनेका यत्न करते रहनेपर भी मोहमें पड़ जाते हैं। आप भी ऐसे लोलीकवादी हैं कि विभिन्न मतवाले आपके सम्बन्धमें जैसा सोचते-विचारते हैं, वैसा ही शील-स्वभाव और रूप ग्रहण करके आप उनके सामने प्रकट हो जाते हैं। वास्तवमें आप देह आदि समस्त उपाधिधोमें छिपे हुए विशुद्ध विज्ञानन्त ही हैं। हे पुरुषोत्तम ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ।

## वैदिक स्तवन

इमा वासमिदः सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।  
तेन त्यजेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य सिद्धिं वनम् ॥

अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड़-चेतनस्वरूप जगत् है, यह समस्त ईश्वरसे व्याप्त है। उस ईश्वरको साथ रखते हुए स्वागपूर्वक ( इसे ) भोगते रहो। ( इसमें ) आसक्त मत होओ, ( क्योंकि ) वन—भोग्य-पदार्थ किसका है अर्थात् किसीका भी नहीं है।

शे नो मित्रः शे वरुणः । शे नो भवत्वर्चमा । शे न इन्द्रो बृहस्पतिः । शे नो विश्वरुद्रकर्मः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ब्रह्मे वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्वापयतु । तद्ब्रह्मरमणम् । अथतु माम् । अथतु वत्सरम् । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

हमारे लिये ( दिन और प्राणके अधिष्ठाता ) मित्र देवता कल्याणप्रद हो ( तथा ) ( रात्रि और अपानके अधिष्ठाता ) वरुण ( भी ) कल्याणप्रद हो। ( चक्षु और सूर्यमण्डलके अधिष्ठाता ) अर्यमा हमारे लिये कल्याणकारी हो, ( बल और भुजाओंके अधिष्ठाता ) इन्द्र ( तथा ) ( कानों और बुद्धिके अधिष्ठाता ) बृहस्पति ( दोनों ) हमारे लिये शान्ति प्रदान करनेवाले हो। त्रिविक्रमरूपसे विशाल इगोवाले विश्व ( जो पैंरोंके अधिष्ठाता हैं ) हमारे लिये कल्याणकारी हो। ( उपर्युक्त सभी देवताओंके आत्मस्वरूप ) ब्रह्मके लिये नमस्कार है। हे वायुदेव । तुम्हारे लिये नमस्कार है, तुम ही प्रत्यक्ष ( प्राणरूपसे प्रतीत होनेवाले ) ब्रह्म हो। ( इसलिये मैं ) तुमको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा, ( तुम ब्रह्मके अधिष्ठाता हो, इसलिये मैं तुम्हें ) ब्रह्म नामसे पुकारूँगा, ( तुम सत्यके अधिष्ठाता हो, अतः मैं तुम्हें ) सत्य नामसे कहूँगा, वह ( सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ) मेरी रक्षा करे, वह वस्तुकी अर्थात् आचार्यकी रक्षा करे, रक्षा करे मेरी ( और ) रक्षा करे मेरे आचार्यकी। भगवान् शान्तिस्वरूप है, शान्तिस्वरूप है, शान्तिस्वरूप है।

वित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य चरुणस्वाधेः । आग्रा छावपुत्रिवी अन्तरिक्षः सूर्य आत्मा जगतस्तत्सुबद्ध ॥  
जो तेजोमयी विरणोंके पुत्र है, मित्र, वरुण तथा अग्नि आदि देवताओं एवं समस्त विश्वके प्राणियोंके नेत्र है और स्वहृत् तथा जङ्गम सबके अन्तर्धानी आत्मा है, वे भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्षालोकको अपने प्रकाशसे पूर्ण करते हुए आक्षर्यरूपसे उदित हो रहे हैं।

वेदाहमेते पुस्तं महान्तमादित्यवर्णं तपसः परमात्मा ।  
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति शान्तिः पन्था विदितेऽप्यनाथ ॥

मैं आदित्य-स्वरूपवाले सूर्यमण्डलस्थ महान् पुरुषको, जो अश्वकारसे सर्वथा परे, पूर्ण प्रकाश देनेवाले और परमात्मा है, उनको जानता हूँ। उन्हींको जानकर मनुष्य मृत्युको रक्षित जाता है। मनुष्यके लिये मोक्ष-प्राप्तिका दूसरा कोई अन्य मार्ग नहीं है।

विद्वानि देव सवितर्दुरितानि परामुख । यद् भद्रं तत्र आ सुख ॥

समस्त संसारको उत्पन्न करनेवाले—सृष्टि-पालन-संहार करनेवाले किञ्चा विश्वमें सर्वाधिक देदीप्यमान एवं जगत्को शुभकर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाले हे परब्रह्मस्वरूप सवित देव ! आप हमारे सम्पूर्ण—आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक—दुरितों ( बुराइयों—पापों ) को हमसे दूर—बहुत दूर ले जायें, दूर करें, किन्तु जो भद्र ( भस्त्र ) है, कल्याण है, श्रेय है, मङ्गल है, उसे हमारे लिये—विश्वके हम सभी प्राणियोंके लिये—चारों ओरसे ( भलीभाँति ) ले आये, दे—‘यद् भद्रं तत्र आ सुख ।’

असतो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माप्सुतं गमय ॥

हे भगवन् ! आप हमें असत्से सत्की ओर, तमसे ज्योतिर्की ओर तथा मृत्युसे अमरताकी ओर ले चले।

## पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्

(आदित्यहृदयसारामृत)

यन्मण्डलं दीप्तिकरं विशालं रत्नप्रभं तीव्रमनादिरूपम् । दारिद्र्यदुःखक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।  
यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितं विप्रैः स्तुतं मानवमुक्तिवेदिदम् । तं देवदेवं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥  
यन्मण्डलं ज्ञानघनं स्वर्ग्यं त्रैलोक्यपुण्यं त्रिगुणात्मरूपम् । समस्ततेजोमयदिव्यरत्नं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥  
यन्मण्डलं गूढमतिप्रबोधं धर्मस्य बुद्धिं कुर्वते जनानाम् । यत्सर्वपापक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥  
यन्मण्डलं व्याधिविनाशदक्षं यदुपयुक्तं सामसु सम्प्रणीतम् । प्रकाशितं येन च धूर्ध्रुवः स्वः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥  
यन्मण्डलं वेदविदो विदन्ति गायन्ति यन्धारणसिद्धसेवाः । यद्योगिनो योगजुषां च संघाः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥  
यन्मण्डलं सर्वजनेषु पूजितं ज्योतिष् कुर्याद्विह मर्त्यलोके । यत्कालकालादिमनादिरूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥  
यन्मण्डलं विष्णुवतुर्मुखाक्षरं यदक्षरं पापहरं जनानाम् । यत्कालकल्पक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥  
यन्मण्डलं विधिसृजां प्रसिद्धमुत्पत्तिरक्षाप्रलयप्रगल्भम् । यस्मिन्नगत् संहारतेऽखिलं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥  
यन्मण्डलं सर्वजनस्य विष्णोरात्मा पां धाम विशुद्धतत्त्वम् । सूक्ष्मान्तरीयगोपबानुगन्धं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥  
यन्मण्डलं वेदविदोपगीतं यद्योगिनां योगपदानुगम्यम् । तत्सर्ववेदं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥  
जिन भगवान् सूर्यका प्रखर तेजोमय मण्डल विशाल, रत्नैकं समान प्रभासित, अनादिकाल-स्वरूप, समस्त लोकोका दुःख-दारिद्र्य-संहारक है, वह मुझे पवित्र करे । जिन भगवान् सूर्यका घरेण्य मण्डल देवसमूहोंद्वारा अर्चित, विद्वान् ब्राह्मणोंद्वारा संस्तुत तथा मानवोंके मुक्ति देनेमें प्रवीण है, वह मुझे पवित्र करे, मैं उसे प्रणाम करता हूँ । जिन भगवान् सूर्यका मण्डल अखण्ड-अविच्छेद, ज्ञानस्वरूप, तीनों लोकोंद्वारा पूज्य, सत्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंसे युक्त, समस्त तैजों तथा प्रकाश-पुञ्जसे युक्त है, वह मुझे पवित्र करे । जिन भगवान् सूर्यका श्रेष्ठ मण्डल गूढ़ होनेके कारण अत्यन्त कठिनतासे ज्ञानगम्य है तथा भक्तोंके हृदयमें धार्मिक बुद्धि उत्पन्न करता है, जिससे समस्त पापोंका क्षय हो जाता है, वह मुझे पवित्र करे । जिन भगवान् सूर्यका मण्डल समस्त आधि-व्याधियोंका उन्मूलन करनेमें अत्यन्त कुशल है, जो ऋक्, यजुः तथा साम—इन तीनों वेदोंके द्वारा सदा संस्तुत है और जिसके द्वारा भूलोक, अन्तरिक्षलोक तथा स्वर्गलोक सदा प्रकाशित रहता है, वह मुझे पवित्र करे । जिन भगवान् सूर्यके श्रेष्ठ मण्डलको वेदवेत्ता विद्वान् ठीक-ठीक जानते तथा प्राप्त करते हैं, चारणगण तथा सिद्धोंका समूह जिसका गान करते हैं, योग-साधना करनेवाले योगिजन जिसे प्राप्त करते हैं, वह मुझे पवित्र करे । जिन भगवान् सूर्यका मण्डल सभी प्राणियोंद्वारा पूजित है तथा जो इस मनुष्यलोकमें प्रकाशका विस्तार करता है और जो कालका भी काल एवं अनादिकाल-रूप है, वह मुझे पवित्र करे । जिन भगवान् सूर्यके मण्डलमें ब्रह्मा एवं विष्णुकी आख्या है, जिनके नामोच्चारणसे भक्तोंके पाप नष्ट हो जाते हैं, जो क्षण, कला, काष्ठा, संवत्सरसे लेकर कल्पस्यन्त कालका कारण तथा सृष्टिके प्रलयका भी कारण है, वह मुझे पवित्र करे । जिन भगवान् सूर्यका मण्डल प्रजापतियोंकी भी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेमें सक्षम एवं प्रसिद्ध है और जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् सङ्गत होकर लीन हो जाता है, वह मुझे पवित्र करे । जिन भगवान् सूर्यका मण्डल सम्पूर्ण प्राणिवर्गका तथा विष्णुकी भी आत्मा है, जो सबसे ऊपर श्रेष्ठ लोक है, शुद्धातिशुद्ध सारभूतत्व है और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म साधनोंके द्वारा योगियोंके देवयानद्वारा प्राप्य है, वह मुझे पवित्र करे । जिन भगवान् सूर्यका मण्डल वेदवादियोंद्वारा सदा संस्तुत और योगियोंको योग-साधनासे प्राप्त होता है, मैं तीनों काल और तीनों लोकोंके समस्त तत्त्वोंके ज्ञाता उन भगवान् सूर्यको प्रणाम करता हूँ, वह मण्डल मुझे पवित्र करे ।

## पुराण-श्रवण-कालमें पालनीय धर्म

अद्वाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः । वाग्यताः शुचयोऽप्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥  
 अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः । तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि ॥  
 पुराणं ये च सम्पूज्य ताम्बूलघृतपायनैः । शृण्वन्ति च कथां भक्त्याऽदरिद्राः स्फुर्न संशयः ॥  
 कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्वतो नराः । भोगान्तरे प्रणयन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः ॥  
 सोष्णीयमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम् । ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ॥  
 ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम् । शत्रुहो सादयन्त्येतान् नयन्ति यमकिंकराः ॥  
 ये च तुङ्गासनास्रवाः कथां शृण्वन्ति दाम्बिकाः । अक्षय्यनरकान् भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः ॥  
 ये वै वरासनास्रवा ये च मध्यासनस्थिताः । शृण्वन्ति सत्कथां ते वै भवन्त्यर्जुनपादपाः ॥  
 असम्प्रणय्य शृण्वन्ति विषभक्षा भवन्ति ते । तथा शयानाः शृण्वन्ति भवन्त्यजगरा नराः ॥

जो लोग श्रद्धा और भक्तिसे सम्पन्न, अन्य कार्योंकी लालसासे रहित, मौन, पवित्र और शान्तचित्तसे (पुराणकी कथाको) श्रवण करते हैं, वे ही पुण्यके भागी होते हैं। जो अधम मनुष्य भक्तिरहित होकर पुण्यकथाको सुनते हैं, उन्हें पुण्यफल तो मिलता नहीं, उल्टे प्रत्येक जन्ममें दुःख भोगना पड़ता है। जो लोग ताम्बूल, पुष्प, चन्दन आदि पूजन-सामग्रियोंद्वारा पुराणकी भलीभाँति पूजा करके भक्तिपूर्वक कथा सुनते हैं, वे निःसंशय दरिद्रतारहित अर्थात् धनवान् होते हैं। जो मनुष्य कथा होते समय अन्य कार्यकें लिये बहसि उठकर अन्यत्र चले जाते हैं, उनकी पापी और सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। जो पापी अधम मनुष्य मस्तकपर पगड़ी बाँधकर (या टोपी लगाकर) पवित्र कथा सुनते हैं, वे बगुल होकर उत्पन्न होते हैं। जो लोग पान चखाते हुए पवित्र कथा सुनते हैं, उन्हें कुतेश्वर मल भक्षण करना पड़ता है और यमदूत उन्हें यमपुरीमें ले जाते हैं। जो शोणौ मनुष्य (व्यासासनसे) ऊँचे आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं, वे अक्षय नरकोंका भोग करके काँआ होते हैं। जो लोग (व्यासासनसे) श्रेष्ठ आसनपर अथवा मध्यम आसनपर बैठकर उत्तम कथा श्रवण करते हैं, वे अर्जुन नामक वृक्ष होते हैं। (जो मनुष्य पुराणकी पुस्तक और व्यासको) बिना प्रणाम किये ही कथा सुनते हैं, वे विषभक्षी होते हैं तथा जो लोग सोते हुए कथा सुनते हैं, वे अजगर सँप होते हैं।

यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनस्थितः । गुरुश्रवणसमं पापं सम्प्राप्य नरकं व्रजेत् ॥  
 ये निन्दन्ति पुराणज्ञानं कथां वै पापहरिणीम् । ते वै जन्मशतं पत्न्याः सुकराः सम्भवन्ति हि ॥  
 कथाश्रवणं ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः । ते भुक्त्वा नरकान् घोरान् भवन्ति वनसुकराः ॥  
 ये कथापनुमोदने कीर्त्यमानां नरोत्तमाः । अशृण्वन्तोऽपि ते यानि शास्त्राणि परमं पदम् ॥  
 कथायां कीर्त्यमानायां विप्रं कुर्वन्ति ये शत्राः । कोटशब्दे नरकान् भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसुकराः ॥  
 ये श्रावयन्ति मनुजान् पुण्यां पौराणिकीं कथाम् । कल्पकोटिशतं साधं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदे ॥  
 आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः । कम्बलाब्जिनवासीसि मङ्गं फलकमेव च ॥  
 स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् । स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ॥

इसी प्रकार जो वक्तृके समान आसनपर बैठकर कथा सुनता है, वह गुरु-श्रवण-गमनके समान पापका भागी होकर नरकगामी होता है। जो मनुष्य पुराणोंके ज्ञाता (व्यास) और पापीको हरण करनेवाली कथाकी निन्दा करते हैं, वे सौ जन्मोंतक सुकर-योनिमें उत्पन्न होते हैं। जो मनुष्य इस पुण्य कथाको कभी भी नहीं सुनते, वे घोर नरकोंका भोग करके वनके सूअर होते हैं। जो नरश्रेष्ठ कही जाती हुई कथाका अनुमोदन करते हैं, वे कथा न सुननेपर भी अविनाशी परम पदको प्राप्त होते हैं। जो दुष्ट कही जाती हुई कथामें विप्र पैदा करते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरकोंका भोग करके अन्तमें ग्रामीण सूअर होते हैं। जो लोग साधारण मनुष्योंको पुराणसम्बन्धी पुण्य कथा सुनते हैं, वे सौ करोड़ कल्पोंसे भी अधिक समयतक ब्रह्मलोकमें निवास



करते हैं। जो मनुष्य पुराणके ज्ञाता वक्ताको आसनके लिये कन्वल, मृगचर्म, वस्त्र, सिंहासन और चौकी प्रदान करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाकर अभीष्ट भोगोंका उपभोग करनेके बाद ब्रह्मा आदिके लोकमें निवास कर अन्तमें निरामय पदको प्राप्त होते हैं।

पुराणस्य प्रपच्छन्ति ये वरासनमुत्तमम् । भोगिनो ज्ञानसम्पन्ना भवन्ति च भवे भवे ॥  
ये महापातकैर्वृत्ता उपपातकिन्ध्रु ये । पुराणश्रवणादेव ते प्रयान्ति परं पदम् ॥  
एवंविधविधानेन पुराणं मनुष्यान्तरः । भुक्त्वा भोगान् यथाकामं विष्णुलोकं प्रयाति सः ॥  
पुस्तकं पूजयेत् पश्चाद् वत्सार्ककरणादिभिः । वाक्कं विप्रसंपुक्तं पूजयेत् प्रयत्नवान् ॥  
गोधूमिहेमवस्त्राणि वाक्कायं निवेदयेत् । ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात्पण्डितकृपायसैः ॥  
त्वं व्यासकृपी भगवन् बुद्ध्या चाङ्गिरसोपमः । पुण्यवाक् शीलसम्पन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥  
प्रसन्नमानसं कुर्याद् दानमानोपचारातः । त्वत्प्रसादादिमान् धर्मान् सम्पूर्णाभ्युत्तवानहम् ॥  
एवं प्रार्थनकं कृत्वा व्यासस्य परमात्मनः । यदास्मी च भवेन्नित्यं यः कृपदिवमादरात् ॥  
नारदोक्तानिमान् धर्मान् यः कुर्यान्नित्येन्द्रियः । कृत्वा फलपताप्नोति पुराणश्रवणस्य वै ॥

इसी तरह जो लोग पुराणकी पुस्तकके लिये उत्तम श्रेष्ठ आसन प्रदान करते हैं, वे प्रत्येक जन्ममें भोगोंका उपभोग करनेवाले एवं ज्ञानी होते हैं। जो महापातकोंसे युक्त अथवा उपपातकी होते हैं, वे सभी पुराणकी कथा सुननेसे ही परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। जो मनुष्य इस प्रकारके नियम-विधानसे पुराणकी कथा सुनता है, वह श्रेष्ठानुसार भोगोंको भोगकर विष्णुलोकको चला जाता है। कथाके समाप्त होनेपर शीत पुरुष प्रकटपूर्वक वस्त्र और अलंकार आदिद्वारा पुस्तककी पूजा करे। तत्पश्चात् सहायक ब्राह्मणसहित वाक्ककी पूजा करे। उस समय वाक्ककी गौ, पृथ्वी, सोना और वस्त्र देना चाहिये। तदुपरान्त ब्राह्मणोंको मलाई, लड्डू और खीरका भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर परमात्म व्याससे प्रार्थना करे—'आप व्यासकृपी भगवान् बुद्धिमें बृहस्पतिके समान, पुण्यवान्, शीलसम्पन्न, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं, आपकी कृपासे मैंने इन सम्पूर्ण धर्मोंको सुना है।' इस प्रकार प्रार्थना कर दान, मान और सेवासे उनके मनको प्रसन्न करना चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकार आदरपूर्वक करता है, वह सदा यदास्मी होता है। जो जितेन्द्रिय मनुष्य दैर्घ्य नारदद्वारा कहे गये इन धर्मोंका फलन करता है, वह पुराण-श्रवणका सम्पूर्ण फल पाता है।

## पुराण-महिमा

यज्ञकर्मक्रियावेदः स्मृतिर्वेदे गृह्यक्रमे ॥

स्मृतिर्वेदः क्रियावेदः पुराणेषु प्रतिष्ठितः । पुराणपुस्तकाज्ज्ञानं यथेदं जगदद्भुतम् ॥

तथेदं वाङ्मयं ज्ञानं पुराणेभ्यो न संशयः ।

न वेदे ग्रहसंचारो न शुद्धिः कालबोधिनी । तिथिवृद्धिक्षयो यापि सर्वग्रहविनिर्णयः ॥

इतिहासपुराणैस्तु निश्चयोऽयं कृतः पुरा । यत्र दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृती ॥

उभयोर्वैजं दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रणीयते ।

(पार० पु०, ३०, अ० २४)

यज्ञ एवं कर्मकाण्डके लिये वेद प्रमाण है। गृह्यके लिये स्मृतियाँ ही प्रमाण हैं। किंतु वेद और स्मृतिशास्त्र (धर्मशास्त्र) दोनों ही सम्यक् रूपसे पुराणोंमें प्रतिष्ठित हैं। जैसे परम पुरुष परमात्मासे यह अद्भुत जगत् उत्पन्न हुआ है, वैसे ही सम्पूर्ण संसारका वाङ्मय—साहित्य पुराणोंसे ही उत्पन्न है, इसमें लेखमात्र भी संशय नहीं है। वेदोंमें तिथि, नक्षत्र आदि काल-निर्णायक और ग्रह-संचारकी कोई युक्ति नहीं बतायी गयी है। तिथियोंकी वृद्धि, क्षय, पर्व, ग्रहण आदिका निर्णय भी उनमें नहीं है। यह निर्णय सर्वप्रथम इतिहास-पुराणोंके द्वारा ही निश्चित किया गया है। जो बातें वेदोंमें नहीं हैं, वे सब स्मृतियोंमें हैं और जो बातें इन दोनोंमें नहीं मिलतीं, वे पुराणोंके द्वारा ज्ञात होती हैं।

## ‘भविष्यपुराण’—एक परिचय

भारतीय वाङ्मयमें पुराणोंका एक विशिष्ट स्थान है। इनमें वेदके निगूढ़ अर्थोंका स्पष्टीकरण तो है ही, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्डके सरलतम विस्तारके साथ-साथ कथावैचित्र्यके द्वारा साधारण जनताको भी गूढ़-से-गूढ़तम तत्त्वको हृदयङ्गम करा देनेकी अपनी अपूर्व विशेषता भी है। इस युगमें धर्मकी रक्षा और भक्तिके मनोरम विकासका जो यत्किंचित् दर्शन हो रहा है, उसका समस्त श्रेष्ठ पुराण-साहित्यको ही है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति और साधनाके क्षेत्रमें कर्म, ज्ञान और भक्तिके मूल स्रोत वेद या श्रुतिको ही माना गया है। वेद अपौरुषेय, नित्य और सत्य भगवान्की शब्दमयी मूर्ति हैं। सरलतः वे भगवान्के साथ अभिन्न हैं, परंतु अर्थको दृष्टिसे वेद अत्यन्त दुरुह भी हैं। जिनका ग्रहण तपस्याके बिना नहीं किया जा सका। व्यास, वाल्मीकि आदि ऋषि तपस्याद्वारा ईश्वरकृपासे ही वेदका प्रकृत अर्थ जान पाये थे। उन्होंने यह भी जाना था कि जगत्के कल्याणके लिये वेदके निगूढ़ अर्थका प्रचार करनेकी आवश्यकता है। इसलिये उन्होंने उसी अर्थको सरल भाषामें पुराण, रामायण और महाभारतके द्वारा प्रकट किया। इसीसे शास्त्रोंमें कहा है कि रामायण, महाभारत और पुराणोंकी सहायतासे वेदोंका अर्थ समझना चाहिये—‘इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्’। इसके साथ ही इतिहास-पुराणको वेदोंके समकक्ष पञ्चम वेदके रूपमें माना गया है। छान्दोग्योपनिषद्में नारदजीने स्मृतकुमारजीसे कहा है—‘स होवाच ऋग्वेदे भगवोऽध्येमि यजुर्वेदः सामवेदमाधर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणे पञ्चमे वेदान्तं वेदम्’। ‘मै ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा चौथे अथर्ववेद और पाँचवें वेद इतिहास-पुराणको जानता हूँ।’ इस प्रकार पुराणोंकी अनादिता, प्रामाणिकता तथा महत्त्वमयताका सर्वत्र उल्लेख है और वह सर्वथा सिद्ध तथा यथार्थ है। भगवान् व्यासदेवने प्राचीनतम पुराणका प्रकाश और प्रचार किया है। वस्तुतः पुराण अनादि और नित्य हैं।

पुराणोंमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार तथा सकार्य एवं निष्कामकर्मकी महिमाके साथ-साथ यज्ञ, व्रत, दान, तप,

तौर्धसेवन, देवपूजन, श्राद्ध-तर्पण आदि शास्त्रविहित शुभ कर्मोंमें जनसाधारणको प्रवृत्त करनेके लिये उनके लौकिक एवं परलौकिक फलोका भी वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त पुराणोंमें अन्यान्य कई विषयोंका समावेश पाया जाता है। इसके साथ ही पुराणोंकी कथाओंमें असम्भव-सी दीखनेवाली कुछ बातें परस्पर विरोधी-सी भी दिखायी देती हैं, जिसे स्वल्प भ्रष्टाचारके पुरुष काल्पनिक मानने लगते हैं। परंतु यथार्थमें ऐसी बात नहीं है। यह सत्य है कि पुराणोंमें कहीं-कहीं न्यूनाधिकता हुई है एवं विदेशी तथा विधर्मियोंके अशुक्रमल-आत्माधारसे बहुतसे अंश आज उपलब्ध भी नहीं हैं। इसी तरह कुछ अंश प्रक्षिप्त भी हो सकते हैं। परंतु इससे पुराणोंकी मूल महत्ता तथा प्राचीनतामें कोई बाधा नहीं आती।

‘भविष्यपुराण’ अठारह महापुराणोंके अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण सार्विक पुराण है, इसमें इतने महत्त्वके विषय भी हैं, जिन्हें पढ़-सुनकर चमत्कृत होना पड़ता है। यद्यपि श्लोक-संख्यामें न्यूनाधिकता प्रतीत होती है। भविष्यपुराणके अनुसार इसमें पचास हजार श्लोक होने चाहिये; जबकि वर्तमानमें अठ्ठाईस सहस्र श्लोक ही इस पुराणमें उपलब्ध हैं। कुछ अन्य पुराणोंके अनुसार इसकी श्लोक-संख्या साढ़े चौदह सहस्र होनी चाहिये। इससे यह प्रतीत होता है कि जैसे विष्णुपुराणकी श्लोक-संख्या विष्णुधर्मोत्तरपुराणको सम्मिलित करनेसे पूर्ण होती है, वैसे ही भविष्यपुराणमें भविष्योत्तरपुराण सम्मिलित कर लिया गया है, जो वर्तमानमें भविष्यपुराणका उत्तरपर्व है। इस पर्वमें मुख्यरूपसे व्रत, दान एवं उत्सवोंका ही वर्णन है।

वस्तुतः भविष्यपुराण सौर-प्रधान ग्रन्थ है। इसके अधिष्ठातृदेव भगवान् सूर्य हैं, वैसे भी सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देवता हैं जो पञ्चदेवोंमें परिगणित हैं और अपने शास्त्रोंके अनुसार पूर्णव्रतोंके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। द्विजमात्रके लिये प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालको संख्यामें सूर्यदेवको अर्घ्य प्रदान करना अनिवार्य है, इसके अतिरिक्त स्त्री तथा अन्य आश्रमोंके लिये भी नियमित सूर्यार्घ्य देनेकी विधि बतलायी गयी है। आधिपौष्टिक और आधिदैविक रोग-शोक, संताप आदि

सांसारिक दुःखोंकी निवृत्ति भी सूर्योपासनासे सद्यः होती है। प्रथमः पुराणोंमें शैव और वैष्णवपुराण ही अधिक प्राप्त होते हैं, जिनमें शिव और विष्णुकी महिमाका विशेष वर्णन मिलता है, परंतु भगवान् सूर्यदेवकी महिमाका विस्तृत वर्णन इसी पुराणमें उपलब्ध है। यहाँ भगवान् सूर्यनारायणको जगत्कष्टा, जगत्पालक एवं जगत्संहारक पूर्णब्रह्म परमात्मके रूपमें प्रतिष्ठित किया गया है। सूर्यके महनीय स्वरूपके साथ-साथ उनके परिवार, उनकी अद्भुत कथाओं तथा उनकी उपासना-पद्धतिका वर्णन भी यहाँ उपलब्ध है। उनका प्रिय पुत्र क्या है, उनकी पूजाविधि क्या है, उनके आयुध—व्योमके लक्षण तथा उनका माहात्म्य, सूर्य-नमस्कार और सूर्य-प्रदक्षिणकी विधि और उसके फल, सूर्यको दीप-दानकी विधि और महिमा, इसके साथ ही सौरधर्म एवं दीक्षाकी विधि अदिक महत्वपूर्ण वर्णन हुआ है। इसके साथ ही सूर्यके विष्ट स्वरूपका वर्णन, द्वादश मूर्तियोंका वर्णन, सूर्यावतार तथा भगवान् सूर्यकी रथयात्रा आदिक विशिष्ट प्रतिपादन हुआ है। सूर्यकी उपासनामें त्रितोत्रे विस्तृत चर्चा मिलती है। सूर्यदेवकी प्रिय तिथि है 'सप्तमी'। अतः विभिन्न फलश्रुतियोंके साथ सप्तमी तिथिके अनेक त्रितोत्र और उनके उच्चारणोंका यहाँ विस्तारसे वर्णन हुआ है। अनेक सौर तीर्थोंकी भी वर्णन मिलते हैं। सूर्योपासनामें भावशुद्धिकी आवश्यकतापर विशेष बल दिया गया है। यह इसकी मुख्य बात है।

इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, गणेश, कार्तिकेय तथा अग्नि आदि देवोंका भी वर्णन आया है। विभिन्न तिथियों और नक्षत्रोंके अधिष्ठातृ-देवताओं तथा उनकी पूजाके फलका भी वर्णन मिलता है। इसके साथ ही ब्राह्मणधर्ममें ब्रह्मचरिधर्मका निरूपण, गृहस्थधर्मका निरूपण, माता-पिता तथा अन्य गुरुजनोंकी महिमाका वर्णन, उनको अभिवादन करनेकी विधि, उपनयन, विवाह आदि संस्कारोंका वर्णन, स्त्री-पुरुषोंके सामुद्रिक शुभाशुभ-लक्षण, स्त्रियोंके कर्तव्य, धर्म, सदाचार और उत्तम व्यवहारकी बातें, स्त्री-पुरुषोंके पारस्परिक व्यवहार, पञ्चमहायज्ञोंका वर्णन, बलिबैश्वदेव, अतिथिसत्कार, श्राद्धोंके

विविध भेद, मातृ-पितृ-श्राद्ध आदि उपादेय विषयोंपर विशेषरूपसे विवेचन हुआ है। इस पर्वमें नागपञ्चमी-व्रतकी कथाका भी उल्लेख मिलता है, जिसके साथ नागेश्वरी उत्पत्ति, सपेंके लक्षण, स्वरूप और विभिन्न जातियाँ, सपेंके काटनेके लक्षण, उनके विषका वेग और उसकी चिकित्सा आदिक विशिष्ट वर्णन यहाँ उपलब्ध है। इस पर्वकी विशेषता यह है कि इसमें व्यक्तिके उत्तम आचरणको ही विशेष प्रमुखता दी गयी है। कोई भी व्यक्ति कितना भी विद्वान्, वेदाध्यायी, संस्कारी तथा उत्तम जातिका क्यों न हो, यदि उसके आचरण श्रेष्ठ, उत्तम नहीं है तो वह श्रेष्ठ पुरुष नहीं कहा जा सकता। लोकमें श्रेष्ठ और उत्तम पुरुष वे ही हैं जो सदाचारी और साधुधर्मा हैं।

भविष्यपुराणमें ब्राह्मणधर्मके बाद मध्यमपर्वका प्रारम्भ होता है। जिसमें सृष्टि तथा सात ऊर्ध्व एवं सात पाताल लोकोंका वर्णन हुआ है। ज्योतिषशास्त्र तथा भूगोलके वर्णन भी मिलते हैं। इस पर्वमें नरकगह्वरी मनुष्योंके २६ दोष बताये गये हैं, जिन्हें त्यागकर सुदृढतापूर्वक मनुष्यको इस संसारमें रहना चाहिये। पुराणोंके श्रवणकी विधि तथा पुराण-वाचकजी महिमाका वर्णन भी यहाँ प्राप्त होता है। पुराणोंके ब्रह्मा-भक्तिपूर्वक सुननेसे ब्रह्महत्या आदि अनेक पापोंसे मुक्ति मिलती है। जो घात, रात्रि तथा सायं पवित्र होकर पुराणोंका श्रवण करता है, उसपर ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रसन्न हो जाते हैं<sup>१</sup>। इस पर्वमें इष्टापूर्तकर्मका निरूपण अत्यन्त समारोहके साथ किया गया है। जो कर्म ज्ञानसाध्य है तथा निष्कलमभावपूर्वक किये गये कर्म और स्वाभाविक रूपसे अनुरागाभक्तिके रूपमें किये गये हरिस्मरण आदि श्रेष्ठ कर्म अन्तर्बेदी कर्मोंके अन्तर्गत आते हैं, देवताकी स्थापना और उनकी पूजा, कुआँ, पोखरा, तालाब, कावली आदि खुदवाना, वृक्षारोपण, देवालय, धर्मशाला, उद्यान आदि लगाना तथा गुरुजनोंकी सेवा और उनको संतुष्ट करना—ये सब बहिर्बेदी (पूर्त) कर्म हैं। देवाल्योंके निर्माणकी विधि, देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षण और उनकी स्थापना, प्रतिष्ठाकी कर्तव्य-विधि, देवताओंकी पूजापद्धति,

१-इतिहासपुराणनि ब्रुत्व भक्त्य दिशेतामः। मुच्यते सर्वकलेश्वे ब्रह्मरक्षितं व यत्॥

सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूतः श्रूयते यः। तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्म कृप्यते शङ्करस्तथा॥

(मध्यमपर्व १।७।३-४)

उनके ध्यान और मन्त्र, मन्त्रोंके ऋषि और छन्द—इन सबोंपर पर्याप्त विवेचन किया गया है। पाषाण, काष्ठ, मूर्तिका, ताम्र, रत्न एवं अन्य श्रेष्ठ धातुओंसे बनी उत्तम लक्षणोंसे युक्त प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। घरमें प्रायः आठ अंगुलतक ऊँची मूर्तिका पूजन करना श्रेयस्कर माना गया है। इसके साथ ही तालाब, पुष्करिणी, बागी तथा भवन आदिकी निर्माण-पद्धति, गृहवासु-प्रतिष्ठाकी विधि, गृहवासुमें किन देवताओंकी पूजा की जाय, इत्यादि विषयोंपर भी प्रकाश डाला गया है।

वृक्षारोपण, विभिन्न प्रकारके वृक्षोंकी प्रतिष्ठाकर विधान तथा गोचरभूमिकी प्रतिष्ठा-सम्बन्धी चर्चाई मिलती है। जो व्यक्ति छाया, फूल तथा फल देनेवाले वृक्षोंका रोपण करता है या मार्गमें तथा देवालयेमें वृक्षोंको लगाता है, वह अपने पितरोंको बड़े-से-बड़े पापोंसे तारता है और रोपणकर्ता इस मनुष्यलोकमें महती कीर्ति तथा शुभ परिणामको प्राप्त करता है। जिसे पुत्र नहीं है, उसके लिये वृक्ष ही पुत्र है। वृक्षारोपणकर्ताके लौकिक-पारलौकिक कर्म वृक्ष ही करते रहते हैं तथा उसे उत्तम लोक प्रदान करते हैं। यदि कोई अशक्त वृक्षका आरोपण करता है तो वही उसके लिये एक लाख पुत्रोंसे भी बढ़कर है। अशोक वृक्ष लगानेसे कभी शोक नहीं होता। विल्व-वृक्ष दीर्घ आयुष्य प्रदान करता है। इसी प्रकार अन्य वृक्षोंके रोपणकी विभिन्न फलश्रुतियाँ आयी हैं। सभी सामाजिक कार्य निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न हो जायें तथा शान्ति-भङ्ग न हो इसके लिये ग्रह-शक्ति और शक्तिग्रह अनुष्ठानोंका भी इसमें वर्णन मिलता है।

भविष्यपुराणके इस पर्वमें कर्मकण्डका भी विशद वर्णन प्राप्त होता है। विविध यशोंका विधान, कुण्ड-निर्माणकी योजना, भूमि-पूजन, अग्निसेस्थापन एवं पूजन, यज्ञादि कर्मोंके मण्डल-निर्माणका विधान, कुशकण्डिका-विधि, होमद्रव्योंका वर्णन, यज्ञपत्रोंका स्वरूप और पूर्णाहुतिकी विधि, यज्ञादिकर्ममें दक्षिणाका माहात्म्य और कलश-स्थापन आदि विधि-विधानोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। शास्त्रविहित यज्ञादि कार्य दक्षिणाहित एवं परिमाणविहीन कभी नहीं करना चाहिये। ऐसा यज्ञ कभी सफल नहीं होता। जिस यज्ञका जो माप बतलाया गया है, उसके अनुसार करना

चाहिये।

इस क्रममें कौष्ठ आदि पक्षियोंके दर्शनका विशेष फल भी वर्णित हुआ है। मयूर, कृषक, सिंह एवं कौष्ठ और कृषिका घरमें, खेतमें और वृक्षपर भूलसे भी दर्शन हो जाय तो उसको नमस्कार करना चाहिये। ऐसा करनेसे दर्शकके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं, उनके दर्शनमात्रसे धन तथा आयुकी वृद्धि होती है।

कोई भी कर्म देवकर्म या पितृकर्म नियत समयपर किये जानेपर कालके आधारपर ही पूर्णरूपेण फलप्रद होते हैं। समयके बिना की गयी क्रियाओंका कोई फल नहीं होता। अतः कालविभाग, मास-विभाजन, तिथि-निर्णय एवं वर्षभरके विशेष पर्वों तथा तिथियोंके पुण्यप्रद कृत्योंका विवेचन भी इस पर्वमें साङ्गोपाङ्गरूपसे सम्पन्न हुआ है। जो सर्वसधारणके लिये उपयोगी भी है।

अपने यहाँ गोत्र-प्रवरको जाने बिना किया गया कर्म विपरीत फलदायी होता है। समान गोत्रमें विवाहादि सम्बन्धोंका निषेध है। अतः गोत्र-प्रवरकी परम्पराको जानना अत्यन्त आवश्यक है। अपने-अपने गोत्र-प्रवरको पिता, आचार्य तथा शास्त्रज्ञान जानना चाहिये। इन सारी प्रक्रियाओंका विवेचन यहाँ उपलब्ध है।

भविष्यपुराणमें मध्यमपर्वके बाद प्रतिसर्गपर्व चार खण्डोंमें है। प्रायः अन्य पुराणोंमें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरके प्राचीन राजाओंके इतिहासका वर्णन मिलता है, परंतु भविष्यपुराणमें इन प्राचीन राजाओंके साथ-साथ कलियुगी अर्वाचीन राजाओंका आधुनिक इतिहास भी मिलता है। काशिकमें भविष्यपुराणके भविष्य नामकी सार्थकता प्रतिसर्गपर्वमें ही चरितार्थ हुई दीखती है। प्रतिसर्गपर्वके प्रथम खण्डमें सत्ययुगके राजाओंके वंशका परिचय, त्रेतायुगके सूर्य एवं चन्द्र-राजवंशोंका वर्णन, द्वापरयुगके चन्द्रवंशीय राजाओंके वृत्तान्त वर्णित है। इसके बाद म्लेच्छवंशीय राजाओंका वर्णन है। प्रारम्भमें राजा प्रद्योतने कुरुक्षेत्रमें यज्ञ करके म्लेच्छोंका विनाश किया था, परंतु करिष्ने स्वयं म्लेच्छरूपमें राज्य किया तथा भगवान् नारायणको अपनी पूजासे प्रसन्नकर बरदान प्राप्त किया। नारायणने करिष्ने कहा कि 'कई दृष्टियोंसे अन्य युगोंकी अपेक्षा तुम श्रेष्ठ हो, अतः



तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।' इस वरदानके प्रभावसे अहम नामके पुरुष और हव्यवती (होवा) नामकी पत्नीसे मलेच्छवंशोंकी वृद्धि हुई। कलियुगके तीन हजार वर्ष व्यतीत होनेपर विक्रमादित्यका आविर्भाव होता है। इसी समय रुद्रकिंकर वैतालका आगम होता है, जो विक्रमादित्यको कुछ कथाएँ सुनाता है और इन कथाओंके व्याजसे राजनीतिक और व्यावहारिक शिक्षा भी प्रदान करता है। वैतालद्वारा कही गयी इन कथाओंका संग्रह 'वैतालपञ्चविंशति' अथवा 'वैतालपचीसी' के नामसे लोकमें प्रसिद्ध है।

इसके बाद श्रीसत्यनारायणव्रतकी कथाका वर्णन है। भारतवर्षमें सत्यनारायणव्रत-कथा अत्यन्त लोकप्रिय है और इसका प्रसार-प्रचार भी सर्वाधिक है। भारतीय सनातन परम्परामें किसी भी मातृलिक कार्यका प्रारम्भ भगवान् गणपतिके पूजनसे एवं उस कार्यकी पूर्णता भगवान् सत्यनारायणके कथाश्रवणसे प्रायः सम्पत्ति जाती है। भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वमें भगवान् सत्यनारायणव्रत-कथाका उल्लेख छः अध्यायोंमें प्राप्त है। यह कथा स्कन्दपुराणकी प्रचलित कथासे मिलती-जुलती होनेपर भी विशेष रोचक एवं श्रेष्ठ प्रतीत होती है। वास्तवमें इस महात्म्य संसारकी वास्तविक सत्ता तो है ही नहीं—'वासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।' परमेश्वर ही विकासव्याधित सत्य है और एकमात्र वही ध्येय, ज्ञेय और उपास्य है। ज्ञान-वैराग्य और अनन्य भक्तिके द्वारा वही साक्षात्कार करने योग्य है। वस्तुतः सत्यनारायणव्रतका तात्पर्य उन शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्माकी आराधनासे ही है। निष्कम उपासनासे सत्यस्वरूप नारायणकी प्राप्ति हो जाती है। अतः श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजन, कथाश्रवण एवं प्रसन्न आदिके द्वारा उन सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान् सत्यनारायणकी उपासनासे लाभ उठाना चाहिये।

इस खण्डके अन्तिम अध्यायोंमें पितृशर्मा और उनके वंशमें उत्पन्न होनेवाले व्याडि, मीमांसक, पाणिनि और वररुचि आदिकी रोचक कथाएँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकारमें ब्रह्मचारिधर्मकी विभिन्न व्याख्याएँ करते हुए यह कहा गया है कि 'जो गृहस्थधर्ममें रहता हुआ पितरों, देवताओं और अतिथियोंका सम्मान करता है और इन्द्रियसंयमपूर्वक

श्रुतकालमें ही भार्याका उपगमन करता है, वही मुख्य ब्रह्मचारी है। पाणिनिकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् सदाशिव संकरने 'अ इ उ ण्', 'अ लृ क्' इत्यादि चतुर्दश महाधर-सूत्रोंको वररूपमें प्रदान किया। जिसके कारण उन्होंने व्याकरणशास्त्रका निर्माण कर महान् लोकोपकार किया। तदनन्तर खेपदेवके चरित्रका प्रसंग तथा श्रीमद्भागवतके माहात्म्यका वर्णन, श्रीदुर्गसप्तशतीके माहात्म्यमें व्याधकर्माकी कथा, मध्यमचरित्रके माहात्म्यमें कल्याणन तथा मगधके राजा महानन्दकी कथा और उत्तरचरितकी महिमाके प्रसंगमें योगाचार्य महर्षि पतञ्जलिके चरित्रका रोचक वर्णन हुआ है।

भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वका तीसरा खण्ड रामांश और कृष्णांश अर्थात् आल्हा और ऊदल (उदयसिंह) के चरित्र तथा जयचन्द्र एवं पृथ्वीराज चौहानकी वीरगाथाओंसे परिपूर्ण है। इधर भारतमें जागनिक भाटरचित आल्हावन वीरकाव्य बहुत प्रचलित है। इसके मुन्देलखण्डी, भोजपुरी आदि कई संस्करण हैं, जिनमें भाषाओंका थोड़ा-थोड़ा भेद है। इन कथाओंका मूल यह प्रतिसर्गपर्व ही प्रतीत होता है। प्रायः ये कथाएँ लोककल्पनाके अनुसार अतिशयोक्तिपूर्ण-सी प्रतीत होती हैं, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्वकी भी हैं। इस खण्डमें राजा शलिव्याहन तथा ईशमसीहकी कथा भी आयी है। एक समय शकाधीश शलिष्याहने हिमशिखरपर गौर-वर्णिक एक सुन्दर पुरुषको देखा, जो श्वेत वस्त्र धारण किये था। शकराजकी विज्ञप्ति करनेपर उस पुरुषने अपना परिचय देते हुए अपना नाम ईशमसी बताया। साथ ही अपने सिद्धाचोक्त भी संक्षेपमें वर्णन किया। शलिव्याहन्के वंशमें अन्तिम दसवें राजा भोजराज हुए, जिनके साथ महामदकी कथाका भी वर्णन मिलता है। राजा भोजने मरुस्थल (मदीन) में स्थित महादेवका दर्शन किया तथा भक्तिभावपूर्वक पूजन-स्तुति की। भगवान् शिवने प्रकट होकर मलेच्छोंसे दूषित उस स्थानको त्यागकर महाकालेश्वर तीर्थमें जानेकी आज्ञा प्रदान की। तदनन्तर देशराज एवं वस्सराज आदि राजाओंके आविर्भावकी कथा तथा इनके वंशमें होनेवाले कौरवांश एवं पाण्डवांशोंके रूपमें उत्पन्न राजवंशोंका विवरण प्राप्त होता है। कौरवांशोंकी पराजय और पाण्डवांशोंकी विजय होती है। पृथ्वीराज चौहानको वीरगति प्राप्त होनेके उपरान्त सद्योद्विज (मुहम्मद

गोरी) के द्वारा कोलुकोदीनको दिल्लीका शासन सौंपकर इस देशसे धन लूटकर ले जानेका विवरण प्राप्त होता है।

प्रतिसर्गपर्वका अन्तिम चतुर्थ खण्ड है, जिसमें सर्वप्रथम कलियुगमें उत्पन्न आन्धवंशीय राजाओंके वंशका परिचय मिलता है। तदनन्तर राजपूताना तथा दिल्ली नगरके राजवंशोंका इतिहास प्राप्त होता है। राजस्थानके मुख्य नगर अजमेरकी कथा मिलती है। अजम्पा (अज) ब्रह्माके द्वारा रचित होने तथा माँ लक्ष्मी (रम्भा) के सुभागमनसे रम्य या रमणीय इस नगरीका नाम अजमेर हुआ। इसी प्रकार राज जयसिंहने जयपुरको बसाया, जो भारतका सर्वाधिक सुन्दर नगर माना जाता है। कृष्णवर्मिके पुत्र उदयने उदयपुर नामक नगर बसाया, जिसका प्राकृतिक सौन्दर्य आज भी दर्शनीय है। कान्यकुब्ज नगरकी कथा भी अद्भुत है। राजा प्रणयकी तपस्यासे भगवती शारदा प्रसन्न होकर कन्यारूपमें वेणुकादन करती हुई आती है। उस कन्याने वरदानरूपमें यह नगर राजा प्रणयको प्रदान किया, जिस कारण इसका नाम 'कन्यकुब्ज' पड़ा। इसी प्रकार चित्रकूटका निर्माण भी भगवतीके प्रसादसे ही हुआ। इस स्थानकी विशेषता यह है कि यह देवताओंका प्रिय नगर है, जहाँ कलिका प्रवेश नहीं हो सकता। इसीलिये इसका नाम 'कलिजर' भी कहा गया है। इसी प्रकार बंगालके राजा भोगवर्मिके पुत्र कालियवर्माने महाकालीकी उपासना की। भगवती कालीने प्रसन्न होकर पुष्पों और कलियोंकी वर्षा की, जिससे एक सुन्दर नगर उत्पन्न हुआ जो कलिवातापुरी (कलकत्ता) के नामसे प्रसिद्ध हुआ। चारों वर्णोंके उत्पत्तिकी कथा तथा चारों युगोंमें मनुष्योंकी आयुका निरूपण और फिर आगे चलकर दिल्ली नगरपर पठानोंका शासन, तैमूरलंगके द्वारा भारतपर आक्रमण करने और लूटनेकी क्रियाका वर्णन भी इसमें प्राप्त होता है।

कलियुगमें अवतीर्ण होनेवाले विभिन्न आचार्यों-संतों और भक्तोंकी कथाएँ भी यहाँ उपलब्ध हैं। श्रीशंकराचार्य, श्रीरामानन्दाचार्य, निम्बादित्य, श्रीधरस्वामी, श्रीविष्णुस्वामी, वाराहमिहिर, भट्टोजि दीक्षित, धन्यन्तरि, कृष्णचैतन्यदेव,

श्रीरामानुज, श्रीमध्व एवं गोरखनाथ आदिका विस्तृत चरित्र यहाँ वर्णित है। प्रायः ये सभी सूर्यके तेज एवं अंशसे ही उत्पन्न बताये गये हैं। भविष्यपुराणमें इन्हें द्वादशादित्यके अवतारके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। कलियुगमें धर्मरक्षार्थ इनका अविर्भाव होता है। विभिन्न सम्प्रदायोंकी स्थापनामें इनका योगदान है। इन प्रसंगोंमें प्रमुखता चैतन्य महाप्रभुको दी गयी है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि श्रीकृष्णचैतन्यने ब्रह्मसूत्र, गीता या उपनिषद् किसीपर भी साम्प्रदायिक दृष्टिसे भाष्यकी रचना नहीं की थी और न किसी सम्प्रदायकी ही अपने समयमें स्थापना की थी। उदार-भावसे नाम और गुणकीर्तनमें विभोर रहते थे। भगवान् जगन्नाथके द्वारपर ही सड़े होकर उन्होंने अपनी जीवनलीलाको क्षीप्ररूपमें खीन कर दिया। साथ ही यहाँ संत सुरदासजी, तुलसीदासजी, कबीर, नरसी, पीपा, सानक, पैदास, नामदेव, रंकण, घण्टा भगत आदिकी कथाएँ भी हैं। आनन्द, गिरी, पुरी, वन, आश्रम, पर्वत, भारती एवं नाथ आदि दस नामी साधुओंकी व्युत्पत्तिक कारण भी लिखा है। भगवती महाकाली तथा दुर्गिराजकी उत्पत्तिकी कथा भी मिलती है।

भगवान् गणपतिके यहाँ पराजयरूपमें चित्रित किया गया है। भूतभावन सदाशिवकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती पार्वतीके पुत्ररूपमें जन्म लेनेका उन्हें वर प्रदान किया। तदनन्तर उन्होंने भगवान् शिवके पुत्ररूपमें अवतार धारण किया। इसमें रावण एवं कुम्भकर्णके जन्मकी कथा, रुद्रावतार श्रीहनुमान्जीकी रोचक कथा भी मिलती है। केसरीकी पत्नी अंजनीके गर्भसे श्रीहनुमत्फलज्जी अवतार धारण करते हैं। आकाशमें उगते हुए स्वर्ण सूर्यको देख फल समझकर उसे निगलनेका प्रयास करते हैं। सूर्यके अपावमें अन्धकार देखकर इन्द्रने उनकी हनु (टुड्डी) पर कब्रसे प्रहार किया, जिससे हनुमान्की टुड्डी टेढ़ी हो जाती है और वे पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं, जिससे उनका नाम हनुमान् पड़ा। इसी बीच रावण उनकी कैद फकड़कर लटक जाता है। फिर भी उन्होंने सूर्यको नहीं छोड़ा। एक वर्षतक रावणसे युद्ध होता रहा। अन्तमें रावणके

पिता विश्रवा मुनि वहाँ आते हैं और वैदिक स्तोत्रोंसे हनुमान्जीको प्रसन्नकर रावणका पिण्ड कुड़ाते हैं। तदनन्तर ब्रह्माजीके प्रादुर्भाव तथा सृष्टि और उत्पत्तिकी कथा एवं शिव-पार्वतीके विवाहका वर्णन हुआ है। अन्तिम अध्यायोंमें मुगल बादशाहों तथा अंग्रेज शासकोंकी भी चर्चा हुई है। मुगल बादशाहोंमें बाबर, हुमायूँ, अकबर, शाहजहाँ, जहाँगीर, औरंगजेब आदि प्रमुख शासकोंका वर्णन मिलता है। छत्रपति शिवाजीकी वीरताका भी वर्णन प्राप्त है। इसके साथ ही विक्टोरियाके शासन और उसके पार्लियामेंटका भी उल्लेख है। विक्टोरियाको यहाँ विक्टोरिावतीके नामसे कहा गया है। बलिपुण्यके अन्तिम धरणमें नरकोंके भर जानेकी गथा भी मिलती है। सभी नरक मनुष्योंसे परिपूर्ण हो जाते हैं तथा नरकोंमें अजीर्णता आ जाती है। अन्तमें बलिपुण्यके सामान्यधर्मिक वर्णनके साथ इस पर्वका उपसंहार किया गया है।

इस पुराणका अन्तिम पर्व है उत्तरपर्व। उत्तरपर्वमें मुख्य रूपसे व्रत, दान और उत्सवोंके वर्णन प्राप्त होते हैं। व्रतोंकी अद्भुत शृङ्खलाका प्रतिपादन यहाँ हुआ है। प्रत्येक विधियों, मासों एवं नक्षत्रोंके व्रतों तथा उन विधियों आदिके अधिष्ठाता देवताओंका वर्णन, व्रतकी विधि और उसकी फलश्रुतियोंका बड़े विस्तारसे प्रतिपादन किया गया है।

उत्तरपर्वके प्रारम्भमें श्रीनारदजीको भगवान् श्रीनारायण विष्णुमायाका दर्शन कराते हैं। किसी समय नारदमुनिने श्वेतद्वीपमें भगवान् नारायणका दर्शनकर उनकी मायाको देखनेकी इच्छा प्रकट की। नारदजीके बार-बार आग्रह करनेपर श्रीनारायण नारदजीके साथ जम्बूद्वीपमें आये और मार्गमें एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया। विदिश नगरीमें धन-धान्यसे समृद्ध, उद्यमी, पशुपालनमें तत्पर, कृषिकार्यको भलीभाँति करनेवाला सीरधर नामका एक वैश्य निवास करता था, वे दोनों सर्वप्रथम उसीके घर गये। उस वैश्यने उनका यथोचित सत्कारकर भोजनके लिये पूछा। यह सुनकर वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी भगवान्ने हँसकर कहा—‘तुमको अनेक पुत्र-पौत्र हों, तुम्हारी खेती और पशुधनकी नित्य वृद्धि हो यह मेरा आशीर्वाद है।’ यह कहकर वे दोनों वहाँसे चले पड़े। मार्गमें गङ्गाके तटपर गाँवमें गोस्वामी नामका एक दरिद्र ब्राह्मण

रहता था। वे दोनों उसके पास पहुँचे, वह अपनी खेती आदिको चिन्तामें लगा था। भगवान्ने उससे कहा—‘हम तुम्हारे अतिथि हैं और भूखे हैं, अतः भोजन कराओ।’ उस ब्राह्मणने दोनोंको अपने घरपर लाकर स्नान-भोजन आदि कराया, अनन्तर उतम शय्यपर शयन आदिकी व्यवस्था की। प्रतः उठकर भगवान्ने ब्राह्मणसे कहा—‘हम तुम्हारे घरमें सुखपूर्वक रहे, परमेश्वर को कि तुम्हारी खेती निष्फल हो, तुम्हारी संततिकी वृद्धि न हो’ इतना कहकर वे वहाँसे चले गये। यह देखकर नारदजीने आश्चर्यचकित होकर पूछा—‘भगवान् ! वैश्यने आपकी कुछ भी सेवा नहीं की, परंतु आपने उसे उतम कर दिया, किंतु इस ब्राह्मणने ब्रह्मासे आपकी बहुत सेवा की, फिर भी उसे आपने आशीर्वादके रूपमें शाप ही दिया—ऐसा आपने क्यों किया?’ भगवान्ने कहा—‘नारद ! वर्षभर मछलियाँ पकड़नेसे जितना पाप होता है, एक दिन डल जेतनेसे उतना ही पाप होता है। वह वैश्य अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ इसी कृषि-कार्यमें लगा हुआ है। हमने न तो उसके घरमें विश्राम किया और न भोजन ही किया, इस ब्राह्मणके घरमें भोजन और विश्राम किया। इस ब्राह्मणको ऐसा आशीर्वाद दिया कि जिससे यह जगज्जालमें न फँसकर मुक्तिको प्राप्त कर सके। इस प्रकार बातचीत करते हुए वे दोनों आगे बढ़ने लगे। आगे चलकर भगवान्ने नारदजीको कान्यकुब्जके सरोवरमें अपनी मायासे स्नान कराकर एक सुन्दर स्त्रीका स्वरूप प्रदान किया तथा एक राजासे विवाह कराकर पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न जगज्जालकी मायामें लिप्त कर दिया तथा कुछ समय बाद पुनः नारदजीको अपने स्वाभाविक रूपमें लेकर भगवान् अनर्हात हो गये। नारदजीने अनुभव किया कि इस मायाके प्रभावसे संसारके जीव, पुत्र, स्त्री, धन आदिमें आसक्त हो रोते-गाते हुए अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करते हैं। अतः मनुष्यको इससे सावधान रहना चाहिये।

इसके बाद संसारके दोषोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। महाराज युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णसे प्रश्न करते हैं, यह जीव किस कर्मसे देवता, मनुष्य और पशु आदि योनियोंमें उत्पन्न होता है? शुभ और अशुभ फलका भोग वह कैसे करता है? इसका उत्तर देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि उतम कर्मोंसे देवयोनि, मिश्रकर्मसे मनुष्ययोनि और पापकर्मसे

पशु आदि योनियोंमें जन्म होता है। धर्म और अधर्मके निश्चयमें श्रुति ही प्रमाण है। पापसे पापयोनि और पुण्यसे पुण्ययोनि प्राप्त होती है<sup>१</sup>। वस्तुतः संसारमें कोई सुखी नहीं है। प्रत्येक प्राणीको एक दूसरेसे भय बना रहता है। यह कर्ममय शरीर जन्मसे लेकर अन्ततक दुःखी ही है। जो पुरुष जितेन्द्रिय है और व्रत, दान तथा उपवास आदिमें तत्पर रहते हैं, वे ही सदा सुखी रहते हैं। तदनन्तर यहाँ भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा विविध प्रकारके पाप एवं पुण्य कर्मोंका फल बताया गया है। अधम कर्मको ही पाप और अधर्म कहते हैं। स्मृत, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म आदि भेदोंद्वारा करोड़ों प्रकारके पाप हैं, पर यहाँ बड़े-बड़े पापोंका संक्षेपमें वर्णन किया गया है। परस्त्रीका चिन्तन, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन और अकर्षण (कुकर्षण) में अभिनिवेश—ये तीन प्रकारके मानस पाप हैं। अनियमित प्रलाप, अभ्रिय, असत्य, परिन्दा और विश्रुता अर्थात् चुगली—ये पाँच वाचिक पाप हैं। अभक्ष्यभक्षण, हिंसा, मिथ्या कामसेवन (असंयमित जीवन व्यतीत करना) और परधन-हरण—ये चार कर्षिक पाप हैं। इन बारह कर्मोंके करनेसे नरकजन्म प्राप्ति होती है। इसके साथ ही जो पुरुष संसाररूपी सागरसे उछल करेणाले भगवान् सदाशिव अथवा भगवान् विष्णुसे द्वेष रखते हैं, वे भी नरकमें पहुँचते हैं। ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णकी चोरी और गुरुपञ्जीगमन—ये चार महापातक हैं। इन पातकोंको करनेवालोंके सम्पर्कमें रहनेवाला पक्षिर्वा महापातकी गिना जाता है। ये सभी नरकमें जाते हैं। इनके अतिरिक्त कई प्रकारके उपपातकोंका भी वर्णन आया है। जिनका फल दुःख और नरकगमन ही है।

इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य शरीरको नष्ट जानकर लेशमात्र भी पाप न करे, पापसे अवश्य ही नरक भोगन पड़ता है। पापका फल दुःख है और नरकमें बहुतकर अधिक दुःख नहीं है। पापी मनुष्य नरकजन्मके अनन्तर फिर पृथ्वीपर वृक्ष आदि अनेक प्रकारकी स्थल-योनियोंमें जन्म ग्रहण करते हैं और अनेक कष्ट भोगते हैं। अनन्तर कीट, पतंग, पक्षी, पशु आदि अनेक योनियोंमें जन्म लेते हुए

अतिदुर्लभ मनुष्य-जन्म पाते हैं। स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाला मनुष्य-जन्म पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे नरक न देखना पड़े। यह मनुष्य-योनि देवताओं तथा असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। धर्मसे ही मनुष्यका जन्म मिलता है। मनुष्य-जन्म पाकर उसे धर्मकी वृद्धि करनी चाहिये। जो अपने कल्याणके लिये धर्मका पालन नहीं करता है, उसके समान मूर्ख कौन होगा ?

यह देश सभी देशोंमें उत्तम है। बहुत पुण्यसे प्राणीका जन्म भारतवर्षमें होता है। इस देशमें जन्म पाकर जो अपने कल्याणके लिये सत्कर्म करता है वही बुद्धिमान् है। जिसने ऐसा नहीं किया, उसने अपने आपका साथ बर्बाद कर दिया। जबतक यह शरीर स्वस्थ है, तबतक जो कुछ पुण्य बन सके, कर लेना चाहिये, बादमें कुछ भी नहीं हो सकता। दिन-रातके बहाने नित्य आयुके ही अंश खपित हो रहे हैं। फिर भी मनुष्यको जोध नहीं होता कि एक दिन मृत्यु आ पहुँचेगी और इन सभी सामग्रियोंको छोड़कर अकेले चला जाना पड़ेगा। फिर अपने हाथसे ही अपनी सम्पत्ति सत्पात्रोंको क्यों नहीं बाँट देते ? मनुष्यके लिये दान ही पापेय अर्थात् रास्तेके लिये भोजन है। जो दान करते हैं वे सुखपूर्वक जाते हैं। दान-हीन कर्ममें अनेक दुःख पाते हैं। भूख मरते जाते हैं, इन सब बातोंको विचारकर पुण्य कर्म ही करना चाहिये। पुण्य कर्मोंसे देवत्व प्राप्त होता है और पाप करनेसे नरकजन्म प्राप्ति होती है। जो सत्पुरुष सर्वात्मभावसे शीपरमात्म-प्रभुकी शरणमें जाते हैं, वे परावशपर स्थित जलकी तरह पापोंसे लिप्त नहीं होते, इसलिये इन्द्रमें छूटकर भक्तिपूर्वक ईश्वरकी आराधना करनी चाहिये तथा सभी प्रकारके पापोंसे निरन्तर बचना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे कहते हैं कि यहाँ भीषण नरकको जो वर्णन किया गया है, उन्हें व्रत-उपवासरूपी नौकासे पार किया जा सकता है। प्राणीको अति दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे पश्चात्ताप न करना पड़े और यह जन्म भी व्यर्थ न जाय और फिर जन्म भी न लेना पड़े। जिस मनुष्यकी कीर्ति, दान, व्रत, उपवास



आदिकी परम्परा बनी है, यह परलोकमें उनकी कर्मोंके द्वारा सुख भोगता है। व्रत तथा स्वाध्याय न करनेवालेकी कहीं भी गति नहीं है। इसके विपरीत व्रत-स्वाध्याय करनेवाले पुरुष सदा सुखी रहते हैं। इसलिये व्रत-स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।

इस पर्वमें अनेक व्रतोंकी कथा, माहात्म्य, विधान तथा फलश्रुतियोंका वर्णन किया गया है। साथ ही व्रतोंके उच्चापनकी विधि भी बताया गयी है। एक-एक तिथियोंमें कई व्रतोंका विधान है। जैसे प्रतिपदा तिथिमें तिलकव्रत, अशोकव्रत, कोकिलव्रत, बृहत्पौषव्रत आदिका वर्णन हुआ है। इसी प्रकार जातिस्मर भद्रव्रत, यमद्वितीया, मधुकृततीया, हरकलसीव्रत, ललितातृतीयाव्रत, अवियोगतृतीयाव्रत, उमामहेश्वरव्रत, सौभाग्यशयन, अनन्ततृतीया, रसकल्याणिनी तृतीयाव्रत तथा अक्षयतृतीया आदि अनेक व्रत तृतीया तिथिमें ही वर्णित हैं। इसी प्रकार गणेशचतुर्थी, श्रीपञ्चमीव्रत-कथा, विशोक-बह्वी, कमलबह्वी, मन्दार-बह्वी, विजया-सप्तमी, मृत्ताभरण-सप्तमी, कल्याण-सप्तमी, शर्करा-सप्तमी, शुभ-सप्तमी तथा अचला-सप्तमी आदि अनेक सप्तमी-व्रतोंका वर्णन हुआ है। तदनन्तर बुधाष्टमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, दूर्वाकी उत्पत्ति एवं दूर्वाष्टमी, अनन्ताष्टमी, श्रीवृक्षनवमी, ध्वजनवमी, आश्विदशमी आदि व्रतोंका निरूपण हुआ है। द्वादशी तिथिमें तारकद्वादशी, अरण्यद्वादशी, गोबन्धद्वादशी, देवशयनी एवं देवोत्थानी द्वादशी, नीराजनद्वादशी, मन्त्रद्वादशी, विजय-श्रवणद्वादशी, गोविन्दद्वादशी, असायद्वादशी, धरणीव्रत (चाराहद्वादशी), विशोकद्वादशी, विभूतिद्वादशी, मदनद्वादशी आदि अनेक द्वादशी-व्रतोंका निरूपण हुआ है। त्रयोदशी तिथिके अन्तर्गत अन्नाधकव्रत, सौभाग्य-दौर्भाग्यनाशकव्रत, धर्मराजका समाराधन-व्रत (यमदरान-त्रयोदशी), अन्नह्रयोदशीव्रतका विधान और उसके फलके वर्णन लिखे हैं। चतुर्दशी तिथिमें पालीव्रत एवं रम्भा- (कदली-) व्रत, शिवचतुर्दशीव्रतमें महर्षि अङ्गिराका आख्यान, अनन्त-चतुर्दशीव्रत, श्रवणिक-व्रत, नक्तव्रत, फलत्याग-चतुर्दशीव्रत आदि विभिन्न व्रतोंका निरूपण हुआ है। तदनन्तर अमावास्यामें श्राद्ध-तर्पणकी महिमाका वर्णन, पूर्णमासी-व्रतोंका वर्णन, जिसमें वैशाखी, कार्तिकी और माघी

पूर्णिमाकी विशेष महिमाका वर्णन, सावित्रीव्रत-कथा, कृत्तिका-व्रतके प्रसंगमें रानी कलिंगभद्राका आख्यान, मनोरम-पूर्णिमा तथा अशोक-पूर्णिमाकी व्रत-विधि आदि विभिन्न व्रतों और आख्यानोंका वर्णन किया गया है।

तिथियोंके व्रतोंके निरूपणके अनन्तर नक्षत्रों और मासोंके व्रतकायाओंका वर्णन हुआ है। अनन्तव्रत-माहात्म्यमें कार्तवीर्यके आधिर्भावका वृत्तान्त आया है। मास-नक्षत्रव्रतके माहात्म्यमें साम्प्रदायिकोंकी कथा, प्रायश्चित्तरूप सम्पूर्ण व्रतका विधान, वृन्ताक (बैंगन)-त्यागव्रत एवं ग्रह-नक्षत्रव्रतकी विधि, शनैश्वरव्रतमें महामुनि पैपलादका आख्यान, रघुनन्दनव्रतके उच्चापनकी विधि, भद्रा (विष्टि)-व्रत तथा भद्राके आधिर्भावकी कथा, चन्द्र, शुक्र तथा बृहस्पतिके आर्य देनेकी विधि आदिके वर्णन हुए हैं। इस पर्वके १२९ वें अध्यायमें विविध प्रकीर्ण व्रतोंके अन्तर्गत प्रायः ८५ व्रतोंका उल्लेख आता है, तदनन्तर माघ-स्नानका विधान, स्नान, तर्पणविधि, रुद्र-स्नानकी विधि, सूर्य-चन्द्र-ग्रहणमें स्नानका माहात्म्य आदिके वर्णन प्राप्त होते हैं।

मृत्युसे पूर्व अर्थात् मरणोत्तर गृहस्थ पुरुषकी शरीरका त्याग किस प्रकार करना चाहिये, इसका बड़ा ही सुन्दर विवेचन यहाँ १२९ वें अध्यायमें हुआ है। जब पुरुषको यह मालूम हो कि मृत्यु समीप आ गयी है तो उसे सब ओरसे मन हटाकर गुरुद्वय भगवान् विष्णुका अधवा अपने इष्टदेवका स्मरण करना चाहिये। स्नानसे पवित्र होकर श्वेत वस्त्र धारण करके सभी उपचारोंसे नारायणकी पूजाकर स्तोत्रोंसे स्तुति करे अपनी शक्तिके अनुसार गाय, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, अन्न आदिक दान करे और बन्धु, पुत्र, मित्र, स्त्री, क्षेत्र, धन-धान्य तथा पशु आदिसे श्रित हटाकर ममत्वका सर्वथा परित्याग कर दे। मित्र, शत्रु, उदासीन, अपने और पराये लोगोंके उपकार और अपकारके विषयमें विचार न करता हुआ अपने मनको पूर्ण शून्य कर ले। जगद्गुरु भगवान् विष्णुके अतिरिक्त मेरा कोई बन्धु नहीं है, इस प्रकार सब कुछ छोड़कर सर्वेश्वर भगवान् अच्युतको हृदयमें धारण करके निरन्तर वासुदेवके नामका स्मरण-कीर्तन करता रहे और जब मृत्यु अत्यन्त समीप आ जाय तो दक्षिणाय कुश बिछाकर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर स्मिरकर शयन करे और परमात्म-प्रभुसे यह प्रार्थना करे कि 'हे

जगन्नाथ ! मैं आपका ही हूँ, आप शीघ्र मुझमें निवास करें, वायु एवं आकाशकी भाँति मुझमें और आपमें कोई अन्तर न रहे। मैं आपको अपने सामने देख रहा हूँ, आप भी मुझे देखें।' इस प्रकार भगवान् विष्णुको प्रणाम करें और उनका दर्शन करें। जो अपने इष्टदेवका अथवा भगवान् विष्णुका ध्यानकर प्राण त्याग करता है, उसके सब पाप छूट जाते हैं और वह भगवान्में लीन हो जाता है। मृत्युकालमें यदि इतना करना सम्भव न हो तो सबसे सरल उपाय यह है कि चारों तरफसे चित्तवृत्ति हटाकर गोविन्दका स्मरण करते हुए प्राण त्याग करना चाहिये, क्योंकि व्यक्ति जिस-जिस भावमें स्मरणकर प्राण त्याग करता है, उसे वही भाव प्राप्त होता है। अतः सब प्रकारसे निवृत्त होकर वासुदेवका स्मरण और चिन्तन करना ही श्रेयस्कर है। इसी प्रसंगमें भगवान्के चिन्तन-ध्यानके स्वरूपपर भी प्रकाश डाला गया है। जो साधकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी और जानने योग्य है।

महर्षि मार्कण्डेयजीके द्वारा चार प्रकारके ध्यानका विवेचन किया गया है—(१) राज्ञ, उपभोग, शयन, भोजन, वाहन, मणि, स्त्री, गन्ध, माल्य, वस्त्र, आभूषण आदिमें यदि अत्यन्त मोहके कारण उसका चिन्तन-स्मरण बना रहता है तो वह मोहजन्य 'आद्य' ध्यान कहा गया है। इस ध्यानमें तिर्यक्-योनि तथा आधोगतिकी प्राप्ति होती है। (२) दशके अभावमें यदि जलाने, भारने, तड़पाने, किसीके ऊपर प्रहार करनेकी इच्छा रहती हो, ऐसी क्रियाओंमें जिसका मन लगता हो, उसे 'रीद' ध्यान कहा गया है। इस ध्यानसे भय प्राप्त होता है। (३) वेदार्थके चिन्तन, इन्द्रियके उपशमन, मोक्षकी चिन्ता, प्राणियोंके कल्याणकी भावना आदि करना 'धर्म' ध्यान है। 'धर्म' ध्यानसे स्वर्गकी अथवा दिव्यलोककी प्राप्ति होती है। (४) समस्त इन्द्रियोंका अपने-अपने विषयोंसे निवृत्त हो जाना, हृदयमें इष्ट-अनिष्ट—किसीका भी चिन्तन नहीं होना और आपसीगत होकर एकमात्र परमेश्वरका चिन्तन करते हुए परमात्मनिष्ठ हो जाना—यह 'शुद्ध' ध्यानका स्वरूप है। इस ध्यानसे मोक्षकी प्राप्ति अथवा भगवत्प्राप्ति हो जाती है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि कल्याणकारी 'शुद्ध' ध्यानमें ही चित्त स्थिर हो जाय।

इस प्रकरणके बाद दानकी महिमा एवं विभिन्न उत्सवोंका

वर्णन आया है। सर्वप्रथम दीपदानकी महिमामें रानी ललिताके अलङ्घनका तथा वृषोत्सर्गकी महिमाका वर्णन हुआ है। अनन्तर कन्यदानके महत्त्वपर प्रकाश डाला गया है। आपूषणोंसे अलंकृत कन्याको अपने वर्ण और जातिमें दान करनेकी अत्यधिक महिमा बतायी गयी है। अनाथ कन्याके विवाह करनेका भी विशेष फल कहा गया है। इस पूर्वमें धेनुदानका विशद वर्णन प्राप्त होता है। कई प्रकारकी धेनुओंके दानका प्रकरण आया है। प्रत्यक्ष धेनु, तिलधेनु, जलधेनु, घृतधेनु, लवणधेनु, काष्ठधेनु, रजधेनु आदिके वर्णन मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कपिलदान, महिषीदान, भूमिदान, शैवर्णर्षिदान, गृहदान, अन्नदान, विद्यादान, तुल्यपुत्रदान, हिरण्यगर्भदान, ब्रह्माण्डदान, कल्पवृक्ष-कल्पलतादान, गङ्गाशङ्करदान, बालपुत्रदान, सप्तसागरदान, महाभूतघटदान, जय्यादान, हेमहस्तिरश्मदान, विश्ववज्रदान, नक्षत्रदान, तिथिदान, धान्यपर्वतदान, लवणपर्वतदान, गुह्यचलदान, हेमाचलदान, तिलाचलदान, कार्पासाचलदान, धृताचलदान, रत्नाचलदान, वैष्णवचलदान तथा शर्कराचलदान आदि दानोंकी विधियाँ विस्तारपूर्वक निरूपित हुई हैं।

भारतीय संस्कृतिमें उत्सवोंका विशेष महत्त्व है। विभिन्न तिथियोंपर तथा पर्वोंपर विभिन्न प्रकारसे उत्सवोंका मनाया जाता है और सभी उत्सवोंकी अलग-अलग महिमा भी है। यहाँ इन उत्सवोंका भी वर्णन हुआ है। होलिकोत्सव, दीपमालिकोत्सव, रक्षाबन्धन, महानवमी-उत्सव, इन्द्र-ध्वजोत्सव आदि मुख्य रूपसे वर्णित हैं। होलिकोत्सवमें दोगली कथा मिलती है। इन उत्सवोंके अतिरिक्त कौटिल्योप, नक्षत्रोप, गणनाथशक्ति आदिके विधान भी दिये गये हैं।

भविष्यपुराणमें व्रत और दान आदिके प्रकरणमें जो फलश्रुतियाँ दी गयी हैं, वे मुख्यतः इहलोक तथा परलोकमें दुःखोंकी निवृत्ति तथा भौगैर्धर्म और स्वर्ग आदि लोकोंकी प्राप्तिसे ही सम्बन्धित हैं। सामान्यतः मनुष्यको जीवनमें दो बातें प्रभावित करती हैं—एक तो दुःखोंका भय और दूसरा सुखका प्रलोभन। इन दोनोंके लिये मनुष्य कुछ भी करनेको तत्पर रहता है। परमात्म-प्रभुमें हमारी आस्था एवं विश्वास जाग्रत् हो और हमारे सम्बन्ध भगवान्से स्थापित हों, इसके लिये अपने शस्त्रों और पुराणोंमें लौकिक तथा पारलौकिक कामनाओंकी

सिद्धि के लिये फलश्रुतियाँ विशेषरूपसे प्रदर्शित हुई हैं। वास्तवमें दुःखोंके भयसे तथा स्वर्ग आदि सुखोंके प्रत्येधनसे जब मानव एक बार व्रत, दान आदि सत्कर्मोंकी ओर प्रवृत्त हो जाता है और उसमें उसे सफलताके साथ आनन्दकी अनुभूति होने लगती है तो आगे चलकर यह सत्कर्म भी उसका स्वभाव और व्यसन बन जाता है और जब भी भगवत्कृपासे ससंग आदिके द्वारा उसे वास्तविक तत्त्वका ज्ञान हो जाता है अथवा मानव-जीवनके मुख्य उद्देश्यको वह जान लेता है तो फिर भगवत्प्राप्तिमें देर नहीं लगती। वस्तुतः मानव-जीवनका मुख्य उद्देश्य भगवत्प्राप्ति ही है और भगवत्प्राप्ति निष्कलम उपासनासे ही सम्भव है। यहाँ व्रत-दान आदिके प्रकरणमें जो फलश्रुतियाँ आयी हैं, वे लौकिक एवं पारलौकिक कामनाओंकी सिद्धिमें तो समर्थ हैं ही, यदि निष्कलमभावसे भगवत्प्राप्त्यर्थ इनका अनुष्ठान किया जाय तो वे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त कर भगवत्प्राप्ति करानेमें भी पूर्ण समर्थ हैं। अतः कल्याणकाम्यी पुरुषोंको ये व्रत-दान आदि कर्म भगवत्प्राप्त्यर्थ निष्कलमरूपमें ही करने चाहिये।

एक बात और ध्यान देनेकी है, जो बुद्धिवादी लोगोंकी दृष्टिमें प्रायः खटकती है—वह यह कि पुराणोंमें जहाँ जिस देवता, व्रत, दान और तीर्थका महत्त्व बतलाया गया है, वहाँ उसीको सर्वोपरि माना है और अन्य सबके द्वारा उसको स्तुति करायी गयी है। गहराईसे विचार न करनेपर यह बात विचित्र-सी प्रतीत होती है, परंतु इसका तात्पर्य यह है कि भगवान्‌का यह लीलाप्रियन ऐसा आश्चर्यमय है कि इसमें एक ही परिपूर्ण भगवान् विभिन्न विभिन्न लीलाख्यापारके लिये और विभिन्न रुचि, स्वभाव तथा अधिकारसम्पन्न साधकोंके कल्याणके लिये अनन्त विभिन्न रूपोंमें नित्य प्रकट है। भगवान्‌के ये सभी रूप नित्य, पूर्णतम और सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, अपनी-अपनी रुचि और निष्ठाके अनुसार जो जिस रूप और नामको इष्ट बनाकर भजता है, वह उसी दिव्य नाम और रूपमें समस्त रूपमय भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है, क्योंकि भगवान्‌के सभी रूप पूर्णतम हैं और उन समस्त रूपोंमें एक ही भगवान् लीला कर रहे हैं। व्रतों तथा दान आदिके

सम्बन्धमें भी यही बात है। अतएव श्रद्धा एवं निष्ठाकी दृष्टिसे साधकोंके कल्याणार्थ जहाँ जिसका वर्णन है, वहाँ उसके सर्वोपरि बताना युक्तियुक्त ही है और परिपूर्णतम भगवत्सत्ताकी दृष्टिसे सत्य तो है ही। तीर्थोंकी बात यह है कि भगवान्‌के विभिन्न नाम-रूपोंकी उपासना करनेवाले संतों, महात्माओं और भक्तोंमें अपनी कल्याणमयी सत्साधनाके प्रतापसे विभिन्न रूपमय भगवान्‌को अपनी-अपनी रुचिके अनुसार नाम-रूपमें अपने ही साधन-स्थानमें प्राप्त कर लिया और वहीं उनकी प्रतिष्ठा की। एक ही भगवान् अपनी पूर्णतम स्वरूपशक्तिके साथ अनन्त स्थानोंमें, अनन्त नाम-रूपोंमें प्रतिष्ठित हुए। भगवान्‌के प्रतिष्ठास्थान ही तीर्थ हैं, जो श्रद्धा, निष्ठा और रुचिके अनुसार सेवन करनेवालेको यथायोग्य फल देते हैं, यही तीर्थ-रहस्य है। इस दृष्टिसे प्रत्येक तीर्थको सर्वोपरि बतलाना सर्वथा उचित ही है।

सब एक है, इसकी पुष्टि तो इसीसे भलीभाँति हो जाती है कि शैव कहे जानेवाले पुराणोंमें विष्णुकी और वैष्णवपुराणोंमें शिवकी महिमा गायी गयी है तथा दोनोंको एक बताया गया है। इसी प्रकार अन्य पुराण-विशेषोंके विशिष्ट प्रधान देवने अपने ही शीर्षकसे अन्य पुराणोंके प्रधान देवताको अपना ही स्वरूप बतलाया है। यह भविष्यपुराण सौरपुराण है, जिसमें भगवान् सूर्यनमस्कारके अनन्त महिमाका वर्णन प्राप्त होता है। परंतु इसी पुराणके अन्तमें अध्याय २०५ में सदाचारका निरूपण हुआ है। इसमें यह बात आयी है—भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे कहते हैं—हमने व्रतोंमें अनेक देवताओंका पूजन आदि कहा, परंतु वास्तवमें इन देवोंमें कोई भेद नहीं। जो ब्रह्मा है, वही विष्णु, जो विष्णु है वही शिव है, जो शिव है वही सूर्य है, जो सूर्य है वही अग्नि, जो अग्नि है वही कार्तिकेय, जो कार्तिकेय है वही गणपति अर्थात् इन देवताओंमें कोई भेद नहीं। इसी प्रकार गौरी, लक्ष्मी, सावित्री आदि शक्तियोंमें भी भेदका लेश नहीं। चाहे जिस देवी-देवताके उद्देश्यसे व्रत करे, पर भेदबुद्धि न रखे, क्योंकि सब जगत् शिव-शक्तिमय है\*।

किसी देवताका आश्रय लेकर नियम-व्रत आदि करे,

परंतु जितने व्रत-दान आदि बताये गये हैं, वे सब आचारयुक्त पुरुषके सफल होते हैं। आचारहीन पुरुषको वेद पवित्र नहीं करते, चाहे उसने स्रष्टा अङ्गोसहित क्यों न पढ़ा हो। जिस भीति फल जमनेपर पक्षियोंके बच्चे घोंसलेको छोड़कर उड़ जाते हैं, उसी भीति आचारहीन पुरुषको वेद भी मृत्युके समय त्याग देते हैं। जैसे अशुद्ध पात्रमें जल अथवा धानके चर्ममें दुग्ध रहनेसे अपवित्र हो जाता है, उसी प्रकार आचारहीनमें स्थित शस्त्र भी

व्यर्थ है। आचार ही धर्म और कुल्यक मूल है—जिन पुरुषोंमें आचार होता है वे ही सत्पुरुष कहलाते हैं। सत्पुरुषोंका जो आचरण है, उसीका नाम सदाचार है। जो पुरुष अपना कल्याण चाहे उसे अवश्य ही सदाचारी होना चाहिये।

भविष्यपुराणमें इन्हीं सब विषयोंका प्रतिपादन बड़े समारोहसे सम्पन्न हुआ है। पाठकोंकी सुविधाके लिये पुराणका एक विहङ्गमावलोकन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

—राधेश्याम खेमका

## अक्षयुपनिषद्

( नेत्ररोगहारी विद्या )

हरिः ॐ । अथ ह साङ्गतिर्भगवानादित्यलोके जगाम । स आदित्यं क्त्वा चक्षुष्मतीविद्याया तमस्तुवन् । ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायशिलेजसे नमः । ॐ स्वेच्छाय नमः । ॐ यहासेनाय नमः । ॐ तमसे नमः । ॐ रजसे नमः । ॐ सत्त्वाय नमः । ॐ असतो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माऽमृतं गमय । इतो भगवाञ्चक्षुस्त्वयः अग्रतिरूपः । विश्वरूपं धृणिर्न जातवेदसं हिरण्यमयं ज्योतीरूपं तपन्तम् । सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः पुरः प्रज्ञानामृत्युत्येष सूर्यः । ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायशिलेजसेऽहोऽवाहिनि वाहिनि स्वाहेति ।

एवं चक्षुष्मतीविद्याया स्तुतः श्रीसूर्यनारायणः सुतीक्ष्णचक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो यो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति । न तस्य कुलेऽप्यो भवति । अहो ब्राह्मणान् प्राहपितृनाथ विद्यासिद्धिर्भवति । य एवं वेद स महान् भवति ।

एक समय भगवान् साङ्गति आदित्यलोकमें गये । वहाँ सूर्यनारायणको प्रणाम करके उन्होंने चक्षुष्मती विद्याके द्वारा उनकी स्तुति की। चक्षु-इन्द्रियके प्रकाशक भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है। आकाशमें विचरण करनेवाले सूर्यनारायणको नमस्कार है। यहासेन ( सहस्रों किरणोंकी धारी सेनावाले ) भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है। तमोगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। रजोगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। सत्त्वगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। भगवन् ! आप मुझे असत्से सत्की ओर ले चलिये, मुझे अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलिये, मुझे मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलिये। भगवान् सूर्य शुचिरूप हैं और वे अप्रतिरूप भी हैं—उनके रूपकी कहीं भी तुलना नहीं है। जो अखिल रूपोंको धारण कर रहे हैं तथा रश्मिभालाओंसे मण्डित हैं, उन जातवेदा ( सर्वज्ञ, अग्रिस्वरूप ) स्वर्णसदृश प्रकाशवाले ज्योतिःस्वरूप और तपनेवाले ( भगवान् चासकरको इम स्मरण करते हैं ) ये सहस्रों किरणोंवाले और शत-शत प्रकारसे सुशोभित भगवान् सूर्यनारायण समस्त प्राणियोंके समस्त ( उनकी भल्यके लिये ) उदित हो रहे हैं। जो हमारे नेत्रोंके प्रकाश हैं, उन अदितिनन्दन भगवान् श्रीसूर्यको नमस्कार है। दिनका भार वहन करनेवाले विश्ववाहक सूर्यदेवके प्रति हमारा सब कुछ सादर समर्पित है।

इस प्रकार चक्षुष्मतीविद्याके द्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् सूर्यनारायण अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—‘जो ब्राह्मण इस चक्षुष्मतीविद्याका नित्य पाठ करता है, उसे आँखका रोग नहीं होता, उसके कुलमें कोई अंधा नहीं होता। आठ ब्राह्मणोंको इसका प्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है। जो इस प्रकार जानता है, वह महान् हो जाता है।



ॐ श्रीगणेशाय नमः

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

## संक्षिप्त भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व

व्यास-शिष्य महर्षि सुमन्तु एवं राजा शतानीकका संवाद, भविष्यपुराणकी महिमा एवं परम्परा,  
सृष्टि-वर्णन, चारों वेद, पुराण एवं चारों वर्णोंकी उत्पत्ति, चतुर्विध सृष्टि,  
काल-गणना, युगोंकी संख्या, उनके धर्म तथा संस्कार

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो ब्रह्मपुद्गीरयेत् ॥

'बदरिकाश्रमनिवासी प्रसिद्ध ऋषि श्रीनारायण तत्त्व श्रीनर (अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके नित्य-सखा नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन), उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनकी लीलाओंके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार कर जय'—आसुरी सम्पत्तियोंका नाश करके अन्तःकरणपर दैवी सम्पत्तियोंको विजय प्राप्त करनेवाले वाल्मीकीय रामायण, महाभारत एवं अन्य सभी इतिहास-पुराणादि सद्ग्रन्थों-का पाठ करना चाहिये ।'

जयति पराशरसुतः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।

धरासायकबल्लगलितं ब्राह्मणधर्ममुतं जगत् पिबति ॥

'पराशरके पुत्र तथा सत्यवतीके हृदयको आनन्दित करनेवाले भगवान् व्यासकी जय हो, जिनके मुखकमलसे निःसृत अमृतमयी वाणीका यह सम्पूर्ण विश्व पान करता है ।'

यो गोशतं कनकगङ्गामयं ददाति

विप्राय वेदविदुषे च बहुसुताय ।

पुण्यां भविष्यसुक्तां शृणुयात् संप्राप्तं

पुण्यं सर्वं भवति तस्य च तस्य चैव ॥

'वेदादि शास्त्रोंके जाननेवाले तथा अनेक विषयोंके मर्मज्ञ विद्वान् ब्राह्मणको स्वर्णजटित सींगोंवाली सैकड़ों गौओंको दान देनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, ठीक उतना ही पुण्य इस भविष्य-महापुराणकी उत्तम कथाओंके श्रवण करनेसे प्राप्त होता है ।'

एक समय व्यासजीके शिष्य महर्षि सुमन्तु तथा वसिष्ठ पराशर, जैमिनि, याज्ञवल्क्य, गौतम, वैशम्पायन, शौनक, अङ्गिरा और भारद्वाजादि महर्षिगण पाण्डववंशमें समुत्पन्न महाबलशाली राजा शतानीककी सभामें गये। राजाने उन ऋषियोंका अर्घ्योदिसे विधिवत् स्वागत-सत्कार किया और उन्हें उत्तम आसनोपर बैठाया तथा भलीभाँति उनका पूजन कर विनयपूर्वक इस प्रकार प्रार्थना की—'हे महात्माओं! आपलोगोंके आगमनसे मेरा जन्म सफल हो गया। आपलोगोंके स्पर्णमात्रसे ही मनुष्य पवित्र हो जाता है, फिर आपलोग मुझे दर्शन देनेके लिये यहाँ पधारें हैं, अतः आज मैं धन्य हो गया। आपलोग कृपा करके मुझे उन पवित्र एवं पुण्यमयी धर्मशास्त्रकी कथाओंको सुनायें, जिनके सुननेसे मुझे परमगतिकी प्राप्ति हो ।'

ऋषियोंने कहा—'हे राजन्! इस विषयमें आप हम सबके गुरु, साक्षात् नारायणस्वरूप भगवान् वेदव्याससे निवेदन करें। वे कृपालु हैं, सभी प्रकारके शास्त्रोंके और विद्याओंके ज्ञाता हैं। जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है, उस 'महाभारत' ग्रन्थके रचयिता भी यही है ।'

राजा शतानीकने ऋषियोंके कथनानुसार सभी शास्त्रोंके जाननेवाले भगवान् वेदव्याससे प्रार्थनापूर्वक जिज्ञासा की—'प्रभो! मुझे आप धर्ममयी पुण्य-कथाओंका श्रवण करायें, जिससे मैं पवित्र हो जाऊँ और इस संसार-सागरसे मेरा

१-'जय' शब्दकी व्याख्या प्रायः कई पुराणोंमें आयी है। भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वके चौथे अध्याय (उल्लेख ८६ से ८८) में इसे विस्तारसे समझाया गया है, वहाँ देखना चाहिये।

उद्धार हो जाय।

**व्यासजीने कहा—**‘एजन् ! यह मेरा शिष्य सुमन्तु महान् तेजस्वी एवं समस्त शास्त्रीका ज्ञाता है, यह आपकी जिज्ञासाको पूर्ण करेगा।’ मुनियोंने भी इस बातका अनुमोदन किया। तदनन्तर राजा शतानीकने महामुनि सुमन्तुसे उपदेश करनेके लिये प्रार्थना की—हे द्विजश्रेष्ठ ! आप कृपाकर उन पुण्यमयी कथाओंका वर्णन करें, जिनके सुननेसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और शुभ फलोंकी प्राप्ति होती है।

**महामुनि सुमन्तु बोले—**एजन् ! धर्मशास्त्र सबको पवित्र करनेवाले हैं। उनके सुननेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। बताओ, तुम्हारी क्या सुननेकी इच्छा है ?

**राजा शतानीकने कहा—**ब्राह्मणदेव ! वे कौनसे धर्मशास्त्र हैं, जिनके सुननेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है।

**सुमन्तु मुनि बोले—**एजन् ! मनु, विष्णु, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शतातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशान्वा, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शङ्ख, लिखित, हारीत तथा अत्रि आदि ऋषियोंद्वारा रचित मन्वादि बहुत-से धर्मशास्त्र हैं। इन धर्मशास्त्रोंको सुनकर एवं उनके रहस्योंको भलीभाँति हृदयङ्गमकर मनुष्य देवलोकमें जाकर परम आनन्दको प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

**शतानीकने कहा—**प्रभो ! जिन धर्मशास्त्रोंको आपने कहा है, इन्हें मैंने सुना है। अब इन्हें पुनः सुननेकी इच्छा नहीं है। कृपाकर आप चारों वर्णोंके कल्याणके लिये जो उपयुक्त धर्मशास्त्र हो उसे मुझे बतायें।

**सुमन्तु मुनि बोले—**हे महाबाहो ! संसारमें निमग्न प्राणियोंके उद्धारके लिये अठारह महापुराण, श्रीरामकथा तथा महाभारत आदि सद्ग्रन्थ नौकारूपी साधन हैं। अठारह महापुराणों तथा आठ प्रकारके व्याकरणोंको भलीभाँति समझकर सत्यवतीके पुत्र वेदव्यासजीने ‘महाभारतसंहिता’की रचना की, जिसके सुननेसे मनुष्य ब्राह्मणोंके पापोंसे मुक्त हो जाता है। इनमें आठ प्रकारके व्याकरण ये हैं—ब्राह्म, ऐन्द्र, याम्य, रौद्र, वायव्य, वातुण, सावित्र्य तथा वैष्णव। ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य,

ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड तथा ब्रह्माण्ड—ये अठारह महापुराण हैं। ये सभी चारों वर्णोंके लिये उपकारक हैं। इनमेंसे आप क्या सुनना चाहते हैं ?

**राजा शतानीकने कहा—**हे विप्र ! मैंने महाभारत सुना है तथा श्रीरामकथा भी सुनी है, अन्य पुराणोंको भी सुना है, किन्तु भविष्यपुराण नहीं सुना है। अतः विप्रश्रेष्ठ ! आप भविष्य-पुराणको मुझे सुनायें, इस विषयमें मुझे महत् कौतूहल है।

**सुमन्तु मुनि बोले—**एजन् ! आपने बहुत उत्तम बात पूछी है। मैं आपको भविष्यपुराणकी कथा सुनाता हूँ, जिसके श्रवण करनेसे ब्राह्मण आदि बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं और अधर्मेष्टादि यज्ञोंका पुण्यफल प्राप्त होता है तथा अन्तमें सूर्यलोककी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं। यह उत्तम पुराण पहले ब्रह्माजीद्वारा कहा गया है। विद्वान् ब्राह्मणको इसका सम्यक् अध्ययनकर अपने शिष्यों तथा चारों वर्णोंके लिये उपदेश करना चाहिये। इस पुराणमें श्रौत एवं स्मार्त सभी धर्मोंका वर्णन हुआ है। यह पुराण परम मङ्गलप्रद, सद्बुद्धिको बढ़ानेवाला, यश एवं कीर्ति प्रदान करनेवाला तथा परमपद—मोक्ष प्राप्त करनेवाला है—

**इदं स्वस्वयने श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम् ।**

**इदं यशस्यं सततमिदं निःशेषं परम् ॥**

(ब्राह्मण १।७५)

इस भविष्यमहापुराणमें सभी धर्मोंका संनिवेश हुआ है तथा सभी वर्गोंके गुणों और दोषोंके फलोंका निरूपण किया गया है। चारों वर्णों तथा आश्रमोंके सदाचारका भी वर्णन किया गया है, क्योंकि ‘सदाचार ही श्रेष्ठ धर्म है’ ऐसा श्रुतियोंमें कहा है, इसीलिये ब्राह्मणको नित्य आचारका पालन करना चाहिये, क्योंकि सदाचारसे विहीन ब्राह्मण किसी भी प्रकार वेदके फलको प्राप्त नहीं कर सकता। सदा आचारका पालन करनेपर तो वह सम्पूर्ण फलोंका अधिकारी हो जाता है, ऐसा कहा गया है। सदाचारको ही मुनियोंने धर्म तथा तपस्याओंका मूल आधार माना है, मनुष्य भी इसीका आश्रय लेकर धर्माचरण करते हैं। इस प्रकार इस भविष्यमहापुराणमें आचारका वर्णन किया गया है<sup>१</sup>। तीनों लोकोंकी उत्पत्ति,

विवाहादि संस्कार-विधि, स्त्री-पुरुषोंके लक्षण, देवपूजाका विधान, राजाओंके धर्म एवं कर्तव्यका निर्णय, सूर्य-स्तायना, विष्णु, रुद्र, दुर्गा तथा सत्यनारायणका माहात्म्य एवं पूजा-विधान, विविध तीर्थोंका वर्णन, आपद्धर्म तथा श्राद्ध-विधि, संध्याविधि, स्नान, तर्पण, वैशदेव, भोजनविधि, जातिधर्म, कुलधर्म, वेदधर्म तथा यज्ञ-मण्डलमें अनुष्ठित होनेवाले विविध यज्ञोंका वर्णन हुआ है।

हे कुरुश्रेष्ठ शतानीक ! इस महापुरुषको ब्रह्माजीने शंकरको, शंकरने विष्णुको, विष्णुने नारदको, नारदने इन्द्रको, इन्द्रने पराशरको तथा पराशरने व्यासको मुन्यता और व्याससे मैंने प्राप्त किया। इस प्रकार परम्परा-प्राप्त इस उत्तम भविष्यमहापराणको मैं आपसे कहता हूँ, इसे सुने।

इस भविष्यमहापुराणकी श्लोक-संख्या पचास हजार है। इसे भक्तिपूर्वक सुननेवाला व्यक्ति, वृद्धि तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको प्राप्त करता है। ब्रह्मजीद्वारा प्रोक्त इस महापुराणमें पाँच पर्व कहें गये हैं—(१) साह्य, (२) वैष्णव, (३) शैव, (४) लक्ष्मण तथा (५) प्रतिसर्गपर्व। पुराणके सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित—ये पाँच लक्षण बताये गये हैं तथा इसमें चौदह विद्याओंका भी वर्णन है। चौदह विद्याएँ इस प्रकार हैं—यज्ञ वेद (शुक्ल, यजुः, साम, अथर्व), छः वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष), मीमांसा, न्याय, पुरुष तथा धर्मशास्त्र। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा अर्थशास्त्र— इन चारोंको मिलानेसे अठारह विद्याएँ होती हैं।

**सुपन्तु मुनि पुनः बोले—**हे राजन् ! अब मैं भूतसर्ग अर्थात् सम्पत् प्राणियोंकी उत्पत्तिको वर्णन करता हूँ, जिसके सुननेसे सभी प्राणियों निवृत्ति हो जाती है और मनुष्य परम शान्तिको प्राप्त करता है।

हे तात ! पूर्वजालमें यह सारा संसार अन्धकारसे व्याप्त था, कोई पदार्थ दृष्टिगत नहीं होता था, अविज्ञेय था, अतर्क्य था और प्रसुप्त-सा था। उस समय सूक्ष्म अतीन्द्रिय और सर्वभूतमय उस परब्रह्म परमात्मा भगवान् भास्करने अपने शरीरसे नानाविध सृष्टि करनेकी इच्छा की और सर्वप्रथम परमात्माने जलको उत्पन्न किया तथा उसमें अपने वीर्यरूप शक्तिव्य आधान किया। इससे देवता, असुर, मनुष्य आदि सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ। वह वीर्य जलमें गिरनेसे अत्यन्त प्रकाशमान सुवर्णवत् अण्ड हो गया। उस अण्डके मध्यसे सृष्टिकर्ता चतुर्मुख लोकपितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए।

नार (भगवान्) से जलकी उत्पत्ति हुई है, इसलिये जलको नार कहते हैं। वह नार जिसका पहले अयन (स्थान) हुआ, उसे नारायण कहते हैं। ये सदसद्रूप, अव्यक्त एवं नित्यकारण है, इनसे जिस पुरुष-विशेषकी सृष्टि हुई, वे लोकमें ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हुए। ब्रह्माजीने दीर्घकालतक तपस्या की और इस अण्डके दो भाग कर दिये। एक भागमें भूमि और दूसरेसे आकाशकी रचना की, मध्यमें स्वर्ग, आठों दिशाओं तथा कलकल निवास-स्थान अर्थात् समुद्र बनाया। फिर महाद्वि तत्त्वोंकी तथा सभी प्राणियोंकी रचना की।

परमात्माने सर्वप्रथम आकाशको उत्पन्न किया और फिर क्रमसे वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन तत्वोंकी रचना की। सृष्टिके आदिमें ही ब्रह्माजीने उन सबके नाम और कर्म केटोके निर्देशानुसार ही नियत कर उनकी अलग-अलग संस्थाएँ बना दीं। देवताओंके तुलित आदि गण, ज्योतिष्टोमादि सनातन यज्ञ, ग्रह, नक्षत्र, नदी, समुद्र, पर्वत, सम एवं विषम भूमि आदि उत्पन्न कर कालके विभागों (संवत्सर, दिन, मास आदि) और ऋतुओं आदिकी रचना की। क्रम, क्रोध आदिकी रचनाकर विविध कर्माँके भद्रसद्विवेकके लिये धर्म और

आचार्यद्वयैः विद्महे न वेदाङ्गमन्त्रैः । आचार्येण च संयुक्तः सङ्गृहीतस्तथाह ॥

एषामाधारतो दुष्टत्वा धर्मस्य धनस्य गतिम् । सर्वस्य ज्ञानस्य साधनाधारे जायते धर्मः ।

अने च मानव गजवाचा संश्रिता मदा । एवमिह पश्ये त आचारान् त कौलेय ॥ (साधपर्व १।८१-८४)

१-वर्तमान समयमें भविष्यपूर्णताका जो संकेतका उपलब्ध है उसमें ज्ञान, धन्यता, प्रतिभामय तथा उत्तर नामक चार सग्रे मिलते हैं और इत्येक-संग्रहा भी पंचम हाताके स्थानमें लगभग अनुसृत्य हाता है। इसमें भी कुछ अंग प्रतिभामय माने जाते हैं।

२-सर्गः॥ प्रलिसर्गः॥ वेदो मानवस्वरूपः ॥

खंडान्धर्मात्तु चैव पराणं पञ्चतन्त्रम् । पञ्चतन्त्रं चैव पञ्चतन्त्रम् ।

कर्मसन्देहः ॥ (आश्वयुज्यं २ । ४-५)

अधर्मकी रचना की और नानाविध प्राणिजगत्की सृष्टिकर उनको सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वोंसे संयुक्त किया। जो कर्म जिसने किया था तदनुसार उनकी (इन्द्र, चन्द्र, सूर्य आदि) पदोंपर नियुक्ति हुई। हिंसा, अहिंसा, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य आदि जीवोंका जैसा स्वभाव था, वह वैसे ही उनमें प्रविष्ट हुआ, जैसे विभिन्न वस्तुओंमें वृक्षोंमें पुष्प, फल आदि उत्पन्न होते हैं।

इस लोककी अभिवृद्धिके लिये ब्रह्माजीने अपने मुखसे ब्राह्मण, बाहुओंसे शत्रिय, ऊरु अर्थात् जंघासे वैश्य और चरणोंसे शूद्रोंको उत्पन्न किया। ब्रह्माजीके चारों मुखोंसे चार वेद उत्पन्न हुए। पूर्व-मुखसे ऋग्वेद प्रकट हुआ, उसे वसिष्ठ मुनिने ग्रहण किया। दक्षिण-मुखसे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ, उसे महर्षि याज्ञवल्क्यने ग्रहण किया। पश्चिम-मुखसे सामवेद निःसृत हुआ, उसे गौतमऋषिने धारण किया और उत्तर-मुखसे अथर्ववेद प्रादुर्भूत हुआ, जिसे लोकगणित महर्षि शौनकेने ग्रहण किया। ब्रह्माजीके लोकप्रसिद्ध पञ्चम (ऊर्ध्व) मुखसे अठारह पुराण, इतिहास और यमादि स्मृति-शास्त्र उत्पन्न हुए<sup>१</sup>।

इसके बाद ब्रह्माजीने अपने देहके दो भाग किये। दाहिने भागको पुरुष तथा बायें भागको स्त्री बनाया और उसमें विराट् पुरुषकी सृष्टि की। उस विराट् पुरुषने नाना प्रकारकी सृष्टि रचनेकी इच्छासे बहुत कालतक तपस्या की और सर्वप्रथम दस ऋषियोंको उत्पन्न किया, जो प्रजापति कहलाये। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) नारद, (२) भृगु, (३) वहिष्ठ, (४) प्रचेता, (५) पुलह, (६) क्रतु, (७) पुलस्त्य, (८) अत्रि, (९) अङ्गिरा और (१०) मरीचि। इसी प्रकार अन्य महतेजस्वी ऋषि भी उत्पन्न हुए। अनन्तर देवता, ऋषि, दैत्य और राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, पितर, मनुष्य, नाग, सर्प आदि योनियोंके अनेक गण उत्पन्न किये और उनके रहनेके स्थानोंको बनाया। विदुत्, मेष, वज्र, इन्द्रधनुस्,

धूमकेतु (पुच्छल तारे), उल्का, निर्घात (बादलोंकी गड़गड़ाहट) और छंटे-बड़े नक्षत्रोंको उत्पन्न किया। मनुष्य, किन्नर, अनेक प्रकारके मत्स्य, वराह, पक्षी, हाथी, घोड़े, पशु, मृग, कृमि, कीट, पतंग आदि छंटे-बड़े जीवोंको उत्पन्न किया। इस प्रकार उन भास्करदेवने त्रिलोकोंकी रचना की।

हे राजन् ! इस सृष्टिकी रचनाकर सृष्टिमें जिन-जिन जीवोंका जो-जो कर्म और क्रम कहा गया है, उसका मैं वर्णन करता हूँ, श्रवण सुने।

हाथी, ग्वाल, मृग और विविध पशु, पिशाच, मनुष्य तथा राक्षस आदि जगद्युज (गर्भसे उत्पन्न होनेवाले) प्राणी हैं। मत्स्य, बाहुव्ये, सर्प, मगर तथा अनेक प्रकारके पक्षी अण्डज (अण्डोंसे उत्पन्न होनेवाले) हैं। मकली, मच्छर, जै, खटमल आदि जीव स्फोटज हैं अर्थात् परमेश्वरकी उष्मासे उत्पन्न होते हैं। भूमिको उद्देह कर उत्पन्न होनेवाले वृक्ष, ओषधीयाँ आदि उद्भिज्ज सृष्टि हैं। जो फलके पक्वनेतक रहें और पीछे सुख जायें या नष्ट हो जायें तथा बहुत फूल और फलवाले वृक्ष हैं वे ओषधि कहलाते हैं और जो पुष्पके आये बिना ही फलते हैं, वे वनस्पति हैं तथा जो फलते और फलते हैं उन्हें वृक्ष कहते हैं। इसी प्रकार गुल्म, वल्ग्वे, वितान आदि भी अनेक भेद होते हैं। ये सब बीजसे अथवा काण्डसे अर्थात् वृक्षकी छोटी-सी शाखा काटकर भूमिमें गाड़ देनेसे उत्पन्न होते हैं। ये वृक्ष आदि भी घेतना-शक्तिसम्पन्न हैं और इन्हें सुख-दुःखका ज्ञान रहता है, परंतु पूर्वजन्मके कर्मोंके कारण तमोगुणसे आच्छन्न रहते हैं, इसी कारण मनुष्योंकी भाँति घातघात आदि करनेमें समर्थ नहीं हो पाते<sup>२</sup>।

इस प्रकार यह अचिन्त्य चराचर-जगत् भगवान् भास्करसे उत्पन्न हुआ है। जब यह परमात्मा निद्राका आश्रय ग्रहण कर शयन करता है, तब यह संसार उसमें लीन हो जाता है और जब निद्राका त्याग करता है अर्थात् जागता है, तब सब सृष्टि उत्पन्न होती है और समस्त जीव पूर्वकर्मानुसार अपने-अपने

१-यत्पुरुषं महाबाहो पञ्चमं लोकविभुम् । अष्टदशं पुण्यनि संविद्यायानि धारय ॥

निर्गन्धनि ततस्तस्मात्पुनरात् कुरुकुलं दह । तथाप्यः स्मृतपञ्चानि यन्त्या लोकगणितः ॥ (ब्राह्मणपर्व २ : ५६-५७)

२-ओषधयः फलपक्वानां नानाविधप्रलंघनः । अपुष्पा फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ॥

पुष्पितः परित्यज्य वृक्षानुभयतः स्मृतः । तमस्य बहुकारणं वेदितः कर्मोन्मुक्तः ॥

अनसिञ्ज भवन्त्येते मुखदुःखार्थवितः ।

(ब्राह्मणपर्व २ : ७३—७५)



कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं। वह अव्यय परमात्मा सम्पूर्ण बराबर संसारको जाग्रत और शयन दोनों अवस्थाओंद्वारा बार-बार उत्पन्न और विनष्ट करता रहता है।

परमेश्वर कल्पके प्रारम्भमें सृष्टि और कल्पके अन्तमें प्रलय करते हैं। कल्प परमेश्वरका दिन है। इस कारण परमेश्वरके दिनमें सृष्टि और रात्रिमें प्रलय होता है। हे राजा शतानीक ! अब आप काल-गणनाको सुने—

अठारह निमेष (चलक गिरनेके समयको निमेष कहते हैं) की एक काष्ठा होती है अर्थात् चित्तने समयमें अठारह बार पल्लवकी गिरना हो, उतने कालको काष्ठा कहते हैं। तीस काष्ठाकी एक कला, तीस कलाका एक क्षण, बारह क्षणका एक मुहूर्त, तीस मुहूर्तका एक दिन-रात, तीस दिन-रातका एक महीना, दो महीनेकी एक ऋतु, तीन ऋतुका एक अयन तथा दो अयनोंका एक वर्ष होता है। इस प्रकार सूर्यमण्डलके द्वारा दिन-रात्रिका काल-विभाग होता है। सम्पूर्ण जीव रात्रिके विश्राम करते हैं और दिनमें अपने-अपने कर्ममें प्रवृत्त होते हैं।

वितरीक दिन-रात मनुष्योंके एक महीनेके बराबर होता है अर्थात् शुरु पक्षमें वितरीकी रात्रि और कृष्ण पक्षमें दिन होता है। देवताओंका एक अष्टोत्तर (दिन-रात) मनुष्योंके एक वर्षके बराबर होता है अर्थात् उत्तरायण दिन तथा दक्षिणायन रात्रि कही जाती है। हे राजन् ! अब आप ब्रह्माजीके रत-दिन और एक-एक युगके प्रमाणको सुने—सत्ययुग चार हजार वर्षका है, उसके संध्याशके चार सौ वर्ष तथा संध्याशके चार सौ वर्ष मिलकर इस प्रकार चार हजार आठ सौ दिव्य वर्षोंका एक सत्ययुग होता है<sup>१</sup>। इसी प्रकार त्रेतायुग तीन हजार वर्षोंका तथा संध्या और संध्याशके छः सौ वर्ष कुल तीन हजार छः सौ

वर्ष, द्वापर दो हजार वर्षोंका संध्या तथा संध्याशके चार सौ वर्ष कुल दो हजार चार सौ वर्ष तथा कलियुग एक हजार वर्ष तथा संध्या और संध्याशके दो सौ वर्ष मिलकर बारह सौ वर्षोंके मानका होता है। ये सब दिव्य वर्ष मिलकर बारह हजार दिव्य वर्ष होते हैं। यही देवताओंका एक युग कहलता है।

देवताओंके हजार युग होनेसे ब्रह्माजीका एक दिन होता है और यही प्रमाण उनकी रात्रिका है। जब ब्रह्माजी अपनी रात्रिके अन्तमें सोकर उठते हैं तब सत्-असत्-रूप मनको उत्पन्न करते हैं। वह मन सृष्टि करनेको इच्छासे विकारको प्राप्त होता है, तब उससे प्रथम आकाश-तत्त्व उत्पन्न होता है। आकाशका गुण शब्द कहा गया है। विकारयुक्त आकाशसे सब प्रकारके गन्धको बहन करनेवाले पवित्र वायुकी उत्पत्ति होती है, जिसका गुण स्पर्श है। इसी प्रकार विकारवान् वायुसे अन्धकारका नाश करनेवाला प्रकाशयुक्त तेज उत्पन्न होता है, जिसका गुण रूप है। विकारवान् तेजसे जल, जिसका गुण रस है और जलसे गन्धगुणवाले पृथ्वी उत्पन्न होती है। इसी प्रकार सृष्टिका क्रम चलता रहता है।

पूर्वमें बारह हजार दिव्य वर्षोंका जो एक दिव्य युग बताया गया है, वैसे ही एकहत्तर युग होनेसे एक मन्वन्तर होता है। ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर व्यतीत होते हैं।

सत्ययुगमें धर्मिक चारों पाद वर्तमान रहते हैं अर्थात् सत्ययुगमें धर्म चारों चरणोंसे (अर्थात् सर्वाङ्गपूर्ण) रहता है। फिर त्रेता आदि युगोंमें धर्मका बल घटनेसे धर्म क्रमसे एक-एक चरण घटता जाता है,—अर्थात् त्रेतामें धर्मिक तीन चरण, द्वापरमें दो चरण तथा कलियुगमें धर्मिक एक ही चरण बचा रहता है और तीन चरण अधर्मिक रहते हैं। सत्ययुगके

१-एक संज्ञान्तिसे दूसरी सूर्य-संज्ञान्तिकके समयको सौर नाम कहते हैं। सौर जीव मानके एक सौर वर्ष १०० है और मनुष्य-मानका यही एक सौर वर्ष देवताओंका एक अष्टोत्तर होता है। ऐसे ही तीस अष्टोत्तरोंका एक माय और बारह मायोंका एक दिव्य वर्ष होता है।

दोनों संध्याओंसहित युगोंका मान	दिव्य वर्षोंमें	सौर वर्षोंमें
१-सत्ययुगका मान	४,८००	१७,२८,०००
२-त्रेतायुगका मान	३,६००	१२,९६,०००
३-द्वापरयुगका मान	२,४००	८,६४,०००
४-कलियुगका मान	१,२००	४,३२,०००
महायुग या एक चतुर्दशी—	१२,०००	४२,२०,००० वर्ष

मनुष्य धर्मात्मा, नीरोग, सत्यवादी होते हुए चार सौ वर्षोंतक जीवन धारण करते हैं। फिर व्रता आदि युगोंमें इन सभी वर्षोंका एक चतुर्थांश न्यून हो जाता है, यथा व्रताके मनुष्य तीन सौ वर्ष, द्वापरके दो सौ वर्ष तथा कलियुगके एक सौ वर्षतक जीवन धारण करते हैं। इन चारों युगोंके धर्म भी भिन्न-भिन्न होते हैं। सत्ययुगमें तपस्या, व्रतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान प्रधान धर्म माना गया है।

परम दृष्टिमान् परमेश्वरने सृष्टिकी रक्षाके लिये अपने मुख, भुजा, ऊरु और चरणोंमें क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चार वर्णोंको उत्पन्न किया और उनके लिये अलग-अलग कर्मोंकी कल्पना की। ब्राह्मणोंके लिये पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना यज्ञ कराना तथा दान देना और दान लेना—ये छः कर्म निश्चित किये गये हैं। पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना तथा प्रजाओंका पालन आदि कर्म क्षत्रियोंके लिये नियत किये गये हैं। पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, पशुओंकी रक्षा करना, खेती-व्यापारमें धनार्जन करना—ये काम वैश्योंके लिये निर्धारित किये गये और इन तीनों वर्णोंकी सेवा करना—यह एक मुख्य कर्म शूद्रोंका नियत किया गया है।

पुरुषकी देहमें नाभिसे ऊपरका भाग अल्पना पवित्र माना गया है। उसमें भी मुख प्रधान है। ब्राह्मण ब्रह्मके मुख (उत्तमाङ्ग) से उत्पन्न हुआ है, इसीलिये ब्राह्मण सबसे उत्तम है, यह वेदकी वाणी है। ब्राह्मणोंने बहुत कष्टतक तपस्या करके सबसे पहले देवता और पितरोंकी हव्य तथा जव्य पहुँचानेके लिये और सम्पूर्ण संसारको रक्षा करने-केलु ब्राह्मणकी उत्पत्ति किया। शिशोभागमें उत्पन्न होने और वेदको धारण करनेके कारण सम्पूर्ण संसारका स्वामी धर्मतः ब्राह्मण ही है। सब भूतों (स्थल-जलमय पदार्थों) में प्राणी (कीट आदि) श्रेष्ठ है, प्राणियोंमें बुद्धिसे व्यवहार करनेवाले पशु आदि श्रेष्ठ हैं। बुद्धि रखनेवाले जीवोंमें मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्योंमें ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमें विद्वान्, विद्वानोंमें कृतबुद्धि और कृतबुद्धियोंमें कर्म करनेवाले तथा इनसे ब्रह्मन्ते—ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणका जन्म धर्म-सम्पादन करनेके लिये है और धर्माचरणसे ब्राह्मण ब्रह्मत्व तथा ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

राजा शतानीकने पूछा—हे महामुने! ब्रह्मलोक और ब्रह्मत्व अति दुर्लभ हैं फिर ब्राह्मणमें कौनसे ऐसे गुण होते हैं,

जिनके कारण वह इन्हें प्राप्त करता है। कृपाकर आप इसका वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—हे राजन्! आपने बहुत ही उत्तम बात पूछी है, मैं आपको वे बातें बताता हूँ, उनके ध्यानपूर्वक सुने।

जिस ब्राह्मणके वेदादि शास्त्रोंमें निर्दिष्ट गर्भाधान, पुंसवन आदि अड़तालसे संस्कार विधिपूर्वक हुए हों, वही ब्राह्मण ब्रह्मलोक और ब्रह्मत्वको प्राप्त करता है। संस्कार ही ब्रह्मत्व-प्राप्तिका मुख्य कारण है, इसमें कोई संदेह नहीं।

राजा शतानीकने पूछा—महामन्! वे संस्कार कौनसे हैं, इस विषयमें मुझे महान् कष्टतुल्य हो रहा है। कृपाकर आप इन्हें बतायें।

सुमन्तुजी बोले—राजन्! वेदादि शास्त्रोंमें जिन संस्कारोंका निर्देश हुआ है उनका मैं वर्णन करता हूँ—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, चार प्रकारके वेदव्रत, वेदस्नान, विवाह, पञ्चमहायज्ञ (जिनमें देवता, पितरों, मनुष्य, भूत और ब्रह्मकी तृप्ति होती है), सप्तपाकयज्ञ-संस्था—अष्टकवृद्ध, पार्वण, श्रावणी, अग्रहायणी, चैत्री (शूलमास) तथा अश्वयुजी, सप्तहोविंश-संस्था—अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्श-चैत्रमास, चातुर्मास, निरुद्धपशुबन्ध, सौत्रामणी और सप्तसोम-संस्था—आग्निहोत्र, अत्याग्निहोत्र, उषध, षोडशै, वाजपेय, अतिरात्र और आश्वेयीय—ये चालीस ब्राह्मणके संस्कार हैं। इनके साथ ही ब्राह्मणमें आठ आत्मगुण भी अवश्य होने चाहिये, जिससे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। ये आठ गुण इस प्रकार हैं—

अनसूया इया क्षान्तिरनायासं च मङ्गलम् ।

अकार्षण्यं तथा शौचमस्पृहा च कुरुह्य ॥

(ब्राह्मणर्व २।१५५)

‘अनसूया (दूसरेके गुणोंमें दोष-बुद्धि नहीं रखना), दया, क्षमा, अनायास (किसी सामान्य बातके पीछे जानकी छाड़ी न लगाना), मङ्गल (माङ्गलिक वस्तुओंका धारण), अकार्षण्य (दोन वचन नहीं बोलना और अत्यन्त कृपण न बनना), शौच (वाङ्माध्यन्तकी शुद्धि) और अस्पृहा—ये आठ आत्मगुण हैं।’ इनकी पूरी परिभाषा इस प्रकार है—

गुणोंके गुणोंको न छिपाना अर्थात् प्रकट करना, अपने गुणोंको प्रकट न करना तथा दूसरेके दोषोंको देखकर प्रसन्न न होना अनसूया है। अपने-परायमें, मित्र और शत्रुमें अपने समान व्यवहार करना और दूसरेका दुःख दूर करनेकी इच्छा रखना दया है। मन, वचन अथवा शरीरसे कोई दुःख भी पहुँचाये तो उसपर क्रोध और वैर न करना क्षमा है। अभक्ष्य वस्तुका भक्षण न करना, निन्दित पुरुषोंका सङ्ग न करना और सदाचरणमें स्थित रहना शौच कहा जाता है। जिन शुभ कर्मोंके करनेसे शरीरको कष्ट होता है, उस कर्मको हटात् नहीं करना चाहिये, यह अनायास है। नित्य अच्छे कार्योंको करना और

बुरे कर्मोंका परित्याग करना—यह मङ्गल-गुण कहलाता है। बड़े कष्ट एवं परिश्रमसे न्ययोपार्जित धनसे उदारतापूर्वक दान-बहुत नित्य दान करना अकार्पण्य है। ईश्वरकी कृपासे प्राप्त धोड़ी-सी सम्पत्तिमें भी संतुष्ट रहना और दूसरेके धनकी किंचित् भी इच्छा न रखना अस्पृहा है<sup>१</sup>। इन आठ गुणों और पूर्वोक्त संस्कारोंसे जो ब्राह्मण संस्कृत हो वह ब्रह्मलोक तथा ब्रह्मत्वको प्राप्त करता है। जिसकी गर्भ-शुद्धि हो, सब संस्कार विधिकत् सम्पन्न हुए हों और वह वर्षाश्रम-धर्मका पालन करता हो तो उसे अवश्य मुक्ति प्राप्त होती है।

(अध्याय १-२)



## गर्भाधानसे यज्ञोपवीतपर्यन्त संस्कारोंकी संक्षिप्त विधि, अन्नप्राशना तथा भोजन-विधिके प्रसंगमें धनवर्धनकी कथा, हावोंके तीर्थ एवं आचमन-विधि

राजा शतानीकने कहा—हे मुने। आपने मुझे जातकर्मोंके संस्कारोंके विषयमें बताया, अब आप इन संस्कारोंके लक्षण तथा चारों वर्ण एवं आश्रमोंके धर्म बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, बृहद्वक्त्र तथा यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंके करनेसे द्विजातियोंके ब्रौह्म-सम्बन्धी तथा गर्भ-सम्बन्धी सभी दोष निवृत्त हो जाते हैं। वेदाध्ययन, व्रत, होम, वैविध्य व्रत, देवर्षि-पितृ-तर्पण, पुत्रोत्पादन, पञ्च महायज्ञ और ज्योतिष्टोमादि यज्ञोंके द्वारा यह शरीर ब्रह्म-प्राप्तिके योग्य हो जाता है। अब इन संस्कारोंकी विधिको आप संक्षेपमें सुने—

पुरुषका जातकर्म-संस्कार नालच्छेदनसे पहिले किया जाता है। इसमें वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक बालकको मुकुर्ण,

मधु और घृतका प्राशन कराया जाता है। दसवें दिन, बारहवें दिन, अठारहवें दिन अथवा एक मास पूरा होनेपर शुभ तिथि-मुहूर्त और शुभ नक्षत्रमें नामकरण-संस्कार किया जाता है। ब्राह्मणका नाम मङ्गलवाचक रखना चाहिये, जैसे शिवशर्मा। क्षत्रियका बलवाचक जैसे इन्द्रवर्मा। वैश्यका धनयुक्त जैसे धनवर्धन और शूद्रका भी यथाविधि देवतामादि नाम रखना चाहिये। श्रियोक्त नाम ऐसा रखना चाहिये, जिसके बोलनेमें कष्ट न हो, क्रूर न हो, अर्थ स्पष्ट और अच्छा हो, जिसके सुननेसे मन प्रसन्न हो तथा मङ्गलमूचक एवं आशीर्वादयुक्त हो और जिसके अन्तमें आकर, ईकार आदि दीर्घ स्वर हों। जैसे यज्ञोदादेयी आदि।

जन्मसे बारहवें दिन अथवा चतुर्थ मासमें बालकको धर्मसे बाहर निकालना चाहिये, इसे निष्क्रमण कहते हैं। छठे मासमें बालकका अन्नप्राशन-संस्कार करना चाहिये। पहले या

१-१ गुणान् गुणानो हनि न सौत्यात्प्राणवर्धयि । प्रवृणोते नान्यदर्थैर्नमूना प्रकीर्तितम् ॥

अपरे बभूवुर्गो का मित्रे द्वेष्टि का शत्रो । अत्यवद्वर्ते यत् शत्रो न स दयः कीर्तितम् ॥

कावा मर्षसि कश्ये य दुःखेनोत्पदिनेन च । न कुप्यति न यात्रेति स स्वयं कीर्तितम् ॥

अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चापनिन्दितः । आचो न त्वयमन्तरः प्रीत्यमन्त्रः प्रकीर्तितम् ॥

शरीरं वेदज्ञो येन शुभेनार्थे य कर्मणा । अल्पतः तत्र कुर्वति अन्यायः स उच्यते ॥

प्रशस्ताचरणं नित्यमन्नप्राशनविर्वाजम् । एतद्धि मङ्गलं श्रेष्ठं मुनीर्निरूपयन्ति ॥

सौकर्यदपि प्रदातव्यमर्पितेनान्नप्राशनम् । अन्नप्राशने चकिञ्चित्कार्यं न लघुच्यते ॥

यद्योरग्रेन संतुष्टः स्वल्पेनाप्यथ वन्दुना । अहिमया परस्मै सात्त्विकः कीर्तितम् ॥

तीसरे वर्षमें मूण्डन-संस्कार करना चाहिये। गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका, प्यारहवें वर्षमें क्षत्रियका और बारहवें वर्षमें वैश्यका यज्ञोपवीत-संस्कार करना चाहिये। परंतु ब्रह्मतेजकी इच्छावाला ब्राह्मण पाँचवें वर्षमें, बलकी इच्छावाला क्षत्रिय छठे वर्षमें और धनकी कामनावाला वैश्य आठवें वर्षमें अपने-अपने बालकोंका उपनयन-संस्कार सम्पन्न करे। सोलह वर्षतक ब्राह्मण, चाईस वर्षतक क्षत्रिय और चौबीस वर्षतक वैश्य गायत्री (सावित्री) के अधिकारी रहते हैं, इसके अनन्तर यथासमय संस्कार न होनेसे गायत्रीके अधिकारी नहीं रहते और ये 'ब्राह्म' कहलाते हैं। फिर जबतक ब्राह्मस्रोम नामक यज्ञसे उनकी शुद्धि नहीं की जाती, तबतक उनका शरीर गायत्री-दीक्षाके योग्य नहीं बनता। इन ब्राह्मोंके साथ उत्पत्तिमें भी वेदादि शास्त्रोंका पठन-पाठन अथवा विवाह आदिका सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।

वैश्वर्णिक ब्राह्मचारियोंको उत्तरीयोंके रूपमें क्रमशः कृष्ण (कस्तूरी)-मृग-चर्म, रुक्तामक मृगका चर्म और ककरोका चर्म धारण करना चाहिये। इसी प्रकार क्रमशः सन (टाट), अलप्री और भेड़के ऊनका वस्त्र धारण करना चाहिये। ब्राह्मण ब्राह्मचारिकें लिये तीन लट्ठीवाली सुन्दर चिकनी मूँजकी, क्षत्रियके लिये मूर्वा (मृग) की और वैश्यके लिये सनकी मेखला कही गयी है। मूँज आदिके प्राप्त न होनेपर क्रमशः कुशा, अश्मन्तक और बल्लव नामक तृणकी मेखलाको तीन लट्ठीवाली करके एक, तीन अथवा पाँच ग्रन्थियाँ इसमें लगानी चाहिये। ब्राह्मण कपासके सूतका, क्षत्रिय सनके सूतका और वैश्य भेड़के ऊनका यज्ञोपवीत धारण करे। ब्राह्मण बिल्व, पल्लवा या प्रक्षका दण्ड, जो सिरपर्यन्त हो उसे धारण करे। क्षत्रिय बड़, खदिर या बेतके काष्ठका मस्तकपर्यन्त ऊँचा और वैश्य पैलव (पोलू वृक्षकी लकड़ी), गुल्म अथवा पीपलके काष्ठका दण्ड मस्तकपर्यन्त ऊँचा धारण करे। ये दण्ड सीधे, छिद्ररहित और सुन्दर होने चाहिये। यज्ञोपवीत-संस्कारमें अपना-अपना दण्ड धारणकर भगवान् सूर्यनारायणका उपसहन करे और गुरुकी

पूजा करे तथा नियमके अनुसार सर्वप्रथम माता, बहिन या मौसीसे शिक्षा माँगे। शिक्षा माँगते समय उपनीत ब्राह्मण बहुत शिक्षा देनेवालीसे 'भवति ! शिक्षां मे देहि', क्षत्रिय 'भिक्षां भवति ! मे देहि' तथा वैश्य 'भिक्षां देहि मे भवति !'—इस प्रकारसे 'भवति' शब्दका प्रयोग करे। शिक्षामें वे सुवर्ण, चाँदी अथवा अन्न ब्राह्मणोंको दें। इस प्रकार शिक्षा ग्रहणकर ब्राह्मण उसे गुरुको निवेदित कर दे और गुरुकी आज्ञा पाकर पूर्वाभिमुख हो आचमनकर भोजन करे। पूर्वकी ओर मुख करके भोजन करनेसे आयु, दक्षिण-मुख करनेसे यश, पश्चिम-मुख करनेसे लक्ष्मी और उत्तर-मुख करके भोजन करनेसे सत्यको अभिवृद्धि होती है। एकाग्रचित्त हो उत्तम अन्नका भोजन करनेके अनन्तर आचमनकर अङ्गो (आँख, कान, नाक) का जलसे स्पर्श करे। अन्नकी नित्य स्तुति करनी चाहिये और अन्नकी निन्दा किंसे बिना भोजन करना चाहिये। उसका दर्शनकर संतुष्ट एवं प्रसन्न होना चाहिये। हर्षसे भोजन करना चाहिये। पूजित अन्नके भोजनसे बल और तेजको वृद्धि होती है और निन्दित अन्नके भोजनसे बल और तेज दोनोंकी हानि होती है<sup>१</sup>। इसीलिये सर्वदा उत्तम अन्नका भोजन करना चाहिये। उच्छिष्ट (जूठा) किसीको नहीं देना चाहिये तथा स्वयं भी किसीका उच्छिष्ट नहीं खाना चाहिये। भोजन करके जिस अन्नको छोड़ दे उसे फिर ग्रहण न करे अर्थात् बार-बार छोड़-छोड़कर भोजन न करे, एक बार बैठकर तृप्तिपूर्वक भोजन कर लेना चाहिये। जो पुरुष बीच-बीचमें विच्छेद करके लोभवश भोजन करता है, उसके दोनों लोक नष्ट हो जाते हैं, जैसे धनवर्धन वैश्यके हुए थे।

**राजा सतानीकने पूछा**—महाराज ! आप धनवर्धन वैश्यकी कथा सुनाइये। उसने कैसे भोजन किया और उसका क्या परिणाम हुआ ?

**सुमन्तु मुनिने कहा**—राजन् ! सत्ययुगको जात है, पुष्करक्षेत्रमें धन-धान्यसे सम्पन्न धनवर्धन नामक एक वैश्य रहता था। एक दिन वह ग्रीष्म ऋतुमें मध्यराहके समय

१. तथापि पुण्यशिलामयावैकतुल्यम् । दर्शकत् तस्य हृष्येत् । वै प्रसीदच्छात्रि भारत ॥

पूजितं त्वशनं नित्यं कन्यकेज्ज कच्छति ।

अङ्गितं तु तदभुतमुपयं नरपण्डितम् ।

(ब्राह्मण ३ : ३०—३९)



वैश्वदेव-कर्म सम्पन्न कर अपने पुत्र, मित्र तथा बन्धु-बान्धवोंके साथ भोजन कर रहा था। इतनेमें ही अकस्मात् उसे बाहरसे एक कण्ठ शब्द सुनायी पड़ा। उस शब्दको सुनते ही वह दयावश भोजनको छोड़कर बाहरकी ओर दौड़ा। किन्तु जबतक वह बाहर पहुँचा वह आवाज बंद हो गयी। फिर लौटकर उस वैश्यने पात्रमें जो छोड़ा हुआ भोजन था उसे खा लिया। भोजन करते ही उस वैश्यकी मृत्यु हो गयी और इसी अपराधवश परलोकमें भी उसकी दुर्गति हुई। इसलिये छोड़े हुए भोजनको फिर कभी नहीं खाना चाहिये। अधिक भोजन भी नहीं करना चाहिये। इससे शरीरमें अत्यधिक रसकी उत्पत्ति होती है, जिससे प्रतिश्याय (जुकाम, मन्दाग्रि, ज्वर) आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अजीर्ण हो जानेसे स्नान, दान, तप, होम, तर्पण, पूजा आदि कोई भी पुण्य कर्म ठीकसे सम्पन्न नहीं हो पाते। अति भोजन करनेसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं—आयु घटती है, लोकमें निन्दा होती है तथा अन्तमें स्वर्गति भी नहीं होती। उच्छिष्ट मुखसे कहीं नहीं जाना चाहिये। सदा पवित्रतासे रहना चाहिये। पवित्र मनुष्य वहाँ मुखसे रहता है और अन्तमें स्वर्गमें जाता है।

**राजाने पूछा—मुनीश्वर। ब्राह्मण किस कर्मके करनेसे पवित्र होता है ?** इसका आप वर्णन करें।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! जो ब्राह्मण विधिपूर्वक आचमन करता है, वह पवित्र हो जाता है और सत्कर्मोंका अधिकारी हो जाता है। आचमनकी विधि यह है कि हाथ-पैर धोकर पवित्र स्थानमें आसनके ऊपर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके बैठे। दाहिने हाथको जानुके भीतर रसकर दोनों चरण बराबर रखे तथा शिखामें ग्रन्थि लगाये और फिर उष्णता एवं फेनसे रहित शीतल एवं निर्मल जलसे आचमन करें। खड़े-खड़े, घात करते, इधर-उधर देखते हुए, शीघ्रतासे और क्रोधयुक्त होकर आचमन न करें।

हे राजन् ! ब्राह्मणके दाहिने हाथमें पाँच तीर्थ कहे गये हैं—(१) देवतीर्थ, (२) पितृतीर्थ, (३) ब्राह्मतीर्थ, (४) प्राजापत्यतीर्थ और (५) सौम्यतीर्थ। अब आप इनके

लक्षणोंको सुनें—अँगूठेके मूलमें ब्राह्मतीर्थ, कनिष्ठाके मूलमें प्राजापत्यतीर्थ, अङ्गुलियोंके अग्रभागमें देवतीर्थ, तर्जनी और अङ्गुष्ठके बीचमें पितृतीर्थ और हाथके मध्य-भागमें



सौम्यतीर्थ कहा जाता है, जो देवकर्ममें प्रशस्त माना गया है। देवार्चा, ब्राह्मणको दक्षिणा आदि कर्म देवतीर्थसे; तर्पण, पिण्डदानादि कर्म पितृतीर्थसे; आचमन ब्राह्मतीर्थसे; विवाहके समय लग्नहोमादि और सोमयान प्राजापत्यतीर्थसे; कर्मण्डलु-प्राह्ण, दधिप्राशनादि कर्म सौम्यतीर्थसे करें। ब्राह्मतीर्थसे उपस्पर्शन सदा श्रेष्ठ माना गया है।

अङ्गुलियोंको मिलाकर एकाग्रचित्त हो, पवित्र जलसे बिना शब्द किये तीन बार आचमन करनेसे महान् फल होता है और देवता प्रसन्न होते हैं। प्रथम आचमनसे ऋग्वेद, द्वितीयसे यजुर्वेद और तृतीयसे सामवेदकी तृप्ति होती है तथा आचमन करके जलयुक्त दाहिने अँगूठेसे मुखका स्पर्श करनेसे

१- अङ्गुष्ठमूलोत्तरतो येयं रेखा स्थितिः ॥  
बाह्यं तीर्थं वदन्त्येतद्ब्रह्मिण्याः द्विजोत्तमः । कस्य कश्चिदङ्गुल्युते अङ्गुल्यग्रे तु देवतम् ॥  
तर्जन्यङ्गुल्योत्तः पित्र्यं तीर्थमुदाहृतम् । कर्मण्यग्रे स्थितं सौम्यं प्रशस्तं देवकर्मणि ॥ (ब्राह्मणपर्व ३।६३—६५)

अथर्ववेदकी तृप्ति होती है। ओष्ठके मार्जनसे इतिहास और पुराणोंकी तृप्ति होती है। मस्तकमें अभिषेक करनेसे भगवान् रुद्र प्रसन्न होते हैं। शिखाके स्पर्शसे ऋषिगण, दोनों ओंछोंके स्पर्शसे सूर्य, नासिकाके स्पर्शसे वायु, कानोंके स्पर्शसे दिशाएँ, भुजाके स्पर्शसे यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र तथा अग्निदेव तृप्त होते हैं। नाभि और प्राणोंकी ग्रन्थियोंके स्पर्श करनेसे सभी तृप्त हो जाते हैं। पैर धोनेसे विष्णुभगवान्, भूमिमें जल छोड़नेसे वामुकि आदि नाग तथा बीचमें जो जलबिन्दु गिरते हैं, उनसे चार प्रकारके भूतग्रामकी तृप्ति होती है।

अङ्गुष्ठ और तर्जनीसे नेत्र, अङ्गुष्ठ तथा अनामिकसे नासिका, अङ्गुष्ठ एवं मध्यमासे मुख, अङ्गुष्ठ और कनिष्ठकसे कान, सब अङ्गुलियोंसे भुजाओंका, अङ्गुष्ठसे नाभिमण्डल तथा सभी अङ्गुलियोंसे सिरका स्पर्श करना चाहिये। अङ्गुष्ठ अग्निरूप है, तर्जनी वायुरूप, मध्यमा प्रजापतिरूप, अनामिका सूर्यरूप और कनिष्ठिका इन्द्ररूप है।<sup>१</sup>

इस विधिसे ब्राह्मणके आचमन करनेपर सम्पूर्ण जगत्, देवता और लोक तृप्त हो जाते हैं। ब्राह्मण सदा पूजनीय है, क्योंकि वह सर्वदेवमय है।

ब्राह्मतीर्थ, प्राजापत्यतीर्थ अथवा देवतीर्थसे आचमन

करे, परन्तु पितृतीर्थसे कभी भी आचमन नहीं करना चाहिये। आचमनका जल हृदयतक जानेसे ब्राह्मणकी; कण्ठतक जानेसे ऋषियकी और वैश्यकी जलने प्राशनसे तथा शूद्रकी जलने स्पर्शमात्रसे शुद्धि हो जाती है।

दाहिने हाथके नीचे और बायें कंधेपर यज्ञोपवीत रहनेसे द्विज उपवीतो (सव्य) कहलाता है, इसके विलोम रहनेसे अर्धात् यज्ञोपवीतके दाहिने कंधेसे बायीं ओर रहनेसे प्राचीनवीतो (अपसव्य) तथा गलेमें मालाकी तरह यज्ञोपवीत रहनेसे निवीतो कहा जाता है।

मेहालय, मृगछाल, दण्ड, यज्ञोपवीत और कमण्डलु— इनमें कोई भी चीज भग्न हो जाय तो उसे जलमें विमर्जित कर मन्त्रोच्चारणपूर्वक दूसरा धारण करना चाहिये। उपवीती (सव्य) होकर और दाहिने हाथको जानु अर्धात् घुटनेके भीतर रखकर जो ब्राह्मण आचमन करता है वह पवित्र हो जाता है। ब्राह्मणके हाथकी रेखाओंके गङ्गा आदि नदियोंके समान पवित्र समझना चाहिये और अङ्गुलियोंके जो पर्व हैं, वे हिमालय आदि देवपर्वत माने जाते हैं। इसलिये ब्राह्मणका दाहिना हाथ सर्वदेवमय है और इस विधिसे आचमन करनेवाला अन्तर्में सर्वलोकजने प्राप्त करता है<sup>२</sup>। (अध्याय ३)

### वेदाध्ययन-विधि, ओंकार तथा गायत्री-माहात्म्य, आचार्यादि-लक्षण, ब्रह्मचारिधर्म-निरूपण, अभिवादन-विधि, स्नातककी महिमामें अङ्गिरापुत्रका आख्यान, माता-पिता और गुरुकी महिमा

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ब्राह्मणका केशान्त (समावर्तन)–संस्कार सोलहवें वर्षमें, श्रित्तिका चाईसवें वर्षमें तथा वैश्यका पचीसवें वर्षमें करना चाहिये। श्रित्तिका संस्कार अमन्त्रक करने चाहिये। केशान्त-संस्कार होनेके अनन्तर चाहे तो गुरु-गृहमें रहे अथवा अपने घरमें आकर विवाह कर अग्निहोत्र ग्रहण करे। श्रित्तिका लिये मुख्य संस्कार विवाह है।

राजन् ! यहाँतक मैंने उपनयनका विधान बतलाया। अब

आगेका कर्म बताते हैं, उसे आप सुनें। शिष्यका यज्ञोपवीत कर गुरु पहले उसके शीर्ष, आचार, संध्योपासन, अग्निकार्य शिक्षाये और वेदका अध्ययन कराये। शिष्य भी आचमन कर उत्तराधिमुख हो ब्रह्माङ्गलि बाँधकर एकाग्रचित्त हो प्रसन्न-मनसे वेदाध्ययनके लिये बैठे। पढ़नेके आरम्भ तथा अन्तमें गुरुके चरणोंकी वन्दना करे। पढ़नेके समय दोनों हाथोंकी जो अङ्गुलि बाँधी जाती है, उसे 'ब्रह्माङ्गलि' कहा जाता है।

१- अङ्गुष्ठोऽग्निर्महाहो प्रोक्तो वायुः तर्जनी ॥

अनामिका तथा मूर्धः कनिष्ठा मेषका विधौ । प्रतापीनर्मयणा ज्ञेया कम्मलं धारयत्ययम् ॥

(आतपर्व ३।८४-८५)

२- वासन्तेः क्रमश्चे तु रक्षा विप्रस्य भवत ॥

गङ्गायाः सरितः सर्वा ज्ञेया भवत्ययम् । वायुजुल्लिङ्गं पर्वतीयं शिरस्यङ्गुलिं विद्धि वै ॥

सर्वदेवमयो राजन् क्रमे विप्रस्य दक्षिणः ।

(आतपर्व ३।९२—९४)

शिष्य गुरुका दाहिना चरण दाहिने हाथसे और बायीं चरण बाये हाथसे छूकर उनकी प्रणाम करे। वेदके पढ़नेके समय आदिमें और अन्तमें ओंकारका उच्चारण न करनेसे सब निष्फल हो जाता है। पहलेका पढ़ा हुआ विस्मृत हो जाता है और आगेका विषय याद नहीं होता।

पूर्वदिशामें अग्रभागवाले कुशके अहसनपर बैठकर पवित्री धारण करे तथा तीन बार प्रणायामसे पवित्र होकर ओंकारका उच्चारण करे। प्रजापतिने तीनों वेदोंके प्रतिनिधिभूत अकार, उकार और मकार—इन तीन वर्णोंको तीनों वेदोंसे निकाला है, इनसे ओंकार बनता है। भूमिः स्वः—ये तीनों व्याहृतिर्था और गायत्रीके तीन पाद तीनों वेदोंसे निकले हैं। इसलिये जो ब्राह्मण ओंकार तथा व्याहृतिपूर्वक विपदा गायत्रीका दोनों संध्याओंमें जप करता है, वह वेदपाठके पुण्यको प्राप्त करता है। और जो ब्राह्मण, शत्रिप, वैश्य अपनी क्रियासे हीन होते हैं, उनकी साधु पुरुषोंमें निन्दा होती है तथा परलोकमें भी वे कल्याणके भागी नहीं होते, इसलिये अपने कर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। प्रणव, तीन व्याहृतिर्था और विपदा गायत्री—ये सब मिलकर जो मन्त्र (गायत्री-मन्त्र) होता है, वह ब्रह्मका मुख है। जो इस गायत्री-मन्त्रका श्रद्धा-भक्तिसे तीन वर्षतक नित्य नियमसे विंशत्युक्त जप करता है, वह वायुकी तरह वेगसम्पन्न होकर आकाशके स्वरूपको धारणकर ब्रह्मतत्त्वको प्राप्त करता है। एकक्षर अं परब्रह्म है, प्रणायाम परम तप है। सावित्री (गायत्री)से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है और मौनसे सब बोलना श्रेष्ठ है। तपस्या, हवन, दान, यज्ञादि क्रियाएँ स्वरूपतः नाशवान् हैं, किन्तु प्रणव-स्वरूप एकक्षर ब्रह्म ओंकारका कभी नाश नहीं होता। विधिवज्ञा (दर्श-चौर्णमास आदि) में जपयज्ञ (प्रणवादि-जप) सदा ही श्रेष्ठ है। उपांशु-जप (जिस जपमें केवल ओठ और जीभ चलते हैं, शब्द न सुनायी पड़े) लाख गुना और उपांशु-जपसे मानस-जप हजार गुना अधिक फल देनेवाला होता है। जो पाकयज्ञ (पितृकर्म, हवन, बलिवैधदेव) विधि-यज्ञके बराबर हैं, वे सभी जप-यज्ञकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। ब्राह्मणको सब सिद्धि जपसे प्राप्त हो जाती है और कुछ करे या न करे, पर ब्राह्मणको गायत्री-जप अवश्य करना चाहिये।

सूर्योदयसे पूर्व जब तारे दिखायी देते रहें तभीसे प्रातः-संध्य आरम्भ कर देने चाहिये और सूर्योदयपर्यन्त गायत्री-जप करता रहे। इसी प्रकार सूर्यास्तसे पहिले ही सायं-संध्या आरम्भ करे और तातेके दिखायी देनेतक गायत्री-जप करता रहे। प्रातः-संध्यामें खड़े होकर जप करनेसे शत्रिके पाप नष्ट होते हैं और सायं-संध्याके समय बैठकर गायत्री-जप करनेसे दिनके पाप नष्ट होते हैं। इसलिये दोनों कालोंकी संध्या अवश्य करनी चाहिये। जो दोनों संध्याओंको नहीं करता उसे सम्पूर्ण द्विजातिके विहित कर्मोंसे बहिष्कृत कर देना चाहिये। धरके बाहर एकान्त-स्थानमें, अरण्य या नदी-सरोवर आदिके तटपर गायत्रीका जप करनेसे बहुत लाभ होता है। मन्त्रोंके जप, संध्याके मन्त्र और जो ब्रह्म-यज्ञादि नित्य-कर्म हैं इनके मन्त्रोंके उच्चारणमें अनध्यायका विचार नहीं करना चाहिये अर्थात् नित्यकर्ममें अनध्याय नहीं होता।

यज्ञोपवीतके अनन्तर समावर्तन-संस्कारतक शिष्य गुरुके घरमें रहे। भूमिपर शयन करे, सब प्रकारसे गुरुकी सेवा करे और वेदाध्ययन करता रहे। सब कुछ जानते हुए भी जड़वत् रहे। आचार्यका पुर, सेवा करनेवाला, ज्ञान देनेवाला, धार्मिक, पवित्र, विश्वास, इत्थिमान्, उदार, साधुस्वभाव तथा अपनी जातिवाला—ये दस अध्यापनके योग्य हैं। बिना पूछे किसीसे कुछ न कहे, अन्वायसे पूछनेवालेको कुछ न बताये। जो अनुचित ङंगसे पूछता है और जो अनुचित ङंगसे उत्तर देता है, वे दोनों नरकमें जाते हैं और जगत्में सबके अप्रिय होते हैं। जिसको पढ़ानेसे धर्म या अर्थकी प्राप्ति न हो और वह कुछ सेवा-शुश्रूष भी न करे, ऐसेको कभी न पढ़ाये, क्योंकि ऐसे विद्यार्थीको दी गयी विद्या उद्योगमें बीज-वपनके समान निष्फल होती है। विद्याके अधिष्ठाता-देवताने ब्राह्मणसे कहा—‘मैं तुम्हारी निधि हूँ, मेरी भलोपार्जित रक्षा करो, मुझे ब्राह्मणों (अध्यापकों) के गुणोंमें दोष-बुद्धि रखनेवालेको और द्वेष करनेवालेको न देना, इससे मैं बलवती रहूँगी। जो ब्राह्मण जितेन्द्रिय, पवित्र, ब्रह्मचारी और प्रमादसे रहित हो उसे मुझे देना।’

जो गुरुकी आज्ञाके बिना वेद-शास्त्र आदिको स्वयं ग्रहण करता है, वह अति भयंकर रौरव नरकको प्राप्त होता है। जो लैकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान दे, उसे

सर्वप्रथम प्रणाम करना चाहिये। जो केवल गायत्री जानता हो, पर शस्त्रकी मर्यादामें रहे वह सबसे उत्तम है, किंतु सभी वेदादि शास्त्रोंको जानते हुए भी मर्यादामें न रहे और भक्ष्याभक्ष्यका कुछ भी विचार न करे तथा सभी वस्तुओंको बेचे, वह अधम है।

गुरुके आगे, शय्या अथवा आसनपर न बैठे। यदि पहिलेसे बैठे हो तो गुरुको आते देख नीचे उतर जाय और उनका अभिवादन करे। वृद्धजनोंको आने देख छोड़के प्राण उच्छ्वसित हो जाते हैं, इसलिये नम्रतापूर्वक खड़े होकर उन्हें प्रणाम करनेसे वे प्राण पुनः अपने स्थानपर आ जाते हैं। प्रतिदिन बड़ोंकी सेवा और उन्हें प्रणाम करनेवाले पुरुषके आयु, विद्या, यश और बल—ये चारों निरन्तर बढ़ते रहते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।

चात्वारि सम्यग्वर्धन्ते आयुः प्रज्ञा पशो बलम् ॥

(ब्राह्मणं ४।५०)

अभिवादनके समय दूसरोंकी स्त्रियों और जिससे किसी प्रकारका सम्बन्ध न हो उसे भवती (आप), सुभगे अथवा भगिनी (बहन) कहकर सम्बोधित करे। चाचा, मामा, ससुर, फ्रतिष्ठा और गुरु—इनको अपना नाम लेते हुए प्रणाम करना चाहिये। मौसी, मामी, सास, बुआ (पिताकी बहन) और गुरुकी पत्नी—ये सब मान्य एवं पूज्य हैं। बड़े भाईको सवर्णा स्त्री (भाभी) का जो नित्य आदर करता है और उसे माताके समान समझता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। पिताकी बहन, माताकी बहन और अपनी बड़ी बहन—ये तीनों माताके समान ही हैं। फिर भी अपनी माता—इन सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। पुत्र, मित्र और धानजा (बहनका लड़का) इनको अपने समान समझना चाहिये। धन-सम्पत्ति, वन्यु, अवस्था, कर्म और विद्या—ये पाँचों महत्त्वके कारण हैं—इनमें उत्तरोत्तर एकसे दूसरा बड़ा है अर्थात् विद्या सर्वश्रेष्ठ है।

वित्तं वन्युर्वयः कर्म विद्या धनमि पञ्चमी ।

एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यच्छतुर्तमम् ॥

(ब्राह्मणं ४।५०)

रथ आदि यानपर चढ़े हुए, अतिवृद्ध, रोगी, भारयुक्त, स्त्री, स्नातक (जिसका समावर्तन-संस्कार हो गया हो), राजा और वर (दूल्हा) यदि सामनेसे आते हों तो इन्हें मार्ग पहले देना चाहिये। ये सभी यदि एक साथ आते हों तो स्नातक और राजा मान्य हैं। इन दोनोंमेंसे भी स्नातक विशेष मान्य है<sup>१</sup>।

जो ब्राह्मण शिष्यका उपनयन करकर रहस्य (यज्ञ, विद्या और उपनिषद्) तथा कल्पसंहिता वेदाध्ययन करता है, उसे आचार्य कहते हैं। जो जीविकारके निमित्त वेदका एक भाग अथवा वेदाङ्ग पढ़ाता है, वह उपाध्याय कहलाता है। जो निष्क अर्थात् गर्भाधानादि संस्कारोंको रीतिसे करता है और अग्रदिसे पोषण करता है, उस ब्राह्मणको गुरु कहते हैं। जो अग्निहोम, अर्घ्यहोम, पाक-यज्ञादि कर्मोंका धरण लेकर जिसके निमित्त करता है, वह उसका ऋत्विक् कहलाता है। जो पुरुष वेद-धर्मसे दोनो कान भर देता है, उसे माता-पिताके समान समझकर उससे कभी द्वेष नहीं करना चाहिये।

उपाध्यायसे दस गुना गौरव आचार्यका और आचार्यसे सौ गुना पिताका तथा पितासे हजार गुना गौरव माताका होता है—

उपाध्यायान्दशआचार्य आचार्याणां एतं पिता ।

सहस्रेण पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥

(ब्राह्मणं ४।५१)

जन्म देनेवाला और वेद पढ़ानेवाला—ये दोनों पिता हैं, किंतु इनमें भी वेदाध्ययन करानेवाला श्रेष्ठ है, क्योंकि ब्राह्मणका मुख्य जन्म तो वेद पढ़नेसे ही होता है। इसलिये उपाध्याय आदि जितने पूज्य हैं, उनमें सबसे अधिक गौरव महागुरुका ही होता है।

राजा शतानीकने पूछा—हे मुने! आपने उपाध्याय आदिके लक्षण बताये, अब महागुरु किसे कहते हैं? यह भी बतानेकी कृपा करे।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! जो ब्राह्मण जयोपजीवी हो अर्थात् अष्टादशपुराण, रामायण, विष्णुधर्म, शिवधर्म, महाभारत (भगवान् श्रीकृष्ण-ईश्वरान व्यसदास रचित महाभारत जो पञ्चम वेदके नामसे भी विख्यात है) तथा श्रीत

१-चक्षिणा दण्डीस्य रोगिणो भारिणः शिष्यः। स्नातकस्य तु राज्ञश्च कदापि देये कार्यम् ॥

एवं समागमे ततः पुनरी स्नातकपरिधिः। अन्धो यजमानो राजन् स्नातको नृपमान्यकः ॥



एवं स्मार्त-धर्म (विद्वान् लिंग इन सभीको 'जय' नामसे अभिहित करते हैं) का ज्ञाता हो, वह महागुरु कहलाता है'। वह सभी वर्षोंके लिये पूज्य है। जो शास्त्रद्वारा थोड़ा या बहुत उपकार करे, उसको भी उस उपकारके बदले गुरु मानना चाहिये। अवस्थामें चाहे छोटा क्यों न हो, पढ़नेसे वह बालक वृद्धक भी पिता हो सकता है। राजन् ! इस विषयमें एक प्राचीन आख्यान सुनो—

पूर्वकालमें अङ्गिरा मुनिके पुत्र बृहस्पति (बालक होनेपर भी) बड़े वृद्धोंको पढ़ाते थे और पढ़ानेके समय 'हे पुत्रो ! पढ़ो' ऐसा कहते थे। बालकद्वारा 'पुत्र' सम्बोधन सुनकर उनको बड़ा खोश हुआ और वे देवताओंके पास गये तथा उन्होंने सारा वृत्तान्त बतलाया। तब देवताओंने कहा— पितृगणो ! उस बालकने न्यायोचित बात ही कही है, क्योंकि जो अज्ञ हो अर्थात् कुछ न जानता हो वही सच्चे अर्थमें बालक है, किन्तु जो मन्त्रको देनेवाला है (वेदोंको पढ़ानेवाला है), उपदेशक है, वह युवा आदि होनेपर भी पिता होता है। अवस्था अधिक होनेसे, केश श्वेत होनेसे और बहुत पित तथा बन्धु-बान्धवोंके होनेसे कोई बड़ा नहीं होता, बल्कि इस विषयमें अधिपतिने यह व्यवस्था की है कि जो विद्यामें अधिक हो, वही सच्चे महान् (वृद्ध) है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें क्रमशः ज्ञान, बल, धन तथा जन्मसे बढ़पन होता है। सिरके बाल श्वेत हो जानेसे कोई वृद्ध नहीं होता, यदि कोई युवा भी वेदादि शास्त्रोंका ध्यानाधीन ज्ञान प्राप्त कर ले तो उसीको वृद्ध (महान्) समझना चाहिये। जैसे कछुसे बना हाथी, चमड़ेसे मक्का मृग किसी कामका नहीं, उसी प्रकार वेदसे हीन ब्राह्मणका जन्म निष्फल है। मूर्खको दिया हुआ दान जैसे निष्फल होता है, वैसे ही वेदकी श्रद्धाओंको न जाननेवाले ब्राह्मणका जन्म निष्फल होता है। ऐसा ब्राह्मण नाममात्रका ब्राह्मण होता है। वेदोंका स्वयं कथन है कि जो हमें पढ़कर इन्द्र अनुष्ठान न करे, वह पढ़नेका व्यर्थ ज्ञेय उठता है, इसलिये वेद पढ़कर वेदमें कहे हुए कर्मोंका जो अनुष्ठान करता है अर्थात् तदनुकूल

आचरण करता है, उसीका वेद पढ़ना सफल है। जो वेदादि शास्त्रोंको जानकर धर्मका उपदेश करते हैं, वही उपदेश ठीक है, किन्तु जो मूर्ख वेदादि शास्त्रोंको जाने बिना धर्मका उपदेश करते हैं, वे बड़े पापके भागी होते हैं। शौचरहित (अपवित्र), वेदसे रहित तथा नष्टगत ब्राह्मणको जो अन्न दिया जाता है, वह अन्न रोदन करता है कि 'मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया था जो ऐसे मूर्ख ब्राह्मणके हाथ पड़ा।' और यही अन्न यदि ज्योपजीवीको दिया जाय तो प्रसन्नतासे नाच उठता है और कहता है कि 'मेरा अहोभाग्य है, जो मैं ऐसे पापके हाथ आया।' विद्या और तपके अभ्याससे सम्पन्न ब्राह्मणके घरमें अनेक सप्ती आदि ओषधियाँ उषति प्रसन्न होती हैं और कहती हैं कि अब हमारी भी सद्गति हो जायगी। व्रत, वेद और जपसे हीन ब्राह्मणको दान नहीं देना चाहिये, क्योंकि कपड़की नथ नदीके पार नहीं उतार सकती। इसलिये श्रेष्ठियको हव्य-कव्य देनेसे देवता और पितरोंकी तृप्ति होती है। घरके समीप रहनेवाले मूर्ख ब्राह्मणसे दूर रहनेवाले विद्वान् ब्राह्मणको ही बलकर दान देना चाहिये। परंतु घरके समीप रहनेवाला ब्राह्मण यदि गायत्री भी जानता हो तो उसका परित्याग न करे। परित्याग करनेसे रौरव नरककी प्राप्ति होती है, क्योंकि ब्राह्मण चाहे निर्गुण हो या गुणवान्, परंतु यदि वह गायत्री जानता है तो वह परमदेव-स्वरूप है। जैसे अग्निसे रहित घाम, जलसे रहित कूप केवल नामधारक है, वैसे ही विद्याध्ययनसे रहित ब्राह्मण भी केवल नाममात्रका ब्राह्मण है।

श्रुतिधर्मके कल्याणके लिये अहिंसा तथा प्रेमसे ही अनुष्ठान करना श्रेष्ठ है। धर्मकी इच्छा करनेवाले शासकको सदा यधुर तथा नम्र वचनका प्रयोग करना चाहिये। जिसके मन, वचन शुद्ध और सत्य हैं, वह वेदान्तमें कहे गये मोक्ष आदि फलेंको प्राप्त करता है। आर्त होनेपर भी ऐसा वचन कभी न कहे जिससे किसीकी आत्मा दुःखी हो और सुनने-वालोंको अच्छा न लगे। दूसरेका अपकार करनेकी बुद्धि नहीं करनी चाहिये। पुरुषको जैसा आनन्द मीठी खाणीसे मिलता है,

१-ज्योपजीवी ये विद्वः स महागुरुकथ्यते। अष्टादशगुणानि उपस्य चरितं तथा ॥  
विष्णुधर्मोदये धर्मः त्रिवर्धमाह भारत। काशी वेद पठनं तु यथाहाजरे स्मृतम् ॥  
श्रीत धर्माह उज्जैन नारदोक्त महीको। ज्योति नाम लोको ज्योतिषः महीविष्णुः ॥

(ब्राह्मणपर्व ४।८६—८८)

वैसा आनन्द न चन्द्रकिरणोंसे मिलता है, न चन्दनसे, न शीतल छायासे और न शीतल जलसे<sup>१</sup>। ब्राह्मणको चाहिये कि सम्मानकी इच्छाको भयंकर विषके समान समझकर उससे डरता रहे और अपमानको अमृतके समान स्वीकार करे, क्योंकि जिसकी अवमानना होती है, उसकी कुछ हानि नहीं होती, वह सुखी ही रहता है और जो अवमानना करता है, वह विनाशको प्राप्त होता है। इसलिये तपस्या करता हुआ द्विज नित्य वेदका अभ्यास करे, क्योंकि वेदाभ्यास ही ब्राह्मणका परम तप है।

ब्राह्मणके तीन जन्म होते हैं—एक तो माताके गर्भसे, दूसरा यज्ञोपवीत होनेसे और तिसरा यज्ञकी दीक्षा लेनेसे। यज्ञोपवीतके समय गायत्री माला और आचार्य पिता होता है। वेदकी शिक्षा देनेसे आचार्यको पिता कहते हैं, क्योंकि यज्ञोपवीत होनेके पूर्व किसी भी वैदिक कर्मिक करनेका अधिकारी वह नहीं होता। ब्राह्ममें पढ़े जानेवाले वेदमन्त्रोंको छोड़कर (अनुपनीत द्विज) वेदमन्त्रका उच्चारण न करे, क्योंकि जबतक वेदारम्भ न हो जाय, जबतक वह गुरुके समान माना गया है। यज्ञोपवीत सम्पन्न हो जानेपर गुरुको व्रतका उपदेश ग्रहण करना चाहिये और तभीसे विधिपूर्वक वेदाध्ययन करना चाहिये। यज्ञोपवीतके समय जो-जो मेखला-वर्म, दण्ड और यज्ञोपवीत तथा वस्त्र जिस-जिसके लिये कहा गया है वह-वह ही धारण करे। अपनी तपस्याकी वृद्धिके लिये ब्राह्मचारी जितेन्द्रिय होकर गुरुके पास रहे और नियमोंका पालन करता रहे। नित्य स्नानकर, पवित्र हो देवता, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करे। पुष्प, फल, जल, समिधा, मृत्तिका, कुश और अनेक प्रकारके वस्तुओंका संग्रह रखे। मद्य, मांस, गन्ध, पुष्पमाला, अनेक प्रकारके रस और स्त्रियोंका परित्याग करे। प्राणियोंकी हिंसा, शरीरमें उबटन, अंजन लगाना, जूत और छत्र धारण करना, गीत सुनना, नाच देखना, कुआ खोलना, झूठ बोलना, निन्दा करना, स्त्रियोंके समीप बैठना और काम, क्रोध तथा लोभादिके वशीभूत होना—इत्यादि बातें ब्राह्मचारीके लिये निषिद्ध हैं। उसे संयमपूर्वक एकाकी रहना

चाहिये। वह जल, पुष्प, गौका गोबर, मृत्तिका और कुश तथा आवश्यकतानुसार पिशा नित्य लाये। जो पुरुष अपने कर्मोंमें तत्पर हो और वेदवि-शास्त्रोंको पढ़े तथा यज्ञादिमें ब्रह्मवान् हो, ऐसे गृहस्थोंके घरसे ही ब्राह्मचारीको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। गुरुके कुलमें और अपने पारिवारिक बन्धु-बान्धवोंके घरोंसे शिक्षा न माँगे। यदि शिक्षा अन्यत्र न मिले तो इनके घरसे भी शिक्षा ग्रहण करे, किंतु जो महापातकी हों उनकी शिक्षा न ले। नित्य समिधा लाकर सायंकाल और प्रातःकाल हवन करे। शिक्षा माँगनेके समय बाणी संयमित रखे। ब्राह्मचारीके लिये शिक्षाका अन्न मुख्य है। एकका अन्न नित्य न ले। शिक्षावृत्तिसे रहना उपवासके बराबर माना गया है। यह धर्म केवल ब्राह्मणके लिये कहा गया है, शर्वत्रय और वैश्यके धर्ममें कुछ भेद है।

ब्राह्मचारी गुरुके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा रहे, जब गुरुकी आज्ञा हो तब बैठे, परंतु आसनपर न बैठे। गुरुके उठनेसे पूर्व उठे, सोनेके पश्चात् सोये, गुरुके सम्मुख अति नम्रतासे बैठे, परोक्षमें गुरुका नाम उच्चारण न करे, किसी भी बातमें गुरुका अनुकरण अर्थात् नकल न करे। गुरुकी निन्दा न करे और जहाँ निन्दा होती हो, आलोचना होती हो वहाँसे उठकर चला जाय अथवा कम बंद कर ले—

परिवारस्तथा निन्दा गुरोर्यत्र प्रवर्तते।

कर्णौ तत्र पिशातक्यौ गन्तव्यं वा तप्तोऽप्यतः ॥

(ब्राह्मर्ष ४। १७१)

वाहनपर चढ़ा हुआ गुरुका अभिवादन न करे, अर्थात् वाहनसे उतरकर प्रणाम करे। गुरुके साथ एक वाहन, शिल्प, नौकायान आदिपर बैठ सकता है। गुरुके गुरु तथा श्रेष्ठ सम्बन्धीजन एवं गुरुपुत्रके साथ गुरुके समान ही व्यवहार करे। गुरुकी सखी स्त्रीको गुरुके समान ही समझे, परंतु गुरुपत्नीके उबटन लगाना, स्नानादि करना, चरण दबाना आदि क्रियाएँ निषिद्ध हैं। माता, बहन या बेटोंके साथ एक आसनपर न बैठे, क्योंकि बलवान् इन्द्रियोंका समूह विद्वान्को भी अपनी ओर खींच लेता है<sup>२</sup>। जिस प्रकार भूमिको

१-न तथा शीतल न सलिलं न चन्दनसो न शीतलम्बुधम् ॥ ब्राह्मर्षि च पुनर् वयं मधुराक्षिणीं वाणी ॥ (ब्राह्मर्ष ४। १२८)

२-मात्रा भस्मा दुहित्वा वा न विविक्तमस्ते भवेत् ॥ बलवन् इन्द्रियवन्ते विद्वंसन्ति कर्णौ ॥ (ब्राह्मर्ष ४। १८४)

खोदते-खोदते जल मिल जाता है, उसी प्रकार सेवा-शुश्रूषा करते-करते गुरुसे विद्या मिल जाती है। मुषडन करण्ये हो, जटाधारी हो अथवा शिखी (बड़ी शिखासे युक्त) हो, चाहे जैसा भी ब्रह्मचारी हो उसको गाँवमें रहते हुए सूर्योदय और सूर्यास्त नहीं होना चाहिये। अर्थात् जलके तट अथवा निर्जन स्थानपर जाकर दोनों संध्याओंमें संध्या-वन्दन करना चाहिये। जिसके सोते-सोते सूर्योदय अथवा सूर्यास्त हो जाय वह महान् पापका भागी होता है और बिना प्रायश्चित्त (कृच्छ्रव्रत) के शुद्ध नहीं होता।

माता, पिता, भाई और आचार्यका विपत्तिमें भी अनङ्गर न करे। आचार्य ब्रह्माकी मूर्ति है, पिता प्रजापतिकी, माता पृथ्वीकी तथा भाई आत्ममूर्ति है। इसलिये इनका सदा आदर करना चाहिये। प्राणियोंकी उत्पत्तिमें तथा पालन-पोषणमें माता-पिताको जो श्रेष्ठ सत्कर्म करना पड़ता है, उस श्रेष्ठका बदला वे ही वर्षोंमें भी सेवा करके नहीं चुका पाते<sup>१</sup>। इसलिये माता-पिता और गुरुकी सेवा नित्य करनी चाहिये। इन तीनोंके संतुष्ट हो जानेसे सब प्रकारके तपोंका फल प्राप्त हो जाता है, इनकी शुश्रूषा ही परम तप कहा गया है। इन तीनोंकी आज्ञाके बिना किसी अन्य धर्मका आचरण नहीं करना चाहिये। ये ही तीनों लोक हैं, ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अविद्या हैं। माता गार्हपत्य नामक अग्नि है, पिता दक्षिणाग्नि-स्वरूप है और गुरु आहवनीय अग्नि है। जिसपर ये तीनों प्रसन्न हो जायें, वह तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर लेता है और दीप्यमान होते हुए देवलोकमें देवताओंकी भाँति सुख भोग करता है।

त्रिषु तृष्टेषु धीतेषु प्रीतिस्तोकाद्वयते गृही।

दीप्यमानः सखपुत्रा देववद्विधिं मोदते ॥

(ब्राह्मपर्व ४। २०१)

पिताकी भक्तिसे इहलोक, माताकी भक्तिसे मध्यलोक और गुरुकी सेवासे इन्द्रलोक प्राप्त होता है। जो इन तीनोंकी सेवा करता है, उसके सभी धर्म सफल हो जाते हैं और जो इनका आदर नहीं करता, उसकी सभी क्रियाएँ निष्फल होती हैं। जबतक ये तीनों जीवित रहते हैं, तबतक इनकी नित्य सेवा-शुश्रूषा और इनका हित करना चाहिये। इन तीनोंकी सेवा-शुश्रूषारूपी धर्ममें पुरुषका सम्पूर्ण कर्तव्य पूरा हो जाता है, यही साक्षात् धर्म है, अन्य सभी उपधर्म कहे गये हैं।

उत्तम विद्या अधम पुरुषमें हो तो भी उससे ग्रहण कर लेनी चाहिये। इसी प्रकार चाण्डालसे भी मोक्षधर्मकी शिक्षा, नीच कुलसे भी उत्तम स्त्री, विधवा से भी अमृत, बालकसे भी सुन्दर उपदेशात्मक बात, शत्रुसे भी सदाचार और अपवित्र स्थानसे भी सुवर्ण ग्रहण कर लेना चाहिये<sup>२</sup>। उत्तम स्त्री, राज, विद्या, धर्म, श्रेष्ठ, सुभाषित तथा अनेक प्रकारके शिल्प जहाँसे भी प्राप्त हों, ग्रहण कर लेने चाहिये। गुरुके श्रेष्ठ-व्याकरणपर्यन्त जो गुरुकी सेवा करता है, वह श्रेष्ठ ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। पढ़नेके समय गुरुको कुछ देनेकी इच्छा न करे, किन्तु पढ़नेके अनन्तर गुरुको आज्ञा पाकर भूमि, सुवर्ण, गौ, घोड़ा, सत्र, उपानह, धान्य, शाक तथा वस्त्र आदि अपनी इच्छाके अनुसार गुरु-दक्षिणाके रूपमें देने चाहिये। जब गुरुका देहान्त हो जाय, तब गुणवान् गुरुपुत्र, गुरुकी स्त्री और गुरुके भाइयोंके साथ गुरुके समान ही व्यवहार करना चाहिये। इस प्रकार जो अविच्छिन्न-रूपसे ब्रह्मचारि-धर्मका आचरण करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

सुभन्तु मुनि पुनः बोले—हे राजन् ! इस प्रकार मैंने ब्रह्मचारिधर्मका वर्णन किया। ब्राह्मणका उपनयन वसन्तमें, श्रविष्यका प्रीणमें और वैश्वका शरद् ऋतुमें प्रशस्त माना गया है। अब गृहस्थधर्मका वर्णन सुनें। (अध्याय ४)

१-आचार्य ब्रह्मकी मूर्ति, पिता मूर्ति, प्रजापति, मातापृथ्वीकी मूर्ति, आत्ममूर्ति, आत्मनः ॥

यथातपितरौ श्रेष्ठां सहेते सम्भवे तृणम् । न तस्य निष्कृतिः प्रसन्नं कर्तुं कर्तव्यतरेण ॥

(ब्राह्मपर्व ४। १९५-१९६)

२-ब्रह्मणः शुभं विद्यामन्दरीतावरणम् । अन्तरादपि यो धर्मं स्वीकरोत् पुण्यतरादपि ॥

विपादप्यमृतं प्राप्नोति बालादपि सुभाषितम् । अतिब्रह्मणि सद्ब्रह्मण्येवमपि ब्रह्मणम् ॥

(ब्राह्मपर्व ४। २०३-२०८)

## विवाह-संस्कारके उपक्रममें स्त्रियोंके शुभ और अशुभ लक्षणोंका वर्णन तथा आचरणकी श्रेष्ठता

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! गुरुके आश्रममें ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए स्नातकको वेदाध्ययन कर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। घर आनेपर उस ब्रह्मचारीको पहले पुष्प-माला पहनाकर, शय्यापर बिठाकर उसका मधुपर्क-विधिसे पूजन करना चाहिये। तब गुरुसे आज्ञा प्राप्तकर उसे शुभ लक्षणोंसे युक्त सजातीय कन्यासे विवाह करना चाहिये।

**राजा शतानीकने पूछा—**हे मुनीश्वर ! आप प्रथम स्त्रियोंके लक्षणोंका वर्णन करें और यह भी बतायें कि किन लक्षणोंसे युक्त कन्या शुभ होती है।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! पूर्वकालमें ऋषियोंके पूछनेपर ब्रह्माजीने स्त्रियोंके जो उत्तम लक्षण कहे हैं, उन्हें मैं संक्षेपमें बतलाता हूँ, आप ध्यान देकर सुनें।

**ब्रह्माजीने कहा—**ऋषिगणो ! जिस स्त्रीके चरण लाल कमलके समान कानिवाले अत्यन्त कोमल तथा भूमिपर समतल-रूपसे पड़ते हों, अर्थात् बीचमें ऊँचे न रहें, वे चरण उत्तम एवं सुख-भोग प्रदान करनेवाले होते हैं। जिस स्त्रीके चरण रुखे, फटे हुए, मांसरहित और नाड़ियोंसे युक्त हों, वह स्त्री दरिद्रा और दुर्भगा होती है। यदि पैरकी अँगुलियाँ परस्पर मिली हों, सीधी, गोल, स्निग्ध और सूक्ष्म नखोंसे युक्त हों तो ऐसी स्त्री अत्यन्त ऐश्वर्यको प्राप्त करनेवाली और राजमहिषी होती है। छोटी अँगुलियाँ आयुको बढ़ाती हैं, परंतु छोटी और किरल अँगुलियाँ धनका नाश करनेवाली होती हैं।

जिस स्त्रीके हाथकी रेखाएँ गहरी, स्निग्ध और रक्तवर्णकी होती हैं, वह सुख भोगनेवाली होती है, इसके विपरीत टेढ़ी और टूटी हुई हों तो वह दरिद्र होती है। जिसके हाथमें कनिष्ठाके मूलसे तर्जनीतक पूरी रेखा चली जाय तो ऐसी स्त्री सौ वर्षतक जीवित रहती है और यदि न्यून हो तो आयु कम होती है। जिस स्त्रीके हाथकी अँगुलियाँ गोल, लंबी, पतली, मितलनेपर छिद्ररहित, कोमल तथा रक्तवर्णकी हों, वह स्त्री अनेक सुख-भोगोंको प्राप्त करती है। जिसके नख बन्धुजीव-पुष्पके समान लाल एवं ऊँचे और स्निग्ध हों तो वह ऐश्वर्यको प्राप्त करती है तथा रुखे, टेढ़े, अनेक प्रकारके रंगवाले अथवा श्वेत या नीले-पीले नखोंवाली स्त्री दुर्भाग्य और दारिद्र्यको प्राप्त होती

है। जिस स्त्रीके हाथ फटे हुए, रुखे और विषम अर्थात् ऊँचे-नीचे एवं छोटे-बड़े हों वह कष्ट भोगती है। जिस स्त्रीका अँगुलियोंके पक्षोंमें समान रेखा हो अथवा यवका चिह्न होता है, उसे अपार सुख तथा अक्षय धन-धान्य प्राप्त होता है। जिस स्त्रीका मणिबन्ध सुस्पष्ट तीन रेखाओंसे सुशोभित होता है, वह चिरकालतक अक्षय भोग और दीर्घ आयुको प्राप्त करती है।

जिस स्त्रीको शीशामें चार अङ्गुलके परिमाणमें स्पष्ट तीन रेखाएँ हों तो वह सदा राजोंके आभूषण धारण करनेवाली होती है। दुर्बल शीशालाली स्त्री निर्धन, दीर्घ शीशालाली बंधकी, हल्कशीशालाली भृत्यवत्ता होती है और स्मूल शीशालाली दुःख-संताप प्राप्त करती है। जिसके दोनों कंधे और कृकाटिक (गठनका उठा हुआ पिछला भाग) ऊँचे न हों, वह स्त्री दीर्घ आयुवाली तथा उसका पति भी चिरकालतक जीता है।

जिस स्त्रीकी नासिका न बहुत मोटी, न पतली, न टेढ़ी, न अधिक लंबी और न ऊँची होती है वह श्रेष्ठ होती है। जिस स्त्रीकी भीड़ ऊँची, कोमल, सूक्ष्म तथा आपसमें मिली हुई न हो, ऐसी स्त्री सुख प्राप्त करती है। धनुषके समान भीड़ सीमाध्य प्रदान करनेवाली होती है। स्त्रियोंके कण्ठे, स्निग्ध, कोमल और लंबे घुंघराले केश उत्तम होते हैं।

हंस, कौयल, वीणा, भ्रमर, मयूर तथा वेणु (वंशी) के समान स्वरवाली स्त्रियाँ अपार सुख-सम्पत्ति प्राप्त करती हैं और दास-दासियोंसे युक्त होती हैं। इसके विपरीत फूटे हुए कंसिके स्वरके समान स्वरवाली या गर्दभ और कौवेके सदृश स्वरवाली स्त्रियाँ रोग, व्याधि, भय, शोक तथा दरिद्रताको प्राप्त करती हैं। हंस, गाय, वृषभ, चक्रवाक तथा मदमस्त हाथीके समान घालवाली स्त्रियाँ अपने कुलको विख्यात बनानेवाली और राजाकी रानी होती हैं। श्वान, सियार और कौवेके समान गतिवाली स्त्री निन्दनीय होती है। मृगके समान गतिवाली दासी तथा द्रुतगामिनी स्त्री बन्धकी होती है। स्त्रियोंका फलिनी, गोरोचन, स्वर्ण, कुंकुम अथवा नये-नये निकले हुए दुर्वाङ्गुरके सदृश रंग उत्तम होता है। जिन स्त्रियोंके शरीर तथा अङ्ग कोमल, रोम और पसीनेसे रहित तथा सुगन्धित होते हैं, वे स्त्रियाँ पुण्य होती हैं।



कपिल-वर्णवाले, अधिकजड़ी, रोगिणी, रोमोंसे रहित, अत्यन्त छोटी (बौनी), वाचाल तथा विंगल वर्णवाली कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये। नक्षत्र, वृक्ष, नदी, म्लेच्छ, पर्वत, पक्षी, साँप आदि और दासीके नामपर जिसका नाम हो तथा डरावने नामवाली कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये। जिसके सब अङ्ग ठीक हों, सुन्दर नाम हो, हंस या हाथीकी-सी गति हो, जो सूक्ष्म रोम, केश और दाँतोंवाली तथा क्षेमलजड़ी हो, ऐसी कन्यासे विवाह करना उत्तम होता है। गौ तथा धन-धान्यादिसे अत्यधिक समृद्ध होनेपर भी इन दस कुलोंमें विवाहका सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहिये—जो संस्कारोंसे रहित हो, जिनमें पुरुष-संतति न होती हो, जो वेदके पठन-पाठनसे रहित हो, जिनमें स्त्री-पुरुषोंके शरीरोंपर बहुत लम्बे केश हों, जिनमें अश

(बवासीर), क्षय (राजयक्षा), मन्दाग्नि, मिरगी, श्वेत दाग और कुष्ठ—जैसे रोग होते हो।

**ब्रह्माजीने स्त्रियोंसे पुनः कहा—**ये सब उत्तम लक्षण जिस कन्यामें हो और जिसका आचरण भी अच्छा हो उस कन्यासे विवाह करना चाहिये। स्त्रीके लक्षणोंकी अपेक्षा उसके सदाचारको ही अधिक प्रशस्त कहा गया है। जो स्त्री सुन्दर शरीर तथा शुभ लक्षणोंसे युक्त भी है, किंतु यदि वह सदाचारसम्पन्न (उत्तम आचरणयुक्त) नहीं है तो वह प्रशस्त नहीं मानी गयी है। अतः स्त्रियोंमें आचरणकी मर्यादाको अवश्य देखना चाहिये<sup>१</sup>। ऐसे सल्लक्ष्णों तथा सदाचारसे सम्पन्न सुकन्यासे विवाह करनेपर ऋद्धि, वृद्धि तथा सत्कीर्ति प्राप्त होती है। (अध्याय ५)

### गृहस्थाश्रममें धन एवं स्त्रीकी महत्ता, धन-सम्पादन करनेकी आवश्यकता तथा समान कुलमें विवाह-सम्बन्धकी प्रशंसा

**राजा शतानीकने सुमन्तु मुनिसे पूछा—**भगवन्! स्त्रियोंके लक्षणोंको तो मैं सुन, अब उनके सद्गुण (सदाचार) को भी मैं सुनना चाहता हूँ, उसे आप बतलानेकी कृपा करें।

**सुमन्तु मुनि बोले—**महाम्बहू शतानीक। ब्रह्माजीने स्त्रियोंको स्त्रियोंके सद्गुण भी बतलाये हैं, उन्हें मैं आपको सुनाता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुने। जब स्त्रियोंमें स्त्रियोंके सद्गुणके विषयमें ब्रह्माजीसे प्रश्न किया तब ब्रह्माजी कहने लगे—मुनीश्वरो! सर्वप्रथम गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेवाला व्यक्ति यथाविधि विद्याध्ययन करके सत्कर्मोंद्वारा धनका उपार्जन करे, तदनन्तर सुन्दर लक्षणोंसे युक्त और सुशील कन्यासे शास्त्रोक्त विधिसे विवाह करे। धनके बिना गृहस्थाश्रम केवल विडम्बना है। इसलिये धन-सम्पादन करनेके अनन्तर ही गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। मनुष्यके लिये धन नरककी यातना सहनी अच्छी है, किंतु धर्ममें क्षुधासे तड़पते हुए स्त्री-पुत्रोंको देखना अच्छा नहीं है। फटे और मैले-कुचैले वस्त्र पहने, अति दीन और भूखे स्त्री-पुत्रोंको देखकर जिनका हृदय विदीर्ण नहीं होता, वे वस्त्रके समान अति कठोर हैं।

उनके जीवनको चिन्कार है, उनके लिये तो मृत्यु ही परम उत्सव है अर्थात् ऐसे पुरुषका घर जाना ही श्रेष्ठ है। अतः स्त्रीग्रहण करनेवाले अर्थात् पुरुषोंके त्रिवर्ग- (धर्म, अर्थ, काम-) की सिद्धि कहाँ सम्भव है? वह स्त्री-सुख न प्राप्त कर यातना ही भोगता है। जैसे स्त्रीके बिना गृहस्थाश्रम नहीं हो सकता, उसी प्रकार धन-विहीन व्यक्तियोंको भी गृहस्थ बननेका अधिकार नहीं है। कुछ लोग संतानको ही त्रिवर्गका साधन मानते हैं अर्थात् संतानसे ही धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है, ऐसा समझते हैं; परंतु नीतिविशारदोंका यह अभिमत है कि धन और उत्तम स्त्री—ये दोनों त्रिवर्ग-साधनके हेतु हैं। धर्म भी दो प्रकारका कहा गया है—इष्ट धर्म और पूर्ण धर्म। यज्ञादि करना इष्ट धर्म है और चापी, कुप, तालाब आदि बनवाना पूर्ण धर्म है। ये दोनों धनसे ही सम्पन्न होते हैं।

दरिद्रोंके बन्धु भी उससे लज्जा करते हैं और धनाढ्यके अनेक बन्धु हो जाते हैं। धन ही त्रिवर्गका मूल है। धनवान्में विद्या, कुल, शील अनेक उत्तम गुण आ जाते हैं और निर्धनमें विद्यमान होते हुए भी ये गुण नष्ट हो जाते हैं। शास्त्र, शिल्प, कला और अन्य भी जितने कर्म हैं, उन सबका तथा धर्मका

साधन भी धन ही है। धनके बिना पुरुषका जन्म अजागल-स्तनवत् व्यर्थ ही है।

पूर्वजन्ममें किये गये पुण्योंसे ही इस जन्ममें प्रभूत धनकी प्राप्ति होती है और धनसे पुण्य होता है। इसलिये धन और पुण्यका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है अर्थात् ये एक दूसरेके कारक हैं। पुण्यसे धनार्जन होता है और धनसे पुण्यार्जन होता है—

प्राक्पुण्यैर्विपुला सम्पद्वर्त्मकामाप्तिहेतुजा ।

धूयो धर्मेण सामुत्र तथा ताविति च क्रमः ॥

(ब्राह्मण्य ६।२५)

—इसलिये विद्वान् मनुष्यको इसी रीतिसे शिवर्ग-साधन करना चाहिये। स्त्रीरहित तथा निर्धन पुरुषका शिवर्ग-साधनमें अधिकार नहीं है। अतः धार्या-ग्रहणसे पूर्व उत्तम रीतिसे अर्थार्जन अवश्य कर लेना चाहिये। न्यायोपाजित धनकी प्राप्ति होनेपर दार-परिग्रह करना चाहिये। अपने कुलके अनुसूय, धन, क्रिया आदिसे प्रविद्ध, अनिन्दित, सुन्दर तथा धर्मकी साधनभूता कन्याको प्राप्त करना चाहिये। जबतक विवाह नहीं होता है, तबतक पुरुष अर्ध-शरीर ही होता है। इसलिये यथाक्रम उचित अवसर प्राप्त हो जानेपर विवाह करना चाहिये। जैसे एक पहियेका रथ अथवा एक पंखवाला पक्षी किसी कार्यमें सफल नहीं हो पाता, वैसे ही स्त्रीहीन पुरुष भी प्रायः सभी धर्मकृत्योंमें असफल ही रहता है—

एकवक्त्रो रथो यद्देवकामक्षो यथा खगः ।

अधार्थोऽपि नरः तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु ॥

(ब्राह्मण्य ६।३०)

पक्षी-परिग्रहसे धर्म तथा अर्थ दोनोंमें बहुत लाभ होता है और इससे आपसमें प्रीति उत्पन्न होती है, सत्प्रीतिसे कामरूपी तृतीय पुरुषार्थ भी प्राप्त हो जाता है, ऐसा विद्वानोंका कहना है। विवाह-सम्बन्ध तीन प्रकारका होता है—नीच कुलमें, समान कुलमें और उत्तम कुलमें। नीच कुलमें विवाह करनेसे निन्दा होती है। उत्तम कुलवालेके साथ विवाह करनेसे वे अनादर करते हैं। अपनेसे बड़े लोगोंके साथ बनाया गया विवाह-सम्बन्ध, नीचके साथ बनाये गये विवाह-सम्बन्धके प्रायः समान ही होता है। इस कारण अपने समान कुलमें ही विवाह करना चाहिये। मनस्वी लोग विजातीय सम्बन्ध भी ठीक नहीं मानते। यह वैसा ही सम्बन्ध होता है जैसे कोयल और शूकर। जिस सम्बन्धमें प्रतिदिन खेहकी अभिवृद्धि होती रहती है और शिष्टि-सम्पत्तिके समय भी प्राणतक भी देनेमें विचार न किया जाय, वह सम्बन्ध उत्तम कहलता है। परंतु यह बात उनमें ही होती है जो कुल, शील, विद्या और धन आदिमें समान होते हैं। मनुष्योंके खेह और कूटशताकी परीक्षा विपत्तिमें ही होती है। इसलिये विवाह और परामर्श समानके साथ ही करना चाहिये, अपनेसे बड़े तथा छोटेके साथ नहीं। इसीमें अच्छी मित्रता रहती है।

(अध्याय ६)

**विवाह-सम्बन्धी तत्त्वोंका निरूपण, विवाहयोग्य कन्याके लक्षण, आठ प्रकारके विवाह,**

**ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त आदि उत्तम देशोंका वर्णन**

**ब्रह्माजी बोले—**मुनीश्वरो । जो कन्या माताकी संपिण्ड अर्थात् माताकी सात पीढ़ीके अन्तर्गतकी न हो तथा पिताके समान गोत्रकी न हो, वह द्विजातियोंके विवाह-सम्बन्ध तथा संतानोत्पादनके लिये प्रशस्त मानी गयी है<sup>१</sup>। जिस कन्याके भाई न हो और जिसके पिताके सम्बन्धमें कोई जानकार न हो ऐसी कन्यासे पुत्रिक-धर्मकी<sup>२</sup> आशंकासे बुद्धिमान् पुरुषको विवाह नहीं करना चाहिये। धर्मसाधनके लिये चारों वर्णोंको

अपने-अपने वर्णकी कन्यासे विवाह करना श्रेष्ठ कहा गया है।

चारों वर्णोंके इस लोक और परलोकमें हिताहितके साधन करनेवाले आठ प्रकारके विवाह कहे गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

ब्राह्म, दैव, आर्य, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच। अच्छे शील-स्वभाववाले उत्तम कुलके वरको स्वयं बुलाकर उसे अलंकृत और पूजित कर कन्या देना 'ब्राह्म-

१-असंरिण्डा च या मत्तुरसगोत्रा च या पितुः। सा प्रशस्ता द्विजातेन परकर्मिण मयुने ॥ (ब्राह्मण्य ७।१, मनु ३।५)

२-पिता जिसके पुत्रमें अपने पिण्ड-वादीकी आशंका करता है उसे पुत्रिका कहते हैं।

विवाह' है। यज्ञमें सम्यक् प्रकारसे कर्म करते हुए ऋत्विज्को अलंकृत कर कन्या देनेको 'दैव-विवाह' कहते हैं। वरसे एक या दो जोड़े गन्ध-बैल धर्मार्थ लेकर विधिपूर्वक कन्या देनेको 'आर्ष-विवाह' कहते हैं। 'तुम दोनों एक साथ गृहस्थ-धर्मका पालन करो' यह कहकर पूजन करके जो कन्यादान किया जाता है, वह 'प्राजापत्य-विवाह' कहलाता है। कन्याके पिता आदिको और कन्याको भी यथाशक्ति धन आदि देकर स्वच्छन्दतापूर्वक कन्याका ग्रहण करना 'आसुर-विवाह' है। कन्या और वरका परस्पर इच्छासे जो विवाह होता है, उसे 'गान्धर्व-विवाह' कहते हैं। मार-पीट करके रोते-धिल्लताती कन्याका अपहरण करके लाना 'राक्षस-विवाह' है। सोयी हुई, मदसे मतवाली या जो कन्या पागल हो गयी हो उसे गुप्तरूपसे उठा ले आना यह 'पैशाच' नामक अधम कोटिक विवाह है।

ब्राह्म-विवाहसे उत्पन्न धर्मचारी पुत्र दस पीढ़ी आगे और दस पीढ़ी पीछेके कुल्लोका तथा इक्ष्वांसर्वा अपना भी उद्धार करता है। दैव-विवाहसे उत्पन्न पुत्र सात पीढ़ी आगे तथा सात पीढ़ी पीछे इस प्रकार चौदह पीढ़ियोंका उद्धार करनेवाला होता है। आर्ष-विवाहसे उत्पन्न पुत्र तीन आगेले तथा तीन पिछले कुल्लोका उद्धार करता है तथा प्राजापत्य-विवाहसे उत्पन्न पुत्र छः पीछेके तथा छः आगेके कुल्लोको तारता है। ब्राह्मदि आद्य चार विवाहोंसे उत्पन्न पुत्र ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, शीलवान्, रूप, सत्त्वादि गुणोंसे युक्त, धनवान्, पुत्रवान्, यशस्वी, धर्मिष्ठ और दीर्घजीवी होते हैं। शेष चार विवाहोंसे उत्पन्न पुत्र क्रूर-स्वभाव, धर्मद्विषी और मिथ्यावादी होते हैं। अनिन्दित विवाहोंसे संतान भी अनिन्द्य ही होती है और निन्दित विवाहोंकी संतान भी निन्दित होती है। इसलिये आसुर आदि निन्दित विवाह नहीं करना चाहिये। कन्याका पिता वरसे यत्किंचित् भी धन न ले। वरका धन लेनेसे वह अपत्यविक्रयी अर्थात् संतानका बेचनेवाला हो जाता है। जो पति या पिता आदि सम्बन्धी वर्ग मोहवश कन्याके धन आदिसे अपना जीवन चलाते हैं, वे अधोगतिको प्राप्त होते हैं। आर्ष-विवाहमें जो गो-मिथुन लेनेकी बात कही गयी है, वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँ

थोड़ा ले या अधिक, वह कन्याका मूल्य ही गिना जाता है, इसलिये वरसे कुछ भी लेना नहीं चाहिये। जिन कन्याओंके निमित्त वर-पक्षसे दिया हुआ वस्त्राभूषणादि पिता-प्राता आदि नहीं लेते, प्रत्युत कन्याको ही देते हैं, वह विक्रय नहीं है। यह कुम्हारियोंका पूजन है, इसमें कोई हिंसादि दोष नहीं है। इस प्रकार उत्तम विवाह करके उत्तम देशमें निवास करना चाहिये, इससे बहुत यशस्वी प्राप्ति होती है।

**अधियोने पूछा—**ब्रह्मन् ! वह कौन-सा देश है, जहाँ निवास करनेसे धर्म और यशस्वी वृद्धि होती है ?

**ब्राह्माजी बोले—**मुनीश्वरो ! जिस देशमें धर्म अपने चारों चरणोंके स्थिर रहे, जहाँ विद्वान् लोग निवास करते हों और सारे व्यवहार शास्त्रोक्त-रीतिसे सम्पन्न होते हों, वही देश उत्तम और निवास करने योग्य है।

**अधियोने पूछा—**महाराज ! विद्वान् जिस शास्त्रोक्त आचरणको ग्रहण करते हैं और धर्मशास्त्रमें जैसी विधि निर्दिष्ट की गयी है उसे हमें बतलायें, हमें इस विषयमें महान् कौतूहल हो रहा है।

**ब्राह्माजी बोले—**एग-द्वेषसे रहित सज्जन एवं विद्वान् जिस धर्मका नित्य अपने शुद्ध अन्तःकरणसे आचरण करते हैं, उसे आप सुनें—

इस संसारमें किसी वस्तुकी कम्पना करना श्रेष्ठ नहीं है। वेदोंका अध्ययन करना और वेदविहित कर्म करना भी कर्त्तव्य है। संकल्पमें कम्पना उत्पन्न होती है। वेद पढ़ना, यज्ञ करना, व्रत-नियम, धर्म आदि कर्म सब संकल्पमूलक ही हैं। इसीलिये सभी यज्ञ, दान आदि कर्म संकल्पपटनपूर्वक किये जाते हैं। ऐसी कोई भी क्रिया नहीं है, जिसमें काम न हो। जो कोई भी जो कुछ करता है वह इच्छासे ही करता है<sup>१</sup>।

श्रुति, स्मृति, सदाचार और अपने आत्माकी प्रसन्नता—इन चार बातोंसे धर्मका निर्णय होता है। श्रुति तथा स्मृतिमें कहे गये धर्मके आचरणसे इस लोकमें बहुत यश प्राप्त होता है और परलोकमें इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। श्रुति वेदको कहते हैं और स्मृति धर्मशास्त्रका नाम है। इन दोनोंसे सभी बातोंका

१-कामकी गणना चार पुरुषार्थोंमें है। गणकी कामकाके विरुद्ध योग, यज्ञ, जप-तप, धर्मसंस्थापन और गति-श्रुतिकी कम्पना हो शुभ कामना है। गीता (७।११) में भी भगवान् 'धर्मविरुद्धो भूतोऽस्य कर्मोऽपि न फलदा' कहकर यमको इनकी सहाय्यकी ओर प्रेरित करनेकी आज्ञा देते हैं। यह एक प्रकारसे निष्कामताकी जननी है। वैदिक कर्मयोगको भी धर्मविरुद्धगुणमें सत्काम कहनेका यही भाव है।

सर्वसौख्यदम् पुराणं परमं पुण्यं धर्मिण्यं सर्वसौख्यदम् । संक्षिप्त भविष्यपुराणम् ।

विचार करें, क्योंकि धर्मकी जड़ ये ही हैं, जो धर्मिक मूल इन दोनोंका तर्क आदिके द्वारा अपमान करता है, उसे सत्पुरुषोंके तिरस्कृत कर देना चाहिये, क्योंकि वह वेदनिन्दक होनेसे नास्तिक ही है<sup>१</sup>।

जिनके लिये मन्त्रोद्धार गर्भाधानसे इमरानतक संस्कारकी विधि कही गयी है, उन्हीं लोगोंको वेद तथा जपमें अधिकार है। सरस्वती तथा दृषद्वती—इन दो देवन्दियोंके बीचका जो देश है वह देवताओंद्वारा बनाया गया है, उसे ब्रह्मावर्त कहते हैं। उस देशमें चारों वर्ण और उपवर्णोंमें जो आचार परम्परासे चल आया है, उसका नाम सदाचार है। कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, पाञ्चाल और मूरघेनदेश (मधुरा)—ये

ब्रह्मर्षियोंके द्वारा सेवित हैं, परंतु ब्रह्मावर्तसे कुछ न्यून है। इन देशोंमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंसे सब देशके मनुष्य अपना-अपना आचार सीखते हैं<sup>२</sup>। हिमालय और विन्ध्यपर्वतके बीच, विनशनसे पूर्व और प्रयागसे पश्चिम जो देश है उसे मध्यदेश कहते हैं। इसी दोनों पर्वतोंके बीच पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्रतक जो देश है वह आर्यावर्त कहलाता है<sup>३</sup>। जिस देशमें कुम्भसागर मृग अपनी इच्छासे नित्य विचरण करें, वह देश यज्ञ करने योग्य होता है। इन शुभ देशोंमें ब्राह्मणको निवास करना चाहिये। इससे भिन्न म्लेच्छ देश हैं। हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार मैं यह देशव्यवस्था आप सबको संक्षेपमें सुनायी है।

(अध्याय ७)



### धन एवं स्त्रीके तीन आश्रय तथा स्त्री-पुरुषोंके पारस्परिक व्यवहारका वर्णन

**ब्रह्माजी बोले—**मुनीश्वरो ! उत्तम रीतिसे विवाह समाप्त कर गृहस्थको जो करना चाहिये, उसका मैं वर्णन करता हूँ।

सर्वप्रथम गृहस्थको उत्तम देशमें ऐसा आश्रय ढूँढ़ना चाहिये, जहाँ वह अपने धन तथा स्त्रीके घलीभूति रक्षा कर सके। बिना आश्रयके इन दोनोंकी रक्षा नहीं हो सकती। ये दोनों—धन एवं स्त्री—त्रिवर्गिक हेतु हैं, इसलिये इनकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा अवश्य करनी चाहिये। पुरुष, स्थान और घर—ये तीनों आश्रय कहलाते हैं। इन तीनोंमें धन आदिकर रक्षण और अर्धोपार्जन होता है। कुलीन, पतिभानु, बुद्धिमान्, सत्यवादी, विनयी, धर्मात्मा और दृढव्रती पुरुष आश्रयके योग्य होता है। जहाँ धर्मात्मा पुरुष रहते हों, ऐसे नगर अथवा ग्राममें निवास करना चाहिये। ऐसे स्थानमें गुरुजनोंकी अनुमति लेकर अथवा उस ग्राम आदिमें बसनेवाले श्रेष्ठजनोंकी सहमति प्राप्त कर रहनेके लिये अविवादित स्थलमें घर बनाना चाहिये, परंतु

किसी पड़ोसियोंके कष्ट नहीं देना चाहिये। नगरके द्वार, चौक, यज्ञशाला, शिल्पियोंके रहनेके स्थान, जुआ खेलने तथा मीस-मछादि बेचनेके स्थान, पाण्डित्यों और राजाके नौकरोंके रहनेके स्थान, देवमन्दिरके मार्ग तथा राजमार्ग और राजाके महल—इन स्थानोंसे दूर, रहनेके लिये अपना घर बनाना चाहिये। स्वच्छ, मुख्य मार्गवाला, उत्तम व्यवहारवाले लोगोंसे आवृत्त तथा दुष्टोंके निवाससे दूर—ऐसे स्थानमें गृहका निर्माण करना चाहिये। गृहके भूमिकी जाल पूर्व अथवा उत्तरकी ओर हो। रसेईपर, ज्ञानागार, गोशाला, अन्तःपुर तथा शयन-कक्ष और पुजापर आदि सब अलग-अलग बनाये जायें। अन्तः-पुरकी रक्षाके लिये वृद्ध, जितेन्द्रिय एवं विद्वस्त व्यक्तियोंको नियुक्त करना चाहिये। स्त्रियोंकी रक्षा न करनेसे वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं और अनेक प्रकारके दोष भी होते देखे गये हैं। स्त्रियोंको कभी स्वातन्त्र्यता न दे और न उनपर विश्वास करें।

१-विश्वे धर्ममूलं स्यात् स्मृतिशीले तपेन च । तथाचाश्रयं साधुकायस्यस्मृतिरेव ॥

स्मृतिस्मृत्युदितं धर्मस्मृतिज्ञानं सदा नरः । प्राप्य चेह परं वीर्यं यतिं शस्त्रमलौकिकम् ॥

स्मृतिसु वेदो विज्ञेयो धर्मशस्त्रं तु वै स्मृतिः । ते सर्वैरेव मोक्षंते तान्तां धर्मै हि विवर्धते ॥

योऽवमान्यते ते योषे हेतुःशस्त्रश्रमाद् द्विजः । स साधुर्धर्मोत्साहयै नास्तिको वेदनिन्दकः ॥

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । एतच्चतुर्विधं विज्ञः महादार्ढ्यस्य लक्षणम् ॥

२-एतद्देशप्रसूतस्य सत्कारशद्व्यवस्थः । स्त्री स्वं धर्मिणं शिष्येन पुंस्यैव सर्वमान्यताः ॥

२-आसमुद्रानु वै पूर्वदासमुद्रानु पश्चिमान् । तयोर्व्यक्तं निर्वर्णवर्णं विदुर्बुधः ॥

(ब्राह्मण्य ७।५२, ५४—५७)

(ब्राह्मण्य ७।५३)

(ब्राह्मण्य ७।६५)



किन्तु व्यवहारमें विश्वस्तके समान ही चेष्टा दिखानी चाहिये। विशेषरूपसे उसे पाकपि क्रियाओंमें ही निपुण करना चाहिये। स्त्रीको किसी भी समय खाली नहीं बैठना चाहिये।

दरिद्रता, अति-रूपव्रता, असत्-जनोक सङ्ग, स्वतन्त्रता, पेयादि द्रव्यका पान करना तथा अभक्ष्य-भक्षण करना, कथा, गोष्ठी आदि प्रिय लगना, काम न करना, जादू-टोना करनेवाली, भिक्षुकी, कुट्टिनी, दाई, नटी आदि दुष्ट स्त्रियोंके सङ्ग उद्यान, यात्रा, निमन्त्रण आदिमें जाना, अत्यधिक तीर्थयात्रा करना अथवा देवताके दर्शनके लिये घूमना, पतिके साथ बहुत वियोग होना, कठोर व्यवहार करना, पुरुषोंसे अत्यधिक वार्तालाप करना, अति क्रूर, अति सौम्य, अति निद्रा होना, ईर्ष्यालु तथा कृपण होना और किसी अन्य स्त्रीके वशीभूत हो जाना—ये सब स्त्रीके दोष उसके विनाशके हेतु हैं। ऐसी स्त्रियोंके अधीन यदि पुरुष हो जाता है तो वह भी निन्दनीय हो जाता है। यह पुरुषकी ही अयोग्यता है कि उसके भृत्य बिगड़ जाते हैं। स्वामी यदि कुशल न हो तो भृत्य और स्त्री बिगड़ जाते हैं, इसलिये सम्पत्तिके अनुसार यथोचित रीतिसे ताड़न और दण्डनसे जिस भीति हो इनकी रक्षा करने चाहिये। नारी पुरुषका आधा शरीर है, उसके बिना धर्म-क्रियाओंकी साधना नहीं हो सकती। इस कारण स्त्रीका सदा आदर करना चाहिये। उसके प्रतिकूल नहीं करना चाहिये।

स्त्रीके पतिव्रता होनेके प्रायः तीन कारण देखे जाते हैं—(१) पर-पुरुषमें विरक्ति, (२) अपने पतिमें प्रीति तथा (३) अपनी रक्षामें समर्थता<sup>१</sup>।

उत्तम स्त्रीको साम तथा दामनीतिसे अपने अधीन रखे।

मध्यम स्त्रीको दान और भेदसे और अधम स्त्रीको भेद और दण्डनीतिसे वशीभूत करे। परंतु दण्ड देनेके अनन्तर भी साम-दान आदिसे उसके प्रसन्न कर ले। भर्ताका अहित करनेवाली और व्यभिचारिणी स्त्री कालकूट विषके समान होती है, इसलिये उसका परित्याग कर देना चाहिये। उत्तम कुलमें उत्पन्न पतिव्रता, किनार और भर्ताका हित चाहनेवाली स्त्रीका सदा आदर करना चाहिये। इस रीतिसे जो पुरुष चलता है वह विघर्षकी प्राप्ति करता है और लोकमें सुख पाता है।

**ब्रह्माजी बोले—**मुनीश्वरो ! मैंने संक्षेपमें पुरुषोंको स्त्रियोंके साथ कैसे व्यवहार करना चाहिये, यह बताया। अब पुरुषोंके साथ स्त्रियोंको कैसा व्यवहार करना चाहिये, उसे बता रहा हूँ आप सब सुने—

पतिकी सम्पत्ति आराधना करनेसे स्त्रियोंकी पतिका प्रेम प्राप्त होता है तथा फिर पुत्र तथा स्वर्ग आदि भी उसे प्राप्त हो जाते हैं, इसलिये स्त्रीको पतिकी सेवा करना आवश्यक है। सम्पूर्ण कार्य विधिपूर्वक किये जानेपर ही उत्तम फल देते हैं और विधि-निषेधका ज्ञान शास्त्रसे जाना जाता है। स्त्रियोंका शास्त्रमें अधिकार नहीं है और न ग्रन्थोंके धारण करनेमें अधिकार है। इसलिये स्त्रीद्वारा शासन अनर्थकारी माना जाता है<sup>२</sup>। स्त्रीको दूसरेमें विधि-निषेध जाननेकी अपेक्षा रहती है। पहले तो उसे भर्ता सब धर्मोंका निर्देश करता है और भर्ताके मरनेके अनन्तर पुत्र उसे विधवा एवं पतिव्रताके धर्म बतलाये। बुद्धिके निकलनेके छोड़कर अपने बड़े पुरुष जिस मार्गपर चले हो उसीपर चलनेमें उसका सब प्रकारसे कल्याण है। पतिव्रता स्त्री ही गृहस्थके धर्मोंका मूल है। (अध्याय ८-९)

## पतिव्रता स्त्रियोंके कर्तव्य एवं सदाचारका वर्णन, स्त्रियोंके लिये गृहस्थ-धर्मके

### उत्तम व्यवहारकी आवश्यक बातें<sup>३</sup>

**ब्रह्माजी बोले—**मुनीश्वरो ! गृहस्थ-धर्मका मूल ध्यानपूर्वक सुने

पतिव्रता स्त्री है, पतिव्रता स्त्री पतिका आराधन किस विधिसे आराधना करने योग्य पतिके आराधनकी विधि यह है करे, उसका अब मैं वर्णन करता हूँ। आप सब इसे कि उसकी चित्तवृत्तिको भलीभाँति जानकर उसके अनुकूल

१-सतीति प्रायशः स्त्रीणां प्रदुष्टं कल्याणम् । परपुंसमसंप्रीतिः त्रिषु धीतिः तद्वत्तु ॥ (ब्राह्मपर्व ८।६६)

२-शस्त्राधिकारी न स्त्रीणां न ग्रन्थानां च धारणे । तस्मादिदानीं मन्यन्ते तच्छस्त्रसम्पन्नकम् ॥ (ब्राह्मपर्व ९।६)

३-इस प्रकारमें आगेके कुछ अंश—भोरका, व्यापार, कृषि और लोक-संचालन आदि विषय प्रायः कार्ताशास्त्रसे सम्बन्धित हैं, जो लगभग नष्टप्राय हो गये हैं। इनका संक्षिप्त विवरण भविष्यपुराणमें मिलता है, जिसके कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे हैं।

चलना और सदा उसका हित चाहते रहना। अर्थात् पतिके चित्तके अनुकूल चलना और यथोचित व्यवहार करना, यह पतिव्रताका मुख्य धर्म है—

आराध्यानां हि सर्वेषामयमाराधने विधिः ।

चित्तज्ञानानुवृत्तिश्च हितैकित्वं च सर्वदा ॥

(आठवली १०।१)

पतिके माता-पिता, बहिन, ज्येष्ठ भाई, चाचा, आचार्य, मामा तथा वृद्ध स्त्रियों आदिका उसे आदर करना चाहिये और जो सम्बन्धमें अपनेसे छोटे हों, उनके संग्रहपूर्वक अज्ञात होनी चाहिये। जहाँ भी अपनेसे बड़े सास-ससुर या गुरु विद्यमान हों या अपना पति उपस्थित हो वहाँ उनके अनुकूल ही आचरण करना चाहिये, क्योंकि यही चरित्र स्त्रियोंके लिये प्रशस्त माना गया है। हास-परिहास करनेवाले पतिके मित्र और देवर आदिके साथ भी एकान्तमें बैठकर हास-परिहास नहीं करना चाहिये। किसी पुरुषके साथ एकान्तमें बैठना, स्वच्छन्दता और अत्यधिक हास-परिहास करना प्रायः कुलीन स्त्रियोंके पतिव्रत-धर्मको नष्ट करनेके कारण बनते हैं। सहसा दुष्टके संसर्गमें अथवा युवकोंके साथ हास-परिहास करना उचित नहीं होता, क्योंकि स्वतन्त्र स्त्रियोंकी विभीकता एकान्तमें बुरे आचरणके लिये सफल हो जाती है। अतः उत्तम स्त्रीको ऐसा नहीं करना चाहिये। इस रीतिसे स्त्रीका शील नहीं खिण्णता और कुलकी निन्दा भी नहीं होती। बुरे संकेत करनेवाले और बुरे भावोंको प्रकट करनेवाले पुरुषोंको भाई या पिताके समान देखते हुए स्त्रीको चाहिये कि उनका सर्वथा परित्याग कर दे। दुष्ट पुरुषोंका अनुचित आग्रह स्वीकार करना, उनके साथ वार्तालाप करना, हासयुक्त संकेत अथवा कुटुम्बिक ध्यान देना, दूसरे पुरुषके हाथसे कुछ लेना या उसे देना सर्वथा परित्याज्य है। घरके द्वारपर बैठने या खड़ा होने, राजमार्गकी ओर देखने, किसी अपरिचित देश या घरमें जाने, उद्यान और प्रदर्शनी आदिमें रुचि रखनेसे स्त्रीको वचना चाहिये। बहुत पुरुषोंके मध्यसे निकलना, ऊँचे स्वरसे बोलना, हैसो-मजाक करना एवं अपनी दृष्टि, खाणी तथा शरीरसे वात्सल्य प्रकट करना, सौख्यारना तथा सीतकारी धरना, दुष्ट स्त्री, भिक्षुकी, तान्त्रिक, मान्त्रिक आदिमें आसक्ति और उनके मण्डलोंमें निवास करनेकी इच्छा—ये सब बातें पतिव्रता स्त्रीके लिये

त्याज्य है। इस प्रकारके आचरण तो प्रायः दुष्टोंके लिये ही उचित होते हैं, कुलीन स्त्रियोंके लिये नहीं। इन निन्दनीय बातोंसे अपनी रक्षा करते हुए स्त्रियोंको चाहिये कि वे अपने पतिव्रत-धर्म तथा कुलकी मर्यादाकी रक्षा करें।

उत्तम स्त्री पतिको मन, वचन तथा कर्मसे देवताके समान समझे और उसकी अर्धाङ्गिनी बनकर सदा उसके हित करनेमें तत्पर रहे। देवता और पितरोंके कृत्य तथा पतिके स्नान, भोजन एवं अभ्यागतोंके स्वागत-सत्कार आदिमें बड़ी ही साधधानी और समयका ध्यान रखे। वह पतिके मित्रोंको मित्र तथा शत्रुओंको शत्रुके समान समझे। अधर्म और अनर्थसे दूर रहकर पतिको भी उससे बचाये। पतिको क्या प्रिय है और कौन-सा भोजनवादी पदार्थ उसके लिये हितकर है तथा कैसे पतिके साथ विचारों आदिमें समानता आवे इस बातको सर्वदा उसे ध्यानमें रखना चाहिये, साथ ही उसे सेवकोंको असेतुष्ट नहीं रखना चाहिये।

रहनेका घर और शरीर—ये दो गृहिणीयोंके लिये मुख्य हैं। इसीलिये प्रयत्नपूर्वक वह सर्वप्रथम अपने घर तथा शरीरको सुसंस्कृत (पवित्र) रखे। शरीरसे भी अधिक स्वच्छ और भूषित धारको रखे। दोनों कालोंमें पूजा-अर्चना करे और व्यवहारकी सभी वस्तुओंको यथाविधि साफ रखे। प्रातः, पध्याह्न और सायंकालके समय धारका मार्जनकर स्वच्छ करे। गोशय आदिको स्वच्छ करवा ले। दास-दासियोंको भोजन आदिसे संतुष्ट कर उन्हें अपने-अपने कार्योंमें लगाये। स्त्रीको उचित है कि वह प्रयोगमें आनेवाले शाक, कन्द, मूल, फल आदिके बीजोंका अपने-अपने समयपर संग्रह कर ले और समयपर इन्हें खेत आदिमें बुआ दे। तबि, कौंस, लोह, काष्ठ और मिट्टीसे बने हुए अनेक प्रकारके वर्तनोंका घरमें संग्रह रखे। जल रखने तथा जल निकालने और जल पीनेके कलशदि पात्र, शाक-भाजी आदिसे सम्बद्ध विभिन्न पात्र, घी, तेल, दूध, दही आदिसे सम्बद्ध वर्तन, मूसल, ओखली, झाड़ू, चलनी, सेंदसी, सिल, लोढ़ा, चक्की, चिमटा, कड़ाही, तवा, तण्डू, बाट, पिटार, संदूक, पलंग तथा चौकी आदि गृहस्थोंके प्रयोगमें आनेवाले आवश्यक उपकरणोंकी प्रयत्नपूर्वक व्यवस्था करनी चाहिये। उसे चाहिये कि वह हींग, जीरा, पिप्पल, राई, मरिच, धनिया तथा सोठ आदि अनेक

प्रकारके मसाले, लवण, अनेक प्रकारके सार-पदार्थ, सिरका, अचार आदि, अनेक प्रकारकी दालें, सब प्रकारके तेल, सुखा काष्ठ, विविध प्रकारके दूध-दहीसे बने पदार्थ और अनेक प्रकारके कन्द आदि जो-जो भी वस्तु नित्य तथा नैमित्तिक कार्योंमें अपेक्षित हो, उन्हें अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रयत्नपूर्वक पहलेसे ही संग्रह करना चाहिये, जिससे समयपर उन्हें दूँड़ना न पड़े। जिस वस्तुकी भविष्यमें आवश्यकता पड़े, उसे पहलेसे ही संग्रहमें रक्खना चाहिये। सूखे-गले, पिसे, बिना पिसे तथा कड़े और पोके अन्नदि पदार्थोंका अच्छी तरह हानि-लाभ विचारकर ही संग्रह करना चाहिये।

पतिव्रता नारी गुरु, बालक, वृद्ध, अश्वगत और पतिकी सेवामें आलस्य न करे। पतिकी शय्या स्वयं विछाड़े। देकर आदिके द्वारा पहिने हुए कपड़, माला तथा अभूषणोंको वह कभी न तो धारण करे और न इनके शय्या, आसन आदिपर बैठे। गौका इतना दूध निकाले कि जिसमें बछड़े भूखे न रह जायें। दहीसे भी बनाये। कर्वाँ, डरद और वसन्त ऋतुमें गायको दो बार दुहना चाहिये, शेष ऋतुओंमें एक ही बार दुहे। चरवाहे, म्वालें आदिको चरवाहीके बदले रुपये अथवा अनाज दे। गोदोहक बछड़ोंका भाग अपने प्रयोगमें न ल्य सकें, यह देखता रहे, साथ ही यह भी ध्यान रखे कि दूध दुहनेवाला समयपर दूध दुह रहा है या नहीं, क्योंकि दोहनके पथोचित समयपर ही गायको दुहना चाहिये। समयका अतिक्रमण अच्छा नहीं होता। जब गाय व्याय जाय, तब एक महीनेतक उसका दूध नहीं निकालना चाहिये, उसे बछड़ोंको ही पीने देना चाहिये। फिर एक महीनेतक एक धनक, तदनन्तर एक महीनेतक दो धनका और फिर तीन धनका दूध निकालना चाहिये। एक या दो धन बछड़ेके लिये अवश्य छोड़ना चाहिये। यथासमय तिलकी सली, कोमल हरी घास, नमक तथा जल आदिसे बछड़ोंका पालन करना चाहिये। कड़ी, गर्भणी, दूध देनेवाली, बछड़ेवाली तथा बछियावाली—इन पाँचों गायोंका घास आदिके द्वारा समानरूपसे बराबर पालन-पोषण करते रहना चाहिये। किसीको भी नून तथा अधिक न समझे। गौके गलेमें घंटी अवश्य बाँधनी चाहिये। एक तो घंटी बाँधनेसे गौकी शोषा होती है, दुसरे उसके शब्दोंसे कोई जीव-जन्तु डरकर उसके पास नहीं आते, इससे

उसकी रक्षा भी होती है और गौ कहीं चली जाय तो उसके शब्दसे उसे ढूँढ़ा भी जा सकता है। हिंसक पशुओं और सपोंसे रहित, घास और जलसे युक्त, छायादार घने वृक्षोंवाले तथा पशुओंके रोगसे रहित स्थानपर गायोंके रहनेके लिये गोष्ठ या गोशाला बनानी चाहिये। कृषि-कार्यमें लगे सेवकोंके लिये देश-काल और उनके कार्यके अनुरूप भोजन तथा वेतनका प्रबन्ध करना चाहिये। खेत, खलिहान अथवा वाटिका आदिमें जहाँ भी सेवक कामपर लगे हों वहाँ बार-बार जाकर उनके कार्य एवं कार्यके प्रति उनके मनोयोगकी जानकारी करनी चाहिये। उनमेंसे जो योग्य हो, अच्छा कार्य करता हो, उसका अधिक सत्कार करे और उसके लिये भोजन, आवास आदिकी औरोंसे विशेष व्यवस्था करे। समय-समयपर सब प्रकारके अन्न और कन्द-मूलके खोजोंका संग्रह करे तथा यथासमय उनकी सुआई कर दे।

धरका मूल है स्त्री और गृहस्थाश्रमका मूल है अन्न। इसीलिये भोज्यादि अन्न पदार्थोंमें धरकी स्त्रीको मुक्तहस्त नहीं होना चाहिये अथवा अन्नको वह वृथा नष्ट न करे, सदा संजोकर रखे। उसे मितव्ययी होना चाहिये। अन्नदिमें मुक्तहस्त होना गृहिणियोंके लिये अच्छा नहीं माना जाता। वह संचय करनेमें और खर्च करनेमें मधुमक्खी, वल्मीक और अन्नको समान हानि-लाभ देखकर अन्नको थोड़ा-सा समझकर उसकी अंशज्ञा न करे। क्योंकि थोड़ा-थोड़ा हो मधु एकत्र करती हुई मधुमक्खी कितना एकत्र कर लेती है ? इसी प्रकार दीमक जग-जग-सी मिट्टी लाकर कितना ऊँचा वल्मीक बना लेती है ? किन्तु इसके विपरीत बहुत-सा बनाया गया अन्न भी नित्य थोड़ा-थोड़ा आँसुमें छल्लते रहनेसे कुछ दिनोंमें समाप्त हो जाता है। इसी रीतिसे सभी वस्तुओंका संग्रह और खर्च हो जाता है। इसमें थोड़ी वस्तुकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये। धरके सभी कार्य स्त्री-पुरुषके एकमत होनेपर ही अच्छे होते हैं।

जगत्में ऐसे भी हजारों पुरुष हैं, जिनके सब कार्योंमें स्त्रीकी प्रधानता रहती है। यदि स्त्री बुद्धिमान् और सुशील हो तो कुछ हानि नहीं होती, किन्तु इसके विपरीत होनेपर अनेक प्रकारके दुःख होते हैं। इसीलिये स्त्रीकी योग्यता-अयोग्यताको ठीकसे समझकर बुद्धिमान् पुरुषको उसे कार्यमें नियुक्त करना

चाहिये। इस प्रकार योग्यतासे कार्यमें नियुक्त की गयी स्त्रीको चाहिये कि वह सौभाग्यवश या अपने उद्यम आदिसे अपने पतिको भलीभाँति सेवा कर उसे अपने अनुकूल बनाये।

**ब्रह्माजी बोले—**हे मुनीश्वरे! घरमें स्त्री प्रातःकाल सबसे पहले उठे और अपने कार्यमें प्रवृत्त हो जाय तथा रात्रिमें सबसे पीछे भोजन करे और सबके बादमें सोये। पति तथा ससुर आदिके उपस्थित न रहनेपर स्त्रीको घरकी देहलै पार नहीं करनी चाहिये। वह बड़े सबैरी ही जग जाय। स्त्री पतिके समीप बैठकर ही सब सेवकोंको कामकी आज्ञा दे, बाहर न जाय। जब पति भी जग उठे तब वहकि सभी आवश्यक कार्य करके, घरके अन्य कार्योंको भी प्रमादरहित होकर करे। रात्रिके पहले ही उत्तम वस्त्राभूषणको उतारकर घरके कार्योंको करने योग्य साधारण वस्त्रोंको पहनकर तत्काल समयमें करने योग्य कार्योंको यथाक्रम करना चाहिये। उसे चाहिये कि सबसे पहले रसोई, चुल्हा आदिको भलीभाँति लीप-पोतकर स्वच्छ करे। रसोईकी पात्रोंको मँज-धो और पोंछकर वहाँ रखे तथा अन्य भी सब रसोईकी सामग्री वहाँ एकत्र करे। रसोई-घर न तो अधिक गुप्त (बंद) हो और न एकदम खुला ही हो। स्वच्छ, विस्तीर्ण और जिसमेंसे धुआँ निकल जाय ऐसा होना चाहिये। रसोई-घरके भोजन पकानेवाले पात्रोंको तथा दूध-दहीके पात्रोंको सीपी, रसी अथवा वृक्षकी छत्रसे सूख राखकर अंदर-बाहरसे अच्छी तरह धो लेना चाहिये। रात्रिमें धुएँ-आगके द्वारा तथा दिनमें धूपमें उन्हें सुखा लेना चाहिये, जिससे उन पात्रोंमें रखा जानेवाला दूध-दही आदि सफ़्त न होने पाये। बिना शोधित पात्रोंमें रखा दूध-दही विकृत हो जाता है। दूध-दही, घी तथा बने हुए पाकआदिको सावधानीसे रखना चाहिये और उसका निरीक्षण करते रहना चाहिये।

स्नानादि आवश्यक कृत्य करके उसे अपने हाथसे पतिके लिये भोजन बनाना चाहिये। उसे यह विचार करना चाहिये कि मधुर, क्षार, अम्ल आदि रसोंमें कौन-कौन-सा भोजन पतिके प्रिय है, किस भोजनसे अंगिको वृद्धि होती है, क्या पथ्य है और कौन भोजन कालके अनुरूप होगा, क्या अपथ्य है, उत्तम स्वास्थ्य किस भोजनसे प्राप्त होगा और कौन भोजन कालके अनुरूप होगा आदि बातोंका भलीभाँति विचारकर और निर्णयकर उसे वैसा ही भोजन प्रीतिपूर्वक बनाना चाहिये।

रसोई-घरमें सदासे काम करनेवाले, विधस्त तथा आहारका परीक्षण करनेवाले व्यक्तिको ही सूपकारके रूपमें नियुक्त करना चाहिये। रसोईके स्थानमें किसी अन्य दुष्ट स्त्री-पुरुषोंको न आने दे। इस विधिसे भोजन बनाकर सब पदार्थोंको स्वच्छ पात्रोंसे आच्छादित कर देना चाहिये, फिर रसोई-घरसे बाहर आकर पसीने आदिको पोंछकर, स्वच्छ होकर, गन्ध, ताम्बूल, माल-वस्त्र आदिसे अपनेको घोड़ा-सा भूषित करे फिर भोजनके निमित्त यथोचित समयपर विनयपूर्वक पतिको बुलाये। सब प्रकारके व्यञ्जन परोसे, जो देश-कालके विपरीत न हो और जिनका परस्पर विरोध भी न हो, जैसे दूध और लवणका है। जिस पदार्थमें पतिकी अधिक रुचि देखे उसे और परोसे। इस प्रकार पतिको प्रीतिपूर्वक भोजन कराये।

सपत्नियोंको अपनी बहिनके समान तथा उनकी संतानोंको अपनी संतानसे भी अधिक प्रिय समझे। उनके भाई-बन्धुओंको अपने भाइयोंके समान ही समझे। भोजन, वस्त्र, आभूषण, ताम्बूल आदि जबतक सपत्नियोंको न दे दे, तबतक स्वयं भी ग्रहण न करे। यदि सपत्नीको अथवा किसी अश्रित जनको कुछ रोग हो जाय तो उसकी चिकित्साके लिये औषधि आदिकी भलीभाँति व्यवस्था कराये। नौकर, बन्धु और सपत्नीको दुःखी देना स्वयं भी उन्हींके समान दुःखी होवे और उनके सुखमें सुख माने। सभी कर्योंसे अवकाश मिलनेपर सो जाय और रात्रिमें उठकर अनावश्यक धन-व्यय कर रहे पतिको एकजगमें धीरे-धीरे समझाये। घरका सब कृत्य पतिको एकजगमें बताये, परंतु सपत्नियोंके दोषोंको न कहे, किन्तु यदि कोई उनका व्यभिचार आदि बड़ा दोष देखे, जिसे गुप्त रखनेसे कोई अनर्थ हो तो ऐसा दोष पतिको अवश्य बता देना चाहिये। दुर्भण, निःसंतान तथा पतिद्वारा तिरस्कृत सपत्नियोंको सदा आश्वासन दे। उन्हें भोजन, वस्त्र, आभूषण आदिसे दुःखी न होने दे। यदि किसी नौकर आदिपर पति कोप करे तो उसे भी आश्वासन करना चाहिये, परंतु यह अवश्य विचार कर लेना चाहिये कि इसे आश्वासन देनेसे कोई हानि नहीं होनेवाली है।

इस प्रकार स्त्री अपने पतिकी सम्पूर्ण इच्छाओंको पूर्ण करे। अपने सुस्तके लिये जो अपीष्ट हो, उसका भी परित्याग कर पतिके अनुकूल ही सब कार्य करे। क्योंकि स्त्रियोंके देवता



पति, क्योंकि देवता ब्राह्मण हैं तथा ब्राह्मणोंके देवता अग्नि हैं और प्रजाओंका देवता राजा है ।

स्त्रियोंके त्रिवर्ग-प्राप्तिके दो मुख्य उपाय हैं—प्रथम सब प्रकारसे पतिको प्रसन्न रखना और द्वितीय आचरणकी पवित्रता । पतिके चित्तके अनुकूल चलनेसे वैसी प्रीति पतिकी स्त्रीपर होती है वैसी प्रीति रूपसे, यौवनसे और अलंकारादि आभूषणोंसे नहीं होती<sup>१</sup> । क्योंकि प्रायः यह देखा जाता है कि उत्तम रूप और युवावस्थावाली स्त्रियाँ भी पतिके विपरीत आचरण करनेसे दौर्भाग्यको प्राप्त करती हैं और अति क्रूरप तथा हीन अवस्थावाली स्त्रियाँ भी पतिके चित्तके अनुकूल चलनेसे उनकी अत्यन्त प्रिय हो जाती हैं । इसलिये पतिके चित्तका अभिप्राय भलीभाँति समझना और उसके अनुकूल आचरण करना यही स्त्रियोंके लिये सब सुखोंका हेतु है और यही समस्त श्रेष्ठ योग्यताओंका कारण है । इसके बिना तो स्त्रीके अन्य सभी गुण बन्धुत्वको प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् निष्फल हो जाते हैं और अनर्थके कारण बन जाते हैं । इसलिये स्त्रीको अपनी योग्यता (पतिव्रतता) सर्वथा बढ़ाते रहना चाहिये ।

पतिके अनेक समय जानकर उनके आनेके पूर्व ही वह घरको स्वच्छ कर बैठनेके लिये उत्तम आसन बिछा दे तथा पतिदेवके आनेपर स्वयं अपने हाथसे उनके चरण धोकर उन्हें आसनपर बैठाये और पंखा हाथमें लेकर धीरे-धीरे दुलारये और सावधान होकर उनकी आज्ञा प्राप्त करनेकी प्रतीक्षा करे । ये सब काम दासी आदिसे न करवाये । पतिके ज्ञान, अहार, पानादिमें स्पृहा दिखाये । पतिके संकेतोंको समझकर सावधानीपूर्वक सभी कर्तव्योंको करे और भोजनादि निवेदित करे । अपने बन्धु-बान्धवों तथा पतिके बन्धुओं और सपत्नीके साथ स्वागत-सत्कार पतिकी इच्छानुसार करे अर्थात् जिसपर पतिकी रुचि न देखे उससे अधिक शिष्टाचार न करे । स्त्रियोंके लिये सभी अवस्थाओंमें स्वकुलकी अपेक्षा पतिकुल ही विशेष पूज्य होता है; क्योंकि कोई भी कुलीन पुरुष अपनी कन्यासे उपकारकी आशा भी नहीं रखता और जो रखता है वह

अनुचित ही है । कन्याका विवाह करनेके बाद फिर उससे अपनी आजीविकाकी इच्छा करना यह महात्मा और कुलीन पुरुषोंकी रीति नहीं है, अतः स्त्रीके सम्बन्धियोंको चाहिये कि वे केवल मित्रताके लिये, प्रीतिके लिये ही सम्बन्ध बढ़ानेकी इच्छा करें और प्रसंगवश यथाशक्ति उसे कुछ देते भी रहें । उससे कोई वस्तु लेनेकी इच्छा न रखें । कन्याके श्रापकेवालोंको कन्याके स्वामीकी रक्षाकर प्रयत्न सर्वथा करना चाहिये, उनकी परस्पर प्रीति-सम्बन्धकी चर्चा सर्वत्र करनी चाहिये और अपनी मिथ्या प्रशंसा नहीं करनी चाहिये । साधु-पुरुषोंका व्यवहार अपने सम्बन्धियोंके प्रति ऐसा ही होता है ।

जो स्त्री इस प्रकारके सद्वृत्तको भलीभाँति जानकर व्यवहार करती है, वह पति और उसके बन्धु-बान्धवोंको अत्यन्त मान्य होती है । पतिकी प्रिय, साधु वृत्तवाली तथा सम्बन्धियोंमें प्रसिद्धिसे प्राप्त होनेपर भी स्त्रीको लोकापवादसे सर्वदा दूरते रहना चाहिये; क्योंकि सीता आदि उत्तम पतिव्रताओंको भी लोकापवादके कारण अनेक कष्ट भोगने पड़े थे । भोग्य होनेके कारण, गुण-दोषोंका ठीक-ठीक निर्णय न कर पानेसे तथा प्रायः अविनयशीलताके कारण स्त्रियोंके व्यवहारको समझना अत्यन्त दुष्कर है । ठीक प्रकारसे दूसरोंकी मनोकृतिको न समझनेके कारण तथा कपट-दृष्टिके कारण एवं स्वच्छन्द हो जानेसे ऐसी बहुत ही कम स्त्रियाँ हैं जो कलत्रकित नहीं हो जाती । दैवयोग अथवा कुयोगसे अथवा व्यवहारकी अनभिज्ञतासे शुद्ध हृदयवाली स्त्री भी लोकापवादको प्राप्त हो जाती है । स्त्रियोंका यह दौर्भाग्य ही दुःख भोगनेका कारण है । इसका कोई प्रतीकार नहीं, यदि है तो इसकी ओपधि है उत्तम चरित्रका आचरण और लोक-व्यवहारको ठीकसे समझना ।

**ब्रह्माजी बोले—**मुनीश्वरे ! उत्तम आचरणवाली स्त्री भी यदि कुछ सङ्ग करे या अपनी इच्छासे जहाँ चाहे चले जाय, तो उसे अवश्य कलत्रक लगाता है और झूठा दोष लगानेसे कुल भी कलत्रकित हो जाता है । उत्तम कुलकी स्त्रियोंके लिये यह आवश्यक है कि वे किसी भी भाँति अपने कुल—मातृकुल,

१-भर्ताभिदेवता नार्था वर्णा ब्राह्मणदेवताः । ब्राह्मण इतिदेवतानु प्रजा राजन्देवताः ॥

तस्मां त्रिवर्गसंसिद्धौ यदिदं कारणद्वयम् । भर्तुर्देवतानुत्वं यत् प्रीत्यभिनुत् ॥

न तथा यौवनं लोके तपि रूपं न भूषणम् । यथा त्रिवर्गानुत्वं सिद्धं शब्दनिबधम् ॥

पितृकुल एवं संततिको कलंक न लगने दे । ऐसी कुलीन स्त्रीसे ही धर्म, अर्थ तथा काम—इस त्रिवर्गकी सिद्धि हो सकती है । इसके विपरीत बुरे आचरणवाली स्त्रियाँ अपने कुलको नरकमें डालती हैं और चरित्रको ही अपना आभूषण माननेवाली स्त्रियाँ नरकमें गिरे हुआँको भी निकाल लेती हैं । जिन स्त्रियोंका पति पतिके अनुकूल है और जिनका उत्तम आचरण है, उनके लिये राख, सुवर्ण आदिके आभूषण भारस्वरूप ही हैं । अर्थात् स्त्रियोंके यथार्थ आभूषण ये दो हैं—पतिकी अनुकूलता और उत्तम आचरण । जो स्त्री पतिकी और लोककी अपने यथोचित व्यवहारदिसे आराधना करती है अर्थात् पतिके अनुकूल चालती है और लोकव्यवहारको ठीक-ठीक समझकर तदनुकूल आचरण करती है, वह स्त्री धर्म, अर्थ तथा कामकी अवधारसिद्धि प्राप्त कर लेती है—

भर्तृवित्तानुकूलत्वं यासां शीलमविच्युतम् ।  
तासां रत्नसुवर्णादि भार एव न भण्डनम् ॥  
लोकज्ञाने परा खेदिः पत्यौ भविष्य शोच्यते ।  
शुद्धान्वयानां नारीणां विघ्नेदेतत्कुलसत्तम् ॥  
तत्प्राप्तलोकस्य भर्ता च सच्चराचरिणी यथा ।  
धर्मवर्षा च कामं च सौख्यमिति निरूपय ॥

(भाष्यार्थ १३।५४—५६)

जिस स्त्रीका पति परदेशमें गया हो, उस स्त्रीकी अपने पतिकी मङ्गलकामनाके सुवर्ण सौभाग्य-सूत्र आदि सत्त्व आभूषण ही पहनने चाहिये, विरोध मङ्गल नहीं करना चाहिये । उसे पति-द्वारा प्रारम्भ किये कर्णकोष प्रयत्नपूर्वक सम्पादन करते रहना चाहिये । यह देखकर अधिक संस्कार न करे । रात्रिके साम आदि पूज्य स्त्रियोंके समीप सोये । बहुत अधिक खर्च न करे । व्रत, उपवास आदिके नियमोंका पालन करती रहे । दैवज्ञ आदि श्रेष्ठजनोंसे पतिके कुशल-क्षेमका वृत्तान्त जाननेकी कोशिश करे और परदेशमें उसके कल्याणकी कामनासे तथा शीघ्र आगमनकी अभिलाषासे नित्य देवताओंका पूजन करे । अत्यन्त उन्मत्त हो न बहाने और

न सुगन्धित तैलादि द्रव्योंका प्रयोग करे । उसे सम्बन्धियोंके घर नहीं जाना चाहिये । यदि किसी आवश्यक कार्यवश जाना हो पड़ जाय तो अपनेसे बड़ोंकी आज्ञा लेकर पतिके विश्वसनीय जनोंके साथ जाय । भिक्षु वहाँ अधिक समयतक न रहे, शीघ्र वापस लौट आवे । वहाँ खान आदि व्यवहारोंको न करे । प्रवाससे पतिके लौट आनेपर प्रसन्न-मनसे सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होकर पतिके यथोचित भोजनदिसे सत्कार करे और देवताओंसे पतिके लिये प्रार्थना करी मनीषियोंको पूजादिद्वारा यथोचित सम्मान करे ।

इस प्रकार मन, वाणी तथा कर्मोंसे सभी अवस्थाओंमें पतिके हित-चिन्तन करती रहे, क्योंकि पतिके अनुकूल रहना स्त्रियोंके लिये विशेष धर्म है । अपने सौभाग्यपर अहंकार न करे और उद्धत कर्णोंको भी न करे तथा अत्यन्त विनम्र भावसे रहे । इस प्रकारसे पतिकी सेवा करते हुए जो स्त्री पतिके कर्णमें प्रसाद नहीं करती, पूज्यजनोंका सदा आदर करती रहती है, नौकरोंका भरण-पोषण करती है, नित्य सद्गुणोंकी अभिवृद्धिके लिये प्रयत्नशील रहती है तथा सब प्रकारसे अपने शीलकी रक्षा करती रहती है, वह स्त्री इस लोक तथा परलोकमें उत्तम सुख एवं उत्तम कीर्ति प्राप्त करती है<sup>१</sup> ।

जिस स्त्रीपर पति अति क्रोधपुक्त हो और उसका आदर न करे, वह स्त्री दुर्भाग कहलाती है । उसे चाहिये कि वह नित्य व्रत-उपवासदि क्रियाओंमें संलग्न रहे और पतिके वाङ्मय कर्णमें विशेषरूपसे सहयोग करे । जबसे कोई स्त्री दुर्भाग अथवा सुभाग (सौभाग्यशालिनी) नहीं होती । वह अपने व्यवहारसे ही पतिकी प्रिय और अप्रिय हो जाती है । उत्तम स्त्री पतिके चित्तका अधिपत्य न जाननेसे, उसके प्रतिकूल चालनेसे और लोकविरुद्ध आचरण करनेसे दुर्भाग हो जाती है एवं उसके अनुकूल चालनेसे सुभाग हो जाती है । मनोवृत्तिके अनुकूल कार्य करनेसे परमा भी प्रिय हो जाता है और मनोऽनुकूल कार्य न करनेसे अपना जन भी शीघ्र शत्रु बन जाता है । इसलिये स्त्रीको मन, वाचन तथा अपने कर्णोंद्वारा

१-सुवर्णसूत्र्य भवति तत्कार्येष्वप्यदिने । पुण्यं पूजने नित्यं भूषणं भारेषु च ।  
शुभान्वयिनी नित्यं शीलव्रतचरिणी । व्रतं वेदं च निर्दिष्टं सुसम्पद्येत्पुनस्तम् ॥

सभी अवस्थाओंमें पतिके अनुसार ही प्रिय अन्नचरण करना है और पतिकी सेवासे सभी सुखों तथा विवर्गोंके भी प्राप्त कर चाहिये। इस प्रकार कहे गये स्त्री-वृत्तको भलीभाँति समझकर लेती है<sup>१</sup>।

जो स्त्री पतिकी सेवा करती है, वह पतिको अपना बना लेती

(अ० १०—१५)

## पञ्चमहायज्ञोंका वर्णन तथा व्रत-उपवासोंके प्रकरणमें आहारका निरूपण एवं प्रतिपदा तिथिकी उत्पत्ति, व्रत-विधि और माहात्म्य

**सुमन्तु मुनिने कहा—**एजन् ! इस प्रकार स्त्रियोंके लक्षण और सदाचारका वर्णन करके ब्रह्माजी अपने लोक, तथा ऋषिगण भी अपने-अपने आश्रमोंकी ओर चले गये। अब गृहस्थोंको कैसा आचरण करना चाहिये, उसे मैं बताता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुने—

गृहस्थोंको वैवाहिक अग्निमें विधिपूर्वक गृह्यकर्मोंको करना चाहिये तथा पञ्चमहायज्ञोंका भी सम्पादन करना चाहिये। गृहस्थोंके यहाँ जीव-हिंसा होनेके पाँच स्थान हैं— ओखली, चक्की, कुल्हा, झाड़ू तथा जल रखनेका स्थान। इस हिंसा-दोषसे मुक्ति पानेके लिये गृहस्थोंको पञ्चमहायज्ञ—

(१) ब्रह्मयज्ञ, (२) पितृयज्ञ, (३) दैवयज्ञ, (४) भूतयज्ञ तथा (५) अतिथियज्ञको नित्य अवश्य करना चाहिये।

अध्ययन करना तथा अध्यापन करना यह ब्रह्मयज्ञ है, तर्पणादि कर्म पितृयज्ञ है। देवताओंके लिये हवनआदि कर्म दैवयज्ञ है। बलिजैन्नदेव कर्म भूतयज्ञ है तथा अतिथि एवं अन्धगर्तोंका स्वागत-रतनकर करना अतिथियज्ञ है—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तर्पणम् ।

होमो दैवो बलिर्भूतस्तथाऽन्योऽतिथिपूजनम् ॥

(ब्राह्मण्य १६।७)

—इन पाँच नियमोंका पालन करनेवाला गृहस्थी घरमें रहता हुआ भी पञ्चमूना-दोषोंसे लिप्त नहीं होता। यदि समर्थ

होते हुए भी वह इन पाँच यज्ञोंको नहीं करता है तो उसका जीवन ही व्यर्थ है।

**राजा शतानीकने पूछा—**जिस ब्राह्मणके घरमें अग्निहोत्र नहीं होता, वह मृत्युके समान होता है—यह आपने कहा है, परंतु फिर वह देवपूजा आदि कार्योंको क्यों करे ? और यदि ऐसी बात है तो देवता, पितर उससे कैसे संतुष्ट होंगे, इसका आप निराकरण करें।

**सुमन्तु मुनि बोले—**एजन् ! जिन ब्राह्मणोंके घरमें अग्निहोत्र न हो उनका उद्धार व्रत, उपवास, नियम, दान तथा देवताकी स्मृति, भक्ति आदिसे होता है। जिस देवताकी जो तिथि हो, उसमें उपवास करनेसे वे देवता उसपर विशेषरूपसे प्रसन्न होते हैं—

व्रतोपवासविधयैर्वाग्राह्यैस्तथा नृप ।

देवादयो भवन्त्येष प्रीतास्तेषां न संशयः ॥

विशेषादुपवासेन तिथौ किल महीपते ।

प्रीता देवादयोऽस्तेषां भवन्ति कुलनन्दन ॥

(ब्राह्मण्य १६।१३-१४)

**राजाने फिर कहा—**महाराज ! अब आप अलग-अलग तिथियोंमें किये जानेवाले व्रतों, तिथि-व्रतोंमें किये जानेवाले पौजन्यों तथा उपवासकी विधियोंका वर्णन करें, जिनके अङ्गणसे तथा जिनका आचरण कर संसारसागरसे मैं

१-न कर्षि दुर्पणं नाम सुभगं नाम जातिः । अन्धकारदुःखत्वेन निर्दोशं त्रिभुवनम् ॥

भर्तृत्वापरिज्ञानदन्नुद्धान्तोऽपि यः । कृत्स्नैर्देवैर्विद्वद्भ्यः यस्मिन् दुर्पणोऽस्ति स्त्रियः ॥

अनुकूल्यचमोयुतेः परोऽपि प्रियतो व्रजेत् । प्रतिभूतयज्ञिकोऽप्यङ्गु त्रियः प्रदेवतमियत् ॥

तस्मात् सर्वस्वव्ययम् मनोवाक्यकर्मभिः । त्रियः समस्तोऽस्मिन् तर्पणतर्पणार्थिनी ॥

एवमेव यथोद्दिष्टं स्वीकृतं यानुतिष्ठति । पतिव्यापारस्य सम्पूर्णं विवर्गं ऋषिगण्यति ॥

(ब्राह्मण्य १५।१६—१६।३२)

[ कर्षिपतन समयमें पञ्चमहायज्ञोंके प्रभावसे देशमें दुर्भिक्ष और उच्छृङ्खलतापूर्ण कालचरण बन गया है। स्त्रियोंसे सम्बद्ध भविष्यपूराणका यह उल्लेख रामायण, महाभारत, स्मृतिषो तथा अन्य पुराणोंमें भी उपलब्ध है। आजके विश्वकी सभी समस्याओंका एकमात्र मुख्य कारण आचाराका पतन है, इसका प्रभाव संततियोगी भी पड़ता है। अतः सभीको सदाचारपर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है। ]

मुक्त हो जाऊँ तथा मेरे सभी पाप दूर हो जायँ। साथ ही संसारके जीवोंका भी कल्याण हो जाय।

**सुमन्तु मुनि बोले—**मैं तिथियोंमें विहित कृत्योंका वर्णन करता हूँ, जिनके सुननेसे पाप कट जाते हैं और उपवासके फलोंकी प्राप्ति हो जाती है।

प्रतिपदा तिथिके दूध तथा द्वितीयाको लवणरहित भोजन करे। तृतीयाके दिन तिलान्न भक्षण करे। इसी प्रकार चतुर्थीको दूध, पञ्चमीको फल, षष्ठीको शाक, सप्तमीको बिल्वफल करे। अष्टमीको पिष्ट, नवमीको अन्नशिराक, दशमी और एकादशीको पृताहार करे। द्वादशीको खीर, त्रयोदशीको गोमूत्र, चतुर्दशीको यवात्र भक्षण करे। पूर्णिमाको कुशाका जल पीये तथा अमावास्याको हविष्य-भोजन करे। यह सब तिथियोंके भोजनकी विधि है। इस विधिसे जो पूरे एक पक्ष भोजन करता है, वह दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है और मन्वन्तरतक स्वर्गमें अश्वन्द भोगता है। यदि तीन-चार मासतक इस विधिसे भोजन करे तो वह सौ अश्वमेध और सौ राजसूय-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है तथा स्वर्गमें अनेक मन्वन्तरोंतक सुख भोग करता है। पूरे आठ माहोंमें इस विधिसे भोजन करे तो हजार यज्ञोंका फल पता है और चौदह मन्वन्तरपर्यन्त स्वर्गमें वहकि सुखोंका उपभोग करता है। इसी प्रकार यदि एक वर्षपर्यन्त नियमपूर्वक इस भोजन-विधिक पालन करता है तो वह सूर्यलोकमें कई मन्वन्तरोंतक आनन्दपूर्वक निवास करता है। इस उपवास-विधिमें चारों वर्णों तथा स्त्री-पुरुषों—सभीका अधिकार है। जो इन तिथि-व्रतोंका आरम्भ अश्विनकी नवमी, माघकी सप्तमी, वैशाखकी तृतीया तथा कार्तिककी पूर्णिमासे करता है, वह तेजी आसु प्राप्त कर अन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त होता है। पूर्वजन्ममें जिन पुरुषोंने व्रत, उपवास आदि किया, दान दिया, अनेक प्रकारसे ब्राह्मणों, साधु-संतों एवं तपस्वियोंको संतुष्ट किया, माता-पिता और गुरुकी सेवा-शुश्रूषा की, विधिपूर्वक तीर्थयात्रा की, वे पुरुष स्वर्गमें दीर्घ कालतक रहकर जब पृथ्वीपर जन्म लेते हैं, तब उनके चिह्न—पुण्य-फल प्रत्यक्ष ही दिखलायी पड़ते हैं। यहाँ उन्हें हाथी, घोड़े, पालकी, रथ, सुवर्ण, रत्न, वस्त्र,

केनूर, हार, कुण्डल, मुकुट, उत्तम वस्त्र, श्रेष्ठ सुन्दर स्त्री तथा अच्छे संयत्क प्राप्त होते हैं। वे आधि-व्याधिसे मुक्त होकर दीर्घायु होते हैं। पुत्र-पौत्रादिक सुख देखते हैं और बन्दीव्रतोंके स्तुति-पाठद्वारा जगाये जाते हैं। इसके विपरीत जिसने व्रत, दान, उपवास आदि सत्कर्म नहीं किया वह कष्ट, अंधा, लूट, लैंगड़ा, गूंगा, कुबड़ा तथा रोग और दरिद्रतासे पीड़ित रहता है। संसारमें आज भी इन दोनों प्रकारके पुण्य प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। यही पुण्य और पापकी प्रत्यक्ष परीक्षा है।

**राजाने कहा—**प्रभो! आपने अभी संक्षेपमें तिथियोंको बताया है। अब यह विस्तारसे बतलानेकी कृपा करें कि किस देवताकी किस तिथिमें पूजा करनी चाहिये और व्रत आदि किस विधिसे करने चाहिये जिनके करनेसे मैं पवित्र हो जाऊँ और इन्द्ररहित होकर आपके फलोंको प्राप्त कर सकूँ।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन्! तिथियोंका रहस्य, पूजाका विधान, फल, नियम, देवता तथा अधिकारों आदिके विषयमें मैं बतला दूँ, यह सब आजतक मैंने किसीको नहीं बतलाया, इसे आप सुनें—

सबसे पहले मैं संक्षेपमें सृष्टिका वर्णन करता हूँ। प्रथम परमात्माने जल उत्पन्न कर उसमें तेज प्रविष्ट किया, उससे एक अण्ड उत्पन्न हुआ, उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने सृष्टिकी इच्छासे उस अण्डके एक कपालसे भूमि और दूसरेसे आकाशकी रचना की। तदनन्तर दिशा, उपदिशा, देवता, दानव आदि रथे और जिस दिन यह सब काम किया उसका नाम प्रतिपदा तिथि रखा। ब्रह्माजीने इसे सर्वोत्तम माना और सभी तिथियोंके प्रारम्भमें इसका प्रतिपादन किया इसलिये इसका नाम प्रतिपदा हुआ। इसीके बाद सभी तिथियाँ उत्पन्न हुईं।

अब मैं इसके उपवास-विधि और नियमोंका वर्णन करता हूँ। कार्तिक-पूर्णिमा, माघ-सप्तमी तथा वैशाख शुक्ल तृतीयासे इस प्रतिपदा तिथिके नियम एवं उपवासोंको विधिपूर्वक प्रारम्भ करना चाहिये। यदि प्रतिपदा तिथिसे नियम ग्रहण करना है तो प्रतिपदासे पूर्व चतुर्दशी तिथिके भोजनके अनन्तर व्रतका संकल्प लेना चाहिये। अमावास्याको त्रिकाल स्नान करे,

१-नित्य, नैमित्तिक और कर्म्य—ये तीन प्रकारके कर्म होते हैं। यदि कर्म्य-कर्मोंका प्रकरण बतला रहा है। इनकी कर्मोंको निष्कर्मभावसे भगवादीत्यर्थ करनेपर जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति भी मिल जाती है।



भोजन न करे और गायत्रीका जप करता रहे। प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल गन्ध-माल्य आदि उपचारोंसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करे और उन्हें यथाशक्ति दूध दे और बादमें 'ब्रह्माजी मुझपर प्रसन्न हों'—ऐसा कहे। स्वयं भी बादमें गायका दूध पिये। इस विधिसे एक वर्षतक व्रतकर अन्तमें गायत्रीसहित ब्रह्माजीका पूजन कर व्रत सम्पन्न करे।

इस विधानसे व्रत करनेपर व्रतीके सब पाप दूर हो जाते हैं और उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है। वह दिव्य-शरीर धारणकर विमानमें बैठकर देवलोकमें देवताओंके साथ आनन्द प्राप्त करता है और जब इस पृथ्वीपर सत्ययुगमें जन्म लेता है तो दस जन्मतक वेदविद्याका पारंगामी विद्वान्, धनवान्, दीर्घ आयुष्य, आरोग्यवान्, अनेक भोगोंसे सम्पन्न,

यज्ञ करनेवाला, महादानी ब्राह्मण होता है। विश्वामित्रमुनिने ब्राह्मण होनेके लिये बहुत समयतक घोर तपस्या की, किन्तु उन्हें ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं हो सका। अतः उन्होंने नियमसे इसी प्रतिपदाका व्रत किया। इससे थोड़ेसे समयमें ब्रह्माजीने उन्हें ब्राह्मण बना दिया। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि कोई इस विधिको व्रत करे तो वह सब पापोंसे मुक्त होकर दूसरे जन्ममें ब्राह्मण होता है। हैहय, ताल्जंघ, तुरुष्क, यवन्, डाक आदि म्लेच्छ जातिकाले भी इस व्रतके प्रभावसे ब्राह्मण हो सकते हैं। यह विधि परम पुण्य और कल्याण करनेवाली है। जो इसके माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है वह ब्रह्मि, बृद्धि और सत्कीर्ति पाकर अन्तमें सद्गति प्राप्त करता है।

(अध्याय १६)



### प्रतिपत्कल्प-निरूपणमें ब्रह्माजीकी पूजा-अर्चाकी महिमा

**राजा सतानीकने कहा—**ब्रह्मन्! ज्ञाप्य प्रतिपदा विधिमें किये जानेवाले कृत्य, ब्रह्माजीके पूजनकी विधि और उसके फलका विस्तारपूर्वक वर्णन करे।

**सुमन्तु मुनि बोले—**हे राजन्। पूर्वकल्पमें त्वावर-जङ्गमालोक सम्पूर्ण जगत्के नष्ट हो जानेपर सर्वत्र जल-ही-जल हो गया। उस समय देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मदेव ब्रह्माजी प्रकट हुए और उन्होंने अनेक लोकों, देवगणों तथा विविध प्राणियोंकी सृष्टि की। प्रजापति ब्रह्मा देवताओंके पिता तथा अन्य जीवोंके पितामह हैं, इसलिये इनकी सदा पूजा करनी चाहिये। ये ही जगत्की सृष्टि, पालन तथा संहर करनेवाले हैं। इनके मनसे रुद्रका, वक्षःस्थलसे विष्णुका आविर्भाव हुआ। इनके चारों मुखोंसे अपने लः अङ्गोंके साथ चारों वेद प्रकट हुए। सभी देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि इनकी पूजा करते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है और ब्रह्ममें स्थित है, अतः ब्रह्माजी सबसे पूज्य हैं। उन्म्य, स्वर्ग और मोक्ष—ये तीनों पदार्थ इनकी सेवा करनेसे प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये सदा प्रसन्नचित्तसे यावज्जीवन नियमसे ब्रह्माजीकी पूजा करनी चाहिये। जो ब्रह्माजीकी सदा भक्तिके

पूजा करता है, वह मनुष्य-स्वरूपमें साक्षात् ब्रह्मा ही है। ब्रह्माजीकी पूजासे अधिक पुण्य किसीमें न समझकर सदा ब्रह्माजीका पूजन करते रहना चाहिये। जो ब्रह्माजीका मन्दिर बनवाकर उसमें विधिपूर्वक ब्रह्माजीकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करता है, वह यज्ञ, तप, तीर्थ, दान आदिके फलसे करोड़ों गुना अधिक फल प्राप्त करता है। ऐसे पुरुषके दर्शन और स्पर्शसे इक्ष्वांस पीड़ितका उद्धार हो जाता है। ब्रह्माजीकी पूजा करनेवाला पुण्य बहुत कालतक ब्रह्मलोकमें निवास करता है। वहाँ निवास करनेके पश्चात् वह ज्ञानयोगके माध्यमसे मुक्त हो जाता है अथवा भोग चाहनेपर मनुष्यलोकमें चक्रवर्ती राजा अथवा वेद-वेदाङ्गपाराङ्गत कुलीन ब्राह्मण होता है। किसी अन्य कठोर तप और यज्ञोंकी आवश्यकता नहीं है, केवल ब्रह्माजीकी पूजासे ही सभी पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। जो ब्रह्माजीके मन्दिरमें छोटे जीवोंकी रक्षा करता हुआ सायधानीपूर्वक धीरे-धीरे झाड़ू देता है तथा उपलेपन करता है, वह चान्द्रायण-व्रतकर फल प्राप्त करता है। एक पक्षतक ब्रह्माजीके मन्दिरमें जो झाड़ू लगाता है, वह सौ करोड़ युगसे भी अधिक ब्रह्मलोकमें पूजित होता है और अनन्तर सर्वगुणसम्पन्न, चारों

१-इसका वर्णन ठीक इसी प्रकार बराहपुण्यमें इससे भी अधिक विस्तारसे मिलता है और मूर्त-चिन्तार्पण एवं अन्य ज्योतिषप्रयोगों भी रमणीयतापूर्वक प्रवर्णित हैं। व्रतकल्पदुर्ग, व्रतकाव्य, व्रताराज आदिमें भी संयुक्त है।

वेदोंका ज्ञाता धर्मात्मा राजाके रूपमें पृथ्वीपर आता है। भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीका पूजन न करनेतक ही मनुष्य संसारमें भटकता है। जिस तरह मानवका मन विषयोंमें मग्न होता है, वैसे ही यदि ब्रह्माजीमें मन निमग्न रहे तो ऐसा कौन पुरुष होगा जो मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता<sup>१</sup>। ब्रह्माजीके जीर्ण एवं खण्डित मन्दिरका उद्धार करनेवाला प्राणी मुक्ति प्राप्त करता है। ब्रह्माजीके समान न कोई देवता है न गुरु, न ज्ञान है और न कोई तप हो है।

प्रतिपदा आदि सभी तिथियोंमें भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीको पूजाकर पूर्णिमाके दिन विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये तथा शङ्ख, घण्टा, भेरी आदि वाद्य-ध्वनिधोंके साथ अरती एवं स्तुति करनी चाहिये। इस प्रकार व्यक्ति जितने पक्षोंपर अरती करता है, उतने हजार युगातक ब्रह्मलोकमें निवास और आनन्दका उपभोग करता है। कपिल गौके पञ्चगव्य और कुशाके जलसे वेदमन्त्रोंके द्वारा ब्रह्माजीको स्नान करना ब्राह्म-स्नान कहलाता है। अन्य स्नानोंसे सौ गुना पुण्य इसमें अधिक होता है। यज्ञ एवं अभिहोत्रादिके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको कपिल गौ रखनी चाहिये। ब्रह्माजीकी मूर्तिका कपिल गायके घृतसे अभ्यङ्ग करना चाहिये, इससे करोड़ों वर्षोंके किये गये पापोंका विनाश होता है। यदि प्रतिपदाके दिन कोई एक बार भी घीसे स्नान करता है तो उसके इच्छित पीढ़ीका उद्धार हो जाता है। सुवर्ण-वस्त्रादिमें अलंकृत दस हजार सयत्स गौ वेदज्ञ ब्राह्मणोंको देनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य ब्रह्माजीको दुग्धसे स्नान करनेसे प्राप्त होता है। एक बार भी दूधसे ब्रह्माजीको स्नान करनेवाला पुरुष सुवर्णके विमानमें विराजमान हो ब्रह्मलोकमें पहुँच जाता है। दहीसे स्नान करनेपर विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। शहदसे स्नान करनेपर वीरलोक (इन्द्रलोक) की प्राप्ति होती है। ईश्वरके रससे स्नान करनेपर सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। शुद्धोदकसे स्नान करनेपर सभी पापोंमें मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें निवास करता है। वस्त्रसे छने हुए जलसे ब्रह्माजीको स्नान करनेपर वह सदा तृप्त रहता है और सम्पूर्ण विश्व उसके वशीभूत हो जाता है। सर्वाधिधियोंसे स्नान करनेपर ब्रह्मलोक, चन्द्रलोक

जलसे स्नान करनेपर रुद्रलोक, कमलके पुष्प, नीलकमल, पाटल (खेध-खाल), कनेर आदि सुगन्धित पुष्पोंसे स्नान करनेपर ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। कपूर और अगरके जलसे स्नान करनेपर या गायत्रीमन्त्रसे सौ बार जलको अभिमन्त्रित कर उस जलसे स्नान करनेपर ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। शीतल जल या कपिल गायके धारण्य दुग्धसे स्नान करनेके अनन्तर घृतसे स्नान करनेसे सभी पापोंसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। इन तीनों स्नानोंको सम्पन्न कर भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे पूजकको अक्षमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। मिट्टीके घड़ेकी अपेक्षा तबिके घटसे ब्रह्माजीको स्नान करनेपर सौगुना, चाँदीके घटसे लाखगुना फल होता है और सुवर्ण-कलशसे स्नान करनेपर कौटुंगुना फल प्राप्त होता है। ब्रह्माजीके दर्शनसे उनका स्पर्श करना श्रेष्ठ है, स्पर्शसे पूजन और पूजनसे घृतस्नान अधिक फलदायक है। सभी धार्मिक और मार्मिक पाप घृतस्नान करनेसे नष्ट हो जाते हैं।

राजन्। इस विधिमें स्नान करताकर भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीकी पूजा इस प्रकार करनी चाहिये—पवित्र वस्त्र पहनकर, आसनपर बैठ सम्पूर्ण न्यास करना चाहिये। प्रथम चार हाथ विमल स्नानमें एक अष्टदल-कमलका निर्माण करे। उसके मध्य बना वर्णपुक्त द्वादशदल-यन्त्र लिखे और पाँच रंगोंसे उसको भरे। इस प्रकार यन्त्र-निर्माणकर गायत्रीके वर्णोंसे न्यास करे।

गायत्रीके अक्षरोंद्वारा शरीरमें न्यास कर देवताके शरीरमें भी न्यास करना चाहिये। प्रणवयुक्त गायत्री-मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित केशर, अगर, चन्दन, कपूर आदिसे समन्वित जलसे सभी पूजद्रव्योंका मार्जन करना चाहिये। अनन्तर पूजा करनी चाहिये। प्रणवका उच्चारण कर पीठस्थापन और प्रणवसे ही तेजस्वरूप ब्रह्माजीका आवाहन करना चाहिये। पदोंपर विराजमान, चार मुखोंसे युक्त चराचर विश्वकी सृष्टि करनेवाले श्रीब्रह्माजीका ध्यान कर पूजा करनी चाहिये। जो पुरुष प्रतिपदा तिथिके दिन भक्तिपूर्वक गायत्रीमन्त्रसे ब्रह्माजीका पूजन करता है, वह चिरकालतक ब्रह्मलोकमें निवास करता है।

(अध्याय १७)

### ब्रह्माजीकी रथयात्राका विधान और कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाकी महिमा

सुमन्तु मुनिने कहा—हे राजा शतानीक ! कार्तिक मासमें जो ब्रह्माजीकी रथयात्राका उत्सव करता है, यह ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। कार्तिककी पूर्णिमाको मृगशर्माके आसनपर सावित्रीके साथ ब्रह्माजीको रथमें विराजमान कर और विविध वाद्य-ध्वनिके साथ रथयात्रा निकाले। विविध उत्सवके साथ ब्रह्माजीको रथपर बैठाये और रथके आगे ब्रह्माजीके परम भक्त ब्राह्मण शशिहरीपुत्रको स्थापित कर उनकी पूजा करे। ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्ति एवं पुण्यहवाचन कराये। उस रात्रि जागरण करे। नृत्य-गीत आदि उत्सव एवं विविध ब्रीडार्थ ब्रह्माजीके सम्मुख प्रदर्शित करे।

इस प्रकार रात्रिमें जागरण कर प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल ब्रह्माजीका पूजन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये, अनन्तर पुण्य शब्दोंके साथ रथयात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये।

चारों वेदोंके ज्ञाता उत्तम ब्राह्मण उस रथको खींचे और रथके आगे वेद पढ़ते हुए ब्राह्मण चालते रहे। ब्रह्माजीके दक्षिण-भागमें सावित्री तथा वाम-भागमें भोजकाकी स्थापना करे। रथके आगे शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग आदि विविध वाद्य बजाते रहे। इस प्रकार सारे नगरमें रथको घुमाना चाहिये और नगरकी

प्रदक्षिणा करनी चाहिये, अनन्तर उसे अपने स्थानपर ले आना चाहिये। आरती करके ब्रह्माजीको उनके मन्दिरमें स्थापित करे। इस रथयात्राको सम्पन्न करनेवाले, रथको खींचनेवाले तथा इसका दर्शन करनेवाले सभी ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। दीपावलीके दिन ब्रह्माजीके मन्दिरमें दीप प्रज्वलित करनेवाला ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। दूसरे दिन प्रतिपदाको ब्रह्माजीकी पूजा करके स्वयं भी वस्त्र-आभूषणसे अलङ्कृत होना चाहिये। यह प्रतिपदा तिथि ब्रह्माजीको बहुत प्रिय है। इसी तिथिसे कार्तिके राज्यका आरम्भ हुआ है। इस दिन ब्रह्माजीका पूजनकर जाग्रण-भोजन करनेमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। वैश्र मासमें कृष्णप्रतिपदाके दिन (होली जलानेके दूसरे दिन) चाण्डालका स्पर्शकर स्नान करनेसे सभी आधि-व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। उस दिन गौ, गृहपति आदिको अलङ्कृतकर उन्हें मण्डपके नीचे रखना चाहिये तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। वैश्र, आश्विन और कार्तिक इन तीनों माहोंकी प्रतिपदा श्रेष्ठ है, किन्तु इनमें कार्तिककी प्रतिपदा विशेष श्रेष्ठ है। इस दिन किया हुआ स्नान-दान आदि सौ गुने फलको देता है। राजा बालिकों इसी दिन राज्य मिला था, इसलिये कार्तिककी प्रतिपदा श्रेष्ठ मानी जाती है। (अध्याय १८)

### द्वितीया-कल्पमें महर्षि च्यवनकी कथा एवं पुण्यद्वितीया-व्रतकी महिमा

सुमन्तु मुनि बोले—द्वितीया तिथिमें च्यवनऋषिने इन्द्रके सम्मुख यज्ञमें अधिनीकुमारोंको सोमपान कराया था।

राजाने पूछा—महाराज ! इन्द्रके सम्मुख किस विधिसे अधिनीकुमारोंको उन्होंने सोमपान पिलाया ? क्या च्यवनऋषिकी तपस्याके प्रभावकी प्रवृत्तासे इन्द्र कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हुए ?

सुमन्तु मुनिने कहा—सत्ययुगकी पूर्वमेखामें गङ्गाके तटपर समाधिस्थ हो च्यवनमुनि बहुत दिनोंसे तपस्यामें लत थे।

एक समय अपनी सेना और अनापुरके परीजनोंके साथ लेकर महाराज शर्याति गङ्गा-स्नानके लिये वहाँ आये। उन्होंने च्यवनऋषिके आश्रमके समीप आकर गङ्गा-स्नान सम्पन्न किया तथा देवताओंकी आराधना की और पितरोंका तर्पण किया। तदनन्तर जब वे अपने नगरकी ओर जानेकी उद्यत हुए तो उसी समय उनकी सभी सेनाएँ व्याकुल हो गयीं और मृत्र तथा विष्टा उनके अचानक ही वेद हो गये, आँखोंसे कुछ भी नहीं दिखायी दिया। सेनाकी यह दृशा देखकर राजा घबड़ा

१-अन्य पुराणोंमें तथा महाभारतके अनुसार यह आश्रम खेत्तपद और वधुसख नदीके संगमपर था, जो आज देवकुण्डके समीप प्रसिद्ध है। प्रायः पुराणोंमें यह श्लोक भी प्राप्त होता है—

मगधे नृ गया पुण्या नदी पाया पुनः पुनः। च्यवनस्य आश्रमं पुण्यं पुनः राजगृहं वनम् ॥

तथा—

वधुसमेति स्मरितं च्यवनस्य आश्रमं प्रति ।

उठे। राजा शर्षाति प्रत्येक व्यक्तिसे पूछने लगे—यह तपस्वी व्यवनमुनिका पवित्र आश्रम है, किसीने कुछ अपराध तो नहीं किया ? उनके इस प्रकार पूछनेपर किसीने कुछ भी नहीं कहा।

सुकन्याने अपने पितासे कहा—महाराज ! मैं एक आश्चर्य देखा, जिसका मैं वर्णन कर रही हूँ। अपनी सहेलियोंके साथ मैं वन-विहार कर रही थी कि एक ओरसे मुझे यह शब्द सुनायी पड़ा—‘सुकन्ये ! तुम इधर आओ, तुम इधर आओ।’ यह सुनकर मैं अपनी सहिलियोंके साथ उस शब्दकी ओर गयी। वहाँ जाकर मैंने एक बहुत ऊँचा वल्मीक



देखा। उसके अंदरके छिद्रोंमें दीपकके समान देदीप्यमान दो पदार्थ मुझे दिखलगयी पड़े। उन्हें देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये पद्मरागमणिके समान क्या चमक रहे हैं। मैं अपनी मूर्खता और चञ्चलतासे कुशके अग्रभागसे वल्मीकके प्रकाशयुक्त छिद्रोंको बीध दिया, जिससे वह तेज ज्ञान हो गया।

यह सुनकर राजा बहुत व्याकुल हो गये और अपनी कन्या सुकन्याको लेकर वहाँ गये जहाँ व्यवनमुनि तपस्यामें रत थे। व्यवनमुनिको वहाँ समाधिस्थ होकर बैठे हुए इतने दिन व्यतीत हो गये थे कि उनके ऊपर वल्मीक बन गया था। जिन तेजस्वी छिद्रोंको सुकन्याने कुशके अग्रभागसे बीध दिया था,

वे उस महातपस्वीके प्रकाशमान नेत्र थे। राजा वहाँ पहुँचकर अतिशय दीनताके साथ विनती करने लगे।

राजा बोले—महाराज ! मेरी कन्यासे बहुत बड़ा अपराध हो गया है। क्षमाकर क्षमा करें।

व्यवनमुनिने कहा—अपराध तो मैंने क्षमा किया, परंतु अपनी कन्याका मेरे साथ विवाह कर दो, इसीमें तुम्हारा कल्याण है। मुनिका वचन सुनकर राजाने शीघ्र ही सुकन्याका व्यवनमुनिसे विवाह कर दिया। सभी सैन्याँ सुखी हो गयीं और मुनिको प्रसन्नकर सुखपूर्वक राजा अपने नगरमें आकर राज्य करने लगे। सुकन्या भी विवाहके बाद भक्तिपूर्वक मुनिकी सेवा करने लगी। राजवत्स, आभूषण उसने उतार दिये और कुशकी छल तथा मृगचर्म धारण कर लिया। इस प्रकार मुनिकी सेवा करते हुए कुछ समय व्यतीत हो गया और वसन्त ऋतु आयी। किसी दिन मुनिने संतान-प्राप्तिके लिये अपनी पत्नी सुकन्याका आह्वान किया। इसपर सुकन्याने अतिशय विनम्रभावसे विनती की।

सुकन्या बोली—महाराज ! आपकी आज्ञा मैं किसी प्रकार भी टाल नहीं सकती, किंतु इसके लिये आपको पुष्पावस्था तथा सुन्दर वस्त्र-आभूषणोंसे अलंकृत करनीय स्वल्प धारण करना चाहिये।

व्यवनमुनिने उदास होकर कहा—न मेरा उत्तम रूप है और न तुम्हारे पिताके समान मेरे पास धन है, जिससे सभी भोग-समाधियोंको मैं एकत्र कर सकूँ।

सुकन्या बोली—महाराज ! आप अपने तपके प्रणवसे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। आपके लिये यह कौन-सी बड़ी बात है ?

व्यवनमुनिने कहा—राजपुत्र ! इस कामके लिये मैं अपनी तपस्या व्यर्थ नहीं करूँगा। इतना कहकर वे पहलेकी तरह तपस्या करने लगे। सुकन्या भी उनकी सेवामें तत्पर हो गयी।

इस प्रकार बहुत काल व्यतीत होनेके बाद अश्विनीकुमार उसी मार्गसे चले जा रहे थे कि उनकी दृष्टि सुकन्यापर पड़ी।

अश्विनीकुमारोंने कहा—भद्रे ! तुम कौन हो ? और इस घोर वनमें अकेली क्यों रहती हो ?

सुकन्याने कहा—मैं राजा शर्षातिकी सुकन्या नामकी



पुत्री हूँ। मेरे पति च्यवन ऋषि यहाँ तपस्या कर रहे हैं, उन्होंने सेवाके लिये मैं यहाँ उनके समीप रहती हूँ। कहिये, आपलोग कौन हैं ?

अश्विनीकुमारोंने कहा—हम देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार हैं। इस वृद्ध पतिसे तुम्हें क्या सुख मिलेगा ? हम दोनोंमें किसी एकका वरण कर लो।

सुकन्याने कहा—देवताओ ! आपका ऐसा कहना ठीक नहीं। मैं पतिव्रता हूँ और सब प्रकारसे अनुरक्त होकर दिन-रात अपने पतिकी सेवा करती हूँ।

अश्विनीकुमारोंने कहा—यदि ऐसी बात है तो हम तुम्हारे पतिदेवकी अपने उपचारके द्वारा अपने समान स्वस्थ एवं सुन्दर बना देंगे और जब हम तीनों गङ्गामें स्नानकर बाहर निकले फिर जिसे तुम पतिरूपमें वरण करना चाहो कर लेना।

सुकन्याने कहा—मैं बिना पतिकी आज्ञाके कुछ नहीं कह सकती।

अश्विनीकुमारोंने कहा—तुम अपने पतिसे पूछ आओ, तबतक हम यहीं प्रतीक्षामें रहेंगे। सुकन्याने च्यवनमुनिके पास जाकर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया। अश्विनीकुमारोंकी बात स्वीकार कर च्यवनमुनि सुकन्याको लेकर उनके पास आये।

च्यवनमुनिने कहा—अश्विनीकुमारो ! आपकी शर्त हमें स्वीकार है। आप हमें उत्तम रूपवान् बना दें, फिर सुकन्या चाहे जिसे वरण करे। च्यवनमुनिके इतना कहनेपर अश्विनीकुमार च्यवनमुनिके लेकर गङ्गाजीके जलमें प्रविष्ट हो गये और कुछ देर बाद तीनों ही बाहर निकले। सुकन्याने देखा कि ये तीनों तो समान रूप, समान अवस्था तथा समान वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हैं, फिर इनमें मेरे पति च्यवनमुनि कौन हैं ? वह कुछ निश्चित न कर सकी और व्याकुल हो अश्विनीकुमारोंकी प्रार्थना करने लगी।

सुकन्या बोली—देवो ! अत्यन्त कुरूप पतिदेवका भी मैंने परित्याग नहीं किया था। अब तो आपकी कृपासे उनका रूप आपके समान सुन्दर हो गया है, फिर मैं कैसे उनका परित्याग कर सकती हूँ। मैं आपकी शरण हूँ, मुझपर कृपा कीजिये।

सुकन्याकी इस प्रार्थनासे अश्विनीकुमार प्रसन्न हो गये और उन्होंने देवताओंके चिह्नोंको धारण कर लिया। सुकन्याने देखा कि तीन पुरुषोंमेंसे दोही पल्लवे गिर नहीं रही हैं और



उनके वरण भूमिको स्पर्श नहीं कर रहे हैं, किन्तु जो तीसरा पुरुष है, वह भूमिपर खड़ा है और उसकी पल्लवे भी गिर रही हैं। इन चिह्नोंकी देखाकर सुकन्याने निश्चित कर लिया कि ये तीसरे पुरुष ही मेरे स्वामी च्यवनमुनि हैं। तब उसने उनका वरण कर लिया। उसी समय आकाशसे उसपर पुष्प-वृष्टि होने लगी और देखगल दुन्दुभि बजाने लगे।

च्यवनमुनिने अश्विनीकुमारोंसे कहा—देवो ! आप लोगोंने मुझपर बहुत उपकार किया है, जिसके फलस्वरूप मुझे उत्तम रूप और उत्तम पत्नी प्राप्त हुई। अब मैं आपलोगोंका क्या प्रत्युत्तर करूँ, क्योंकि जो उपकार करनेवालेका प्रत्युत्तर नहीं करता, वह क्रमसे इक्षीस नरकोंमें जाता है<sup>१</sup>, इसलिये आपका मैं क्या प्रिय करूँ, आप लोग कहें।

अश्विनीकुमारोंने उनसे कहा—यहातन् ! यदि आप हमारा प्रिय करना ही चाहते हैं तो अन्य देवताओंकी तरह हमें भी यज्ञभाग दिल्वाइये। च्यवनमुनिने यह बात स्वीकार कर ली, फिर वे उन्हें बिदाकर अपनी भार्या सुकन्याके साथ अपने आश्रममें आ गये।

राजा शर्वात्मके जब यह सारा वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वे

भी रानीको साथ लेकर सुन्दर रूप-प्राप्त महातेजस्वी च्यवनऋषिको देखने आश्रममें आये। राजाने च्यवनमुनिको प्रणाम किया और उन्होंने भी राजाका स्वागत किया। सुकन्याने अपनी माताका आलिङ्गन किया। राजा शर्षाति अपने जगतात्त महामुनि च्यवनका उत्तम रूप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

**च्यवनमुनिने राजासे कहा—**राजन् ! एक मलयजकी सामग्री एकत्र कीजिये, हम आपसे यज्ञ करायेंगे। च्यवन-मुनिकी आज्ञा प्राप्तकर राजा शर्षाति अपनी राजधानी लौट आये और यज्ञ-सामग्री एकत्रकर यज्ञकी तैयारी करने लगे। मन्त्री, पुरोहित और आचार्यको बुलाकर यज्ञकार्यके लिये उन्हें नियुक्त किया। च्यवनमुनि भी अपनी पत्नी सुकन्याको लेकर यज्ञ-स्थलमें पधारे।

सभी ऋषिगणोंको आमन्त्रण देकर यज्ञमें बुलवाया गया। विधिपूर्वक यज्ञ प्रारम्भ हुआ। ऋत्विक् अश्विकुण्डपे स्वाहाकारके साथ देवताओंको आहुति देने लगे। सभी देवता अपना-अपना यज्ञ-भाग लेने वहाँ आ पहुँचे। च्यवनमुनिके कहनेसे अधिनीकुमार भी वहाँ आये। देवराज इन्द्र उनके आनेका प्रयोजन समझ गये।

**इन्द्र बोले—**मुने ! ये दोनों अधिनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं, इसलिये ये यज्ञ-भागके अधिकारी नहीं हैं, आप इन्हें आहुतिर्था प्रदान न करवाये।

**च्यवनमुनिने इन्द्रसे कहा—**ये देवता हैं और इनका मेरे ऊपर बड़ा उपकार है, ये मेरे ही आमन्त्रणपर वहाँ पधारे



हैं, इसलिये मैं इन्हें अवश्य यज्ञभाग दूँगा। यह सुनकर इन्द्र क्रुद्ध हो उठे और कठोर स्वरमें कहने लगे।

**इन्द्र बोले—**यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो वज्रसे तुमपर मैं प्रहार करूँगा। इन्द्रकी ऐसी वाणी सुनकर च्यवनमुनि विचित्र भी घबराईत नहीं हुए और उन्होंने अधिनीकुमारोंको यज्ञभाग दे ही दिया, तब तो इन्द्र अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने ज्यों ही च्यवनमुनिपर प्रहार करनेके लिये अपना वज्र उठाया त्यों ही च्यवनमुनिने अपने तपके प्रभावसे इन्द्रका सम्भन कर दिया। इन्द्र हाथमें वज्र लिये खड़े ही रह गये।

च्यवनमुनिने अधिनीकुमारोंको यज्ञभाग देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली और यज्ञको पूर्ण किया। उसी समय वहाँ ब्रह्माजी उपस्थित हुए।

**ब्रह्माजीने च्यवनमुनिसे कहा—**महामुने ! आप इन्द्रको सम्भन-मृत कर दें। अधिनीकुमारोंको यज्ञ-भाग दें। इन्द्रने भी सम्भनसे मृत करनेके लिये प्रार्थना की।

**इन्द्रने कहा—**मुने ! आपके तपकी प्रसिद्धिके लिये ही मैं इन अधिनीकुमारोंको यज्ञमें भाग लेनेसे रोक था, अब आजसे सब यज्ञोंमें अन्य देवताओंके साथ अधिनीकुमारोंको भी यज्ञभाग मिलना करेगा और इनको देवत्व भी प्राप्त होगा। आपके इस तपके प्रभावको जो सुनेगा अथवा पढ़ेगा, वह भी उत्तम रूप एवं सौख्यको प्राप्त करेगा। इतना कहकर देवराज इन्द्र देवलोकको चले गये और च्यवनमुनि सुकन्या तथा राजा शर्षातिके साथ आश्रमपर लौट आये।

वहाँ उन्होंने देखा कि बहुत उत्तम-उत्तम महल बन गये हैं, जिनमें सुन्दर उपवन और वापी आदि विहारके लिये बने हुए हैं। भक्ति-भक्तिकी शय्याएँ बिछी हुई हैं, विविध रत्नोंसे जड़ित आभूषणों तथा उत्तम-उत्तम वस्त्रोंके ढेर लगे हैं। यह देखकर सुकन्यासहित च्यवनमुनि अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने यह सब देवराज इन्द्रद्वारा प्रदत्त समझकर उनकी प्रशंसा की।

**महामुनि सुमन्तु राजा शतानीकसे बोले—**राजन् ! इस प्रकार द्वितीया तिथिके दिन अधिनीकुमारोंको देवत्व तथा यज्ञभाग प्राप्त हुआ था। अब आप इस द्वितीया तिथिके व्रतका विधान सुने—

**शतानीक बोले—**जो पुरुष उत्तम रूपकी इच्छा करे

वह कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वितीयासे व्रतको आरम्भ करे और वर्षपर्यन्त संसमित होकर पुष्प-भोजन करे। जो उत्तम हविष्य-पुष्प उस ऋतुमें हो उनका आहार करे। इस प्रकार एक वर्ष व्रतकर सोने-चाँदीके पुष्प बनाकर अथवा कमलपुष्पको ब्राह्मणोंको देकर व्रत सम्पन्न करे। इससे अश्विनीकुमार संतुष्ट होकर उत्तम रूप प्रदान करते हैं। व्रती उत्तम विमानोंमें बैठकर स्वर्गमें जाकर कल्पपर्यन्त विविध सुखोंका उपभोग करता है। फिर मर्त्यलोकमें जन्म लेकर वेद-वेदङ्गोंका ज्ञाता, महादानी,

आधि-व्याधिषोमे रहित, पुत्र-पौत्रोंसे युक्त, उत्तम पत्नीवाला ब्राह्मण होता है अथवा मध्यदेशके उत्तम नगरमें राजा होता है।

राजन् ! इस पुष्पद्वितीया-व्रतका विधान मैंने आपको बतलाया। ऐसी ही फलद्वितीया भी होती है, जिस अशून्यशयना-द्वितीया भी कहते हैं। फलद्वितीयाको जो ब्रह्मपूर्वक व्रत करता है, वह ऋद्धि-सिद्धिको प्राप्तकर अपनी भार्यासहित आनन्द प्राप्त करता है।

(अध्याय १९)

### फल-द्वितीया (अशून्यशयन-व्रत) का व्रत-विधान और द्वितीया-कल्पकी समाप्ति

राजा शतानीकने कहा—मुने ! कृपाकर आप फलद्वितीयाका विधान कहें, जिसके करनेसे स्त्री विधवा नहीं होती और पति-पत्नीका परस्पर वियोग भी नहीं होता।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! मैं फलद्वितीयाका विधान कहता हूँ, इसीका नाम अशून्यशयना-द्वितीया भी है। इस व्रतको विधिपूर्वक करनेसे स्त्री विधवा नहीं होती और स्त्री-पुरुषका परस्पर वियोग भी नहीं होता। शौरसगर्भमें लक्ष्मीके साथ भगवान् विष्णुके शयन करनेके समय यह व्रत होता है। श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीयाके दिन लक्ष्मीके साथ श्रीवत्सधारी भगवान् श्रीविष्णुका पूजनकर हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

श्रीवत्सधारिन् श्रीकान्त श्रीवत्स श्रीपतेऽग्रमय ।

गार्हस्थ्यं मा प्रणशो मे यातु धर्मावकाशमदम् ॥

गावक्ष मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु मे जनाः ॥

जामयो मा प्रणश्यन्तु पतो दाम्पत्यभेदतः ।

लक्ष्म्या विद्युन्मेऽहं देव न कदाचिद्व्याधा भवान् ॥

तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे विपुज्यताम् ।

लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयने सदा ॥

शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा तु पशुसूदन<sup>१</sup> ।

(ब्राह्मण २०।७—११)

इस प्रकार विष्णुकी प्रार्थना करके व्रत करना चाहिये। जो किया है।

(अध्याय २०)

फल भगवान्को प्रिय है, उन्हें भगवान्की शय्यापर समर्पित करना चाहिये और स्वयं भी रात्रिके समय उन्हीं फलोंको खाकर दूसरे दिन ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये।

राजा शतानीकने पूछा—महामुने ! भगवान् विष्णुको कौन-से फल प्रिय है, आप उन्हें बतावे। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको क्या दान देना चाहिये ? उसे भी कहें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! उस ऋतुमें जो भी फल हो और फले हो, उन्हींको भगवान् विष्णुके लिये समर्पित करना चाहिये। कद्दुबे-कबो तथा खट्टे फल उनकी सेवामें नहीं चढ़ाने चाहिये। भगवान् विष्णुको खजूर, खरिबेल, मातुलुङ्ग अर्थात् बिजौर आदि मधुर फलोंको समर्पित करना चाहिये। भगवान् मधुर फलोंसे प्रसन्न होते हैं। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भी इसी प्रकारके मधुर फल, वस्त्र, अन्न तथा सुवर्णका दान देना चाहिये।

इस प्रकार जो पुरुष चार मासतक व्रत करता है, उसका तीन जन्मोंतक गार्हस्थ्य जीवन नष्ट नहीं होता और न तो ऐश्वर्यकी कमी होती है। जो स्त्री इस व्रतको करती है वह तीन जन्मोंतक न विधवा होती है न दुर्भगा और न पतिसे पृथक् ही रहती है।

इस व्रतके दिन अश्विनीकुमारोंको भी पूजा करनी चाहिये। राजन् ! इस प्रकार मैंने द्वितीया-कल्पका वर्णन

१-हे श्रीवत्स-विष्णुको धारण करनेवाले लक्ष्मीके साथी शश्वत भगवान् विष्णु। धर्म, अर्थ और कर्मको पूर्ण करनेवाला मेरा गृहस्थ-आश्रम कभी नष्ट न हो। मेरी गौएँ भी नष्ट न हों न कभी मेरी पत्निकाके लोग कहेंगे यह एवं न नष्ट हो। मेरी धरकी शिखाँ भी कभी विपत्तियोंमें न पड़े और हम पति-पत्नीमें भी कभी मतभेद उत्पन्न न हो। हे देव ! मैं लक्ष्मीसे कभी विपुक्त न होऊँ और पत्नीसे भी कभी मुझे वियोगकी प्राप्ति न हो। प्रभो ! जैसे आपकी शय्या कभी लक्ष्मीसे शून्य नहीं होती, उसी प्रकार मेरी शय्या भी कभी शोभाहीन एवं लक्ष्मी तथा पत्नीसे शून्य न हो।

### तृतीया-कल्पका आरम्भ, गौरी-तृतीया-व्रत-विधान और उसका फल

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! जो स्त्री सब प्रकारका सुख चाहती है, उसे तृतीयाका व्रत करना चाहिये। उस दिन नमक नहीं खाना चाहिये। इस विधिसे उपवासपूर्वक जीवन-पर्यन्त इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाली स्त्रीको भगवती गौरी संतुष्ट होकर रूप-सौभाग्य तथा लक्षण्य प्रदान करती है। इस व्रतका विधान जो स्वयं गौरीने धर्मराजसे कहा है, उसीका वर्णन मैं करता हूँ, उसे आप सुनें—

**भगवती गौरीने धर्मराजसे कहा—**धर्मराज ! स्त्री-पुरुषोंके कल्याणके लिये मैंने इस सौभाग्य प्राप्त करनेवाले व्रतको बनाया है। जो स्त्री इस व्रतको नियमपूर्वक करती है, वह सदैव अपने पतिके साथ रहकर उसी प्रकार आनन्दका उपभोग करती है, जैसे भगवान् शिवके साथ मैं आनन्दित रहती हूँ। उत्तम पतिकी प्राप्तिके लिये कन्याको यह व्रत करना चाहिये। व्रतमें नमक न खाये। सुवर्णकी गौरी-प्रतिमा स्थापित करके भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त हो गौरीका पूजन करे। गौरीके लिये नाना प्रकारके नैवेद्य अर्पित करने चाहिये। रात्रिमें लवणरहित भोजन करने स्थापित गौरी-प्रतिमाके सम्मुख हो शयन करे। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा दे। इस प्रकार जो कन्या व्रत करती है, वह उत्तम पतिको प्राप्त करती है तथा विरकादलतक श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर अन्तमें पतिके साथ उत्तम लोकोको जाती है।

यदि विधवा इस व्रतको करती है तो वह स्वर्गमें अपने पतिको प्राप्त करती है और बहुत समयतक वहाँ रहकर पतिके साथ वहाँके सुखोंका उपभोग करती है और पृथ्वीके सभी सुखोंको भी प्राप्त करती है। देवी इन्द्राणीने पुत्र-प्राप्तिके लिये इस व्रतका अनुष्ठान किया था, इसके प्रभावसे उन्हें जयन्त नामका पुत्र प्राप्त हुआ। अरुन्धतीने उत्तम स्थान प्राप्त करनेके लिये इस व्रतका नियम-पालन किया था, जिसके प्रभावसे वे

पतिसहित सबसे ऊपरका स्थान प्राप्त कर सकी थीं। वे अश्वत्थक अश्वत्थामे अपने पति महर्षि यज्ञिके साथ दिशायी देती हैं। चन्द्रमाकी पत्नी रोहिणीने अपनी समस्त सपत्नियोंको जीतनेके लिये बिना लवण खाये इस व्रतको किया तो वे अपनी सभी सपत्नियोंमें प्रधान तथा अपने पति चन्द्रमाकी अत्यन्त प्रिय पत्नी हो गयीं। देवी पार्वतीकी अनुकम्पासे उन्हें अचल सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस प्रकार यह तृतीया तिथि-व्रत सारे संसारमें पूजित है और उत्तम फल देनेवाला है। वैशाख, भाद्रपद तथा माघ मासकी तृतीया अन्य मासोंकी तृतीयासे अधिक उत्तम है, जिसमें माघ मास तथा भाद्रपद मासकी तृतीया स्त्रियोंको विशेष फल देनेवाली है।

वैशाख मासकी तृतीया सामान्यरूपसे सबके लिये है। यह साधारण तृतीया है। माघ मासकी तृतीयाको गुड़ तथा लवणका दान करना स्त्री-पुरुषोंके लिये अत्यन्त श्रेयस्कর है। भाद्रपद मासकी तृतीयामें गुड़के बने अपूर्ण (मालमुआ) का दान करना चाहिये। भगवान् शङ्करकी प्रसन्नताके लिये माघ मासकी तृतीयाको मोदक और जलका दान करना चाहिये। वैशाख मासकी तृतीयाको चन्दनमिश्रित जल तथा मोदकके दानसे ब्रह्मा तथा सभी देवता प्रसन्न होते हैं। देवताओंने वैशाख मासकी तृतीयाको अक्षय तृतीया कहा है। इस दिन आभ-वस्त्र-भोजन-सुवर्ण और जल आदिका दान करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। इसी विशेषताके कारण इस तृतीयाका नाम अक्षय तृतीया है। इस तृतीयाके दिन जो कुछ भी दान किया जाता है वह अक्षय हो जाता है और दान देनेवाला सूर्यलोकको प्राप्त करता है। इस तिथिको जो उपवास करता है वह ऋद्धि-वृद्धि और श्रीसे सम्पन्न हो जाता है।

(अध्याय २१)

### चतुर्थी-व्रत एवं गणेशजीकी कथा तथा सामुद्रिक शास्त्रका संक्षिप्त परिचय

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! तृतीया-कल्पका वर्णन करनेके अनन्तर अब मैं चतुर्थी-कल्पका वर्णन करता हूँ। चतुर्थी-तिथिमें सदा निरुहार रहकर व्रत करना चाहिये। ब्राह्मणको तिलका दान देकर स्वयं भी तिलका भोजन करना

चाहिये। इस प्रकार व्रत करते हुए दो वर्ष व्यतीत होनेपर भगवान् विनायक प्रसन्न होकर व्रतीको अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। उसका भाव्योदय हो जाता है और वह अपार धन-सम्पत्तिकर स्वामी हो जाता है तथा परलोकमें भी अपने



पुण्य-फलोंका उपभोग करता है। पुण्य संपाप्त होनेके पश्चात् इस लोकमें पुनः आकर वह दीर्घायु, कान्तिमान्, बुद्धिमान्, धृतिमान्, वक्ता, भाग्यवान्, अभीष्ट कार्यो तथा असाध्य-कार्योको भी क्षण-भरमें ही सिद्ध कर लेनेवाला और हाथी, घोड़े, रथ, पत्नी-पुत्रसे युक्त हो सात जन्मोंतक राजा होता है।

**राजा शतानीकने पूछा—**मुने ! गणेशजीने किसके लिये विघ्न उत्पन्न किया था, जिसके कारण उन्हें विप्रविनायक कहा गया। आप विशेषतः तथा उनके द्वारा विघ्न उत्पन्न करनेके कारणको मुझे बतानेका कह करे।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! एक बार अपने लक्षण-शास्त्रके अनुसार स्वामिकर्तिकियने पुरुषों और स्त्रियोंके श्रेष्ठ लक्षणोंकी रचना की, उस समय गणेशजीने विघ्न किया। इसपर कर्तिकिय क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने गणेशका एक दाँत उखाड़ लिया और उन्हें मारनेके लिये उद्यत हो उठे। उस समय भगवान् शङ्करने उनको रोककर पूछा कि तुम्हारे क्रोधका क्या कारण है ?

**कर्तिकियने कहा—**पिताजी ! मैं पुरुषोंके लक्षण बनाकर स्त्रियोंके लक्षण बना रहा था, उसमें इसने विघ्न किया, जिससे स्त्रियोंके लक्षण मैं नहीं बना सका। इस कारण मुझे प्रोध हो आया। यह सुनकर महादेवजीने कर्तिकियके क्रोधको शांत किया और हैसते हुए उन्होंने पूछा।

**शङ्कर बोले—**पुत्र ! तुम पुरुषके लक्षण जानते हो तो बताओ, मुझमें पुरुषके कौन-से लक्षण हैं ?

**कर्तिकियने कहा—**महाराज ! आपमें ऐसा लक्षण है कि संसारमें आप कपालीके नामसे प्रसिद्ध होगे। पुत्रका यह बचन सुनकर महादेवजीको क्रोध हो आया और उन्होंने उनके उस लक्षण-ग्रन्थको उठाकर समुद्रमें फेंक दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये।

बादमें शिवजीने समुद्रको बुलाकर कहा कि तुम स्त्रियोंके आभूषण-स्वरूप विलक्षण लक्षणोंकी रचना करो और कर्तिकियने जो पुरुष-लक्षणके विषयमें कहा है उसको कहो।

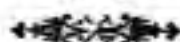
**समुद्रने कहा—**जो मेरे द्वारा पुरुष-लक्षणका शास्त्र

कहा जायगा, वह मेरे ही नाम 'सामुद्रिक शास्त्र'से प्रसिद्ध होगा। स्वामिन् ! आपने जो आज्ञा मुझे दी है, वह निश्चित ही पूरी होगी।

**शङ्करजीने पुनः कहा—**कर्तिकिय ! इस समय तुमने जो गणेशका दाँत उखाड़ लिया है उसे दे दो। निश्चय ही जो कुछ यह हुआ है, होना ही था। देवयोगसे यह गणेशके बिना सम्भव नहीं था, इसलिये उनके द्वारा यह विघ्न उपस्थित किया गया। यदि तुम्हें लक्षणकी अपेक्षा हो तो समुद्रसे ग्रहण कर ले, किन्तु स्त्री-पुरुषोंका यह श्रेष्ठ लक्षण-शास्त्र 'सामुद्र-शास्त्र' इस नामसे ही प्रसिद्ध होगा। गणेशको तुम दाँत-युक्त कर दो।

**कर्तिकियने भगवान् देखदेवेधरसे कहा—**आपके कहनेसे मैं दाँत तो विनायकके हाथमें दे देता हूँ, किन्तु इन्हें इस दाँतको सदैव धारण करना पड़ेगा। यदि इस दाँतको फेंककर वे इधर-उधर घूमेंगे तो यह फेंका गया दाँत इन्हें भस्म कर देगा। ऐसा कहकर कर्तिकियने उनके हाथमें दाँत दे दिया। भगवान् देवदेवेधरने गणेशको कर्तिकियकी इस बातको माननेके लिये सहमत कर लिया।

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! आज भी भगवान् शङ्करके पुत्र विप्रकर्ता महात्मा विनायककी प्रतिमा हाथमें दाँत लिये देखी जा सकती है। देवताओंकी यह रहस्यपूर्ण बात मैंने आपसे कही। इसको देवता भी नहीं जान पाये थे। पृथ्वीपर इस रहस्यको जानना तो दुर्लभ ही है। प्रसन्न होकर मैंने इस रहस्यको आपसे तो कह दिया है, किन्तु गणेशकी यह अमृतकथा चतुर्थी तिथिके संयोगपर ही कहनी चाहिये। जो विद्वान् हो, उसे चाहिये कि वह इस कथाको वेदपारङ्गत श्रेष्ठ द्विजों, अपनी क्षत्रियोचित वृत्तिमें लगे हुए क्षत्रियों, वैश्यों और गुणवान् शूद्रोंको सुनाये। जो इस चतुर्थीव्रतका पालन करता है, उसके लिये इस लोक तथा परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। उसकी दुर्गति नहीं होती और न कहीं वह पराजित होता है। भरतवेष्ट ! निर्विघ्न-रूपसे वह सभी कार्योको सम्पन्न कर लेता है, इसमें संदेह नहीं है। उसे ऋद्धि-वृद्धि-ऐश्वर्य भी प्राप्त हो जाता है। (अध्याय २२)



## चतुर्थी-कल्प-वर्णनमें गणेशजीका विघ्न-अधिकार तथा उनकी पूजा-विधि

राजा शतानीकने सुमन्तु मुनिसे पूछा—विप्रवर ! गणेशजीको गणोंका राजा किसने बनाया और बड़े भाई कार्तिकेयके रहते हुए ये कैसे विघ्नके अधिकारी हो गये ?

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! आपने बहुत अच्छी बात पूछी है। जिस कारण ये विघ्नकारक हुए हैं और जिन विघ्नको करनेसे इस पदपर इनकी नियुक्ति हुई, वह मैं कह रहा हूँ, उसे आप एकाग्रचित्त होकर सुनें। पहले कृतयुगमें प्रजाओंकी जब सृष्टि हुई तो बिना विघ्न-बाधाके देखते-ही-देखते सब कार्य सिद्ध हो जाते थे। अतः प्रजको बहुत अहंकार हो गया। त्रैश-रहित एवं अहंकारसे परिपूर्ण प्रजाको देखकर ब्रह्मने बहुत सोच-विचार करके प्रजा-समृद्धिके लिये विनायकको विनियोजित किया। अतः ब्रह्मके प्रयाससे भगवान् शङ्करने गणेशको उत्पन्न किया और उन्हें गणोंका अधिपति बनाया।

राजन् ! जो प्राणी गणेशकी बिना पूजा किये ही कार्य आरम्भ करता है, उसके लक्षण मुझे सुनिये—वह व्यक्ति स्वप्नमें आसना गहरे जलमें अपनेको डुबते, खान करते हुए या कैश मुद्राये देखता है। कायाय वस्त्रसे आच्छादित तथा हिंसक व्याघ्रादि पशुओंपर अपनेको चढ़ता हुआ देखता है। अचंचल, गर्दभ तथा ऊँट आदिपर चढ़कर परिक्रमोंसे घिरा वह अपनेको जाता हुआ देखता है। जो मानव केन्द्रकेपर बैठकर अपनेको जलकी तरंगोंके बीच गया हुआ देखता है और पैदल चल रहे लोगोंसे घिरकर यमराजके लोकको जाता हुआ अपनेको स्वप्नमें देखता है, वह निश्चित ही अत्यन्त दुःखी होता है।

जो राजकुमार स्वप्नमें अपने चित्त तथा आकृतिको विकृत रूपमें अवस्थित, करवीरके फूलोंकी मालासे विभूषित देखता है, वह उन भगवान् विघ्नेशके द्वारा विघ्न-उत्पन्न कर देनेके कारण पूर्ववैशानुगत प्राप्त राज्यको प्राप्त नहीं कर पाता। कुमारी कन्या अपने अनुरूप पतिको नहीं प्राप्त कर पाती। गर्भिणी स्त्री संतानको नहीं प्राप्त कर पाती है। श्रोत्रिय ब्राह्मण आचार्यत्वका लाभ नहीं प्राप्त कर पाता और शिष्य अध्ययन नहीं कर पाता। वैश्यको व्यापारमें लाभ नहीं प्राप्त होता है और कुक्कको कृषि-कार्यमें पूरी सफलता नहीं मिलती। इसलिये राजन् ! ऐसे अशुभ स्वप्नोंको देखनेपर भगवान् गणपतिकी प्रसन्नताके लिये विनायक-शान्ति करनी चाहिये।

शुक्ल पक्षकी चतुर्थीके दिन, बृहस्पतिवार और पुष्य-नक्षत्र होनेपर गणेशजीको सर्वोपधि और सुगन्धित द्रव्य-पदार्थोंसे उपलिप्त करे तथा उन भगवान् विघ्नेशके सामने स्वयं भद्रासनपर बैठकर ब्राह्मणोंसे स्तुतिवाचन कराये। तदनन्तर भगवान् शङ्कर, पार्वती और गणेशकी पूजा करके सभी पितरों तथा ग्रहोंकी पूजा करे। चार कलश स्थापित कर उनमें सहस्रमूर्तिका, मुगुल और गोरोचन आदि द्रव्य तथा सुगन्धित पदार्थ छोड़े। सिद्धासनस्थ गणेशजीको स्नान कराना चाहिये। स्नान करते समय इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—

सहस्राक्षं शतधारमुपिधिः पावनं कृतम् ।  
तेन त्वामधिष्ठिष्यामि पावमान्यः पुनन्तु ते ॥  
धर्मं ते वरुणो राजा धर्मं सुधीं बृहस्पतिः ।  
भगवन्तश्च वायुश्च धर्मं सप्तर्षयो तदुः ॥  
यस्य केतुषु दीर्घान्यं सीमने यच्च सृधनि ।  
तद्वलदे कर्णघोरहृणोत्तपस्तद्वपुन्तु ते सदा ॥

(ब्राह्मण २३।१९—२१)

इन मन्त्रोंसे स्नान कराकर हवन आदि कार्य करे। अनन्तर हाथमें पुष्प, दुर्वा तथा सर्प (सरसों) लेकर गणेशजीकी माता पार्वतीको खीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करनी चाहिये। मन्त्र उच्चारण करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

रूपं देहि यशो देहि धर्मं भगवति देहि मे ।  
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामान् देहि मे ।  
अच्छान् बुद्धिं मे देहि धरायां स्थितिमेव च ॥

(ब्राह्मण २३।२८)

अर्थात् 'हे भगवति ! आप मुझे रूप, यश, तेज, पुत्र तथा धन दें, आप मेरी सभी कामनाओंको पूर्ण करें। मुझे अच्छल बुद्धि प्रदान करें और इस पृथ्वीपर प्रसिद्धि दें।'

प्रार्थनके पश्चात् ब्राह्मणोंको तथा गुरुको भोजन कराकर उन्हें वस्त्र-मुगल तथा दक्षिणा समर्पित करे। इस प्रकार भगवान् गणेश तथा ग्रहोंकी पूजा करनेसे सभी कर्मोंका फल प्राप्त होता है और अत्यन्त श्रेष्ठ लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। सूर्य, कार्तिकेय और विनायकका पूजन एवं तिलक करनेसे सभी सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय २३)



## पुरुषोक्ते शुभाशुभ लक्षण

**राजा शतानीकने पूछा—**विप्रेन्द्र ! स्त्री और पुरुषके जो लक्षण कार्तिकेयने बनाये थे और जिस ग्रन्थको क्रोधमे आकर भगवान् शिवने समुद्रमे फेंक दिया था, वह कार्तिकेयको पुनः प्राप्त हुआ या नहीं ? इसे अब मुझे बताये ।

**सुमन्तु मुनिने कहा—**उपेन्द्र ! कार्तिकेयने स्त्री-पुरुषका जैसा लक्षण कहा है, वैसा ही मैं कह रहा हूँ । व्योमकेश भगवान्के सुपुत्र कार्तिकेयने जब अपनी शक्तिके द्वारा ब्रौचपर्वतको विदीर्ण किया, उस समय ब्रह्माजी उनपर प्रसन्न हो उठे । उन्होंने कार्तिकेयसे कहा कि हम तुमपर प्रसन्न हैं, जो चाहो वह वर मुझसे माँग लो । उस तेजस्वी कुमार कार्तिकेयने नतमस्तक होकर उन्हें प्रणाम किया और कहा कि विभी । स्त्री-पुरुषके विषयमे मुझे अत्यधिक कौतूहल है । जो लक्षण-ग्रन्थ पहले मैंने बनाया था उसे तें पिता देवदेवधरने क्रोधमे आकर समुद्रमे फेंक दिया । वह मुझे भूल भी गया है । अतः उसको सुननेकी मेरी इच्छा है । आप कृपा करके उसीका वर्णन करें ।

**ब्रह्माजी बोले—**तुमने अच्छी बात पूछी है । समुद्रने जिस प्रकारसे उन लक्षणोंको कहा है, उसी प्रकार मैं तुम्हें सुना रहा हूँ । समुद्रने स्त्री-पुरुषोक्ते उत्तम, मध्यम तथा अधम—तीन प्रकारके लक्षण बतलाये हैं ।

शुभाशुभ लक्षण देखनेवालेको चाहिये कि वह शुभ मुहूर्तमे मध्याह्नके पूर्व पुरुषके लक्षणोंको देखे । प्रमाणसमूह, छायागति, सम्पूर्ण अङ्ग, दाँत, केश, नख, दाढ़ी-मूँछका लक्षण देखना चाहिये । पहले आयुकी परीक्षा करके ही लक्षण बताने चाहिये । आयु कम हो तो सभी लक्षण व्यर्थ हैं । अपनी अङ्गुलियोंसे जो पुरुष एक सौ आठ यानी चार हाथ बारह अङ्गुलका होता है, वह उत्तम होता है । सौ अङ्गुलका होनेपर मध्यम और नब्बे अङ्गुलका होनेपर अधम माना जाता है—लंबाईके प्रमाणका यही लक्षण आचार्य समुद्रने कहा है ।

हे कुमार ! अब मैं पुरुषके अङ्गीकृत लक्षण कहता हूँ । जिसका पैर कोमल, मांसल, रक्तवर्ण, शिथ्य, ऊँचा, पसीनेसे रहित और नाड़ियोंसे व्याप्त न हो अर्थात् नाड़ियाँ दिखायी नहीं पड़ती हों तो वह पुरुष राजा होता है । जिसके पैरके तलव्येमे अंकुशवत् चिह्न हो, वह सदा सुखी रहता है । कङ्कुबेके समान

ऊँचे चरणवाला, कमलके सदृश कोमल और परस्पर मिली हुई अङ्गुलियोंवाला, सुन्दर घाँघि—एङ्गीसे युक्त, निगूट टखनेवाला, सदा गर्म रहनेवाला, प्रसवेदशून्य, रक्तवर्णक नखोंसे अलंकृत चरणवाला पुरुष राजा होता है । सूर्यके समान रुखा, सफेद नखोंसे युक्त, टेढ़ी-रुखी नाड़ियोंसे व्याप्त, धिरल अङ्गुलियोंसे युक्त चरणवाले पुरुष दरिद्र और दुःखी होते हैं । जिसका चरण आगमे पकड़ी गयी मिट्टीके समान वर्णक होता है, वह ब्रह्महत्या करनेवाला, पीले चरणवाला अगम्य-गमन करनेवाला, कुण्ठवर्णक चरणवाला मद्यपान करनेवाला तथा श्वेतवर्णक चरणवाला अभक्ष्य पदार्थ भक्षण करनेवाला होता है । जिस पुरुषके पैरोंके अँगूठे मोटे होते हैं वे भाग्यहीन होते हैं । विकृत अँगूठेवाले सदा पैदल चलनेवाले और दुःखी होते हैं । चिपटे, विकृत तथा टूटे हुए अँगूठेवाले अतिशय निन्दित होते हैं तथा देहे, छोटे और फटे हुए अँगूठेवाले कष्ट भोगते हैं । जिस पुरुषके पैरकी तर्जनी अँगुली अँगूठेसे बड़ी हो उसको स्त्री-सुख प्राप्त होता है । बर्निहा अँगुलीके बाड़ी होनेपर सर्वस्वी प्राप्ति होती है । चपटी, धिरल, सूखी अँगुली होनेपर पुरुष धनहीन होता है और सदा दुःख भोगता है । रुख और श्वेत नख होनेपर दुःखकी प्राप्ति होती है । खराब नख होनेपर पुरुष शैलप्रहित और कामभोगरहित होता है । रोमसे युक्त जंघा होनेपर भाग्यहीन होता है । जंघे छोटे होनेपर ऐश्वर्य प्राप्त होता है, किन्तु बन्धनमे रहता है । मूँगके समान जंघा होनेपर राजा होता है । लंबी, मोटी तथा मांसल जंघावाला ऐश्वर्य प्राप्त करता है । सिंह तथा बाघके समान जंघावाला धनवान् होता है । जिसके घुटने मांसरहित होते हैं, वह विदेशमे मरता है, विकट जानु होनेपर दरिद्र होता है । नीचे घुटने होनेपर स्त्री-जित होता है और मांसल जानु होनेपर राजा होता है । हंस, भास पक्षी, शुक, खू, सिंह, हाथी तथा अन्य श्रेष्ठ पशु-पक्षियोंके समान गति होनेपर व्यक्ति राजा अथवा भाग्यवान् होता है । ये आचार्य समुद्रके वचन हैं, इनमें संदेह नहीं है ।

जिस पुरुषका रक्त कमलके समान होता है वह धनवान् होता है । कुछ लाल और कुछ काला रुधिरवाला मनुष्य अधम और पापकर्मको करनेवाला होता है । जिस पुरुषका रक्त मूँगेके समान रक्त और शिथ्य होता है, वह सात दीपोंका राजा

होता है। मृग अथवा मोरके समान पेट होनेपर उत्तम पुरुष होता है। बाघ, मेढक और सिंहके समान पेट होनेपर राजा होता है। मांससे पुष्ट, सोधा और गोल पार्श्ववाला व्यक्ति राजा होता है। बाघके समान पीठवाला व्यक्ति सेनापति होता है। सिंहके समान लंबी पीठवाला व्यक्ति बन्धनमें पड़ता है। कछुयेके समान पीठवाला पुरुष धनवान् तथा सौभाग्य-सम्पन्न होता है। चौड़ा, मांससे पुष्ट और रोमयुक्त वक्षःस्थलवाला पुरुष शतायु, धनवान् और उत्तम भोगीको प्राप्त करता है। सूखी, रुखी, विरल हाथकी अंगुलिपोंवाला पुरुष धनहीन और सदा दुःखी रहता है।

जिसके हाथमें मत्स्यरेखा होती है, उसका कर्षं सिद्ध होता है और वह धनवान् तथा पुत्रवान् होता है। जिसके हाथमें तुला अथवा केटीका चिह्न होता है, वह पुरुष व्यापारमें लाभ करता है। जिसके हाथमें सोमलताका चिह्न होता है, वह धनी होता है और यज्ञ करता है। जिसके हाथमें पर्वत और वृक्षका चिह्न होता है, उसकी लक्ष्मी स्थिर होती है और वह अनेक सेवकोंका स्वामी होता है। जिसके हाथमें बछी, बाघ, तोमर, गहग और धनुषका चिह्न होता है, वह युद्धमें विजयी होता है। जिसके हाथमें ध्वजा और शङ्खका चिह्न होता है, वह जहाजसे व्यापार करता है और धनवान् होता है। जिसके हाथमें शीवत्स, कमल, वज्र, रथ और कलशका चिह्न होता है, वह शत्रुरहित राजा होता है। दाहिने हाथके अंगुठेमें घबका चिह्न रहनेपर पुरुष सभी विद्याओंका ज्ञाता तथा प्रवक्ता होता है। जिस पुरुषके हाथमें कनिष्ठाके नीचेसे तर्जनीके मध्यतक रेखा चली जाती है और बीचमें अलग नहीं रहती है तो वह पुरुष सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। जिसका पेट साँके समान लंबा होता है वह दरिद्री और अधिक भोजन करनेवाला होता है। विस्तीर्ण, फैली हुई, गम्भीर और गोल नाभिवाला व्यक्ति सुख भोगनेवाला और धन-धान्यसे सम्पन्न होता है। नीची और छोटी नाभिवाला व्यक्ति विविध क्लेशोंको भोगनेवाला होता है। बालिके नीचे नाभि हो और वह विषम हो तो धनकी हानि होती है। दक्षिणावर्त नाभि बुद्धि प्रदान करती है और वामावर्त नाभि शान्ति प्रदान करती है। सौ दलोंवाले कमलकी कर्णिकाके समान नाभिवाला पुरुष राजा होता है। पेटमें एक बलि होनेपर शस्त्रसे मारा जाता है, दो बलि होनेपर स्त्री-भोगी

होता है, तीन बलि होनेपर राजा अथवा आचार्य होता है। चार बलि होनेपर अनेक पुत्र होते हैं, सौधी बलि होनेपर धनका उपभोग करता है।

जिसके स्कन्ध कठोर एवं मांसल तथा समान हों वे राजा होते हैं और सुखी रहते हैं। जिसका वक्षःस्थल बलुवर, उन्नत, मांसल और विस्तृत होता है वह राजाके समान होता है। इसके विपरीत कड़े रोमवाले तथा नसे दिखायी पड़नेवाले वक्षःस्थल प्रायः निर्धनेके ही होते हैं। दोनों वक्षःस्थल समान होनेपर पुरुष धनवान् होता है, पुष्ट होनेपर शूरवीर होता है, छोटे होनेपर धनहीन तथा छोटी-बड़ी होनेपर अकिंचन होता है और शस्त्रसे मारा जाता है। विषम हनुवाला धनहीन तथा उन्नत हनु(ठुड्डी)वाला भोगी होता है। विपटी घ्रीवावाला धनहीन होता है। मक्षिकके समान घ्रीवावाला शूरवीर होता है। मृगके समान घ्रीवावाला डरपोक होता है। समान घ्रीवावाला राजा होता है। तोता, ऊँट, हाथी और बगुलेके समान लंबी तथा शुष्क घ्रीवावाला धनहीन होता है। छोटी घ्रीवावाला धनवान् और सुखी होता है। पुष्ट, दुर्गन्धरहित, सम एवं थोड़े रोमोंसे युक्त कर्णवाले धनी होते हैं, जिसकी भुजाएँ ऊपरको खिंची रहती हैं, वह बन्धनमें पड़ता है। छोटी भुजा रहनेपर दास होता है, छोटी-बड़ी भुजा होनेपर खोर होता है, लंबी भुजा होनेपर सभी गुणोंसे युक्त होता है और जानुओंतक लंबी भुजा होनेपर राजा होता है। जिसके हाथका तल गहरा होता है उसे पिताका धन नहीं प्राप्त होता, वह डरपोक होता है। ऊँचे करतलवाला पुरुष दानी, विषम करतलवाला पुरुष मिश्रित फलवाला, लक्ष्मके समान रत्नवर्णवाला करतल होनेपर राजा होता है। पीले करतलवाला पुरुष अगम्यागमन करनेवाला, काला और नीला करतलवाला मर्यादा विध्योंका पान करनेवाला होता है। रुखे करतलवाला पुरुष निर्धन होता है। जिनके हाथकी रेखाएँ गहरी और सिग्ध होती हैं वे धनवान् होते हैं। इसके विपरीत रेखावाले दरिद्र होते हैं। जिनकी अंगुलियाँ विरल होती हैं, उनके पास धन नहीं ठहरता और गहरी तथा छिद्रहीन अंगुली रहनेपर धनका संचयी रहता है।

**ब्रह्माजी पुनः बोले—**कर्त्तिकेय ! चन्द्रमण्डलके समान मुखवाला व्यक्ति धर्मात्मा होता है और जिसका मुख मूँडकी आकृतिका होता है वह भाग्यहीन होता है। टेढ़ा, टूटा



हुआ, विकृत और सिंहके समान मुखवाला चोर होता है। सुन्दर और कान्तियुक्त श्रेष्ठ हाथोंके समान भरा हुआ सम्पूर्ण मुखवाला व्यक्ति राजा होता है। बकरे अथवा बंदरके समान मुखवाला व्यक्ति धनी होता है। जिसका मुख बड़ा होता है उसका दुर्भाग्य रहता है। छोटा मुखवाला कृष्ण, लंबा मुखवाला धनहीन और पापी होता है। चौखूँटा मुखवाला भूत, स्त्रीके मुखके समान मुखवाला और निम्न मुखवाला पुरुष पुत्रहीन होता है या उसका पुत्र उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है। जिसके कपोल कमलके दलके समान कोमल और कान्तिमान होते हैं, वह धनवान् एवं कृत्य होता है। सिंह, बाघ और हाथीके समान कपोलवाला व्यक्ति विविध भोग-सम्पत्तियों-वाला और सेनाका स्वामी होता है। जिसका नोचेका ओठ रक्तवर्णका होता है, वह राजा होता है और कमलके समान अधरवाला धनवान् होता है। मोटा और रुखा होठ होनेपर दुःखी होता है।

जिसके कान मांसरहित हो वह संश्राममें मारा जाता है। चिपटा कान होनेपर रोगी, छोटा होनेपर कृष्ण, शुकुके समान कान होनेपर राजा, नाड़ियोंसे व्याप्त होनेपर क्रूर, केशोंसे युक्त होनेपर दीर्घजीवी, बड़ा, पूरा तथा लंबा कान होनेपर धीरे तथा देवता और ब्राह्मणकी पूजा करनेवाला एवं राजा होता है। जिसकी नाक शुककी चोंचके समान हो वह सुख भोगनेवाला और शुक्ल नाकवाला दीर्घजीवी होता है। पतली नाकवाला राजा, लंबी नाकवाला भोगी, छोटी नाकवाला धर्मशील, हाथी, घोड़ा, सिंह या मुर्खकी भौति तीक्ष्ण नाकवाला व्याकरणमें सफल होता है। कुन्द-पुष्पकी कलीके समान उग्नवाल दाँतवाला राजा तथा हाथोंके समान दाँतवाला एवं चिकने दाँतवाला गुणवान् होता है। भालू और बंदरके समान दाँतवाले नित्य भूखसे व्याकुल रहते हैं। कराल, रुखे, अलग-अलग और फूटे हुए दाँतवाले दुःखसे जीवन व्यतीत करनेवाले होते हैं। बत्तीस दाँतवाले राजा, एकतीस दाँतवाले भोगी, तीस दाँतवाले सुख-दुःख भोगनेवाले तथा उनतीस दाँतवाले पुरुष दुःख ही भोगते हैं। काले या चित्रवर्णकी जोष होनेपर व्यक्ति दासवृत्तिसे जीवन व्यतीत करता है। रुखी और मोटी जीभवाला क्रोधी, श्वेतवर्णकी जीभवाला पवित्र आचरणसे सम्पन्न होता है। निम्न, त्रिगुण, अग्रभाग रक्तवर्ण और छोटी सं- भ- पु- अं- ३—

जिह्वावाला विद्वान् होता है। कमलके पतेके समान पतली, लंबी न बहुत मोटी और न बहुत चौड़ी जिह्वा रहनेपर राजा होता है। काले रंगका तालुवाला अपने कुलका नाशक, पीले तालुवाला सुख-दुःख भोग करनेवाला, सिंह और हाथीके तालुके समान तथा कमलके समान तालुवाला राजा होता है, श्वेत तालुवाला धनवान् होता है। रुखा, फटा हुआ तथा विकृत तालुवाला मनुष्य अच्छा नहीं माना जाता।

हंसके समान स्वरवाले तथा घेंघके समान गम्भीर स्वरवाले पुरुष धन्य माने गये हैं। ब्रूँचके समान स्वरवाले राजा, महान् धनी तथा विविध सुखोंका भोग करनेवाले होते हैं। चक्रवाकके समान जिनका स्वर होता है ऐसे व्यक्ति धन्य तथा धर्मवन्त राजा होते हैं। घड़े एवं दुंदुभिके समान स्वरवाले पूरा राजा होते हैं। काले, ऊँचे, क्रूर, पशुओंके समान तथा धर्परयुक्त स्वरवाले पुरुष दुःखभागी होते हैं। नील-कण्ठ पक्षीके समान स्वरवाले भाग्यवान् होते हैं। फूटे किसिके वातनके समान तथा टूटे-फूटे स्वरवाले अधम कहे गये हैं।

दाँडिमके पुष्पके समान नेत्रवाला राजा, व्याघ्रके समान नेत्रवाला क्रोधी, केकड़ेके समान आँखवाला झगड़ालू, बिल्ली और हंसके समान नेत्रवाला पुरुष अधम होता है। मयूर एवं नकुलके समान आँखवाले मध्यम माने जाते हैं। शहदके समान पिङ्गल वर्णके नेत्रवालेके लक्ष्मी कभी भी त्याग नहीं करती। गोरचन, गुंजा और हरतालके समान पिङ्गल नेत्रवाला बलवान् और धनेश्वर होता है। अर्धचन्द्रके समान ललाट होनेपर राजा होता है। बड़ा ललाट होनेपर धनवान् होता है। छोटा ललाट होनेपर धर्मात्मा होता है। ललाटके बीच जिस स्त्री तथा पुरुषके पाँच आड़ी रेखा होती है वह सौ वर्षोंतक जीवित रहता है और ऐश्वर्य भी प्राप्त करता है। चार रेखा होनेपर अस्सी वर्ष, तीन रेखा होनेपर सत्तर वर्ष, दो रेखा होनेपर साठ वर्ष, एक रेखा होनेपर चालीस वर्ष और एक भी रेखा न होनेपर पचीस वर्षकी आयुवाला होता है। इन रेखाओंके द्वारा हीन, मध्यम और पूर्ण आयुकी परीक्षा करनी चाहिये। छोटी रेखा होनेपर व्याधियुक्त तथा अल्पायु और लंबी-लंबी रेखाएँ होनेपर दीर्घायु होता है। जिसके ललाटमें त्रिशूल अथवा पट्टिशका चिह्न होता है, वह बड़ा प्रतापी, कीर्ति-सम्पन्न राजा होता है। छत्रके समान सिर होनेपर राजा,

लम्बा सिर होनेपर दुःखी, दरिद्र, विषम होनेपर समान तथा गोल सिर होनेपर सुखी, हार्थके समान सिर होनेपर राजाके समान होता है। जिनके केश अथवा रोम मोटे, रुखे, कपिल और आगेसे फटे हुए होते हैं, वे अनेक प्रकारके दुःख भोगते

हैं। बहुत गहरे और कटोर केश दुःखदायी होते हैं। किरल, खिम्ब, कोमल, भ्रमर अथवा अंजनके समान अतिशय कृष्ण केशशाल पुरुष अनेक प्रकारके सुखका भोग करता है और राजा होता है। (अध्याय २४—२६)

### राजपुरुषोंके लक्षण

कार्तिकेयजीने कहा—ब्रह्मन् ! आप राजाओंके शरीरके अङ्गोंके लक्षणोंको बतानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—मैं मनुष्योंमें राजाओंके अङ्गोंके लक्षणोंको संक्षेपमें बताता हूँ। यदि ये लक्षण साधारण पुरुषोंमें भी प्रकट हों तो वे भी राजाके समान होते हैं, इनमें आप सुने—

जिस पुरुषके नाभि, स्वर और संधिस्थान—ये तीन गम्भीर हों, मुख, ललाट और वक्षःस्थल—ये तीन विस्तारित हों, वक्षःस्थल, कक्ष, नासिका, नख, मूत्र और कुक्कटिका—ये छः उन्नत अर्थात् ऊँचे हों, उपस्थ, पीठ, प्रोक्ता और जंघा—ये चार ह्रस्व हों, नेत्रोंके प्रान्त, हाथ, पैर, तालु, ओष्ठ, जिह्वा तथा नख—ये सात रक्त वर्णके हों, हनु, नेत्र, भुजा, नासिका तथा दोनों स्तनोंका अन्तर—ये पाँच दीर्घ हों तथा दन्त, केश, अङ्गुलियोंके पर्व, लघा तथा नख—ये पाँच मूक्य हों, वह सप्तद्वीपवर्ती पृथ्वीका राजा होता है। जिसके नेत्र कमलदलके समान और अन्तर्में रक्तवर्णके होते हैं, वह लक्ष्मीका स्वामी होता है। शहदके समान मित्राल नेत्रवाला पुरुष महारत्न होता है। सुखी आँखवाला डरणेक, गोल और चक्रके समान धूमनेवाली आँखवाला चोर, केकड़ेके समान आँखवाला क्रूर होता है। नील कमलके समान नेत्र होनेपर विद्वान्, श्यामवर्णके नेत्र होनेपर सौभाग्यशाली, विशाल नेत्र होनेपर भाग्यवान्, स्थूल नेत्र होनेपर राजमन्त्री और दोन नेत्र

होनेपर दरिद्र होता है। भीष्टे विशाल होनेपर सुखी, ऊँची होनेपर अल्पायु और विषम या बहुत लंबी होनेपर दरिद्र और दोनों भीतोंके मिले हुए होनेपर धनहीन होता है। मध्यभागमें मोचेकी ओर झुकी भीतवाले परदारभिगामों होते हैं। वारचन्द्रकाग्रके समान भीष्ट होनेपर राजा होता है। ऊँचा और निर्मल ललाट होनेपर उत्तम पुरुष होता है, नीचा ललाट होनेपर स्मृति क्लिप्त जानेवाला और धनसे युक्त होता है, कहीं ऊँचा और कहीं नीचा ललाट होनेपर दरिद्र तथा सीपके समान ललाट होनेपर आचार्य होता है। खिम्ब, हास्ययुक्त और दोनतासे रहित मुख शुभ होता है, दैन्यभावयुक्त तथा अशुभोत्तम युक्त आँखवाला एवं रुखे चेहरेवाला श्रेष्ठ नहीं है। उत्तम पुरुषका हास्य कम्पनरहित भीरु-धीर होता है। अधम व्यक्ति बहुत शब्दके साथ हीरता है। हैसते समय आँखकी मूँदनेवाला व्यक्ति पापी होता है। गोल सिरवाला पुरुष अनेक गौओंका स्वामी तथा चिपटा सिरवाला माता-पिताको मारने-वाला होता है। घण्टेकी आकृतिके समान सिरवाला रसदा कहीं-न-कहीं यात्रा करता रहता है। निम्न सिरवाला अनेक अनर्थोंको करनेवाला होता है।

इस प्रकार पुरुषोंके शुभ और अशुभ लक्षणोंको मैंने आपसे कहा। अब स्त्रियोंके लक्षण बतलाता हूँ।

(अध्याय २७)

### स्त्रियोंके शुभाशुभ-लक्षण

ब्रह्माजी बोले—कार्तिकेय ! स्त्रियोंके जो लक्षण मैंने पहले नारदजीको बतलाये थे, उन्हीं शुभाशुभ-लक्षणोंको बताता हूँ। आप सावधान होकर सुनें—शुभ मुहूर्तमें कन्याके हाथ, पैर, अँगुली, नख, हाथकी रेखा, जंघा, कटि, नाभि, ऊरु, पीठ, भुजा, कान, जिह्वा, ओष्ठ, दंत, कपोल, गाल, नेत्र, नासिका, ललाट, सिर, केश, स्वर, वर्ण और भीरी—इन

सबके लक्षण देखे।

जिसकी यौवनेमें रेखा हो और नेत्रोंका प्रान्तभाग कुछ लाल हो, वह स्त्री जिस घरमें जाती है, उस घरकी प्रतिदिन खुँडि होती है। जिसके ललाटमें त्रिशूलका चिह्न होता है, वह कई हजार टासियोंकी स्वामिनी होती है। जिस स्त्रीकी राजहंसके समान गति, मृगके समान नेत्र, मृगके समान ही शरीरका वर्ण,

दाँत बराबर और भेत होते हैं, वह उत्तम स्त्री होती है। मेढकके समान कुक्षिवाली एक ही पुत्र उत्पन्न करती है और वह पुत्र राजा होता है। हंसके समान मृदु वचन बोलनेवाली, शहदके समान पिङ्गल वर्णवाली स्त्री धन-धान्यसे सम्पन्न होती है, उसे आठ पुत्र होते हैं। जिस स्त्रीके लंबे कान, सुन्दर नाक और भौंह धनुषके समान टेढ़ी होती है, वह अतिशय सुखका भोग करती है। तन्वी, श्यामवर्णा, मधुर भाषिणी, शङ्खके समान अतिशय स्वच्छ दाँतिवाली, किन्ध अङ्गोसे समन्वित स्त्री अतिशय ऐश्वर्यको प्राप्त करती है। विस्तीर्ण जंघाओंवाली, वेदीके समान मध्यभागवाली, विशाल नेत्रोंवाली स्त्री रानी होती है। जिस स्त्रीके ताम्र स्तनपर, हाथमें, कानोंके ऊपर या गलेपर तिल अथवा मसा होता है, उस स्त्रीको प्रथम पुत्र उत्पन्न होता है। जिस स्त्रीका पैर रक्तवर्ण हो, ठेहने बहुत ऊँचे न हो, छोटी एड़ी हो, परस्पर मिली हुई सुन्दर औगुलियाँ हो, लाल नेत्र हो—ऐसी स्त्री अत्यन्त सुख भोग करती है। जिसके पैर बड़े-बड़े हो, सभी अङ्गोंमें रोम हो, छोटे और मोटे हाथ हो, वह दासी होती है। जिस स्त्रीके पैर उलकट हो, मुख पिङ्गल हो, ऊपरके ओठोंके ऊपर रोम हो वह शीघ्र अपने पतिको मार देती है। जो स्त्री पवित्र, पतिव्रता, देवता, गुरु और ब्राह्मणोंकी भक्त होती है, वह मानुषी कहलाती है। नित्य खान करनेवाली, सुगन्धित द्रव्य लगानेवाली, मधुर वचन बोलनेवाली, खोड़ा खानेवाली, काम सोनेवाली और सदा पवित्र रहनेवाली स्त्री

देवता होती है। गुप्तरूपसे पाप करनेवाली, अपने पापको छिपानेवाली, अपने हृदयके अभिप्रायको किसीके आगे प्रकट न करनेवाली स्त्री मार्जरी-संज्ञक होती है। कभी हँसनेवाली, कभी क्रोध करनेवाली, कभी क्रोध करनेवाली, कभी प्रसन्न रहनेवाली तथा पुरुषोंके मध्य रहनेवाली स्त्री गर्दभी-श्रेणीकी होती है। पति और बान्धवोंके द्वारा कहे गये हितकारी वचनको न माननेवाली, अपनी इच्छाके अनुसार विहार करनेवाली स्त्री आसुरी कहाँ जाती है। बहुत खानेवाली, बहुत बोलनेवाली, खंडे वचन बोलनेवाली, पतिको मारनेवाली स्त्री राक्षसी-संज्ञक होती है। शीघ्र, आवार और रूपसे रूढ़ित, सदा मलिन रहनेवाली, अतिशय भयंकर स्त्री पिशाची कहलाती है। अतिशय चञ्चल स्वभाववाली, चपल नेत्रोंवाली, इधर-उधर देखनेवाली, लगेभी नगरे वानरी-संज्ञक होती है। चन्द्रमुखी, मदमत्त हाथोंके समान चलनेवाली, रक्तवर्णके नखोंवाली, शुभ लक्षणोंसे युक्त हाथ-पैरवाली स्त्री विद्याधरी-श्रेणीकी होती है। वीणा, मृदङ्ग, बंसरी आदि वाद्योंके शब्दोंको सुनने तथा पुष्पों और विविध सुगन्धित द्रव्योंमें अभिरुचि रखनेवाली स्त्री गान्धर्वी-श्रेणीकी होती है।

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! ब्रह्माजी इस प्रकार स्त्री और पुरुषोंके लक्षणोंको स्थापिकारितिकेवचनको बतलाकर अपने लोकाको चले गये।

(अध्याय २८)

### विनायक-पूजाका माहात्म्य

**शतानीकने कहा—**मुने ! अब आप मुझे भगवान् गणेशकी आराधनाके विषयमें बतलावें।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! भगवान् गणेशकी आराधनामें किसी विधि, नक्षत्र या उपवासादिकी अपेक्षा नहीं होती। जिस किसी भी दिन ब्रह्मा-भक्तिपूर्वक भगवान् गणेशकी पूजा की जाय तो वह अभीष्ट फलको देनेवाली होती है। कामन्ध-भेदसे अलग-अलग वस्तुओंसे गणपतिकी मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करनेसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। 'महाकर्णाय' विद्यहे, वक्रतुण्डाय धीमहि, तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् ।'—यह गणेश-गायत्री है। इसका जप

करना चाहिये।

सुरु पक्षकी चतुर्थीकी उपवास कर जो भगवान् गणेशका पूजन करता है, उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं और सभी अनिष्ट दूर हो जाते हैं। श्रीगणेशजीके अनुकूल होनेसे सभी जगत् अनुकूल हो जाता है। जिसपर एकदन्त भगवान् गणेश की संतुष्ट होते हैं, उसपर देवता, पितर, मनुष्य आदि सभी प्रसन्न रहते हैं। इसीलिये सम्पूर्ण विघ्नोंको निवृत्त करनेके लिये ब्रह्मा-भक्तिपूर्वक गणेशजीकी आराधना करनी चाहिये।

(अध्याय २९-३०)

१-प्रथमसे प्रचलित गणेश-गायत्रीमें 'एकदन्त' शब्द है।

२-एकदन्त जगज्ज्येष्ठ गणेश तृष्टिमान्ते विन्दन्मन्त्रवक्ता सर्वे दुर्गन्ति धातुः॥ (ब्राह्मपर्व ३०।८)

## चतुर्थी-कल्पमें शिवा, शान्ता तथा सुखा—तीन प्रकारकी

### चतुर्थीका फल और उनका व्रत-विधान

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! चतुर्थी तिथि तीन प्रकारकी होती है—शिवा, शान्ता और सुखा । अब मैं इनका लक्षण करता हूँ, उसे सुने—

भाद्रपद मासकी शुक्ला चतुर्थीका नाम 'शिवा' है, इस दिन जो खान, दान, उपवास, जप आदि सत्कर्म किया जाता है, वह गणपतिके प्रसादसे सौ गुना हो जाता है । इस चतुर्थीको गुड़, लवण और घृतका दान करना चाहिये, यह शुभकर माना गया है और गुड़के अपूर्ण (मालपूआ) से ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये तथा उनकी पूजा करनी चाहिये । इस दिन जो स्त्री अपने सास और समुरको गुड़के पूर तथा नमकीन पूर खिलाती है वह गणपतिके अनुग्रहसे सौभाग्यवती होती है । पतिकी कामना करनेवाली कन्या विशेषरूपसे इस चतुर्थीका व्रत करे और गणेशजीकी पूजा करे । राजन् ! यह शिवा-चतुर्थीका विधान है ।

माघ मासकी शुक्ला चतुर्थीको 'शान्ता' कहते हैं । यह शान्ता तिथि नित्य शान्ति प्रदान करनेके कारण 'शान्ता' कही गयी है । इस दिन किये हुए खान-दानादि सत्कर्म गणेशजीकी कृपासे हजार गुना फलदायक हो जाते हैं । इस शान्ता नामक चतुर्थी तिथिको उपवास कर गणेशजीका पूजन तथा हवन करे और लवण, गुड़, शाक तथा गुड़के पूर ब्राह्मणोंको दानसे दे । विशेषरूपसे स्त्रियाँ अपने समुर आदि पुत्र्य जनोंका पूजन करे एवं उन्हें भोजन कराये । इस व्रतके करनेसे अस्त्रण्ड सौभाग्यकी प्राप्ति होती है, समस्त विघ्न दूर होते हैं और गणेशजीकी कृपा प्राप्त होती है ।

किसी भी महीनेके भौमवारयुक्त शुक्ला चतुर्थीको 'सुखा' कहते हैं । यह व्रत स्त्रियोंको सौभाग्य, उत्तम रूप और सुख देनेवाला है । भगवान् शङ्कर एवं माता पार्वतीके संयुक्त तेजसे भूमिद्वारा रक्तवर्णके मङ्गलकी उत्पत्ति हुई । भूमिका पुत्र होनेसे वह भौम कहलाया और कुज, रक्त, वीर, अङ्गारक आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुआ । वह शरीरके अङ्गोंकी रक्षा करनेवाला तथा सौभाग्य आदि देनेवाला है, इसीलिये अङ्गारक कहलाया । जो पुरुष अथवा स्त्री भौमवारयुक्त शुक्ला चतुर्थीको उपवास करके भक्तिपूर्वक प्रथम गणेशजीको, तदनन्तर

रक्त चन्दन, रक्त पुष्प आदिसे भौमका पूजन करते हैं, उन्हें सौभाग्य और उत्तम रूप-सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है ।

प्रथम संकल्पकर खान करे, अनन्तर गणेश-स्मरणपूर्वक लक्ष्मी सुदृढ मूर्तिको लेकर इस मन्त्रको पढ़े—

इह त्वं वन्दिता पूर्वं कृष्णोद्वहता किल ।

तस्माद्ये दह पाप्मानं यद्यथा पूर्वसंचितम् ॥

(ब्राह्मण ३१।२४)

इसके बाद मूर्तिको गङ्गाजलसे मिश्रितकर सूर्यके सामने करे, तदनन्तर अपने सिर आदि अङ्गोंमें लगाये और फिर जलके मध्य खड़ा होकर इस मन्त्रको पढ़कर नमस्कार करे—

त्वयाग्रे योनिः सर्वेषां दैवदानवद्यौकसाम् ।

श्वेताण्डजोद्दिता, धैव रसानां घतये नमः ॥

(ब्राह्मण ३१।२७)

अनन्तर सभी स्त्रियों, नदियों, सरोंवरी, झरनों और लालकर्मों में खान किया—इस प्रकार भावना करता हुआ गेने लगाकर खान करे, फिर पवित्र होकर घरमें आकर दूर्वा, फोपल, शमी तथा गौका स्पर्श करे । इनके स्पर्श करनेके मन्त्र इस प्रकार हैं—

**दूर्वा स्पर्श करनेका मन्त्र**

त्वं दूर्वप्रयुजनापासि सर्वदेवैस्तु वन्दिता ॥

वन्दिता दह तत्सर्वं दुरितं यद्यथा कृतम् ।

(ब्राह्मण ३१।३१-३२)

**शमी स्पर्श करनेका मन्त्र**

पवित्राणां पवित्रा त्वं काश्यपी प्रविता भुवो ।

शमी शमय मे पापं नूनं वेदिस धराधरान् ॥

(ब्राह्मण ३१।३३)

**पीपल-वृक्ष स्पर्श करनेका मन्त्र**

नेत्रस्पन्दादिजं दुःखं दुःखं दुर्विचिन्तनम् ।

शकानां च समुद्योगमसृज्य त्वं क्षमस्व मे ॥

(ब्राह्मण ३१।३४)

**गौको स्पर्श करनेका मन्त्र**

सर्वदेवपरी देवि मुनिभिस्तु सुपूजिता ।

तस्मात् स्पृशामि वन्दे त्वं वन्दिता पायहा भव ॥

(ब्राह्मण ३१।३६)



श्रद्धापूर्वक पहले गौकी प्रदक्षिणा का उपर्युक्त मन्त्रको पढ़े और गौका स्पर्श करे। जो गौको प्रदक्षिणा करता है, उसे सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रदक्षिणाका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार इनको स्पर्शकर, हाथ-पैर धोकर, आसनपर बैठकर आचमन करे। अनन्तर खदिर (खैर) की समिधाओसे अग्नि प्रज्वलित कर, घृत, दुग्ध, यव, तिल तथा विविध भक्ष्य पदार्थोंसे मन्त्र पढ़ते हुए हवन करे। आहुति इन मन्त्रोंसे दे—ॐ शर्वाय स्वाहा, ॐ शर्वपुत्राय स्वाहा, ॐ क्षोण्युत्सङ्गभवाय स्वाहा, ॐ कुत्राय स्वाहा, ॐ ललिताङ्गाय स्वाहा तथा ॐ लोहितङ्गाय स्वाहा। इन प्रत्येक मन्त्रोंसे १०८ या अपनी इष्टित्वेक अनुसार आहुति दे। अनन्तर सुवर्ण, चाँदी, चन्दन या देवदारुके कण्डुकी मङ्गलकी मूर्ति बनाकर तबि अथवा चाँदीके पात्रमें उसे स्थापित करे। धौ, कृकुम्भ, रक्तचन्दन, रक्त पुष्प, वैशद्य आदिसे उसकी पूजा करे अथवा अपनी इष्टित्वेक अनुसार पूजा करे। अथवा ताप, मृत्तिका या बरिससे बने पात्रमें कृकुम्भ, कैसर आदिसे मूर्ति अङ्कितकर पूजा करे। 'अग्निर्धृषी'¹ इत्यादि वैदिक मन्त्रोंसे

सभी उपचारोंको समर्पित कर यह मूर्ति ब्राह्मणको दे दे और यथाशक्ति घी, दूध, चावल, गेहूँ, गुड़ आदि वस्तु भी ब्राह्मणको दे। धन रहनेपर कृपणता नहीं करने की चाहिये, क्योंकि कंजूसी करनेसे फल नहीं प्राप्त होता।

इस प्रकार चार चार भौमयुक्त चतुर्थीका व्रतकर श्रद्धा-पूर्वक दस अथवा पाँच तोले सोनेकी मङ्गल और गणपतिकी मूर्ति बनवाये। उसे बीस पल या दस पलके सोने, चाँदी अथवा ताप आदिमें पात्रमें भक्तिपूर्वक स्थापित करे। सभी उपचारोंसे पूजा करनेके बाद दक्षिणाके साथ सत्पात्र ब्राह्मणको उसे दे, इससे इस व्रतका सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। राजन्! इस प्रकार इस उत्तम विधिको मैंने कहा। इस दिन जो व्रत करता है, वह चन्द्रमाके समान काङ्क्षिमान्, सूर्यके समान तेजस्वी एवं प्रभावान् तथा वायुके समान बलवान् होता है और अनाम महागणेशकी अनुग्रहसे भौमलोकमें निवास करता है। इस विधिके माहात्म्यको जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक पढ़ता-सुनता है, वह महापातकोंदिसे मुक्त होकर श्रेष्ठ सम्पत्तियोंको प्राप्त करता है। (अध्याय ३१)

### पञ्चमी-कल्पका आरम्भ, नागपञ्चमीकी कथा, पञ्चमी-व्रतका विधान और फल

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन्! अब मैं पञ्चमी-कल्पका वर्णन करता हूँ। पञ्चमी तिथि नागोंको अत्यन्त प्रिय है और उन्हें आनन्द देनेवाली है। इस दिन नागलोकमें विशिष्ट उत्सव होता है। पञ्चमी तिथिको जो व्यक्ति नागोंको दूधसे स्नान कराता है, उसके कुलमें वामुक्ति, नरक्षक, कालिय, महीभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कशटक तथा धन्वज्य—ये सभी बड़े-बड़े नाग अभय दान देते हैं—उसके कुलमें सर्वथा भय नहीं रहता। एक बार माताके शापसे नागलोक जलने लग गये थे। इसीलिये उस दाहकी व्यवस्थाको दूर करनेके लिये पञ्चमीको गायके दूधसे नागोंको आज भी लोग स्नान कराते हैं, इससे सर्प-भय नहीं रहता।

**राजाने पूछा—**महाशय! नागमाताने नागोंको क्यों शाप दिया था और फिर वे कैसे बच गये? इसका आप विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

**सुमन्तु मुनिने कहा—**एक बार राक्षसों और देवताओं

मिलकर समुद्रका मन्थन किया। उस समय समुद्रसे अतिशय श्रेष्ठ उषी-श्रवा नामका एक अश्व निकला, उसे देखकर नागभूता कद्रुने अपनी सपत्नी (सौत) विनतासे कहा कि देखो, यह अश्व श्रेष्ठवर्णका है, परन्तु इसके बाल काले दीख पड़ते हैं। तब विनताने कहा कि न तो यह अश्व सर्वश्रेष्ठ है, न अच्छा है और न खाल। यह सुनकर कद्रुने कहा—'मेरे साथ शर्त करो कि यदि मैं इस अश्वके बालोंको कृष्णवर्णका दिखा दूँ तो तुम मेरी दासी हो जाओगी और यदि नहीं दिखा सकी तो मैं तुम्हारी दासी हो जाऊँगी।' विनताने यह शर्त स्वीकार कर ली। दोनों ब्रजेध करती हुई अपने-अपने स्थानको चली गयीं। कद्रुने अपने पुत्र नागोंको बुलाकर सब वृत्तान्त उन्हे सुना दिया और कहा कि 'पुत्रो! तुम अश्वके बालोंके समान सूक्ष्म लेकर उषी-श्रवके शरीरमें लिपट जाओ, जिससे यह कृष्णवर्णका दिखायी देने लगे। तब मैं अपनी सौत विनताको जीतकर उसे अपनी दासी बना सकूँ।' माताके इस

वचनको सुनकर नागोंने कहा—‘मौ ! यह जल तो हमलोग नहीं करेंगे, चाहे तुम्हारे जीत हो या हार । छलमे जीतना बहुत बड़ा अधर्म है ।’ पुत्रोंका यह वचन सुनकर कटुने क्रुद्ध होकर कहा—तुमलोग मेरी आज्ञा नहीं मानते हो, इसलिए मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि ‘पाण्डवोंके वंशमें उत्पन्न राजा जनमेजय जब सर्प-सत्र करेंगे, तब उस वंशमें तुम सभी अंशमें जल जाओगे ।’ इतना कहकर कटु चुप हो गयी । नागगण माताका शाप सुनकर बहुत घबड़ाये और वासुकिको साथमें लेकर ब्रह्माजीके पास पहुँचे तथा ब्रह्माजीको अपना साथ वृत्तान्त सुनाया । इसपर ब्रह्माजीने कहा कि वासुकि ! चिन्ता मत करो । मेरी बात सुनो—यायावर-वंशमें बहुत बड़ा तपस्वी जलजल नामका ब्राह्मण उत्पन्न होगा । उसके साथ तुम अपने जलजल नामवाली वहिनका विवाह कर देना और वह जो भी कहे, उसका वचन स्वीकार करना । उसे आसीक नामका विष्णुवत पुत्र उत्पन्न होगा, वह जनमेजयके सर्पयज्ञको रोकगा और तुमलोगोंकी रक्षा करेगा । ब्रह्माजीके इस वचनको सुनकर नागराज वासुकि आदि अतिशय प्रसन्न हो, उन्हें प्रणाम कर अपने लोकमें आ गये ।

**सुमन्तु मुनिने इस कथाको सुनाकर कहा—**राजन् ! यह यज्ञ तुम्हारे पिता राजा जनमेजयने किया था । यही बात श्रीकृष्णभगवान्ने भी युधिष्ठिरसे कही थी कि ‘राजन् ! आजसे सौ वर्षके बाद सर्पयज्ञ होगा, जिसमें बड़े-बड़े विषधर और दुष्ट नाग नष्ट हो जायेंगे । करोड़ों नाग जब अंशमें दग्ध होने लगेंगे, तब आसीक नामका ब्राह्मण सर्पयज्ञ रोककर नागोंकी रक्षा करेगा ।’ ब्रह्माजीने पञ्चमीके दिन वर दिया था और आसीक मुनिने पञ्चमीको ही नागोंकी रक्षा की थी, अतः पञ्चमी तिथि नागोंको बहुत प्रिय है<sup>१</sup> ।

पञ्चमीके दिन नागोंकी पूजाकर यह प्रार्थना करनी चाहिये कि जो नाग पृथ्वीमें, आकाशमें, स्वर्गमें, सूर्यकी किरणोंमें, सरोवरोंमें, वाणी, कूप, तालाब आदिमें रहते हैं, वे सब हमपर प्रसन्न हों, हम उनको बार-बार नमस्कार करते हैं ।

**सर्वे नागाः प्रीयन्तां मे ये केचिन् पृथिवीतले ॥**

**ये च हेलिमरीचिस्था येऽन्तरे दिवि संस्थिताः ।**

**ये नदीषु महानागा ये सरस्वतिगामिनः ।**

**ये च वापीतट्यागेषु तेषु सर्वेषु त्वं नमः ॥**

(ब्राह्मपर्व ३२।३३-३४)

इस प्रकार नागोंको विस्मर्जित कर ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये और स्वयं अपने कुटुम्बियोंके साथ भोजन करना चाहिये । प्रथम मोक्ष भोजन करना चाहिये, अनन्तर अपनी अधिर्भावके अनुसार भोजन करें ।

इस प्रकार नियमानुसार जो पञ्चमीकी नागोंका पूजन करता है, वह श्रेष्ठ विमानमें बैठकर नागलोकको जाता है और कटने द्वारापुण्यमें बहुत पराक्रमी, रोगरहित तथा प्रतापी राजा होता है । इसीलिये धी, खीर तथा गुग्गुलुसे इन नागोंकी पूजा करनी चाहिये ।

**राजाने पूजा—**महाराज ! क्रुद्ध सर्पके काटनेसे मरनेवाला व्यक्ति किस गतिको प्राप्त होता है और जिसके माता-पिता, भाई, पुत्र आदि सर्पके काटनेसे मरे हों, उनके उद्धारके लिये कौन-सा व्रत, दान अथवा उपवास करना चाहिये, यह शपथ बतायें ।

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! सर्पके काटनेसे जो मरता है, वह अधोगतिको प्राप्त होता है तथा निर्बिष सर्प होता है और जिसके माता-पिता आदि सर्पके काटनेसे मरते हैं, वह उनकी मर्त्यतिके लिये भद्रपदके शुद्ध पक्षकी पञ्चमी तिथिको उपवास कर नागोंकी पूजा करे<sup>२</sup> । यह तिथि महापुण्या कही गयी है । इस प्रकार बारह महोत्सवक वसुधै तिथिके दिन एक बार भोजन करना चाहिये और पञ्चमीको व्रतकर नागोंकी पूजा करनी चाहिये । पृथ्वीपर नागोंका चित्र अङ्कित कर अथवा स्नेह, कण्डू या मिट्टीका नाग बनाकर पञ्चमीके दिन करवीर, कमल, चमेली आदि पुष्प, गन्ध, धूप और विविध नैवेद्योंसे उनको पूजा कर धी, खीर और लड्डू उलथ पाँच ब्राह्मणोंको मिलाये । अनन्त, वासुकि, शंख, पद्म, कैवल्य, कर्कोटक,

१-पञ्चम्यां तत्र भविता ब्रह्म लोकस्य लेलिहन् । तस्मादियं पञ्चमी दीपता मदा ।

नागानामानन्दकरी दत्ता ये ब्रह्मणः पुरा ॥

(ब्राह्मपर्व ३२।३२)

२-वर्तमानमें नागपञ्चमी प्रायः सभी पञ्चम्यों तथा व्रतके निम्न-ग्रन्थोंके अनुसार काल्प शुद्ध पञ्चमीको होती है । यहाँ या तो पाठ अशुद्ध है या कल्पनासे कभी भद्रपदमें नागपञ्चमी मनायी जाती रही होगी ।

अक्षतर, धृतराष्ट्र, अंशुपाल, कालिय, तक्षक और पिंगल—इन बारह नागोंकी बारह महानोंमें क्रमशः पूजा करें।

इस प्रकार वर्षपर्यन्त व्रत एवं पूजनकर व्रतकी पूरणा करनी चाहिये। बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मणको सोनेका नाग बनाकर उसे देना चाहिये। यह दद्यापनकी विधि है। राजन् ! आपके पिता जनमेजयने भी अपने पिता परीक्षितके उद्धारके लिये यह व्रत किया था और सोनेका बहुत भारी नाग तथा अनेक गौर्ण ब्राह्मणोंको दौ धौ। ऐसा करनेपर वे पितृ-अणसे मुक्त हुए थे और परीक्षितने भी

उत्तम लोकको प्राप्त किया था। आप भी इसी प्रकार सोनेका नाग बनाकर उनकी पूजाकर उन्हें ब्राह्मणकी दान करें, इससे आप भी पितृ-अणसे मुक्त हो जायेंगे। राजन् ! जो कोई भी इस नागपद्धती-व्रतको करेगा, साँपसे डैसे जानेपर भी वह शुभलोकको प्राप्त होगा और जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस कथाको सुनेगा, उसके कुलमें कभी भी साँपका भय नहीं होगा। इस पद्धती-व्रतके करनेमें उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

(अध्याय ३२)

### सर्पेक लक्षण, स्वरूप और जाति\*

**राजा शतानीकने पूछा—**मुने ! सर्पेक कितने रूप हैं, क्या लक्षण है, कितने रंग हैं और उनकी कितनी जातियाँ हैं ? इसका आप वर्णन करें।

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! इस विषयमें मुख्य पर्वतपर महर्षि कश्यप और गौतमका जो संवाद हुआ था, उसका मैं वर्णन करता हूँ। महर्षि कश्यप किसी समय अपने आश्रममें बैठे थे। उस समय वहाँ उपस्थित महर्षि गौतमने उन्हें प्रणामकर विनयपूर्वक पूछा—महाराज ! सर्पेक लक्षण, जाति, वर्ण और स्वभाव किस प्रकारके हैं, उनका आप वर्णन करें तथा उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है यह भी बतायें। वे विष किस प्रकार छोड़ते हैं, विषके कितने वेग हैं, विषकी कितनी नाड़ियाँ हैं, साँपोंके दाँत कितने प्रकारके होते हैं, सर्पिणीकी गर्भ कब होता है और वह कितने दिनोंमें प्रसव करती है, स्त्री-पुरुष और नपुंसक सर्पका क्या लक्षण है, ये क्यों कटते हैं, इन सब बातोंको आप कृपाकर मुझे बतायें।

**कश्यपजी बोले—**मुने ! आप ध्यान देकर सुनें। मैं सर्पेक सभी भेदोंका वर्णन करता हूँ। ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें सर्पोंको मद होता है। उस समय वे मैथुन करते हैं। वर्षा ऋतुके चार महानेतक सर्पिणी गर्भ धारण करती हैं। कार्तिकमें दो सौ चालीस अंडे देती हैं और उनमेंसे कुछको स्वयं प्रतिदिन खाने लगती हैं। प्रकृतिकी कृपासे कुछेक अंडे इधर-उधर दुलककर बच जाते हैं। सोनेकी तरह चमकनेवाले अंडोंमें पुरुष,

स्वर्णकटक वर्णक समान आभावाले और लेखी रेशाओंसे युक्त अंडोंमें स्त्री तथा शिरोपपुष्पके समान रंगवाले अंडोंके बीच नपुंसक सर्प होता है। उन अंडोंको सर्पिणी छः महानेतक सेती है। अनन्तर अंडोंके फूटनेपर उनसे सर्प निकलते हैं और वे बड़े अपनी मातासे स्नेह करते हैं। अंडोंके बाहर निकलनेके सात दिनोंमें बच्चोंका कुम्भवर्ण हो जाता है। सर्पकी आयु एक सौ बीस वर्षकी होती है और इनकी मृत्यु आठ प्रकारसे होती है—घोरसे, मनुष्यसे, शक्रे पक्षीसे, जिल्लीसे, नकुलसे, शूकरसे, वृक्षकसे और गी, भैर, घोड़े, ऊँट आदि पशुओंके खुरोंसे दब जानेपर। इनसे बचनेपर सर्प एक सौ बीस वर्षतक जीवित रहते हैं। सात दिनोंके बाद दाँत उगते हैं और इकहरे दिनोंमें विष हो जाता है। साँप काटनेके तुरंत बाद अपने जख्मसे तीक्ष्ण विषका त्याग करता है और फिर विष इकट्ठा हो जाता है। सर्पिणीके साथ घूमनेवाला सर्प बालसर्प कहा जाता है। पच्चीस दिनोंमें वह बच्चा भी विषके द्वारा दूसरे प्राणियोंके प्राण हरनेमें समर्थ हो जाता है। छः महानेतमें कंचुक- (कंचुल-) का त्याग करता है। साँपके दो सौ चालीस पैर होते हैं, परंतु वे पैर गायके रोखेके समान बहुत सूक्ष्म होते हैं, इसीलिये दिखायी नहीं देते। चलनेके समय निकल आते हैं और अन्य समय भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं। उनके शरीरमें दो सौ बीस अङ्गुलियाँ और दो सौ बीस संधियाँ होती हैं। अपने समयके बिना जो सर्प उत्पन्न होते हैं उनमें कम विष रहता है

\*-शिवतत्व-रत्नाकर और अभिलसितार्थ-चिन्तामणि तथा अपुर्बे-ग्रन्थों—सुकुल, चरक, काण्डके चिकित्सकग्रन्थोंमें भी इस विषयका वर्णन मिलता है।





लगती है, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है, श्वासकी गति बंद जाती है, शरीरका रंग पीला पड़ जाता है। ऐसी अवस्थाको कालसर्पसे काटा हुआ समझना चाहिये। उसकी मृत्यु आसन्न समझनी चाहिये।

घाय फूल जाय, नीले रंगका हो जाय, अधिक पसीना आने लगे, नाकसे खोलने लगे, ओंठ लटक जाय, हृदयमें कम्पन होने लगे तो कालसर्पसे काटा हुआ समझना चाहिये। दाँत पीसने लगे, नेत्र उल्टे जायें, लंबी श्वास आने लगे, प्रीष्ण लटक जाय, नाभि फड़कने लगे तो कालसर्पसे काटा हुआ जानना चाहिये। दर्पण या जलमें अपनी छाया न देखे, सूर्य तेजहीन दिखायी पड़े, नेत्र लाल हो जायें, सम्पूर्ण शरीर कष्टके कारण काँपने लगे तो उसे कालसर्पसे काटा हुआ समझना चाहिये, उसकी शीघ्र ही मृत्यु सम्भाव्य है।

अहमी, नवमी, कृष्णा चतुर्दशी और श्रावणपूर्णिमाके दिन जिसको साँप काटता है, उसके प्रायः प्राण नहीं बचते। आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, भरणी, कुतिका, विशाखा, मीनो पूर्वा, मूल, स्वाती और शतभिषा नक्षत्रमें जिसको साँप काटता है वह भी नहीं जीता। इन नक्षत्रोंमें विष पीनेवाला व्यक्ति भी तत्काल मर जाता है। पूर्वोक्त तिथि और नक्षत्र दोनों मिल जायें तथा खण्डहरमें, दमशानमें और सुखे वृक्षके नीचे जिसे साँप काटता है वह नहीं जीता।

मनुष्यके शरीरमें एक ही आठ मर्म-स्थान हैं, उनमें भी शेष अर्थात् ललाटकी ठुड़ी, अँखि, भ्रुमध्य, घँसि, अण्डकोशक उपरी भाग, कक्ष, कंधे, हृदय, यक्ष-स्थल,

तालु, ठोड़ी और मुँदा—ये बारह मुख्य मर्म-स्थान हैं। इनमें सर्व काटनेसे अथवा शस्त्राघात होनेपर मनुष्य जीवित नहीं रहता।

अब सर्प काटनेके बाद जो वैद्यको बुलाने जाता है उस दूतका लक्षण कहता हूँ। उत्तम जातिका हीन वर्ण दूत और हीन जातिका उत्तम वर्ण दूत भी अच्छा नहीं होता। वह दूत हाथमें टेंड लिये हुए हो, दो दूत हो, कृष्ण अथवा रक्तवस्त्र पहने हो, मुख ढाँके हो, सिरपर एक वस्त्र लपेटे हो, शरीरमें तेल लगाये हो, केश खोले हो, जोरसे खोलता हुआ आवे, हाथ-पैर घोंटे तो ऐसा दूत अत्यन्त अशुभ है। जिस रोगीका दूत इन लक्षणोंसे युक्त वैद्यके समीप जाता है, वह रोगी अवश्य ही मर जाता है।

कश्यपजी बोले—गौतम ! अब मैं भगवान् शिवके द्वारा कथित नागोंकी उत्पत्तिके विषयमें कहता हूँ। पूर्वकालमें ब्रह्मजीने अनेक नागों एवं ग्रहोंकी सृष्टि की। अनन्त नाग सूर्य, कामर्षिक चन्द्रमा, तक्षक भौम, कर्कोटक बुध, पद्म बृहस्पति, महापद्म शुक्र, कुँलिक और शंखपाल शनैश्चर ग्रहके रूप हैं। रविचारके दिन दसवाँ और चौदहवाँ यामार्ध, सोमवारको आठवाँ और बारहवाँ, भौमवारको छठा और दसवाँ, बुधवारको नववाँ, बृहस्पतिको दूसरा और छठा, शुक्रको चौथा, आठवाँ और दसवाँ, शनिवारको पहिलवा, सोलहवाँ, दूसरा और बारहवाँ प्रहरार्ध अशुभ है। इन समयोंमें सर्पोंके काटनेसे व्यक्ति जीवित नहीं रहता।

(अध्याय ३४)

### सर्पोंके विषका वेग, फैलाव तथा सात धातुओंमें प्राप्त विषके लक्षण और उनकी चिकित्सा

कश्यपजी बोले—गौतम ! यदि यह ज्ञात हो जाय कि सर्पने अपने यमदूती नामक दाढ़से काटा है तो उसकी चिकित्सा न करे। उस व्यक्तिको मर हुआ ही समझे। दिनमें और रातमें दूसरा और सोलहवाँ प्रहरार्ध सर्पोंसे सम्बन्धित नागोदय नामक वेला कही गयी है। उसमें साँप काटे तो क्षालक द्वारा काटा गया समझना चाहिये और उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। पानीमें बाल डुबोनेपर और उसे उठानेपर

क्षालक अप्रमाणसे जितना जल गिरता है, उतनी ही मात्रामे विष सर्प प्रविष्ट करता है। वह विष सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है। जितनी देरमें हाथ पसारना और समेटना होता है, उतने ही सूक्ष्म समयमें काटनेके बाद विष मस्तकमें पहुँच जाता है। हवासे आगकी लपट फैलनेके समान रक्तमें पहुँचनेपर विषकी बहुत कूँड हो जाती है। जैसे जलमें तेलकी बूँद फैल जाती है, वैसे ही त्वचामें पहुँचकर विष दृव्य हो जाता है। रक्तमें

चौगुना, पित्तमें अष्ट गुना, कफमें सोलह गुना, वातमें तीस गुना, मज्जामें साठ गुना और प्राणोंमें पहुँचकर वही विष अन्तर्गत गुना हो जाता है। इस प्रकार सारे शरीरमें विषके व्याप्त हो जाने तथा श्रवणशक्ति बंद हो जानेपर वह जीव श्वास नहीं ले पाता और उसका प्राणान्त हो जाता है। यह शरीर पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंसे बना है, मृत्युके बाद भूत-पदार्थ अलग-अलग हो जाते हैं और अपने-अपनेमें लीन हो जाते हैं। अतः विषकी चिकित्सा बहुत शीघ्र करना चाहिये, विलम्ब होनेसे रोग असाध्य हो जाता है। सर्पादि जीवोंका विष जिस प्रकार प्राण हरण करनेवाला होता है, वैसे ही दीक्षिया आदि विष भी प्राणको हरण करनेवाले होते हैं।

विषके पहले वेगमें रोमाञ्च तथा दूसरे वेगमें पस्तोह आता है। तीसरे वेगमें शरीर काँपता है तथा चौथेमें श्रवणशक्ति अवरुद्ध होने लगती है, पाँचवेंमें हिचकी होने लगती है और छठेमें प्रीया लटक जाती है तथा सातवें वेगमें प्राण निकल जाते हैं। इन सात वेगोंमें शरीरके सातों धातुओंमें विष व्याप्त हो जाता है। इन धातुओंमें पहुँचें हुए विषका अलग-अलग लक्षण तथा उपचार इस प्रकार है—

और्ध्विक आगे अथवा छा जाय और शरीरमें बाद-बाद जलन होने लगे तब यह जानना चाहिये कि विष त्वचामें है। इस अवस्थामें आककी जड़, अपामार्ग, तगर और त्रिवेगु—इनको जलमें घोटकर पिलानेसे विषकी बाधा शान्त हो सकती है। त्वचासे रक्तमें विष पहुँचनेपर शरीरमें दाह और मूर्च्छा होने लगती है। शीतल पदार्थ अच्छे लगता है। उशीर (खस), चन्दन, कूट, तगर, नीलोत्पल, सिंदुवारकी जड़, धतूरेकी जड़, होंग और मिरच—इनको पीसकर देना चाहिये। इससे बाधा शान्त न हो तो भटकटैया, इन्द्रायणकी जड़ और सर्पेण्डाकी घीमें पीसकर देना चाहिये। यदि इससे भी शान्त न हो तो सिंदुवार और खैरका नस्य देना चाहिये और पिलाना चाहिये। इसीका अञ्जन और लेप भी करना चाहिये, इससे रक्तमें प्राप्त विषकी बाधा शान्त हो जाती है।

रक्तसे पित्तमें विष पहुँच जानेपर पुरुष उठ-उठकर गिरने लगता है, शरीर पीला हो जाता है, सभी दिशाएँ पीले वर्णकी दिखायी देती हैं, शरीरमें दाह और प्रबल मूर्च्छा होने लगती है। इस अवस्थामें पीपल, शहद, महुवा, पी, तुम्बेकी जड़,

इन्द्रायणकी जड़—इन सबको गोमूत्रमें पीसकर नस्य, लेपन तथा अञ्जन करनेसे विषका वेग हट जाता है।

पित्तसे विषके कफमें प्रवेश कर जानेपर शरीर जकड़ जाता है। श्वास भरोधी नहीं आती, कण्ठमें घर्घर शब्द होने लगता है और मुखमें खार गिरने लगती है। यह लक्षण देखकर खैरल, मिरच, सेंट, इलेष्मातक (बहुवार वृक्ष), लोध एवं मधुसारको समान भाग करके गोमूत्रमें पीसकर लेपन और अञ्जन लगाना चाहिये और उसे पिलाना भी चाहिये। ऐसा करनेसे विषका वेग शान्त हो जाता है।

कफमें वातमें विष प्रवेश करनेपर पेट फूल जाता है, कोई भी पदार्थ दिखायी नहीं पड़ता, दृष्टि-भंग हो जाता है। ऐसा लक्षण होनेपर शोण (सोनागाछ)की जड़, त्रिपाल, गजनीपल, भारंगी, वक्का, पीपल, देवदारु, महुआ, मधुसार, सिंदुवार और होंग—इन सबको पीसकर गोली बना ले और रोगीको खिलाये और अञ्जन तथा लेपन करें। यह ओषधि सभी विषोंका हरण करती है।

वातसे मज्जामें विष पहुँच जानेपर दृष्टि नष्ट हो जाती है, सभी अङ्ग बेसुध हो शिथिल हो जाते हैं, ऐसा लक्षण होनेपर खी, शहद, शर्करासुक खस और चन्दनको घोटकर पिलाना चाहिये और नस्य आदि भी देना चाहिये। ऐसा करनेसे विषका वेग हट जाता है।

मज्जासे मर्मस्थानोंमें विष पहुँच जानेपर सभी इन्द्रियाँ निष्प्रेर हो जाते हैं और वह जमीनपर गिर जाता है। काटनेसे रक्त नहीं निचलता, केशके उखाड़नेपर भी कष्ट नहीं होता, उसे मृत्युके ही अधीन समझना चाहिये। ऐसे लक्षणोंसे युक्त रोगीकी साधारण वैद्य चिकित्सा नहीं कर सकते। जिनके पास सिद्ध मन्त्र और ओषधि होगी वे ही ऐसे रोगियोंके रोगको हटानेमें समर्थ होते हैं। इसके लिये साक्षात् रुद्रने एक ओषधि कही है। मोरका पित तथा मार्जारका पित और गन्धनाडीकी जड़, कुंकुम, तगर, कूट, कासमर्दकी छाल तथा उत्पल, कुमुद और कमल—इन तीनोंके केसर—सभीका समान भाग लेकर उसे गोमूत्रमें पीसकर नस्य दे, अञ्जन लगाये। ऐसा करनेसे कालसर्पसे डँसा हुआ भी व्यक्ति शीघ्र विपरिहित हो जाता है। यह मृतसेजोवनी ओषधि है अर्थात् मोरकी भी जिला देती है। (अध्याय ३५)

## सर्पोंकी भिन्न-भिन्न जातियाँ, सर्पोंके काटनेके लक्षण, पञ्चमी तिथिका नागोंसे सम्बन्ध और पञ्चमी-तिथिमें नागोंके पूजनका फल एवं विधान

**गौतम मुनिने कश्यपजीसे पूछा—**महात्मन् ! सर्प, सर्पिणी, बालसर्प, सूतिका, नपुंसक और व्यन्तर नामक सर्पोंके काटनेमें क्या भेद होता है, इनके लक्षण आप अलग-अलग बतायें।

**कश्यपजी बोले—**मैं इन सबको तथा सर्पोंके रूप-लक्षणोंको संक्षेपमें बतलाता हूँ, सुनिये—

यदि सर्प काटे तो दृष्टि ऊपरकी हो जाती है, सर्पिणीके काटनेसे दृष्टि नीचे, बालसर्पके काटनेसे दाहिनी ओर और बालसर्पिणीके काटनेसे दृष्टि बायीं ओर झुक जाती है। गर्भिणीके काटनेसे पसीना आता है, प्रसूती करते तो रोमाञ्च और कम्पन होता है तथा नपुंसकके काटनेसे शरीर टूटने लगता है। सर्प दिनमें, सर्पिणी रात्रिमें और नपुंसक संध्याके समय अधिक विषयुक्त होता है। यदि जेठमें, जलमें, वनमें सर्प काटे या सोते हुए या प्रसूतकी काटे, सर्प न दिखायी पड़े अथवा दिखायी पड़े, उसकी जाति न पहचानो जाय और पूर्वोक्त लक्षणोंकी जानकारी न हो तो वेद उसकी कैसे चिकित्सा कर सकता है !

सर्प चार प्रकारके होते हैं—दवीकर, मण्डली, राजिल और व्यन्तर। इनमें दवीकरका विष वात-स्वभाव, मण्डलीका पित्त-स्वभाव, राजिलका कफ-स्वभाव और व्यन्तर सर्पका संनिपात-स्वभावका होता है अर्थात् उसमें वात, पित्त और कफ—इन तीनोंकी अधिकता होती है। इन सर्पोंके रक्तको परीक्षा इस प्रकार करनी चाहिये। दवीकर सर्पमें रक्त कुण्डलवर्ण और स्वल्प होता है, मण्डलीमें बहुत गाढ़ा और लाल रंगका रक्त निकलता है, राजिल तथा व्यन्तरमें स्निग्ध और थोड़ा-सा रुधिर निकलता है। इन चार जातियोंके अतिरिक्त सर्पोंकी अन्य कोई पाँचवीं जाति नहीं मिलती। सर्प ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चार वर्णोंके होते हैं। ब्राह्मण सर्प काटे तो शरीरमें दाह होता है, प्रबल मूर्च्छा आ जाती है, मुख काल्य पड़ जाता है, मज्जा सम्प्लित हो जाती है और चेतना जाती रहती है। ऐसे लक्षणोंके दिखायी देनेपर अश्वगन्ध, अघामार्ग, सिंदुवारको घीमें घोंसकर नस्य दे और पिलत्रये तो विषकी निवृत्ति हो जाती है। क्षत्रिय वर्णके सर्पके काटनेपर शरीरमें

मूर्च्छा छा जाती है, दृष्टि ऊपरकी हो जाती है, अत्यधिक पीड़ा होने लगती है और व्यक्ति अपनेको पहचान नहीं पाता। ऐसे लक्षणोंके होनेपर आककी जड़, अघामार्ग, इन्द्रायण और प्रियंगुको घीमें घोंसकर मिला ले तथा इसीका नस्य देनेसे एवं पिलत्रयेसे बाधा मिट जाती है। वैश्य सर्प डैसे तो कफ बहुत आता है, मुखसे लार बहती है, मूर्च्छा आ जाती है और वह चेतनाशून्य हो जाता है। ऐसा होनेपर अश्वगन्ध, गृहधूम, गुग्गुलु, शिरीष, अर्क, पलाश और श्वेत गिरिकर्णिक (अपराजिता)—इन सबकी रोमूत्रमें घोंसकर नस्य देने तथा पिलत्रयेसे वैश्य सर्पकी बाधा तत्क्षण दूर हो जाती है। जिस व्यक्तिमें शूद्र सर्प काटता है, उसे शीत लगाकर ज्वर होता है, सभी अङ्ग चूतचूताने लगते हैं, इसकी निवृत्तिके लिये कमल, कमलका केसर, लोध, क्षौद्र, शहतूत, मधुसार और श्वेतगिरिकर्णिक—इन सबकी समान भागमें लेकर शीतल जलमें साथ घोंसकर नस्य आदि दे और पान कराये। इसमें विषका वेग दान्न हो जाता है।

ब्राह्मण सर्प मध्याह्नके पहले, क्षत्रिय सर्प मध्याह्नमें, वैश्य सर्प मध्याह्नके बाद और शूद्र सर्प संध्याके समय विचरण करता है। ब्राह्मण सर्प वायु एवं पुष्प, क्षत्रिय मुषक, वैश्य मेढक और शूद्र सर्प सभी पदार्थोंका भक्षण करता है। ब्राह्मण सर्प आगे, क्षत्रिय दाहिने, वैश्य बायें और शूद्र सर्प पीछेमें काटता है। मैथुनकी इच्छासे पीड़ित सर्प विषके वेगके बहनेसे व्याकुल होकर बिना समय भी काटता है। ब्राह्मण सर्पमें पुष्पके समान गन्ध होती है, क्षत्रियमें चन्दनके समान, वैश्यमें घृतके समान और शूद्र सर्पमें मत्स्यके समान गन्ध होती है। ब्राह्मण सर्प नदी, कूप, तालाब, झरने, बाग-बगीचे और पवित्र स्थानोंमें रहते हैं। क्षत्रिय सर्प ग्राम, नगर आदिके द्वार, तालाब, चतुस्यध तथा तोरण आदि स्थानोंमें; वैश्य सर्प श्मशान, ऊपर स्थान, भस्म, घास आदिके ढेर तथा वृक्षोंमें; इसी प्रकार शूद्र सर्प अपवित्र स्थान, निर्जन वन, शून्य घर, श्मशान आदि बुरे स्थानोंमें निवास करते हैं। ब्राह्मण सर्प श्वेत एवं कपिल वर्ण, अश्विंके समान तेजस्वी, मनस्वी और सौत्त्विक होते हैं। क्षत्रिय सर्प मृगेके समान रक्तवर्ण अथवा सुवर्णके तुल्य पीत वर्ण

तथा सूर्यके समान तेजस्वी, वैश्य सर्प अलसी अथवा बाण-  
पुष्पके समान वर्णवाले एवं अनेक रेखाओंसे युक्त तथा शूद्र  
सर्प अन्न अथवा काकके समान कृष्णवर्ण और धूम्रवर्णक  
होते हैं। एक अङ्गुष्ठके अन्तरमें दो देश हो तो बालसर्पका  
काटा हुआ जानना चाहिये। दो अङ्गुल अन्तर हो तो तरुण  
सर्पक, ढाई अङ्गुल अन्तर हो तो वृद्ध सर्पका देश समझना  
चाहिये।

अनन्तनाग सामने, वासुकि बायीं ओर, तक्षक दाहिनी  
ओर देखता है और कर्कोटककी दृष्टि पीछेकी ओर होती है।  
अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंखचक्र  
और कुलिश—ये आठ नाग क्रमशः पूर्वदिश आठ दिशाओंके  
स्वामी हैं। पद्म, उत्पल, स्वस्तिक, विशूल, महापद्म, शूल, श्व  
और अर्धचन्द्र—ये क्रमशः आठ नागोंके आपुष हैं। अनन्त  
और कुलिश—ये दोनों ब्राह्मण नाग-जातियाँ हैं, शंख और  
वासुकि क्षत्रिय, महापद्म और तक्षक वैश्य तथा पद्म और  
कर्कोटक शूद्र नाग हैं। अनन्त और कुलिश नाग शूद्रवर्ण तथा  
ब्राह्मणीसे उत्पन्न हैं, वासुकि और शंखचक्र रक्तवर्ण तथा  
अग्निसे उत्पन्न हैं, तक्षक और महापद्म स्वल्प पीतवर्ण तथा  
इन्द्रसे उत्पन्न हैं, पद्म और कर्कोटक कृष्णवर्ण तथा यमराजसे  
उत्पन्न हैं।

**सुमन्तु मुनिने पुनः कहा—**राजन्! सर्वोंके ये लक्षण

(अध्याय ३६—३८)

### षष्ठी-कल्प-निरूपणमें स्कन्द-षष्ठी-व्रतकी महिमा

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन्! अब मैं षष्ठी तिथि-  
कल्पका वर्णन करता हूँ। यह तिथि सभी मनोरथोंके पूर्ण  
करनेवाली है। कार्तिक मासकी षष्ठी तिथिके फलप्रसारकर यह  
तिथिव्रत किया जाता है<sup>१</sup>। यदि सन्ध्यव्युत्तर राजा इस व्रतका  
अनुष्ठान करे तो वह अपना राज्य प्राप्त कर लेता है। इसीलिये  
विजयकी अभिलाषा रखनेवाले व्यक्तिको इस व्रतका प्रयत्न-  
पूर्वक पालन करना चाहिये।

यह तिथि स्वामिकार्तिक्यको अत्यन्त प्रिय है। इसी दिन

और चिकित्सा महर्षि काश्यपने महामुनि गौतमको उपदेशके  
प्रसंगमें कहे थे और यह भी बताया कि सदा भक्तिपूर्वक  
नागोंकी पूजा करे और पञ्चमीको विशेषरूपसे दूध, खीर  
आदिसे उनका पूजन करे। श्रावण शुक्ल पञ्चमीको द्वारके दोनों  
ओर गोबरके द्वारा नाग बनाये। दही, दूध, दूर्वा, पुष्प, कुश,  
गन्ध, अक्षत और अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे नागोंका पूजनकर  
ब्राह्मणोंको भोजन कराये। ऐसा करनेपर उस पुरुषके कुलमें  
कभी सर्पोंका भय नहीं होता।

भाद्रपदको पञ्चमीको अनेक रंगोंके नागोंको चित्रितकर  
धौ, खीर, दूध, पुष्प आदिसे पूजनकर गुग्गुलुकी धूप दे। ऐसा  
करनेसे तक्षक आदि नाग प्रसन्न होते हैं और उस पुरुषकी सात  
पौर्वीतकको सौपका भय नहीं रहता।

अश्विन मासकी पञ्चमीको कुशका नाग बनाकर गन्ध,  
पुष्प आदिसे उनका पूजन करे। दूध, घी, जलसे स्नान कराये।  
दूधमें फेंके हुए गेहूँ और विविध नैवेद्योंका भोग लगाये। इस  
पञ्चमीको नागोंकी पूजा करनेसे वासुकि आदि नाग संतुष्ट होते  
हैं और वह पुरुष नागलोकमें जाकर बहुत कालतक सुखका  
भोग करता है। राजन्! इस पञ्चमी तिथिके कल्पका मैंने  
वर्णन किया। जहाँ 'ॐ कुम्भकुल्ले फट् स्वाहा'—यह मन्त्र  
पढ़ा जाता है, वहाँ कोई सर्प नहीं आ सकता<sup>२</sup>।

(अध्याय ३६—३८)

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन्! अब मैं षष्ठी तिथि-  
कल्पका वर्णन करता हूँ। यह तिथि सभी मनोरथोंके पूर्ण  
करनेवाली है। कार्तिक मासकी षष्ठी तिथिके फलप्रसारकर यह  
तिथिव्रत किया जाता है<sup>१</sup>। यदि सन्ध्यव्युत्तर राजा इस व्रतका  
अनुष्ठान करे तो वह अपना राज्य प्राप्त कर लेता है। इसीलिये  
विजयकी अभिलाषा रखनेवाले व्यक्तिको इस व्रतका प्रयत्न-  
पूर्वक पालन करना चाहिये।

यह तिथि स्वामिकार्तिक्यको अत्यन्त प्रिय है। इसी दिन

कृतिकाओंके पुत्र कार्तिकेयका आविर्भाव हुआ था। वे  
भगवान् शङ्कर, अग्नि तथा गङ्गाके भी पुत्र कहे गये हैं। इसी  
षष्ठी तिथिके स्वामिकार्तिक्य देवसेनाके सेनापति हुए। इस  
तिथिके व्रतकर घृत, दही, जल और पुष्पोंसे स्वामि-  
कार्तिकेयको दक्षिणकी ओर मुखकर अर्घ्य देना चाहिये।

अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

**सप्तर्षिदारज स्कन्द स्वाहापतिसमुद्भव।**

**स्त्वार्यमाग्निज विभो गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते।**

१-कश्मीर नागोंका देश बना जाता है। 'चैतन्यकुरुण'में इसका विस्तृत वर्णन है।

२-पञ्चाङ्गिक अनुसार कार्तिक शुक्ल षष्ठीको स्कन्द-षष्ठी होती है तथा कार्तिक शुक्ल षष्ठीको गण-षष्ठी माना जाता है, जिस दिन सम्पूर्ण भारतमें  
सूर्योदय होता है। परन्तु यहाँ कार्तिक शुक्ल षष्ठीके रूपमें वर्णन आया है, यह मन्त्र अमालकमास (अमलायात्रीके पूर्ण होनेवाले मास) के अनुसार  
प्रतीत होती है।



प्रीयतां देवसेनानीः सम्पादयन्तु ब्रह्मम् ॥

(ब्राह्मण्य ३९।६)

ब्राह्मणको अन्न देकर रात्रिमें फलका भोजन और भूमिपर शयन करना चाहिये। व्रतके दिन पवित्र रहे और ब्रह्मचर्यका पालन करे। शुक्र पक्ष तथा कृष्ण पक्ष—दोनों पण्डितोंको यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतके करनेसे भगवान् स्कन्दकी कृपासे सिद्धि, धृति, तुष्टि, राज्य, आयु, आरोग्य और मुक्ति मिलती है। जो पुरुष उपवास न कर सके, वह रात्रि-व्रत हो

करे, तब भी दोनों लोकोंमें उत्तम फल प्राप्त होता है। इस व्रतको करनेवाले पुरुषको देवता भी नमस्कार करते हैं और वह इस लोकमें आकर चक्रवर्ती राजा होता है। राजन्! जो पुरुष षष्ठी-व्रतके माहात्म्यका भक्तियुक्त श्रवण करता है, वह भी स्वामिकांतिक्यकी कृपासे विविध उत्तम भोग, सिद्धि, तुष्टि, धृति और लक्ष्मीको प्राप्त करता है। परलोकमें वह उत्तम गतिका भी अधिकारी होता है।

(अध्याय ३९)

### आचरणकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन

राजा शतानीकने कहा—मुने! अब आप ब्राह्मण आदिके आचरणकी श्रेष्ठताके विषयमें बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! मैं अत्यन्त संक्षेपमें इस विषयको बताता हूँ, उसे आप सुनें। न्याय-मार्गका अनुसरण करनेवाले शास्त्रकारोंने कहा है कि 'वेद आचारहीनको पवित्र नहीं कर सकते, भले ही वह सभी अङ्गोंके साथ वेदोंका अध्ययन कर ले। वेद पढ़ना तो ब्राह्मणका शिल्पमात्र है, किंतु ब्राह्मणका मुख्य लक्षण तो सदाचरण ही बतलाना गया है\*।' चारों वेदोंका अध्ययन करनेपर भी यदि वह आचरणसे होन है तो उसका अध्ययन वैसी ही निष्फल होता है, जिस प्रकार नपुंसकके लिये स्त्रीत्व निष्फल होता है।

जिनके संस्कार उत्तम होते हैं, वे भी दुर्गचरण कर पतित हो जाते हैं और नरकमें पहुँचते हैं तथा संस्कारहीन भी उत्तम आचरणसे अच्छे कहलाते हैं एवं स्वर्ग प्राप्त करते हैं। मनमें दुष्टता भरी रहे, बाहरसे सब संस्कार हुए हों, ऐसे वैदिक संस्कारोंसे संस्कृत कतिपय पुरुष आचरणमें शुद्धोंसे भी अधिक मलिन हो जाते हैं। क्रूर कर्म करनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, गुरुदारागामी, चोर, गौओंको मारनेवाला, मद्यपयी, परस्त्रीगामी, मिथ्यावादी, नास्तिक, वेदनिन्दक, निषिद्ध कर्मोंका आचरण करनेवाला यदि ब्राह्मण है और सभी तरहके संस्कारसे सम्पन्न भी है, वेद-वेदाङ्ग-पाण्डित्य भी है, फिर भी उसकी सद्गति नहीं होती। दयाहीन, हिंसक, अतिशय दाम्भिक, कपटी, लोभी, पिशुन (चुगलखोर), अतिशय दुष्ट पुरुष वेद पढ़कर भी संसारको उगलते हैं और वेदको बेचकर अपना

जीवन-यापन करते हैं, अनेक प्रकारके छल-छिद्रसे प्रजाकी हिंसा कर केवल अपना सांसारिक सुख सिद्ध करते हैं। ऐसे ब्राह्मण शुद्धसे भी अधम हैं।

जो ब्राह्म-अब्राह्मके तत्त्वको जाने, अन्यथाय और कुर्मार्गका परित्याग करे, जितेन्द्रिय, सत्यवादी और सदाचारी हो, नियमोंके पालन, आचार तथा सदाचरणमें स्थिर रहे, सबके हितमें तत्पर रहे, वेद-वेदाङ्ग और शास्त्रका मर्मज्ञ हो, समर्थापने स्थित रहे, क्रोध, मत्सर, मद तथा शोक आदिसे रहित हो, वेदके पठन-पाठनमें आसक्त रहे, किसीका आर्थधिक सङ्ग न करे, एकान्त और पवित्र स्थानमें रहे, सुख-दुःखमें समान हो, धर्मनिष्ठ हो, पापाचरणसे डरे, आसक्ति-रहित, निरहंकार, दानी, शूर, ब्रह्मवेत्ता, ज्ञान-स्वभाव और तपस्वी हो तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंमें परिनिष्ठित हो—इन गुणोंसे युक्त पुरुष ब्राह्मण होते हैं। जह्मके भक्त होनेसे ब्राह्मण, क्षत्रसे रक्षा करनेके कारण क्षत्रिय, वार्ता (क्षत्र-विद्या आदि) का सेवन करनेसे वैश्य और शब्द-श्रवणमात्रसे जो द्रुतगति हो जायें, वे शुद्ध कहलाते हैं। क्षमा, दम, शम, दान, सत्य, शौच, धृति, दया, मृदुता, ऋजुता, संतोष, तप, निरहंकारता, अक्रोध, अन्धसूय, अतृणता, अस्तेय, अमात्सर्य, धर्मज्ञान, ब्रह्मचर्य, ध्यान, आस्तिक्य, वैराग्य, पाप-भीरुता, अद्वेष, गुरुश्रृणा आदि गुण जिनमें रहते हैं, उनका ब्राह्मणत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहता है।

शम, तप, दम, शौच, क्षमा, ऋजुता, ज्ञान-विज्ञान और आस्तिक्य—ये ब्राह्मणोंके सहज कर्म हैं। ज्ञानरूपी शिखा,

\* आचारहीन न पुर्वत वेदा यथायथीकः सह यद्विचारतः । शिल्पे हि वेदाध्ययने द्विजानां वृत्ते स्मृते ब्राह्मणलक्षणं तु ॥ (ब्राह्मण्य ४१।८)

तपोरूपी सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत जिसके रहते हैं, उनको मनुने ब्राह्मण कहा है। पाप-कर्मोंसे निवृत्त होकर उत्तम आचरण करनेवाला भी ब्राह्मणके समान ही है। शीलसे युक्त शूद्र भी ब्राह्मणसे प्रशस्त हो सकता है और आचाररहित ब्राह्मण भी

शूद्रसे अधम हो जाता है।

जिस तरह देव और पौरुषके मिलनेपर कार्य सिद्ध होते हैं, वैसे ही उत्तम जाति और सत्कर्मकर योग होनेपर आचरणकी पूर्णता सिद्ध होती है। (अध्याय ४०—४५)

### भगवान् कार्तिकेय तथा उनके षष्ठी-व्रतकी महिमा

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! भाद्रपद मासकी षष्ठी तिथि बहुत उत्तम तिथि है, यह सभी पापोंका हरण करनेवाली, पुण्य प्रदान करनेवाली तथा सभी कल्याण-मङ्गल्योंको देनेवाली है। यह तिथि कार्तिकेयको अतिशय प्रिय है। इस दिन किया हुआ खान, दान आदि सत्कर्म अक्षय्य होता है। जो दक्षिण दिशा (कुमारिका-क्षेत्र) में निवास करनेवाले कुम्हार कार्तिकेयका इस तिथिको दर्शन करते हैं, वे ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाते हैं, इसलिये इस तिथिमें भगवान् कार्तिकेयका अवश्य दर्शन करना चाहिये। भक्तिपूर्वक कार्तिकेयका पूजन करनेसे मानव मानेवाञ्छित फल प्राप्त करता है और अन्तमें इन्द्रलोकमें निवास करता है। ईद, फाथर, काह आदिके द्वारा अष्टापूर्वक कार्तिकेयका मन्दिर बनानेवाला पुण्य स्वर्णक विमानमें बैठकर कार्तिकेयके लोकमें जाता है। इनके मन्दिरपर ध्वजा चढ़ाने तथा झाड़ू-पोछा (मार्जन) आदि करनेसे रत्नलोक प्राप्त होता है। चन्दन, अगर, कपूर आदिसे

कार्तिकेयकी पूजा करनेपर हाथी, घोड़ा आदि वाहनोका स्वामी होता है और सैनापतित्व भी प्राप्त होता है। राजाओंको कार्तिकेयकी अवश्य ही आराधना करनी चाहिये। जो राजा कृत्तिकाओंके पूज भगवान् कार्तिकेयकी आराधना कर युद्धके लिये प्रस्थान करता है वह देवराज इन्द्रकी तरह अपने शत्रुओंको पराजित कर देता है। कार्तिकेयकी वंषक आदि विविध पुष्पोंसे पूजा करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और दिग्विजयको प्राप्त करता है। इस भाद्रपद मासकी षष्ठीको तेलका सेवन नहीं करना चाहिये। षष्ठी तिथिको व्रत एवं पूजनकर रात्रिमें भोजन करनेवाला व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो कार्तिकेयके लोकमें निवास करता है। जो व्यक्ति कुमारिकाक्षेत्रमें स्थित भगवान् कार्तिकेयका दर्शन एवं भक्तिपूर्वक उनका पूजन करता है, वह अखण्ड शान्ति प्राप्त करता है।

(अध्याय ४६)

### सप्तमी-कल्पमें भगवान् सूर्यके परिवारका निरूपण एवं शाक-सप्तमी-व्रत

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! अब मैं सप्तमी-कल्पका वर्णन करता हूँ। सप्तमी तिथिको भगवान् सूर्यका अविर्भाव हुआ था। वे अण्डके साथ उत्पन्न हुए और अण्डमें रहते हुए ही उन्होंने बुद्धि प्राप्त की। बहुत दिनोंतक अण्डमें रहनेके कारण ये 'मार्तण्ड'के नामसे प्रसिद्ध हुए। जब ये अण्डमें ही स्थित थे तो दक्ष प्रजापतिने अपनी रूपवती कन्या रूपका भार्याके रूपमें इन्हें अर्पित किया। दक्षको आज्ञामें विश्वकर्माने इनके शरीरका संस्कार किया, जिससे ये अतिशय तेजस्वी हो गये। अण्डमें स्थित रहते ही इन्हें यमुना एवं यम नामकी दो संतानें प्राप्त हुई। भगवान् सूर्यका तेज सहन न कर सकनेके कारण उनकी स्त्री व्याकुल हो सोचने लगी—इनके

अतिशय तेजके कारण मेरी दृष्टि इनकी ओर उठर नहीं पाती जिससे इनके अङ्गोंको मैं देख नहीं पा रही हूँ। मेरा सुवर्ण-वर्ण, कमनीय शरीर इनके तेजसे दग्ध हो इयामवर्णक हो गया है। इनके साथ मेरा विवाह होना बहुत कठिन है। यह सोचकर उसने अपनी छायासे एक स्त्री उत्पन्न कर उससे कहा—'तुम भगवान् सूर्यके समीप मेरी जगह रहना, परन्तु यह भेद नुत्तने न पावे।' ऐसा समझाकर उसने उस छाया नामकी स्त्रीको वहाँ रख दिया तथा अपनी संतान यम और यमुनाको वहाँ छोड़कर वह तपस्या करनेके लिये उत्तरकुक्ष देशमें चली गयी और वहाँ षोडशक रूप धारणकर तपस्यामें रत रहते हुए इधर-उधर अनेक वर्षोंतक घूमती रही।

भगवान् सूर्यने छायाको ही अपनी पत्नी समझा। कुल समयके बाद छायासे शनैःशर और तपती नामकी दो संतानें उत्पन्न हुईं। छाया अपनी संतानपर यमुना तथा यमसे अधिक स्नेह करती थी। एक दिन यमुना और तपतीमें विवाद हो गया। पारस्परिक शापसे दोनों नदी हो गयीं। एक बार छायाने यमुनाके भाई यमको तडित किया। इसपर यमने क्रुद्ध होकर छायाको मारनेके लिये पैर उठाया। छायाने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया—'भूड ! तुमने मेरे ऊपर चरण उठाया है, इसीलिये तुम्हारा प्राणियोंका प्राणहिंसक रूपी यह बीभत्स कर्म तबतक रहेगा, जबतक सूर्य और चन्द्र रहेंगे। यदि तुम मेरे शापसे कर्तुषित अपने पैरको पृथ्वीपर रखोगे तो कृमिगण उसे खा जायेंगे।'

यम और छायाका इस प्रकार विवाद हो ही रहा था कि उसी समय भगवान् सूर्य वहाँ आ पहुँचे। यमने अपने पिता भगवान् सूर्यसे कहा—'पिताजी ! यह हमारी माता बेटादि नहीं हो सकती, यह कोई और स्त्री है। यह हमें निरव क्रूर भावसे देखती है और हम सभी भाई-बहनोंमें समान दृष्टि तथा समान व्यवहार नहीं रखती। यह सुनकर भगवान् सूर्यने क्रुद्ध होकर छायासे कहा—'तुम्हें यह उचित नहीं है कि अपनी संतानोंमें ही एकसे प्रेम करो और दुसरेसे द्वेष। जितनी संतानें हो सबको समान ही समझना चाहिये। तुम विषम-दृष्टिसे क्यों देखती हो ?' यह सुनकर छाया तो कुछ न बोली, पर यमने पुनः कहा—'पिताजी ! यह दुष्टा मेरी माता नहीं है, बल्कि मेरी माताकी छाया है। इसीसे इसने मुझे शाप दिया है।' यह कहकर यमने पूरा वृत्तान्त उन्हें बतला दिया। इसपर भगवान् सूर्यने कहा—'बेटा ! तुम चिन्ता न करो। कृमिगण मीस और रुधिर लेकर भूलोकको चले जायेंगे, इससे तुम्हारा पवि गलेगा नहीं, अच्छा हो जायगा और ब्रह्मजीकी आज्ञासे तुम लोकपाल - पदको भी प्राप्त करोगे। तुम्हारी बहन यमुनाका जल गङ्गाजलके समान पवित्र हो जायगा और तपतीका जल नर्मदाजलके तुल्य पवित्र माना जायगा। आजसे यह छाया सबके देहोंमें अवस्थित होगी।'

ऐसी व्यवस्था और मर्यादा स्थिर कर भगवान् सूर्य दक्ष प्रजापतिके पास गये और उन्हें अपने आगमनका कारण बताते हुए सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। इसपर दक्ष प्रजापतिने

कहा—'आपके अति प्रचण्ड तेजसे व्याकुल होकर आपकी भार्या उत्तरकुरु देशमें चली गयी है। अब आप विश्वकर्मासे अपना रूप प्रशस्त करवा ले।' यह कहकर उन्होंने विश्वकर्माको बुलाकर उनसे कहा—'विश्वकर्मान् ! आप इनका सुन्दर रूप प्रदर्शित कर दें।' तब सूर्यकी सम्मति पाकर विश्वकर्माने अपने तक्षण-कर्मसे सूर्यको खरादना प्रारम्भ किया। अङ्गोंके तरारनेके कारण सूर्यको अतिशय पीड़ा हो रही थी और बार-बार मूर्च्छा आ जाती थी। इसीलिये विश्वकर्माने सब अङ्ग तो टोक कर लिये, पर जब पैरोंकी अङ्गुलियोंको छोड़ दिया तब सूर्य भगवान्से कहा—'विश्वकर्मान् ! आपने तो अपना कार्य पूर्ण कर लिया, परंतु हम थोड़ेसे व्याकुल हो रहे हैं। इसका कोई उपाय बताइये।' विश्वकर्माने कहा—'भगवान् ! आप रक्तचन्दन और करवीरके पुष्पोंका सम्पूर्ण शरीरमें लेप करें, इससे तत्काल यह वेदना शान्त हो जायगी।' भगवान् सूर्यने विश्वकर्माके कथनानुसार अपने सारे शरीरमें इनका लेप किया, जिससे उनकी सारी वेदना मिट गयी। उसी दिनसे रक्तचन्दन और करवीरके पुष्प भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय हो गये और उनकी पूजामें प्रयुक्त होने लगे। सूर्यभगवान्के शरीरके खरादनेसे जो तेज निकला, उस तेजसे दैत्योंके विनाश करनेवाले वज्रका निर्माण हुआ।

भगवान् सूर्यने भी अपना उत्तम रूप प्राप्तकर प्रसन्न-मानसे अपनी भार्याके दर्शनोकी उत्कण्ठासे तत्काल उत्तर-कुरुकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने देखा कि यह थोड़ीका रूप धारणकर विचरण कर रही है। भगवान् सूर्य भी अश्वका रूप धारण कर उससे मिले।

पर-पुरुषकी आज्ञासे उसने अपने दोनों नासापुटोसे सूर्यके तेजको एक साथ बाहर फेंक दिया, जिससे अधिनी-कुमारोकी उत्पत्ति हुई और यही देवताओंके वैद्य हुए। तेजके अन्तिम अंशसे रक्ताकी उत्पत्ति हुई। तपती, शनि और सार्वर्षि—ये तीन संतानें छायासे और यमुना तथा यम संज्ञासे उत्पन्न हुए। सूर्यको अपनी भार्या उत्तरकुरुमें सप्तमी तिथिके दिन प्राप्त हुई, उन्हें दिव्य रूप सप्तमी तिथिको ही मिला तथा संतानें भी इसी तिथिके प्राप्त हुई, अतः सप्तमी तिथि भगवान् सूर्यको अतिशय प्रिय है।

जो व्यक्ति पञ्चमी तिथिको एक समय भोजनकर पत्नीको

उपवास करता है तथा सप्तमीको दिनमें उपवासकर भक्ष्य-भोज्योके साथ विविध शक-पदार्थोंको भगवान् सूर्यके लिये अर्पण कर ब्राह्मणोंको देता है तथा रात्रिमें मौन होकर भोजन करता है, वह अनेक प्रकारके सुखोंका भोग करता है तथा सर्वत्र विजय प्राप्त करता एवं अन्तमें उत्तम विमानपर चढ़कर सूर्यलोकमें कई मन्वन्तरोंतक निवास कर पृथ्वीपर पुनः-पौत्रोमें समन्वित चक्रवर्ती राजा होता है तथा दीर्घकालपर्यन्त निष्कण्टक राज्य करता है।

राजा कुरुने इस सप्तमी-व्रतका बहुत कालतक अनुष्ठान किया और केवल शाकका ही भोजन किया। इसीसे उन्होंने कुरु-क्षेत्र नामक पुण्यक्षेत्र प्राप्त किया और इसका नाम रत्ना धर्मक्षेत्र। सप्तमी, नवमी, पद्मी, तृतीया और पञ्चमी—ये तिथियाँ बहुत उत्तम हैं और स्त्री-पुरुषोंको मनोंवाञ्छित फल प्रदान करनेवाली हैं। माघकी सप्तमी, आश्विनकी नवमी, भाद्रपदकी पद्मी, वैशाखकी तृतीया और भाद्रपद मासकी पञ्चमी—ये तिथियाँ इन महीनोंमें विशेष प्रशस्त मानी गयी हैं। कार्तिक शुक्ल सप्तमीसे इस व्रतको ग्रहण करना चाहिये। उत्तम शाकको सिद्ध कर ब्राह्मणोंको देना चाहिये और रात्रिमें स्वयं भी शक हो ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार चार मासतक व्रत कर व्रतका पहला पारण करना चाहिये। उस दिन पञ्चगव्यसे सूर्य भगवान्को स्नान करना चाहिये और स्वयं भी पञ्चगव्यका प्राशन करना चाहिये, अनन्तर केशरका चन्दन, अगरुका

पुष्प, अपराजित नामक धूप और पायसका नैवेद्य सूर्यनारायणको समर्पित करना चाहिये। ब्राह्मणोंको भी पायसका भोजन करना चाहिये। दूसरे पारणमें कुशके जलसे भगवान् सूर्यनारायणको स्नान कराकर स्वयं गोमयका प्राशन करना चाहिये और श्वेत चन्दन, सुगन्धित पुष्प, अगरुका धूप तथा गुडके अग्नौ नैवेद्यमें अर्पण करना चाहिये और वर्षिके समान होनेपर तीसरा पारण करना चाहिये। गौर सर्वपक्का उषटन लगाकर भगवान् सूर्यको स्नान करना चाहिये। इससे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर रक्तचन्दन, करवीरके पुष्प, गुग्गुलुका धूप और अनेक भक्ष्य-भोज्यसहित दही-भात नैवेद्यमें अर्पण करना चाहिये तथा यही ब्राह्मणोंको भी भोजन करना चाहिये। भगवान् सूर्यनारायणके सम्मुख ब्राह्मणसे पूरण-श्रावण करना चाहिये अथवा स्वयं खीचना चाहिये। अन्तमें ब्राह्मणको भोजन कराकर पौराणिकको वस्त्र-आभूषण, दक्षिणा आदि देकर प्रसन्न करना चाहिये। पौराणिकके संग्रह होनेपर भगवान् सूर्यनारायण प्रसन्न हो जाते हैं। रक्तचन्दन, करवीरके पुष्प, गुग्गुलुका धूप, मोदक, पायसका नैवेद्य, घृत, तक्षक, पुष्प-पद्म और पौराणिक—ये सब भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय हैं। राजन्! यह शक-सप्तमी-व्रत भगवान् सूर्यको अति प्रिय है। इस व्रतका करनेवाला पुरुष भग्यशाली होता है।

(अध्याय ४७)

### श्रीकृष्ण-साम्ब-संवाद तथा भगवान् सूर्यनारायणकी पूजन-विधि

राजा सतानीकने कहा—ब्राह्मणश्रेष्ठ। भगवान् सूर्यनारायणका माहात्म्य सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, इसलिये साम्ब-कल्पका आप पुनः कुछ और विस्तारसे वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! इस विषयमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनके पुत्र साम्बका जो परस्पर संवाद हुआ था, उसीका मैं वर्णन करता हूँ, उसे आप सुनें।

एक समय साम्बने अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—‘पिताजी! मनुष्य संसारमें जन्म-ग्रहणकर कौन-सा कर्म करे, जिससे उसे दुःख न हो और मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त कर वह स्वर्ग प्राप्त करे तथा मुक्ति भी प्राप्त कर सके। इन

सबका आप वर्णन करें। मेरा मन इस संसारमें अनेक प्रकारकी आधि-व्याधियोंको देखकर अत्यन्त उदास हो रहा है, मुझे क्षणमात्र भी जीनेकी इच्छा नहीं होती, अतः आप कृपाकर ऐसा उपाय बतायें कि जितने दिन भी इस संसारमें रहा जाय, ये आधि-व्याधियाँ पीडित न कर सकें और फिर इस संसारमें जन्म न हो अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो जाय।’

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वत्स! देवताओंके प्रसादसे, उनके अनुग्रहसे तथा उनकी आराधना करनेसे यह सब कुछ प्राप्त हो सकता है। देवताओंकी आराधना ही परम उपाय है। देवता अनुमान और आगम-प्रमाणोंसे सिद्ध होते हैं। विशिष्ट पुरुष विशिष्ट देवताकी आराधना करे तो वह



विशिष्ट फल प्राप्त कर सकता है।

**साम्बने कहा—**महाराज ! प्रथम तो देवताओंके अस्तित्वमें ही संदेह है, कुछ लोग कहते हैं देवता हैं और कुछ कहते हैं कि देवता नहीं हैं, फिर विशिष्ट देवता किन्हे समझा जाय ?

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**वत्स ! आगमसे, अनुमानसे और प्रत्यक्षसे देवताओंका होना सिद्ध होता है।

**साम्बने कहा—**यदि देवता प्रत्यक्ष सिद्ध हो सकते हैं तो फिर उनके साधनके लिये अनुमान और आगम-प्रमाणकी कुछ भी अपेक्षा नहीं है।

**श्रीकृष्ण बोले—**वत्स ! सभी देवता प्रत्यक्ष नहीं होते। शास्त्र और अनुमानसे ही हजारों देवताओंका होना सिद्ध होता है।

**साम्बने कहा—**पिताजी ! जो देवता प्रत्यक्ष हैं और विशिष्ट एवं अभीष्ट फलोंको देनेवाले हैं, पहले आप उन्हींका वर्णन करें। अनन्तर शस्त्र तथा अनुमानसे सिद्ध होनेवाले देवताओंका वर्णन करें।

**श्रीकृष्णने कहा—**प्रत्यक्ष देवता तो संसारके नेत्रस्वरूप भगवान् सूर्यनारायण ही हैं, इनसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। सम्पूर्ण जगत् इन्हींसे उत्पन्न हुआ है और अन्तमें इन्हींमें विलीन भी हो जायगा<sup>१</sup>।

सूर्य आदि सृष्टि और कालकी गणना इन्हींसे सिद्ध होती है। ग्रह, नक्षत्र, योग, करण, राशि, आदित्य, वसु, रुद्र, वायु, अग्नि, अधिनीकुमार, इन्द्र, प्रजापति, दिशाएँ, भू, भुवः, स्वः—ये सभी लोक और पर्वत, नदी, समुद्र, नाग तथा सम्पूर्ण भूतप्राणकी उत्पत्तिके एकमात्र हेतु भगवान् सूर्यनारायण ही हैं। यह सम्पूर्ण चराचर-जगत् इनकी ही इच्छासे उत्पन्न हुआ है। इनकी ही इच्छासे स्थित है और सभी इनकी ही इच्छासे

अपने-अपने व्यवहारमें प्रवृत्त होते हैं। इन्हींके अनुग्रहसे यह साग संसार प्रयत्नशील दिखायी देता है। सूर्यभगवान्के उदयके साथ जगत्का उदय और उनके अस्त होनेके साथ जगत् अस्त होता है। इनसे अधिक न कोई देवता हुआ और न होगा। वेदादि शास्त्रों तथा इतिहास-पुराणादिमें इनका परमात्म, अन्तरात्मा आदि शब्दोंसे प्रतिपादन किया गया है। ये सर्वत्र व्याप्त हैं। इनके सम्पूर्ण गुणों और प्रभावोंका वर्णन सौ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। इसीलिये दिखाकर, गुणाकर, सबके स्वामी, सबके स्रष्टा और सबका संहार करनेवाले भी ये ही कहे गये हैं। ये स्वयं अव्यय हैं।

जो पुरुष सूर्य-मण्डलकी रचनाकर प्रातः, मध्याह्न और सूर्यास्त तक पूजा कर उपस्थान करता है, वह परमार्थकी प्राप्ति करता है। फिर जो प्रत्यक्ष सूर्यनारायणका धर्तृपूर्वक पूजन करता है, उसके लिये कौन-सा पदार्थ दुर्लभ है और जो अपनी अन्तरात्मामें ही मण्डलस्वरूप भगवान् सूर्यकी अपनी बुद्धिद्वारा निश्चित कर लेता है तथा ऐसा समझकर वह इनका ध्यानपूर्वक पूजन, हवन तथा जप करता है, वह सभी कामनाओंको प्राप्त करता है और अन्तमें इनके लोकको प्राप्त होता है। इसीलिये हे पुत्र ! यदि तুম संसारमें सुख चाहते हो और भुक्ति तथा मुक्तिकी इच्छा रखते हो तो धर्तृपूर्वक प्रत्यक्ष देवता भगवान् सूर्यकी तपस्यतासे आराधना करे। इससे तुम्हें आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक कोई भी सुख नहीं होगा। जो सूर्यभगवान्की शरणमें जाते हैं, उनको किसी प्रकारका भय नहीं होता और उन्हें इस लोक तथा परलोकमें शाश्वत सुख प्राप्त होता है। स्वयं मैंने भगवान् सूर्यकी बहुत कालतक यथाविधि आराधना की है, उन्हींकी कृपासे यह दिव्य ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है। इससे बढ़कर मनुष्योंके हितका और कोई उपाय नहीं है।

(अध्याय ४८)

### श्रीसूर्यनारायणके नित्यार्चनका विधान

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**साम्ब ! अब हम सूर्यनारायणके पूजनका विधान बताते हैं, जिसके करनेसे सम्पूर्ण पाप और विघ्न नष्ट हो जाते हैं तथा सभी मनोरथोंको

सिद्धि होती है और पुण्य भी प्राप्त होता है। प्रातःकाल उठकर शीघ्र आदिसे विवृत हो नदीके तटपर जाकर आचमन कर तथा सूर्योदयके समय शुद्ध मृत्तिकाका शरीरपर लेपन कर स्नान

१-प्रत्यक्ष देवता सूर्य जगत्बुद्धिदाकर । तस्मात्तत्तुल्यक कश्चिदेकान् नानि शक्यते ॥

तस्मादिदं जगज्जातं तस्य याम्यसि यज च ।

(ब्राह्मण्य ४८ । २१-२२)

करे। पुनः आचमन कर शुद्ध वस्त्र धारण करे और सप्ताक्षर मन्त्र 'ॐ खलोत्काय स्वाहा' से सूर्यभगवान्‌को अर्घ्य दे तथा हृदयमें मन्त्रका ध्यान करे एवं सूर्य-मन्दिरमें जाकर सूर्यकी पूजा करे। सर्वप्रथम श्रद्धापूर्वक पूरक, रेचक और कुम्भक नामक प्राणायाम कर वायवी, आप्रेयी, माहेन्द्री और वारुणी धारणा करके भूतशुद्धिकी रीतिसे शरीरका शोषण, दहन, स्नापन और प्रावन करके अपने शरीरकी शुद्धि कर ले। अपने शुद्ध हृदयमें भगवान्‌ सूर्यकी भावना कर उन्हें प्रणम करे। स्थूल, सूक्ष्म शरीर तथा इन्द्रियोंको अपने-अपने स्थावरो में उपन्यस्त करे। 'ॐ खः स्वाहा हृदयाय नमः, ॐ खं स्वाहा शिरसे स्वाहा, ॐ उल्काय स्वाहा शिलायै यक्ष, ॐ वाय स्वाहा कवचाय हुम्, ॐ खौ स्वाहा नेत्रत्रयाय वीषद्, ॐ हौ स्वाहा अस्त्राय फद्।'।

—इन मन्त्रोंसे अङ्गन्यास कर पूजन-सामग्रीका मूल-मन्त्रमें अभिर्मन्त्रित जलद्वारा प्रोक्षण करे। फिर मूर्गन्धित पुष्पादि उपचारोंसे सूर्यभगवान्‌का पूजन करे। सूर्यनारायणकी पूजा दिनके समय सूर्य-मूर्तिमें और रात्रिके समय अग्निमें करनी चाहिये। प्रभातकालमें पूर्वाभिमुख, सायंकालमें पश्चिमाभिमुख तथा रात्रिमें उत्तराभिमुख होकर पूजन करनेका विधान है। 'ॐ खलोत्काय स्वाहा' इस सप्ताक्षर मूल मन्त्रमें सूर्यमण्डलके बीच षट्दल-कमलका ध्यान कर उसके मध्यमें सप्तस्व किरणोंसे देदीप्यमान भगवान्‌ सूर्यनारायणकी मूर्तिकका ध्यान करे। फिर रक्तचन्दन, कालीर आदि रक्तपुष्पों, धूप, दीप, अनेक प्रकारके नैवेद्य, वस्त्राभूषण आदि उपचारोंसे पूजन करे।

अथवा रक्तचन्दनसे ताजपात्रमें षट्दल-कमल बनाकर उसके मध्यमें सभी उपचारोंसे भगवान्‌ सूर्यनारायणका पूजन करे। छहो दशमें षट्द्व-पूजन कर उत्तर आदि दिशाओंमें सोमादि आठ प्रतीकर अर्चन करे और अष्टदिक्पालों तथा उनके आयुधोंका भी तत्तद् दिशाओंमें पूजन करे। नामके आदिमें प्रणव लगाकर नामको चतुर्थी-विधन्तिद्युक्त करके अन्तमें नमः कहे— जैसे 'ॐ सोमाय नमः' इत्यादि। इस प्रकार नाममन्त्रोंसे सबका पूजन करे। अनन्तर ख्योम-मुद्रा, रवि-मुद्रा, पद्म-मुद्रा, महाधेत-मुद्रा और अस्त्र-मुद्रा दिखाये। ये पाँच मुद्राएँ पूजा, जप, ध्यान, अर्घ्य आदिके अनन्तर दिशानी चाहिये।

इस प्रकार एक वर्षतक भक्तिपूर्वक तन्मयताके साथ भगवान्‌ सूर्यनारायणका पूजन करनेसे अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति होती है और बादमें मुक्ति भी प्राप्त होती है। इस विधिसे पूजन करनेपर योगी योगसे मुक्त हो जाता है, धनहीन धन प्राप्त करता है, राज्यभ्रष्टको राज्य मिल जाता है तथा पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है। सूर्यनारायणका पूजन करनेवाला पुरुष प्रज्ञा, मेधा तथा सभी सम्पदोंसे सम्पन्न होता हुआ चिरजीवी होता है। इस विधिसे पूजन करनेपर कन्दको उत्तम वरकी, कुरुपा स्त्रीको उत्तम सौभाग्यकी तथा विद्याधीको सद्बिद्याकी प्राप्ति होती है। ऐसा सूर्यभगवान्‌से स्वयं अपने मुखसे कहा है। इस प्रकार सूर्यभगवान्‌का पूजन करनेसे धन, धान्य, संतान, पशु आदिकी निम्न अभिशुद्धि होती है। मनुष्य निष्कलम हो जाता है तथा अन्तमें उसे सदाति प्राप्त होती है। (अध्याय ४९)

### भगवान्‌ सूर्यके पूजन एवं व्रतोद्यापनका विधान, द्वादश आदित्योंके नाम और रथसप्तमी-व्रतकी महिमा

भगवान्‌ श्रीकृष्णने कहा—साम्ब ! अब मैं सूर्यके विशिष्ट अवसरोपर होनेवाले व्रत-उत्सव एवं पूजनकी विधियोंका वर्णन करता हूँ, उन्हें सुनो। किसी मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी, ग्रहण या संक्रान्तिके एक दिन-पूर्व एक बार हविष्यान्नका भोजन कर सायंकालके समय भलीभाँति आचमन आदि करके अरुणदेवको प्रणाम करना चाहिये तथा सभी इन्द्रियोंको संयतकर भगवान्‌ सूर्यका ध्यान कर रात्रिमें जमीनपर कुशकी शय्यापर शयन करना चाहिये। दूसरे दिन

प्रातःकाल उठकर विधिपूर्वक स्नान सम्पन्न करके संध्या करे तथा पूर्वोक्त मन्त्र 'ॐ खलोत्काय स्वाहा' का जप एवं सूर्यभगवान्‌की पूजा करे। अग्निकी सूर्यतापके रूपमें समझकर वेदी बनाये और संक्षेपमें हवन तथा तर्पण करे। गायत्री-मन्त्रसे प्रोक्षणकर पूर्वार्ध और उत्तरार्ध कुशा विछाये। अनन्तर सभी पाशोंका शोषण कर दो कुशाओंकी प्रादेशमात्रकी एक पवित्री बनाये। उस पवित्रीसे सभी वस्तुओंका प्रोक्षण करे, योको अग्निपर रखकर पिघला ले, उत्तरकी ओर पात्रमें उसे रख दे,

अनन्तर जलते हुए उल्मुकसे पर्याप्रिकरण करते हुए पृतक तीन बार उल्लवण करे। सुखा आदिका कुशिक द्वारा परिमार्जन और सम्प्रोक्षण करके अग्रिम सूर्यदेवकी पूजा करे और दाहिने हाथमें सुखा ग्रहणकर मूल मन्त्रसे हवन करे। मनोयोगपूर्वक मौन धारण कर सभी क्रियाएँ सम्पन्न करनी चाहिये। पूर्णाहुतिके पश्चात् तर्पण करे। अनन्तर ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन कराना चाहिये और यथाशक्ति उनको दक्षिणा भी देने चाहिये। ऐसा करनेसे मनोवाञ्छित फलको प्राप्ति होती है।

माघ मासकी सप्तमीको वरुण नामक सूर्यकी पूजा करे। इसी प्रकार क्रमशः फाल्गुनमें सूर्य, वैश्वमें वैशाल, वैशाखमें धाता, ज्येष्ठमें इन्द्र, आषाढ़में रवि, श्रावणमें नभ, भद्रपदमें यम, आश्विनमें पर्जन्य, कार्तिकमें त्वष्टा, मार्गशीर्षमें मित्र तथा पौष मासमें विष्णुनामक सूर्यका अर्चन करे। इस विधिसे बारहों मासमें अलग-अलग नामोंमें भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार ब्रह्मा-भक्तिपूर्वक एक दिन पूजा करनेसे वर्षपर्यन्त की गयी पूजाका फल प्राप्त हो जाता है।

उपर्युक्त विधिसे एक वर्षतक व्रत कर रत्नजटित सुवर्णका एक रथ बनवाये और उसमें साल घोंड़े बनावये। रथके मध्यमें सोनेके कमलके ऊपर रत्नोंके आभूषणोंसे अलंकृत सूर्य-नारायणकी सोनेकी मूर्ति स्थापित करे। रथके आगे उनके सारथिकों बैठाये। अनन्तर बारह ब्राह्मणोंमें बारह घोड़ोंके सूर्योक्ती भाषना कर तेरहवें मुख्य आचार्यको साक्षात् सूर्यनारायण समझकर उनकी पूजा करे तथा उन्हें रथ, छत्र, भूमि, गौ आदि समर्पित करे। इसी प्रकार रत्नोंके आभूषण, वस्त्र, दक्षिणा और एक-एक घोड़ा उन बारह ब्राह्मणोंको दे तथा हाथ जोड़कर यह प्रार्थना करे—‘ब्राह्मण देवताओं! इस सूर्यव्रतके उद्यापन करनेके बाद यदि असमर्थतावश कभी सूर्यव्रत न कर सकूँ तो मुझे दोष न हो।’ ब्राह्मणोंको साथ आचार्य भी ‘एवमस्तु’ ऐसा कहकर यजमानको आशीर्वाद दे और कहे—‘सूर्यभगवान् तुम्हारा प्रसन्न हो। जिस मनोरथकी पूर्तिके लिये तुमने यह व्रत किया है और भगवान् सूर्यकी पूजा की है, वह तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो और भगवान् सूर्य उसे पूरा करें। अब व्रत न करनेपर भी तुमको दोष नहीं होगा।’ इस

प्रकार आशीर्वाद प्राप्त कर दोनों, अन्यो तथा अनाथोंको यथाशक्ति भोजन कराये तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर, दक्षिणा देकर व्रतकी समाप्ति करे।

जो व्यक्ति इस साम्प्रो-व्रतको एक वर्षतक करता है, वह सौ योजन लम्बे-चौड़े देशका धार्मिक राजा होता है और इस व्रतके फलसे सौ वर्षोंसे भी अधिक निष्कण्टक राज्य करता है। जो सौ इस व्रतको करती है, वह राजपत्नी होती है। निर्धन व्यक्ति इस व्रतको यथार्थिध सम्पन्न कर वतलत्रयी हुई विधिके अनुसार तबिक रथ ब्राह्मणको देता है तो वह अस्सी योजन लम्बा-चौड़ा राज्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार आटेका रथ बनवाकर दान करनेवाला सप्त योजन विस्तृत राज्य प्राप्त करता है तथा वह विराट्, नैरांग और सुखी रहता है। इस व्रतको करनेसे पुरुष एक कल्पतक सूर्यलोकमें निवास करनेके पश्चात् राजा होता है। यदि कोई व्यक्ति भगवान् सूर्यकी मानसिक आराधना भी करता है तो वह भी समस्त आधि-ध्याधियोंसे रहित होकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। जिस प्रकार भगवान् सूर्यको कुहरा स्पर्श नहीं कर पाता, उसी प्रकार मानसिक पूजा करनेवाले साधकोंको किसी प्रकारकी आपत्तियाँ स्पर्श नहीं कर पातीं। यदि किसीने मन्त्रोंके द्वारा भक्तिपूर्वक विधि-विधानसे व्रत सम्पन्न करते हुए भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना की तो फिर उसके विषयमें क्या कहना? इसलिये अपने कल्याणके लिये भगवान् सूर्यकी पूजा अवश्य करनी चाहिये।

पुत्र! सूर्यनारायणने इस विधि-विधानको स्वयं अपने मुखसे मुझमें कहा था। आजतक उसे गुप्त रखकर पहली बार मैंने तुममें कहा है। मैंने इसी व्रतके प्रभावसे हजारों पुत्र और पौत्रोंको प्राप्त किया है, देवीको जीता है, देवताओंको वशमें किया है, मैंने इस चक्रमें सदा सूर्यभगवान् निवास करते हैं। नहीं तो इस चक्रमें इतना तेज कैसे होता? यही कारण है कि सूर्यनारायणका नित्य जप, ध्यान, पूजन आदि करनेसे मैं जगत्का पुन्य हूँ। कस्त! तुम भी मन, वाणी तथा कर्मसे सूर्यनारायणकी आराधना करो। ऐसा करनेसे तुम्हें विविध सुख प्राप्त होंगे। जो पुरुष भक्तिपूर्वक इस विधानको सुनता है, वह

१- प्रायः अन्य सभी पुराणोंमें वैश्वदेव कहकर घोड़ोंमें सूर्यके वंशज मिलते हैं— धाता, अर्चन, मित्र, वरुण, इन्द्र, विष्णु, पूष, पर्जन्य, अग्नि, भग, त्वष्टा और विष्णु। कल्याणके अनुसार मर्चने भेद है।

भी पुत्र-पौत्र, आरोग्य एवं लक्ष्मीको प्राप्त करता है और सूर्यलोकको भी प्राप्त हो जाता है।

**भगवान् कृष्णने कहा—**साम्ब ! माघ मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी तिथिसे एकभुक्त-व्रत और षष्ठीको नक्तव्रत करना चाहिये<sup>१</sup>। सुव्रत ! कुछ लोग सप्तमीमें उपवास चाहते हैं और कुछ विद्वान् षष्ठीमें उपवास और सप्तमी तिथिमें वारण करनेका विधान कहते हैं ( इस प्रकार विविध मत हैं )। यस्तुः षष्ठीसे उपवासकर भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। रक्तचन्दन, करवीर-पुष्प, गुण्डुल धूप, फागस अदि नैवेद्योंसे माघ आदि चार महीनोंके सूर्यनारायणकी पूजा करने चाहिये। आत्मशुद्धिके लिये गोमयमिश्रित जलसे स्नान, गोमयका प्राशन और यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी करना चाहिये।

ज्येष्ठ आदि चार महीनोंमें श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प, कृष्ण अगरु धूप और उत्तम नैवेद्य सूर्यनारायणको अर्पण करना चाहिये। इसमें पञ्चाग्न्यप्राशन कर ब्राह्मणोंको उत्कृष्ट भोजन करना चाहिये।

### सूर्यदेवके रथ एवं उसके साथ भ्रमण करनेवाले देवता-नाग आदिका वर्णन

**राजा शतानीकने पूछा—**मुने। सूर्यनारायणकी रथयात्रा किस विधानसे करनी चाहिये। रथ कैसा बन्ना चाहिये ? इस रथयात्राका प्रचलन मनुसुलोकमें किसके द्वारा हुआ ? इन सब बातोंको आप कृपाकर भुझी बतलायें।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! किसी समय सुमेरु पर्वतपर समासीन भगवान् रुद्रने ब्रह्माजीसे पूछा—'ब्रह्मन् ! इस लोकको प्रकाशित करनेवाले भगवान् सूर्य किस प्रकारके रथमें चैठकर भ्रमण करते हैं, इसे आप बतायें।'

**ब्रह्माजीने कहा—**त्रिलोकन ! सूर्यनारायण जिस प्रकारके रथमें चैठकर भ्रमण करते हैं, उसका मैं वर्णन करता

आश्विन आदि चार मासोंमें अगस्त्य-पुष्प, अपराजित धूप और गुड़के पूर आदिका नैवेद्य तथा इक्षुरस भगवान् सूर्यको समर्पित करना चाहिये। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराकर आत्मशुद्धिके लिये कुशाके जलसे स्नान करना चाहिये। उस दिन कुशोदकका ही प्रशशन करे। व्रतकी समाप्तिमें माघ मासकी शुक्ल सप्तमीको रथका दान करे और सूर्यभगवान्की प्रसन्नताके लिये रथयात्रेतत्सम्बन्ध आयेजन करे। महापुण्यदायिनी इस सप्तमीको रथसप्तमी कहा गया है। यह महासप्तमीके नामसे अभिहित है। रथसप्तमीको जो उपवास करता है, वह कीर्ति, धन, विद्या, पुत्र, आरोग्य, आयु और उत्तमोत्तम कर्त्तव्य प्राप्त करता है। हे पुत्र ! तूम् भी इस व्रतको करो, जिससे तुम्हारे सभी अभिष्टोंकी सिद्धि हो। इतना कहकर ब्रह्म, चक्र, गदा-पद्मधारी श्रीकृष्ण अपर्णागत हो गये।

**सुमन्तुने कहा—**राजन् ! इनकी आज्ञा पाकर साम्बने भी भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणकी आराधनामें तत्पर हो रथसप्तमीका व्रत किया और कुछ ही समयमें रोगमुक्त होकर मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लिया<sup>२</sup>। (अध्याय ५०-५१)

हैं, आयु खान्द सुने।

एक चक्र, तीन तर्जि, पाँच अंग तथा स्वर्णमय अर्द्धि काचिमान् आठ बन्धोंमें युक्त एवं एक नैषिसे सुसज्जित— इस प्रकारके दस हत्वार योजन लम्बे-छोड़े अतिशय प्रकाशमान स्वर्ण-रथमें विराजमान भगवान् सूर्य विचरण करते रहते हैं। रथके उपस्थले ईशा-दण्ड तीन-गुना अधिक है। यहीं उनके सारथि अरुण बैठते हैं। इनके रथका जुआ रौनेका बना हुआ है। रथमें वायुके समान तेजवान् छन्दरूपी सात घोड़े जुते रहते हैं। संवत्सरमें जितने अवयव होते हैं, वे ही रथके अङ्ग हैं। तीनों बाल चक्रकी तीन नाभिर्था हैं। पाँच क्रतुर्गुं अंग हैं, छठी

१- जिस दिन प्रायः दिनका अधिक अंश (आठवरा सायं साय) चक्रके पदपाद भोजन कर पूरे रात्र तक उपवास रहकर शिवया जाता है, उसे एकभुक्त-व्रत कहा जाता है और दिनभर उपवासकर रात्रिकी भोजन करने 'नक्तव्रत' कहल्यता है।

२- रथसप्तमीके विषयमें उत्तराश्वयुज, उत्तराश्वयुज, अश्वयुज अर्द्धिके अर्द्धरात्रि पञ्चकृष्ण एवं वायुद्वाराके माघ-माघशुक्लमें बहुत व्यवहारसे व्रत-विधानका निरूपण हुआ है और कुछ पंडितोंमें भी इसी दिन भगवान् सूर्यके रथका वन्दन अवसरकी प्रथम यात्रा करनेका उल्लेख किया गया है। जैसे रामचर्याके दिन भगवान् रामका, जम्बाद्वीपके दिन भगवान् श्रीकृष्णकर शङ्करदेव खनकर उनका किया जाता है, वैसे ही रथसप्तमीके दिन भगवान् सूर्यके शङ्करदेव मानकर उनके लिये व्रत उपवासके साथ पिरोल अर्द्धि समर्पण को जानते हैं।



ऋतु नेमि है। दक्षिण और उत्तर—ये दो अयन रथके दोनों भाग हैं। मुहूर्त रथके इषु, काल, शम्य, काष्ठाएँ रथके कोण, क्षण अक्षदण्ड, निमेष रथके कार्य, ईषा-दण्ड लव, शत्रि वक्रव्य, धर्म रथका ध्वज, अर्थ और काम सूर्यका अग्रभाग, गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती तथा उष्णिक्— ये सब छन्द सात अक्ष हैं। ध्रुवीय चक्र घूमता है। इस प्रकारके रथमें बैठकर भगवान् सूर्य निरन्तर अकाशमें भ्रमण करते रहते हैं।

देव, ऋषि, गन्धर्व अप्सरा, नाग, यक्षिणी और राक्षस सूर्यके रथके साथ घूमते रहते हैं और दो-दो मासोंके बाद इनमें परिवर्तन हो जाता है।

धाता और अर्यमा—ये दो आदित्य, पुलस्त्य तथा पुलह नामक दो ऋषि, साण्डक, वासुकि नामक दो नाग, तुम्बुक और नारद ये दो गन्धर्व, ऋतुमल्ल तथा पुत्रिकमल्ल ये अप्सराएँ, रथवृक्ष तथा रथौजा ये दो यक्ष, हेति तथा प्रहेति नामके दो राक्षस ये क्रमशः वैव और वैशाख मासमें रथके साथ चला करते हैं।

मित्र तथा वरुण नामक दो आदित्य, अग्नि तथा वसिष्ठ ये दो ऋषि, तक्षक और अनन्त ये नाग, मेनका तथा सहजन्वा ये दो अप्सराएँ, हाहा-हूहू दो गन्धर्व, रथसन्नू और रथचित्र ये दो यक्ष, वीरसेय और वध नामक दो राक्षस क्रमशः ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मासमें सूर्यरथके साथ चला करते हैं।

ब्राह्मण तथा भाद्रपदमें इन्द्र तथा विषन्वान् नामक दो आदित्य, अङ्गिरा तथा भृगु नामक दो ऋषि, एतलपनी तथा शङ्खपाल ये दो नाग, प्रमलोचा और हुतुका नामक दो अप्सराएँ, भानु और दुर्दुर नामक गन्धर्व, सर्प तथा ब्राह्म नामक दो राक्षस, स्रोत तथा आपूरण नामके दो यक्ष सूर्यरथके साथ चलते रहते हैं।

आश्विन और कार्तिक मासमें पर्जन्य और पूष नामके दो आदित्य, भारद्वाज और गौतम नामक दो ऋषि, विवस्सेन तथा वसुसुचि नामक दो गन्धर्व, विशाची तथा धृताची नामके दो अप्सराएँ, ऐरावत और धनञ्जय नामक दो नाग और सेनजित् तथा सुयेण नामक दो यक्ष, आप एवं वात नामक दो राक्षस सूर्यरथके साथ चला करते हैं।

मार्गशीर्ष तथा पौष मासमें अंशु तथा भग नामक

दो आदित्य, कश्यप और ऋतु नामक दो ऋषि, महापद्म और कर्कोटक नामक दो नाग, चित्राङ्गद और अरणायु नामक दो गन्धर्व, सहा तथा सहस्रा नामक दो अप्सराएँ, ताक्ष्य तथा अरिष्टनेमि नामक यक्ष, आप तथा वात नामक दो राक्षस सूर्यरथके साथ चला करते हैं।

साध-फाल्गुनमें क्रमशः पूषा तथा जिष्णु नामक दो आदित्य, जम्दग्नि और विश्वामित्र नामक दो ऋषि, फाद्रवेय और कम्बलाक्षर ये दो नाग, घृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्षा नामक दो गन्धर्व, तिलोत्तमा और रत्ना ये दो अप्सराएँ तथा सेनजित् और सन्धोजित् नामक दो यक्ष, ब्रह्मणेति तथा यज्ञोपेति नामक दो राक्षस सूर्यरथके साथ चला करते हैं।

ब्रह्माजीने कहा—रुद्रदेव ! सभी देवताओंने अपने अंशरूपसे विविध अस्त्र-शस्त्रोंको भगवान् सूर्यकी रथाके लिये उन्हे दिया है। इस प्रकार सभी देवता उनके रथके साथ-साथ भ्रमण करते रहते हैं। ऐसा कोई भी देवता नहीं है जो रथके पीछे न चले। इस सूर्यदेवस्य सूर्यनारायणके मण्डलमें ब्रह्मदेव ब्रह्मस्वरूप, याज्ञिक यज्ञस्वरूप, भगवद्गत विष्णुस्वरूप तथा दीध दिवस्वरूप मानते हैं। ये स्थानाभिमानी देवगण अपने तेजसे भगवान् सूर्यको आच्छादित करते रहते हैं। देवता और ऋषि निरन्तर भगवान् सूर्यकी स्तुति करते रहते हैं। गन्धर्व-गण गान करते रहते हैं तथा अप्सराएँ रथके आगे नृत्य करती हुई चलती रहती हैं। राक्षस रथके पीछे-पीछे चलते हैं। सड़ हूकार बालाखल्य ऋषिगण रथको चारों ओरसे घेरकर चलते हैं। दिवस्पाति और स्वयम्भू रथके आगे, भार्गवहिनी ओर, पद्मज बायीं ओर, कुम्भर दक्षिण दिशामें, वरुण उत्तर दिशामें, वीरिहोत्र और हरि रथके पीछे रहते हैं। रथके पीछमें पृथ्वी, मध्यमें अकाश, रथकी कानिमें स्वर्ग, ध्वजामें दण्ड, ध्वजाग्रमें धर्म, पताकामें ऋद्धि-वृद्धि और श्री निवास करती है। भवजदण्डके ऊपरी भागमें गरुड तथा उसके ऊपर वरुण स्थित हैं। मेनका पर्वत छत्रका दण्ड, हिमाचल छत्र होकर सूर्यके साथ रहते हैं। इन देवताओंका बल, तप, तेज, योग और तत्व जैसा है वैसे ही सूर्यदेव तपते हैं। ये ही देवगण तपते हैं, बरसते हैं, सृष्टिका पालन-पोषण करते हैं, जीवोंके अशुभ-कर्मको निवृत्त करते हैं, प्रजाओंको आनन्द देते हैं और

सभी प्राणियोंकी रक्षाके लिये भगवान् सूर्यके साथ भ्रमण करते रहते हैं। अपनी किरणोंसे चन्द्रमाकी वृद्धि कर सूर्य भगवान् देवताओंका पोषण करते हैं। शुद्ध पक्षमें सूर्य-किरणोंसे चन्द्रमाकी क्रमशः वृद्धि होती है और कृष्ण पक्षमें देवगण उसका पान करते हैं। अपनी किरणोंसे पृथ्वीका रस-पान कर सूर्यनारायण वृष्टि करते हैं। इस वृष्टिसे सभी ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं तथा अनेक प्रकारके अन्न भी उत्पन्न होते हैं, जिससे पितरों और मनुष्योंकी तृप्ति होती है।

एक चक्रवाले रथमें भगवान् सूर्यनारायण बैठकर एक अहोरात्रमें सातों द्वीप और समुद्रोंसे एक पृथ्वीके घाते और भ्रमण करते हैं। एक वर्षमें ३६० बार भ्रमण करते हैं। इन्द्रकी पुरी अमरावतीमें जब मध्याह्न होता है, तब उस समय यमकी संयमनी पुरीमें सूर्योदय, यमकी सुखा नामकी नगरीमें अर्धरात्रि और सोमकी विभा नामकी नगरीमें सूर्यास्त होता है। संयमनीमें जब मध्याह्न होता है, तब सुखमें उदय, अमरावतीमें अर्धरात्रि तथा विभामें सूर्यास्त होता है। सुखमें

जब मध्याह्न होता है, उस समय विभामें उदय, अमरावतीमें आधी रात और संयमनीमें सूर्यास्त होता है। विभा नगरीमें जब मध्याह्न होता है, तब अमरावतीमें सूर्योदय, संयमनीमें आधी रात और सुखा नामकी नगरीमें सूर्यास्त होता है। इस प्रकार मेरु पर्वतकी प्रदीक्षणा करते हुए भगवान् सूर्यका उदय और अस्त होता है। प्रभातमें मध्याह्नतक सूर्य-किरणोंकी वृद्धि और मध्याह्नसे अस्ततक ह्रास होता है। जहाँ सूर्योदय होता है वह पूर्व दिशा और जहाँ अस्त होता है वह पश्चिम दिशा है। एक मुहूर्तमें भूमिका तीसरा भाग सूर्य लीध जाते हैं। सूर्य-भगवान्के उदय होते ही प्रतिदिन इन्द्र पूजा करते हैं, मध्याह्नमें यमराज, अस्तके समय यम और अर्धरात्रिमें सोम पूजन करते हैं।

विष्णु, शिव, रुद्र, ब्रह्मा, अंशु, वायु, निर्ऋति, ईशान आदि सभी देवगण रात्रिकी समाप्तिपर ब्राह्मवेलामें कल्पाणके लिये सदा भगवान् सूर्यकी आराधना करते रहते हैं।

(अध्याय ५२-५४)

### भगवान् सूर्यकी महिमा, विभिन्न ऋतुओंमें उनके अलग-अलग वर्ण तथा उनके फल

भगवान् रुद्रने कहा—अद्यन् ! आपने भगवान् सूर्यनारायणके माहात्म्यका वर्णन किया, जिसके सुननेसे हमें बहुत आनन्द मिला, कृपाकर आप उनके माहात्म्यका और वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—हे रुद्र ! इस सबरात्र वैलोक्यके मूल भगवान् सूर्यनारायण ही हैं। देवता, असुर, मानव आदि सभी इन्हींसे उत्पन्न हैं। इन्द्र, चन्द्र, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि जितने भी देवता हैं, सबमें इन्हींका तेज व्याप्त है। अग्रिमें विधिपूर्वक दी हुई आहुति सूर्यभगवान्को ही प्राप्त होती है। भगवान् सूर्यसे ही वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्नदि उत्पन्न होते हैं और यही अन्न प्राणियोंका जीवन है। इन्हींसे जगत्की उत्पत्ति होती है और अन्तमें इन्हींमें सारी सृष्टि विलीन हो जाती है। ध्यान करनेवाले इन्हींका ध्यान करते हैं तथा ये मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंके लिये मोक्षस्वरूप हैं। यदि सूर्यभगवान् न हों तो क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष तथा युग आदि काल-विभाग हो ही नहीं और काल-विभाग

न होनेसे जगत्का कोई व्यवहार भी नहीं चल सकता। ऋतुओंका विभाग न हो तो फिर फल-फूल, खेती, ओषधियाँ आदि कैसे उत्पन्न हो सकती हैं ? और इनकी उत्पत्तिके बिना प्राणियोंका जीवन भी कैसे रह सकता है ? इससे वह स्पष्ट है कि इस (चराचरात्मक) विश्वके मूलभूत कारण भगवान् सूर्य-नारायण ही हैं। सूर्यभगवान् वसन्त ऋतुमें कर्पूर-वर्ण, ग्रीष्ममें ताम्र-वर्ण, वर्षामें श्वेत, शरत् ऋतुमें पाण्डु-वर्ण, हेमन्तमें ताम्रवर्ण और शिशिर ऋतुमें रक्तवर्णके होते हैं। इन वर्णोंका अलग-अलग फल है। रुद्र ! उसे आप सुनें।

यदि सूर्यभगवान् (असमयमें) कृष्णवर्णके हो तो समग्रमें भय होता है, ताम्रवर्णके हो तो सेनापतिका नाश होता है, श्वेतवर्णके हो तो राजकुमारकी मृत्यु, श्वेत वर्णके हो तो राजपुरोहितका ध्वंस और चित्र अथवा धूम्रवर्णके होनेसे चोर और शस्त्रधर भय होता है, परंतु ऐसा वर्ण होनेके अनन्तर यदि वृष्टि हो जाती है तो अनिष्ट फल नहीं होते\* ।

(अध्याय ५४)

\* इस विषयका बृहद् वर्णन 'बृहत्संहिता'की प्रत्येकली टीका आदिमें है। विद्वान् जनसमूहके लिये इसे देना जा सकता है।

### भगवान् सूर्यका अभिषेक एवं उनकी रथयात्रा

**रुद्रने पूछा—**ब्रह्मन् ! भगवान् सूर्यकी रथयात्रा कब और किस विधिसे की जाती है ? रथयात्रा करनेवाले, रथको खींचनेवाले, रथको वहन करनेवाले, रथके साथ जानेवाले और रथके आगे नृत्य-गान करनेवाले एवं रात्रि-जागरण करनेवाले पुरुषोंको क्या फल प्राप्त होता है ? इसे अल्प श्लोककल्याणके लिये विस्तारपूर्वक बताइये ।

**ब्रह्माजी बोले—**हे रुद्र ! आपने बहुत उत्तम प्रश्न किया है । अब मैं इसका वर्णन करता हूँ, आप इसे एकाग्र-मनसे सुनें ।

भगवान् सूर्यकी रथयात्रा और इन्द्रोत्सव—ये दोनों जगत्के कल्याणके लिये मैंने प्रवर्तित किये हैं । जिस देशमें ये दोनों महोत्सव आयोजित किये जाते हैं, वहाँ दुर्भिक्ष आदि उपद्रव नहीं होते और न बोरी आदिका कोई भय ही रहता है । इसीलिये दुर्भिक्ष, अकाल आदि उपद्रवोंकी प्राप्तिके लिये इन उत्सवोंको मनाना चाहिये । मार्गशीर्षके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको पृथक् द्वारा भगवान् सूर्यको ब्रह्मपूर्वक स्नान करना चाहिये । ऐसा करनेवाला पुरुष सोनेके विमानमें बैठकर अविश्लोकको जाता है और वहाँ दिव्य भोग प्राप्त करता है । जो व्यक्ति शर्कराके साथ शक्लि-चावलका घात, मिष्ठान और चिडचरकी भातको भगवान् सूर्यको अर्पित करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है । जो प्रतिदिन भगवान् सूर्यको भक्तिपूर्वक घृतका उषदन लगाता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है ।

पौष शुक्ल सप्तमीको तीर्थोंके जल अथवा पवित्र जलमें केदमन्त्रीके द्वारा भगवान् सूर्यको स्नान करना चाहिये । सूर्य-भगवान्के अभिषेकके समय श्रवण, पूषन, कुरुक्षेत्र, मैत्रिण, पृथूदक (पेहवा), शीण, गोकर्ण, ब्रह्मवर्त, कुडालर्ण, बिल्वक, नीलशर्करा, गङ्गाद्वार, गङ्गासागर, कालप्रिय, मित्रवन, भाण्डीरवन, चक्रतीर्थ, रामतीर्थ, गङ्गा, यमुना, सरस्वती,

सिन्धु, चन्द्रभागा, नर्मदा, विपाशा (व्यासनदी), तापी, शिवा, वेङ्गवती (वेतका), गोदावरी, पयोष्णी (मन्दाकिनी), कृष्णा, केष्वा, शतद्रु (सतलज), पुष्करिणी, कौशिकी (कोसी) तथा सरयु आदि सभी तीर्थों, नदियों और समुद्रोंका स्मरण करना चाहिये<sup>१</sup> । दिव्य आश्रमों और देवस्थानोंका भी स्मरण करना चाहिये । इस प्रकार स्नान कराकर तीन दिन, सात दिन, एक पक्ष अथवा मासभर उस अभिषेकके स्थानमें ही भगवान्के अधिवास करे और प्रतिदिन भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता रहे ।

माघ मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको मङ्गल कलशों तथा धितान आदिसे सुशोभित चौकोर एवं पक्के ईंटोंसे बनी वेदीपर सूर्यस्नानका भलीभाँति स्थापित कर हवन, ब्राह्मण-भोजन, वेद-पाठ और विभिन्न प्रकारके नृत्य, गीत, वाद्य आदि उत्सवोंको करना चाहिये । अनन्तर माघ शुक्ल चतुर्थीको अर्घाचित व्रत करे, पञ्चमीको एक बार भोजन करे, षष्ठीकी रात्रिके समय ही भोजन करे और सप्तमीको उपवास कर हवन, ब्राह्मण-भोजन आदि सम्पन्न करे । सबको दक्षिण देकर पौराणिककी भलीभाँति पूजा करे । तदनन्तर राजजित सुवर्णके रथमें भगवान् सूर्यको विराजित करे । उस रथको उस दिन मन्दिरके आगे ही खड़ा करे । रात्रियें जागरण करे और नृत्य-गीत बजला रहे । माघ शुक्ल अष्टमीको रथयात्रा करनी चाहिये । रथके आगे विविध बाजे बजते रहें, नृत्य-गीत और मङ्गल वेदध्वनि होती रहे । रथयात्रा प्रथम नगरके उत्तर दिशासे प्रारम्भ करनी चाहिये, पुनः क्रमशः पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशाओंमें प्रणम करना चाहिये । इस प्रकार रथयात्रा करनेसे राज्यके सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं । राजाको युद्धमें विजय मिलती है तथा उस राज्यमें सभी प्रजाएँ और पशुगण नैरेण्य एवं सुखी हो जाते हैं । रथयात्रा करनेवाले, रथको

१-यजोद तीर्थनामानि मनसा सम्यन् कृषः । प्रथमे पूषने देवे कुरुक्षेत्रे च मैत्रिणम् ॥

पृथूदके चन्द्रभागा शीणे गोकर्णमेव च । ब्रह्मवर्ते कुडालर्ते बिल्वके नीलशर्करम् ॥

गङ्गाद्वारे तथा पुण्ये गङ्गासागरमेव च । कालप्रिये मित्रवने शुण्डीरवर्णमेव च ॥

चक्रतीर्थे तथा पुण्ये रामतीर्थे तथा शिखरे । विजयते हर्षयते च तथा च देविका स्मृत ॥

गङ्गा सरस्वती सिन्धुचन्द्रभागा समर्पिता । विपाशा यमुना तापी शिवा वेङ्गवती तथा ॥

गोदावरी पयोष्णी च कृष्णा केष्वा तथा नदी । अनमदा पुष्करिणी कौशिकी सरयुसाया ॥

तथान्ये सागराश्चैव सर्वेभिर्धे कल्पयन्तु वै । तथाश्रमं पुष्पलम् दिव्यान्वयनयनं च ॥

वहन करनेवाले और रथके साथ जानेवाले सूर्यलोकमें निवास करते हैं।

**रुद्रने कहा—**हे ब्रह्मन् ! मन्दिरमें प्रतिष्ठित प्रतिमाको किस प्रकार उठाना चाहिये और किस प्रकार रथमें विराजमान करना चाहिये। इस विषयमें मुझे कुछ संदेह हो रहा है, क्योंकि वह प्रतिमा तो स्थिर अर्थात् अचल प्रतिष्ठित है। अतः उसे कैसे चलाया जा सकता है ? कृपाकर आप मेरे इस संशयको दूर करें।

**ब्रह्माजी बोले—**संवत्सरके अवसरोंके रूपमें जिस रथका पूर्वमें मैंने वर्णन किया है, वह रथ सभी रथोंमें पहला रथ है, उसको देखकर ही विश्वकर्माने सभी देवताओंके लिये अलग-अलग विविध प्रकारके रथ बनाये हैं। उस प्रथम रथकी पूजाके लिये भगवान् सूर्यने अपने पुत्र मनुको वह रथ प्रदान किया। मनुने राजा इक्ष्वाकुको दिया और तबसे यह रथयात्रा पूजित हो गयी और परम्परासे चली आ रही है। इसलिये सूर्यकी रथयात्राका उत्सव मनाना चाहिये। भगवान् सूर्य तो सदा आकाशमें भ्रमण करते रहते हैं, इसलिये उनकी प्रतिमाको चलानेमें कोई भी टोप नहीं है। भगवान् सूर्यके भ्रमण करते हुए उनका रथ एवं मण्डल दिखायी नहीं पड़ता, इसलिये मनुष्योंने रथयात्राके द्वारा ही उनके रथ एवं मण्डलका दर्शन किया है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवोंकी प्रतिमाके स्थापित हो जानेके बाद उनकी उठाना नहीं चाहिये, किन्तु सूर्य-नारायणकी रथयात्रा प्रजाओंकी शान्तिके लिये प्रतिवर्ष करनी चाहिये। सोने-चाँदी अथवा उत्तम काष्ठका अतिशय रमणीय और बहुत सुदृढ़ रथका निर्माण करना चाहिये। उसके बीचमें भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको स्थापित कर उत्तम लक्षणोंसे युक्त अतिशय सुशील ह्रित वर्णके घोड़ोंको रथमें नियोजित करना चाहिये। उन घोड़ोंके केशरसे रैखर अनेक आपूषणों, पुष्पमालाओं और चैत्र आदिसे अलंकृत करना चाहिये। रथके लिये अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। इस प्रकार रथको तैयार कर सभी देवताओंकी पूजा कर ब्राह्मण-भोजन करना चाहिये। दक्षिणा देकर दीन, अंधे, उपेक्षित तथा अनाथोंको भोजन आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। उत्तम, मध्यम अथवा

अथम किसी भी व्यक्तिको विमुक्त नहीं होने देना चाहिये। रथयात्रा-स्वरूप इस सूर्यमहायागमें भूखसे पीड़ित, बिना भोजन किये यदि कोई व्यक्ति भय आशावाला होकर लौट जाता है तो इस दुष्कृत्यसे उसके स्वर्गस्थ पितरोंका अधःपतन हो जाता है<sup>१</sup>। अतः सूर्य भगवान्के इस यज्ञमें भोजन और दक्षिणासे सबको संतुष्ट करना चाहिये, क्योंकि बिना दक्षिणाके यज्ञ प्रशस्त नहीं होता तथा निम्नलिखित मन्त्रोंसे देवताओंको उनका प्रिय पदार्थ समर्पित करना चाहिये—

खलि गुह्यन्तु मे देवा आदित्या वसवस्तथा ॥  
मरुतोऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णा पत्रगा प्रहाः ।  
असुरा यातुधानाश्च रथस्था यास्तु देवताः ॥  
दिक्ष्याता लोकपालाश्च ये च विप्रविनायकाः ।  
जगतः खलि कुर्वन्तु ये च दिव्या महर्षयः ॥  
या विप्र मा च मे पार्थ या च मे परिपन्थिनः ।  
सौम्या ध्रुवन्तु तृप्ताश्च देवा भूतगणास्तथा ॥

(ब्राह्मपर्व ५.५.१६८—७२)

इन मन्त्रोंसे खलि देकर 'वामदेव्य', 'पवित्र', 'मानसलोक' तथा 'रथनर' इन ऋचाओंका पाठ करें। अनन्तर पुष्पाहवाचन और अनेक प्रकारके मङ्गल वाद्योंकी ध्वनि कर सुन्दर एवं समतल मार्गपर रथको चलाये, जिससे कहींपर धक्का न लगे। घोड़ोंके अभावमें अर्ध बैल्लोंको रथमें लगाना चाहिये या पुरुषगण ही रथकी खींचें। तीस या सोलह ब्राह्मण जो शुद्ध आचरणवाले हों तथा ब्रती हों, वे प्रतिमाको मन्दिरसे उठाकर बड़ी सावधानीसे रथमें स्थापित करें। सूर्य-प्रतिमाके दोनों ओर सूर्यदेवकी राज्ञी (सेजा) एवं निक्षुभा (छाया) नामक दोनों पत्नियोंको स्थापित करें। निक्षुभाको दाहिनी ओर तथा राज्ञीको बायीं ओर स्थापित करना चाहिये। सदाचारी वेदपाठी दो ब्राह्मण प्रतिमाओंके पीछेकी ओर बैठें और उन्हें संभालकर स्थिर रखें। सारथी भी कुशल रहना चाहिये। सुवर्णदण्डसे अलंकृत छत्र रथके ऊपर लगाये, अतिशय सुन्दर रथोंसे जटित सुवर्णदण्डसे युक्त ध्वजा रथपर चढ़ाये, जिसमें अनेक रंगोंकी सात पताकाएँ लगी हों। रथके आगेके भागमें सारथिके रूपमें ब्राह्मणको बैठना चाहिये।



श्रद्धारहित व्यक्तिको रथके ऊपर नहीं चढ़ना चाहिये, क्योंकि जो श्रद्धारहित व्यक्ति रथपर आरुढ़ होता है, उसकी संतति नष्ट हो जाती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको ही रथके वहन करनेका अधिकार है। अपने स्थानसे चलकर सर्वप्रथम रथको उत्तर द्वारपर ले जाना चाहिये। वहाँ एक दिनतक रथकी पूजा करे, विविध नृत्य-गीतादि-उत्सव, वेदपाठ तथा पुराणोंकी कथा होनी चाहिये। वहाँ ब्राह्मण-भोजन भी कराना चाहिये। नवमीके दिन रथ चलाकर पूर्वद्वारपर ले जाय, एक दिन वहाँ रहे। तीसरे दिन दक्षिण द्वारपर रथ ले जाय तथा चौथे दिन पश्चिमद्वारपर रथ ले जाय। वहाँसे नगरके मध्यमें रथ ले जाय,

वहाँ पूजन और उत्सव करे, दीपमालिका प्रज्वलित करे, ब्राह्मणोंको दान दे और भोजन कराये। अनन्तर वहाँसे मन्दिरमें रथको लाना चाहिये। वहाँ नगरके सभी लोग मिलकर पूजन और उत्सव करें। एक दिन-रात रथमें ही प्रतिमा रहे। दूसरे दिन भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको रथसे उतारकर बड़ी धूमधामसे मन्दिरमें स्थापित करे। इस प्रकार सप्तमीसे त्रयोदशीतक रथयात्रा होनी चाहिये और चतुर्दशीको प्रतिमा पूर्व स्थानमें स्थापित कर दे। इस रथयात्राके करनेसे सभी विघ्न-बाधाएँ निवृत्त हो जाती हैं।

(अध्याय ५५)

### रथयात्रामें विघ्न होनेपर एवं गोचरमें दुष्ट ग्रहोंके आ जानेपर शान्तिका विधान और तिलकी महिमा

**भगवान् रुद्रने पूछा—**ब्रह्मन् ! आप पुनः रथयात्राका वर्णन करें।

**ब्राह्मणजीने कहा—**रुद्र ! रथको धीरे-धीरे सममार्गीय चलाया जाय, जिससे रथको धक्का आदि न लगने पाये। मार्गकी शुद्धिके लिये प्रथम प्रतीहार और दण्डनायक उस मार्गमें जायें। पिगल, रक्षक, द्रासक, दिग्धी तथा लेखक—ये भी रथके साथ-साथ चले। इतनी मत्कर्तृता और कुशलतासे रथको ले जाया जाय कि रथका कोई अङ्ग-भङ्ग न हो। रथका ईशदण्ड टूटनेपर ब्राह्मणोंको, अश्व टूटनेपर शर्वयोंको, तुल्य टूटनेपर वैश्योंको, शय्याके टूटनेपर शूद्रोंकी भय होता है। युगके भङ्गसे अनावृष्टि, पीठके भङ्गसे प्रजाको भय, रथका चक्र टूटनेसे शत्रुसेनाका आगमन, ध्वजाके गिरनेसे राज-भङ्ग तथा प्रतिमा खण्डित होनेसे राजाकी मृत्यु होती है। छत्रके टूटनेपर युवराजकी मृत्यु होती है। इनमेंसे किसी भी प्रकारका उत्पात होनेपर उसकी शान्ति अवश्य करानी चाहिये तथा ब्राह्मणको भोजन और दान देना चाहिये एवं विधिपूर्वक ग्रह-शान्ति करानी चाहिये। रथके ईशानकोणमें वेदी अथवा कुण्ड बनाकर घृत और समिधाओंसे देवता तथा ग्रहोंकी प्रसन्नताके लिये हवन करना चाहिये और इन नाम-मन्त्रोंसे आहुति देनी चाहिये—‘ॐ अग्रये स्वाहा, ॐ सोमाय स्वाहा, ॐ प्रजापतये स्वाहा।’—इत्यादि। अनन्तर शान्ति एवं कल्याणके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

स्वस्यस्त्वह च विप्रेभ्यः स्वस्ति राजे तथैव च ।

गोभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यश्च जगतः शान्तिस्तु वै ॥  
शं नोऽभ्यु द्विषे नित्यं शान्तिस्तु चतुष्पदे ।  
शं प्रजाभ्यस्तथैवाभ्यु शं सदात्मनि चास्तु वै ॥  
धूः शान्तिस्तु देवेभ्य ध्रुवः शान्तिस्तथैव च ।  
सर्वज्ञास्तु तथा शान्तिः सर्वत्रास्तु तथा रवेः ॥  
सर्वं देव जगतः स्वाहा पोष्टा रैव तपोव हि ।  
प्रजापाल षष्ठेशान शान्तिं कुरु दिवस्पते ॥

(ब्राह्मणपर्व ५६।१५—१९)

अपनी जन्मपराशसे दुष्ट स्थानमें स्थित ग्रहोंकी प्रसन्नता तथा शान्तिके लिये ग्रह-समिधाओंसे हवन करना चाहिये। ये समिधाएँ प्रादेशमात्र लम्बी होनी चाहिये। सूर्यके लिये अर्ककी, चन्द्रमाके लिये पलाशकी, मङ्गलके लिये खदिरकी, बुधके लिये अशमार्गकी, बृहस्पतिके लिये पीपलकी, शुक्रे लिये गुलरकी, शनिके लिये शमीकी, राहुके लिये दूर्वाकी और केतुके लिये कुशकी समिधा ही हवनके लिये प्रयोग करना चाहिये। उत्तम गौ, शङ्ख, ताल बेल, सुवर्ण, वस्त्र युगल, श्वेत अश्व, काले गौ, लौहपात्र और छाग—ये क्रमशः नौ ग्रहोंकी दर्शना हैं। गुड़ और भात, घी-मिश्रित खीर, हविष्यान्न, खीरान्न, दही-भात, घृत, तिल और उड़दके बने पकात्र, गूलेकाला फल, विचवर्णका भात एवं कौड़ी—ये क्रमशः नवग्रहोंके भोजन हैं। जैसे शरीरमें कवच पहन लेनेसे वाण नहीं लगते, वैसे ही ग्रहोंकी शान्ति करनेसे किसी प्रकारका उत्पात नहीं होता। अहिंसक, जितेन्द्रिय, नियममें स्थित और

न्यायसे धनार्जन करनेवाले पुरुषोंपर ग्रहोंका सदा अनुग्रह रहता है। यश, धन, संतानकी प्राप्तिके लिये, अनाकुष्ट होनेपर, आरोग्य-प्राप्तिके लिये तथा सभी उपद्रवोंकी शान्तिके लिये ग्रहोंकी सदा पूजा करनी चाहिये। संतानसे रहित, दुष्ट संतानवाली, मृतवत्सा, मात्र कन्या संतानवाली स्त्री संतानदोषकी निवृत्तिके लिये, जिसका राज्य नष्ट हो गया हो वह राज्यके लिये, रोगी पुरुष रोगकी शान्तिके लिये अवश्य ग्रहोंकी शान्ति करे, ऐसा मनोविषयोंन कहा है<sup>१</sup>। ग्रहोंकी प्रतिमा ताम्र, स्फटिक, रक्तचन्दन, सुवर्ण, चाँदी, लोहे और शीशे आदिकी बनवाकर अथवा इनके चित्रका निर्माण करा कर जिस ग्रहका जो वर्ण हो उसी रंगके वस्त्र एवं पुष्प उन्हें समर्पित करे। गुग्गुलुका धूप सभीकी अर्पित करना चाहिये।

'आ कुण्ठोन-' (यजु-३३।४३) : 'इमे देवा-' (यजु-९।४०) इत्यादि नवग्रहोंके अलग-अलग मन्त्रोंसे एक-एक ग्रहके नामसे समिधा, धृत, शहद और दहीकी एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुतियाँ दे तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराये। उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा दे। जो ग्रह जिसके गोघर अथवा कुण्डलीमें दुष्ट स्थानपर स्थित हो, उसे उस ग्रहकी याज्ञपूर्वक पूजा करनी चाहिये। महादेव। मैंने इन ग्रहोंको ऐसा कर दिया है कि लोगोंद्वारा तुम सब पूजित होओगे। राजाओंका उत्थान और पतन तथा मनुष्योंका उदय और सम्पत्तियोंका नाश ग्रहोंके अधीन है, इसीलिये ग्रहशान्ति अवश्य करनी चाहिये। ग्रह, गाय, राजा, गुरुजन तथा ब्राह्मण पूजन करनेवाले व्यक्तिको सब प्रकारका सुख प्रदान करते हैं। इनका अपमान करनेसे मनुष्यकी अनेक प्रकारके दुःख मिलते हैं। यज्ञ करनेवाले,

सन्ध्यादी, जप, होम, उपवास आदिमें तत्पर धर्मात्मा पुरुषोंकी सभी बाधाएँ शान्त हो जाती हैं<sup>२</sup>।

इस प्रकारसे शान्ति कर रखको पुनः चलना चाहिये और शेष मार्गमें धुमकर अपने स्थानमें पहुँच जानेपर रथ-स्थित देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। उत्थात होनेपर ग्रहोंकी शान्तिके समान ही रथमें स्थित सभी देवताओंकी भी पूजा करनी चाहिये, ऐसा करनेसे सभी तरहके उपातोंकी सब प्रकारसे शान्ति हो जाती है।

दुष्ट ग्रहोंकी शान्तिके लिये ब्राह्मणोंको तिल प्रदान करे अथवा पीके साथ तिलोका हवन करे और देवताओंको धूप दे। तिल देवताओंके लिये स्वाहारूप अमृत, पितरोंके लिये स्वधरूप अमृत तथा ब्राह्मणोंके लिये आश्रयस्वरूप कहे गये हैं। ये तिल कश्यपके अङ्गुसे उत्पन्न हुए हैं तथा देवता एवं पितरोंको अति प्रिय हैं। खान, दान, हवन, तर्पण और भोजनमें परम पवित्र माने गये हैं<sup>३</sup>।

इस प्रकार ग्रह और देवताओंका पूजनकर भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको रथमें उतारकर मण्डलमें स्थापित करे, फिर विद्या-बाधाओंकी शान्तिके लिये दीप, जल, जौ, अन्नत, कपासके बीज, नमक तथा धानकी भूसीसे आरती कर पवित्रोन्मिश्रित सूर्यनारायणको कंदीके ऊपर स्थापित करे। वहाँ दस दिनतक उनकी विधिपूर्वक पूजा करे। दस दिनतक होनेवाली यह पूजा दशहोमका पूजा कहलती है। इस प्रकार पूजनकर फिर भगवान् सूर्यनारायणको पूर्व स्थानपर स्थापित करना चाहिये।

(अध्याय ५६-५७)

१-यथा क्षणग्रहणं कारणं कस्ये सुखम् । तथा दैर्घ्यप्लवकं शान्तिर्भवेति कारणम् ॥  
अहिमकस्य दानस्य धर्मीर्जीवन्मृतश्च । नित्यं च नियमवत्स्य सदा सन्नुग्रहा ग्रहाः ॥  
ग्रहाः पूज्य सदा रुद्र इच्छन् विपुलं यशः । कीदृजम् शान्तिकामो वा प्रपश्ये सम्यक् ॥  
वृष्ट्यापुः पुष्टिकामो वा तर्पयामिषान् पुनः । कालस्य भवेत्तदी दुष्कृत्याहपि वा भवेत् ॥  
घातय यथाः प्रीतिपथे वा च कन्याप्रजा भवेत् । राज्यग्रहो नृपो यस्तु दीर्घयोगी च यो भवेत् ॥  
ग्रहयज्ञः स्मृतसौम्यं मानवानो मनोविधीः ।

(ब्राह्मणपर्व ५६।३०-३५)

२-ग्रहा गगनो मेन्द्राश्च गुरुषु ब्राह्मणाभयाः । पुत्रिकः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यपमानितः ॥  
यन्मने सत्यवक्त्राणां तथा निलोपशमिनाम् । जयहोमयज्ञानां च सर्वे दुष्टे प्रशाम्यते ॥

(ब्राह्मणपर्व ५६।४३, ४९)

३-देवतासमन्तं ह्येते पितॄणां हि स्वधापूजम् । प्रणवे ब्राह्मणानां च सदा होतान् विदुर्बुधाः ॥  
कश्यपसहज्जना ह्येते पवित्राश्च तथा हरः । खाने टपे तथा होमे तर्पणे ह्यगने यशः ॥

(ब्राह्मणपर्व ५७।२५-२६)

### सूर्यनारायणकी रथयात्राका फल

ब्रह्माजीने कहा—हे महादेव ! इस प्रकार अमित ओजस्वी भगवान् भास्करकी रथयात्रा करनेवाला और दूसरेसे करनेवाला व्यक्ति परार्थ वर्षों (ब्रह्माजीकी आधी आयु) तक सूर्यलोकमें निवास करता है। उस व्यक्तिके कुलमें न कोई दरिद्र होता है न कोई रोगी। सूर्य भगवान्के अध्वरूके लिये भी समर्पण करनेवाले तथा अनेक प्रकारका तिलक करनेवाले व्यक्तिको सूर्यलोक प्राप्त होता है। गङ्गा आदि तीर्थोंसे जल लाकर जो सूर्यनारायणको स्नान कराता है, वह वरुणलोकमें निवास करता है। लाल रंगका भूत और गुहक नैवेद्य समर्पित करनेवाला व्यक्ति प्रजापतिलोकको प्राप्त करता है। भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको स्नान कराकर पूजन करनेवाला व्यक्ति सूर्यलोकमें निवास करता है। जो व्यक्ति सूर्यदेवकी रथपर चढ़ाता है, रथके मार्गको पवित्र करता और पुण्य, तोरण, पताका आदिसे अलंकृत करता है, वह वायुलोकमें निवास करता है। जो व्यक्ति नृत्य-गीत आदिके द्वारा बृहद् उत्सव घनाता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त करता है। जब सूर्यदेव रथपर विराजमान होते हैं, उस दिन जागरण करनेवाला पुण्यवान् व्यक्ति निरन्तर आनन्द प्राप्त करता है। जो व्यक्ति भगवान् सूर्यकी सेवा आदिके लिये व्यक्तिको नियोजित करता है, वह सभी कर्मणाओंको प्राप्तकर सूर्यलोकमें निवास करता है। रथारुढ़ भगवान् सूर्यका दर्शन करना बड़े ही सौभाग्यकी बात है। जब रथकी यात्रा उत्तर अथवा दक्षिण दिशाकी ओर होती है, उस समय दर्शन करनेवाला व्यक्ति धन्य है। जिस दिन रथयात्रा हो, उसके सालभर बाद उसी दिन पुनः रथयात्रा करनी चाहिये। यदि वर्षके बाद यात्रा न करा सके तो बारहवें वर्ष अतिशय उत्साहके साथ उत्सव सम्पन्न कर यात्रा सम्पन्न करानी

चाहिये। बीचमें यात्रा नहीं करनी चाहिये।

इसी प्रकार इन्द्रध्वजके उत्सवमें भी यदि विघ्न हो जाय तो बारहवें वर्षमें ही उसे सम्पन्न करना चाहिये। जो व्यक्ति रथयात्राकी व्यवस्था करता है, वह इन्द्रादि लोकपालके सायुज्यको प्राप्त करता है। यात्रामें विघ्न करनेवाले व्यक्ति मंदेह जलिके राक्षस होते हैं। सूर्यनारायणकी पूजा किये बिना जो अन्य देवताओंकी पूजा करता है, वह पूजा निष्फल है। रथयात्राके समय जो सूर्यनारायणका दर्शन करता है, वह निष्कण्ट हो जाता है। षष्ठी, सप्तमी, पूर्णिमा, अमावास्या और रविवारके दिन दर्शन करनेसे बहुत पुण्य होता है। अषाढ़, कार्तिक और माघकी पूर्णिमाको दर्शन करनेसे अनन्त पुण्य होता है। इन तीन मासोंमें भी रथयात्रा करनी चाहिये। इनमें भी कार्तिकी (कार्तिक-पूर्णिमा) को विशेष फलदायक होनेसे महाकार्तिकी कहा गया है। इन समयोंमें उपवासकर जो भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह सद्गतिको प्राप्त करता है। संसारपर अनुग्रह करनेके लिये प्रतिमाघ स्थित होकर सूर्यदेव स्वयं पूजन ग्रहण करते हैं। जो व्यक्ति मुण्डन कराकर स्नान, जप, होम, दान आदि करता है, वह दीक्षित होता है। सूर्य-भक्तको अवश्य ही मुण्डन कराना चाहिये। जो व्यक्ति इस प्रकार दीक्षित होकर सूर्यनारायणकी आराधना करता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है। महादेवजी ! इस रथयात्राके विधानका मैंने वर्णन किया। इसे जो पढ़ता है, मुक्त है, वह सभी प्रकारके रोगोंसे मुक्त हो जाता है और विधिपूर्वक रथयात्राका सम्पादन करनेवाला व्यक्ति सूर्यलोकको जाता है।

(अध्याय ५८)

### रथसप्तमी तथा भगवान् सूर्यकी महिमाका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे रुद्र ! माघ मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिको उपवास करके गन्धादि उपचारोंसे भगवान् सूर्यनारायणकी पूजाकर रात्रिमें उनके सम्मुख शयन करे। सप्तमीमें प्रातःकाल विधिपूर्वक पूजा करे और उदारतापूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इस प्रकार एक वर्षतक सप्तमीको

व्रतकर रथयात्रा करे। कृष्णपक्षमें तृतीया तिथिको एकभुक्त, चतुर्थीको नक्तव्रत, पञ्चमीको अयाचितव्रत<sup>१</sup>, षष्ठीको पूर्ण उपवास तथा सप्तमीको चारण करे। रथस्थ भगवान् सूर्यकी भक्त्येर्पित पूजाकर सुवर्ण तथा रत्नादिसे अलंकृत तथा तोरण, पताकादिसे सुसज्जित रथमें सूर्यनारायणकी प्रतिमा स्थापित कर

१- बिना किसीसे भोग जो भोजन मिल जाय, उसे अयाचित-व्रत करते हैं।

ब्राह्मणकी पूजा करके उसका दान कर दे। स्वयंके अभावमें चाँदी, ताम्र, आटे आदिका रथ बनाकर आचार्यको दान करे। महादेव ! यह माघ-सप्तमी बहुत उत्तम तिथि है, पापोंका हरण करनेवाली इस रथसप्तमीको भगवान् सूर्यके निमित्त किया गया स्नान, दान, होम, पूजा आदि सत्कर्म हजार गुना फलदायक हो जाता है। जो कोई भी इस व्रतको करता है, वह अपने अभ्यष्ट मनोरथको प्राप्त करता है। इस सप्तमीके माहात्म्यका भक्तिपूर्वक श्रवण करनेवाला व्यक्ति ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति पा जाता है।

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! इस प्रकार रथयात्राका विधान बताकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और रुद्रदेवता भी अपने धाम चले गये। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं, यह बतायें।

**राजा शतानीकने कहा—**हे महाराज ! सूर्यदेवके प्रभावका मैं कहाँतक वर्णन करूँ ! उन्होंने अनुग्रहसे पुनर्निर्दिष्ट



आदि मेरे पितामहोंको सभी प्रकारका दिव्य भोजन प्रदान

(अध्याय ५९-६०)

### भगवान् सूर्यद्वारा योगका वर्णन एवं ब्रह्माजीद्वारा दिण्डीको दिया गया क्रियायोगका उपदेश

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! ऋषियोंको जिस प्रकार ब्रह्माजीने सूर्यनारायणकी आराधनाके विधानका उपदेश दिया था, उसे मैं सुनाता हूँ।

किसी समय ऋषियोंने ब्रह्माजीसे प्रार्थना की कि महाराज ! सभी प्रकारकी चित्तवृत्तिके निरोधरूपी योगका

करनेवाला अक्षय पात्र मिला था, जिससे वनमें भी वे ब्राह्मणोंको संतुष्ट करते थे। जिन भगवान् सूर्यकी देवता, ऋषि, सिद्ध तथा मनुष्य आदि निरन्तर आराधना करते रहते हैं उन भगवान् भास्करके माहात्म्यको मैंने अनेक बार सुना है, पर उनका माहात्म्य सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती। जिनसे सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है तथा जिनके उदय होनेसे ही सारा संसार चेष्टावान् होता है, जिनके हाथोंसे लोकपूजित ब्रह्मा और विष्णु तथा ललाटसे शंकर उत्पन्न हुए हैं, उनके प्रभावका वर्णन कौन कर सकता है ? अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि जिस मन्त्र, स्तोत्र, दान, स्नान, जप, पूजन, होम, व्रत तथा उपवासोंके कर्मोंके करनेसे भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर सभी कष्टोंको निवृत्त करते हैं और संसार-सागरसे मुक्त करते हैं, आप कौन-कौन-कौनसे उत्तम मन्त्र, स्तोत्र, रहस्य, विद्या, पाठ, व्रत आदिको बतायें, जिनसे भगवान् सूर्यका कीर्तन हो और जिद्धा धन्य हो जाय। क्योंकि वही जिद्धा धन्य है जो भगवान् सूर्यका स्तवन करती है। सूर्यको आराधनाके बिना यह शरीर व्यर्थ है। एक बार भी सूर्यनारायणको प्रणाम करनेसे प्राणीका भवसागरसे उद्धार हो जाता है। राज्ञेय आश्रय परमपूज्य, आश्रयोंका आश्रय आकाश, तीर्थोंका आश्रय गङ्गा और सभी देवताओंके आश्रय भगवान् सूर्य हैं। मुने ! इस प्रकार अनन्त गुणोंवाले भगवान् सूर्यके माहात्म्यको मैंने बहुत बार सुना है। देवगण भी भगवान् सूर्यको ही आराधना करते हैं, यह भी मैंने सुना है। अब मेरा यही दृढ़ संकल्प है कि सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निवास करनेवाले तथा स्मरणमात्रसे समस्त पाप-तापोंको दूर करनेवाले भगवान् सूर्यको भक्तिपूर्वक उपासना कर मैं भी संसारसे मुक्त हो जाऊँ।

आपने कैवल्यवृत्तको देनेवाला कहा है, किंतु यह योग अनेक जपोंकी कठिन साधनाके द्वारा प्राप्त हो सकता है। क्योंकि इन्द्रियोंको बलपूर्वक आकृष्ट करनेवाले विषय अत्यन्त दुर्लभ हैं, मन किसी प्रकारसे स्थिर नहीं होता, राग-द्वेष आदि दोष नहीं छूटते और पुरुष अत्यायु होते हैं, इसीलिये योगसिद्धिका प्राप्त



होना अतिशय कठिन है। अतः आप ऐसे किसी साधनका उपदेश करें जिससे बिना परिश्रमके ही निस्तार हो सके।

**ब्रह्माजीने कहा—**मुनीश्वर ! यह, पूजन, नमस्कार, जप, व्रतोपवास और ब्राह्मण-भोजन आदिसे सूर्यनारायणकी आराधना करना ही इसका मुख्य उपाय है। यह क्रियायोग है। मन, बुद्धि, कर्म, दृष्टि आदिसे सूर्यनारायणकी आराधनामें तत्पर रहे। ये ही परब्रह्म, अक्षर, सर्वव्यापी, सर्वकर्ता, अख्यक्त, अचिन्त्य और मोक्षको देनेवाले हैं। अतः आप उनकी आराधना कर अपने मनोवाञ्छित फलको प्राप्त करें और भवसागरसे मुक्त हो जायें। ब्रह्माजीसे यह सुनकर मुनिगण सूर्यनारायणकी उपासना-रूप क्रियायोगमें तत्पर हो गये। हे राजन् ! विषयोंमें डूबे हुए संसारके दुःखी जीवोंको सूख प्रदान करनेवाले सूर्यनारायणके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है, इसलिये डठले-बैठले, चरले-सोते, भोजन करते हुए सदा सूर्यनारायणका ही स्मरण करो, भक्तिपूर्वक उसकी अराधनामें प्रवृत्त होओ, जिससे जन्म-मरण, उन्मिध-व्याधिसे युक्त इस संसारसमुद्रसे तुम पार हो जाओगे। जो पुरुष जगत्कर्ता, सदा करदान देनेवाले, दयालु और प्रहोकि स्वामी श्रीसूर्यनारायणको शरणमें जाता है, वह अवश्य ही मुक्ति प्राप्त करता है।

**सुमन्तु मुनिने पुनः कहा—**राजन् ! प्राचीन कालमें दिण्डीको ब्रह्महत्या लग गयी थी। उस ब्रह्महत्याके पापको दूर करनेके लिये उन्होंने बहुत दिनोंतक सूर्यनारायणकी आराधना और स्तुति की। उससे प्रसन्न हो भगवान् सूर्य उनके पास आये। भगवान् सूर्यने कहा—‘दिण्डीन् ! तुम्हारी भक्तिपूर्वक की गयी स्तुतिसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अपना अभीष्ट कर पाँगे।’

**दिण्डीने कहा—**महाराज ! आपने पधारकर मुझे दर्शन दिया, यह मेरी सौभाग्यकी बात है। यही मेरे लिये सर्वश्रेष्ठ वर है। पुण्यहीनके लिये आपका दर्शन सर्वथा दुर्लभ है। आप सबके हृदयमें स्थित हैं, अतः आप सबका अभिप्राय जानते हैं। जिस प्रकार मुझे ब्रह्महत्या लगी है, उसे तो आप जानते ही हैं। भगवन् ! आप मुझपर ऐसा अनुग्रह करें कि मैं इस निन्दित ब्रह्महत्यासे तथा अन्य पापोंसे शीघ्र मुक्त हो जाऊँ और मैं सफल-मनोरथ हो जाऊँ। आप संसारसे उद्धारकर उपाय

बतलायें, जिसके आचरणसे संसारके प्राणी सुखी हों। दिण्डीके इस वचनको सुनकर योगवेत्ता भगवान् सूर्यने उन्हें निर्वीज-योगका उपदेश दिया, जो दुःखके निवारणके लिये औपचर्य है।

**दिण्डीने प्रार्थना करते हुए कहा—**महाराज ! यह निष्कल-योग तो बहुत कठिन है, क्योंकि इन्द्रियोंको जीतना, मनको स्थिर करना, अहं-शरीरादिका अभिमान और ममताका त्याग करना, राग-द्वेषसे बचना—ये सब अतिशय कष्टसाध्य हैं। ये बातें कई जन्मोंके अभ्यास करनेसे प्राप्त होती हैं। अतः आप ऐसा साधन बतलायें, जिससे अनायास बिना विशेष परिश्रमके ही फलकी प्राप्ति हो जाय।

**भगवान् सूर्यने कहा—**गणनाथ ! यदि तुम्हें मुक्तिकी इच्छा है तो समस्त क्लेशोंकी मष्ट करनेवाले क्रियायोगकी सुनो। अपने मनको मुझमें लगाओ, भक्तिसे मेरा भजन करो, मेरा पूजन करो, मेरे पराधन हो जाओ, आत्माको मेरेमें लगा दो, मुझे नमस्कार करो, मेरी भक्ति करो, सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें मुझे परीक्ष्यता सम्झो<sup>१</sup>, ऐसा करनेसे तुम्हारे सम्पूर्ण दोषोंका विनाश हो जायगा और तुम मुझे प्राप्त कर लोगे। भलीभाली मुझमें अवसक्त हो जानेपर राग-लोभादि दोषोंके नाश हो जानेमें कृतकृत्यता हो जाती है। अपने मनको स्थिर करनेके लिये सोन, चाँदी, ताम्र, पाषाण, कज्ज आदिसे मेरी प्रतिमाका निर्माण कराकर या चित्र हो लिखकर विविध उपचारोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करो। सर्वभावसे प्रतिमाका आश्रय ग्रहण करो। चरले-फिरते, भोजन करते, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे उसीका ध्यान करो, उसे पवित्र तीर्थोंके जलसे स्नान कराओ। गन्ध, पुष्प, वस्त्र, आभूषण, विविध नैवेद्य और जो पदार्थ स्वयंकी प्रिय हो उन्हें अर्पण करो। इन विविध उपचारोंसे मेरी प्रतिमाको संतुष्ट करो। कभी गानेकी इच्छा हो तो मेरी मूर्तिके आगे मेरा गुणानुवाद गाओ, सुननेकी इच्छा हो तो हमारी कथा सुनो। इस प्रकार मुझमें अपने मनको अर्पण करनेसे तुम्हें परमपदकी प्राप्ति हो जायगी। सभी कर्म मुझमें अर्पण करो, हरनेको कोई बात नहीं। मुझमें मन लगाओ, जो कुछ करो मेरे लिये करो, ऐसा करनेसे तुम ब्रह्महत्या आदि सभी दोष-पापोंसे

रहित होकर मुक्त हो जाओगे, इसलिये तुम इस क्रियायोगका आश्रय ग्रहण करो ।

**दिण्डी बोले—**महाराज ! इस अमृतरूप क्रियायोगको आप विस्तारसे कहें, क्योंकि आपके बिना कोई भी इसे बतलानेमें समर्थ नहीं है । यह अत्यन्त गोपनीय और पवित्र है ।

**भगवान् सूर्यने कहा—**तुम चिन्ता मत करो । इस सम्पूर्ण क्रियायोगका ब्रह्माजी तुमको विस्तारपूर्वक उपदेश करेंगे और मेरी कृपासे तुम इसे ग्रहण करोगे । इतना कहकर तीनों लोकोंके दीपस्वरूप भगवान् सूर्य अन्तर्हित हो गये और दिण्डी भी ब्रह्माजीके धामको चले गये । ब्रह्मलोक पहुँचकर दिण्डी सुरज्येष्ठ चतुर्मुख ब्रह्माजीको प्रणाम कर कहने लगे ।

**दिण्डीने प्रार्थनापूर्वक कहा—**ब्रह्मन् ! मुझे भगवान् सूर्यदेवने आपके पास भेजा है । आप कृपशः मुझे क्रिया-योगका उपदेश करें, जिसके सहारे मैं शीघ्र ही भगवान् सूर्यको प्रसन्न कर सकूँ ।

**ब्रह्माजी बोले—**गणाधिप ! भगवान् सूर्यका दर्शन करते ही तुम्हारी ब्रह्महत्या तो नष्ट हो गयी । तुम भगवान् सूर्यके कृपापात्र हो । यदि सूर्यनारायणकी आराधना करनेकी इच्छा है तो प्रथम दीक्षा ग्रहण करो, क्योंकि दीक्षाके बिना उपासना नहीं होती । अनेक जन्मोंके पुण्यसे भगवान् सूर्यमें भक्ति होती है । जो पुरुष भगवान् सूर्यमें द्वेष रखता है, ब्राह्मण तथा वेदकी निन्दा करता है, उसे अवश्य ही अधम पुरुषसे उत्पन्न समझो । मायाके प्रभावसे ही अधम पुरुषोंकी कुकर्ममें प्रवृत्ति होती है और उनके स्वल्प शेष रहनेपर सूर्यकी आराधनाके लिये दीक्षाकी इच्छा होती है । इस भवसागरमें डूबनेवाले पुरुषोंका हाथ पकड़कर उद्धार करनेवाले एकमात्र भगवान् सूर्य ही हैं । इसलिये तुम दीक्षा ग्रहण कर भगवान् सूर्यमें तपस्य होकर उनकी उपासना करो, इससे शीघ्र ही भगवान् सूर्य तुमपर अनुग्रह करेंगे ।

**दिण्डीने पूछा—**महाराज ! दीक्षक अधिकारी कौन पुरुष है और दीक्षा-ग्रहण करनेके बाद क्या करना चाहिये । कृपया आप इसे बतायें ।

**ब्रह्माजीने कहा—**दिण्डीन् ! दीक्षा-ग्रहणकी इच्छावाले व्यक्तिको मन, वचन और कर्मसे हिंसा नहीं करनी चाहिये । सूर्यभगवान्में भक्ति करनी चाहिये, दीक्षित ब्रह्मणोंको

सदा नमस्कार करना चाहिये, किसीसे द्वेष नहीं करना चाहिये । सभी प्राणियोंको सूर्यके रूपमें समझना चाहिये । देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, चींटी, वृक्ष, पाषाण आदि जगत्के सभी पदार्थों और आत्माको सूर्यसे भिन्न न समझकर मन, वचन और कर्मसे जीवोंमें पापबुद्धि नहीं करनी चाहिये— ऐसा ही पुरुष दीक्षक अधिकारी होता है । जो गति सूर्यनारायणकी आराधनासे प्राप्त होती है, वह न तो तपमें मिलती है और न बहुत दक्षिणवाले यज्ञोंके करनेसे । सभी प्रकारसे जो भगवान् सूर्यका भक्त है, वह धन्य है । उस सूर्यभक्तके अनेक कुलोंका उद्धार हो जाता है । जो अपने हृदयप्रदेशमें भगवान् सूर्यकी अर्चा करता है, वह निष्पाप होकर सूर्यदेवको प्राप्त करता है । सूर्यका मन्दिर बनानेवाला अपनी मात पंडितोंको सूर्यदेवके लिये निवास कराता है और जितने वर्षोंतक मन्दिरमें पूजा होती है, उतने हजार वर्षोंतक वह सूर्यदेवके आनन्दका भोग करता है । निष्कामभावसे सूर्यकी उपासना करनेवाला व्यक्ति मुक्तिको प्राप्त करता है । जो व्रतम लेप, सुन्दर पुष्प, अतिशय सुगन्धित धूप प्रतिदिन सूर्य-नारायणकी अर्पित करता है, वह यज्ञके फलको प्राप्त करता है । यज्ञमें बहुत सामग्रीयोंकी अपेक्षा रहती है, इसलिये मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते, परन्तु भक्तिपूर्वक दूर्वासे भी सूर्यनारायणकी पूजा करनेसे यज्ञ करनेसे भी अधिक फलकी प्राप्ति हो जाती है—

बहुपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः ॥

न दिण्डिप्रवायने मनुष्यैरल्पसंख्यैः ।

भक्षया तु पुरुषैः पूजा कृता दूर्वाङ्कुरैरपि ।

धानैर्दद्याति हि फलं सर्वयज्ञैः सुदुर्लभम् ॥

(शास्त्रपर्व ६२।३२-३३)

दिण्डीन् ! गन्ध, पुष्प, धूप, वस्त्र, आभूषण तथा विविध प्रकारके नैवेद्य जो भी प्राप्त हों और तुम्हें जो प्रिय हों, उन्हें भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको निवेदित करो । तीर्थके जल, दही, दूध, घृत, शर्करा और शहदसे उन्हें स्नान कराओ । गीत-वाद्य, नृत्य, स्तुति, ब्राह्मण-भोजन, हवन आदिसे भगवान्को प्रसन्न करो, किन्तु सभी पूजाएँ भक्तिपूर्वक होनी चाहिये । मैंने भगवान् सूर्यकी आराधना करके ही सृष्टि की है । विष्णु उनके अनुग्रहसे ही जगत्का पालन करते हैं और रुद्रने उनकी प्रसन्नतासे ही

संहारशक्ति प्राप्त की है। ऋषिगण भी उनके ही कृपाप्रसादको प्राप्तकर मन्त्रोंका साक्षात्कार करनेमें समर्थ होते हैं। इसलिये तुम भी पूजन, व्रत, उपवास आदिसे वर्षपर्यन्त भगवान् सूर्यके

आराधना करो, जिससे सभी क्लेश दूर हो जायेंगे और तुम शक्ति प्राप्त करोगे<sup>१</sup>।

(अध्याय ६१—६३)



## भगवान् सूर्यके व्रतोंके अनुष्ठान तथा उनके मन्दिरोंमें अर्चन-पूजनकी विधि तथा फल-सप्तमी-व्रतका फल

**दिण्डीने ब्रह्माजीसे पूछा—**ब्रह्मन् ! आपने आदित्य-क्रियायोगको मुझे बतलाया, अब आप यह बतलानेकी कृपा करें कि भगवान् सूर्य उपवाससे कैसे प्रसन्न होते हैं ? उपवास करनेवालोंके लिये क्या-क्या त्याग्य है ? आराधनामें क्या-क्या करना चाहिये, इसका आप विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

**ब्रह्माजी बोले—**दिण्डीन् ! भगवान् सूर्य पुष्प आदिद्वारा पूजन करनेसे ही प्रसन्न हो जाते हैं और उत्तम फल देते हैं। पापोंसे रहित होकर सद्गुणोंका आश्रय ग्रहण कर, सभी भोगोंका परित्याग करना ही उपवास कहलया है<sup>२</sup>। अतः ऐसे उपवाससे क्यों नहीं मनोवाञ्छित फल प्राप्त होगा ? एक रात, दो रात, तीन रात या नक्त-व्रत करनेवाला निष्काम होकर उपवासकर मन, वचन और कर्मसे सूर्यनारायणकी आराधनामें तत्पर रहे तो ब्रह्मलोकको प्राप्त कर सकता है। यदि साधक किसी कामनासे दत्तचित्त होकर भगवान् सूर्यकी उपासना करता है तो प्रसन्न होकर भगवान् उसकी कामना पूर्ण कर देते हैं। अन्धकारका नाश करनेवाले जगदात्मा सूर्यनारायणकी तत्पयतापूर्वक आराधनाके बिना किसी प्रकार भी सद्गति नहीं मिलती। अतः पुष्प, धूप, चन्दन, नैवेद्य आदिसे भक्तिसूत्रक सूर्यकी पूजा और उनकी प्रसन्नताके लिये उपवास करना चाहिये। उत्तम पुष्पके न मिलनेपर वृक्षोंके काँमल पत्ते अथवा दुर्वाकुसुमे पूजन करना चाहिये। पुष्प, पत्र, फल, जल जो भी यथाशक्ति मिले, उसे ही भक्तिके साथ भगवान् सूर्यको अर्पण करना चाहिये। इससे भगवान् सूर्यको अतुल तुष्टि प्राप्त होती है। सूर्यनारायणके मन्दिरमें सदा झाड़ू देनेपर धूलमें जितनी कणिकाएँ श्रोती है, उतने समयतक सूर्यके समान होकर वह स्वर्गमें रहता है। मन्दिरके छोटे भागका भी मार्जन करनेपर उस

दिनके पापसे व्यक्ति मुक्त हो जाता है। जो गोमयसे, मृत्तिका अथवा अन्य धातुओंके चुणोंसे मन्दिरमें उपलेपन करता है, वह विमानपर चढ़कर सूर्यलोकमें जाता है। मन्दिरमें जलसे छिड़काव करनेवाला वरुणलोकमें निवास करता है। जो लेपन किये हुए मन्दिरमें पुष्प बिखेरता है, वह कभी दुर्गति नहीं प्राप्त करता। मन्दिरमें दीपक प्रज्वलित करनेवाला व्यक्ति सभी ऋतुओंमें सुखप्रद सखी प्राप्त करता है। ध्वजा चढ़ानेवालेके ज्ञात और अज्ञात सभी पाप पताकके बाधसे हिलनेपर नष्ट हो जाते हैं। गीत, वाद्य और नृत्यके द्वारा मन्दिरमें उत्सव करनेवाला उत्तम विमानमें बैठता है, गन्धर्व और अप्सराएँ उसके आगे गान और नृत्य करती हैं। जो मन्दिरमें पुराणका पाठ करता है, उसे ब्रह्म बुद्धिकी प्राप्ति होती है और वह जतिस्मर (सभी जन्मोंकी बात जाननेवाला) हो जाता है। दिण्डीन् ! सूर्यको आराधनासे जो चाहो वह प्राप्त कर सकते हो। इनकी आराधनासे कई लोग गन्धर्व, कतिपय विद्याधर, कतिपय देवता बन गये हैं। इन्द्रने इनकी आराधनासे ही इन्द्रपद प्राप्त किया है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ एवं स्त्रियोंके ये ही उपास्य हैं। जितेन्द्रिय संन्यासी भी इनके अनुग्रहसे ही मुक्तिको प्राप्त करते हैं, क्योंकि ये ही मोक्षके द्वार हैं। इस तरह सभी वर्ण और आश्रमोंके आश्रय एवं परमगति भगवान् सूर्य ही हैं।

**दिण्डीन् !** अब मैं काश्य उपवास और फल-सप्तमीका वर्णन करता हूँ। फल-सप्तमीका व्रत करनेसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। भाद्रपद मासकी शुक्ल चतुर्थीको अयाचित-व्रत कर पञ्चमीको एक बार भोजन करे, षष्ठीको जितक्रोध, जितेन्द्रिय होकर पूर्ण उपवास करे और

१-क्रियायोगका वर्णन सभी पुराणोंमें मिलता है, विशेषकरसे पञ्चरात्रका क्रियायोगसार-सम्बद्ध द्रष्टव्य है।

२-उपवासका पापेभ्यो यस्तु बाधो नृणो महः उपवासः स विशेषः सर्वभोगविवर्जितः ॥ (ब्रह्मपर्व ६४।४)

भक्तिके साथ सभी सामग्रियोंसे सूर्यनारायणकी पूजा करे। रातमें भगवान् सूर्यके सम्मुख पृथ्वीपर शयन करे। सप्तमीको सूर्य भगवान्का ध्यान करते हुए प्रातः उठकर स्नान-पूजन करे और खजूर, नारियल, आम, मातुलंग आदि नैवेद्यके भोग लगाये और ब्राह्मणको दे तथा स्वयं भी प्रसादके रूपमें उन्हें ग्रहण करे। यदि ये फल न मिले तो शालि (चावल) का या गेहूँका आटा लेकर उसमें गुड़ मिलाये और घीमें पकाकर उनका ही भगवान् सूर्यको भोग लगाये, अनन्तर हवन कर ब्राह्मण-भोजन कराये। इस प्रकार एक वर्षतक सप्तमीका व्रत कर अन्तमें उद्यापन करे। गोमूत्र, गोमय, गोदुग्ध, दही, घी, कुशका जल, श्वेत मृत्तिका, तिल और सरसोंका उबटन, दूर्वा, गौके स्तोकका जल, चमेलीके फूलके रस—इनसे स्नान करे और इनका ही प्राशन करे। ये सभी पापोंका हरण करनेवाले हैं। सभी प्रकारके फल, सस्यसम्पन्न भूमि, धान्ययुक्त भवन, बछड़ेके साथ गौ, विदुषोंके साथ तत्प्रपात्र और श्वेत वस्त्र ब्राह्मणोंको दे। जो शक्ति-सम्पन्न हो वह चाँदी अथवा आटेके

पिष्टक, फल तथा दो वस्त्र दे। सोना, रत्न और वस्त्र आचार्यको दे। ब्राह्मणको भोजन कराये। इस प्रकार व्रतको सम्पन्न करे। यह फल-सप्तमीका विधान कहा गया है।

यह अतिशय पुण्यमयी सप्तमी सभी पापोंका नाश करनेवाली है। इस दिन उपवासकर मनुष्य सूर्यलोकको प्राप्त करता है। वहाँ देव, गन्धर्व और अप्सराओंके साथ पूजित होता है। इस व्रतको जो करता है, वह पाप, दरिद्रता और सभी प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। इस व्रतके करनेसे ब्राह्मण मुक्ति, क्षत्रिय इन्द्रलोक, वैश्य कुबेर-लोकमें निवास करता है। शुद्र इस व्रतके करनेसे द्विजत्व प्राप्त कर लेता है। पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है, दुर्भगा सौभाग्यशालिनी होती है और विधवा नारी अगले जन्ममें वैधव्य प्राप्त नहीं करती। इस फल-सप्तमीको समस्त खिन्नित पदार्थोंको प्रदान करनेवाली चिन्तामणिके समान समझना चाहिये। इस फल-सप्तमीकी कथाके प्रवण अथवा व्रत करनेवालोंकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। (अध्याय ६४)

## रहस्य-सप्तमी-व्रतके दिन त्याज्य पदार्थका निषेध तथा

### व्रतका विधान एवं फल

**ब्राह्मजीने कहा—**दिण्डिन्। अब मैं रहस्य-सप्तमी-व्रतका विधान कह रहा हूँ। इस व्रतके करनेसे अपनेसे आगे आनेवाली सप्त पीढ़ी तथा पीछेकी भी सप्त पीढ़ीके कुलोंका उद्धार हो जाता है। जो इस व्रतका नियमसे पालन करता है, उसे धन, पुत्र, आरोग्य, विद्या, विनय, धर्म तथा अप्राप्य वस्तुकी भी प्राप्ति हो जाती है। इस व्रतके नियम इस प्रकार हैं—सबमें मैत्रीभाव रखते हुए भगवान् सूर्यका चिन्तन करता रहे। मनुष्यको व्रतके दिन न तेलका स्पर्श करना चाहिये, न नीला वस्त्र धारण करना चाहिये तथा न औबलेसे स्नान करना चाहिये। किसीसे कलह तो करे ही नहीं। इस दिन नीला वस्त्र धारण करके जो सत्कर्म करता है, वह निष्फल होता है। जो ब्राह्मण इस व्रतके दिन एक बार नीला वस्त्र धारण कर ले तो उसे उचित है कि स्वयंकी शुद्धिके लिये उपवास करके पञ्चगव्य-प्राशन करे, तभी वह शुद्ध होता है। यदि अज्ञानवश नील वृक्षकी लकड़ीसे कोई ब्राह्मण दन्तधावन कर लेता है तो वह दो चान्द्रायण-व्रत करनेसे शुद्ध होता है। इस दिन

रंगकूपमें नीले रंगके प्रवेश करनेमात्रसे ही तीन वृक्ष-चान्द्रायण-व्रत करनेसे शुद्ध होती है। जो व्यक्ति प्रमादवश नील वृक्षके उद्यानमें चला जाता है वह पञ्चगव्य-प्राशनसे ही शुद्ध होता है। जहाँ नील एक बार बोयी जाती है, वह भूमि बारह वर्षतक अपवित्र रहती है।

रहस्य-सप्तमी-व्रतके दिन जो तेलका स्पर्श करता है, उसकी प्रिय भार्या नष्ट हो जाती है, अतः तैलका स्पर्श नहीं करना चाहिये। इस तिथिके किसीके साथ द्रोह और क्रूरता भी करना उचित नहीं है। इस दिन गीत गाना, नृत्य करना, वीणादि वाद्ययन्त्र बजाना, शव देखना, व्यर्थमें हँसना, स्त्रीके साथ शयन करना, चूत-झ्रिडा, रोना, दिनमें सोना, असत्य बोलना, दूसरेके अनिष्टका चिन्तन करना, किसी भी जीवको कष्ट देना, अत्यधिक भोजन करना, गली-कूचोंमें घूमना, दम्भ, शोक, शठता तथा क्रूरता—इन सबका प्रयत्नपूर्वक परित्याग कर देना चाहिये।

इस व्रतका आरम्भ चैत्र माससे करना चाहिये। व्रत



करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह वैशादि मासमें धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पर्जन्य, पूषा, भग, त्वष्टा, विष्णु तथा भास्कर—इन द्वादश सूर्योक्त क्रमशः पूजन करे। प्रत्येक सप्तमीके दिन भोजक ब्राह्मणको घोंके साथ भोजन कराकर उसे भृत्यसहित पात्र, एक माश सुवर्ण और दक्षिणा देनी चाहिये। यदि भोजक न मिल सके तो श्रेष्ठ ब्राह्मणको ही भोजककी भाँति भोजन कराकर यही वस्तुएँ दानमें देनी चाहिये।

हे दिण्डिन् ! इस प्रकार मैंने सप्तमीके इस माहात्म्यका वर्णन किया, जिसके श्रवणमात्रसे भी सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

**सुमन्तु बोले—**उजन् ! इतना कहकर ब्रह्माज्ज अन्तर्धान हो गये और दिण्डी भी उनके द्वारा बतaye गये इस व्रतके अनुसार सूर्यनारायणका पूजन करके अपने मनोवाञ्छित कल्पको प्राप्त करनेमें सफल हुए और भगवान् सूर्यके अनुचर हो गये। (अध्याय ६५)

### शंख एवं द्विज, वसिष्ठ एवं साम्ब तथा याज्ञवल्क्य और ब्रह्माके संवादमें आदित्यकी आराधनाका माहात्म्य-कथन,

#### भगवान् सूर्यकी ब्रह्मरूपता

राजा शतानीकने कहा—मुने ! आप भगवान् सूर्यनारायणके प्रभावका और भी वर्णन करें। आपकी अमृतमयी वाणी सुन-सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।

**सुमन्तुजीने कहा—**उजन् ! इस विषयमें शंख और द्विजका जो संवाद हुआ है, उसे आप सुनें, जिसे सुनकर मानव सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।

एक अत्यन्त रमणीय आश्रम था, जिसमें सभी वृक्ष फलोंके भारसे झुक रहे थे। कहीं पृग अपनी सींगोंसे परस्पर एक-दूसरेके शरीरमें खुजला रहे थे, किसी दिशामें मधूरोक्त नृत्य और भ्रमरोंकी मधुर ध्वनिका गुंजार हो रहा था। ऐसे मनोहारी आश्रममें अनेक तपस्वियोंसे सेवित भगवान् सूर्यके अनन्य भक्त शंख नामके एक मुनि रहते थे। एक बार भोजक-कुमारोंने मुनिके समीप जाकर विनम्रपूर्वक अभिवादन कर निवेदन किया—महाराज ! वेदोंके विषयमें हमें संदेह है। आप उसका निवारण करें। उन विनयी भोजकोंकी इस प्रार्थनाको सुनकर प्रसन्न हुए शंखमुनि उन सभीको वेदाध्ययन कराने लगे। एक दिन वे सभी कुमार वेदका अध्ययन कर रहे थे, उसी समय परम तपस्वी द्विज नामके एक श्रेष्ठ मुनि वहाँ आये। अमित तेजस्वी उन शंख मुनिने उनकी विधिवत् अर्चना की और उन्हें आसनपर बैठाया। उन कुमारोंने भी उनकी वन्दना की, जिससे द्विज बहुत प्रसन्न हुए।

**शंख मुनिने उन भोजक-कुमारोंसे कहा—**शिष्ट पुरुषके आगमनसे अनध्याय होता है। अतः तुम सब इस सं- १० पु० अ० ४—

समय अपना अध्ययन समाप्त करो। यह सुनते ही कुमारोंने अपने-अपने ग्रन्थ बंद कर दिये।

**द्विजने शंख मुनिसे पूछा—**ये बालक कौन हैं और क्या पढ़ते हैं ?

**शंख मुनिने कहा—**महाराज ! ये भोजक-कुमार हैं। सूत्र और कल्पके साथ चारों वेद, सूर्यनारायणके पूजन और हवनका विधान, प्रतिहोर्विधि, रथयात्राकी रीति तथा सप्तमी तिथिके कल्पका ये अध्ययन कर रहे हैं।

**द्विजने पुनः पूछा—**मुने ! सप्तमी-व्रतका क्या विधान है और भगवान् सूर्यके अर्चनकी क्या विधि है ? सूर्य-मन्दिरमें गन्ध, पुष्प, दीप आदि देनेसे क्या फल प्राप्त होता है ? किस व्रत, नियम और दानसे भगवान् सूर्य प्रसन्न होते हैं ? उन्हें कौन-से पुष्प-धूप तथा उपहार दिये जाते हैं ? यह सब मैं सुनना चाहता हूँ, इसे आप बतायें। सूर्यनारायणके माहात्म्यकी भी विशेषरूपसे चर्चा करें।

**शंख मुनिने कहा—**इस प्रसंगमें मैं महाराज साम्ब और महर्षि वसिष्ठके संवादका वर्णन कर रहा हूँ।

एक बार साम्ब महर्षि वसिष्ठके पवित्र आश्रमपर गये। वहाँ जाकर उन्होंने नियतात्मा वसिष्ठके चरणोंमें प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर किनोत भावसे खड़े हो गये। महर्षि वसिष्ठने भी उनके भक्तिभावको देखकर प्रसन्न-मनसे उनसे पूछा।

**वसिष्ठ बोले—**साम्ब ! तुम्हारा तो सम्पूर्ण शरीर

भयंकर कुष्ठ-रोगसे विदीर्ण हो गया था, यह सर्वथा रोगमुक्त कैसे हुआ और तुम्हारे शरीरकी दिव्य कान्ति एवं शोभा कैसे बढ़ गयी ? यह सब मुझे बताओ ।

**साम्बने कहा—**महाराज ! मैं भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना उनके सहस्रनामोंद्वारा की है। उसी आराधनाके प्रभावसे उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे साक्षात् दर्शन दिया है और उनसे मुझे वरकी भी प्राप्ति हुई है ।

**वसिष्ठने पुनः पूछा—**तुम्हें किस व्रत, तप अथवा दानसे उनका साक्षात् दर्शन हुआ ? यह सब विस्तारसे बतलाओ ।

**साम्बने कहा—**महाराज ! जिस विधिसे मैं भगवान् सूर्यको प्रसन्न किया है, वह समस्त वृत्तान्त आप ध्यान-पूर्वक सुनें ।

आजसे बहुत पहले मैं अज्ञानवश दुर्वास मुनिको उपहास किया था। इसलिये क्रोधमें आकर उन्होंने मुझे कुष्ठरोगसे ग्रस्त होनेका शाप दे दिया, जिससे मैं कुष्ठरोगी हो गया। तब अत्यन्त दुःखी एवं लज्जित होते हुए मैं अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर निवेदन किया—‘तात ! मैं दुर्वास मुनिके शापसे कुष्ठरोगसे ग्रस्त होकर अत्यधिक पीड़ित हो रहा हूँ, मेरा शरीर गलता जा रहा है। कलठका स्वा भी बैठता जा रहा है। पीड़ासे प्राण निकल रहे हैं। वैद्यों आदिके द्वारा उपचार करनेपर भी मुझे शक्ति नहीं मिलती। अब आपकी आज्ञा प्राप्त कर मैं प्राण त्यागना चाहता हूँ। अतः आप मुझे यह आज्ञा देनेकी कृपा करें, जिससे मैं इस कष्टसे मुक्त हो सकूँ।’ मेरा यह दौन वचन सुनकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने क्षणपर विचार कर मुझसे कहा—‘पुत्र ! धैर्य धारण करो, चिन्तित मत करो, क्योंकि जैसे सूखे तिनकेको आग जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही चिन्ता करनेसे रोग और अधिक कष्ट देता है। भक्तिपूर्वक तुम देवाराधन करो। उससे सभी रोग नष्ट हो जायेंगे।’ पिताके ऐसे वचन सुनकर मैंने पूछा—‘तात ! ऐसा कौन देवता है, जिसकी आराधना करनेसे इस भयंकर रोगसे मैं मुक्ति पा सकूँ ?’

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**पुत्र ! एक समयकी बात है, योगिश्रेष्ठ याज्ञवल्क्य मुनिने ब्रह्मलोकमें जाकर पदयोनि ब्रह्माजीको प्रणाम किया और उनसे पूछा कि महाराज ! मोक्ष

प्राप्त करनेके इच्छुक प्राणीको किस देवताकी आराधना करनी चाहिये ? अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति किस देवताकी उपासना करनेसे होती है ? यह चरचर विश्व किससे उत्पन्न हुआ है और किसमें लीन होता है ? इन सबका आप वर्णन करें ।

**ब्रह्माजी बोले—**महर्षे ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है। यह सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं आपके प्रश्नोक्त उत्तर दे रहा हूँ, इसे ध्यानपूर्वक सुनें—जो देवश्रेष्ठ अपने उदयके साथ ही समस्त जगत्का अन्धकार नष्ट कर तौनों लोकोंको प्रतिभासित कर देते हैं, वे अजर-अमर, अव्यय, शाश्वत, अक्षय, शुभ-अशुभके जानेवाले, कर्मसाक्षी, सर्वदेवता और जगत्के स्वामी हैं। उनका मण्डल कभी क्षय नहीं होता। वे पितरोंके पिता, देवताओंकी भी देवता, जगत्के आधार, सृष्टि, स्थिति तथा संहारकर्त्ता हैं। योगी पुरुष वायुरूप होकर जिनमें लीन हो जाते हैं, जिनकी सहस्र रश्मियोंमें मुनि, सिद्धगण और देवता निवास करते हैं, उनका, व्यास, शुकदेव, वाल्मिल्य, आदि ऋषिगण, पण्डितशाला आदि योगिगण जिनके प्रभा-मण्डलमें प्रविष्ट हुए हैं, ऐसे वे प्रत्यक्ष देवता सूर्यनारायण ही हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदिका नाम तो मात्र सुननेमें ही आता है, पर सभीको वे दृष्टिगोचर नहीं होते, किन्तु तिमिरनाशक सूर्यनारायण सभीको प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। इसलिये वे सभी देवताओंमें श्रेष्ठतम हैं। अतः याज्ञवल्क्य ! आपको भी सूर्यनारायणके अतिरिक्त अन्य किसी देवताकी उपासना नहीं करनी चाहिये। इन प्रत्यक्ष देवताकी आराधना करनेसे सभी फल प्राप्त हो सकते हैं ।

**याज्ञवल्क्य मुनिने कहा—**महाराज ! आपने मुझे बहुत ही उत्तम उपदेश दिया है, जो बिल्कुल सत्य है, मैंने पहले भी बहुत बार सूर्यनारायणके माहात्म्यकी सुना है। जिनके दक्षिण अङ्गसे विष्णु, वाम अङ्गसे स्वयं आप और ललाटसे रुद्र उत्पन्न हुए हैं, उनकी तुलना और कौन देवता कर सकते हैं ? उनके गुणोंका वर्णन भला किन शब्दोंमें किया जा सकता है ? अब मैं उनकी उस आराधना-विधिको सुनना चाहता हूँ, जिसके द्वारा मैं संसार-सागरको पार कर जाऊँ। वे कौन-से व्रत-उपवास-दान, होम-जाप आदि हैं, जिनके करनेसे सूर्यनारायण प्रसन्न होकर समस्त कष्टोंको दूर कर देते हैं ? यह सब आप बतलानेकी कृपा करें; क्योंकि प्राणियोंद्वारा

धर्म, अर्थ तथा कर्मकी प्राप्तिके लिये जो चेष्टाएँ की जाती हैं, उनमें वही चेष्टा सफल है जो भगवान् सूर्यका आश्रय ग्रहण कर अनुष्ठित हो। अन्यथा वे सभी क्रियाएँ व्यर्थ हैं। इस अपार घोर संसार-सागरमें निमग्न प्राणियोंद्वारा एक बार भी किया गया सूर्यनारायणकी भुक्तिको प्राप्त करा देता है<sup>१</sup>। भक्तिभावसे परिपूर्ण याज्ञवल्क्यके इन वचनोंको सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्न हो उठे और कहने लगे कि याज्ञवल्क्य ! आपने सूर्यनारायणकी आराधनाका जो उपाय पूछा है, उसका मैं वर्णन कर रहा हूँ, एकाग्रचित होकर आप सुनें।

**ब्रह्माजी बोले—**आदि और अन्तसे रहित, सर्वव्याप्त, परब्रह्म अपनी लीलासे प्रकृति-पुरुष-रूप धारण करके संसारको उत्पन्न करनेवाले, अक्षर, सृष्टि-रचनाके समय ब्रह्म, पालनके समय विष्णु और संहारकालमें रुद्ररूप रूप धारण करनेवाले सर्वदेवमय, पूज्य भगवान् सूर्यनारायण ही हैं। अब मैं भेदाभेदस्वरूप उन भगवान् सूर्यको प्रणाम करके उनकी आराधनाका वर्णन करूँगा, यह अत्यन्त गुप्त है, जिसे प्रसन्न होकर भगवान् भास्करने मुझसे कहा था।

**ब्रह्माजी पुनः बोले—**याज्ञवल्क्य ! एक बार मैंने भगवान् सूर्यनारायणकी स्तुति की। उस स्तुतिसे प्रसन्न होकर वे प्रत्यक्ष प्रकट हुए, तब मैंने उनसे पूछा कि महाराज ! वेद-वेदाङ्गोंमें और पुराणोंमें आपका ही प्रतिपादन हुआ है। आप द्रव्यत, अज तथा परब्रह्मस्वरूप हैं। यह जगत् आपमें ही स्थित है। गृहस्थाश्रम जिनका मूल है, ऐसे वे चारों आश्रमोंवाले रात-दिन आपकी अनेक मूर्तियोंका पूजन करते हैं। आप ही सबके माता-पिता और पूज्य हैं। आप किम देवताका ध्यान एवं पूजन करते हैं ? मैं इसे नहीं समझ पा रहा हूँ, इसे मैं सुनना चाहता हूँ, मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है।

**भगवान् सूर्यने कहा—**ब्रह्मन् ! यह अत्यन्त गुप्त बात है, किंतु आप मेरे परम भक्त हैं, इसलिये मैं इसका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ—वे परमात्मा सभी प्राणियोंमें व्याप्त, अचल,

नित्य, सूक्ष्म तथा इन्द्रियातीत हैं, उन्हें क्षेत्रज्ञ, पुरुष, हिरण्यगर्भ, महान्, प्रधान तथा बुद्धि आदि अनेक नामोंसे अभिहित किया जाता है। जो तैनों लोकोंके एकमात्र आधार हैं, वे निर्गुण होकर भी अपनी इच्छासे सगुण हो जाते हैं, सबके साक्षी हैं, स्वतः कोई कर्म नहीं करते और न तो कर्मफलकी प्राप्तिसे संलिप्त रहते हैं। वे परमात्मा सब ओर सिर, नेत्र, हाथ, पैर, नासिका, कान तथा मुखवाले हैं, वे समस्त जगत्को आच्छादित करके अवस्थित हैं तथा सभी प्राणियोंमें स्वच्छन्द होकर आनन्दपूर्वक विचरण करते हैं।

सुभासुभ कर्मरूप बीजबाला शरीर क्षेत्र कहलाता है। इसे जाननेके कारण परमात्मा क्षेत्रज्ञ कहलाता है। वे अव्यक्तपुरमें शयन करनेसे पुरुष, बहुत रूप धारण करनेसे विष्वरूप और धारण-पौषण करनेके कारण महापुरुष कहे जाते हैं। वे ही अनेक रूप धारण करते हैं। जिस प्रकार एक ही वायु शरीरमें प्राण-अपान आदि अनेक रूप धारण किये हुए है और जैसे एक ही अग्नि अनेक स्थान-भेदोंके कारण अनेक लपेटोंसे अभिहित की जाती है, उसी प्रकार परमात्मा भी अनेक भेदोंके कारण बहुत रूप धारण करते हैं। जिस प्रकार एक दीपसे हजारों दीप प्रज्वलित हो जाते हैं, उसी प्रकार एक परमात्मासे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है। जब वह अपनी इच्छासे संसारका संहार करता है, तब फिर एकत्रकी ही रह जाता है। परमात्माको छोड़कर जगत्में कोई स्थावर या जंगम पदार्थ नित्य नहीं है, क्योंकि वे अक्षय, अप्रमेय और सर्वज्ञ कहे जाते हैं। उनसे बढ़कर कोई अन्य नहीं है, वे ही पिता हैं, वे ही प्रजापति हैं, सभी देवता और असुर आदि उन परमात्मा भास्करदेवकी आराधना करते हैं और वे उन्हें सद्गति प्रदान करते हैं। वे सर्वगत होते हुए भी निर्गुण हैं। उसी आत्मस्वरूप परमेश्वरका मैं ध्यान करता हूँ तथा सूर्यरूप अपने आत्माका ही पूजन करता हूँ। हे याज्ञवल्क्य मुने ! भगवान् सूर्यने स्वयं ही ये बातें मुझसे कही थीं। (अध्याय ६६-६७)



## सूर्यनारायणके प्रिय पुष्प, सूर्यमन्दिरमें मार्जन-लेपन आदिका फल, दीपदानका फल तथा सिद्धार्थ-सप्तमी-व्रतका विधान और फल

**ब्रह्माजी बोले—**याज्ञवल्क्य ! एक बार मैंने भगवान्

सूर्यनारायणसे उनके प्रिय पुष्पोंके विषयमें जिज्ञासा की। तब उन्होंने कहा था कि मल्लिका- (बेल फूलकी एक जाति) पुष्प मुझे अत्यन्त प्रिय है। जो मुझे इसे अर्पण करता है, वह उत्तम भोगोंको प्राप्त करता है। मुझे श्वेत कमल अर्पण करनेसे सौभाग्य, सुगन्धित कुटज-पुष्पसे अक्षय ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है तथा मन्दार-पुष्पसे सभी प्रकारके कुष्ठ-रोगोंका नाश होता है और बिल्व-पत्रसे पूजन करनेपर विपुल सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है। मन्दार-पुष्पकी मालासे सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति, वकुल- (मौलसिरी-) पुष्पकी मालासे सपथकी कन्याका लब्ध, पलाशपुष्पसे अरिष्ट-शान्ति, अगस्त्य-पुष्पसे पूजन करनेपर (मेरा) सूर्यनारायणका अनुग्रह तथा करवीर- (कनैल-) पुष्प समर्पित करनेसे मैं अनुचर होनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। बेलके पुष्पसे सूर्यकी (मेरी) पूजा करनेपर मैं लोकाकी प्राप्ति होती है। एक हजार कमल-पुष्प चढ़ानेपर मैं (सूर्य) लोकमें निवास करनेका फल प्राप्त होता है। वकुल-पुष्प अर्पित करनेसे भानुलोक प्राप्त होता है। कस्तूरी, चन्दन, कुंकुम तथा कपूरके योगसे बनाये गये यक्षार्द्रम गन्धका लेपन करनेसे सद्गति प्राप्त होती है। सूर्यभगवान्‌के मन्दिरका मार्जन तथा उपलेपन करनेवाला सभी रोगोंसे मुक्त हो जाता है और उसे शीघ्र ही प्रचुर धनकी प्राप्ति होती है। जो भक्तिपूर्वक गेरुसे मन्दिरका लेपन करता है, उसे सम्पत्ति प्राप्त होती है और वह रोगोंसे मुक्ति प्राप्त करता है और यदि मृत्तिकासे लेपन करता है तो उसे अठारह प्रकारके कुष्ठरोगोंसे मुक्ति मिल जाती है।

सभी पुष्पोंमें करवीरका पुष्प और समस्त विलेपनोंमें रक्तचन्दनका विलेपन मुझे अधिक प्रिय है। करवीरके पुष्पोंमें जो सूर्यभगवान्‌की (मेरी) पूजा करता है, वह संसारके सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें स्वर्गलोकमें निवास करता है।

मन्दिरमें लेपन करनेके पश्चात् मण्डल बनानेपर सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। एक मण्डल बनानेसे अर्धकी प्राप्ति, दो मण्डल बनानेसे आरोग्य, तीन मण्डलकी रचना करनेसे अविच्छिन्न संतान, चार मण्डल बनानेसे लक्ष्मी, पाँच मण्डल बनानेसे विपुल धन-धान्य, छः मण्डलोंकी रचना करनेसे

आयु, बल और यश तथा सात मण्डलोंकी रचना करनेसे मण्डलका अधिपति होता है तथा आयु, धन, पुत्र और राज्यकी प्राप्ति होती है एवं अन्तमें उसे सूर्यलोक मिलता है।

मन्दिरमें घृतका दीपक प्रज्वलित करनेसे नेत्र-रोग नहीं होता। महुआके तेलका दीपक जलानेसे सौभाग्य प्राप्त होता है, तिलके तेलका दीपक जलानेसे सूर्यलोक तथा कड़ुआ तेलसे दीपक जलानेपर शत्रुओंपर विजय प्राप्त होती है।

सर्वप्रथम गन्ध-पुष्प-धूप-दीप आदि उपचारोंमें सूर्यका पूजन कर नाना प्रकारके नैवेद्य निवेदित करने चाहिये। पुष्पोंमें कमेली और कनेरके पुष्प, धूपोंमें विजय-धूप, गन्धोंमें कुंकुम, लेखोंमें रक्तचन्दन, दीपोंमें घृतदीप तथा नैवेद्योंमें मोदक भगवान् सूर्यनारायणको परम प्रिय हैं। अतः इन्हीं वस्तुओंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। पूजन करनेके पश्चात् प्रदक्षिणा और वामकर करके हाथमें श्वेत सरसोंका एक दाना और जल लेकर सूर्यभगवान्‌के सम्मुख खड़े होकर हृदयमें अभीष्ट कामनाका चिन्तन करते हुए सरसोंसहित जलको पी जाना चाहिये, परंतु दीपोंसे उसका स्पर्श नहीं हो। इसी प्रकार दूसरी सप्तमीको श्वेत सरप (पीली सरसों) के दो दाने जलके साथ पान करना चाहिये और इसी तरह सातवीं सप्तमीतक एक-एक दाना बढ़ाते हुए इस मन्त्रसे उसे अधिमन्त्रित करके पान करना चाहिये—

सिद्धार्थकस्त्यं हि लोके सर्वत्र क्षुपसे यथा ।

तथा मापयि सिद्धार्थमर्धतः कुरुतां रविः ॥

(भाग्य ६८/३६)

तदनन्तर शास्त्रोक्त रीतिसे जप और हवन करना चाहिये। यह भी विधि है कि प्रथम सप्तमीके दिन जलके साथ सिद्धार्थ (सरसों) का पान करे, दूसरी सप्तमीको घृतके साथ और आगे शहद, दही, दूध, गोमय और पञ्चगव्यके साथ क्रमशः एक-एक सिद्धार्थ चढ़ाते हुए सातवीं सप्तमीतक सिद्धार्थका पान करे। इस प्रकार जो सरप-सप्तमीका व्रत करता है, वह बहुल-सा धन, पुत्र और ऐश्वर्य प्राप्त करता है। उसकी सभी मनःकामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और वह सूर्यलोकमें निवास करता है। (अध्याय ३८)



## शुभाशुभ स्वप्न और उनके फल

**ब्रह्माजी बोले—**यज्ञवल्क्य ! जो व्यक्ति सप्तमीमें उपवास करके विधिपूर्वक सूर्यनारायणका पूजन, जप एवं हवन आदि क्रियाएँ सम्पन्नकर रात्रिके समय भगवान् सूर्यका ध्यान करते हुए प्रायन करता है, तब उसे रात्रिमें जो स्वप्न दिखायी देते हैं, उन स्वप्न-फलोक में अत्यन्त वर्णन कर रहा हूँ। यदि स्वप्नमें सूर्यका उदय, इन्द्रध्वज और वन्द्यता दिखायी दे तो सभी सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। माला पहने व्यक्ति, गाय या वंशीकी आवाज, श्वेत कमल, चामर, दर्पण, सोना, तलवार, पुत्रकी प्राप्ति, शरीरका थोड़ा या अधिक प्रज्ञामें निकलना तथा पान करना ऐसा स्वप्न देखनेसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। धृताक्त प्रजापतिके दर्शनसे पुत्र-प्राप्तिका फल होता है। स्वप्नमें प्रशस्त वृक्षपर चढ़े अथवा अपने मुखमें मँहिले, गो या सिंहकीका दोहन करे तो शीघ्र ही ऐश्वर्य प्राप्त होता है। सोने या चाँदीके पात्रमें अथवा कमल-पत्रमें जो स्वप्नमें खीर खाता है उसे बलकी प्राप्ति होती है। घृत, मद्य तथा युद्धमें विजयप्राप्तिका जो स्वप्न देवता है, वह सुख प्राप्त करता है। स्वप्नमें जो अग्नि-पान करता है, उसके जटाराशिकी वृद्धि होती है। यदि स्वप्नमें अपने अङ्ग-प्रणवित होते दिखायी दें और सिरमें पीड़ा हो तो सम्पत्ति मिलती है। श्वेत वर्णक वस्त्र, माला

और प्रशस्त पक्षीका दर्शन शुभ होता है। देवता-ब्राह्मण, आचार्य, गुरु, वृद्ध तथा तपस्वी स्वप्नमें जो कुछ कहते हैं, वह सत्य होता है<sup>१</sup>। स्वप्नमें सिरका कटना अथवा फटना, पैरोंमें खेड़ीका पड़ना, राज्य-प्राप्तिका संकेतक है। स्वप्नमें रोनेसे हर्षकी प्राप्ति होती है। घोड़ा, बैल, श्वेत कमल तथा श्रेष्ठ हाथीपर निहल होकर चढ़नेसे महान् ऐश्वर्य प्राप्त होता है। ग्रह और ताराओंका ग्रस्त देखे, पृथ्वीको उलट दे और पर्वतको उखाड़ फेंके तो राज्यका लब्ध होता है। पेटमें आँत निकले और उससे वृक्षको लपेटे, पर्वत-समुद्र तथा नदी पार करे तो अत्यधिक ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। सुन्दर स्त्रीके गोदमें बैठे और बहुत-सी स्त्रियाँ आशीर्वाद दें, शरीरको कीड़े भक्षण करें, स्वप्नमें स्वप्नका ज्ञान हो, अभीष्ट खात सुनने और कहनेमें आये तथा मङ्गलव्याक पदार्थोंका दर्शन एवं प्राप्ति हो तो धन और अरोग्यका लब्ध होता है। जिन स्वप्नोंका फल राज्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति है, यदि उन स्वप्नोंको रोगी देखता है तो वह रोगसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार रात्रिमें स्वप्न देखनेके पश्चात् प्राप्त-काल खानकर राजा-ब्राह्मण अथवा भोजकको अपना स्वप्न सुकन्य खादिये<sup>२</sup>।

(अध्याय ६९)

## सिद्धार्थ-(सर्प-)-सप्तमी-व्रतके उद्यापनकी विधि

**ब्रह्माजी बोले—**यज्ञवल्क्य ! सिद्धार्थ-सप्तमीके व्रतके अनन्तर दूसरे दिन स्नान-पूजन-जप तथा हवन आदि करके भोजक, पुराणवेत्ता और वेद-पारङ्गत ब्राह्मणोंको भोजन कराकर लाल वस्त्र, दुध देनेवाली गाय, उत्तम भोजन तथा जो-जो पदार्थ अपनेको प्रिय हों, वे सब मध्याह्नकालमें भोजकोंको दान देने चाहिये। यदि भोजक न प्राप्त हो सके तो पौराणिकको और पौराणिक न मिल सके तो सामवेद जानने-वाले मन्त्रविद् ब्राह्मणको वे सभी वस्तुएँ देनी चाहिये। मुने !

यह सिद्धार्थ-सप्तमीके उद्यापनकी संक्षिप्त विधि है।

इस प्रकार शक्तिपूर्वक सात सप्तमीका व्रत करनेसे अनन्त सुखकी प्राप्ति होती है और उस अधमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। इस व्रतसे सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। गरुड़को देखकर सर्प आदिकी तरह कुछ आदि सभी रोग इसके अनुष्ठानसे दूर भागते हैं। व्रत-नियम तथा तप करके सात सप्तमीको व्रत करनेसे मनुष्य विद्या, धन, पुत्र, भाग्य, आरोग्य और धर्मको तथा अन्त समयमें सूर्यरोषणकी प्राप्त कर लेता है।

१-देवद्विजनाचर्यगुरुबृद्धाचार्यम्- ॥

यच्छदनि तत्सर्वं सत्यमेव हि निर्दिशेत् । (ब्रह्मपर्व ६९। १४-१५)

२-प्राप्त तथा विदेशमें भी बैठने आदिके 'विश्लेषी' अर्थ होता है। वृत्तविश्लेष 'सप्तम्याय' ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध है। वाल्मीकीय रामायणमें विश्लेषके अर्थका वर्णन भोज है। अर्थका योग्य अर्थ समझ है। सभीके संयुक्त अध्ययनसे साधकोंको विशेष लाभ हो सकता है।

इस सप्तमी-व्रतकी विधिक्र जो श्रवण करता है अथवा उसे पढ़ता है, वह भी सूर्यनारायणमें लीन हो जाता है। देवता और मुनि भी इस व्रतके माहात्म्यको सुनकर सूर्यनारायणके भक्त हो गये हैं। जो पुरुष इस आख्यानका स्वयं श्रवण करता है अथवा दूसरेको सुनाता है तो वे दोनों सूर्यलोकको जाते हैं। रोगी यदि इसका श्रवण करे तो रोगमुक्त हो जाता है। इस व्रतकी जिज्ञासा रखनेवाला भक्त अभिलषित इच्छाओंको प्राप्त करता है और सूर्यलोकको जाता है। यदि इस आख्यानको पढ़कर यात्रा की जाय तो मार्गमें विघ्न नहीं आते और यात्रा सफल होती है। जो कोई भी जिस फलार्थकी कामना करता है,

वह उसे निश्चित प्राप्त कर लेता है। गर्भिणी स्त्री इस आख्यानको सुने तो वह सुखपूर्वक पुत्रको जन्म देती है, बच्चा सुने तो संतान प्राप्त करती है। याज्ञवल्क्य ! यह सब कथा सूर्यनारायणने मुझसे कही थी और मैंने आपको सुना दी और अब आप भी भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणकी आराधना करें, जिससे सभी फलक नष्ट हो जायें। उदित होते ही जो अपनी किरणोंसे संसारका अन्धकार दूरकर प्रकाश फैलते हैं, वे द्वादशरत्ना सूर्यनारायण हो जगत्के माता-पिता तथा गुरु हैं, उदित-पुत्र भगवान् सूर्य आपका प्रसन्न हो।

(अध्याय ७०)

### ब्रह्माद्वारा कहा गया भगवान् सूर्यका नाम-स्तोत्र

ब्रह्माजी बोले—याज्ञवल्क्य ! भगवान् सूर्य जिन नामोंके सतवनसे प्रसन्न होते हैं, मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ—

नमः सूर्याय नित्याय रक्षयेऽर्क्षाय भानवे ।  
भास्कराय पराङ्गाय मार्तण्डाय विवस्वते ॥  
नित्य, रवि, अर्क, भानु, भास्कर, पराङ्ग, मार्तण्ड तथा विवस्वान् नामोंसे युक्त भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार है।  
आदित्यायश्चिदेवाय नमस्ते रश्मिधराग्निने ।  
दिवाकराय दीप्ताय अग्रये मिहिराय च ॥  
आदितेय, रश्मिमाली, दिवाकर, दीप्त, अग्नि तथा मिहिर नामक भगवान् आदित्यको मेरा नमस्कार है।

प्रभाकराय मित्राय नमस्तेऽग्निनिःसृज्य ।  
नमो गोपतये नित्यं दिशो च पतये नमः ॥  
हे अदितिके पुत्र भगवान् सूर्य ! आप प्रभाकर, मित्र, गोपति (किरणोंके स्वामी) तथा दिव्यपति नामवाले हैं, आपको मेरा नित्य नमस्कार है।

नमो धात्रे विधात्रे च अर्पणे वरुणाय च ।  
पूष्णे भगाय मित्राय पर्जन्याद्योशवे नमः ॥  
धाता, विधाता, अर्पण, वरुण, पूषा, भग, मित्र, पर्जन्य, अंशुमान् नामवाले भगवान् सूर्यको मेरा प्रणाम है।

नमो हितकृते नित्यं धर्माय तपनाय च ।  
हरये हरिताडाय विद्यस्य पतये नमः ॥  
हितकृत् (संसारका कल्याण करनेवाले), धर्म, तपन, हरि, हरिताड (हरे रंगके अश्ववाले), विद्यपति भगवान्

सूर्यको नित्य मेरा नमस्कार है।

विष्णवे ब्रह्मणे नित्यं ब्रह्मकाय तवात्मने ।  
नमस्ते सप्तलोकेश नमस्ते सप्तसप्तये ॥  
विष्णु, ब्रह्मा, ब्रह्मक (शिव), आत्मस्वरूप, सप्तसप्त, हे सप्तलोकेश ! आपको मेरा नमस्कार है।

एकस्मै हि नमस्तुभ्यमेकचक्रवाय च ।  
ज्योतिषो पतये नित्यं सर्वप्राणभृते नमः ॥  
अद्वितीय, एकचक्रवर्ण (जिनके रथमें एक ही चक्र है), ज्योतिष्पति, हे सर्वप्राणभृत् (सभी प्राणियोंका धरण-पोषण करनेवाले) ! आपको मेरा नित्य नमस्कार है।

हिताय सर्वभूतानां शिवायार्तिहराय च ।  
नमः पद्मप्रबोधाय नमो वेदादिपूर्तये ॥  
समस्त प्राणिजगत्का हित करनेवाले, शिव (कल्याणकारी) और आर्तिहर (दुःखविनाशी), पद्मप्रबोध (कमलोंको विकसित करनेवाले), वेदादिपूर्ति भगवान् सूर्यको नमस्कार है।

काशिराज नमस्तुभ्यं नमस्तारासुताय च ।  
धीमजाय नमस्तुभ्यं पावकाय च वै नमः ॥  
प्रजापतिशेखर स्वामी महर्षि कश्यपके पुत्र ! आपको नमस्कार है। भीमपुत्र तथा पावक नामवाले तारासुत ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

धिष्ण्याय नमो नित्यं नमः कृष्णाय नित्यदा ।  
नमोऽस्त्वदितिपुत्राय नमो लक्ष्म्याय नित्यशः ॥

धिष्ण, कृष्ण, अदितिपुत्र तथा लक्ष्म नामवाले भगवान् सूर्यको बार-बार नमस्कार है।

**ब्रह्माजीने कहा—**याज्ञवल्क्य ! जो मनुष्य सायंकाल और प्रातःकाल इन नामोंका पवित्र होकर पाठ करता है, वह मेरे समान ही मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त करता है। इस नाम-स्तोत्रसे सूर्यकी आराधना करनेपर उनके अनुग्रहसे धर्म,

अर्थ, काम, आशेय, राज्य तथा विजयकी प्राप्ति होती है। यदि मनुष्य बन्धनमें हो तो इसके पाठसे बन्धनमुक्त हो जाता है। इसके जप करनेसे सभी पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। यह जो सूर्य-स्तोत्र मैंने कहा है, वह अत्यन्त रहस्यमय है।

(अध्याय ७१)



### जम्बुद्वीपमें सूर्यनारायणकी आराधनाके तीन प्रमुख स्थान, दुर्वासा मुनिका साम्बको शाप देना

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! ब्रह्माजीसे इस प्रकार उपदेश प्राप्तकर याज्ञवल्क्य मुनिने सूर्यभगवान्की आराधना की, जिसके प्रभावसे उन्हें सालोव्य-मुक्ति प्राप्त हुई। आत-भगवान् सूर्यकी उपासना करके आप भी उस देखदुर्लभ मोक्षको प्राप्त कर सकेंगे।

**राजा शतानीकने पूछा—**पुने ! जम्बुद्वीपमें भगवान् सूर्यदेवका आदि स्थान कहाँ है ? जहाँ विधिपूर्वक आराधना करनेसे शीघ्र ही मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति हो सके।

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! इस जम्बुद्वीपमें भगवान् सूर्यनारायणके मुख्य तीन स्थान हैं<sup>१</sup>। प्रथम इन्द्रवन है, दूसरा मुण्डीर तथा तीसरा तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध कालीप्रिय (कालपी) नामक स्थान है। इस द्वीपमें इन तीनोंके अतिरिक्त एक अन्य स्थान भी ब्रह्माजीने बतलाया है, जो चन्द्रभागा नदीके तटपर अवस्थित है, जिसको साम्बपुर भी कहा जाता है, यहाँ भगवान् सूर्यनारायण साम्बकी भक्तिसे प्रसन्न होकर लोककल्याणके लिये अपने द्वादश रूपोंमेंसे मित्र-रूपमें निवास करते हैं। जो भक्तिपूर्वक उनका पूजन करता है, उसको वे स्वीकार करते हैं।

**राजा शतानीकने पुनः पूछा—**महामुने ! साम्ब कौन है ? किसका पुत्र है ? भगवान् सूर्यने उसके ऊपर अपनी कृपा क्यों की ? यह भी आप बतानेकी कृपा करें।

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! संसारमें द्वादश अदित्य प्रसिद्ध हैं, उनमेंसे धिष्णु नामके जो अदित्य हैं, वे इस जगत्में

वासुदेव श्रीकृष्णरूपमें अवतीर्ण हुए। उनकी जाम्बवती नामकी पत्नीमें महाबलशाली साम्ब नामक पुत्र हुआ। वह शापवश कुष्ठ-रोगसे ग्रस्त हो गया। उससे मुक्त होनेके लिये उसने भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना की और उसीने अपने नामसे साम्बपुर<sup>२</sup> नामक एक नगर बसाया और यहींपर भगवान् सूर्यनारायणकी प्रथम प्रतिमा प्रतिष्ठापित की।

**राजा शतानीकने पूछा—**महाराज ! साम्बके द्वारा ऐसा कौन-सा अपराध हुआ था, जिससे उसे इतना कठोर शाप मिला। बोझमें अपराधपर तो शाप नहीं मिलता।

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! इस वृत्तान्तका वर्णन हम संक्षेपमें कर रहे हैं, आप सावधान होकर सुनें। एक समय रुद्रके अवतारभूत दुर्वासा मुनि तीनों लोकोंमें विचरण करते हुए द्वारकपुरीमें आये, परन्तु पीले-पीले नेत्रोंमें युक्त कृश-शरीर, आयत्त विकृत रूपवाले दुर्वासाको देखकर साम्ब अपने सुन्दर स्वरूपके अहंकारमें आकर उनके देखने, चलने आदि चेष्टाओंकी नकल करने लगे। उनके मुखके समान अपना ही विकृत मुख बनाकर उनकी भाँति चलने लगे। यह देखकर और 'साम्बको रूप तथा यौवनका अत्यन्त अधिमान है' यह समझकर दुर्वासा मुनिके अत्यधिक क्रोध हो आया। वे क्रोधसे जलित हुए यह कह उठे—'साम्ब ! मुझे कुरूप और अपनेको अति रूपसम्पन्न मानकर तूने मेरा परिहास किया है। जा, तू शीघ्र ही कुष्ठरोगसे ग्रस्त हो जायगा।'।

१-इन तीनों स्थानोंकी विवेचन आकस्मिकीके लिये 'कल्याण'के ५३वें वर्षके विशेषाङ्क 'सूर्यहू' का 'तीन प्रसिद्ध सूर्य-पवित्र' नामक अन्तिम लेख देखना चाहिये।

२-यही नगर आगे चलकर 'मूलस्थान' पुनः पुनित्य शब्दमें 'मुत्तान' रूपसे प्रसिद्ध हुआ, जो आज पाकिस्तानमें लखौके पश्चिम भागमें स्थित है।

सर्वसौख्यदम् • पुराणं परमं पुण्यं भविष्यं सर्वसौख्यदम् • संक्षिप्त भविष्यपुराणम्

ऐसे ही एक बार पुनः परिहास किये जानेके कारण दुर्वासा मुनिको फिर डाप देना पड़ा और उसी डापके फलस्वरूप साम्बसे लोहेका एक मूसल उत्पन्न हुआ, जो समस्त यदुवंशियोंके विनाशका कारण बना।

अतः देवता, गुरु और ब्राह्मण आदिकी अवज्ञा बुद्धिमान् पुरुषको कभी नहीं करनी चाहिये। इन लोगोंके समस्त सदैव विनम्र ही बना रहना चाहिये और सदा मधुर वाणी ही बोलनी चाहिये। राजन् ! ब्रह्माजीने भगवान् शिवके सम्मुख जो दो श्लोक पढ़े थे, क्या उनको आपने सुना नहीं है ?

यो धर्मशीलश्चे जितमानसोऽथो विद्याधिनोऽथ न परोपतापी ।  
श्वदारतुष्टः परदारवर्जितो न तस्य श्लोके भयमस्ति किञ्चित् ॥  
न तथा प्रसी न सरिल्लं न चन्दनं नैव शीतलच्छाया ।  
प्रह्लादवति पुरुषे यथा हिता मधुरभाषिणी वाणी ॥

(आठवें ७३ : ४३-४८)

(अध्याय ७२-७३)

### सूर्यनारायणकी द्वादश मूर्तियोंका वर्णन

राजा शालतानीकने कहा—महामुने ! साम्बके द्वारा चन्द्रभागा नदीके तटपर सूर्यनारायणकी जो स्थापना की गयी है, वह स्थान आदिकालसे तो नहीं है, फिर भी आप उस स्थानके माहात्म्यका इतना वर्णन कैसे कर रहे हैं ? इसमें मुझे संदेह है।

सुभन्तु मुनि बोले—भारत ! वहाँपर सूर्यनारायणका स्थान तो सनातन-कालसे है। साम्बने उस स्थानकी प्रतिष्ठा तो बादमें की है। इसका हम संक्षेपमें वर्णन करते हैं। आप प्रेमपूर्वक उसे सुने—

इस स्थानपर परमब्रह्मस्वरूप जगत्स्वामी भगवान् सूर्य-नारायणने अपने मित्ररूपमें तप किया है। ये ही अव्यक्त परमात्मा भगवान् सूर्य सभी देवताओं और प्रजाओंकी सृष्टि करके स्वयं बारह रूप धारण कर आदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए। इसीसे उनका नाम आदित्य पड़ा। इन्द्र, प्राता, पर्जन्य, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, अंशु, विष्णु, वरुण तथा मित्र—ये सूर्य भगवान्की द्वादश मूर्तियाँ हैं। इन सबसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। इनमेंसे प्रथम इन्द्र नामक मूर्ति देवराजमें स्थित है, जो सभी दैत्यों और दानवोंका संहार करती है। दूसरी भाता नामक मूर्ति प्रजापतिमें स्थित होकर सृष्टिकी

‘जो धर्मात्मा है तथा जिसने सम्मान एवं क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली है, विद्यासे युक्त और विनम्र है, दूसरेको संताप नहीं देता, अपनी स्त्रीसे संतुष्ट है तथा परायी स्त्रीका परित्याग करनेवाला है, ऐसे मनुष्यके लिये संसारमें किञ्चिन्मात्र भी भय नहीं है।’

‘पुरुषको चन्द्रमा, जल, चन्दन और शीतल छाया वैसा आनन्दित नहीं कर पाते हैं, जैसा आनन्द उसे हितकारी मधुर वाणी सुननेसे प्राप्त होता है।’

राजन् ! इस प्रकार दुर्वासा मुनिके शापसे साम्बको कुष्ठरोग हुआ था। तदनन्तर उसने भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना करके पुनः अपने सुन्दर रूप तथा आरोग्यको प्राप्त किया और अपने नामका साम्बपुर नामक एक नगर बसाकर उसमें भगवान् सूर्यको प्रतिष्ठापित किया।

रचना करती है। तीसरी पर्जन्य नामक मूर्ति किरणोंमें स्थित होकर अमृतवर्षा करती है। पूषा नामक चौथी मूर्ति मनोमें अवस्थित होकर प्रजापोषणका कार्य करती है। पाँचवीं त्वष्टा नामकी जो मूर्ति है, वह वनस्पतियों और औषधियोंमें स्थित है। छठी मूर्ति अर्यमा प्रजाकी रक्षा करनेके लिये पुरोमें स्थित है। सातवीं भग नामक मूर्ति पृथ्वी और पर्वतोंमें विद्यमान है। आठवीं विवस्वान् नामक मूर्ति अग्निमें स्थित है और वह प्राणियोंके भक्षण किये हुए अन्नको पचाती है। नवीं अंशु नामक मूर्ति चन्द्रमामें अवस्थित है, जो जगत्को आप्लावित करता है। दसवीं विष्णु नामक मूर्ति दैत्योंका नाश करनेके लिये सदैव अवतार धारण करती है। ग्यारहवीं वरुण नामकी मूर्ति समस्त जगत्की जीवनदायिनी है और समुद्रमें उसका निवास है। इसीलिये समुद्रको वरुणालय भी कहा जाता है। बारहवीं मित्र नामक मूर्ति जगत्का कल्याण करनेके लिये चन्द्रभागा नदीके तटपर विराजमान है। यहाँ सूर्यनारायणने मात्र वायु-पान करके तप किया है और मित्र-रूपसे यहाँपर अवस्थित है, इसीलिये इस स्थानको मित्रपद (मित्रवन) भी कहते हैं। ये अपनी कृपामयी दृष्टिसे संसारपर अनुग्रह करते हुए भक्तोंको भाँति-भाँतिके वर देकर संतुष्ट करते रहते हैं। यह स्थान



पुण्यप्रद है। महाबाहो ! यहीपर अमित तेजस्वी साम्बने सूर्यनारायणकी आराधना करके मनोवाञ्छित फल प्राप्त किया है। उनकी प्रसन्नता और आदेशसे साम्बने वहाँ भगवान् सूर्यके

प्रतिष्ठापित किया। जो पुरुष भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको प्रणाम करता है और श्रद्धा-भक्तिसे उनकी आराधना करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है। (अध्याय ७४)

## देवर्षि नारदद्वारा सूर्यके विराटरूप तथा उनके प्रभावका वर्णन

सुमन्तुजी बोले—एजन् ! भयंकर कुष्ठरोगका शय प्राप्तकर दुःखित हो साम्बने अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—तात ! मेरा यह कष्ट कैसे दूर होगा ? कृपाकर इसका उपाय आप बताये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वत्स ! तुम भगवान् सूर्यकी आराधना करो, उससे तुम्हारा यह कुष्ठरोग दूर हो जायगा। तुम देवर्षि नारदद्वारा सूर्यनारायणके आराधना-विधानकी शिक्षा प्राप्त करो। वे प्रसन्न होकर तुम्हें विश्वाससे उनकी आराधनाका विधान बतलावेंगे।

एक दिन नारदजी द्वारकापुरीमें भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये आये। उसी समय साम्बने अत्यन्त विनम्र भावसे जाकर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की। महामुने ! मैं आपकी शरण हूँ, आप मेरे ऊपर कृपाकर कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे मेरा शरीर कुष्ठरोगसे मुक्त हो सके और मेरा कष्ट दूर हो जाय।

नारदजीने कहा—साम्ब ! सभी देव जिनकी स्तुति करते हैं, उनकीच तुम भी पूजन करो। उनकीच कृपासे तुम रोगसे मुक्त हो जाओगे।

साम्बने पूछा—महाराज ! देवगण किसका पूजन और स्तवन करते हैं ? आप ही उसे भी बतायें, जिससे मैं उनकी शरणमें जा सकूँ। यह शापाग्नि मुझे दग्ध कर रही है। ऐसे कौन देवता हैं, जो कृपा करके मुझे इस विपत्तिसे मुक्त करा सकेंगे ?

नारदजीने कहा—पुत्र ! समस्त देवताओंके पूज्य, नमस्कार करने योग्य और निरन्तर स्तुत्य भगवान् सूर्यनारायण ही हैं। तुम उनके प्रभावको सुनो—

किसी समय समस्त लोकोंमें विचरण करता हुआ मैं सूर्यलोकमें पहुँचा। वहाँ मैंने देखा कि देवता, गन्धर्व, नाग, यक्ष, राक्षस और अप्सराएँ सूर्यनारायणकी सेवामें लगे हुए हैं। गन्धर्व गीत गा रहे हैं और अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं। राक्षस-यक्ष तथा नाग शस्त्र धारण करके उनको रक्षके लिये

खड़े हैं। श्रवण, यजुर्वेद एवं सामवेद मूर्तिमान् स्वरूप धारण कर स्वयं स्तुति कर रहे हैं और श्रविण भी वेदोंकी श्रुचाओंसे उनका स्तवन कर रहे हैं। मूर्तिरूपमें प्रातः, मध्याह्न और सायंकालकी तीनों सुन्दर रूपवाली संध्याएँ हाथमें यज्ञ तथा बाण धारण किये हुए सूर्यनारायणके चारों ओर स्थित हैं। प्रातः-संध्या रक्तवर्णकी है, मध्याह्न-संध्या चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णकी एवं सायं-संध्या मंगलके समान वर्णवाली है। आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत् तथा अश्विनीकुमार आदि सभी देवगण तीनों संध्याओंमें उन भगवान् सूर्यका पूजन करते हैं। इन्द्र सदैव वहाँ खड़े होकर भगवान् सूर्यकी जय-जयकार करते रहते हैं। गरुडका ज्येष्ठ भ्राता अरुण उनका सारथि है। वह कालके अवयवोंसे निर्मित उनके रथका संचालक है। हर वर्णके छन्दरूप सप्त अश्व उनके रथमें जुते हुए हैं। राक्षी तथा निक्षुभा नामकी दो पत्नियाँ उनके दोनों ओर बैठी हुई हैं। सभी देवता हाथ जोड़कर चारों ओर खड़े हैं। पिगल, लेखक, दण्डनायक आदिगण तथा कल्पाय नामक दो पक्षी द्वारपालके रूपमें उनकी सेवामें लगे हुए हैं। दिण्डी उनके सामने तथा जह्वा आदि सभी देवता उनको स्तुति कर रहे हैं।

भगवान् सूर्यनारायणका ऐसा प्रभाव देखकर मैंने सोचा कि यही देव है, जो समस्त देवताओंके पूज्य हैं। साम्ब ! तुम उनकीच शरणमें जाओ।

साम्बने पूछा—महाराज ! मैं भलीभाँति यह जानना चाहता हूँ कि सूर्यनारायण सर्वगत कैसे हैं ? उनकी कितनी रश्मियाँ हैं ? कितनी मूर्तियाँ हैं ? राक्षी तथा निक्षुभा नामकी ये दोनों भार्याएँ कौन हैं ? पिगल, लेखक और दण्डनायक वहाँ क्या कार्य करते हैं ? कल्पाय, पक्षी कौन हैं ? उनके आगे स्थित रहनेवाला दिण्डी कौन है ? और वे कौन-कौन देवता हैं, जो उनके चतुर्दिक् खड़े रहते हैं ? आप इन सबका तत्त्वतः अच्छी तरहसे वर्णन करें, जिससे मैं भी सूर्यनारायणके प्रभावको जानकर उनकी शरणमें जा सकूँ।

नारदजीने कहा—साम्ब ! अब मैं सूर्यनारायणके माहात्म्यका वर्णन कर रहा हूँ। तुम उसे प्रेमपूर्वक सुनो—

विवस्वान् देव अथ्यक्त कारण, नित्य, सत् एवं असत्-स्वरूप है। जो तत्त्वचिन्तक पुरुष है, वे उनकी प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं। वे गन्ध, वर्ण तथा रससे होन एवं शब्द और स्पर्शसे रहित हैं। वे जगत्की योनि हैं तथा सनातन परब्रह्म हैं। वे सभी प्राणियोंके नियन्ता हैं। वे अनादि, अनन्त, अज, सूक्ष्म, त्रिगुण, निराकार तथा अविशेष्य हैं, उन्हें परमपुरुष कहा जाता है। उन्हीं महात्मा भगवान् सूर्यसे यह सब जगत् परिख्यात है। उन परमेश्वरकी प्रतिमा ज्ञान एवं वैराग्य-लक्षणावाली है। उनकी बुद्धि धर्म एवं ऐश्वर्यके प्रदान करनेवाली ब्राह्मी बुद्धि कही जाती है। उन अथ्यक्तकी जो भी इच्छा होती है, वही सब उत्पन्न होता है। वे ही सृष्टिके समय चतुर्मुख ब्रह्मा बन जाते हैं और प्रलयके समय कालरूप हो जाते हैं। पालनके समय वे ही पुरुष विष्णुरूप ग्रहण कर लेते हैं। स्वयम्भू पुरुषकी ये तीनों अवस्थाएँ उनके तीन गुणोंके अनुसार हैं। वे आदिदेव होनेके कारण आदित्य तथा अज्ञात होनेके कारण अज कहे गये हैं। देवताओंमें महान् होनेसे वे महादेव कहे गये हैं। समस्त लोकोंके ईश होने तथा अश्वेश होनेके कारण वे ईश्वर कहे गये हैं। बृहत् होनेसे ब्रह्मा तथा भवत्व होनेसे भव कहे जाते हैं। वे समस्त प्रजाओंकी रक्षा और पालन करते हैं, इसलिये प्रजापति कहे गये हैं। पुरमे शयन करनेसे 'पुरुष,' उत्पाद्य न होने और अपूर्व होनेसे 'स्वयम्भू' नामसे प्रसिद्ध हैं। हिरण्यगर्भमे रहनेके कारण वे हिरण्यगर्भ कहे जाते हैं। ये दिशाओंके स्वामी, प्रहोके ईश, देवताओंके भी देवता होनेसे देवदेव तथा दिव्यकर भी कहे जाते हैं। तत्त्वद्रष्टा ऋषिर्षेणि अप्को नार कहा है, यह अप् इनका आश्रय है, इसीलिये 'आप्' नारायण कहे गये हैं। 'अर' यह शीघ्रतावाचक शब्द है। 'आप्' ही समुद्र-रूप धारण करनेपर फिर उसमें शीघ्रता नहीं रहती, इसीके कारण उसे नार कहते हैं। प्रलयकालमें सभी स्थावर-जंगम नष्ट हो जाते हैं। जब सम्पूर्ण जगत् समुद्रके समान एकाकार हो जाता है, तब वे पुरुष नारायणरूप धारण करके उस समुद्रमें शयन करते हैं। वे पुरुष वेदोंमें सहस्रो सिरों, सहस्रो भुजाओं, सहस्रो नेत्रों तथा सहस्रो चरणोंवाले कहे गये हैं। वे ही देवताओंमें प्रथम देवता

तथा जगत्की रक्षा करनेवाले हैं।

**नारदजीने पुनः कहा—**साम्ब ! सहस्रयुगके समान अपनी रात्रि बिताकर प्रभात होते ही उन पुरुषने जब सृष्टि रचनेकी इच्छा की, तब उन्होंने देखा कि सम्पूर्ण पृथ्वी जलमें डूबी हुई है। तदनन्तर उन्होंने बराहरूप धारण करके महासागरके जलमें निमग्न पृथ्वीका उद्धार किया। उस समय उनका वेदमय शरीर कम्पित हो उठा और रोमोंमें स्थित महर्षिगण उनकी स्तुति करने लगे। पुनः ब्रह्माका रूप धारण करके वे सृष्टिकी रचना करने लगे। उन्होंने सर्वप्रथम अपने ही समान अपने मनसे मुद्ग-सहित श्रेष्ठ दस मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया। जिनके नाम हैं—भृगु, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, दक्ष एवं वसिष्ठ—इन प्रजापतियोंकी सृष्टि करनेके बाद प्रजाओंकी हित-कामनासे वे ही सूर्यनारायण देवी आदितिके पुत्र-रूपमें स्वयं प्रदुर्भूत हुए। मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। दक्षकी कन्या आदितिका विवाह महर्षि कश्यपके साथ हुआ। उसने 'भूर्भुवः स्वः' से संयुक्त एक अण्ड उत्पन्न किया, जिससे द्वादशात्मा भगवान् सूर्य प्रकट हुए। इस सूर्यमण्डलका व्यास चौ हजार योजन है। सत्ताईस हजार योजन उसकी परिधि है। जिस प्रकार कटम्बका पुष्प चारों ओर केदारोंसे व्याप्त रहता है, उसी प्रकार सूर्यमण्डल अपनी किरणोंसे परिख्यात रहता है। वह सहस्रो सिरवाला पुरुष जिसको परमात्मा कहते हैं, इस तेजोमय मण्डलके मध्य स्थित है। वह अपनी सहस्र किरणोंद्वारा नदी, समुद्र, इद, कूप आदिसे जलको ग्रहण कर लेता है। सूर्यकी प्रभा (तेज) रात्रिके समय अग्रिममें प्रवेश कर जाती है, इसीलिये रात्रिमें अग्नि दूरसे ही दिखायी देने लगती है। सूर्योदयके समय वही प्रभा पुनः सूर्यमें प्रविष्ट हो जाती है। प्रकाशत्व और उष्णत्व—ये दोनों गुण सूर्यमें तथा अग्रिममें भी हैं। इस प्रकार सूर्य और अग्नि एक दूसरेको आप्यायित किया करते हैं।

साम्ब ! हेति, किरण, गौ, रश्मि, गभस्ति, अभीषु, घन, उग्र, वसु, मरीचि, नाडी, दीर्घति, साध्य, मयूख, भानु, अंशु, सप्तारि, सुपर्ण, कर तथा घट—ये बीस भगवान् सूर्यकी किरणोंके नाम कहे गये हैं, जो संख्यामें एक हजार हैं। इनमेंसे चार सौ किरणें वृष्टि करती हैं, जिनका नाम चन्दन है। इन किरणोंका स्वरूप अमृतमय है। तीन सौ किरणें हिमको वहन

करती है। उनका नाम चन्द्र है और वर्ण श्वेत है। शेष तीन सौ शृङ्ग नभखाली किरणें धूपकी सृष्टि करती हैं, ये सभी किरणें ओषधियों, स्वधा तथा अमृतके रूपमें मनुष्यों, पितरों तथा देवताओंको सदा संतुष्ट करती रहती हैं। ये द्वादशत्मा काल-स्वरूप सूर्यदेव तीनों लोकोंमें अपने तेजसे तपते रहते हैं। ये ही ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव हैं। ऋक्, यजुः एवं साम—ये तीनों वेद भी ये ही हैं। प्रातःकालमें ऋग्वेद, मध्याह्नकालमें यजुर्वेद तथा संध्याकालमें सामवेद इनकी सृष्टि करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवके द्वारा इनका पूजन नियत होता रहता है। जिस प्रकार वायु सर्वगत है, उसी प्रकार सूर्यकी किरणें भी सर्वव्याप्त हैं। तीन सौ किरणोंके द्वारा भूतलक प्रकाशित होता रहता है। इसके पश्चात् जो शेष किरणें हैं, वे तीन-तीन सौकी संख्यामें शेष अन्य दोनों लोकों (भूतलक और स्वर्गलक) को प्रकाशित करती हैं। एक सौ किरणोंसे पाताल प्रकाशित होता है। ये नक्षत्र, षड् तथा चन्द्रमादि ग्रहोंके अधिपति हैं। चन्द्रमा, मह, नक्षत्र तथा तारागणोंमें सूर्यनारायणका ही प्रकाश है। इनकी एक सहस्र किरणोंमें ग्रहसंज्ञक सात किरणें मुख्य हैं, जिन्हें सुबुध्म, हरिकेश, विश्वकर्मा, सूर्य, रविम, विष्णु और सर्वबन्धु कहा जाता है।

सम्पूर्ण जगत्के मूल भगवान् आदित्य ही हैं। इन्द्र आदि देवता इन्हींसे उत्पन्न हुए हैं। देवताओं तथा जगत्का सम्पूर्ण तेज इन्हींका है। अग्निमें दी गयी आहुति सूर्यनारायणको ही प्राप्त होती है। इसलिये आदित्यसे ही वृष्टि उत्पन्न होती है। वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है तथा अन्नसे प्रजाका फलन होता है। ध्यान करनेवाले लोगोंके लिये ध्यान-रूप और मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छासे आराधना करनेवाले लोगोंके लिये ये मोक्षस्वरूप हैं। क्षण, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर तथा युगकी कल्पना सूर्यनारायणके बिना सम्भव नहीं है। काल-नियमके बिना अग्निहोत्रादि कर्म नहीं हो सकते।

ऋतु-विभागके बिना पुष्प-फल तथा मूलकी उत्पत्ति सम्भव

नहीं है। उनके न रहनेसे तो जगत्के सम्पूर्ण व्यवहार ही नष्ट हो जाते हैं। सूर्यनारायणके सामान्य द्वादश नाम इस प्रकार हैं—आदित्य, सर्वता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रतापन, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिव्यकर और रवि। विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विश्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा तथा पर्जन्य—ये द्वादश आदित्य हैं। चैत्रादि बारह माहोंमें ये द्वादश आदित्य उदित रहते हैं। चैत्रमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विश्वान्, आषाढ़में अंशुमान्, श्रावणमें पर्जन्य, भाद्रपदमें वरुण, आश्विनमें इन्द्र, कार्तिकमें धाता, मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भग और फाल्गुनमें त्वष्टा नामके आदित्य तपते हैं।

उत्तरायणमें सूर्य-किरणें वृद्धिको प्राप्त करती हैं और दक्षिणायनमें वह किरण-वृद्धि घटने लगती है। इस प्रकार सूर्य-किरणें लोकपेक्षामें प्रवृत्त रहती हैं। जैसे स्पष्टिकमें विभिन्न रंगोंके प्रविष्ट होनेसे वह अनेक वर्णका दिखायी देता है, जैसे एक ही घण्टा आकाशमें अनेक रूपोंका हो जाता है तथा गुण-विशेषसे जैसे आकाशमें गिरा हुआ जल भूमिके रस-वैशिष्ट्यसे अनेक स्वाद और गुणबाला हो जाता है, जिस प्रकार एक ही अति ईंधन-भेदके कारण अनेक रूपोंमें विभक्त हो जाती है, जैसे वायु पदार्थोंके संयोगसे सुगन्धित और दुर्गन्धयुक्त हो जाती है, जैसे गुहाप्रदेशोंमें भी अनेक नाम हो जाते हैं, उसी प्रकार एक सूर्यनारायण ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि अनेक रूप धारण करते हैं, इसलिये इनकी ही भक्ति करनी चाहिये। इस प्रकार जो सूर्यनारायणको जानता है, वह रोग तथा पापोंसे शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

कभी पुरुषकी सूर्यनारायणके प्रति भक्ति नहीं होती। इसलिये सात्व ! तुम सूर्यनारायणकी आराधना करो, जिससे तुम इस भयंकर व्याधिसे मुक्त होकर सभी कामनाओंको प्राप्त कर लगे।

(अध्याय ७५—७८)



## भगवान् सूर्यका परिवार

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! साम्बने नारदजीसे पुनः

कहा—महामुने ! आपने भगवान् सूर्यनारायणके अत्यन्त आनन्दप्रद माहात्म्यका वर्णन किया, जिससे मेरे हृदयमें उनके प्रति दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो गयी। अब आप भगवान् सूर्यनारायणकी पत्नी महाभाग्या राज्ञी एवं निक्षुभा तथा दिष्टी और पिगल आदिके विषयमें बतायें।

**नारदजीने कहा—**साम्ब ! भगवान् सूर्यनारायणकी राज्ञी और निक्षुभा नामकी दो पत्नियाँ हैं। इनमेंसे राज्ञीको छौ अर्थात् सर्ग और निक्षुभाको पृथ्वी भी कहा जाता है। पौष शुक्ल सप्तमी तिथिको छौके साथ और माघ कृष्णपक्षकी सप्तमी तिथिको निक्षुभा (पृथ्वी) के साथ सूर्यनारायणका संयोग होता है। जिससे राज्ञी—छौसे जल और निक्षुभा—पृथ्वीसे तीनों लोकोंके कल्याणके लिये अनेक प्रकारकी सस्य-सम्पत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। सस्य (अन्न) को देखकर आत्यन्त प्रसन्नतासे ब्राह्मण हवन करते हैं। स्वाहाकर तथा स्वधाकारसे देवताओं और पितरोंकी नृप्ति होती है। जिस प्रकार राज्ञी अपने दो रूपोंमें हुई और ये जिनकी पुत्री हैं तथा इनकी जो संतानें हुई उनका हम वर्णन करते हैं, इसे आप सुनें—

साम्ब ! ब्राह्मके पुत्र मरीचि, मरीचिके कश्यप, कश्यपसे हिरण्यकशिपु, हिरण्यकशिपुसे प्रह्लाद, प्रह्लादसे विरोचन नामका पुत्र हुआ। विरोचनकी बहिनका विवाह विश्वकर्मके साथ हुआ, जिससे संज्ञा नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। मरीचिकी सुरुषा नामकी कन्याका विवाह अंगिरा ऋषिसे हुआ, जिससे बृहस्पति उत्पन्न हुए। बृहस्पतिकी ब्रह्मवर्दिनी बहिनने आठवें प्रभास नामक वसुसे पणिग्रहण किया, जिसका पुत्र विश्वकर्मा सप्तसा शिल्पियोंको जाननेवाला हुआ। उन्हींका नाम त्वष्टा भी है। जो देवताओंके बड़े हुए। इन्हींकी कन्या संज्ञाको राज्ञी कहा जाता है। इन्हींकी द्यौ, त्वाष्ट्री, प्रभा तथा सुरेणु भी कहते हैं। इन्हीं संज्ञाकी छायाका नाम निक्षुभा है। सूर्य भगवान्की संज्ञा नामक भावों बड़ी ही रूपवती और पतिव्रता थी। किंतु भगवान् सूर्यनारायण मानवरूपमें उसके समीप नहीं जाते थे और अत्यधिक तेजसे परिज्वाला होनेके कारण सूर्यनारायणका वह स्वरूप सुन्दर मालूम नहीं होता था। अतः वह संज्ञाकी भी अच्छा नहीं लगता था। संज्ञासे तीन

संतानें उत्पन्न हुई, किंतु सूर्यनारायणके तेजसे व्याकुल होकर वह अपने पिताके घर चली गयी और हजारों वर्षतक वहाँ रही। जब पिताने संज्ञासे पतिके घर जानेके लिये अनेक खा कहा, तब वह उत्तर कुक्षदेशको चली गयी। वहाँ वह अश्विनीका रूप धारण करके तृण आदि चरती हुई समय बिताने लगी।

सूर्यभगवान्के समीप संज्ञाके रूपमें उसकी छाया निवास करती थी। सूर्य उसे संज्ञा ही समझते थे। इससे दो पुत्र हुए और एक कन्या हुई। श्रुतश्रवा तथा श्रुतकर्मा—ये दो पुत्र और आत्यन्त सुन्दर तपती नामकी कन्या छायाकी संतानें हैं। श्रुतश्रवा तो सार्वर्णि मनुके नामसे प्रसिद्ध होगा और श्रुतकर्मा शनैश्वर नामसे प्रसिद्ध प्राप्त की। संज्ञा जिस प्रकारसे अपनी संतानोंसे स्नेह करती थी, वैसा स्नेह छायाने नहीं किया। इस अपमानको संज्ञाके ज्येष्ठ पुत्र सार्वर्णि मनुने तो सहन कर लिया, किंतु उनके छोटे पुत्र यम (धर्मराज) सहन नहीं कर सके। छायाने जब बहुत ही क्रोध देना शुरू किया, तब ब्रह्ममें आकर बाल्यन तथा भावी प्रबलताके कारण उन्होंने अपनी विधाता छायाकी भर्त्सना की और उसे मारनेके लिये अपना पैर उठाया। यह देखकर क्रुद्ध विधाता छायाने उन्हें कठोर शाप दे दिया—'दुष्ट ! तুম अपनी मौके पैरसे मारनेके लिये उद्यत हो रहे हो, इसलिये तुम्हारा यह पैर टूटकर गिर जाय।' छायाके शापसे विह्वल होकर यम अपने पिताके पास गये और उन्हें सद्य वृत्तान्त कह सुनाया। पुत्रकी बातें सुनकर सूर्यनारायणने कहा—'पुत्र ! इसमें कुछ विशेष कारण होगा, क्योंकि अत्यन्त धर्मीका तुझ-जैसे पुत्रके ऊपर माताको क्रोध आया है। सभी कपोक तो निदान हैं, किंतु माताका शाप कभी अन्यथा नहीं हो सकता। पर मैं तुम्हारे ऊपर अधिक स्नेहके कारण एक उपाय कहता हूँ। यदि तुम्हारे पैरके मांसको लेकर कृमि भूमिपर चले जायें तो इससे माताका शाप भी सत्य होगा और तुम्हारे पैरकी रक्षा भी हो जायगी।'

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! इस प्रकार पुत्रको आज्ञासुन देकर सूर्यनारायण छायाके समीप जाकर बोले—'छाये ! तুম इनसे स्नेह क्यों नहीं करती हो ? माताके लिये तो सभी संताने समान ही होनी चाहिये।' यह सुनकर



छायाने कोई उत्तर नहीं दिया, जिससे सूर्यनारायणकी क्रोध आ गया और वे शाप देनेके लिये उद्यत हो गये। छाया भगवान् सूर्यको क्रुद्ध देखकर भयभीत हो गयी और उसने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त बतला दिया। तब सूर्य अपने ससुर विश्वकर्माके पास गये। अपने जामाता सूर्यको क्रुद्ध देखकर विश्वकर्माने उनका पूजन किया तथा मधुर वचनोसे शांत किया और कहा—'देव ! मेरी पृथ्वी संज्ञा आपके अत्यन्त तेजको सहन न कर सकनेके कारण वनको चली गयी है और वह आपके उत्तम रूपके लिये वहाँपर महान् तपस्या कर रही है। ब्रह्माजीने मुझे आज्ञा दी है कि यदि उनकी अभिरुचि हो तो तुम संसारके कल्याणके लिये सूर्यको तराशकर उत्तम रूप बनाओ।' विश्वकर्माका यह वचन सूर्यनारायणने स्वीकार कर लिया और तब विश्वकर्माने शङ्खद्वीपमें सूर्यनारायणको भूमि (खराद) पर बड़ाकर उनके प्रबल तेजको खराद डाला, जिससे उनका रूप बहुत कुछ सौम्य बन गया। सूर्यनारायणने भी अपने योगबलसे इस बातकी जानकारी की कि सम्पूर्ण प्राणियोंसे अदृश्य हमारी पत्नी संज्ञा अधिनीके रूपको धारण करके उत्तर-तुलामें निवास कर रही है। अतः सूर्य भी स्वयं अधिका रूप धारण करके उसके पास आकर मिले। फलतः कालांतरमें अधिनीसे देवताओंके वैद्य जुड़वाँ अधिनीकुमारोंका जन्म हुआ। उनके नाम हैं नास्त्य तथा दस। इसके पश्चात् सूर्यनारायणने अपना वास्तविक रूप धारण किया। उस रूपको देखकर संज्ञा अत्यन्त प्रीतिसे प्रसन्न हुई और वह उनके समीप

गयी। तत्पश्चात् संज्ञासे 'रेवन्त' नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो भगवान् सूर्यनारायणके समान ही सौन्दर्य-सम्पन्न था।

इस प्रकार सावर्णि मनु, यम, यमुना, इन्दि, तपती, दो अधिनीकुमार, वैवस्वत मनु और रेवन्त—ये सब सूर्यनारायणकी संताने हुई। यमकी भगिनी यमी यमुना नदी बनकर प्रवाहित हुई। सावर्णि आठवे मनु होगे। सावर्णि मनु मेरु पर्वतके पृष्ठप्रदेशपर तपस्या कर रहे हैं। सावर्णिके भ्राता इन्दि एक ग्रह बन गये और उनकी भगिनी तपती नदी बन गयी, जो विश्वविहिरसे निकलकर पश्चिमी समुद्रमें जाकर मिलती है। इस नदीमें स्नान करनेसे बहुत ही पुण्य प्राप्त होता है। सौम्या नदीसे तपतीका संगम और गङ्गा नदीसे वैवस्वती—यमुनाका संगम होता है। दोनों अधिनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं, जिनको विद्यासे ही वैद्यगण भूमिपर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। सूर्यनारायणने अपने समान रूपवाले रेवन्त नामक पुत्रको अशोक खादी बनाया। जो मानव अपने गल्बल्य मार्गके लिये रेवन्तकी पूजा करके प्रस्थान करता है, उसे मार्गमें क्लेश नहीं होता। विश्वकर्माके द्वारा सूर्यनारायणकी खरादपर बड़ाकर जो तेज ग्रहण किया गया, उससे उन्होंने भगवान् सूर्यकी पूजा करनेके लिये धोखकोंको उत्पन्न किया। जो अमित तेजस्वी सूर्यनारायणकी संतानोत्पत्तिकी इस कथाको सुनता अधया पढ़ता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें दीर्घकाल तक रहनेके पश्चात् पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा होता है। (अध्याय ७९)

## सूर्यभगवान्‌को नमस्कार एवं प्रदक्षिणा करनेका फल

### और विजया-सप्तमी-व्रतकी विधि

देवर्षि नारदने कहा—सन्ध्या ! अब मैं आपको भगवान् सूर्यनारायणके पूजन, उनके निमित्त दिये गये दान तथा उनको किये गये प्रणाम एवं प्रदक्षिणाके फलके विषयमें दिखी और ब्रह्माजीका संवाद सुना रहा हूँ, आप ध्यानसे सुनें—

ब्रह्माजी बोले—दिण्डिन् ! सूर्य भगवान्‌का पूजन, उनकी स्तुति, जप, प्रदक्षिणा तथा उपवास आदि करनेसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। सूर्यनारायणको नम्र होकर प्रणाम करनेके लिये भूमिपर जैसे ही सिरका स्पर्श होता है,

वैसे ही तत्काल सभी पातक नष्ट हो जाते हैं\*। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणकी प्रदक्षिणा करता है, उसे सप्तद्वीपा वसुपत्नीकी प्रदक्षिणाका फल प्राप्त हो जाता है और वह समस्त रोगोंसे मुक्त होकर अन्त समयमें सूर्यलोकको प्राप्त करता है, किन्तु प्रदक्षिणामें पवित्रताका ध्यान रखना आवश्यक है। अतएव जूता या खड़ाक आदि पहनकर प्रदक्षिणा नहीं करनी चाहिये। जो मनुष्य जूता या खड़ाक पहनकर सूर्य-मन्दिरमें प्रवेश करता है, वह असिपत्र-वन नामक घोर नरकमें जाता

\* प्राणिभ्यः शिरो धूत्वे नमस्कारपरो रवेः । तत्पश्चात् सर्वलोकेषु मुखते चर संशयः ॥

है। जो प्राणी पृथ्वी या सप्तमीके दिन एकाह्वार अथवा उपवास रखकर भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणका पूजन करता है, वह सूर्यलोकमें निवास करता है। कृष्ण पक्षकी सप्तमीको रक्त पुण्योपहारोंसे और शुक्ल पक्षकी सप्तमीको श्वेत कमलपुष्प तथा मोदक आदि उपचारोंसे भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेसे व्रती सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो सूर्यलोकमें प्राप्त करता है।

दिष्टिन् । जया, निजया, जयन्ती, अपरजिता, महाजया, नन्दा तथा भद्रा नामकी ये सात प्रकारकी सप्तमियाँ कही गयी

(अध्याय ८०-८१)

### द्वादश रविवारोका वर्णन और नन्दादित्य-व्रतकी विधि

**दिण्डीने ब्रह्माजीसे पूछा—**ब्रह्मन् ! जो मनुष्य  
अदित्यवारके दिन श्रद्धा-भक्तिके सूर्यदेवका स्नान-दानदि कर  
पूजन करते हैं, उनके कौन-सा फल प्राप्त होता है ? और जिस  
वारके संयोगसे साम्नी तिथि विजया कहलाती है, उसके  
माहात्म्यका आद्य पुनः वर्णन करें ।

ब्रह्माजीने कहा—दिण्डिन् ! जो मनुष्य आदित्यवारको श्राद्ध करते हैं, वे सदा जन्मताक नीरेण रहते हैं तथा जो मन्त्र-व्रत एवं आदित्यहृदयका<sup>१</sup> पाठ करते हैं, वे ऐशसे मुक्त हो जाते हैं और सूर्यलोकमें निवास करते हैं। उपवास रसकर जो महाशेता मन्त्रका<sup>२</sup> जप करते हैं, वे मनोवाञ्छित फलको प्राप्त करते हैं। आदित्यवारके दिन महाशेता-मन्त्र तथा षडक्षर-मन्त्र 'खरशोल्काय स्वाहा' का जप करनेसे निःसंदेह सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

सूर्यनारायणके द्वादश वार इस प्रकार हैं—नन्द, भद्र, सौम्य, कामद, पूरुद, जय, जयन्त, विजय, आदित्याभिमुख

है। यदि शुक्ल पक्षकी सप्तमीको रविवार हो तो उसे विजया सप्तमी कहते हैं। उस दिन किया गया स्नान, दान, होम, उपवास, पूजन आदि सत्कर्म महापातको का विनाश करता है। इस विजया-सप्तमी-व्रतमें पञ्चमी तिथिको दिनमें एकभुक्त रहे, षष्ठी तिथिको नक्तव्रत करे और सप्तमीको पूर्ण उपवास करे, तदनन्तर अष्टमीके दिन व्रतको पारणा करे। इस तिथिके दिन किया गया दान, हवन, देवता तथा पितरोंका पूजन अक्षय होता है।

हृदय, रोगहा एवं मातृक्षेता-प्रिय । माघ शुक्लपक्षकी षष्ठीकी नन्दरात्रि है । उस दिन नक्त-व्रत करके धृतसे सूर्यनारायणको स्नान करना चाहिये तथा खेत चन्दन, अगस्त्यके पुष्प, गुग्गुलु-धूस आदिसे पूजन करके अपूप आदिका नैवेद्य समर्पित करना चाहिये । ब्राह्मणको अपूप देकर स्वयं भी घीन धारण कर भोजन करना चाहिये । गौहोके अधवा खचके चूर्णमें धृत तथा चाँद या शकर मिलाकर अपूप बनाना चाहिये और उसीका नैवेद्य सूर्यनारायणको निवेदित कर निम्न मन्त्र पढ़ते हुए ब्राह्मणको वह नैवेद्य दे देना चाहिये ।

आदित्यतेजसोत्पन्नं राज्ञीकरविनिर्मितम् ।

श्रेयसे मम विद्म त्वं प्रतीक्षापुष्पमुत्तमम् ॥

(आह्निकपर्व ८२।१८)

आश्रय नैवेद्य ग्रहण कर ले, तदनन्तर उस नैवेद्यको निम्न पढ़ते हुए पूजकको दे—

कामदे सुखदे धर्म्ये धनदे पुत्रदे तथा ।

१- भविष्यपुराणके नामसे प्राप्त होनवाले स्तोत्रमें 'सौअदित्यहृदय-स्तोत्र'का अत्यधिक प्रचार है और इसकी प्रसिद्धि प्राचीन कालमें भी इतनी अधिक थी कि महर्षि पराशरने सूर्यकी दशा-अवस्थानामें शान्तिके लिये सर्वत्र इसी स्तोत्रके जपका निर्देश दिया है। यह स्तोत्र प्रायः दो ही इत्येकमें उपनिबद्ध है। इसके पाठमें मनुष्य दुःख-दार्मिदय तथा कुछ अति आराध्य गणोंमें मुक्त होकर महाशक्तिके प्राप्त कर लेता है। इस स्तोत्रमें भगवान् सूर्यकी महिमा, अर्चनानिधि आदिका सुन्दर वर्णन है। इसका महाप्रत्यक्ष कष्ट ही सुन्दर है। इसके पाठमें भगवान् सूर्यमें अद्भुत उत्पन्न हो जाती है। सूर्योपासनामें इस 'आदित्यहृदय'का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

यह सोत्र वर्तमान उपलब्ध भविष्यपुराणमें प्राप्त नहीं होता, इससे यह उसके भिन्न भाग प्रतीत होता है। तदनुसारमें उपलब्ध भविष्यपुराणकी सूची भी वर्तमानमें उपलब्ध भविष्यपुराणमें नहीं मिलती। कालक्रमसे पुराणोंका प्राचीन रूप न रह जानेसे आज यह सब एकत्र उपलब्ध नहीं हो पाता, परंतु शायः सभी बड़े सोत्र-संग्रहोंमें यह 'आदित्यहृदय-सोत्र' संगृहीत है। जलप्रीतेश्वर रामायणमें अगस्त्यमुनिद्वारा 'आदित्यहृदय-सोत्र' भविष्यपुराणके 'आदित्यहृदय-सोत्र'में विष्ट है।

२- महाश्वेता-सन्ध 'गायत्री-सन्ध' का ही अपर वर्णित प्रतीक होता है ।

सदा ते प्रतीक्षामि मण्डकं भास्करप्रियम् ॥

(ब्राह्मपर्व ८२।१२)

उपर्युक्त दोनों मन्त्र ग्रहण करने और समर्पित करनेके लिये हैं। नन्दवारका यह विधान कल्याणकारी है। जो इस विधिसे सूर्यदेवकी पूजा करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। उसकी संततिका कभी क्षय नहीं होता अर्थात् उसकी

कुल-परम्परा पृथ्वीपर चलती रहती है तथा उसके वंशमें दारिद्र्य एवं रोग भी नहीं होते। सूर्यलोक प्राप्त करनेके पश्चात् पुनर्जन्म होनेपर वह पृथ्वीका राजा होता है। इस पूजन-विधानको पढ़ने अथवा श्रवण करनेसे भी कल्याण होता है एवं दिव्य अवल लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय ८२)

### भद्रादित्य, सौम्यादित्य और कामदादित्यवार-व्रतोंकी विधिका निरूपण

**ब्रह्माजी बोले—**दिण्डिन् । भद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी

पष्टी तिथिको जो वार हो उसका नाम भद्र है। उस दिन जो मनुष्य नक्तव्रत और उपवास करता है, वह हंसयुक्त विमानमें बैठकर सूर्यलोकको जाता है। उस दिन श्वेत वन्दन, मालती-पुष्प, विजय-धूप तथा खीरेके नैवेद्यमें मध्याह्नकालमें सूर्यनारायणका पूजन करके ब्राह्मणको भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये।

दिण्डिन् । यदि रोहिणी नक्षत्रसे युक्त आदित्यवार हो तो उसे सौम्यवार कहा जाता है। उस दिन किये जानेवाले स्नान, दान, जप, होम, चित्तु-देवादि तर्पण तथा पूजन आदि कुल्य

अक्षय होते हैं।

मार्गशीर्षके शुक्ल पक्षकी पष्टी तिथिको जो वार हो, वह कामदवार कहलाता है। यह वार भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय है। इस दिन जो भक्ति और श्रद्धासे सूर्यनारायणकी पूजा करता है, वह सभी पातकोंसे विमुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है। इस व्रतको करनेसे विद्याधीको विद्या, पुत्रेष्टुको पुत्र, धनधीको धन और आरोग्यके अभिलाषीको आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार कामदवार-व्रतसे और अन्य सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, इसीलिये इसका नाम कामद है।

(अध्याय ८३—८५)

### पुत्रद, जय, जयन्तसंज्ञक आदित्यवार-व्रतोंकी विधि

**ब्रह्माजी बोले—**दिण्डिन् । जिस आदित्यवारको हस्त नक्षत्र हो उसे पुत्रद (आदित्य) वार कहा जाता है। उस दिन उपवास करना चाहिये और श्राद्ध करके मध्यम पिण्डका प्राशन करना चाहिये। धूप, माल्य, दिव्य गन्ध आदि यन्त्र प्रकारके उपचारोंसे सूर्यनारायणका पूजन कर महाशेता-मन्त्रको जपते हुए साधकको सूर्यनारायणके समक्ष हो शपथ करना चाहिये। प्रातःकालमें ही उठकर स्नान आदिसे निवृत्त हो सूर्यभगवान्को अर्घ्य देना चाहिये। रक्त-वन्दन तथा करवीरेके पुष्पोंसे पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् पाँच ब्राह्मणोंको बुलाकर उनमेंसे दो ब्राह्मणोंको मग-संज्ञक तथा तीन ब्राह्मणोंको भीमसंज्ञक मानकर विधिपूर्वक पार्वण-श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्धके समाप्त होनेपर मध्यम पिण्डको भगवान् सूर्यके सामने रखकर निम्नलिखित मन्त्रसे भक्षण करना चाहिये—

स एष पिण्डो देवेश योऽभीष्टस्तव सर्वदा ।

अश्रामि पश्यते तुभ्यं तेन मे संततिर्भवेत् ॥

(ब्राह्मपर्व ८६।१०)

इस विधानसे पूजा करनेपर सूर्यनारायण निश्चित ही पुत्र प्रदान करते हैं। इस प्रकार उपवासपूर्वक व्रतको करनेसे धन-धान्य, सुवर्ण, सुख-आरोग्य तथा सूर्यलोक भी प्राप्त होता है, किन्तु विशेषरूपसे पुत्र-प्राप्तिको ही फल है, इसीसे इस वारको पुत्रद कहते हैं।

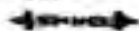
**ब्रह्माजीने कहा—**दिण्डिन् । दक्षिणायनके दिन जो वार हो, वह जयवार कहा जाता है। इस दिन किया गया उपवास, नक्तव्रत, स्नान-दान तथा जप भगवान् सूर्यमें सौगुनी प्रीति बढ़ानेवाला होता है। अतः सूर्यमें सौगुनी प्रीति बढ़ानेवाले इस नक्त-व्रतोंको अवश्य करना चाहिये।

यदि उत्तरायणके दिन रविवार हो तो उसे जयन्तवार कहते हैं। इस दिन भगवान् सूर्य स्नान-दानादि कर्म तथा पूजन करनेवालेको हजार गुना फल प्रदान करते हैं। इस दिन उपवास करके घृत, दूध तथा इक्षुरससे सूर्यनारायणको स्नान कराकर कुंकुमका विलेपन करना चाहिये और गुगुलुका धूप देकर मोदकका नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। इस प्रकार

भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करके तिलसे हवन करना शुक्ल (पूरी) का भोजन करना चाहिये।

चाहिये। तदनन्तर यथाशक्ति ब्राह्मणोंको मोदक, तिल तथा

(अध्याय ८६-८७)



### विजय, आदित्याभिमुख तथा हृदयवार-व्रतोंकी विधि

**ब्रह्माजी बोले—**दिण्डिन् ! शुक्ल पक्षमें रोहिणी नक्षत्रसे युक्त सप्तमी तिथिको विजय-संज्ञक आदित्यवार कहते हैं। यह सम्पूर्ण पापों और भयोंको नष्ट कर देता है। उस दिन सम्पन्न किये गये पुण्यकर्म कोटिगुना फल प्रदान करतो है।

दिण्डिन् ! माघ मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको जो दिन हो उसे आदित्याभिमुख कहते हैं। उस दिन प्रातःकाल ही स्नान कर गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे सूर्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर रक्तचन्दनके कण्डसे बने हुए सत्त्वमय आश्रय लेकर सूर्यदेवकी ओर मुखकर महाश्वेता-मन्त्र जपते हुए सारंगसुखलतक खड़ा रहना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणको भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। तत्पश्चात् मौन होकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये। जो मनुष्य इस व्रतका विधिपूर्वक पालन करते हैं, उन्हें भगवान् सूर्यनारायणका

अनुग्रह प्राप्त होता है।

दिण्डिन् ! संक्रान्तिके दिन यदि रविवार हो तो उसका नाम हृदयवार होता है। वह आदित्यके हृदयको अत्यन्त प्रिय है। उस दिन नक्तजत करके मन्दिरमें सूर्यनारायणके अभिमुख एक सौ अष्ट बार आदित्यहृदयका पाठ करना चाहिये अथवा सारंगसुखलतक भगवान् सूर्यका हृदयमें ध्यान करना चाहिये। सूर्यास्त होनेके पश्चात् घर आकर यथाशक्ति ब्राह्मणको भोजन कराये तथा मौनपूर्वक स्वयं भी खीरका भोजन करके सूर्यदेवका स्मरण करते हुए भूमिपर ही शयन करे। इस प्रकार जो इस दिन व्रत रहकर ब्रह्मा-भक्तिमें सूर्यनारायणकी पूजा करता है, उसके समस्त अप्रीष्ट सिद्ध हो जाते हैं और वह भगवान् सूर्यके समान ही तेज-कांति तथा यशको प्राप्त करता है। (अध्याय ८८—९०)



### रोगहृ एवं महाश्वेतवार-व्रतकी विधि

**ब्रह्माजी बोले—**दिण्डिन् ! यदि आदित्यवारको उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र पड़े तो उसे रोगहृवार कहते हैं। यह सम्पूर्ण रोगों एवं भयोंको दूर करनेवाला है। इस दिन जो गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंसे भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करता है, वह सभी रोगोंसे मुक्त हो जाता है तथा सूर्यलोकको प्राप्त होता है। मन्दारके पत्रोंका दोना बनाकर उसीमें उसके फूल रखकर शश्विमें भगवान् सूर्यनारायणके सम्मने रख देना चाहिये तथा प्रातःकाल उठकर उन्हीं फूलोंसे उनका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर खीरका भोजन करके व्रतकी समाप्ति करना चाहिये।

दिण्डिन् ! यदि सूर्यग्रहणके दिन रविवार हो तो उसे महाश्वेतवार कहते हैं, वह भगवान् सूर्यको बहुत प्रिय है। उस दिन उपवास करके पवित्रताके साथ गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणका पूजन करके महाश्वेता-मन्त्रका जप करे। तदनन्तर महाश्वेताकी पूजा करके सूर्यनारायणकी पूजा करनेका विधान है। महाश्वेताकी स्थापना करके गन्ध-पुष्प आदिसे उनका पूजन करे तथा उन्हींके सम्मुख एक वेदीपर

सूर्यनारायणकी स्थापना कर उनकी पूजा आदि करे। तत्पश्चात् स्नान करके धृतराष्ट्र तिलोत्था हवन करे। ग्रहणके समय महाश्वेता-मन्त्रका जप करता रहे और ग्रहणके समाप्त होनेके पश्चात् पुनः स्नान करके महाश्वेता तथा ब्रह्माधिपति भगवान् सूर्यका पूजन करे। ब्राह्मणोंसे पुराण सुनकर उन्हें भोजन कराये तथा यथाशक्ति दक्षिणा दे। उसके बाद स्वयं मौन होकर भोजन करे। इस दिन किये हुए स्नान, दान, जप, होम आदि कर्म अनन्त फल देते हैं।

दिण्डिन् ! सम्पूर्ण पापों और भयोंको दूर करनेवाले सूर्यनारायणके इन द्वादश वारोंका मैंने जो वर्णन किया है, इसे जो मनुष्य पढ़ता है अथवा सुनता है, वह भगवान् सूर्यका प्रिय हो जाता है और जो इन व्रतोंको नियमपूर्वक करता है, वह धर्म, अर्थ, काम और चन्द्रमाके समान कांति, सूर्यके समान प्रभा, इन्द्रके समान पराक्रम तथा स्थायी लक्ष्मीको प्राप्त करता है, तदनन्तर अन्तमें वह शिवलोकको चला जाता है।

(अध्याय ९१-९२)



## सूर्यदेवकी पूजामें विविध उपचार और फल आदि निवेदन करनेका माहात्म्य

ब्रह्माजी बोले—दिण्डिन् ! जो प्राणी भगवान् सूर्यनारायणके निमित्त सभी धर्मकार्य करते हैं, उनके कुलमें रोगी और दरिद्री उत्पन्न नहीं होते । जो व्यक्ति भगवान् सूर्यके मन्दिरमें भक्तिपूर्वक गोबरसे लेपन करता है, वह तत्क्षण सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है । श्वेत-रक्त अथवा पीली मिट्टीसे जो मन्दिरमें लेप करता है, वह मनोवान्छित फल प्राप्त करता है । जो व्यक्ति उपवासपूर्वक अनेक प्रकारके सुगन्धित फूलोंसे सूर्यनारायणका पूजन करता है, वह समस्त अभीष्ट फलोंको प्राप्त करता है । घृत या तिल-तैलमें मन्दिरमें दीपक प्रज्वलित करनेवाला सूर्यलोकमें तथा सूर्यनारायणके प्रीत्यर्थ चैतन्य, तीर्थ, देवालय आदिमें दीपक प्रज्वलित करनेवाला ओजस्वी रूपको प्राप्त करता है । भक्तिभावसे समन्वित होकर जिस मनुष्यके द्वारा सूर्यके लिये दीपक जलवाया जाता है, वह अपनी अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त कर देवलोकमें प्राप्त करता है । जो चन्दन, अगर, कुंकुम, कपूर तथा कस्तुरी आदि मिलकर तैयार किये गये तबटनमें सूर्यनारायणके शरीरका लेपन करता है, वह करोड़ों वर्षतक स्वर्गमें विहार कर पुनः पृथ्वीपर सभी इच्छाओंसे संतुष्ट रहता है और समस्त लोकोंका पूज्य बनकर चक्रवर्ती राजा होता है । चन्दन और जलसे मिश्रित पुष्पोंके द्वारा सूर्यको अर्घ्य प्रदान करनेपर पुत्र, पौत्र, पत्नीसहित स्वर्गलोकमें पूज्य होता है । सुगन्धित पदार्थ तथा पुष्पोंसे युक्त जलके द्वारा सूर्यको आर्य्य देकर मनुष्य देवलोकमें बहुत समयतक रहकर पुनः पृथ्वीपर राजा होता है । स्वर्गसे युक्त जल अथवा लाल वर्णके जलमें अर्घ्य देनेपर करोड़ों वर्षतक स्वर्गलोकमें पूजित होता है । कमलपुष्पसे सूर्यकी पूजा करके मनुष्य स्वर्गको प्राप्त करता है । श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको गुग्गुलु तथा घृतमिश्रित धूप देनेसे तत्काल ही सभी पापोंसे मुक्ति मिल जाती है ।

जो मनुष्य पूर्वाह्नमें भक्ति और श्रद्धासे सूर्यदेवका पूजन करता है, उसे सैकड़ों कपिल गोदान करनेका फल मिलता है । मध्याह्न-कालमें जो जितेन्द्रिय होकर उनकी पूजा करता है उसे भूमिदान और सौ गोदानका फल प्राप्त होता है । सायंकालकी संध्यामें जो मनुष्य पवित्र होकर श्वेत वस्त्र तथा

उष्णीष (पगड़ी) धारण करके भगवान् भास्करकी पूजा करता है, उसे हजार गौओंके दानका फल प्राप्त होता है ।

जो मनुष्य अर्धरात्रिमें भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, उसे जातिस्मरता प्राप्त होती है और उसके कुलमें धार्मिक व्यक्ति उत्पन्न होते हैं । प्रदोष-वेलामें जो मनुष्य भगवान् सूर्यदेवकी पूजा करता है, वह स्वर्गलोकमें अक्षय-कालतक आनन्दका उपभोग करता है । प्रभातकालमें भक्तिपूर्वक सूर्यको पूजा करनेपर देवलोककी प्राप्ति होती है । इस प्रकार सभी वेलोंमें अथवा जिस किसी भी समय जो मनुष्य भक्तिपूर्वक मन्दार-पुष्पोंसे भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह तेजमें भगवान् सूर्यके सम्मान होकर सूर्यलोकमें पूज्य बन जाता है । जो व्यक्ति दोनों अयन-संक्रान्तियोंमें भगवान् सूर्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह ब्रह्माके लोकमें प्राप्त करता है और वहाँ देवताओंद्वारा पूजित होता है । ग्रहण आदि अवसरोंपर पूजन करनेवाला विनित्त नहीं होता । जो निद्रासे उठनेपर सूर्यदेवको प्रणाम करता है, उसे प्रसन्न होकर भगवान् अभिलषित गति प्रदान करते हैं ।

उदयकालमें सूर्यदेवको मात्र एक दिन यदि घृतसे स्नान करा दिया जाय तो एक लाख गोदानका फल प्राप्त होता है । गायके दुधद्वारा स्नान करनेसे पुण्डरीक-यज्ञका फल मिलता है । इक्षुरससे स्नान करनेपर अश्वमेध-यज्ञके फलका लाभ होता है । भगवान् सूर्यके लिये पहली बार व्याघ्री हुई सुपुष्ट गौ तथा शम्भु प्रदान करनेवाली पृथ्वीका जो दान करता है, वह अचल लक्ष्मीको प्राप्त कर पुनः सूर्यलोकको चला जाता है और गौके शरीरमें जितने रेंयें होते हैं, उतने ही करोड़ वर्षतक वह सूर्यलोकमें पूजित होता है । जो मनुष्य भगवान् सूर्यके निमित्त भेरी, शंख, वेणु आदि बाद्य दान करते हैं, वे सूर्यलोकमें जाते हैं । जो मनुष्य भक्तिभावसे सूर्यनारायणकी पूजा करके उन्हें छत्र, ध्वजा, पताका, कितान, चापर तथा सुवर्णदण्ड आदि समर्पित करता है, वह दिव्य छोटी-छोटी किङ्किणियोंसे युक्त सुन्दर विमानके द्वारा सूर्यलोकमें जाकर आनन्दित होता है और चिरकालतक वहाँ रहकर पुनः मनुष्य-जन्म ग्रहण कर सभी राजाओंके द्वारा अभिवन्दित राजा होता है ।

जो मनुष्य विविध सुगन्धित पुष्पों तथा पत्रोंसे सूर्यको अर्चना करता है और विविध स्तोत्रोंसे सूर्यका संस्तवन-गान आदि करता है, वह उन्हींके लोकको प्राप्त होता है। जो पाठक और चारणगण सदा प्रातःकाल सूर्यसम्बन्धी श्रुतियों एवं विविध स्तोत्रोंका उपगान करते हैं, वे सभी स्वर्गागामी होते हैं। जो मनुष्य अश्वोंसे युक्त, सुवर्ण, रजत या मणिजड़ित सुन्दर रथ अथवा दारुमय रथ सूर्यनारायणको समर्पित करता है, वह सूर्यके वर्णके समान किङ्किणी-जालमालासे सम्पन्नित विमानोंसे बैठकर सूर्यलोकको यात्रा करता है।

जो लोग वर्षभर या छः मास नित्य इनकी रथयात्रा करते हैं, वे उस परमगतिको प्राप्त करते हैं, जिसे ध्यानी, योगी तथा सूर्यभक्तिके अनुगामी श्रेष्ठ जन प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य भक्तिभाव-सम्पन्नित होकर भगवान् सूर्यके रथको खींचते हैं, वे बार-बार जन्म लेनेपर भी नीरोग तथा दरिद्रतासे रहित होते हैं। जो मनुष्य भास्करदेवकी रथयात्रा करते हैं, वे सूर्यलोकको प्राप्तकर यथाभिलषित सुखका आनन्द प्राप्त करते हैं, परन्तु जो मोह अथवा क्रोधवशात् रथयात्रामें बाधा उत्पन्न करते हैं, उन्हें पाप-कर्म करनेवाले मंदैह नामक राक्षस ही समझना चाहिये। सूर्यभगवान् के लिये धन-धान्य-हिरण्य अथवा विविध प्रकारके वस्त्रोंका दान करनेवाले परमगतिको प्राप्त होते हैं। गौ, भैस अथवा हाथी या सुन्दर घोड़ोंका दान करनेवाले स्वर्ग अक्षय अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले अश्वमेध-यज्ञके फलको प्राप्त करते हैं और उन्हें उस दानसे हजार गुण पुण्य-लभ होता है। जो सूर्यनारायणके लिये सेती करने योग्य सुन्दर उपजाऊ भूमि-दान देता है, वह अपनी पीढ़ीसे पहलेके दस कुल और पञ्चाशत्के दस कुलको तार देता है तथा दिव्य विमानसे सूर्यलोकको चला जाता है। जो बुद्धिमान् मनुष्य भगवान् सूर्यके लिये भक्तिपूर्वक ग्राम-दान करता है, वह सूर्यके समान वर्णवाले विमानमें अरुढ़ होकर परमगतिको प्राप्त होता है। भक्तिपूर्वक जो लोग फल-पुष्प आदिसे परिपूर्ण

उद्यानका दान सूर्यनारायणके लिये देते हैं वे परमगतिको प्राप्त होते हैं। मनसा-वाचा-कर्मणा जो भी दुष्कृत होता है, वह सब भगवान् सूर्यको कृपासे नष्ट हो जाता है। चाहे आर्त हो या योगी हो अथवा दरिद्र या दुःखी हो, यदि वह भगवान् आदित्यकी शरणमें आ जाता है तो उसके सम्पूर्ण कष्ट दूर हो जाते हैं। एक दिनको सूर्य-पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह अनेक इष्टापूर्तियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

जो भगवान् सूर्यके मन्दिरके सामने भगवान् सूर्यकी कल्याणकारी लीला करता है, उसे सभी अभीष्ट कामनाओंको सिद्ध करनेवाले राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। गन्तव्य। जो मनुष्य सूर्यदेवके लिये महाभारत ग्रन्थका दान करता है, वह सभी पापोंसे विमुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है। रामायणकी पुस्तक देकर मनुष्य वाजपेय-यज्ञके फलको प्राप्त कर सूर्यलोकको प्राप्त करता है। सूर्यभगवान् के लिये भविष्यपुराण अथवा साम्बपुराणकी पुस्तकका दान करनेपर मानव राजसूय तथा अश्वमेध-यज्ञ करनेका फल प्राप्त करता है तथा अपनी सभी मन-कामनाओंको प्राप्त कर सूर्यलोकको पा लेता है और वहाँ धिरकालप्ताक रहकर ब्रह्मलोकमें जाता है। वहाँ सौ कल्पतक रहकर पुनः वहाँ पृथ्वीपर राजा होता है। जो मनुष्य सूर्य-मन्दिरमें कुर्आ तथा तालाब बनवाता है, वह मनुष्य आनन्दमय दिव्य लोकको प्राप्त करता है। जो मनुष्य सूर्यमन्दिरमें शीतकालमें मनुष्योंके शीत-निकारणके योग्य कम्बल आदिका दान करता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य सूर्यमन्दिरमें नित्य पवित्र पुस्तक, इतिहास तथा पुराणका वाचन करता है, वह उस फलको प्राप्त करता है, जो नित्य हजारों अश्वमेधयज्ञको करनेसे भी प्राप्त नहीं होता। अतः सूर्यके मन्दिरमें प्रयत्नपूर्वक पवित्र पुस्तक, इतिहास तथा पुराणका वाचन करना चाहिये। भगवान् भस्कर पुण्य आख्यान-कथासे सदा संतुष्ट होते हैं।

(अध्याय ९३)

**एक वैश्य तथा ब्राह्मणकी कथा, सूर्यमन्दिरमें पुराण-वाचन**

**एवं भगवान् सूर्यको स्नानादि करानेका फल**

**ब्राह्मजी बोले—**दिण्डिन् ! मैं आपको पितामह और कुमार कार्तिकेयका एक आख्यान सुना रहा हूँ, जो पुण्यदायक,

वाचनायक तथा कल्याणकारी है। एक बार सभी लोकोंके रचयिता पितामह सुखपूर्वक बैठे थे, उनके पास श्रद्धा-भक्ति-

समन्वित हो कार्तिकेयने आकर प्रणाम किया और कहा—

विभो ! आज मैं दिवाकर भगवान् सूर्यदेवका दर्शन करनेके लिये गया था। प्रदक्षिणा करके मैंने उनको पूजा की तथा परमभक्ति और श्रद्धासे मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और वहीं बैठ गया। वहाँ मैंने एक महान् आश्चर्यकी बात देखी—स्वर्णजटित छोटी-छोटी छंटियोंसे युक्त श्रेष्ठ वैदूर्यमणि मणियों एवं मुक्तजालोंसे सुशोभित विचित्र विमानसे आ रहे एक पुरुषको देखकर भगवान् दिवाकर सहसा आसनसे उठ सड़के हुए। उन्होंने सामने आये हुए उस पुरुषको अपने दाहिने हाथसे पकड़कर अपने सामने बैठाया और उसके सिरको सूँघा तथा उसका पूजन किया, तदनन्तर समीपमें बैठे हुए उस पुरुषसे भगवान् सूर्यने कहा—

हे भद्र ! आपका स्वागत है। आपका हम सबपर बड़ा प्रेम है। आपने बहुत अहन्त दिया। जबतक महाप्रलय नहीं होता, तबतक आप मेरे समीप रहें। उसके पश्चात् उस स्थानको जाये, जहाँ ब्रह्मा स्वयं स्थित है। इसी बीच भगवान् सूर्यक सामने एक श्रेष्ठ विमानपर आसीन दूसरा पुरुष आया। उसका भी सूर्यभगवान्ने उसी प्रकार आदर किया और उसे भी विनम्र भावसे वहीं बैठाया। देवशार्दूल ! भगवान् सूर्यके द्वारा की गयी उन दोनोंकी पूजा देखकर मैं मनमें बड़ा कौतूहल उत्पन्न हो गया, अतः मैंने भगवान् भास्करसे पूछा—‘देव ! पहले जो यह मनुष्य आपके पास आया है और जिसे आपने अधिक संतुष्ट किया है, इसने कौन-सा ऐसा पुण्यकर्म किया है, जो इसकी आपने स्वयं ही पूजा की है ? इस विषयको लेकर मेरे हृदयमें विशेषरूपसे कौतूहल उत्पन्न हो गया है। उसी प्रकारसे आपने दूसरे मनुष्यकी भी पूजा की है। ये दोनों सब प्रकारसे पुण्यकर्म करनेवाले उत्तम जनोंमें भी श्रेष्ठ मनुष्य है। आप तो सदा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवताओंके द्वारा भी अर्चित, पूजित होते हैं, फिर आपके द्वारा ये दोनों किस कारण पूजित हुए ? देवेश ! मुझे आप इसका रहस्य बतायें।’

भगवान् सूर्यने कहा—महामते ! आपने इनके कर्मके विषयमें बहुत अच्छी बात पूछी है, जिस कारणसे ये मेरे पास आये हैं, उसे आप श्रवण करें—पृथ्वीतलपर अयोध्या नामकी एक प्रसिद्ध नगरी है, जो मेरे अंशमें उत्पन्न राजाओंद्वारा अधिरक्षित है। उस अयोध्या नामक नगरीमें धनपाल नामका

एक श्रेष्ठ वैश्य रहता था। उस पुरीमें उसने एक दिव्य सूर्यमन्दिर बनवाया और बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाकर उनकी पूजा की। इतिहास-पुराणके वाचकोकी विशेषरूपसे पूजा की और उनसे पुराण-श्रवण करानेकी प्रार्थना की तथा कहा—‘द्विजश्रेष्ठ ! इस मन्दिरमें यह चारों वर्णोंका समूह पुराण-श्रवण करनेका इच्छुक है, अतः आप पुराणश्रवण करायें, जिससे भगवान् सूर्य मेरे लिये सात जन्मतक वर देनेवाले हों। आप एक वर्षतक मेरी दी हुई वृत्तिके ग्रहण करें। उन्होंने वैश्य धनपालके आग्रहको स्वीकार कर लिया। परंतु ऊः महामते हो वैश्य धनपाल कालधर्मको प्राप्त हो गया। हे कुमार ! यही यह वैश्य है। मैंने इसीको लानेके लिये विमान भेजा था। पुण्य आश्वानको कहने या सुननेसे जो फल एवं तृप्ति प्राप्त होती है, यह उसीका फल है। गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे पूजन करनेपर मेरे हृदयमें वैसी प्रसन्नता उत्पन्न नहीं होती जैसी पुराण सुननेसे होती है। कुमार ! गौ, सुवर्ण तथा स्वर्णजटित बन्धों, धर्मों तथा नगरीका दान देनेसे मुझे इतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी प्रसन्नता इतिहास-पुराण सुनने-सुनानेसे होती है। मुझे अनेक खाद्य-पदार्थोंद्वारा किये गये आद्योसे वैसी प्रसन्नता नहीं होती, जैसी पुराण-वाचनसे होती है। सुरश्रेष्ठ ! इससे अधिक और क्या कहूँ ? इस रहस्ययुक्त पवित्र आश्वानके वाचनके बिना मुझे अन्य कुछ भी श्रिय नहीं है।

नरोत्तम ! यह जो दूसरा ब्राह्मण यहाँ आया है, यह भी उसी श्रेष्ठ अयोध्या नगरीमें उत्तम कुलका ब्राह्मण था। एक बार यह परम श्रद्धा-भक्तिसे समन्वित होकर धर्मकी उत्तम कथाको सुननेके लिये गया था। वहाँपर उसने भक्तिपूर्वक उत्तम पवित्र आश्वानको सुनकर उन महात्मा वाचककी प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् यह ब्राह्मण उस परम तेजस्वी वाचकको दक्षिणामें एक माशा स्वर्ण दान देकर परम आनन्दित हुआ। यही इसका पुण्य है। जो यह मेरे द्वारा सम्मानित हुआ है यह उसी पुण्यकर्मका परिणाम है। श्रद्धा-भक्तिसमन्वित जो व्यक्ति वाचककी पूजा करता है, उसीसे मैं भी पूजित हो जाता हूँ।

जो मनुष्य अच्छे-से-अच्छे भोज्य पदार्थोंके द्वारा वाचकको परितृप्त करता है, उसीसे मेरी भी संतुष्टि हो जाती है।

मेरी संतानें—यम, यमी, शनि, मनु तथा तृपती मुझे उतने प्रिय नहीं हैं, जितना मुझे कथावाचक प्रिय है'। वाचकके संतुष्ट होनेपर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। क्योंकि हे देवसेनापते ! सबसे पहले संसारके द्वार पुण्य जो मेरा मुख था, उसी मुखसे संसारका कल्याण करनेके निमित्त सभी इतिहास-पुराणादि ग्रन्थ प्रकट हुए। महामते ! मुझे पुराण वेदोंसे भी अधिक प्रिय है। जो श्रद्धाभावसे नित्य इन्हें सुनते हैं और वाचकको वृत्ति प्रदान करते हैं, वे परमपद प्राप्त करते हैं। सुवत ! धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष—पुरुषार्थचतुष्टयकी उत्तम व्याख्याके लिये मैंने ये इतिहास-पुराण बनाये हैं। वेदोंका अर्थ अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। अतएव महामते ! इनको जाननेके लिये ही मैंने इतिहास-पुराणोंकी रचना की है। जो मनुष्य प्रतिदिन पुराण-श्रवणका उत्तम कार्य करवाता है, वह सूर्यदेवसे ज्ञान प्राप्तकर परमपदको प्राप्त करता है। वाचकको जो दक्षिणा देता है, वह सूर्यदेवके लोकको प्राप्त करता है। हे सूरश्रेष्ठ ! इसमें आश्चर्य क्या है ? जैसे देवताओंमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं, शस्त्रोंमें वज्र श्रेष्ठ है और जैसे तेजस्विणोंमें आरि, नदियोंमें सागर श्रेष्ठ माना गया है, वैसे ही सभी ब्राह्मणोंमें

इतिहास-पुराण-वाचक ब्राह्मण श्रेष्ठ है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पुराण-वाचकका पूजन करता है, उसके उस पुण्यकर्मद्वारा सम्पूर्ण जगत् पूजित हो जाता है।

**ब्रह्माजीने पुनः कहा—**दिण्डिन् ! देवदेवेश्वर भगवान् सूर्यके मन्दिरमें जो मनुष्य धर्मका श्रवण करता है या करता है, उसके पुण्यसे वह परम गतिको प्राप्त करता है।

जो पुरुष भगवान् सूर्यकी तीन चार प्रदक्षिणा करके भूमिपर मस्तक झुकाकर सूर्यनारायणको प्रणाम करता है, वह उतम गतिको प्राप्त होता है। जो मनुष्य जूता पहनकर मन्दिरमें प्रवेश करता है, वह तामिस नामक धर्मकर नरकमें जाता है। जो सूर्यदेवके स्नानार्थ घृत, दूध, मधु, इक्षुरस अथवा गङ्गादि पवित्र नदियोंका उत्तम जल देते हैं, वे सम्पूर्ण कर्मपापोंको प्राप्तकर सूर्यमण्डलको प्राप्त करते हैं। अभियेकके समय जो उनका भक्तिपूर्वक दर्शन करते हैं, उन्हें अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है और अन्तमें वे शिवलोकको जाते हैं। सूर्यभागवान्को ऐसे स्थानपर स्नान कराना चाहिये, जहाँ स्नानका जल आदि किसीसे लीसा न जा सके। जलका लुप्तन हो जानेपर अनुप होता है। (अध्याय १४-१५)

### जया-सप्तमी-व्रतका वर्णन

**दिण्डीने कहा—**ब्रह्मन् ! आपने मुझसे जो सप्त सप्तमियोंका वर्णन किया है, उसमें जो पहली सप्तमी है, उसके विषयमें तो आपने विस्तारपूर्वक वर्णन किया, किन्तु शेष छः सप्तमियोंके विषयमें कुछ नहीं कहा। अतः अन्य सभी सप्तमियोंका भी आप वर्णन करें, जिनमें उपवास करके मैं सूर्यलोकको प्राप्त कर सकूँ।

**ब्रह्माजी बोले—**दिण्डिन् ! शुक्ल पक्षकी जिस सप्तमीको हस्त नक्षत्र हो, उसे 'जया' सप्तमी कहते हैं। उस दिन किया गया दान, हवन, जप, तर्पण तथा देव-पूजन एवं सूर्यदेवका पूजन सौगुना लब्धप्रद होता है। यह सप्तमी भगवान् भास्करको अत्यन्त प्रिय है। यह पापनाशनी, श्रेष्ठ यश देनेवाली, पुत्र प्राप्त करनेवाली, अभीष्ट इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली और लक्ष्मीको प्राप्त करानेवाली है। प्राचीन कालमें इसी तिथि को भगवान् सूर्यने हस्त नक्षत्रपर संक्रमण किया था,

इसलिये इसे शुक्ल सप्तमी भी कहते हैं। अपने दोनों हाथोंमें कमल धारण किये हुए भगवान् सूर्यकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर विधिपूर्वक वर्षभर उनका पूजन करना चाहिये। इस व्रतमें तीन पारणाय करनी चाहिये। प्रथम पारणा चार मासपर करे। उसमें करवीरके पुष्प तथा रक्तचन्दन, गुगुलु-धूप तथा गेहूँके आटेके लड्डूके नैवेद्य आदिसे पूजा करनी चाहिये। इस विधिसे देवधिपति मार्तण्ड भगवान् सूर्यकी विधिपूर्वक पूजा करके ब्राह्मणोंकी पूजा करे। सप्तमी तिथिमें उपवास रत्नकर अष्टमीको पारणा करनी चाहिये। इस पारणामें पीली सरसोईमिश्रित जलसे स्नान करे, गोमयका प्राशन करे तथा मदारसे दन्तधावन करे। 'भानुर्मे श्रेयताम्'—'भगवान् सूर्य मुझपर प्रसन्न हो'—ऐसा उच्चारण करते हुए ये क्रियाएँ सम्पन्न करे। यह पहली पारणा-विधि है।

दूसरी पारणामें मालतीके पुष्प, श्रीलङ्घ-चन्दन,



पायसका नैवेद्य तथा विजय-धूप देनी चाहिये। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी वैसा ही भोजन करना चाहिये। 'रविर्मे प्रीयताम्'—'सूर्यदेव ! मुझपर प्रसन्न हो'—ऐसा कहते हुए पञ्चगव्य प्राशनकर खदिरकी लकड़ीसे दन्तधावन करना चाहिये।

तीसरी पारणामे अगस्ति-पुष्पसे भगवान् भास्करका पूजन करना चाहिये। इस व्रतमें भगवान् सूर्यको श्रीगण्ड, कुम्भ, सिद्धक-धूप देने चाहिये, क्योंकि ये भगवान्को अत्यन्त प्रिय हैं।

'विकर्तनो मे प्रीयताम्'—'भगवान् विकर्तन-सूर्य

मुझपर प्रसन्न हो'—ऐसी प्रार्थना करते हुए कुशोदकका प्राशन करना चाहिये तथा बेरकी दातून करनी चाहिये। वर्षके अन्तमें भगवान् सूर्यको गन्ध-पुष्प तथा नैवेद्यादि उपचारोंसे विधिवत् पूजा करनी चाहिये, अनन्तर उनकी समस्त अवस्थित होकर परम पवित्र पुरुषका वाचन करवाना चाहिये।

विष्णो ! इस विधिसे जो पुरुष इस सप्तमी-विधिको व्रत करता है, उसके खानादिक समस्त व्रतके कार्य सौगुना फल देनेवाले हो जाते हैं। इस सप्तमीके व्रतको करनेवाला व्यक्ति यश, धन, धान्य, सुवर्ण, पुत्र, आयु, बल तथा लक्ष्मीको प्राप्त कर सूर्यलोकको जाता है। (अध्याय ९६)

### जयन्ती-सप्तमीका विधान और फल

ब्राह्मणोंको बोलें—त्रिलोक्य ! माघ मासके शुद्ध पक्षकी सप्तमी विधि जयन्ती-सप्तमी कही जाती है, यह पुण्यदायिनी, पापविनाशिनी तथा कल्याणकारिणी है। इस विधिपर जिस विधिसे उपासना करनी चाहिये, उसे आप सुनें। पण्डितोंने इस व्रतमें चार पारणाओंका उल्लेख किया है। पञ्चमै विधिकमें एकभुक्त, षष्ठीमें नवव्रत और सप्तमीमें उपवास करके अष्टमीमें पारणा करनी चाहिये। माघ, फाल्गुन तथा चैत्र मासमें जय जयन्ती-सप्तमीका व्रत किया जाय तब भगवान् सूर्यको बहुलरूपे सुन्दर पुष्प चढ़ाने चाहिये तथा कुंकुमका तिलेपन करना चाहिये, मोदकोंका नैवेद्य और धृतकर धूप देना चाहिये। पञ्चगव्य-प्राशन करके पवित्रीकरण करना चाहिये। ब्राह्मणोंको मोदक यथाशक्ति खिलायना चाहिये तथा शालि नामक चावलका भात भी देना चाहिये। इस प्रसन्न जो मनुष्य लोकपूज्य भगवान् भास्करकी पूजा करता है, वह इस व्रतकी सभी पारणाओंमें अश्वमेध एवं राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त करता है।

द्वितीय पारणामें सूर्यभगवान्की पूजा करके राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें सूर्यदेवकी पूजा करनेके लिये शतदल कमल तथा श्वेत चन्दन

और गुग्गुलुके धूपका विधान कहा गया है। इसमें गुह्यके बने हुए अपूपका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये और गोमयका प्राशन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको गुह्यसे बने हुए अपूपोंका भोजन करना अच्छा माना गया है। यह पारणा पापनाशिक है।

तृतीय पारणाकी विधि इस प्रकार है—आवण, भाद्रपद और आश्विन मासमें रक्त चन्दन, मारुतीक पुष्प और विजय नामक धूपका पूजनमें प्रयोग करना चाहिये। धृतमें बनाये गये अपूपोंका नैवेद्य निवेदित करना चाहिये। ब्राह्मणोंको भोजन भी उसी व्रतके अपूपोंसे करनेका विधान है। शरीरको परम पवित्र करनेवाले कुशोदकका पान करना चाहिये। यह तृतीय पारणा पापोंका नाश करनेवाली कही गयी है।

अब चौथी पारणा बता रहा हूँ, इसे सुनें—कर्तिक, मार्गशीर्ष तथा पौष मासमें सूर्यपूजनकी पारणा करनेसे अनन्त पुण्यफल प्राप्त होते हैं। इस पारणामें कर्करके लाल पुष्प, रक्तचन्दन देने चाहिये। अमृत नामका धूप, पायसका श्रेष्ठ नैवेद्य निवेदित करना चाहिये। श्वेत गायकें महुँकर प्राशन करनेका विधान है।

चौरी पारणाओंमें क्रमशः 'चित्रभानुः प्रीयताम्', 'भानुः प्रीयताम्', 'आदित्यः प्रीयताम्' तथा 'भास्करः

१-अगस्त चन्दन पुते मिहके जूएत तथा समधौनु कर्करकीट चपुतपुष्पते॥

(ब्राह्मण्य ९७। ९९)

अगस्त, चन्दन, मोथा, सिद्धक (एक गन्ध-द्रव्य) और जिन्दू (खैर, खैर, जिर) को समभाग लेकर जो धूप बनाया जाता है, उसे अमृत-धूप कहते हैं।

प्रीयताम्—ऐसा उच्चारण करना चाहिये। इस विधिसे जो मनुष्य विभावसु भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा करता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। इस प्रकार सप्तमी-व्रत करनेवाले व्रतकर्ताको सभी अभीष्ट कामनाओंकी प्राप्ति हो जाती है। पुत्रार्थी पुत्र तथा धनार्थी धन प्राप्त करता है और योगी मनुष्य

योगसे मुक्त हो जाता है तथा अन्तमें वह नितान्त कल्याण प्राप्त करता है।

इस प्रकार जो मनुष्य इस सप्तमी-व्रतका आचरण करता है, वह सर्वत्र विजयी होता है तथा सभी पापोंसे मुक्त होकर वह विभुत्वात्मा सूर्यलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १७)

### अपराजिता-सप्तमी एवं महाजया-सप्तमी-व्रतका वर्णन

**ब्रह्माजी बोले—**गणधिय । भाद्रपद मासके शुक्ल-पक्षकी सप्तमी तिथि अपराजिता-सप्तमी नामसे विख्यात है। यह महापातकोंका नाश करती है। इस प्रातमें चतुर्थी तिथिमें एकभूत और पञ्चमी तिथिमें नक्षत्रव्रत करनेका विधान है। षष्ठी तिथिमें उपवास करके सप्तमी तिथिमें पारणा करनेका विधान है। विद्वानोंने इसमें भी चार पारणायें बतायी हैं। सूर्यदेवकी पूजा करवीर-पुष्प, रक्तचन्दन, गुग्गुलुसे बने हुए धूप, गुड़से बने अपूपसे करनी चाहिये। भाद्रपद आदि तीन मासोंमें श्वेत पुष्प, श्वेत चन्दन, धूतका धूप तथा पायसके नैवेद्यसे सूर्यदेवका पूजन करना चाहिये। मार्गशीर्ष आदि तीन महीनोंमें अगस्त्य-पुष्प, कुङ्कुमका विलेपन, सिद्धक-धूप, शर्बिल-पायलके नैवेद्य आदिसे पूजा करनी चाहिये। फाल्गुन आदि तीन मासोंमें रक्त कमलके पुष्प, अगार, चन्दन, अनन्त नामक धूप, शर्करा या मिश्रीखण्डसे बने हुए अपूपके नैवेद्यसे सूर्यदेवकी पूजा करनी चाहिये। विद्वानोंने ज्येष्ठ आदिके महीनोंमें सूर्यदेवकी पूजा करनेके लिये इसी विधिसे कहा है। चारों पारणाओंमें क्रमशः भगवान् सूर्यदेवके नाम इस प्रकार हैं—सुधांशु, अर्यमा, सविता और विपुलक्षक। सभी

पारणओंमें क्रमशः 'सुधांशुः प्रीयताम्' इत्यादि कहे। गोमूत्र, पञ्चगव्य, घृत, गरम दूध—ये व्रतके क्रमशः प्राशन-पदार्थ हैं।

जो मनुष्य इस विधिसे इस सप्तमी-व्रतको करता है, वह युद्धमें शत्रुओंसे पराजित नहीं होता। वह शत्रुको जीतकर धर्म, अर्थ तथा काम—इस त्रिवर्गके फलको भी निःसंदेह प्राप्त कर लेता है। त्रिवर्गको प्राप्त करके वह सूर्य-लोकको प्राप्त होता है।

जो मनुष्य इस प्रकार सदा प्रयत्नपूर्वक सप्तमी-व्रतको करता है, वह शत्रुको पराजित करके सूर्यलोकको प्राप्त करता है और श्वेत अश्वोंसे युक्त एवं स्वर्णिम ध्वज-पताकासे समन्वित यन्त्रके द्वारा भगवान् ब्रह्मदेवके समीपमें जाकर उनका प्रिय हो जाता है।

**ब्रह्माजी बोले—**शुक्लपक्षकी साप्ती तिथिमें जब सूर्य संक्रमण करते हैं, तब वह सप्तमी महाजया कहलाती है, जो भगवान् भास्करको अत्यन्त प्रिय है। इस अवसरपर किये गये स्नान, दान, जप, होम और पितृ-देव-पूजन—ये सब कार्य कोई-गुना फल देते हैं—ऐसा भगवान् भास्करने स्वयं कहा है। (अध्याय १८-१९)

### नन्दा-सप्तमी तथा भद्रा-सप्तमी-व्रतका विधान

**ब्रह्माजी बोले—**हे वीर । मार्गशीर्ष मासमें शुक्ल पक्षकी जो सप्तमी होती है, वह नन्दा कहलाती है। वह सभीको आनन्दित करनेवाली तथा कल्याणकारिणी है। इस व्रतमें पञ्चमी तिथिमें एकभूत और षष्ठी तिथिमें नक्षत्रव्रत कर मनीषीलोग सप्तमी तिथिमें उपवास व्रतलते हैं। इस व्रतमें

विद्वानोंने तीन पारणओंके करनेका उपदेश किया है। इसके पूजनमें मालतीके पुष्प, सुगन्ध, चन्दन, कर्पूर और अगारसे मिश्रित धूपका प्रयोग करना चाहिये। खाँड़के सहित दही-भातका नैवेद्य भगवान् भास्करको प्रिय है। उसी खाँड़मिश्रित दही-भातका भोजन ब्राह्मणोंको करवाना चाहिये। तत्पश्चात्

१-श्रीखण्ड ग्रन्थसहितमगुरुः सिद्धक तथा। मूल तथेनं भूतेन शर्करा गुह्यते ज्ञायम् ॥

इत्येव श्रुतेनान्तमु कथितो देवसत्तमः ।

(आख्यान १८।१९-२०)

श्रीखण्ड. अगार, सिद्धक, नागमोथा, शनिखर्ब, इन्द्रायण तथा शर्करा मिलकर जो धूप बनाया जाता है, उसे अनन्त नामक धूप कहा गया है।

स्वयं भी उसी भोजनको करना चाहिये। भगवान् भास्करको धूप देनेके लिये प्रथम पारणामे विधि इस प्रकार है—  
पल्लवाके पुष्प, पक्षक<sup>१</sup> धूप अथवा यथासामर्थ्य जो भी धूप हो सके, उसी धूपसे पूजा करनी चाहिये।

द्वितीय पारणामे प्रबोध<sup>२</sup> धूप, शर्कराखण्डसे मिश्रित पुष्पक नैवेद्य सूर्यनारायणको अर्पित करनेका विधान है। खाँड़मिश्रित भोजनसे ब्राह्मणोंको भोजन भी करना चाहिये। निम्ब-पत्रका प्राशन करनेके पश्चात् स्वयं भी मौन होकर भोजन करना चाहिये।

तृतीय पारणामे भगवान् भास्करको प्रसन्न करनेके लिये नील या श्वेत कमल और गुगुलुके धूप तथा पायसका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। प्राशनमें तथा विलेपनमें भी चन्दनके उपयोगकी विधि कही गयी है।

मनुष्योंको सदा पवित्र करनेवाले भगवान् सूर्यनारायणके नामोंको भी सुने—विष्णु, भग तथा धाता ये उनके नाम हैं। प्रत्येक पारणामे क्रमशः 'विष्णुः प्रीयताम्' इत्यादि उच्चारण करना चाहिये। इस विधिसे जो मनुष्य दत्तचित्त होकर भगवान् भास्करकी पूजा करता है, वह इस लोकमें अपनी कामनाओंको पूर्ण करके अनन्तकालतक आनन्दित रहता है। तत्पश्चात् सूर्यलोकमें जाकर वह वहाँ भी आनन्दको प्राप्त करता है।

(अध्याय १००-१०१)

### तिथियों और नक्षत्रोंके देवता तथा उनके पूजनका फल

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! यद्यपि भगवान् सूर्यको सभी तिथियाँ प्रिय हैं, किन्तु सप्तमी तिथि विशेष प्रिय है।

**शतानीकने पूछा—**जब भगवान् सूर्यको सभी तिथियाँ प्रिय हैं तो सप्तमीमें ही यज्ञ, दान आदि विशेषरूपसे कते अनुष्ठित होते हैं ?

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! प्राचीन कालमें इस

विषयमें भगवान् विष्णुने सुरज्येष्ठ ब्रह्माजीसे जो प्रश्न किये थे और ब्रह्माजीने जैसा उत्तर दिया था, उसमें मैं आपको बताता हूँ आप श्रवण करें—

**ब्रह्माजी बोले—**विष्णो ! विभाजनके समय प्रतिपद आदि सभी तिथियाँ अग्नि आदि देवताओंको तथा सप्तमी भगवान् सूर्यको प्रदान की गयी। जिन्हें जो तिथि दी गयी, वह

१-कपूर, चन्दन, कुष्ठ (कुटकी), अगर, सिद्धक, अशिरवर्ष, कस्तूरी, कुंकुम, गूजन तथा हरीतकीके मेलसे पक्षक धूप बनता है।

सप्तमि वृक्षों भीम कुंकुम गूजन तथा हरीतकी तथा भीम एव पक्षक उच्यते॥

(ब्राह्मपर्व १००।६-७)

कपूर, चन्दन, कुष्ठ (कुटकी), अगर, सिद्धक, अशिरवर्ष, कस्तूरी, कुंकुम, गूजन तथा हरीतकीके मेलसे पक्षक धूप बनता है।

२-कृष्णाग्रः सिते केले बालके वृक्षों तथा॥

चन्दने तगरों मुस्ता प्रबोधशर्करामिलात। (ब्राह्मपर्व १००।८-९)

कृष्णाग्र, श्वेत कमल, सुगन्धबाल, कस्तूरी, चन्दन, तगर, जगरमेख और शर्करा मिलाकर प्रबोध धूप बनता है।

उसका ही स्वामी कहलाया। अतः अपने दिनपर ही अपने मन्त्रोंसे पूजे जानेपर वे देवता अभीष्ट प्रदान करते हैं।

सूर्यने अग्निको प्रतिपदा, ब्रह्मको द्वितीया, यक्षराज कुबेरको तृतीया और गणेशको चतुर्थी तिथि दी है। नागराजको पञ्चमी, कार्तिकेयको षष्ठी, अपने लिये सप्तमी और रुद्रको अष्टमी तिथि प्रदान की है। दुर्गादेवीको नवमी, अपने पुत्र यमराजको दशमी, विष्वदेवगणोंको एकादशी तिथि दी गयी है। विष्णुको द्वादशी, कामदेवको त्रयोदशी, शङ्करको चतुर्दशी तथा चन्द्रमाको पूर्णिमाकी तिथि दी है। सूर्यके द्वारा पितरोंको पवित्र, पुण्यशालिनी अमावास्या तिथि दी गयी है। ये कही गयी पंद्रह तिथियाँ चन्द्रमाकी हैं। कृष्ण पक्षमें देवता इन सभी तिथियोंमें शनैः शनैः चन्द्रकलशओंका पान कर लेते हैं। वे शुक्ल पक्षमें पुनः सोलहवीं कलाके साथ उदित होती हैं। वह अकेली षोडशी कला सदैव अक्षय रहती है। उसमें साक्षात् सूर्यका निवास रहता है। इस प्रकार तिथियोंका क्षय और वृद्धि स्वयं सूर्यनारायण ही करते हैं। अतः वे सबके स्वामी माने जाते हैं। ध्यानमात्रसे ही सूर्यदेव अक्षय गति प्रदान करते हैं। दूसरे देवता भी जिस प्रकार उपासकोंको अभीष्ट कामना पूर्ण करते हैं, उसे मैं संक्षेपमें बताता हूँ, आप सुने—

प्रतिपदा तिथिमें अग्निदेवकी पूजा करके अमृतकूपी मृतका हवन करे तो उस हविसे समस्त धान्य और अर्थाभित धनकी प्राप्ति होती है। द्वितीयाको ब्रह्मकी पूजा करके ब्रह्मचारी ब्राह्मणको भोजन करानेसे मनुष्य सभी विद्याओंमें पारङ्गत हो जाता है। तृतीया तिथिमें धनके स्वामी कुबेरका पूजन करनेसे मनुष्य निश्चित ही विपुल धनवान् बन जाता है तथा क्रय-विक्रयादि व्यापारिक व्यवहारमें उसे अत्यधिक लाभ होता है। चतुर्थी तिथिमें भगवान् गणेशका पूजन करना चाहिये। इससे सभी विघ्नोंका नाश हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। पञ्चमी तिथिमें नागोंकी पूजा करनेसे विषका भय नहीं रहता, स्त्री और पुत्र प्राप्त होते हैं और श्रेष्ठ लक्ष्मी भी प्राप्त होती है। षष्ठी तिथिमें कार्तिकेयकी पूजा करनेसे मनुष्य श्रेष्ठ मेधावी, रूप-सम्पन्न, दीर्घायु और कीर्तिके बढानेवाला हो जाता है। सप्तमी तिथिको चित्रभानु नामवाले भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करना चाहिये, ये सबके स्वामी एवं रक्षक हैं। अष्टमी तिथिके वर्षाभसे सुशोभित भगवान् सदाशिवकी पूजा करनी

चाहिये, वे प्रचुर ज्ञान तथा अत्यधिक कान्ति प्रदान करते हैं। भगवान् शङ्कर मृत्युहरण करनेवाले, ज्ञान देनेवाले और बन्धनमुक्त करनेवाले हैं। नवमी तिथिमें दुर्गाकी पूजा करके मनुष्य इच्छापूर्वक संसार-सागरको पार कर लेता है तथा संशय और लोकव्यवहारमें वह सदा विजय प्राप्त करता है। दशमी तिथिके यमकी पूजा करनी चाहिये, वे निश्चित ही सभी रोगोंको नष्ट करनेवाले और नरक तथा मृत्युसे मानवका उद्धार करनेवाले हैं। एकादशी तिथिको विष्वदेवोंकी भली प्रकारसे पूजा करनी चाहिये। वे भक्तको संतान, धन-धान्य और पृथ्वी प्रदान करते हैं। द्वादशी तिथिको भगवान् विष्णुकी पूजा करके मनुष्य सदा विजयी होकर समस्त लोकमें वैसे ही पूज्य हो जाता है, जैसे किरणमाली भगवान् सूर्य पूज्य है। त्रयोदशीमें कामदेवकी पूजा करनेसे मनुष्य उत्तम रूपवान् हो जाता है और मनोवाञ्छित रूपवती भार्या प्राप्त करता है तथा उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। चतुर्दशी तिथिमें भगवान् देवदेवेश्वर सदाशिवकी पूजा करके मनुष्य समस्त ऐश्वर्योंसे समन्वित हो जाता है तथा बहुत-से पुत्रों एवं प्रभूत धनसे सम्पन्न हो जाता है। पूर्णिमासी तिथिमें जो भक्तिमान् मनुष्य चन्द्रमाकी पूजा करता है, उसका सम्पूर्ण संसारपर अपना आधिपत्य हो जाता है और वह कभी नष्ट नहीं होता। द्विष्टिन्। अपने दिनमें अर्धात् अमावास्यामें पितृगण पूजित होनेपर सदैव प्रसन्न होकर प्रजावृद्धि, धन-रक्षा, आयु तथा बल-शक्ति प्रदान करते हैं। उपवासके बिना भी ये पितृगण उक्त फलको देनेवाले होते हैं। अतः मानवको चाहिये कि पितरोंको भक्तिपूर्वक पूजाके द्वारा सदा प्रसन्न रखे। मूलमन्त्र, नाम-संकीर्तन और अंश मन्त्रोंसे कमलके मध्यमें स्थित तिथियोंके स्वामी देवताओंकी विविध उपचारोंसे भक्तिपूर्वक यथाविधि पूजा करनी चाहिये तथा जप-होमादि कर्ष्य सम्पन्न करने चाहिये। इसके प्रभावसे मानव इस लोकमें और परलोकमें सदा सुखी रहता है। उन-उन देवोंके लोकोंको प्राप्त करता है और मनुष्य उस देवताके अनुरूप हो जाता है। उसके सारे अष्टि नष्ट हो जाते हैं तथा वह उत्तम रूपवान्, धार्मिक, शत्रुओंका नाश करनेवाला राजा होता है।

इसी प्रकार सभी नक्षत्र-देवता जो नक्षत्रोंमें ही व्यवस्थित हैं, वे पूजित होनेपर समस्त अभीष्ट कामनाओंको प्रदान करते



हैं, अब मैं उनके विषयमें बताता हूँ। अश्विनी नक्षत्रमें अश्विनीकुमारोंकी पूजा करनेसे मनुष्य दीर्घायु एवं व्याधिमुक्त होता है। भरणी नक्षत्रमें कृष्ण वर्णके सुन्दर पुष्पो तथा शुभ कर्पूरदि गन्धसे पूजित यमदेव अपमृत्युसे मुक्त कर देते हैं। कृत्तिका नक्षत्रमें रक्त पुष्पोसे बनी हुई माल्यादि और होमके द्वारा पूजा करनेसे अग्निदेव निश्चित ही यथेष्ट फल देते हैं। रोहिणी नक्षत्रमें प्रजापति—मुझ ऋद्धाकी पूजा करनेसे मैं उसकी अभिलाषा पूर्ण कर देता हूँ। मृगशिरा नक्षत्रमें पूजित होनेपर उसके स्वामी चन्द्रदेव उसे ज्ञान और आरोग्य प्रदान करते हैं। आर्द्रा नक्षत्रमें शिवके अर्चनसे विजय प्राप्त होती है। सुन्दर कमल आदि पुष्पोसे पूजे गये भगवान् शिव सदा कल्याण करते हैं।

पुनर्वसु नक्षत्रमें अदितिकी पूजा करनी चाहिये। पूजासे संतुष्ट होकर वे माताके सदृश रक्षा करती हैं। पुष्य नक्षत्रमें उसके स्वामी बृहस्पति अपनी पूजासे प्रसन्न होकर प्रभु सदृश प्रदान करते हैं। आश्लेषा नक्षत्रमें नगोंकी पूजा करनेसे नागदेव निर्भय कर देते हैं, काटते नहीं। मघा नक्षत्रमें हव्य-कव्यके द्वारा पूजे गये सभी चित्तुगण धन, धान्य, भूत, पुत्र तथा पशु प्रदान करते हैं। पूर्वाषाढा नक्षत्रमें पूजासे पूजा करनेपर विजय प्राप्त हो जाती है और उत्तराषाढा नक्षत्रमें भग नामक सूर्यदेवकी पुष्पादिसे पूजा करनेपर वे विजय, कन्याको अभीष्टित पति और पुरुषको अभीष्ट पत्नी प्रदान करते हैं तथा उन्हें रूप एवं द्रव्य-सम्पत्तसे सम्पन्न बना देते हैं। हस्त नक्षत्रमें भगवान् सूर्य गन्ध-पुष्पादिसे पूजित होनेपर सभी प्रकारकी धन-सम्पत्तिर्था प्रदान करते हैं। चित्रा नक्षत्रमें पूजे गये भगवान् त्वष्टा शत्रुहित राज्य प्रदान करते हैं। स्वाती नक्षत्रमें वायुदेव पूजित होनेपर संतुष्ट हो परमशक्ति प्रदान करते हैं। विशाखा नक्षत्रमें लाल पुष्पोसे इन्द्रादिक पूजन करके मनुष्य इस लोकमें धन-धान्य प्राप्त कर सदा तेजस्वी रहता है।

अनुराधा नक्षत्रमें लाल पुष्पोसे भगवान् मित्रदेवकी भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा करनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और वह इस लोकमें चिरकालतक जीवित रहता है। ज्येष्ठा नक्षत्रमें

देवराज इन्द्रकी पूजा करनेसे मनुष्य पुष्टि प्राप्त करता है तथा गुणोंमें, धनमें एवं कर्ममें सबसे श्रेष्ठ हो जाता है। मूल नक्षत्रमें सभी देवताओं और पितरोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे मानव स्वर्गमें अवल-रूपसे निवास करता है और पूर्वोक्त फलोंको प्राप्त करता है। पूर्वाषाढा नक्षत्रमें अप-देवता (जल) की पूजा और हवन करके मनुष्य शारीरिक तथा मानसिक संतापोसे मुक्त हो जाता है। उत्तराषाढा नक्षत्रमें विश्वेदेवों और भगवान् विश्वेश्वरकी पुष्पादिद्वारा पूजा करनेसे मनुष्य सभी कुछ प्राप्त कर लेता है।

श्रवण नक्षत्रमें श्वेत, पीत और नील वर्णके पुष्पोद्वारा भक्तिभावसे भगवान् विष्णुकी पूजा कर मनुष्य उत्तम लक्ष्मी और विजयको प्राप्त करता है। धनिष्ठा नक्षत्रमें गन्ध-पुष्पादिसे वसुओंके पूजनसे मनुष्य बहुत बड़े भयसे भी मुक्त हो जाता है। उसे कहीं कुछ भी भय नहीं रहता। शतभिषा नक्षत्रमें इन्द्रकी पूजा करनेसे मनुष्य व्याधियोंसे मुक्त हो जाता है और अक्षुर व्यक्ति पुष्टि, स्वास्थ्य और ऐश्वर्यको प्राप्त करता है। पूर्वाषाढा नक्षत्रमें शुद्ध स्पष्टिक मणिके समान कानिमान् अजन्म प्रभुकी पूजा करनेसे उत्तम भक्ति और विजय प्राप्त होती है। उत्तराषाढा नक्षत्रमें अतिर्बुध्न्यकी पूजा करनेसे परम शक्तिकी प्राप्ति होती है। रेवती नक्षत्रमें श्वेत पुष्पसे पूजे गये भगवान् पूषा सदैव मङ्गल प्रदान करते हैं और अवल भूति तथा विजय भी देते हैं।

अपनी सामर्थ्यके अनुसार भक्तिसे किये गये पूजनसे ये सभी सदा फल देनेवाले होते हैं। यात्रा करनेकी इच्छा हो अथवा किसी कार्यको प्रारम्भ करनेकी इच्छा हो तो नक्षत्र-देवताकी पूजा आदि करके ही यह सब कार्य करना उचित है। इस प्रकार करनेपर यात्रामें तथा क्रियामें सफलता होती है—ऐसा स्वयं भगवान् सूर्यने कहा है।

**ऋद्धाजीने कहा—**मधुसूदन ! आप भक्तिपूर्वक सूर्यकी उदरधना करें; क्योंकि भगवान् सूर्यकी नित्य पूजा, नमस्कार, सेवा-व्रत, उपवास, हवनआदि तथा विविध प्रकारसे ब्राह्मणोंको तृप्त करनेसे मनुष्य पापरहित होकर सूर्यलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १०२)

## सूर्य-पूजाका माहात्म्य

**ब्रह्माजी बोले—**मधुसूदन ! जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवका मन्दिर बनवाता है, वह अपनी स्रष्टा पीढ़ियोंको दिव्य सूर्यलोक प्राप्त कर देता है। सूर्यदेवके मन्दिरमें जितने वर्षपर्यन्त भगवान् सूर्यकी पूजा होती है, उतने हजार वर्षोंतक वह सूर्यलोकमें आनन्द प्राप्त करता है। जिसके घरमें अर्घ्य, पुष्प, चन्दन, नैवेद्य आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी विधिपूर्वक आराधना होती है, वह चाहे सकाम हो या निष्काम, वह सूर्यकी साम्यता प्राप्त कर लेता है। भगवान् सूर्यमें अपने मनको लगाकर जो व्यक्ति अत्यन्त सुगन्धित मनोहारी पुष्प, ध्वज तथा अमृतादि नामक धूप, अत्यधिक सुगन्धित कर्पूरादिके विलेपनका लेप, दीपदान, नैवेद्य आदि उपहार भगवान् सूर्यनारायणको प्रतिदिन अर्पण करता है, वह अपनी अभीष्ट इच्छा प्राप्त कर लेता है। यज्ञाधिपति भगवान् भास्कर यज्ञोंसे भी प्रसन्न होते हैं, किन्तु धनवान् तथा लोकसेवकी मनुष्य ही बहुत-से संसाधनों और नाना प्रकारके सम्पत्तियोंसे युक्त एवं विस्तृत (अश्वमेध तथा राजसूयादि) यज्ञ सम्पन्न कर पाते हैं, इसलिये यदि मनुष्य भगवान् सूर्यकी भक्तिभावसे दूर्वाङ्गुरोंसे भी पूजा करते हैं तो सूर्यदेव उन्हें इन सभी यज्ञोंके करनेसे प्राप्त होनेवाले अति दुर्लभ फलको प्रदान कर देते हैं।

सूर्यदेवको अर्पित करने योग्य पुष्प, भोज्य-पदार्थ—नैवेद्य, धूप, गन्ध और शरीरमें लगानेवाला अनुलेप्य-पदार्थ, भूषण और लाल वस्त्र जो भी उपहार तथा भक्ष्य फल है, वह सब सूर्यदेवके अनुरूप होना चाहिये। उन आदिदेव यज्ञपुरुषकी आप यथाशक्ति आराधना करें। भगवान् सूर्यके मन्दिरमें जो चित्रभानु भगवान् दिवाकरकी तीर्थीके पवित्र जल, गन्ध, मधु, पूत और दूधसे स्नान कराता है, वह सर्गलोकके समान मधुर दूध-दहीसे सम्पन्न हो जाता है अथवा दशरुत शान्तिको प्राप्त कर लेता है। अनेक विदेहवंशीय जनक नामसे प्रख्यात राजा और हैहयवंशी नृपतिगण भगवान् सूर्यकी आराधनासे अमरत्वको प्राप्त हो गये हैं। इसलिये आप भी विधिपूर्वक उपासनासे भगवान् भास्करको संतुष्ट करें, इससे प्रसन्न हुए भगवान् सूर्य शान्ति प्रदान करते हैं।

**विष्णुने पूछा—**ब्रह्मन् ! भगवान् सूर्य उपवाससे कैसे संतुष्ट होते हैं ? उपवास करनेवाले भक्तके द्वारा इनकी

आराधना किस प्रकार की जाय ? इसे आप बतायें।

**ब्रह्माजीने कहा—**जब भोगपरायण व्यक्ति भी धूप, पुष्प आदि उपचारोंसे भगवान् सूर्यकी तन्मायतापूर्वक आराधना कर कल्याण प्राप्त कर लेता है तो फिर उपवास-परायण व्यक्ति यदि आराधना करता है तो उसके कल्याणके विषयमें कहना ही क्या है ?

घरोंसे दूर रहना, सद्गुणोंका आचरण करना और सम्पूर्ण भोगोंसे विरक्त रहना उपवास कहल्यता है। जो उपवास-परायण पुरुष भक्तिभावसे एक रात, दो रात अथवा तीन रात भगवान् सूर्यका ध्यान करता है, उनके नामका जप करता है और उनके उद्देश्यसे ही सम्पूर्ण कार्य करता है तथा उन्हींमें अपना धन लगावे हुए है ऐसा अनासक्त पुरुष भगवान् सूर्यकी पूजाकर उस परम ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य किसी कामकाश अपने मनको भगवान् सूर्यमें लगाकर ध्यानपूर्वक उनकी उपासना करता है, वह वृषभञ्ज भगवान् सूर्यके प्रसन्न होनेपर उस उद्देश्यको प्राप्त कर लेता है।

**विष्णुने पूछा—**विष्णो ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्री आदि सभी सामाजिक पट्टमें कैसे हुए हैं, उन्हें सुगति कैसे प्राप्त होगी ?

**ब्रह्माजीने कहा—**मनुष्य निष्कण्ट-भावसे तिमिरहर भगवान् घालकरकी आराधना करके सद्गति प्राप्त कर सकता है। जो व्यक्ति विषयोंमें आसक्त है तथा भगवान् सूर्यमें मन नहीं लगाता ऐसा पाप-कर्म करनेवाला मनुष्य सद्गति कैसे प्राप्त कर सकेगा ? संसारके दुःखसे पीड़ित व्यक्ति सद्गति प्राप्त करना चाहता है तो उस लोकगुण्य सर्वेश्वर भगवान् ब्रह्माधिपति सूर्यकी पुष्प, सुगन्धित धूप, अगल, चन्दन, वस्त्र, आभूषण तथा भक्ष्य-नैवेद्यादि उपचारोंसे उपवास-परायण होकर आराधना करे। यदि संसारसे विरक्त होकर सद्गति प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो तो कालके स्वामी सूर्यदेवकी आराधना करे। यदि उनकी आराधनाके लिये पुष्प नहीं है तो शुभ वृक्षोंके कोमल पत्तियों एवं दूर्वाङ्गुरोंसे भी पूजा की जा सकती है। अपनी सामर्थ्यके अनुसार पुष्प-पत्र-जल तथा धूपसे भक्तिभावपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजाकर वह अतुलनीय संतुष्टि प्राप्त कर सकता है। सूर्यदेवके लिये विधिवत् एक बार

भी किया गया प्रणाम दस अश्वमेध-यज्ञके बराबर होता है। दस अश्वमेध-यज्ञको करनेवाला मनुष्य बार-बार जन्म लेता है, किंतु सूर्यदेवको प्रणाम करनेवाला पुनः संसारमें जन्म नहीं लेता \* ।

इस प्रकार भक्तिपूर्वक जिसके द्वारा विधि-विधानसे भगवान् सूर्यकी उपासना की जाती है, वह उत्तम गति प्राप्त करता है। उन्हींकी आराधना करके मैं संसार-पुन्य इस ब्रह्मत्वको प्राप्त किया है। आपने भी पहले उन्हीं सूर्यदेवसे अपनी अभीष्ट इच्छाओंको प्राप्त किया। भगवान् शक्र भी उन्हींकी आराधनासे ब्रह्महत्यासे मुक्त हुए। भगवान् दिवाकरकी आराधनासे किन्हीं मनुष्योंने देवत्व, किन्हींने गन्धर्वत्व और किन्हींने विद्याधरत्व प्राप्त किया है। लेख नामक इन्द्रने एक सौ यज्ञोंद्वारा इन्हीं भगवान् सूर्यकी आराधना करके

इन्द्रत्व प्राप्त किया, इसीलिये भगवान् सूर्यके अतिरिक्त अन्य कोई देव पूजनीय नहीं है। ब्रह्मचारीको अन्य देवोंकी अपेक्षा अपने श्रेष्ठ गुरु भगवान् भास्करकी ही आराधना करनी चाहिये क्योंकि ये यज्ञ-पुरुष विषयवान् भगवान् सूर्य सर्वदा पूज्य हैं। स्त्रियोंके लिये पतिके अतिरिक्त विभावसु भगवान् सूर्यदेव ही पूज्य हैं। गृहस्थ-पतिके लिये भी गोपति अश्वमान ही पूजने योग्य हैं। वैश्योंको भी तमोनाशक सूर्यदेवकी पूजा करनी चाहिये। संन्यासियोंके लिये भी सदैव विभावसु ही ध्यान करने योग्य हैं।

इस प्रकार सभी वर्णों तथा सभी आश्रमोंके लिये विभावसु भगवान् सूर्यनारायण ही उपास्य हैं। उनकी आराधनासे सद्गति प्राप्त हो जाती है।

(अध्याय १०३)

### त्रिवर्ग-सप्तमीकी महिमा

**ब्रह्मजी बोले—**विष्णो ! दिन-दिन कामनाओंको लेकर अधवा निष्काम होकर भगवान् सूर्यनारायणके उपवास-व्रतोंको करके व्यक्ति मनोवांछित फल प्राप्त करता है, अब आप उन-उन उपवास-व्रतोंके विषयमें सुने।

जो व्यक्ति फाल्गुन मासकी शुक्ल सप्तमी तिथिके भक्तिपूर्वक बार-बार होल नामक भगवान् सूर्यका जप एवं पूजन करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। देव-पूजनमें पवित्र होकर १०८ बार जप करना चाहिये। स्नान करते हुए, प्रस्थान-कालमें, उठते-बैठते अर्थात् सभी समय भगवान् सूर्यका नामोच्चारण करना चाहिये। उपवास करनेवाले व्यक्तिको पाखण्डी, पतित और अन्यायी लोगोंने बातचीत नहीं करनी चाहिये। श्रद्धापूर्वक सूर्यदेवके प्रति मन एकाग्र करके उनकी पूजा करते हुए इस श्लोकका पाठ करना चाहिये—

हंस हंस कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्धनम् ।

संसारार्णवमग्नानां ज्ञाता भव दिवाकर ॥

(अध्याय १०४।५)

‘हे परमहंस-स्वरूप भगवान् सूर्य ! आप दयालु हैं, गतिहीनोंकी सद्गति प्रदान करनेवाले हैं, संसार-सागरमें निमग्न

लोगोंके लिये आप रक्षक बने।’

इस प्रकार एकाग्रचित होकर उपवास करते हुए भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करना चाहिये। पूर्वाह्नकालमें स्नानकर सूर्यदेवका पूजन करे, तत्पश्चात् ‘हंस हंस’ इस श्लोकका जप करे और भगवान् सूर्यके चरणोंमें तीन बार जलधारा अर्पित करे।

इसी प्रकार चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ मासमें भी भगवान् सूर्यदेवका पूजन करते हुए मनुष्य मृत्युलोकमें ही श्रेष्ठ गतिको प्राप्त कर लेता है और अन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त करता है। आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन मासमें भी इसी विधिसे उपवास रखकर सूर्यभगवान्का ‘मार्तण्ड’ नामसे सम्यक् पूजन और जप करना चाहिये। गोमूत्रके प्राशनसे पवित्र मनुष्य भगवान् होकर कुबेरलोकको प्राप्त करता है। संसारके स्वामी अजस्र आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना एवं अन्तकालमें भगवान् सूर्यका स्मरण करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। कार्तिक आदि चार महानोमें दूधका प्राशन करना चाहिये। इन महानोमें ‘भास्कर’ नामसे भगवान् सूर्यका पूजन तथा जप करना चाहिये। ऐसा करनेपर व्यक्ति भगवान् सूर्यके

\* एकोऽपि हेलेः सुकृतः प्रणमो दशश्वमेधकमुपेतं तुल्यः । दशश्वमेधो पुनर्जितं जन्म होतप्रणमो न पुनर्भवति ॥

लेखको प्राप्त होता है। प्रत्येक मासमें ब्राह्मणोंको यथाभिलषित दान देना चाहिये। चातुर्मासकी सप्ताहपर पुराण-वाचन करना चाहिये और कीर्तनका आयोजन करना चाहिये। विद्वानोंको चाहिये कि कथावाचककी पूजा करके श्राद्धकर्म करे, क्योंकि

सिद्ध मालपूआ आदि पञ्चात्रोद्धार कथावाचक या ब्राह्मणके सहयोगसे किया गया यथोचित श्राद्ध भगवान् सूर्यनारायणको अभीष्ट है। यह लिखि अभीष्ट धर्म, अर्थ तथा काम—इस त्रिवर्गको सदैव देनेवाली है। (अध्याय १०४)



### कामदा एवं पापनाशिनी-सप्तमी-व्रत-वर्णन

**ब्रह्माजी बोले—**विष्णो ! फाल्गुन मासमें शुद्ध पक्षको सप्तमीको उपवास करके भगवान् सूर्यनारायणकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् दूसरे दिन अष्टमीको प्रातः उठकर स्नानादिसे निवृत्त हो भक्तिपूर्वक सूर्यदेवका सम्पत्क पूजन करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। सप्ताहपूर्वक भगवान् सूर्यके निमित्त आहुतियाँ प्रदान कर भगवान् भास्करको प्रणाम कर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

यमाराध्य पुरा देवी सावित्री कामदाय वै ।

स मे ददातु देवेशः सर्वान् कामान् विधासतु ॥

यमाराध्यादितिः प्राप्ता सर्वान् कामान् यथेक्षितान् ।

स ददात्वखिलान् कामान् प्रसन्नो मे दिवस्पतिः ॥

भृगुराज्यज्ञ देवेन्द्रो यमप्यथर्व दिवस्पतिः ।

कामान् सम्प्राप्तवान् तान्यं स मे कामे प्रपन्नान् ॥

(ब्राह्मण १०५।५—७)

'प्राचीन समयमें देवी सावित्रीने अपनी अभीष्ट-मिष्टिके लिये जिन आराध्यदेवकी आराधना की थी, वही मेरे आराध्य भगवान् सूर्य मेरी सभी कामनाओंको प्रदान करें। ऐसी अदितिने जिनकी आराधना करके अपने सभी अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त कर लिया था, वही दिवस्पति भगवान् भास्कर प्रसन्न होकर मेरी सभी अभिलाषाओंको पूर्ण करें। (दुर्वास मुनिके शापके कारण) राजपदसे च्युत देवराज इन्द्रने जिसकी अर्चना करके अपनी सभी कामनाओंको प्राप्त कर लिया था, वही दिवस्पति मेरी कामना पूर्ण करें।'

हे गरुडध्वज ! इस प्रकार भगवान् सूर्यकी प्रार्थना कर पूजा सम्पन्न करें। अनन्तर संयत होकर हविष्यान्नका भोजन

करे। फाल्गुन, वैश्र, वैशाख और ज्येष्ठ—इन चार मासोंमें इस प्रकारसे व्रतकी पारणा करनेका विधान है। भक्तिपूर्वक करवाँरके पुष्पसे चारों महाने सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। कृष्ण अंगरूको धूप जलाना चाहिये और गो-मुद्गका जल प्राशन करना चाहिये तथा खीर-मिश्रित पक्काअन्न नैवेद्य देकर ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये।

अष्टाद्व आदि चातुर्मासमें पारणकी क्रिया इस प्रकार है—इन महानेमें चर्मसीके पुष्प, गुग्गुलुका धूप, कुपैक जल और पारसके नैवेद्यका विधान है। स्वयं भी उसी पायसके नैवेद्यको ग्रहण करना चाहिये।

कार्तिक आदि चातुर्मासमें गोमूत्रसे दारि-शोधन करना चाहिये। दशरुद्र<sup>१</sup>-धूप, रक्त कमल तथा कसाराका नैवेद्य भगवान् सूर्यको निवेदित करना चाहिये। प्रत्येक महानेमें ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। प्रत्येक पारणामे भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको प्रसन्न करनेका प्रयास करना चाहिये और यथाशक्ति संचित धनका दान करना चाहिये। वित्तशोभता (कैजूसी) न करे। क्योंकि सद्भावसे पूजा करनेपर तथा दान आदिसे स्तुत घोड़ोंसे युक्त रथपर आरुढ़ होनेवाले भगवान् सूर्य प्रसन्न होते हैं। पारणके अन्तमें यथाशक्ति जल आदिसे स्नान करके पूजा करनेवा भगवान् सूर्य प्रसन्न हो निर्वोधरूपसे मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं। यह सप्तमी पुण्यदायिनी, पापविनाशिनी तथा सभी फलोंको देनेवाली है। मनुष्यकी जैसी अभिलाषाएँ होती हैं, वैसे ही फल प्राप्त होते हैं। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति सूर्यके सम्मान ही तेजस्वी बनकर स्वर्गमय विमानपर आरुढ़ हो सूर्यलोकको प्राप्त करता

१- कपूर, चन्दन, नागमोक्ष, अमर, लज्ज, लज्ज, शकैश, कुन्ज, सुगन्ध, मिष्टक तथा ॥

दशाहोदय मूलो धूप, पिण्ड देवस्य सर्वत्र ॥

(ब्राह्मण १०५।१५-१६)

कपूर, चन्दन, नागमोक्ष, अमर, लज्ज, लज्ज, शकैश, कुन्ज तथा सुगन्ध—इन्हे सप्तभयमें मिलाकर दशरुद्र नामक धूप बनया जाता है। यह धूप भगवान् सूर्यदेवको सर्वत्र दिये है।



है तथा वहाँ शश्वती शान्तिको प्राप्त करता है। वहाँसे पुनः पृथ्वीपर जन्म लेकर उन गोपति सूर्यभगवान्की ही कृपासे प्रतापी राजा होता है।

इसी प्रकार उत्तरायणके सूर्यमें शुक्ल पक्षमें भग, अर्घ्य,

सूर्य आदिके नक्षत्रोंके पड़नेपर दान-दानसे भगवान् सूर्यकी पूजा कर उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। इससे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इसे पापनाशिनी सप्तमी कहा जाता है।

(अध्याय १०५-१०६)

### सूर्यपदद्वय-व्रत, सर्वांगि-सप्तमी एवं मार्तण्ड-सप्तमीकी विधि

ब्रह्माजी बोले—धर्मज्ञ ! अब मैं जगद्गता देवदेवेश्वर भगवान् सूर्यनारायणके पदद्वय-महात्म्यका वर्णन करता हूँ, इसे आप सुनें।

अंशुमाली सूर्यदेवने संसारके कल्याणकी कामनासे अपने दोनों पादोंको एक पादपीठपर रखा है। उनके वामपादको उत्तरायण और दक्षिणपादको दक्षिणायनके रूपमें जानना चाहिये। सभी इन्द्र आदि देवगण इनके चरणोंकी वन्दना करते रहते हैं। हम और आप सूर्यदेवके दक्षिणपादकी अर्चना करते हैं। विष्णु तथा शङ्कर ब्रह्मापूर्वक उनके वामपादकी पूजा करते हैं। जो मानव प्रत्येक सप्तमीको भगवान् सूर्यदेवकी विधिवत् आराधना करता है, उसपर वे सदा संतुष्ट रहते हैं।

भगवान् विष्णुने पूछा—गोलोक-स्वामी सूर्य-नारायणकी आराधना किस प्रकार की जाती है ? उसके आप वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—उत्तरायण प्रारम्भ होनेके दिन स्नान करके संयमित मनसे घृत-दुग्ध आदि पदार्थोंके द्वारा भगवान् सूर्यको स्नान कराना चाहिये। सुन्दर वस्त्रोपहार, पुष्प-गुप तथा अनुलेपनादिसे उनकी विधिवत् पूजा कर ब्राह्मणोंको भोजन और दक्षिणादिसे संतुष्ट करना चाहिये। उसके बाद सूर्यपूजित-परायण व्यक्तिको उनके पदद्वय-व्रतका विधान ग्रहण करना चाहिये। तदनन्तर स्नान करके 'चित्रभानु' दिवाकरकी वन्दना करनी चाहिये। खाते-चलते, सोते-जागते, प्रणाम करते, हवन और पूजन करते समय भगवान् चित्रभानुका ही जप करते हुए प्रतिदिन उनके नाम-कीर्तनका ही तत्काल जप करना चाहिये, जबतक दक्षिणायनका समय न आ जाय। उनकी प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये—

परमात्ममयं ब्रह्म चित्रभानुमयं परम् ।

यमन्ते संस्मरिष्यामि स मे भानुः परा गतिः ॥

(अध्याय १०७ (१७))

'चित्रभानु परमात्ममय परम ब्रह्म है, जिनका अन्तःकालमें मैं भलीभाँति स्मरण करूँगा, क्योंकि वे ही सूर्यनारायण मेरे परम गति हैं।'

इस प्रकार स्तुति करके धार्मिक भगवान् सूर्यके व्रतको तत्काल करना चाहिये, जबतक दक्षिणायन पूर्ण रूपसे न आ जाय। उसके पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करकर भगवान् मार्तण्डके सामने पुष्प-कथा और आख्यानका पाठ करना चाहिये। भक्तिपूर्वक यथाशक्ति वाक्य और लेखनका पूजन भी करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य यह व्रत करता है, उसके इसी जन्ममें सभी पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। यदि इस छः मासके बीचमें ही व्रतीकी मृत्यु हो जाती है तो उसे पूर्ण उपवासका फल प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उसे भगवान् सूर्यनारायणके चरणद्वय-पूजनका फल भी मिलता है।

ब्रह्माजी पुनः बोले—माघ मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको सर्वांगि-सप्तमी कहते हैं। इस व्रतसे सभी अभीष्टित कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इस व्रतमें पाषण्डी आदि दुष्टचारियोंसे वातालाप न करे और एकत्र-मनसे विनम्र होकर ठहरी भगवान् सूर्यका पूजन करे।

माघ आदि छः मासोंमें प्रत्येक संक्रान्तिको पारणा मानी गयी है। तदनुसार माघ आदि छः मासोंमें क्रमशः 'मार्तण्ड', 'क', 'चित्रभानु', 'विभावसु', 'भग' और 'हंस'—ये छः नाम कहे गये हैं। पूरे छः मासोंमें घृत-दुग्धादि पञ्चगव्य पदार्थोंको स्नान और प्रशस्ति के लिये प्रशस्त एवं पापनाशक माना गया है।

इस व्रतमें तेल और क्षार पदार्थ ग्रहण न करे, शस्त्रोंमें जागरण करे। संसारमें सब कुछ देनेवाली यह विधि सर्वार्थसाधि-सप्तमीके नामसे विख्यात है। हे अनन्त ! अब मैं कल्याण करनेवाली मार्तण्ड-सप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ।

यह व्रत पौष मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको किया जाता है। इसके सम्यक् अनुष्ठानसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है।

इस दिन व्रत रहकर भगवान् सूर्यका 'मार्तण्ड' नामसे पूजन एवं निरन्तर जप करना चाहिये। ब्राह्मणकी भी विशेष श्रद्धा-भक्तिसे पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार पवित्र मनसे सभी मासोंमें उपासना करके प्रत्येक मासमें अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको गौ आदिका दान देना चाहिये। दूसरे वर्षमें

उपवासपूर्वक यथाशक्ति सूर्यनारायणके निमित्त गौ आदिका दान देनेसे व्रती साक्षात् भगवान् मार्तण्डके लोकको प्राप्त करता है। इस मार्तण्ड नामक सप्तमीको नक्षत्राण उपासना करके ही सुलोकमें प्रवेशित होते हुए आज भी स्थित दृष्ट होते हैं।

(अध्याय १०७—१०९)

### अनन्त-सप्तमी तथा अष्यङ्ग-सप्तमीका विधान

ब्रह्माजीने कहा—अथ्युत! भाद्रपद मासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको जितेन्द्रिय होकर सप्ताश्वमेधन भगवान् आदित्यको प्रणाम करके पुष्प-धूप आदि सामग्रियोंसे इनका पूजन करना चाहिये। पाखण्डों आदि दुराचारियोंसे आलस्य न करे। ब्राह्मणको दक्षिणा देकर रात्रिमें मौन होकर भोजन करना चाहिये। इस विधानसे बैठते-चलते, प्रस्थान करते और गिरने-पड़नेकी स्थितिमें प्रत्येक समय आदित्य नामक स्मरण तथा उच्चारण करते हुए क्रमशः द्वादश मासतक व्रत और जगद्गुरु भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। व्रतकी पारणामे पुण्य-पुराणकी कथाका श्रवण करे। सूर्यदेवको प्रसन्न करे, इससे पुष्टिलब्ध होता है। इस सप्तमीमें कथास्मरणसे अनन्त फलोंकी प्राप्ति होती है।

श्रावण मासकी शुक्ल सप्तमीको अष्यङ्ग-सप्तमी कहा जाता है। इस दिन सप्ताश्वमेधन भगवान् सूर्यकी पुष्प-धूपदिसे

पूजा करे। पारणामियोंसे वार्ता न करे, निपतात्मा होकर रहे। ब्राह्मणको दक्षिणा देकर मौन हो रात्रिमें भोजन करे। प्रतिवर्ष अष्यङ्ग बनाकर उन्हें निवेदित करे<sup>१</sup>। अष्यङ्ग-समर्पणके समय विविध प्रकारके बाजे बजवाने चाहिये। ब्राह्मणलोग वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करें। जिस प्रकार श्रावण मासमें अन्य देवताओंको पवित्रार्पण किया जाता है, उसी प्रकार सूर्यनारायणको भी प्रत्येक श्रावण मासमें अष्यङ्ग अर्पण करनेका विधान है।

इस प्रकार द्वादश मासपर्यन्त इस व्रतको करे। अन्तमें पारणा करनी चाहिये और ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन करवाकर दक्षिणा देनी चाहिये। जो मनुष्य पवित्र होकर व्रत करके सूर्यनारायणकी आराधना करता है, वह भगवान् कनकाली सूर्यदेवके परम दिव्यलोकमें प्राप्त होता है।

(अध्याय ११०-१११)

### सूर्यपूजामे भाव-शुद्धिकी आवश्यकता एवं त्रिप्राप्ति-सप्तमी-व्रत

ब्रह्माजी बोले—गृहध्वज! भक्तिपूर्वक शुद्ध हृदयसे मात्र जलार्पणद्वारा भी सूर्यभगवान्की पूजा करनेपर दुर्लभ फलकी प्राप्ति हो जाती है। राग-द्वेषादिसे रहित हृदय, असत्य आदिसे अदूषित वाणी और हिंसावर्जित कर्म—ये भगवान् भास्करकी आराधनाके श्रेष्ठ तीन प्रकार हैं। रागादि दोषोंसे दूषित हृदयमें तिमिरविनाशक सूर्यनारायणकी रश्मियोंका स्पन्दन भी नहीं होता, फिर उनके निवासकी बात कौन कहे? यद्यतक कि वह तो भगवान् सूर्यके द्वारा संसारपङ्कमें निमग्न कर दिया जाता है।

जिस प्रकार चन्द्रमाकी कला अम्भकारको दूर करनेमें सर्वथा सफल नहीं होती, उसी प्रकार हिंसादिसे दूषित कर्मके

द्वारा सूर्यनारायणकी पूजामें कैसे सफलता प्राप्त हो सकती है? चित्तकी अप्रसन्नताके कारण भी मनुष्य सूर्यदेवको प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिए सत्य-स्वभाव, सत्य-वाक्य और अहिंसक कर्मसे ही स्वभावतः भगवान् आदित्य प्रसन्न होते हैं। यदि मनुष्य कालुषित-हृदयसे भगवान् देवेशको सब कुछ दे दे, तो तब भी उन देवदेवेश्वर भगवान् दिवाकरकी आराधना नहीं होती। अतः आप अपने हृदयको रागादि द्वेषोंसे रहित बनाकर भगवान् भास्करके लिये अर्पित करें। ऐसा करनेपर दुष्पाप भगवान् भास्करको आप अनायास ही प्राप्त कर लेंगे।

विष्णुने कहा— आपने बताया कि भास्कर हमारे लिये पूजनीय है, अतः उनकी सम्पूर्ण आराधना-विधि आप मुझे

१-भक्तिपुराणमें अष्यङ्ग शब्द बार-बार आता है। यह सूत्रमें वस्तु है, जिसका भोजक ब्राह्मणके लिये कटिप्रदेशमें बंधनेका विधान है। इसका वर्णन आगेके १४२ वें अध्यायमें आया है। इसे वहीं देखना चाहिये।

वतायें। ब्रह्मन् ! श्रेष्ठ कुलमें जन्म, अश्रेष्ठ और दुर्लभ धनकी अभिवृद्धि—ये तीनों जिसके द्वारा प्राप्त होते हैं, उस त्रिप्राप्ति-व्रतकी भी हमें वतायें।

**ब्रह्माजी बोले—**भाष मासमें कृष्ण पक्षकी सप्तम्यके दिन हस्त नक्षत्रका योग रहनेपर व्रतीको चाहिये कि वह जगत्त्रया सूर्यदेवकी सुगन्ध, धूप, नैवेद्य एवं उपहार आदि पूजन-सामग्रियोंके द्वारा पूजा करे। गृहस्थ पुरुष पुष्पोंके द्वारा दानादि-युक्त पूजा वर्षपर्यन्त सम्पन्न करे और वज्र (बाजरा), तिल, व्रीहि, यव, सुवर्ण, यव, अन्न, जल, ओला (ओलेका पानी), उपानह, छत्र और गुड़से बने फलार्घ्य, (क्रमसे प्रतिभास) मुनियों, ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये। इस व्रतमें

आत्मशुद्धिके लिये सूर्यनारायणकी पूजा करके प्रतिभास क्रमशः उष्ण, गोमूत्र, जल, घृत, दुर्वा, दधि, घान्य, तिल, यव, सूर्यकिरणोंसे तथा हुआ जल, कमलगट्टा और दूधका प्राशन करना चाहिये। इस विधिसे इस सप्तमी-व्रतको करनेवाला मनुष्य धन-धान्यसे परिपूर्ण, लक्ष्मीयुक्त तथा समस्त दुःखोंसे रहित होता है और श्रेष्ठ कुलमें जन्म लेकर जितेंद्रिय, नीरोग, बुद्धिमान् और सुखी रहता है। अतः आप भी बिना प्रमाद किये ही इन प्रभासम्पन्न स्वामी भगवान् दिवाकरकी आराधना कर कामनाओंके सम्पूर्ण फलको प्राप्त करें।

(अध्याय ११२)

### सूर्यमन्दिर-निर्माणका फल तथा यमराजका अपने दूतोंको सूर्यभक्तोंसे

#### दूर रहनेका आदेश, घृत तथा दूधसे अभिषेकका फल

**ब्रह्माजीने कहा—**हे वासुदेव ! जो मनुष्य मिट्टी, लकड़ी अथवा पत्थरसे भगवान् सूर्यके मन्दिरका निर्माण करवाता है, वह प्रतिदिन किये गये यज्ञके फलको प्राप्त करता है। भगवान् सूर्यनारायणका मन्दिर बनवानेपर वह अपने कुलकी सौ आगे और सौ पीछेकी पीढ़ियोंको सूर्यलोक प्राप्त करा देता है। सूर्यदेवके मन्दिरका निर्माण-कार्य प्रारम्भ करते ही सात जन्मोंमें किया गया जो छोड़ा अथवा बहुत पाप है, वह नष्ट हो जाता है। मन्दिरमें सूर्यकी मूर्तिको स्थापित कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और उसे रोष-फलकी प्राप्ति नहीं होती तथा अपने आगे और पीछेके कुलोंका उद्धार कर देता है। इस विषयमें प्रजाओंको अनुशासित करनेवाले यमने षाशदण्डसे युक्त अपने किङ्करोसे पहले ही कहा है कि 'मेरे इस आदेशका यथोचित पालन करते हुए तुमलोग संसारमें विचरण करो, कोई भी प्राणी तुमलोगोंकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकेगा। संसारके मूलभूत भगवान् सूर्यकी उपासना करनेवाले लोकोको तुमलोग छोड़ देना, क्योंकि उनके लिये यहाँपर स्थान नहीं है। संसारमें जो सूर्यभक्त हैं और जिनका हृदय उनकी लगा हुआ है, ऐसे लोग जो सूर्यकी सदा पूजा किया करते हैं, उन्हें दूरसे ही छोड़ देना। बैठते-सोते, चलते-उठते और गिरते-पड़ते जो मनुष्य भगवान् सूर्यदेवका नाम-संकीर्तन करता है, वह भी हमारे लिये बहुत दूरसे ही त्याग्य है। जो

भगवान् भास्करके लिये नित्य-नैमित्तिक यज्ञ करते हैं, उन्हें तुमलोग दृष्टि उठाकर भी मत देखना। यदि तुमलोग ऐसा करोगे तो तुमलोगोंकी गति रुक जायगी। जो पुष्प-धूप-सुगन्ध और सुन्दर-सुन्दर वस्त्रोंके द्वारा उनकी पूजा करते हैं, उन्हें भी तुमलोग मत पकड़ना, क्योंकि वे मेरे पिताके मित्र या अतिप्रियजन हैं। सूर्यनारायणके मन्दिरमें उपलेपन तथा सफाई करनेवाले जो लोग हैं, उनके भी कुलकी तीन पीढ़ियोंको छोड़ देना। जिसने सूर्य-मन्दिरका निर्माण कराया है, उसके कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष भी तुमलोगोंके द्वारा बुरी दृष्टिसे देखने योग्य नहीं है। जिन भगवद्भक्तोंने मेरे पिताकी सुन्दर अर्चना की है, उन मनुष्योंको तथा उनके कुलको भी तुम सदा दूरसे ही त्याग देना।'

महात्म्य धर्मराज यमके द्वारा ऐसा आदेश दिये जानेपर भी एक बार (धूलसे) यम-किङ्कर उनके आदेशका उल्लंघन करके राजा सञ्जयके पास चले गये। परंतु उस सूर्यभक्त सञ्जयके तेजसे वे सभी यमके सेवक मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर वैसे ही गिर पड़े, जैसे मूर्च्छित पक्षी पर्वतपरसे भूमिपर गिर पड़ता है। इस प्रकार जो भक्त भगवान् सूर्यके मन्दिरका निर्माण करता-करता है, वह समस्त यज्ञोंको सम्पन्न कर लेता है, क्योंकि भगवान् सूर्य स्वयं ही सम्पूर्ण यज्ञमय हैं।

**ब्रह्माजी बोले—**सूर्यके प्रतिष्ठित प्रतिमाको जो भीसे

ज्ञान कराता है, वह अपनी सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। कृष्णपक्षकी अष्टमीके दिन सूर्यभगवान्‌को जो धीसे ज्ञान कराता है, उसे सभी पापोंसे छुटकारा प्राप्त हो जाता है। सप्तमी अथवा षष्ठीके दिन सूर्यनारायणको गायके धीसे ज्ञान करनेसे सभी पातक दूर हो जाते हैं। संध्याकालमें धीसे ज्ञान करनेपर तो ज्ञात-अज्ञात सम्पूर्ण पाप दूर हो जाते हैं। सूर्यनारायण सर्व-यज्ञरूप हैं और समस्त हव्य-पदार्थोंमें धी ही उत्तम पदार्थ है, इसलिये उन दोनोंका संगम होते ही सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। सूर्यको दूधसे ज्ञान करनेवाला मनुष्य सात जन्मोंतक

सुखी, रोगरहित और रूपवान्‌ होता है और अन्तमें दिव्यलोकमें निवास करता है। जैसे दूध स्वच्छ होता है और रोगरहितसे मुक्ति देनेवाला है, वैसे ही दूधसे ज्ञान करनेपर अज्ञान हटकर निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। दूधके ज्ञानसे भगवान्‌ सूर्यनारायण प्रसन्न होकर सभी ग्रहोंको अनुकूल करते हैं तथा सभी लोगोंको पुष्टि और प्रीति प्रदान करते हैं। धी और दूधसे तिमिर-विनाशक देवेश सूर्यदेवको ज्ञान करनेपर उनकी दृष्टिमात्र पड़ते ही मनुष्य सबका प्रिय हो जाता है।

(अध्याय ११३-११४)

### कौसल्या और गौतमीके संवाद-रूपमें भगवान्‌ सूर्यका माहात्म्य- निरूपण तथा भगवान्‌ सूर्यके प्रिय पत्र-पुष्पादिका वर्णन

**ब्रह्माजी बोले—**जनार्दन ! देवलोकमें गौतमी और कौसल्याका सूर्यके विषयमें एक पुरातन संवाद प्रसिद्ध है। एक बार गौतमी ब्राह्मणीने स्वर्गमें अपने पतिके साथ अतिशय रमणीय कौसल्याको देखकर आश्चर्यचकित होकर पूछा— 'कौसल्ये ! स्वर्गमें निवास करनेवाले सैकड़ों देवता, अनेक देवाङ्गनार्य हैं, इसी प्रकार सिद्धगण और उनकी पत्नियाँ आदि भी हैं, किन्तु उनमें न ऐसी गन्ध है, न ऐसी कान्ति है, न ऐसा रूप है। धारण किये हुए वस्त्र तथा आभूषण भी ऐसे नहीं सुशोभित हो रहे हैं, जैसे कि आप दोनों स्त्री-पुरुषोंके हो रहे हैं। आप दोनोंने कौन-सा ऐसा तप, दान अथवा होमकर्म किया है, जिसका यह फल है। आप इसका वर्णन करें।

**कौसल्या बोली—**गौतमी ! हम दोनोंने यज्ञेश्वर भगवान्‌ सूर्यकी श्रद्धापूर्वक आराधना की है। सुगन्धित तीर्थ-जलोंसे तथा घृतसे उन्हें स्नान कराया है। उनकी कृपासे हमने स्वर्ग, निर्मल कान्ति, प्रसन्नता, सौम्यता और सुख प्राप्त किया है। हमलोगोंके पास जो भी आभूषण, वस्त्र, रत्न आदि प्रिय वस्तुएँ हैं, उन्हें भगवान्‌ सूर्यको अर्पण करनेके बाद ही हम धारण करते हैं। स्वर्गप्राप्तिकी अभिलाषासे हम दोनोंने भगवान्‌ सूर्यकी आराधना की थी और उस आराधनाके फलस्वरूप ही हमलोग स्वर्गका सुख भोग रहे हैं। जो निष्काम-भावसे भलीभाँति सूर्यकी उपासना करता है, उसे भगवान्‌ सूर्य मुक्ति प्रदान करते हैं। त्रिलोकके सृष्टिकर्ता सवितारकी तृप्तिसे ही सब कुछ प्राप्त होता है।

**ब्रह्माजी बोले—**विष्णो ! मार्तण्ड भगवान्‌ सूर्यकी आराधनासे मैंने भी अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त किया है, जो अनन्तकालतक रहनेवाली हैं। चन्दन, अगर, कपूर, कुंकुम तथा उज्ज्वरसे जो भगवान्‌ सूर्यको अनुलिप्त करता है, प्रसन्न होकर भगवान्‌ सूर्य उसे लक्ष्मी प्रदान करते हैं। कालेयक (कराल चन्दन), गुरुष्क (एक गन्ध-द्रव्य), रक्तचन्दन, गन्ध, विजयधूप तथा और भी जो अपनेको इष्ट पदार्थ हो, उन्हें भगवान्‌ सूर्यको निवेदित करना चाहिये। मालती, मल्लिकार्जुन, जुही, अतिमुक्तक, पाटल, करवीर, जषा, कुंकुम, तगर, कर्णिकर, चम्पक, केतक (केवड़ा), कुन्द, अशोक, तिलक, लोध, कमल, अगस्त्य, पावश आदिके पुष्प भगवान्‌ सूर्यदेवको विशेष प्रिय हैं। बिल्वपत्र, शमीपत्र, भृङ्गराज-पत्र तथा लवण आदि भगवान्‌ सूर्यको प्रिय हैं। अतः उन्हें अर्पण करना चाहिये। कृष्ण तुलसी, केतकीके पुष्प और पत्र तथा रक्तचन्दनके अर्पण करनेसे भगवान्‌ सूर्य सद्यः प्रसन्न होते हैं। नीलकमल, श्वेतकमल और अनेक सुगन्धित पुष्प भगवान्‌ सूर्यको चढ़ाने चाहिये, किन्तु कुटज, शाल्मलि और गन्धरहित पुष्प सूर्यको नहीं चढ़ाने चाहिये, इन्हें चढ़ानेसे दारिद्र्य, भय और रोगकी प्राप्ति होती है। जिनका निषेध न हो वे ही पुष्प भगवान्‌को चढ़ाने चाहिये। उत्तम धूप, मुरा, मँसी, कपूर, अगर, चन्दन तथा दूसरे सुन्दर पदार्थोंसे भगवान्‌ जनमात्मीकी अर्चना करने चाहिये। विविध रेश्मी तथा कपासद्वारा निर्मित उतरीय आदि वस्त्र तथा जो अपनेको भी प्रिय है ऐसा वस्त्र



सूर्यभगवान्को चढ़ाना चाहिये। फल तथा नैवेद्यदि भी जो अपनेको प्रिय हों उन्हें देना चाहिये। सुवर्ण, चाँदी, मणि और मुक्त आदि जो अपनेको प्रिय हों, उन्हें भी भगवान् सूर्यको

निवेदित करना चाहिये। अपनेको भास्करके रूपमें मानकर सारी यज्ञ-क्रियाएँ अव्यक्तरूप भगवान् सूर्यको निवेदित करनी चाहिये<sup>१</sup>। (अध्याय ११५)

### सूर्य-भक्त सत्राजित्की कथा तथा त्रिविक्रम-व्रतकी विधि

**ब्राह्मजी बोले—**विष्णो ! प्राचीन कालमें राजा ययातिके कुलमें सत्राजित् नामक एक प्रतापी चक्रवर्ती राजा हुए थे। वे अत्यन्त प्रभावशाली, तेजस्वी, काचित्मान्, सम्भावान्, गुणवान् तथा बलशाली राजा थे तथा धैर्यता, गम्भीरता एवं यशसे सम्पन्न थे। उनके विषयमें पुराणवेत्त लोग एक गाथा गाते हैं— महाम्बाहु सत्राजित्के इस पृथ्वीपर राज्य करते हुए जहाँसि सूर्य उदित होते और जहाँ अस्त होते हैं, जितनेमें भ्रमण करते हैं, वह सम्पूर्ण क्षेत्र सत्राजित्-क्षेत्र कहलता है<sup>१</sup>। राजा सत्राजित् सम्पूर्ण रत्नोंसे परिपूर्ण सप्तद्वीपवर्ती पृथ्वीपर धर्मपूर्वक राज्य करते थे। वे सूर्यदेवके परम भक्त थे। उनके ऐश्वर्यको देखकर सभी लोगोंने बड़ा आश्चर्य होता था। उनके राज्यमें सभी व्यक्ति धर्मानुयायी थे। राजा सत्राजित्के चार मन्त्री थे, वे सब अप्रतिहत सामर्थ्यवाले और राजाके स्वाभाविक भक्त थे। भगवान् सूर्यके प्रति उनकी अत्यन्त श्रद्धा थी और उनकी सामर्थ्यको देखकर न केवल उनकी प्रजाको आश्चर्य होता था, बल्कि सब राजा भी अपने ऐश्वर्यपर आश्चर्यचकित थे। एक बार उनके मनमें आया कि अगले जन्ममें भी मेरा ऐसा ही ऐश्वर्य कैसे बना रहे। यह सोचकर उन्होंने दशस्र और धर्मके तत्त्वको जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर उनकी यथोचित भक्तिपूर्वक पूजा कर उन्हें आसनपर बिठलाया और उनसे कहा—‘भगवन् ! यदि आपलोगोंकी मुझपर कृपा है तो मेरी जिज्ञासाको शान्त करे।’

**ब्राह्मणोंने कहा—**‘महाराज ! आप अपना संदेह हमलोगोंके सम्मुख प्रस्तुत करें। आपने हमारा पालन-पोषण किया है और सभी प्रकारसे भोजन आदिद्वारा संतुष्ट रखा है। विद्वान् ब्राह्मणका तो कर्तव्य ही है कि वह धर्मके संदेहको दूर

करे, अधर्मसे निवृत्त करे और कल्याणकारी उपदेशको भलीभाँति समझावे<sup>२</sup>। आप अपनी इच्छाके अनुसार जो पूछना चाहें पूछें।’ तभी उनकी महारानी विमलवतीने भी राजासे निवेदन किया कि ‘महाराज ! मेरा भी एक संदेह है, आप महात्माओंसे पूछकर निवृत्त करा लें। मैं तो अन्तःपुरमें ही रहती हूँ। अतः मेरी प्रार्थना है कि आप प्रथम मेरा ही संदेह निवृत्त करा दें, क्योंकि आपके संदेहकी निवृत्तिके अनेक साधन हैं।’

**राजा सत्राजित्ने कहा—**‘प्रिये ! क्या पूछना चाहती हो, पहले मैं तुम्हारा ही संदेह पूछूँगा।’

**विमलवतीने कहा—**‘महाराज ! मैंने अनेक राजाओंके खरिज और ऐश्वर्यको सुना है, किंतु आपके समान ऐश्वर्य अन्य लोगोंको सुलभ नहीं है, यह किस कर्मका फल है ? मैंने कौन-सा उत्तम कर्म किया था, जिसके फलस्वरूप मुझे आपकी रानी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ ? पूर्वजन्ममें हम दोनोंने कौन-सा पुण्यकर्म किया है ? इस विषयमें आप मुनियोंसे पूछें।’

**सत्राजित् बोले—**‘देवि ! तुमने तो मेरे मनकी बात जान ली है। मुनियोंकी बातें सत्य हैं, पत्नी पुरुषकी अर्धाङ्गिनी होती है। ऐसी कोई बात नहीं है जो इन महामुनियोंसे छिपी हो। इन महात्माओंसे मैं भी यही पूछना चाहता था। अनन्तर महाराजने महात्माओंसे पूछ—भगवन् ! मैं पूर्वजन्ममें कौन था, मैंने कौन-से पुण्य कर्म किये थे ? इस सर्वाङ्गसुन्दरी मेरी पत्नीने कौन-से उत्तम कर्म सम्पन्न किये थे, जिससे हमें ऐसी दुर्लभ लक्ष्मी प्राप्त हुई है। हमलोगोंमें परस्पर अतिशय प्रीति है। सभी राजा मेरे अधीन हैं, मेरे पास असीम द्रव्य है और

१-आप्ताने भास्करं मत्वा यज्ञं तस्मै निवेदयेत् । तत्तदव्यक्तस्वरूपं भास्कराय निवेदयेत् ॥

(ब्राह्मण्य ११५।३३)

२-

सत्राजिते महाबाहो कृपया प्राज्ञो मयाजिते ॥

यावत्सूर्य उदेति यं यावच्च प्रवर्तिष्यति । सत्राजिते तु तन्त्रये क्षेत्रियादर्थधीयते ॥

(ब्राह्मण्य ११६।९-१०)

३-संतुष्टो ब्राह्मणोऽशौचाच्छिन्नाद्वा धर्मस्तरायम् । कितं क्षेत्रिणेदेव्यं अद्वितादा निर्वर्तिष्य ॥

(ब्राह्मण्य ११६।२५)

मैं अत्यन्त बलशाली हूँ। मेरा शरीर भी नीरोग है। मेरी पत्नी के समान संसारमें कोई स्त्री नहीं है। सभी मेरे असौम्य तेजको सहन करनेमें असमर्थ हैं। महामुने ! आपलोग क्रियालक्ष हैं। आप मेरी जिज्ञासाको शान्त करें। राजा के इस प्रकार फूलनेपर उन ब्राह्मणोंने सूर्यदेवके परम भक्त परावसुसे प्रार्थना की कि आप ही इनके संदेहको निवृत्त करें। धर्मज्ञ ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे महामति परावसुने योग-समाधिके द्वारा राजा तथा रानीके पूर्वजन्मके सभी कर्मोंकी जानकारी प्राप्त कर राजासे कहना आरम्भ किया—

**परावसु बोले—**महाराज। आप पूर्वजन्ममें बड़े निर्दयी, हिंसक तथा कठोर हृदयके शूद्र थे, कुछ-दौगसे पीड़ित थे। सुन्दर नेत्रोंवाली ये महारानी उस समय भी आपकी ही भार्या थीं। ये ऐसी पतिव्रता थीं कि आपके द्वारा पीड़ित होनेपर भी आपकी सेवामें निरन्तर संलग्न रहती थीं, परंतु आपकी अतिशय क्रूरताके कारण आपके बन्धु-बान्धव आपसे आलग हो गये और आपने भी अपने पूर्वजोंद्वारा संघित धनको नष्ट कर डाला। अनन्तर आपने कृषि-कार्य आरम्भ किया, किंतु दैवच्छासे वह भी व्यर्थ हो गया। आप अत्यन्त दीन-हीन होकर दूसरोंकी सेवाद्वारा जीवन-यापन करने लगे। आपने अपनी स्त्रीको छोड़नेका बहुत प्रयास किया, किंतु उसने आपका साथ नहीं छोड़ा। इसके बाद आप दोनों कान्यकुब्ज देशमें चले गये और भगवान् सूर्यके मन्दिरमें सेवा करने लगे। वहाँ प्रतिदिन मन्दिरका मार्जन, लेपन, प्रोक्षण (जल छिड़कना) आदि कार्य बड़े भक्तिभावसे करते रहे। मन्दिरमें पुराणकी कथा होती थी। आप दोनोंने उसका भक्तिपूर्वक श्रवण किया। कथा-श्रवण करनेके बाद आपकी पत्नीने पित्तसे प्राप्त अँगूठीको कथामें चढ़ा दिया। आपके मनमें रात-दिन यही चिन्ता रहती थी कि यह मन्दिर कैसे स्वच्छ रहे। आप दोनों बहुत दिनोंतक वहाँ रहे। भगवान् के सेवारूपी योगकर्ममें आपका मन अहर्निश लगा रहता था।

इस प्रकार आप दोनों निष्काम-भावसे भगवान् सूर्यकी सेवा करते और जो कुछ मिलता, उसीसे निर्वाह करते थे। गोपति भगवान् सूर्यका आप नित्य चिन्तन करते थे, अतः आपके सभी पाप समाप्त हो गये।

किसी समय अपनी विशाल सेनाके साथ कुवलम्ब

नामका एक राजा वहाँ आया। उसकी अपार सम्पत्ति और हजारों श्रेष्ठ रणियोको देखकर आप दोनोंकी भी राजा-रानी बननेकी इच्छा हुई। कुछ ही समयमें आपका देहान्त हो गया। सूर्यदेवको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक की गयी सेवा तथा पुराण-श्रवणके फलवासे आप राजा हुए और आपकी स्त्री रानी हुई तथा आप दोनोंको जो असीम तेज प्राप्त हुआ है, उसका भी कारण सुनिये—

जब मन्दिरमें दीपक तेल तथा बत्तीके अभावमें बुझने लगता था, तब आप अपने भोजनके लिये रखे तेलसे उसे पुरित करते थे और आपकी रानी अपनी साड़ी फाड़कर उससे बत्ती बनाकर जलाती थी। राजन् ! यदि अन्य जन्ममें भी आपको ऐश्वर्यकी इच्छा है तो भगवान् सूर्यकी श्रद्धापूर्वक आराधना करें। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि जो आपको प्रिय हों, वही भगवान् सूर्यको अर्पण करें। उनके मन्दिरमें मार्जन, उपलेपन आदि कार्य करें, जिससे मन्दिर स्वच्छ और निर्मल रहे। उत्तम दिनोंमें उपवास कर रत्रि-जागरण और नृत्य-गीत-वाद्यादिद्वारा महोत्सव करावें। पुराण-इतिहास आदिकी कथा श्रद्धापूर्वक सुनें तथा भगवान् सूर्यकी प्रसन्नताके लिये वेद-पाठ करावें। सदा निष्काम-भावसे तपस्य होकर उनकी सेवामें लगे रहें। संतुष्ट होकर भगवान् सूर्य अभीष्ट फल देते हैं। वे पुष्प, नैवेद्य, रत्न, सुवर्ण आदिसे उतना प्रसन्न नहीं होते, जितना वे भक्तिभावसे प्रसन्न होते हैं। यदि भक्तिभावपूर्वक सूर्यकी आराधना और विविध उपचारोंसे पूजन करेंगे तो इन्हसे भी अधिक वैभवकी प्राप्ति कर लेंगे।

**राजा सत्राञ्जितने कहा—**भगवन् ! इन्द्रत्वकी प्राप्ति या अमरत्वकी प्राप्तिमें जो आनन्द होता है, वह आनन्द आपकी इस वाणीको सुनकर मुझे प्राप्त हुआ। अज्ञानरूपी अन्धकारके लिये आपकी यह वाणी प्रदीप्त दीपकके समान है। सम्पत्तिके विनाशकी सम्भावनासे हम बहुत व्याकुल थे। आपने सम्पत्ति-प्राप्तिके लिये मूल तत्त्वका आज उपदेश दिया है। इससे यह सिद्ध हो गया कि मुझे यह सारी सम्पत्ति पूर्वजन्मके सुकृतकर्मके ही फलस्वरूप प्राप्त हुई है। भक्तिमान् द्रिड भी भगवान् सूर्यको प्रसन्न कर सकता है, किंतु एक ऐश्वर्यशाली धनवान् भक्तिहीन होनेपर उनका अनुग्रह नहीं प्राप्त कर

सकता। भगवन् ! आप मुझे सूर्यभगवान्की आराधनाके उस मार्गको सूचित करें, जिससे शीघ्र ही उनका अनुग्रह प्राप्त हो सके।

**परावसु बोले—**राजन् ! कार्तिक मासमें प्रतिदिन भगवान् सूर्यका पूजन कर ब्राह्मणको भोजन करना चाहिये और स्वयं भी एक ही बार भोजन करना चाहिये। इस आराधनासे बाल्यावस्थामें किये गये श्रात-अज्ञात सभी पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। मार्गशीर्षमें पूर्वोक्त रीतिसे व्रत करनेवाले स्त्री-पुरुषकी, ब्राह्मणको भरकत योगिका दान करनेसे प्रौढावस्थामें किये गये पापोंसे मुक्ति हो जाती है। पौष मासमें पूर्वोक्त विधिके अनुसार एकभुक्त हो अष्टापूर्वक सूर्यकी आराधना करनेसे वृद्धावस्थामें किये गये सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

इस त्रैमासिक व्रतको अष्टापूर्वक विधि-विधानसे करनेवाले स्त्री या पुरुष सूर्यभगवान्के कृपापात्र हो जाते हैं और लघु पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। दूसरे वर्ष इसी प्रकार त्रैमासिक व्रत करनेपर सभी उष्णपातक निवृत्त हो जाते हैं। तीसरे वर्ष भी इस व्रतको करनेपर महापातक नष्ट हो जाते हैं और मनोव्यभिक्त फलकी प्राप्ति होती है। यह व्रत तीन मासमें सम्पन्न होता है और इसे तीन वर्षतक करना चाहिये। सभी अवस्थाओंमें आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक—त्रिविध

पातक इसके द्वारा नष्ट हो जाते हैं। इस सर्वपापहर्ता व्रतको त्रिविक्रम-व्रत कहा जाता है।

**राजा सत्राजित्ने कहा—**भगवन् ! व्रतका विधान तो मैंने सुना, परंतु भोजन कैसे ब्राह्मणको करना चाहिये, यह भी आप कृपाकर बतायें।

**परावसु बोले—**पौराणिक ब्राह्मणको भोजन करना चाहिये। इस प्रसंगमें अरुणको सूर्यदेवने जो निर्देश दिया था, वह मैं आपको बताता हूँ—

किसी समय उदयाचलपर अरुणने भगवान् सूर्यसे पूछा—‘महाराज ! कौन-कौन पुष्प, नैवेद्य, वस्त्र आदि आपके प्रिय हैं और कैसे ब्राह्मणको भोजन करनेसे आप संतुष्ट होते हैं ?’ इसे आप कृपाकर बतायें।

**भगवान् सूर्यने कहा—**अरुण ! करवीरके पुष्प, रक्त-चन्दन, गुग्गुलुका घूप, धौका दीपक और मोदक आदि नैवेद्य मुझे प्रिय हैं। मेरे भक्त और पौराणिक ब्राह्मणको दान देकर उसके प्रति अष्टा समर्पित करनेसे मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी प्रसन्नता गीत, वाद्य और पूजन आदिसे नहीं होती। मैं पुराण आदिके वाचन-श्रवणसे अतिशय प्रसन्न होता हूँ। इतिहास-पुराणके वाचक तथा मेरी पूजा करनेवाला भोजक—ये दोनों मुझे विशेष प्रिय हैं। इसीलिये पौराणिकका पूजन करें और इतिहास आदिको सुने। (अध्याय ११६)

### भोजकोंकी उत्पत्ति तथा उनके लक्षणोंका वर्णन

**अरुणने पूछा—**भगवन् ! यह भोजक कौन है ? किसका पुत्र है ? इसने ऐसा कौन-सा उत्तम कर्म किया है, जिस कारण ब्राह्मण आदि वर्णोंको छोड़कर आपका इतना इतना अनुग्रह हुआ ? आप कृपाकर सब मुझे बतायें।

**आदित्य बोले—**महामति वैन्तेय ! तुमने बहुत सुन्दर बात पूछी है। इसके उत्तरमें मैं जो कहता हूँ, उसे तुम सावधान होकर सुनो। अपनी पूजाके निमित्त ही मैंने अपने तेजसे भोजकोंकी उत्पत्ति की है। ये वर्णतः ब्राह्मण हैं और मेरी पूजाके लिये अनुष्ठानमें तत्पर रहते हैं। ये भोजक मुझे अति प्रिय हैं।

प्राचीन कालमें शाकदीपके स्वामी राजा प्रियव्रतके पुत्रने विमानके समान एक भव्य सूर्य-मन्दिर बनवाया और उसमें

स्थापित करनेके लिये सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न सोनेकी एक दिव्य सूर्यकी प्रतिमा भी बनवायी। अब राजाको यह चिन्ता होने लगी कि मन्दिर तथा प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कौन कराये ? उन्हें कोई योग्य व्यक्ति नहीं दिखायी दिया। अतः वह राजा मेरी शरणमें आया। अपने भक्तको चिन्ताग्रस्त देखकर मैंने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और पूछा—‘कस ! तुम क्या विचार कर रहे हो, तुम क्यों चिन्तित हो, शीघ्र ही अपनी चिन्ताका कारण बताओ। तुम दुःखी मत होओ, मैं तुम्हारे अत्यन्त दुष्कर कर्मोंको भी सम्पन्न कर दूँगा।’ इसपर राजाने प्रसन्न होकर कहा—‘प्रभो ! मैंने बड़ी भक्ति एवं श्रद्धासे इस द्वीपमें आपको एक विशाल मन्दिर बनवाया है तथा एक दिव्य सूर्य-प्रतिमा भी बनवायी है, मुझे यह चिन्ता सता रही है कि





दक्षिणा देकर उन्हें संतुष्ट किया। वे विविध उपचारोंसे भक्तिपूर्वक नित्य सूर्यदेवकी पूजा-उपासना करने लगे और अन्तमें उन दोनोंने उनकी प्रीति प्राप्त कर उत्तम गति प्राप्त की।

(अध्याय ११७)

### भद्र ब्राह्मणकी कथा एवं कार्तिक मासमें सूर्य-मन्दिरमें दीपदानका फल

**ब्रह्माजी बोले—**विष्णो ! जो कार्तिक मासमें सूर्यदेवके मन्दिरमें दीप प्रज्वलित करता है, उसे सम्पूर्ण यज्ञोक्त फल प्राप्त होता है एवं वह तेजमें सूर्यके समान तेजस्वी होता है। अब मैं आपको भद्र ब्राह्मणकी कथा सुनाता हूँ, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है, उसे आप सुने—

प्राचीन कालमें माहिष्मती नामकी एक सुन्दर नगरमें नागार्जुन नामका एक ब्राह्मण रहता था। भगवान् सूर्यकी प्रसन्नतासे उसके सौ पुत्र हुए। सबसे छोटे पुत्रका नाम था भद्र। वह सभी भाइयोंमें अत्यन्त विचक्षण विद्वान् था। वह भगवान् सूर्यके मन्दिरमें नित्य दीपक जलाया करता था। एक दिन उसके भाइयोंने उससे बड़े आदरसे पूछा—‘भद्र ! हमलोग देखते हैं कि तुम भगवान् सूर्यको न तो कभी पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि अर्पण करते हो और न कभी ब्राह्मण-भोजन कराते हो, केवल दिन-रात मन्दिरमें जाकर दीप जलते रहते हो, इसमें क्या कारण है ? तुम हमें बताओ।’ अपने भाइयोंकी बात सुनकर भद्र बोला—‘प्रातृगण। इस विषयमें आपलोग एक आख्यान सुनें—

प्राचीन कालमें राजा इक्ष्वाकुके पुरोहित महर्षि वसिष्ठ थे। उन्होंने राजा इक्ष्वाकुसे सरयू-तटपर सूर्यभगवान्का एक मन्दिर बनवाया। वे वहाँ नित्य गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजा करते और दीपक प्रज्वलित करते थे। विशेषकर कार्तिक मासमें भक्तिपूर्वक दीपोत्सव किया करते थे। तब मैं भी अनेक कुष्ठ आदि रोगोंसे पीड़ित हो उसी मन्दिरके समीप पड़ा रहता और जो कुछ मिल जाता, उसीसे अपना पेट भरता। वहाँकि निवासी मुझे रोगी और दीन-हीन जानकर मुझे भोजन दे देते थे। एक दिन मुझमें यह कुत्सित विचार आया कि मैं शीघ्रके अन्धकारमें इस मन्दिरमें स्थित सूर्यनारायणके बहुमूल्य आभूषणोंके चुरा लूँ। ऐसा निश्चयकर मैं उन भोजकोंकी निद्राकी प्रतीक्षा करने लगा। जब वे भोजक सो गये, तब मैं धीरे-धीरे मन्दिरमें गया और वहाँ देखा कि दीपक बुझ चुका है। तब मैंने अग्नि जलाकर दीपक प्रज्वलित किया और उसमें भृत डालकर प्रतिमासे आभूषण

उतारने लगा, उसी समय वे देवपुत्र भोजक जग गये और मुझे हाथमें दीपक लिया देखकर पकड़ लिया। मैं भयभीत हो विलापकर उनके चरणोंपर गिर पड़ा। दयावश उन्होंने मुझे छोड़ दिया, किन्तु वहाँ घूमते हुए राजपुरुषोंने मुझे फिर बाँध लिया और वे मुझसे पूछने लगे—‘अरे दुष्ट ! तुम दीपक हाथमें लेकर मन्दिरमें क्या कर रहे थे ? जल्दी बताओ, मैं अत्यन्त भयभीत हो गया। उन राजपुरुषोंके भयसे तथा रोगसे आक्रान्त होनेके कारण मन्दिरमें ही मैं प्राण निकल गये। उसी समय सूर्यभगवान्के गण मुझे विमानमें बैठाकर सूर्यलोक ले गये और मैंने एक कल्पतक वहाँ सुख भोगा और फिर उत्तम कुलमें जन्म लेकर आप सबका भाई बना। बन्धुओ ! यह कार्तिक मासमें भगवान् सूर्यके मन्दिरमें दीपक जलानेका फल है। यहाँपर मैंने दुष्टबुद्धिसे आभूषण चुरानेकी दृष्टिसे मन्दिरमें दीपक जलाया था तथापि उसीके फलस्वरूप इस उत्तम ब्राह्मणकुलमें मेरा जन्म हुआ तथा वेद-शास्त्रोंका मैंने अध्ययन किया और मुझे पूर्वजन्मोंकी स्मृति हुई। इस प्रकार उत्तम फल मुझे प्राप्त हुआ। दुष्टबुद्धिसे भी पीछाया दीपक जलानेका ऐसा श्रेष्ठ फल देखकर मैं अब नित्य भगवान् सूर्यके मन्दिरमें दीपक प्रज्वलित करता रहता हूँ। भाइयो ! मैंने कार्तिक मासमें यह दीपदानका संक्षेपमें माहात्म्य आपलोगोंको सुनाया।

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्माजी बोले—विष्णो ! दीपक जलानेका फल भदने अपने भाइयोंको बताया। जो पुरुष सूर्यके नामोंका जप करता हुआ मन्दिरमें कार्तिकके महीनेमें दीपदान करता है, वह आरोग्य, धन-सम्पत्ति, बुद्धि, उत्तम संतान और जातिस्मरत्वको प्राप्त करता है। बड़ी और सप्तमी तिथिके जो प्रयत्नपूर्वक सूर्यमन्दिरमें दीपदान करता है, वह उत्तम विमानमें बैठकर सूर्यलोकको जाता है। इसलिये भगवान् सूर्यके मन्दिरमें भक्तिपूर्वक दीप प्रज्वलित करना चाहिये। प्रज्वलित दीपको न तो बुझाये और न उसका हरण करे। दीपक हरण करनेवाला पुरुष अन्धमूषक होता है। इस कारण कल्याणकी इच्छावाला पुरुष दीप प्रज्वलित करे, हरे नहीं। (अध्याय ११८)

## यमदूत और नारकीय जीवोंके संवादके प्रसंगमें सूर्य-मन्दिरमें दीपदान करने एवं दीप चरानेके पुण्य-पापोंका परिणाम

**ब्रह्माजी बोले—**विष्णो ! एक समय घोर नरकमें पहुँच हुए भूखे, आर्त-दुःखी और विलाप करते हुए जीवोंसे यमदूतने कहा—मूढजनो ! अब अधिक विलाप करनेसे क्या लाभ होगा, प्रमादवश तुम सबने अपनी आत्माकी उपेक्षा कर रखी है। पहले तुम सबने यह विचार नहीं किया कि इन कर्मोंका फल आगे भोगना पड़ेगा। यह शरीर थोड़े ही दिनोंतक रहनेवाला है, विषय भी नाशवान् है, यह कौन नहीं जानता। हजारों जन्मोंके बाद एक बार मनुष्य-जन्म मिलता है, उसमें क्यों मूढजन भोगोंकी ओर दौड़ते हैं। वे पुत्र, स्त्री, गृह, क्षेत्र आदिके लिये प्रयत्नशील रहते हैं और उनमें आसक्त होकर अनेक दुष्कर्म करते हैं, वे मूढजन अपना हित नहीं जानते, वे यह भी नहीं जानते कि सूर्य, चन्द्र, काल तथा आत्मा—ये सभी मनुष्यके शुभ और अशुभ कर्मोंको देखते रहते हैं अर्थात् साक्षीभूत हैं। न केवल एक जन्म अपितु सैकड़ों जन्मोंमें पुत्र, स्त्री आदिके लिये जो-जो भी कर्म किया जाता है, उसे अच्छी तरहसे वे जानते रहते हैं। मोहकी यह महिमा तो देखो कि नरकमें भी समता बनी रहती है। इस प्रकार परिणाममें भयंकर विषयोंके द्वारा आकृष्ट चित्तवाले मनुष्योंकी बुद्धि परमाव्य-तत्त्वकी ओर नहीं होती। जिद्दाद्वारा भगवान् सूर्यका नाम लेनेमें कौन-सा श्रम है ? मन्दिरमें दीप जलानेमें भी अधिक परिश्रम नहीं पड़ता, परंतु यदि मनुष्यसे इतना भी नहीं हो सकता तो

अब रोदन और विलाप करनेसे क्या लाभ है ?<sup>१</sup> जैसा कर्म किया वैसा फल पाया। इसीलिये पापकर्ममें कभी भी बुद्धि नहीं लगाने चाहिये। यदि कोई अज्ञानसे पापकर्म हो जाय तो सूर्यभगवान्की आराधना करे, जिससे सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

**ब्रह्माजी बोले—**यमदूतके ऐसे वचनोंको सुनकर तथा भूखमें व्याकुल, प्यारसे सूखे कण्ठवाले, दुःखसे पीड़ित वे नारकीय जीव उससे कहने लगे—‘साधो ! हमने ऐसा कौन-सा कर्म किया, जिससे हमें इस दारुण नरकमें बास करना पड़ा।’

**यमदूतने कहा—**पूर्वजन्ममें यौवनके उन्मादसे उन्मादित तुम अविश्वकर्मोंने घृतके लोभमें भगवान् सूर्यके मन्दिरमें दीप चुराया था। उसी कारण इस घोर नरकमें तुम सब दुःख भोग रहे हो।

**ब्रह्माजी बोले—**अव्युत ! मैंने सूर्यके मन्दिरमें दीपदान करनेके पुण्य तथा दीप-हरण करनेके दुष्परिणामोंका वर्णन किया। दीपदान करनेका तो सर्वत्र ही उत्तम फल है, परंतु सूर्यनारायणके मन्दिरमें विशेष फल है। जगत्में जो-जो अंध, मूक, बधिर, विवेकहीन, निन्द्य व्यक्ति दिखायी पड़ते हैं, उन सबने साधुजनोंद्वारा प्रज्वलित किये हुए दीपोंकी सूर्यनारायणके मन्दिरमें हरण किया है।

(अध्याय ११९)

## वैवस्वतके लक्षण और सूर्यनारायणकी महिमा

**विष्णुभगवान्ने ब्रह्माजीसे पूछा—**ब्रह्मन् ! संसारमें मनुष्य विष, रोग, ग्रह और अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे पीड़ित रहते हैं, यह किन कर्मोंका फल है, कृपाकर आप कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे जीवोंकी रोग आदिकी बाधा न हो।

**ब्रह्माजीने कहा—**जिन्होंने पूर्वजन्ममें व्रत-उपवास आदिके द्वारा भगवान् सूर्यको प्रसन्न नहीं किया, वे मनुष्य विष,

ज्वर, ग्रह, रोग आदिके भागी होते हैं और जो सूर्यनारायणकी आराधना करते हैं, उन्हें आधि-व्याधिर्या नहीं सताती। पूर्वजन्ममें भगवान् सूर्यकी आराधनासे इस जन्ममें आरोग्य, परम बुद्धि और जो-जो भी मनमें इच्छा करता है, निःसंदेह उसे प्राप्त कर लेता है। आधि-व्याधियोंसे पीड़ित नहीं होता है और न विष एवं दुष्ट ग्रहोंके बन्धनमें ही फँसता है तथा कृपा

१-अहो मोहम्य पाहव्यं यमतां नरकेष्वपि। उन्मते मत्तं क्षां पीडयामोऽपि कस्यचनम् ॥  
एवमकृष्टचित्तानां विनयेः स्वादुर्तरे। नृणां न जानते बुद्धिः परमाधीनशक्तिरे ॥  
तथा च विषयसङ्गे करोत्यविरते मनः। को हि भवो लोकैर्निज जिह्वायाः परिकीर्तितः ॥  
वर्तितैरेवमनूयैः च यद्वर्तितभ्यते मुखा। अतो वे कतरो लाभः कालीहन्त भवेत् तदा ॥

आदिका भी भय उसे नहीं रहता। सूर्यनारायणके भक्तके लिये दुष्ट भी अनुकूल हो जाते हैं और सब ग्रह सौम्य दृष्टि रखते हैं। जिसपर सूर्यदेव संतुष्ट हो जाते हैं, वह देवताओंका भी पूज्य हो जाता है। परंतु भगवान् सूर्यका अनुग्रह उसी पुरुषपर होता है, जो सब जीवोंको अपने समान ही समझता है और भक्तिपूर्वक उनको आराधना करता है। प्रजाओंके स्वामी भगवान् सूर्यके प्रसन्न हो जानेपर मनुष्य पूर्णमनोरथ हो जाता है<sup>१</sup>।

**भगवान् विष्णुने पूछा—**ब्रह्मन् ! जिन्होंने पहले भगवान् सूर्यकी आराधना नहीं की और रोग-व्याधिसे दुःखी हो गये हैं, वे उन कष्ट एवं पापोंसे कैसे मुक्त हों, कृपाकर बताये। हम भी भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी आराधना करना चाहते हैं।

**ब्रह्माजी बोले—**भगवन् ! यदि आप भगवान् सूर्यकी आराधना करना चाहते हैं तो आप पहले वैवस्वत (सूर्यभक्त) बनें, क्योंकि बिना विधिपूर्वक सौरी दीक्षाके उनकी उपासना पूरी नहीं हो सकती। जब मनुष्यके पाप क्षीण होने लगते हैं तब भगवान् सूर्य और ब्राह्मणोंने उनकी वैदिकी ब्रह्म-भक्ति होती है। इस संसार-चक्रमें भ्रमण करते हुए प्राणियोंके लिये भगवान् सूर्यको प्रसन्न करना एकमात्र कल्याणकरा निष्कण्टक मार्ग है।

**विष्णुभगवान्ने पूछा—**ब्रह्मन् ! वैवस्वतोंका क्या लक्षण है और उन्हें क्या करना चाहिये ? यह आप बताये।

**ब्रह्माजी बोले—**वैवस्वत वही है जो भगवान् सूर्यका परम भक्त हो तथा मन, वाणी एवं कर्मसे कभी जीबहिम्स न करे। ब्राह्मण, देवता और भोजकको नित्य प्रणाम करे, दूसरेके धनका हरण न करे, सभी देवताओं एवं संसारको भगवान्

सूर्यका ही स्वरूप समझे और उनसे अपनेको अभिन्न समझे। देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, पिपीलिका, वृक्ष, पाषाण, काष्ठ, धूमि, जल, आकाश तथा दिश—सर्वत्र भगवान् सूर्यको व्याप्त समझे, साथ ही स्वर्गको भी सूर्यसे भिन्न न समझे। जो किसी भी प्राणीमें दुष्ट-भाव नहीं रखता, वही वैवस्वत सुयोपासक है। जो पुरुष आसक्तिरहित होकर निष्काम-भावसे भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यके निमित्त क्रियार्थ करता है, वह वैवस्वत कहलाता है। जिसका न तो कोई शत्रु हो और न कोई मित्र हो तथा न उसमें भेद-बुद्धि हो, सबको बराबर देखता हो, ऐसा पुरुष वैवस्वत कहलाता है। जिस उत्तम गतिको वैवस्वत पुरुष प्राप्त करता है, वह योगी और बड़े-बड़े तपस्वियोंके लिये भी दुर्लभ है। जो सभी प्रकारसे भगवान् सूर्यका दृढ़ भक्त है, वह धन्य है। भक्तिपूर्वक आराधना करनेसे ही सूर्यभगवान्का अनुग्रह प्राप्त होता है।

**ब्रह्माजी पुनः बोले—**मैं भी उनके दक्षिण किरणसे उत्पन्न हुआ हूँ और उन्होंने काम किरणसे भगवान् शिव तथा वक्षस्वतसे शङ्ख-चक्र-गदाधारी आप उत्पन्न हैं। उनकीकी इच्छासे आप सृष्टिका पालन तथा शङ्कर संग्रह करते हैं। इसी प्रकार रुद्र, इन्द्र, चन्द्र, वह्मण, वायु, अग्नि आदि सब देवता सूर्यदेवसे ही प्रादुर्भूत हुए हैं और उनकी आज्ञाके अनुसार अपने-अपने कर्ममें प्रवृत्त हो रहे हैं। इसलिये भगवन् ! आप भी सूर्यभगवान्की आराधना करें, इससे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे।

पितामह ब्रह्माजी एवं विष्णुभगवान्के इस संवादको जो भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त कर अन्तमें सुवर्णके विमानमें बैठकर सूर्यलोकको जाता है।

(अध्याय १२०)

१-उतोपवासीरैर्धातुर्नान्यत्प्रथमं तेषाम् । ये सः देवशतैस्तु ग्रहरोषदिर्धर्मानः ॥  
 तैर्न तत्प्रथमं विनां सर्वदेवैः सैः कृतम् । विप्रब्राह्मणवृत्तौ ते मनुजैः कृता भूमिः ॥  
 अतोम्यं परमं सुदृढं धनस्य यदस्तिनानि । ननुतपोत्यस्येदमित्थं सर्वदेवैस्तोषणम् ॥  
 नाधीनं प्राप्नोति न व्याधीनं न विप्रब्राह्मण्यम् । कृत्यासर्वार्थस्य कपि तेषां तस्मिन्निगमे ॥  
 सर्वे दुष्टाः सम्प्रसक्तस्य सौम्यासक्तस्य सदा ग्रहाः । देवतान्यपि पुन्येऽन्तौ मुहो यस्य दिवाकरः ॥  
 यः समः सर्वभूतेषु पञ्चात्मनि तथा हिंस्रः । उपवासस्तथा येन तेषां तस्मिन्निगमे ॥  
 तोषितोऽस्मिन् प्रजानाथे सः पूर्णमनोरथः । अरोगः सुखिने नित्यं बहुधनसुखान्वितः ॥  
 न तेषां राजको नैव सत्प्रेतपिचारकम् । ग्रहरोषदिकं क्षान्तिं यपकार्युपश्रयमे ॥  
 अव्याहतानि देवस्य धनजातानि ते नमः । रक्षन्ति सकलवस्तु येन श्रेताधिकेऽर्चितः ॥

## भगवान् सूर्यनारायणके सौम्य रूपकी कथा, उनकी स्तुति और

### परिवार तथा देवताओंका वर्णन

राजा शतानीकने कहा—मुने ! भगवान् सूर्यकी कथा सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती, अतः आप पुनः उन्हींके गुणों और चरित्रोंका वर्णन करें ।

सुमन्तु मुनि बोले—एकजन् ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने भगवान् सूर्यकी जो पवित्र कथा ऋषियोंको सुनायी थी, उसमें मैं आपको सुनाता हूँ । वह कथा पापोंको नष्ट करनेवाली है—•

एक समय भगवान् सूर्यके प्रचण्ड तेजसे संताप हो ऋषियोंने ब्रह्माजीसे पूछा—‘ब्रह्मन् ! आकाशमें स्थित यह अग्निके तुल्य दाह करनेवाला तेजःपुञ्ज कौन है ?’

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो ! प्रलयके समय जब सारा स्थावर-जङ्गम जगत् नष्ट हो गया, उस समय सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त था । उस समय सर्वप्रथम बुद्धि उत्पन्न हुई, बुद्धिसे अहंकार तथा अहंकारसे आकाशइति पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति हुई और उनमें एक अण्ड उत्पन्न हुआ, जिसमें सात लोक और सात समुद्रोंसहित पृथ्वी स्थित है । उसी अण्डमें स्वयं ब्रह्मा तथा विष्णु और शिव भी स्थित थे । अन्धकारसे सभी व्याकुल थे । अनन्तर सब परमेश्वरका ध्यान करने लगे । ध्यान करनेसे अन्धकारको हरण करनेवाला एक तेजःपुञ्ज प्रकट हुआ । उसे देखकर हम सभी उसकी इस प्रकार दिव्य स्तुति करने लगे—

आदिदेवोऽसि देवानामीश्वराणां त्वमीश्वरः ।

आदिकर्तासि भूतानां देवदेव सनातन ॥

जीवनं सर्वसत्त्वानां देवगन्धर्वरक्षसाम् ।

मुनिकिन्नरसिद्धानां तव्योगोपक्रियाम् ॥

त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः ।

वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विषत्त्वान् वरुणस्तथा ॥

त्वं कालः सृष्टिकर्ता च हर्ता प्राज्ञा प्रभुस्तथा ।

सरितः सागराः शैला विद्युदिन्द्रधनुषि च ।

प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥

ईश्वरात्परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः ।

शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वर ॥

सर्वतः पाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।

सहस्राक्षुस्त्वं तु देव सहस्रकिरणस्तथा ॥

भूरादिभूषुषुःस्वश्च महर्जनस्तपस्तथा ।

प्रदीप्तं दीप्तिमभित्यं सर्वलोकाप्रकाशकम् ।

दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्गुणं तस्य ते नमः ॥

सुरसिद्धगणैर्भुष्टं भुवश्चिपुलहादिभिः ।

शुभं पापघण्ट्यां यद्गुणं तस्य ते नमः ॥

पञ्चातीतस्मितं तद्गुणं ददौकादश एव च ।

अर्धमासमतिक्रम्य स्थितं तत्सूर्यघण्टले ।

तस्यै स्याद्य ते देव प्रणताः सर्वदेवताः ॥

विद्यकुट्टिचभूतं च विद्यानरसुरार्चितम् ।

विद्यस्थितमभित्यं च यद्गुणं तस्य ते नमः ॥

पां यज्ञात्परं देवात्परं लोक्यात्परं दिवः ।

दुरतिक्रमेति यः स्यात्तस्मादपि परंपरात् ।

परमात्मेति विख्यातं यद्गुणं तस्य ते नमः ॥

अधिज्ञेयमभित्यं च अध्यात्मगतपण्ययम् ।

अनादिनिधने देवं यद्गुणं तस्य ते नमः ॥

नमो नमः क्षारणक्षारणाय नमो नमः पापविनाशनाय ।

नमो नमो वन्दितवन्दनाय नमो नमो रोगविनाशनाय ॥

नमो नमः सर्वकारप्रदाय नमो नमः सर्वबलप्रदाय ।

नमो नमो ज्ञाननिधे सदैव नमो नमः पञ्चदशात्मकाय<sup>१</sup> ॥

(आद्यपर्व १२३/११—२४)

इस प्रकार हमारी स्तुतिसे प्रसन्न हो वे तैजस-रूप

१- स्तुतिकर भाव इस प्रकार है—

हे सनातन देवदेव ! आप ही समस्त चराचर प्राणियोंके अग्नि सत्ता एवं ईश्वरीक ईश्वर तथा अग्निदेव हैं । देवता, गन्धर्व, राक्षस, मुनि, किन्नर, सिद्ध, नाग तथा तिर्यक् योनियोंके आप ही जीवनाधार हैं । आप ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, प्रजापति, वायु, इन्द्र, सोम, वरुण तथा काल हैं एवं जगत्के स्रष्टा, संहरता, पालनकर्ता और सबके रक्षक भी आप ही हैं । आप ही सागर, नदी, पर्वत, विद्युत्, इन्द्रधनुष इत्यादि सब कुछ हैं । प्रलय, प्रभव व्यक्त एवं अव्यक्त भी आप ही हैं । ईश्वरसे परे विद्या, विद्यासे परे शिव तथा शिवसे परत आप परमदेव हैं । हे परमात्मन् ! आपके पाणि, पाद, अधि, सिर, मुख सर्वत्र—चतुर्दिक् व्याप्त हैं । आपकी देदीप्यमान सहस्रों किरणें सब ओर व्याप्त हैं । सू-, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः तथा सत्य



कल्याणकारी देव मधुर वाणीमें बोले—‘देवगण ! आप क्या चाहते हैं ?’ तब हमने कहा—‘प्रभो ! आपके इस प्रचण्ड तप रूपको देखनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। अतः संसारके कल्याणके लिये आप सौम्य रूप धारण करें।’ देवताओंकी ऐसी प्रार्थना सुनकर उन्होंने ‘एवमस्तु’ कहकर सभीको सुख देनेवाला उत्तम रूप धारण कर लिया।

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! सौख्ययोगका आश्रय ग्रहण करनेवाले योगी आदि तथा मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुष इनका ही ध्यान करते हैं। इनके ध्यानसे बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। अग्निहोत्र, वेदपाठ और प्रचुर दक्षिणासे युक्त यज्ञ भी भगवान् सूर्यकी भक्तिके सोलहवीं कलाके तुल्य भी फलदायक नहीं है। ये तीर्थोंकी भी तीर्थ, मङ्गलोंकी भी मङ्गल और पवित्रोंकी भी पवित्र करनेवाले हैं। जो इनकी आराधना करते हैं, वे सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्य-लोकको प्राप्त करते हैं। वेदादि शास्त्रोंमें भगवान् दिव्यसन्नि उपासना आदिके द्वारा जिस प्रकार सुलभ हो जाते हैं, उसी प्रकार सूर्यदेव समस्त लोकोंके उपास्य हैं।

**राजा शतानीकने पूछा—**मुने ! देवता तथा ऋषियोंने किस प्रकार भगवान् सूर्यका सुन्दर रूप बनाया ? यह आप बतायें।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! एक समय सभी ऋषियोंने ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे प्रार्थना की कि ‘ब्रह्मन् ! अदितिके पुत्र सूर्यनारायण आकाशमें अति प्रचण्ड तेजसे तप रहे हैं। जिस प्रकार नदीका किनारा सूख जाता है, वैसे ही अखिल जगत् किनाशको प्राप्त हो रहा है, हम सब भी अति पीड़ित हैं और आपका आसन कमल-पुष्प भी सूख रहा है, तीनों लोकोंमें कोई सुखी नहीं है, अतः आप ऐसा उपाय करें जिससे यह तेज शान्त हो जाय।

**ब्रह्माजीने कहा—**मुनीश्वरी ! सभी देवताओंके साथ

आप और हम सब सूर्यनारायणको शरणमें जायें, उसीमें सबका कल्याण है। ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर सभी देवता और ऋषिगण उनकी शरणमें गये और उन्होंने भक्तिभावपूर्वक नम्र होकर अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की। देवताओंकी स्तुतिसे सूर्यनारायण प्रसन्न हो गये।

**सूर्यभगवान् बोले—**आपलोग घर माँगिये। उस समय देवताओंने यही घर माँगा कि ‘प्रभो ! आपके तेजको विश्वकर्मा कम कर दें, ऐसी आप आज्ञा प्रदान करें।’ इन्होंने देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब विश्वकर्माने उनके तेजको तराश कर कम किया। इसी तेजसे भगवान् विष्णुका चक्र और अन्य देवताओंके शूल, शक्ति, गदा, वज्र, बाण, धनुष, दुर्गा आदि देवियोंके आभूषण तथा शिविका (पालकी), परशु आदि अशुभ बनाकर विश्वकर्माने उन्हें देवताओंको दिया।

भगवान् सूर्यका तेज सौम्य हो जानेसे तथा उत्तम-उत्तम अशुभ प्राप्त कर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने पुनः उनकी भक्तिपूर्वक स्तुति की।

देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न हो भगवान् सूर्यने और भी अनेक बार उन्हें प्रदान किये। अनन्तर देवताओंने परस्पर विचार किया कि दैत्यगण का पाकर अत्यन्त अभिमानी हो गये हैं। वे अवश्य भगवान् सूर्यको हरण करनेका प्रयत्न करेंगे। इसलिये उन सबको नष्ट करनेके लिये तथा इनकी रक्षाके लिये हमें चाहिये कि हम इनके चारों ओर छाड़े हो जायें, जिससे ये दैत्य सूर्यको देख न सकें। ऐसा विचारकर स्कन्द दण्डनायकका रूप धारणकर भगवान् सूर्यके बायीं ओर स्थित हो गये। भगवान् सूर्यने दण्डनायकको जीवोंके शुभशुभ कर्मोंको लिखनेका निर्देश दिया। दण्डका निर्णय करने तथा दण्डनीतिका निर्धारण करनेसे दण्डनायक नाम पड़ा। अग्निदेव पिगलत्वकी होनेके कारण पिगल नामसे प्रसिद्ध हुए और

इत्यादि समस्त लोकोंमें आपका ही प्रचण्ड एवं प्रदीप्त तेज प्रवर्धित है। इन्द्रादि देवताओंमें भी दुर्निरीक्ष्य, भृगु, अत्रि, पुलह आदि ऋषियों एवं सिद्धोंद्वारा सेवित अत्यन्त कल्याणकारी एवं शान्त रूपवाले आपको नमस्कार है। हे देव ! आपका वह रूप पवित्र, दस अपरा एकदश इन्द्रियों आदिसे अगम्य है, उस रूपकी देवता सदा वन्दना करते रहते हैं। देव ! विश्वस्तु, विश्वमें स्थित तथा विश्वभूत आपके अचिन्त्य रूपकी इन्द्रादि देवता अर्चना करते रहते हैं। आपके उस रूपकी नमस्कार है। नाभ ! आपका रूप यज्ञ, देवता, लोक, आकाश—इन सबको धरे है, आप दुरतिक्रम नामसे विख्यात हैं, इससे भी धरे आपका अनन्त रूप है, इसलिये आपका रूप परायाका नामसे प्रसिद्ध है। ऐसे रूपवाले आपको नमस्कार है। हे अन्नदिनिधन ज्ञाननिधे ! आपका रूप अधिष्ठेय, अधिष्ठा, अगम्य एवं अध्यात्मगत है, आपको नमस्कार है। हे कारणकी कारण, फल एवं रोगके विनाशक, वन्दितोंके भी वन्द्य, पञ्चदशात्मक, सभीके लिये श्रेष्ठ कर्ता तथा सभी प्रकारके कल देनेवाले ! आपको सदा बार-बार नमस्कार है।

सूर्यभगवान्की दाहिनी ओर स्थित हुए। इसी प्रकार दोनों पाशोंमें दो अश्विनीकुमार स्थित हुए। वे अश्वरूपसे उत्पन्न होनेके कारण अश्विनीकुमार कहलाये। महाबलशाली राज और श्रौष दो द्वारपाल हुए। राज कर्त्तिकेयके और श्रौष हरके अवतार कहे गये हैं। लोकपूज्य ये दोनों द्वारपाल धर्म और अर्थके रूपमें प्रथम द्वारपर रहते हैं। दूसरे द्वारपर कल्पाय और पक्षी ये दो द्वारपाल रहते हैं। इनमेंसे कल्पाय यमराजके रूप हैं और पक्षी गरुडरूप हैं। ये दोनों दक्षिण दिशामें स्थित हैं।



### श्रीसूर्यनारायणके आयुध—व्योमका लक्षण और माहात्म्य

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन्! अब भगवान् सूर्यके मुख्य आयुध व्योमका लक्षण कहता हूँ, उसे आप सुनें। भगवान् सूर्यका आयुध व्योम सर्वदेवमय है, वह चार भुजाओंमें युक्त है तथा सुवर्णका बना हुआ है। जिस प्रकार यरुणका पाश, ब्रह्माका हुंकार, विष्णुका चक्र, जम्भकका त्रिशूल तथा इन्द्रका आयुध वज्र है, उसी प्रकार भगवान् सूर्यका आयुध व्योम है। उस व्योममें ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, दस विश्वेदेव\*, आठ वसुगण तथा दो अश्विनी-कुमार—ये सभी अपनी-अपनी कलाओंके साथ स्थित हैं। हर, शर्व, जम्भक, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, ऐकत, अपराजित, ईश्वर, अहिर्बुध्न्य और भुवन (भव) ये ग्यारह रुद्र हैं। ध्रुव, भर, सोम, अनिल, अनल, अप, प्रवृष और प्रभास—ये आठ वसु हैं। नासत्य और दक्ष—ये दो अश्विनीकुमार हैं। प्रजु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धृति, कुरु, ऐकुम्भ तथा वामन—ये दस विश्वेदेव हैं। इसी प्रकार साध्य, तुषित, मरुत् आदि देवता हैं। इनमें आदित्य और मरुत् कश्यपके पुत्र हैं। विश्वेदेव, वसु और साध्य—ये धर्मके पुत्र हैं। धर्मका तीसरा पुत्र वसु (सोम) है और ब्रह्माजीका पुत्र धर्म है।

स्वायम्भुव, स्वरोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष—ये छः मनु तो व्यतीत हो गये हैं, वर्तमानमें सप्तम वैवस्वत मनु हैं। अर्कसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, धर्मसावर्णि, दक्षसावर्णि, रौष और भीत्य—ये सब मनु आगे होंगे। इन चौदहों मन्वन्तरोमें इन्द्रके नाम इस प्रकार

कुम्भे और विनायक उत्तरमें तथा दिण्डी और रेवन्त पूर्व दिशामें स्थित हैं। दिण्डी रुद्ररूप है और रेवन्त भगवान् सूर्यके पुत्र हैं। ये सब देवता दैत्योंको मारनेके लिये सूर्यनारायणके चारों ओर स्थित हैं और सुन्दर रूपवाले, विरूप, अन्यरूप और कामरूप हैं तथा अनेक प्रकारके आयुध धारण किये हैं। चारों वेद भी उत्तम रूप धारणकर भगवान् सूर्यके चारों ओर स्थित हैं।

(अध्याय १२१—१२४)

है—विष्णुपुक्, विष्णुति, विभु, प्रभु, शिखी तथा मन्तेजव—ये छः इन्द्र व्यतीत हो गये हैं। ओजस्वी नामक इन्द्र वर्तमानमें है। बलि, अद्भुत, त्रिदिव, सुसात्विक, कीर्ति, शतधामा तथा दिवस्पति—ये सात इन्द्र आगे होंगे। कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र और जमदग्नि—ये सार्वर्ष हैं। प्रवह, आग्रह, उग्रह, संवह, विवह, निवह और परिवह—ये सात मरुत् हैं। (प्रत्येकमें सात-सात मरुद्गणोंका समूह है)। ये उनचास मरुत् आकाशमें पृथक्-पृथक् मार्गमें चलते हैं। सूर्याग्निका नाम शुचि, विष्णु अग्निका नाम पावक और अर्चण-मन्त्रसे उत्पन्न अग्निका नाम पथमान है। ये तीन अग्निर्षा हैं। अग्निर्षाके पुत्र-पौत्र उनचास हैं और मरुत् भी उनचास ही हैं। संवत्सर, परिवत्सर, इन्द्रवत्सर (इन्द्रवत्सर), अन्नवत्सर और वत्सर—ये पाँच संवत्सर हैं—ये ब्रह्माजीके पुत्र हैं। सौम्य, वहिषद् और अग्निष्वात—ये तीन पितर हैं। सूर्य, सोम, भीम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु—ये नव ग्रह हैं। ये सदा जगत्का भाव-अभाव सूचित करते हैं। इनमें सूर्य और चन्द्र मण्डलग्रह, भीमादि पाँच ताराग्रह और राहु-केतु छायाग्रह कहलाते हैं। नक्षत्रोंके अधिपति चन्द्रमा हैं और ग्रहोंके राजा सूर्य हैं। सूर्य कश्यपके पुत्र हैं, सोम धर्मके, बुध चन्द्रके, गुरु और शुक्र प्रजापति भृगुके, शनि सूर्यके, राहु सिंहिकाके और केतु ब्रह्माजीके पुत्र हैं।

पृथ्वीको भूलोक कहते हैं। भूलोकके स्वामी अग्नि,

\* अन्य सभी पुराणोंमें विश्वेदेवोंकी संख्या कहीं दस, कहीं बारह, कहीं तेरह बतायी गयी है। विशेष जनकजीके लिये 'कल्पाय' विशेषङ्क 'देवताङ्क' देखना चाहिये।

भुवर्लोकके वायु और स्वर्लोकके स्वामी सूर्य हैं। मरुद्गण भुवर्लोकमें रहते हैं और रुद्र, अधिनीकुमार, आदित्य, वसुगण तथा देवगण स्वर्लोकमें निवास करते हैं। चौथा महर्लोक है, जिसमें प्रजापतियोंसहित कल्पवासी रहते हैं। पाँचवें जनलोकमें भूमिदान करनेवाले तथा छोटे तपोलोकमें ऋषि, सनत्कुमार तथा वैराज आदि ऋषि रहते हैं। सातवें सत्यलोकमें वे पुरुष रहते हैं, जो जन्म-मरणसे मुक्ति पा जाते हैं। इतिहास-पुराणके वक्ता तथा श्रोता भी उस लोकमें प्राप्त करते हैं। इसे ब्रह्मलोक भी कहा गया है, इसमें न किसी प्रकारका विघ्न है न किसी प्रकारकी बाधा।

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग, भूत और विद्याधर—ये आठ देवयोनियाँ हैं। इस प्रकार इस व्योममें सातों लोक स्थित हैं। मरुत्, गितर, अग्नि, वह और आठों देवयोनियाँ तथा मूर्त और अमूर्त सब देवता इन्हीं व्योममें स्थित हैं। इसलिये जो भक्ति और श्रद्धासे व्योमका पूजन करता है, उसे सब देवताओंके पूजनका फल प्राप्त हो जाता है और वह सूर्यलोकमें जाता है। अतः अपने कल्याणके लिये सदा व्योमका पूजन करना चाहिये।

महीपते ! आकाश, वा, दिक्, व्योम, अनखील, नभ, अम्बर, पुष्कर, गगन, मेरु, विपुल, विल, आपोछिद्र, शुन्य, तमस्, रोदसी—व्योमके इतने नाम कहे गये हैं। तत्त्व, क्षीर, दधि, घृत, मधु, इक्षु तथा सुम्बटु (जलबालर) —ये सात समुद्र हैं। हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, भृङ्गवान्—ये छः वर्षपर्वत हैं। इनके मध्य महाराजत नामक पर्वत है। माहेन्दी, आग्नेयी, याम्या, नैऋती, वारुणी, वायवी, सौम्या तथा ईशानी—ये देवनगरियाँ ऊपर समाहित हैं। पृथ्वीके ऊपर त्रेकालोक पर्वत है। अनन्तर अण्डकपाल, इससे परे अग्नि, वायु, आकाश आदि भूत कहे गये हैं। इससे परे महान् अहंकार, अहंकारसे परे प्रकृति, प्रकृतिसे परे पुरुष और इस पुरुषसे परे ईश्वर है, जिससे वह सम्पूर्ण जगत् आवृत है। भगवान् भास्कर ही ईश्वर हैं, उनसे वह जगत् परिच्छात है। ये सहस्रों किरणवाले, महान् तेजस्वी, चतुर्बाहु एवं महाबली हैं।

भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक,

तपोलोक और सत्यलोक—ये सात लोक कहे गये हैं। भूमिके नीचे जो सात लोक हैं, वे इस प्रकार हैं—ताल, सुतल, पाताल, तलातल, अतल, वितल और रसातल। काञ्चन मेरु पर्वत भूमण्डलके मध्यमें फैला हुआ चार रमणीय शृङ्गोंसे युक्त तथा सिद्ध-गन्धर्वोंसे सुसंवित है। इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। यह सोलह हजार योजन भूमिमें नीचे प्रविष्ट है। इस प्रकार सब मिलाकर एक लाख योजन मेरुपर्वतका मान है। उसका सौमनस नामक प्रथम शृङ्ग सुवर्णका है, ज्योतिष्क नामका द्वितीय शृङ्ग पद्मराग मणिका है। विप्र नामका तृतीय शृङ्ग सर्वधातुमय है और चन्द्रोजस्क नामक चतुर्थ शृङ्ग चाँदीका है। शङ्खेय नामक प्रथम सौमनस शृङ्गपर भगवान् सूर्यका उदय होता है, सूर्योदयसे ही सब लोग देखते हैं, अतः उमका नाम उदयाचल है। उत्तरायण होनेपर सौमनस शृङ्गसे और दक्षिणायन होनेपर ज्योतिष्क शृङ्गसे भगवान् सूर्य उदित होते हैं। मेघ और तुल्य-संक्रान्तियोंमें मध्यमें दो शृङ्गोंमें सूर्यका उदय होता है। इस पर्वतके ईशानकोणमें ईश और अग्निकोणमें इन्द्र, नैऋत्यकोणमें अग्नि और वायव्यकोणमें मरुत् तथा मध्यमें साक्षात् ब्रह्मा, वह एवं नक्षत्र स्थित हैं। इसे व्योम कहते हैं। व्योममें सूर्यभगवान् स्वयं निवास करते हैं, अतः यह व्योम सर्वदेवमय और सर्वलोकमय है। राजन् ! पूर्वकोणमें स्थित शृङ्गपर शुक्र है, दूसरे शृङ्गपर हेलिज (इनि), तीसरेपर कुम्भर, चौथे शृङ्गपर सोम है। मध्यमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्थित हैं। पूर्वोत्तर शृङ्गपर पितृगण और लोकपूजित गोपति महादेव निवास करते हैं। पूर्वोत्तर शृङ्गपर शशिचन्द्र निवास करते हैं। अनन्तर महातेजस्वी हेलिपुत्र यम निवास करते हैं। नैऋत्यकोणके शृङ्गमें महाबलशाली विरूपाक्ष निवास करते हैं। उसके बाद वरुण स्थित है, अनन्तर महातेजस्वी महाबली श्रीराम निवास करते हैं। सभी देवोंके समस्तसर्व वायव्य शृङ्गका आश्रयणकर नरवाहन कुम्भर निवास करते हैं, मध्यमें ब्रह्मा, नीचे अनन्त, उपेन्द्र और शंकर अवस्थित हैं। इसीको मेरु, व्योम और धर्म भी कहा जाता है। यह व्योमस्वरूप मेरु वेदमय नामसे प्रसिद्ध है। चारों शृङ्ग चारों वेदस्वरूप हैं। (अध्याय १२५-१२६)



## साम्बद्वारा भगवान् सूर्यकी आराधना, कुष्ठरोगसे

### मुक्ति तथा सूर्यस्तवराजका कथन

**राजा शतानीकने पूछा—**पुने ! साम्बने किस प्रकार भगवान् सूर्यकी आराधना की और उस भयंकर रोगसे कैसे मुक्ति पायी ? इसे आप कृपाकर बताये ।

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! आपने बहुत उत्तम कथा सुनी है । इसका मैं विस्तारसे वर्णन करता हूँ, इसके सुननेसे सभी पाप दूर हो जाते हैं । नारदजीके द्वारा सूर्य-भगवान्का माहात्म्य सुनकर साम्बने अपने पिता श्रीकृष्ण-चन्द्रके पास जाकर विनयपूर्वक प्रार्थना की—‘भगवन् ! मैं अत्यन्त दारुण रोगसे ग्रस्त हूँ । वैद्योंद्वारा बहुत औषधियोंका सेवन करनेपर भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही है । अब आप आज्ञा दें कि मैं कबमें जाकर तपस्याद्वारा अपने इस भयंकर रोगसे छुटकारा प्राप्त करूँ ।’ पुत्रका वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने आज्ञा दे दी और साम्ब अपने पिताकी आज्ञाके अनुसार सिन्धुके उत्तरी चन्द्रभागा नदीके तटपर लंकप्रसिद्ध मित्रवन नामके सूर्यक्षेत्रमें जाकर तपस्या करने लगे । वे उपवास करते हुए सूर्यकी आराधनामें तत्पर हो गये । उन्होंने इतना कठोर तप किया कि उनका अस्थिमात्र ही शेष रह गया । वे प्रतिदिन इस गुप्त स्तोत्रसे दिव्य, अख्यय एवं प्रबलशक्त आदित्यमण्डलमें स्थित भगवान् भास्करकी स्तुति करने लगे—

प्रजापति परमात्मन् ! आप तीनों लोकोंके देव-स्वरूप हैं, सम्पूर्ण प्राणियोंके आदि हैं, अतः आदित्य नामसे विख्यात हैं । आप इस मण्डलमें महान् पुरुष-रूपमें देदीप्यमान हो रहे हैं । आप ही अचिन्त्य-स्वरूप विष्णु और पितामह ब्रह्मा हैं । रुद्र, महेंद्र, वरुण, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, चन्द्र, मैत्र, कुबेर,

विभावसु, यमके रूपमें इस मण्डलमें देदीप्यमान पुरुषके रूपसे आप ही प्रकाशित हैं । यह आपका साक्षात् महादेवमय वृत्त अण्डके समान है । आप काल एवं उत्पत्तिस्वरूप हैं । आपके मण्डलके तेजसे सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त हो रही है । आप सुधाकांक्षी दृष्टिसे सभी प्राणियोंको परिपुष्ट करते हैं । विभावसो ! आप ही अन्तःस्थ म्लेच्छजातीय एवं पशु-पक्षीकी योनिमें स्थित प्राणियोंकी रक्षा करते हैं । गलित कुष्ठ आदि रोगोंसे ग्रस्त तथा अन्ध और बधिरोंको भी आप ही रोगमुक्त करते हैं । देव ! आप शरणागतके रक्षक हैं । संसार-चक्र-मण्डलमें निमग्न निर्धन, अत्यासु व्यक्तियोंकी भी सर्वदा आप रक्षा करते हैं । आप प्रत्यक्ष दिक्पाल देते हैं । आप अपनी लोलाभात्रसे ही सबका उद्धार कर देते हैं । आर्त और रोगसे पीड़ित मैं स्तुतियोंके द्वारा आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हूँ । आप तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदिसे सदा स्तुत होते रहते हैं । महेंद्र, विद्, गम्भीर, अमर, गुह्यक आदि स्तुतियोंके द्वारा आपकी सदा आराधना करते रहते हैं । जब ऋक् यजु और सामवेद तीनों आपके मण्डलमें ही स्थित हैं तो दूसरी कौन-सी पवित्र अन्य स्तुति आपके गुणोंका पार पा सकती है ? आप ध्यानियोंके परम ध्यान और मोक्षार्थियोंके मोक्षदाता हैं । अनन्त तेजोराशिसे सम्पन्न आप नित्य अचिन्त्य, अक्षोभ्य, अख्यय और निष्कल हैं । जगत्पते ! इस स्तोत्रमें जो कुछ भी मैंने कहा है, इसके द्वारा आप मेरी भक्ति तथा दुःखमय परिस्थिति (कुष्ठ रोगकी बात)को जान लें और मेरी विपत्तिको दूर करें\* ।

**सूर्यभगवान्ने कहा—**जाम्बवतीपुत्र ! मैं तुम्हारी

\* आदित्य हि भूतानामादित्य इति संज्ञितः । केतुस्त्वचकुर्वेदोऽप्यस्य प्रजापतिः ॥  
एष वै मण्डले ह्यस्मिन् पुरुषो दीप्यते महान् । एष विष्णुर्चिन्मयाऽथ जलः सैव पितामहः ॥  
रुद्रो महेंद्रो वरुण आकाशो पृथिवी जलान् । वायुः सारङ्गः परं च भद्राश्चक्षुः विभावसुः ॥  
य एष मण्डले ह्यस्मिन् पुरुषो दीप्यते महान् । एकः जगत्पतेर्देवो वृक्षमण्डनिभः सदा ॥  
कालो ह्येष महाबहुर्लोकोपेतितक्षकः । य एष मण्डले ह्यस्मिन्नेवेतिभः पूरयन् महिम् ॥  
धाम्यते ह्यव्ययचिन्मया सत्तेर्गोपुत्ररक्षकः । सतः सतः किंचित् तेजसा विज्ञते यच्चित् ॥  
पुण्यति सर्वभूतानि एष एष सुधाकर्तृः । अन्तःस्थः म्लेच्छजातीर्वर्तितर्पयन्निगतात्मि ॥  
करुणया सर्वभूतानि पश्येत् स न विभावसोः । शिवकुण्डलमार्जितान् पण्डितान् तथा विभो ॥  
प्रपञ्चवत्सलो देव कुर्वते योजनो भवन् । यत्नमन्तानमर्जयन् निर्धनतल्पद्वयसाध ॥



स्तुतिसे प्रसन्न हूँ, वत्स ! मुझसे जो तुम चाहते हो वह कहो ।

**साम्बने कहा—**भगवन् ! आपके चरणोंमें मेरी दृढ़ भक्ति हो, यही वर चाहता हूँ ।

**सूर्यभगवान्ने कहा—** ऐसा ही होगा ! मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ, सुव्रत ! द्वितीय वर माँगो ।

**साम्बने कहा—**भगवन् ! मेरे शरीरमें रहनेवाला यह मल—कुछ आपकी कृपासे दूर हो जाय, गोपते ! मेरा शरीर सर्वथा शुद्ध निर्मल हो जाय ।

**भगवान् सूर्यने कहा—** ऐसा ही होगा ।

भगवान् सूर्यने ऐसा कहते ही साम्बके शरीरमें कुछ रोग जैसे ही दूर हो गया जैसे सर्पिके शरीरमें केवुल । वह दिव्य रूपसम्पन्न हो गया । साम्ब भगवान् सूर्यकी प्रणामकर उनके सम्मुख लड़े हो गये ।

**सूर्यदेवने कहा—** साम्ब ! प्रसन्न होकर मैं और भी वर देता हूँ । आजसे मेरा यह स्थान तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा । लोकमें तुम्हारी अक्षय कीर्ति होगी । जो व्यक्ति तुम्हारे नामसे मेरा स्थान बनावेगा, उसे सनातन लोक प्राप्त होगा । इस चन्द्रभागा नदीके तटपर मेरी स्थापना करो । मैं तुम्हें स्वप्नमें दर्शन देता रहूँगा । इतना कहकर सूर्यभगवान् प्रत्यक्ष दर्शन देकर अनाधीन हो गये ।

इस साम्बकृत स्तोत्रको जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक तीन वर्षमें पढ़ता है, अथवा सात दिनोंमें एक सौ इक्कीस बार पाठ और हवन करता है तो राज्यकी कामना करनेवाला राज्य, धनकी कामना करनेवाला धन प्राप्त कर लेता है और रोगसे पीड़ित व्यक्ति जैसे ही रोगमुक्त हो जाता है, जैसे साम्ब कुछ-रोगसे मुक्त हो गये ।

**सुमन्तुमुनि बोले—**एजन् ! तपस्याके समय रोगसे

दुर्बल साम्बने सूर्यकी स्तुति उनके सहस्रनामसे की थी । उसे दुःखी देखकर स्वप्नमें भगवान् सूर्यने साम्बसे कहा— 'साम्ब ! सहस्रनामसे मेरी स्तुति करनेकी आवश्यकता नहीं है । मैं अपने अतिशय गोपनीय, पवित्र और इक्कीस शुभ नामोंको बताता हूँ । प्रत्यक्षपूर्वक उन्हें ग्रहण करो, उनके पाठ करनेसे सहस्रनामके पाठका फल प्राप्त होगा । मेरे इक्कीस नाम इस प्रकार हैं—

(१) विकर्तन (विपत्तियोंको काटने तथा नष्ट करनेवाले), (२) विवस्वान् (प्रकाश-रूप), (३) मार्तण्ड (जिनोंने अष्टममें बहुत दिन निवास किया), (४) भास्कर, (५) रवि, (६) लोकप्रकाशक, (७) श्रीमान्, (८) लोकचक्षु, (९) ग्रहेष्ट, (१०) लोकसाक्षी, (११) त्रिलोकेश, (१२) कर्ता, (१३) हर्ता, (१४) त्रिभिन्नता (अन्धकारको नष्ट करनेवाले), (१५) तपन, (१६) तापन, (१७) शुचि (पवित्रतम), (१८) सप्ताध्याहन, (१९) गर्भसिंहस्त (किरणें ही जिनके हावस्वरूप हैं), (२०) जहा और (२१) सर्वदेवनामस्कृत ।\*

साम्ब ! ये इक्कीस नाम मुझे अतिशय प्रिय हैं । यह सप्तराजके नामसे प्रसिद्ध है । यह सप्तराज शरीरके भीरोग बनायेवाला, धनकी कृद्धि करनेवाला और यशस्कर है एवं तीनों लोकोंमें विख्यात है । महाबाहो ! इन नामोंसे उदय और अस्त दोनों संध्योंके समय प्रणत होकर जो मेरी स्तुति करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है । मानसिक, वाचिक और शारीरिक जो भी दुष्कृत हैं, वे सभी एक बार मेरे सम्मुख इसका जप करनेसे विनष्ट हो जाते हैं । यही मेरे लिये जपने

प्रत्यक्षदर्शी त्वं देव समुद्राग्नि लोकनाथ ॥ का मे भक्तिः सर्वैः स्तोत्रमाहोर्जं रोगवीर्यितः ॥  
स्तुते त्वं मदा देवैर्ब्रह्मविष्णुशिवैर्दिभिः ॥ योऽस्मिदगच्छति त्वं परोक्षः ॥ समुद्रकैः ॥  
स्तुतिभिः किं परित्रेह तव देव सर्ववीर्यः ॥ यस्य ते ब्रह्मबुद्ध्या विदितं मन्त्रस्तुतिनाम् ॥  
ध्यानिना त्वं परं भवान् मोक्षदरं च मोक्षिणम् ॥ अनन्तदेवसत्त्वोभयो ह्यपि त्वत्पुण्यतन्त्रिकतः ॥  
यदयं व्याहृतः किञ्चित् सोऽस्मिन्नगतः पतिः ॥ अर्तिं पतिं च विहाय तत्सर्वं ब्रह्ममस्ति ॥

\* विकर्तनो विवस्वान् मार्तण्डो भास्को रविः लोकप्रकाशकः श्रीमान् लोकचक्षुर्ग्रेष्टः ॥  
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता त्रिभिन्नता ॥ तपस्तपनश्च शुचिः सप्ताध्याहनः ॥  
गर्भसिंहस्तो जहा च सर्वदेवनामस्कृतः ।

(ब्राह्मपर्व १२७।१०—१३)

(ब्राह्मपर्व १२८।५—७)

योग्य तथा हवन एवं संध्योपासना है। अलिमन्त्र, अर्घ्यमन्त्र, भूपमन्त्र इत्यादि भी यही है। अन्नप्रदान, स्नान, नमस्कार, प्रदक्षिणामें यह महामन्त्र प्रतिष्ठित होकर सभी पापोंका इराफा करनेवाला और शुभ करनेवाला है। यह कहकर जगत्पति

भगवान् भास्कर कृष्णपुत्र साम्बको उपदेश देकर वहीं अवधारण हो गये। साम्ब भी इस सत्वराजसे सत्तत्त्वज्ञान भास्करकी स्तुति कर नीरोग, श्रीमान् और उस भयंकर शरीरिक रोगसे सर्वथा मुक्त हो गये। (अध्याय १२७-१२८)

### साम्बको सूर्य-प्रतिमाकी प्राप्ति

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! इस प्रकार साम्ब सूर्यनारायणसे वर प्राप्त कर अतिशय प्रसन्न हुए और वर-प्राप्तिकी आश्चर्य मानते हुए अन्य तपस्विषोक्त साथ समीपमें स्थित चन्द्रभागा नदीमें स्नान करनेके लिये गये। वहाँ वे स्नानकर श्रद्धाके साथ अपने हृदयमें मण्डलाकार भगवान् सूर्यकी भावना कर मनमें यह सोचने लगे कि 'सूर्यनारायणकी कैसी प्रतिमा हो और उसे किस प्रकार कहाँ स्थापित करें।' इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि उन्होंने देखा—चन्द्रभागा नदीके ऊपरसे एक अत्यन्त देदीप्यमान प्रतिमा बहती हुई चली आ रही है। प्रतिमा देखकर साम्बको यह निश्चय हो गया कि यह भगवान् सूर्यकी ही मूर्ति है। जैसे उन्होंने आज्ञा दी थी, वही यह सूर्य-प्रतिमा है, इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं। यह सोचकर नदीमें उस तेजसे चमकती हुई मूर्तिको निकालकर उन्होंने मित्रवन (मुल्तान) में एक स्थानपर तपस्विषोक्त साथ विधिपूर्वक उसकी स्थापना की। एक दिन साम्बने सूर्य-प्रतिमाको प्रणामकर पूछा—'नाथ ! आपकी यह प्रतिमा किसने बनायी ? इसकी आकृति बड़ी सुन्दर है।' आप कृपाकर बतायें।

**प्रतिमा बोली—**साम्ब ! पूर्वकालमें मेरा रूप प्रचण्ड तेजोमय था। उससे व्याकुल होकर सभी देवताओंने प्रार्थना की कि 'आप अपना रूप सभी प्राणियोंके सहन करनेके योग्य बनायें, नहीं तो सभी लोग जल जायेंगे।' मैंने महातपस्वी विश्वकर्माके आदेश दिया कि मेरे तेजको कम कर मेरा निर्माण करो। मेरा आदेश प्राप्त कर उन्होंने शाकद्वीपमें पहाड़को घुमाकर मेरे तेजको खरट दिया। उसी विश्वकर्माने कल्पवृक्षके काष्ठसे यह मेरी मूलशाना प्रतिमा बनायी है। तुम्हारा उद्धार करनेके लिये मेरी आज्ञाके अनुसार विश्वकर्माने ही सिद्धसेवित हिमालयपर इसे निर्मितकर चन्द्रभागा नदीमें प्रवाहित कर दिया है। साम्ब ! यह स्थान बहुत शुभ है, सुन्दर है। यहाँ रुदा मेरा मूर्तिभ्य रहेगा। ज्ञानः मनुष्यगण इस चन्द्रभागाके तटपर मेरा मूर्तिभ्य प्राप्त करेंगे। मध्याह्नमें कालाश्रयमें (बसलपीपे) और अनन्तर यहाँ प्रतिदिन मेरा दर्शन प्राप्त करेंगे। पूर्वाह्नमें ब्रह्मा, मध्याह्नमें विष्णु और अपराह्नमें शंकर सदा पूजा करेंगे। महाब्रह्मा ! इस प्रकार भगवान् सूर्यके ऐसा कहनेपर साम्ब अत्यन्त प्रसन्न हुए और भगवान् सूर्य भी अवधारण हो गये।

(अध्याय १२९)

### मन्दिर-निर्माण-योग्य भूमि एवं मन्दिरमें

#### प्रतिमाओके स्थानका निरूपण

**राजा शतानीकने पूछा—**मुने ! साम्बने भगवान् सूर्यकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा किस प्रकार की ? किसके कथनानुसार उन्होंने भगवान् आदित्यके प्रसादका निर्माण कराया।

**सुमन्तु मुनि बोले—**चन्द्रभागा नदीमें प्रतिमा प्राप्त करनेके बाद साम्बने देवर्षि नारदका स्मरण किया। स्मरण करते ही वे वहाँ उपस्थित हो गये। साम्बने विधिवत् उनका पूजन-सत्कार आदि करके उनसे पूछा—'महागुरु ! भगवान्के मन्दिरको जो बनवाता है तथा प्रतिमाकी जो प्रतिष्ठा करता है, उन दोनोंका क्या फल है ?'

**नारदजीने कहा—**नरशार्दूल ! जो रमणीय स्थानमें

सूर्य-मन्दिरका निर्माण करता है, वह व्यक्ति सूर्यलोकमें जाता है, इसमें संदेह नहीं।

**साम्बने पूछा—**सूर्य-मन्दिरका निर्माण किस प्रकार तथा किस स्थानपर कराना चाहिये ? आप इसे बतायें।

**नारद बोले—**जहाँ जलप्राप्ति निरन्तर विद्यमान रहे, वहाँ मन्दिर बनवाना चाहिये अर्थात् सर्वप्रथम एक विशाल जलशयक निर्माण कराना चाहिये। यश और धर्मकी अधिवृद्धिके लिये वहाँ देवमन्दिरका निर्माण कराना चाहिये। उसके समीप उद्यान एवं पुष्पवाटिका भी लगवाने चाहिये। ब्राह्मण आदि वर्णोंके लिये जैसी भूमि वास्तुशिल्पकी दृष्टिसे

प्रसाद-निर्माणके लिये वर्णित है, वैसी ही भूमि देवप्रसादके लिये भी प्रशस्त मानी गयी है।

सूर्यनारायणका मन्दिर पूर्वाभिमुख बनवाना चाहिये, पूर्वकी ओर द्वार रखनेका स्थान न हो तो पश्चिमाभिमुख बनवाये। परंतु मुख्य पूर्वाभिमुख ही है। स्थानको इस प्रकारसे कल्पना करे कि मुख्य मन्दिरसे दक्षिणकी ओर भगवान् सूर्यका स्नान-गृह और उत्तरकी ओर यज्ञशाला रहे। भगवान् दिव्य और मातृकाका मन्दिर उत्तराभिमुख, ब्रह्मका पश्चिम और विष्णुका उत्तर-मुख बनवाना चाहिये। भगवान् सूर्यके दाहिने पार्श्वमें निक्षुप्ता तथा बायें पार्श्वमें राजाको स्थापित करना चाहिये। सूर्यनारायणके दक्षिणभागमें पिङ्गल, वामभागमें दण्डनायक, सम्मुख श्री और महाभैरवाकी स्थापना करनी चाहिये। देवगृहके बाहर अधिनीकुमारोंका स्थान बनाना चाहिये। मन्दिरके दूसरे कक्षमें राजा और औष, तीसरे कक्षमें कल्याण और पक्षी, दक्षिणमें दण्ड और माटर, उत्तरमें लोकपूजित कुम्भरकी स्थापित करना चाहिये। कुम्भरने उत्तर देखना एवं विनायककी स्थापना करनी चाहिये या जिस दिशमें

उत्तम स्थान हो वहीँपर उनकी स्थापना करे। दाहिनी एवं बायीं ओर अर्घ्य प्रदान करनेके लिये दो मण्डल बनवाये। उदयके समय दक्षिण मण्डलमें और अस्तके समय वाम मण्डलमें भगवान्को अर्घ्य दे। चक्राकर पीठके ऊपर स्नानगृहमें चार कलशमें भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको सविधि स्नान कराये। स्नानके समय शङ्ख आदि मङ्गल वाद्य बजाने चाहिये। तीसरे मण्डलमें सूर्यनारायणकी पूजा करे। सूर्यनारायणके सम्मुख दिण्डीकी स्थानक (चाड़ी हुई) प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। सूर्यनारायणके सम्मुख समीपमें ही सर्वदेवमय ज्योमकी रचना करनी चाहिये। मध्याह्नके समय वहाँ सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये अथवा मध्याह्नमें अर्घ्य देनेके लिये चन्द्र नामक तृतीय मण्डल बनाये। प्रथम स्नान कराकर बादमें अर्घ्य दे। भगवान् सूर्यके समीप ही उचित स्थानपर पुराणका पाठ करनेके लिये स्थान बनाना चाहिये। वह देवताओंके स्थापनका विधान है। गृहराज और सर्वलेशभद्र—ये दो प्रसाद सूर्यनारायणको अतिशय प्रिय हैं।

(अध्याय १३०)

### सात प्रकारकी प्रतिमा एवं काष्ठ-प्रतिमाके निर्माणोपयोगी वृक्षोंके लक्षण

नारदजी बोले—साव्य। अब मैं विस्तारके साथ प्रतिमा-निर्माणका विधान बतलाता हूँ। भक्तोंके कल्याणकी अभिवृद्धिके लिये भगवान् सूर्यकी प्रतिमा सात प्रकारकी बनायी जा सकती है। सोना, चाँदी, ताम्र, पाषाण, मृत्तिका, काष्ठ तथा चित्रलिखित। इनमें काष्ठकी प्रतिमाके निर्माणका विधान इस प्रकार है—

नक्षत्र तथा ग्रहोंकी अनुकूलता एवं शुभ उक्त देवतान् मङ्गलस्मरणपूर्वक काष्ठ-ग्रहण करनेके लिये वनमें जाकर प्रतिमोपयोगी वृक्षका चयन करना चाहिये। दूधवाले वृक्ष, कमजोर वृक्ष, चौराहे, देवस्थान, वल्मीक, श्मशान, चैत्य, आश्रम आदिमें लगे हुए वृक्ष तथा पुत्रक वृक्ष—जिसको किसी बिना पुत्रवाले व्यक्तिने पुत्रके रूपमें लगाना हो अथवा बाल वृक्ष, जिसमें बहुत कोटर हों, अनेक पक्षी रहते हों, शम्भ, वायु, अग्नि, बिजली तथा हाथी आदिसे दूषित वृक्ष, एक-दो शाखावाले वृक्ष, जिनका अप्रभाग सूख गया हो ऐसे वृक्ष प्रतिमाके योग्य नहीं होते। महुआ, देवदारु, वृक्षराज चन्दन,

बिल्व, सारि, अंजन, निम्ब, श्रीपर्ण (अश्रिपन्थ), पनस (कटहल), सरल, अर्जुन और रक्तचन्दन—ये वृक्ष प्रतिमाके लिये उत्तम हैं। चारों वर्णोंके लिये भिन्न-भिन्न ग्राह्य वृक्षोंका विधान है।

अधिमत्त वृक्षके पास जाकर वृक्षकी पूजा करनी चाहिये। पवित्र स्थान, एकान्त, केश-अङ्गारशून्य, पूर्व और उत्तरकी ओर स्थित, स्त्रियोंके कष्ट न देनेवाला, विस्तृत सुन्दर शाखाओं तथा पत्तोंमें समृद्ध, सौभाग्य, वणशून्य तथा त्वचावाला वृक्ष शुभ होता है। स्वयं गिरे हुए या हाथोंसे गिराये गये, शुष्क होकर या अग्निसे जले हुए और पक्षियोंसे रहित वृक्षोंका प्रतिमा-निर्माणमें उपयोग नहीं करना चाहिये। मधुमक्खीके छत्तेवाला वृक्ष भी ग्राह्य नहीं है। सिन्धु पत्र-समन्वित, पुष्पित तथा फलित वृक्षोंका कर्त्तिक आदि आठ मासोंमें उत्तम मुहूर्त देखकर उपवास रहकर अधिवासन-कर्म करना चाहिये। वृक्षके नीचे चारों ओर लोपकर गन्ध, पुष्पमाला, धूप आदिसे यथाविधि वृक्षकी पूजा करे। अनन्तर गायत्रीमन्त्रसे अधिमन्त्रित

जलसे प्रोक्षण करे। दो उज्ज्वल वस्त्र धारण कर वृक्षकी गन्ध-माल्यसे पूजा करे तथा उसके सामने कुशासनपर बैठकर देवदारुकी समिधासे अग्निमें आहुतिर्चा दे, नमस्कार करे।

ॐ प्रजापते सत्यसदाय नित्यं

श्रेष्ठान्तरात्मन् सचराचरात्मन् ।

सान्निध्यमस्मिन् कुरु देव वृक्षे

सूर्यावृतं मण्डलमाविशेस्त्वं नमः ॥

(ब्राह्मण १३१।२६)

'प्रजापतिसत्यस्वरूप इस वृक्षको नित्य नमस्कार है। श्रेष्ठान्तरात्मन्! सचराचरात्मन्! देव! इस वृक्षमें आप सान्निध्य करें। सूर्यावृत-मण्डल इसमें प्रविष्ट हो। आपको नमस्कार है।'।

इस प्रकार वृक्षकी पूजा कर उसके सान्त्वना देते हुए कहे—'वृक्षराज! संसारके कल्याणके लिये आप देवालयमें चले। देव! आप वहाँ छेदन और तापसे रहित होकर स्थित रहेंगे। समयपर धूप आदि प्रदानकर पुष्पोंके द्वारा संसार आपकी पूजा करेगा।'।

वृक्षके मूलमें धूप-माल्य आदिसे कुठारका पूजन कर उसका सिर पूर्वकी ओर करके सावधानीसे स्थापित करें। अनन्तर मोदक, खीर आदि भक्ष्य द्रव्य तथा सुगन्धित पुष्प,

धूप, गन्ध आदिसे वृक्षकी तथा देवता, पितर, राक्षस, पिशाच, नाग, सुरागण, विनायक आदिकी पूजा करके रात्रिमें वृक्षका स्पर्श कर यह कहे—'देवदेव! आप पूजामें देखेंके द्वारा परिकल्पित है। वृक्षराज! आपको नमस्कार है। यह विधिवर की गयी पूजा आप ग्रहण करें। जो-जो प्राणी यहाँ निवास करते हैं, उनके भी मेरा नमस्कार है।'।

प्रभातकालमें पुनः उस वृक्षका पूजन करे तथा ब्राह्मण और भोजकको दक्षिणा देकर विशेषज्ञोंके द्वारा स्वस्तिवाचन-पूर्वक वृक्षका छेदन करे। पूर्व-ईशान और उत्तरकी ओर वृक्ष कट करके गिरे तो अच्छा है। शायदाँके इन दिशाओंमें गिरनेपर ही वृक्षका छेदन करे अन्यथा नहीं। वृक्षका नैऋत्य, आग्नेय और दक्षिण दिशाओंमें गिरना शुभ नहीं है एवं वायव्य और पश्चिममें गिरना मध्यम है। पहले वृक्षके चारों ओरकी शखाओंको काटनेके बाद वृक्षको कटवाये। वृक्षसे शखाएँ सर्वथा अलग हो जायें तथा गिरकर टूटें नहीं एवं शब्द भी नहीं हो तो उत्तम है। जिसके कटनेसे दो भाग हो जाय, जिस वृक्षसे मधुर द्रव्य, घी, तेल आदि निकले उसका परित्याग कर दे। इन दोषोंमें रहित अच्छा काल देखकर वृक्षका संग्रह करना चाहिये।

(अध्याय १३१)

### सूर्य-प्रतिमाकी निर्माण-विधि

नारदजीने कहा—यदुशार्दूल! मैं सभी देखेकी प्रतिमाका लक्षण विशेषरूपसे आदित्यकी प्रतिमाका लक्षण कहता हूँ। एक हाथ, दो हाथ, तीन हाथ अथवा साढ़े तीन हाथ लम्बी या देवालयके द्वारके प्रमाणके अनुसार भगवान् सूर्यकी प्रतिमाका निर्माण कराना चाहिये। एक हाथकी प्रतिमा सौम्य होती है, दो हाथकी धन-धान्य देती है, तीन हाथकी प्रतिमासे सभी कार्य सिद्ध होते हैं, साढ़े तीन हाथकी लम्बी प्रतिमाकी स्थापनासे राष्ट्रमें सुनिश्च, कल्याण और आशेषकी प्राप्ति होती है। प्रतिमाके अग्रभाग, मध्यभाग और मूलभागमें सौम्य होनेपर उसको गान्धर्वी प्रतिमा कहते हैं। वह धन-धान्य प्रदान करती है। देवालयके द्वारका जितना विस्तार हो, उसके आठवें अंशके समान प्रतिमा बनवानी चाहिये।

भगवान् सूर्यकी प्रतिमा विशाल नेत्र, कमलके समान मुख, रत्नजर्णके विषयके समान सुन्दर ओठ, रत्नजटित मुकुटसे अलंकृत मस्तक, मणि-कुण्डल, कटक, अंगद, हार आदि अलङ्कारोंसे सुशोभित अत्यङ्ग धारण किये हुए, हाथोंमें प्रकुल्लित कमल और सुवर्णकी माला लिये हुए अतिशय सुन्दर सभी शुभ लक्षणोंसे समन्वित बनवानी चाहिये।

इस प्रकारकी प्रतिमा प्रजाका कल्याण करनेवाली, आशेष-प्रदायक तथा अभय प्रदान करनेवाली होती है। हीन या कम अङ्गवान्की प्रतिमा अनिष्टकारक होती है। अतः प्रतिमा खोधी और सुडौल बनवानी चाहिये।

ब्रह्माजीकी मूर्ति हाथमें कमण्डलु धारण किये कमलसनपर विरजमान तथा चार मुखोंसे संयुक्त बनवानी



चाहिये। कार्तिकेयकी प्रतिमा कुमार-स्वरूप, हाथमें शक्ति लिए, अतिशय सुन्दर बनवानी चाहिये। इनकी ध्वजा मयूर-मण्डित होनी चाहिये।

इन्द्रकी प्रतिमा चार दंतोंसे युक्त सफेद दाँतोंवाले ऐरावत गजपर आरुढ़ तथा हाथमें वज्र धारण किये हुए बनवानी चाहिये। इस प्रकार देवोंकी प्रतिमा शुभ लक्षणोंसे युक्त और सुन्दर बनवानी चाहिये।

**नारदजी बोले—**साम्ब ! भगवान् सूर्यकी इस प्रकारकी प्रतिमा बनवाकर ईशानकोणमें चार तोरण, पल्लव, पुष्पमाला, पताका आदिसे विभूषित कर फिर अधिवासनके लिये मण्डपका निर्माण करवाना चाहिये। कबूतकी मूर्ति श्री, विजय, बाल, यश, आयु और धन प्रदान करती है, मिट्टीकी प्रतिमा प्रजापति कल्याण करती है। गणिमयी प्रतिमा कल्याण और सुभिक्ष प्रदान करती है, सुवर्णकी प्रतिमा पुष्टि, चाँदीकी मूर्ति कीर्ति, ताम्रकी मूर्ति प्रजावृद्धि तथा पाषाणकी प्रतिमा विपुल भूमि लाभ कराती है। लोहे, शीशे एवं रंगिनी मूर्तियाँ अनिष्ट करनेवाली होती हैं, इसलिये इन धातुओंकी प्रतिमा नहीं बनवानी चाहिये।

**साम्बने पूछा—**नारदजी ! भगवान् सूर्य सर्वदेवमय कहे गये हैं, यह उनका सर्वदेवमयत्व कैसा है ? उसे कृपाकर बतलाइये।

**नारदजीने कहा—**साम्ब ! तुमने बड़ी अच्छी बात पूछी

(अध्याय १३२-१३३)

## सूर्य-प्रतिष्ठाका मुहूर्त और मण्डप बनानेका विधान

**नारदजी बोले—**साम्ब ! भगवान् सूर्यकी स्थापनाके लिये प्रतिपदा, द्वितीया, चतुर्थी, पञ्चमी, दशमी, त्रयोदशी तथा पूर्णिमा—ये तिथियाँ प्रशस्त मानी गयी हैं। चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्र—इन ग्रहोंके उदित एवं अनुकूल होनेपर भगवान् सूर्यकी प्रतिष्ठाकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। सूर्यकी स्थापनामें तीनो उत्तर, रेवती, अश्विनी, रोहिणी, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण और धरणी—ये नक्षत्र प्रशस्त हैं। प्रतिष्ठाके लिये यशभूमि भूसी, राख, केस आदिसे रहित एवं शुद्ध होने चाहिये। उसमें बालू, कंकड़ एवं कोयले न हों। दस हाथ लंबा-चौड़ा मण्डप बनवाना चाहिये। उसके चारो ओर वृक्ष, उद्यान, उपवन आदि होने चाहिये। उस मण्डपमें चार हाथ लंबा-चौड़ी वेदीका निर्माण करे। नदीके संगम-स्थानसे मिट्टी

है। अब मैं यह सब बता रहा हूँ। इसे ध्यानसे सुनो—

भगवान् सूर्य सर्वदेवमय हैं, उनके नेत्रोंमें बुध और सोम, ललाटपर भगवान् शंकर, सिरमें ब्रह्मा, कपालमें बृहस्पति कण्ठमें एकादश रुद्र, दाँतोंमें नक्षत्र और ग्रहोंका निवास है। ओष्ठोंमें धर्म और अधर्म, जिह्वामें सर्वशास्त्रमयी महादेवी सरस्वती स्थित हैं। कर्णोंमें दिशाई और विदिशाई, तालुदेशोंमें ब्रह्मा और इन्द्र स्थित हैं। इसी प्रकार भ्रूमध्यमें बारहों आदित्य, रोमकूपोंमें सभी ऋषिगण, पेटमें समुद्र, हृदयमें यश, क्लृप्त, गन्धर्व, पिशाच, दानव और राक्षसगण विराजमान हैं। भुजओंमें नदियाँ, कक्षोंमें वृक्ष, पीठके मध्यमें मेरु, दोनों स्तनोंके बीचमें मङ्गल और नाभिमण्डलमें धर्मराजका निवास है। कटिप्रदेशमें पृथ्वी आदि, लिङ्गमें सृष्टि, जानुओंमें अश्विनीकुमार, उरुओंमें पर्वत, नखोंके मध्य सातों पाताल, चरणोंके बीच वन और समुद्रसहित भूमण्डल तथा दन्तान्तरोंमें कात्तली रुद्र स्थित हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्य सर्वदेवमय तथा सभी देवताओंके आत्मा हैं। जैसे वायुसे विश्व व्याप्त है, वैसे ही बराबर जगत् इनसे परिग्राह्य है, क्योंकि वायु भी भगवान् सूर्यके प्रत्येक अङ्गोंमें ही स्थित रहता है। ऐसे ये भगवान् सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये निरंतर तत्पर रहते हैं।

अथवा बालू लाकर वहाँ बिछाये। भलीभाँति मण्डपको गोबर आदिसे उर्ध्वलत करे, पूर्व दिशामें चतुरस्र, दक्षिण दिशामें अर्धचन्द्र, पश्चिम दिशामें वर्तुलाकार और उत्तर दिशामें पदके आकारवाले चार कुण्डोंका निर्माण करे। बट, पीपल, गुल्म, बेल, पलाश, शमी अथवा चन्दनके द्वारा पाँच-पाँच हाथके लंबे लगाये। शुक्र वस्त्र, पुष्पमाला, कुशा आदिके द्वारा प्रत्येक लंबेको अलंकृत करे।

मण्डपके मध्यमें अलंकृत वेदीके ऊपर कुश बिछाकर पुष्पोंसे आच्छादित करे या ढककर प्रतिमाको रखे। मण्डपके आठो दिशाओंमें क्रमशः पीत, रक्त, कृष्ण, अञ्जनके समान नील, श्वेत, कृष्ण, हरित और चित्रवर्णकी आठ पताकाएँ आठ दिक्पालोंकी प्रसन्नताके लिये लगाये। सफेद और लाल चूर्णसे

वेदीके ऊपर कमलकी आकृति बनाये। 'वेद्या वेदिः' (यजुः १९।१७) इस मन्त्रसे वेदीका स्पर्श करे। 'योगे योगेति' (यजुः ११।१४) इस मन्त्रसे उसपर पूर्वाध और उत्तराध कुशोंको बिछाये। वहाँ उतम बिलावन और दो तकियोसे युक्त

एक शय्या एवं विविध भक्ष्य पदार्थोंको मण्डपमें रखे। एक उतम श्वेत छत्र वहाँ स्थापित कर विचित्र दीपमालासे मण्डलको अलंकृत करे।

(अध्याय १३४)



### साम्बोपाख्यानके प्रसंगमें सूर्यकी अभिषेक-विधि

**नारदजी बोले—**साम्ब ! अब मैं भगवान् सूर्यके छपनकी विधि बताता हूँ। वेदपाठी, पवित्र आचारिण, शास्त्रमर्मज्ञ, सूर्यभक्त भोजक अथवा अन्य ब्राह्मणोंके साथ मण्डलके ईशानकोणमें एक हाथ लेखा-बौड़ा और ऊँचा भद्रपीठ स्थापित कर देव-प्रतिमाको प्रसादमें लयें और प्रतिमाको उस पीठपर स्थापित करे। मार्गमें 'भई कर्जोभिः' आदि माङ्गलिक मन्त्रोंकी ध्वनि होती रहे तथा भीति-भीतिके वाद्य बजते रहें। अनन्तर समुद्र, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, चन्द्रभागा, सिन्धु, पुष्कर आदि तीर्थों, नदी, सागर, पर्वतोंय झरनोंके जलसे भगवान् सूर्यको स्नान कराये। आठ ब्राह्मण और आठ भोजक सोनेके कलशोंके जलमें स्नान करायें। स्नानके जलमें रत्न, सुवर्ण, गन्ध, सर्वबीज, सर्वाधि, पुष्प, बाह्मी, सुवर्चला (सूर्यमुखी), मुस्ता, विष्णुजान्ता, उतावरी, दूर्वा, मदार, हल्दी, प्रियंगु, वच आदि सभी औषधियाँ डाले। कलशोंके मुखपर कट, पीपल और शिरीषके कोमल पल्लवोंको कुशके साथ रखे। भगवान् सूर्यको अर्घ्य देकर गायत्री-मन्त्रसे अधिष्ठाित सोलह कलशोंसे स्नान कराये। सुवर्ण कलशके अभावमें चाँदी, ताँबा, भूतिकाके कलशोंसे ही स्नान करना चाहिये। इसके अनन्तर पाँके ईंटोंसे बनी हुई वेदीके ऊपर कुड़ा बिछाकर मूर्तिको दो वस्त्र पहनाकर स्थापित करना चाहिये। उस दिन व्रत रखे। मूर्ति स्थापित करनेके

पश्चात् निम्न मन्त्रोंसे प्रतिमाका अभिषेक करे—

'देवश्रेष्ठ ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवगण आकरश-गङ्गामें परिपूर्ण जलद्वारा आपका अभिषेक करे। दिवस्पते ! भक्तिमान् मरुदण मेघजलसे परिपूर्ण द्वितीय कलशसे आपका अभिषेक करे। सुरोत्तम ! विद्याधर सरस्वतीके जलसे परिपूर्ण तृतीय कलशके द्वारा आपका अभिषेक करे। देवश्रेष्ठ ! इन्द्र आदि लोकपालगण समुद्रके जलसे परिपूर्ण चतुर्थ कलशसे आपका अभिषेक करे। नागगण कमलके परागसे सुगन्धित जलसे परिपूर्ण पञ्चम कलशसे आपका अभिषेक करे। हिमवान् एवं सुवर्णीशखवाले सुमेरु आदि पर्वतगण दक्षिण-पश्चिममें स्थित छठे कलशके जलसे आपका अभिषेक करे। आकाशवाचो सप्तर्षिगण पद्यपरागसे सुगन्धित सम्पूर्ण तीर्थ-जलोंसे परिपूर्ण सप्तम छटके द्वारा आपका अभिषेक करे। आठ प्रकारके मङ्गलसे सम्बन्धित अष्टम कलशसे वसुगण आपका अभिषेक करे। हे देवदेव ! आपको नमस्कार है।'।

इसी प्रकार एक ताम्रके पात्रमें पञ्चगव्य बनाकर स्नान कराये। वैदिक मन्त्रोंसे गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, कुशोदक लेकर ताम्रके नवीन पात्रमें पञ्चगव्य बनाकर सूर्यनारायणको स्नान कराये। मन्त्रसे गन्धयुक्त जलसे स्नान कराये, अनन्तर शुद्धोदक-स्नान कराये तथा रक्त वस्त्र एवं अलंकारसे अलंकृत कर इस प्रकार आवाहन करे—

१-देवास्त्वामभिषिज्यान्तु	ब्राह्मिणुस्तिस्रदणः । लोमघङ्गाम्बुजैरे	कस्तुरेण	सुरोत्तम ॥
मरुतश्चाभिषिञ्चन्तु	भक्तिमान्तो	दिवस्पते । मेघतोयाभिपूर्ये	द्वितीयकलशेन तु ॥
सारसत्तेन पूर्णेन	कस्तुरेण	सुरोत्तम । विद्याधराभिषिञ्चन्तु	तृतीयकलशेन तु ॥
शक्रतया अभिषिञ्चन्तु	लोकपालाः	सुरोत्तमः । सागरोदकपूर्ये	चतुर्थकलशेन तु ॥
वारिणः परिपूर्ये	पराणुमुगन्धिनाः । पञ्चमेऽभिषिञ्चन्तु	नागान्तः	कस्तुरेण तु ॥
हिमवद्वेगमकुटाया	अभिषिञ्चन्तु	वाधलाः । नैर्ऋतेऽकपूर्ये	षष्ठेन कलशेन तु ॥
सर्वतीर्थान्मुपूर्ये	पराणुमुगन्धिनाः । सप्तमेऽभिषिञ्चन्तु	ऋषयः	नक्त खेपराः ॥
वसवश्चाभिषिञ्चन्तु	कलशेनाष्टमेन	वै । अष्टमङ्गस्तपुतेन	देवदेव नमोऽस्तु ते ॥

एहोहि भगवन् भानो लोकानुग्रहकारक ।

यज्ञभागं गृहाण त्वमग्निदेव नमोऽस्तु ते ॥

'भगवन् ! लोकानुग्रहकारक भानो ! आप आये, इस यज्ञभागको ग्रहण करें, भगवान् सूर्यदेव ! आपको नमस्कार है ।'

तदनन्तर सुवर्णपात्रके द्वारा सूर्यदेवको अर्घ्य प्रदान करें । पहले मिट्टीके कलशसे, अनन्तर ताँबे-कलशसे फिर रजत-कलशसे और अन्तमें सुवर्णके कलशसे मन्त्रोंद्वारा अभिषेक करें । सम्पूर्ण तीर्थोदक और सर्वोपधिसे युक्त शङ्खको सूर्यदेवके मस्तकपर भ्रमण कराये और उसके जलसे स्नान कराये, अनन्तर पुष्प और धूप देकर जल, दूध, घृत, शहद और ईश्वरसे स्नान कराये ।

इस प्रकारसे सूर्यदेवको स्नान करानेवाला पुण्य अग्निहोम, ज्योतिहोम, वाजपेय, राजसूय और अश्वमेध-यज्ञके फलको

प्राप्त करता है । जो स्नानके समय सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक दर्शन करता है, वह भी पूर्वोक्त फल प्राप्त करता है । ऐसे स्थानमें स्नान कराना चाहिये जहाँ स्नानके जलका कोई लङ्घन न कर सके और स्नानके जल, दही, दूधको कुत्ता, बौआ आदि निन्दित जीव भक्षण न कर सके ।

इस प्रकारके स्नानविधिके सम्पादनके लिये जिस प्रकारके ब्राह्मण और भोजकको आवश्यकता होती है, उनका लक्षण सुने—

वह व्यक्ति विकलाङ्ग अर्थात् न्यूनार्धिक अङ्गवाला न हो । वेटादि-शस्त्रोंका ज्ञाता, सुन्दर, कुलीन और आर्यावर्त देशमें उत्पन्न हो । गुरुभक्त, जितेन्द्रिय, तत्त्ववेत्ता और सूर्यसम्बन्धी शस्त्रोंका ज्ञाता हो । ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणसे स्नान और प्रतिष्ठा करानी चाहिये । (अध्याय १३५)

## भगवान् सूर्यकी प्रतिमाके अधिवासन और

### प्रतिष्ठाका विधान तथा फल

नारदजी बोले—साम्य । अब मैं अधिवासनविधि कहता हूँ । पवित्र भूमिको लीपकर पाँच रंगोंमें चतुरस्र सुन्दर मण्डलकी रचना करें । पताका, ध्वज, तोरण, छत्र, पुष्पमाला आदिसे उसे अलंकृत कर मण्डलमें कुछ बिछाये और सूर्यदेवकी मूर्ति स्थापित करें । भगवान् सूर्यका आवाहन कर उन्हें अर्घ्य दें, मधुपर्क तथा वस्त्र, यज्ञोपवीत आदिसे पूजन करें और अव्यङ्ग अर्पण करें । जिस प्रकार देवताओंको पवित्रक अर्पण किया जाता है, वैसे ही प्रतिवर्ष ब्राह्मण मासमें नवीन अव्यङ्गकी रचनाकर सूर्यनारायणको समर्पित करना चाहिये । इनका यह पवित्रक है । नवीन अव्यङ्गके समर्पणके समय ब्राह्मणोंको भोजन कराये । भगवान्की प्रतिमाको सुगन्धित द्रव्योंसे उषल्लिख कर पुष्पमाला चढ़ाये तथा धूप आदि दिखाये । 'नमः शम्भवाय-' (यजु- १६।४१) इस मन्त्रसे भगवान्की प्रतिमाको शय्याके ऊपर शयन कराये । सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्तिके लिये इस प्रकार पाँच दिन, तीन दिन अथवा एक ही रात्रि प्रतिमाका अधिवासन करें<sup>१</sup> ।

देवालयेके ईशानकोणमें उत्तम स्थानके मध्यमें कुछ दिशाकर वहाँ शङ्ख वस्त्रोंसे सुसज्जित शय्या रखे । शय्याका

मिरहाना पूर्वमुख रखा जाय । उसी शय्यापर भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको शयन कराये । उनके दाहिने भागमें निक्षुभा, वाम भागमें राक्षी और चरणोंके समीप दण्डनायक तथा पिङ्गलको स्थापित करें । उस रात्रिमें सूर्यनारायणके समीप जागरण करें, वन्दी-चरणसे स्तुति, नृत्य, गीत आदि उत्सव कराये । प्रभात होते ही ब्रह्मेदके विधानसे प्रतिमाका उद्घोषन करें और स्वस्तिवाचनपूर्वक भगवान्की पूजा कर ब्राह्मण तथा भोजकोंको हविष्यान्न भोजन कराये तथा उन्हें दक्षिणा देकर प्रसन्न करें । अनन्तर मन्दिरके गर्भगृहमें पिण्डिकाके ऊपर सात अक्षोंसे युक्त सुवर्णका रथ स्थापित कर सूर्यनारायणको अर्घ्य देकर मङ्गल वाद्योंके साथ जलधारा गिराये । फिर उत्तम मुहूर्त और स्थिर लग्नमें प्रतिमाकी स्थापना करें । प्रतिमाका मुख नीचे-ऊपर या अगल-बगल, तिरछा न हो, वरन् सीधा और सप्त रहे । भगवान् सूर्यकी प्रतिमाके दक्षिण-भागमें और वामभागमें क्रमशः निक्षुभा और राक्षीकी प्रतिमा स्थापित करें । अनन्तर मोटक, शङ्कुल्ले, पायस, कुशर आदिसे इन्द्रादि दस दिक्पालोंका आवाहन तथा पूजन कर उन्हें बलि समर्पित करें ।

इसके अनन्तर स्तुतियाँ तथा विविध उपचारोंसे

सूर्यदेवका पूजनकर ब्राह्मणों और भोजकके भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार भक्तोद्दारा भक्तिपूर्वक प्रतिमाकी स्थापना किये जानेपर, यह उनकी सभी प्रकार कल्याण, मङ्गल और सुख-समृद्धिकी वृद्धि करता है और उसमें भगवान् सूर्यके नित्य संनिध्य रहता है। सूर्यकी स्थापना करनेवाला व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है और उसे सात जन्मोंतक आधि-व्याधियाँ भी नहीं सतातीं। तीन दिनोंतक प्रतिष्ठाके उत्सवोंमें सम्मिलित रहनेवाला व्यक्ति सूर्यलोकको जाता है। सूर्यनारायणकी प्रतिमाकी स्थापना करनेसे दस अश्वमेध तथा सौ बाजपेय-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। मन्दिरकी ईंट जबतक पूर्ण नहीं हो जाती, तबतक मन्दिर बनानेवाला पुरुष स्वर्ग-

सुख भोगता है। सूर्य-मन्दिरके जीर्णोद्धार करनेका पुण्य इससे भी अधिक है। जो पुरुष मन्दिरका निर्माण कराकर प्राणियोंकी सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयके हेतुभूत सुरश्रेष्ठ भगवान् सूर्यकी प्रतिमा स्थापित करता है, वह संसारके सब सुखोंको भोगकर सौ कल्पोंतक सूर्यलोकमें निवास करता है। मन्दिरमें इतिहास-पुराणका पाठ भी करना चाहिये।

इसी प्रकार अन्य देवताओंकी प्रतिमाओंका भी शण्डाधिकार तथा उद्घोषन करे तथा शुभ मुहूर्तमें उन प्रतिमाओंको यथास्थान पिण्डिकापर स्थापित कर पूजन करे।

(अध्याय १३६-१३७)

### ध्वजारोपणका विधान और फल

नारदजी बोले—साध्व ! अब मैं ब्रह्माजीद्वारा वर्णित ध्वजारोपणकी विधि बतलाता हूँ। पूर्वकालमें देवता और असुरोंमें जो भीषण युद्ध हुआ, उसमें देवताओंने अपने-अपने रथोंपर जिन-जिन विद्वानोंकी कल्पना की, वे ही उनके ध्वज कहलाये। उनका लक्षण इस प्रकार है—ध्वजका दण्ड सोण, वर्णरहित और प्रासादके व्यासके बराबर लम्बा होना चाहिये अथवा चार, आठ, दस, सोलह या बीस हाथ लम्बा होना चाहिये। ध्वजका दण्ड बीस हाथसे अधिक लम्बा न हो और सम पर्वोवाला हो। उसकी गोलाई चार अङ्गुल होनी चाहिये।

ध्वजके ऊपर देवताको सूचित करनेवाला चिह्न बनाना चाहिये। भगवान् विष्णुके ध्वजपर गरुड, शिवजीकी ध्वजपर शृङ्ग, ब्रह्माजीकी ध्वजपर पद्म, सूर्यदेवकी ध्वजपर व्योम, सोमकी पताकापर नर, बालदेवकी पताकापर फलसज्जित हल, कामदेवकी पताकापर मकरध्वज, इन्द्रकी ध्वजपर हस्ती, दुर्गाकी ध्वजपर सिंह, उमादेवीकी ध्वजपर गौध, रेवतकी ध्वजपर अश्व, वरुणकी ध्वजपर कच्छप, वायुकी ध्वजपर हरिण, अग्निकी ध्वजपर मेष, गणपतिकी ध्वजपर मूषकका तथा ब्रह्मर्षियोंकी पताकापर कुशका चिह्न बनाना चाहिये। जिस देवताका जो वाहन हो, वही ध्वजपर भी अङ्कित रहता है।

विष्णुकी ध्वजका दण्ड सोनेका और पताका चैतवर्णकी होनी चाहिये, वह गरुड़के समीप रखनी चाहिये। शिवजीका

ध्वजदण्ड चाँदीका और श्वेत वर्णकी पताका वृषके समीप स्थापित करे। ब्रह्माका ध्वजदण्ड तबिकर और पद्मवर्णकी पताका कमलके समीप रखे। सूर्यनारायणका ध्वजदण्ड सुवर्णका और व्योमके नीचे वैशरंगी पताका होनी चाहिये, जिसमें चिकिणी लगी रहे एवं पुष्पमालाओंमें संयुक्त हो। इन्द्रका ध्वजदण्ड सोनेका और हस्तीके समीप अनेक वर्णकी पताका होनी चाहिये। कामका ध्वजदण्ड लोहेका और महिषके समीप कृष्णवर्णकी पताका रखनी चाहिये। कुबेरका ध्वजदण्ड पद्मिमाय और मनुष्य-पादके समीप रक्त वर्णकी पताका रखे। बालदेवका ध्वजदण्ड चाँदीका और तालवृक्षके नीचे श्वेतवर्णकी पताका रखनी चाहिये। कामदेवका ध्वजदण्ड त्रितैल (सोना, चाँदी और तैल-मिश्रित)का और मकरके समीप रक्तवर्णकी पताका स्थापित करनी चाहिये। कार्तिकेयका ध्वजदण्ड त्रितैलका और मयूरके समीप चित्रवर्णकी पताका एवं गणपतिके ध्वजदण्ड ताम्रका अथवा हस्तिदन्तका एवं भूषकके समीप शुक्लवर्णकी पताका और मातृकाओंके ध्वजदण्ड अनेक रूपोंके तथा अनेक वर्णोंकी अनेक पताकाएँ होनी चाहिये। रेवतकी पताका अश्वके समीप लालवर्णकी, कामुण्डका ध्वजदण्ड लौहका और मुण्डमालाके समीप नीले वर्णकी ध्वजा होनी चाहिये। गौरीका ध्वजदण्ड ताम्रका और इन्द्रगोप (चौराहटी कीट) के समान अतिशय रक्तवर्णकी ध्वजा होनी चाहिये। अग्निका ध्वजदण्ड सुवर्णका और मेघके



समीप अनेक वर्णकी पताका होनी चाहिये। वायुका ध्वजदण्ड लौहका और हरिणके समीप कृष्णवर्णकी पताका होनी चाहिये। भगवतीका ध्वजदण्ड सर्वधातुमय, उसमें ऊपर सिंहके समीप तीन रंगकी पताका होनी चाहिये।

इस प्रकार ध्वजका पहिले निर्माणकर उसका अधिवासन करे। लक्षणके अनुसार वेदीका निर्माण करे, कलशकी स्थापना कर सर्वोपधि-जलसे ध्वजको स्नान कराये। वेदीके मध्यमें उसे खड़ाकर सभी उपचारोंसे उसकी पूजा करे और उसे पुष्पमाला पहिनाये, दिक्पालोंको बलि देकर एक रात तक अधिवासन करे। दूसरे दिन भोजन कराकर शुभ मुहूर्तमें स्वस्तिवाचन आदि मङ्गल-कृत्य सम्पन्न कर ध्वजको मन्दिरके ऊपर आरुढ़ करे। ध्वजारोहणके समय अनेक प्रकारके वाद्योंको बजाये, ब्राह्मणगण वेद-ध्वनि करे। इस प्रकार देवालयपर ध्वजारोहण कराना चाहिये। ध्वजारोहण कराने-वालेकी सम्पत्तिकी सदा वृद्धि होती रहती है और वह परम गतिको प्राप्त करता है। ध्वजारोहित मन्दिरमें असुर निवास करते

हैं, अतः ध्वजारोहित मन्दिर नहीं रखना चाहिये। ध्वजारोहणके समय इन मन्त्रोंको पढ़ना चाहिये—

एहोहि भगवन् देव देववाहन वै खग ॥

श्रीकरः श्रीनिवासश्च जप जैत्रोपशोभित ।

व्योमरूप महारूप धर्माधिपस्वै च वै गतेः ॥

सोनिध्यं कुरु दण्डेऽस्मिन् साक्षी ज ध्रुवतां ब्रज ।

कुरु वृद्धिं सदा कर्तुः प्रासादस्यार्कवल्लभ ॥

ॐ एहोहि भगवन् श्रीधरविनिर्घित उपरिचरवायु-  
मार्गानुसारिः श्रीनिवास त्रिपुष्पेन यक्षनिलय सर्वदेवप्रियं कुरु  
सोनिध्यं शान्तिं स्वस्वयनं च मे । भयं सर्वविघ्ना व्यपसरन्तु ॥

(ब्राह्मण्य १३८/७३—७५)

स्वच्छ दण्डमें पताकाको प्रतिष्ठित करे तथा पताकाका दर्शन करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो रक्षिका ध्वजारोहण करता है, वह ब्रेह भोगोंको भोगकर सूर्यलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १३८)

### साम्बोपाख्यानमें मगोका वर्णन

साम्बने कहा—नारदजी! आपकी कृपासे मुझे सूर्यभगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ, उत्तम रूप भी प्राप्त हुआ, किन्तु मेरा मन विचित्रसे आकुल है, इस मूर्तिक पूजन और रक्षण कबन करेगा? इसे आप कतानेकी कृपा करें।

नारदजी बोले—साम्ब! इस कार्यको कोई भी ब्राह्मण स्वीकार नहीं करेगा, क्योंकि देवपूजा अर्थात् देवधनसे अपना निर्वाह करनेवाले ब्राह्मण देवलोक चले जाते हैं। जो लोग लोभवश देवधन और ब्राह्मण-धनको ग्रहण करते हैं, वे नरकमें जाते हैं, अतः कोई भी ब्राह्मण देवताका पूजक नहीं बनना चाहता। तुम भगवान् सूर्यकी शरणमें जाओ और उन्होंने पूछे कि कौन उनका विधि-विधानसे पूजन करेगा? अथवा राजा उपसेनके पुरोहितसे कहो, सम्भव है कि वे इस कार्यको स्वीकार कर लें।

नारदजीकी इस बातको सुनकर जाम्बवतीपुर साम्ब उपसेनके पुरोहित गौरमुखके पास गये और उन्होंने उन्हें सदा प्रणामकर कहा—‘महाराज! मैंने सूर्यभगवान्का एक विशाल मन्दिर बनवाया है, उसमें समस्त पत्थर तथा परिच्छदों एवं पत्थरोंसहित उनकी प्रतिमा स्थापित की है और

अपने नामसे वहाँ एक नगर भी बसाया है। आपसे मेरा यह विनम्र निवेदन है कि आप उन्हें ग्रहण करें।’

गौरमुखने कहा—साम्ब! मैं ब्राह्मण हूँ और आप राजा हैं। आपके द्वारा दिये गये इस प्रतिग्रहको लेनेपर मेरा ब्राह्मणत्व नष्ट हो जावेगा। दान लेना ब्राह्मणका धर्म है, किन्तु देवप्रतिग्रह ब्राह्मणको नहीं लेना चाहिये। आप यह दान किसी मगको दें, वही सूर्यदेवकी पूजाका अधिकारी है।

साम्बने पूछा—महाराज! मग कौन हैं? कहाँ रहते हैं? किसके पुत्र हैं? इनका क्या आचार है? आप कृपाकर बतायें।

गौरमुख बोले—मग भगवान् सूर्य (अग्नि) तथा निक्षुभाके पुत्र हैं। पूर्वजन्ममें निक्षुभा महर्षि ऋग्विष्णुकी अल्लत सुन्दर पुत्री थी। एक बार उससे अग्निका उत्पल्लवुन हो गया। फलस्वरूप भगवान् सूर्य (अग्निस्वरूप) रष्ट हो गये। बादमें अग्निरूप भगवान् सूर्यके द्वारा निक्षुभाका जो पुत्र हुआ, वही मग कहलश्या। भगवान् सूर्यके वरदानसे ये ही अग्निवंशमें उत्पन्न अव्यङ्गको स्मरण करनेवाले मग सूर्यके परम भक्त हुए और सूर्यकी पूजाके लिये नियुक्त हुए। भगवान्

सूर्यकी पूजा करनेवाले मग शाकद्वीपमें निवास करते हैं, आप भगवान् सूर्यके पूजकके रूपमें उन्हें प्राप्त करनेके लिये शाकद्वीप जायें।

अनन्तर साम्बने द्वारका जाकर अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णको सब समाचार सुनाया। फिर वे उनकी आज्ञा प्राप्तकर गरुड़पर सवार हो शीघ्र ही शाकद्वीप पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने अतिशय तेजस्वी महात्मा मणोंको सूर्य-भगवान्की आराधनामें संलग्न देख। साम्बने उन्हें सादर प्रणामकर उनकी प्रदक्षिणा की।

**साम्बने कहा—**आपलोग धन्य हैं। आप सबका दर्शन सबके लिये कल्याणकारी है, आप लोग सदा भगवान् सूर्यकी आराधनामें लगे हुए हैं। मैं भगवान् श्रीकृष्णका पुत्र हूँ, मेरा नाम साम्ब है। मैंने चन्द्रभागा नदीके तटपर सूर्यदेवकी मूर्तिकी स्थापना की है। उनकी आज्ञाके अनुसार उनकी विधिवत् आराधनाके निमित्त शाकद्वीपमें जम्बूद्वीपमें ले जानेके

लिये मैं आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। मेरी सखिनय प्रार्थना है कि आपलोग कृपाकर जम्बूद्वीपमें पधारे और भगवान् सूर्यकी पूजा करें।

**मणोंने कहा—**‘साम्ब ! इस बातकी जानकारी भगवान् सूर्यने हमें पहले ही दे दी है।’

यह सुनकर साम्ब बहुत प्रसन्न हुए और गरुड़पर उन्हें बैठाकर वहाँसि गिरवन (मूलस्थान—मूलतान) ले आये। सूर्यभगवान् मणोंको वहाँ उपस्थित देखकर बहुत प्रसन्न हुए और साम्बसे बोले—‘साम्ब ! अब तुम यिना लौड़ दो, ये मग मेरी विधिवत् पूजा सम्पन्न करेंगे।’

इस प्रकार साम्बने शाकद्वीपसे अव्यङ्ग धारण करनेवाले मणोंको लेकर धन-धान्यसे परिपूर्ण इस साम्बपुरको उन्हें समर्पित कर दिया। वे सब भगवान् सूर्यकी सेवामें तत्पर हो गये और साम्ब भी सूर्यदेव एवं मणोंकी प्रणामकर आनन्द-चित्तमें द्वारका लौट आये। (अध्याय १४९—१४१)



### अव्यङ्गका लक्षण और उसका माहात्म्य

एक बार साम्बने महर्षि व्याससे मणोंद्वारा धारण किये जानेवाले अव्यङ्गके विषयमें जिज्ञासा की।

**व्यासजीने कहा—**साम्ब ! मैं तुम्हें अव्यङ्गके विषयमें बताता हूँ, उसे सुनो। देवता, ऋषि, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष और राक्षस ऋतु-क्रमसे भगवान् सूर्यके रथके साथ रहते हैं। यह रथ वासुकि नामक नागसे बँधा रहता है। किसी समय वासुकि नागका केंचुक (केंचुल) उतरकर गिर पड़ा। नागराज वासुकिने शरीरसे उलझ उस निमौक (केंचुल) को भगवान् सूर्यने सुवर्ण और रत्नोंमें अलंकृतकर अपने मध्य भागमें धारण कर लिया। इसीलिये भगवान् सूर्यके भक्त अपने देवकी प्रसन्नताके लिये अव्यङ्ग धारण करते हैं। इसके धारण करनेमें भोजक पवित्र हो जाते हैं और उसपर सूर्यभगवान्का अनुग्रह भी होता है।

इस अव्यङ्गको सर्पके केंचुलकी तरह मध्यमें फोला अर्थात् खाली रखना चाहिये। यह एक वर्णका होना चाहिये।

कथारत्नक मृतमें बना अव्यङ्ग दो सौ अङ्गुलका उत्तम, एक सौ बीसका मध्यम और एक सौ आठ अङ्गुलका कनिष्ठ होता है, अतः इससे छेदा नहीं होना चाहिये। यज्ञोपवीतकी तरह आठवें खर्रमें अव्यङ्ग धारण करना चाहिये। भोजकके लिये यह मुख्य संस्कार है। इसके धारण करनेसे वह सभी क्रियाओंका अधिकारी होता है। यह अव्यङ्ग सर्वदेवमय, सर्ववेदमय, सर्वलोकमय और सर्वभूतमय है। इसके मूलमें विष्णु, मध्यमें ब्रह्मा और अन्तमें शशङ्कुमूर्त भगवान् शिव निवास करते हैं। इसी तरह ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद क्रमशः मूल, मध्य और अग्रभागमें रहते हैं, अथर्ववेद ग्रन्थमें स्थित रहता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और भूतलैक, भुवतलैक तथा स्वतलैक आदि सातों लोक अव्यङ्गमें निवास करते हैं। सूर्यभक्त भोजकको सभी समय अव्यङ्ग धारण कर भगवान् सूर्यकी उपासना करनी चाहिये।

(अध्याय १४२)



## साम्बोपाख्यानमें भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करने और धूप दिखानेकी महिमा

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! इस प्रकार व्यासजीके द्वारा अव्यङ्ग्यके विषयमें जानकारी प्राप्त कर साम्ब नारदजीके पास वापस लौट आये और उन्होंने उनसे सब वर्णान्न बताकर पूछा—‘देवर्षे ! भोजकीकी भगवान् सूर्यको खान, अर्घ्य, आचमन, धूप आदि किस प्रकार समर्पित करना चाहिये ?’ इसका आप कृपाकर वर्णन करें ।

**नारदजी बोले—**साम्ब ! संक्षेपमें मैं वह विधि बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो । सर्वप्रथम शौचादिसे निवृत्त होकर आचमनपूर्वक नदीमें या जलाशय आदिमें स्नान करना चाहिये । अनन्तर स्वर्णदान कर तीन बार आचमन करे । शुद्ध यज्ञ पहनकर पवित्री धारणकर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख हो आचमन करना चाहिये । तदनन्तर दो बार मार्जन और तीन बार अभ्युक्षण करे । आचमनके बिना की गयी क्रिया निष्फल होती है एवं इसके बिना पुरुष शुद्ध भी नहीं होता । वेदमें कहा गया है कि देवता पवित्रताको ही चाहते हैं । आचमन करनेके बाद मौन होकर देवालयमें जाना चाहिये । आसनपर बैठकर प्राणायाम कर मिरके कपड़ेसे आच्छादित कर तथा विविध पुष्पोंसे सूर्यभगवान्की पूजा करे । व्याहृतिपूर्वक गायत्री-मन्त्रसे गुगुलुका धूप दे । फिर भगवान् सूर्यके मस्तकपर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे ।

रक्तचन्दन, पद्म, करवीर, कुंकुम आदिको जलमें गिलाकर ताम्रके पात्रसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये ।

## सूर्यमण्डलस्य पुरुषका वर्णन

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! एक बार व्यासजी शङ्ख-चक्र-गदाधारी नारायण भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये द्वारका आये । महातेजस्वी श्रीकृष्णने पाश, अर्घ्य, आचमन आदिसे उनका पूजन कर आसनपर उन्हें बैठाया और प्रणाम कर सम्बद्वाश लये गये भोजकीकी महिमा तथा उनकी सूर्यभक्तिके विषयमें विज्ञप्ति प्रकट की ।

**भगवान् वेदव्यास बोले—**भोजक भगवान् सूर्यके अन्य उपासक है और अन्तमें ये भगवान् सूर्यको दिव्य तेजस्वी कालमें प्रविष्ट होते हैं । भगवान् भास्करको तीन कलाएँ

अर्घ्यहस्तकी हाथमें उठाकर भगवान् सूर्यका आवाहन कर तथा दोनों जानुओपर बैठकर भगवान् सूर्यका अपने हृदयमें ध्यान करते हुए नीचे लिखे मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे—

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराजे जगत्पते ।

अनुकम्पां हि मे कृत्वा गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥

तदनन्तर इस प्रकार प्रार्थना करे—

अर्चितस्त्वं यथाशक्त्या मया भक्त्या विभावसो ।

ऐहिकाभुञ्जिकी नाद्य कार्यासिद्धिं ददस्व मे ॥

(ब्राह्मण १४३/१४३)

तीनों काल स्नानकर इस प्रकार जो भगवान् सूर्यकी आराधना करता है और धूप देता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है और उसे धन, पुत्र तथा आरोग्यकी भी प्राप्ति हो जाती है एवं अन्तमें वह भगवान् सूर्यमें लीन हो जाता है । उक्तम पुष्पोंके न मिलनेपर पत्रोंसे ही पूजन करे । धूप ही दे या भस्मपूर्वक जल ही सूर्यको समर्पित करे । यदि यह भी न हो सके तो प्रणाम ही करे । प्रणाम करनेमें असमर्थ हो तो मनसो पूजा करे । यह विधि द्रव्यसे अभ्यासमें करनी चाहिये, द्रव्य रहनेपर विधिपूर्वक सभी सामग्रियोंसे पूजन करे । भस्मपूर्वक सूर्यभगवान्की पूजा देखनेवालेको भी अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है और सूर्यलोककी प्राप्ति होती है । धूप-दानके समय सूर्यका दर्शन करनेपर उक्तम गति प्राप्त होती है । (अध्याय १४३)

है । सूर्यसारायणकी प्रथम कला अग्निमें स्थित है, उससे सभी कर्मोंकी सिद्धि होती है । दूसरी प्रकाशिका कला आकाशमें स्थित है । तीसरी कला सूर्यमण्डलमें है । सवितादेवका यह मण्डल अजर एवं अज्यय है । इस मण्डलके मध्यमें सप्तसदान्तक वह परमात्मा पुरुष-रूपमें स्थित है । वह पुरुष क्षर-अक्षररूपमें है, इसको महासूर्य कहते हैं । इसके निष्कल और सकल दो भेद हैं । तत्त्वोंके साथ सभी भूतोंमें अवस्थित वह परमात्मा सकल कहा जाता है और तत्त्वहीन होनेपर निष्कल । तृण, गुल्म, लता, वृक्ष, सिंह, बक, हाथी, पक्षी,

देवता, सिद्ध, धनुष्य, जल-जन्तु आदि सभीको अन्तरात्मामें वह व्याप्त है। जब वह परमात्मा दूसरी कल्पमें स्थित होता है, तब वृष्टि आदि करता है। तीसरी तेजस कल्पमें स्थित होकर अपने भक्तोंको मोक्ष देता है, जिस मोक्षपदको प्राप्तकर वह परम शान्ति प्राप्त करता है।

वह परमात्मा ओंकारस्वरूप है, ओंकारकी साढ़े तीन

मज्जारें हैं, इनमें अर्धमात्रा मकारका जो ध्यान करता है, उसको सदसदात्मक ज्ञान होता है। सूर्यनारायणका रूप मकार है, मकारका अध्यन करनेसे ही ये मग कहे जाते हैं। धूप, माल्य आदिसे सूर्यनारायणका पूजन कर ये विविध पदार्थोंका भोजन करते हैं, अतः उनको भोजक संज्ञा है।

(अध्याय १४४)

### भगवान् व्यासद्वारा योग-ज्ञानका वर्णन

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महापुत्रे ! कृपाकर आप भोजकोंके सभी ज्ञानोंकी उपलब्धिका वर्णन करें।

व्यासजीने कहा—यह शरीर अस्थियौघ ही बाढ़ा है, स्नायुओंसे बँधा, चमड़ेसे ढका एवं रक्त-मांससे उपलिप्त है। मल-मूत्र आदि दुर्गन्ध-युक्त पदार्थोंसे भरा है। यह समस्त रोगोंका घर है और इसमें (भीतर) वृद्धावस्था और शोक छिपे हैं, जो अपने-अपने समयपर प्रकट होते रहते हैं। यह शरीर रजोगुण आदि गुणोंसे भरा है, अस्थिर है और इसमें भूतसंघोंका आवास बना है। अतः इसमें आसक्तिका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये<sup>१</sup>।

वृद्धोंके नीचे निवास करना, भोजनोंके लिये मिष्टीका भिक्षापात्र रखना, स्तब्धारण वस्त्र पहनना और किसीसे सहायता न लेना तथा सभी प्राणियोंमें समभाव रखना—यही जीवन्मुक्त पुरुषके लक्षण हैं।

जैसे तिलमें तैल, गायमें दूध, काष्ठमें अग्नि स्थित है, वैसे ही परमात्मा समस्त प्राणियोंमें स्थित है। ऐसा समझकर उसकी प्राप्तिपर उपाय करना चाहिये। प्रथम प्रमथन स्वभावजाले तथा

बहल मनको प्रत्यक्षपूर्वक वशमें कर बुद्धि और इन्द्रियोंको वैसे ही रोकना चाहिये जैसे पिंजरेमें पक्षियोंको रोक जाता है। इन संयत इन्द्रियोंके द्वारा इस शरीरको अमृतकी धारके समान तृप्ति होती है<sup>२</sup>। प्राणायामसे शारीरिक दोष, धारणासे पूर्वजन्मार्जित तथा वर्तमानकालके सभी पाप, प्रत्याहारसे संसर्गजनित दोष एवं ध्यानसे जैविक दोषोंका त्यागकर ईश्वरीय गुणोंको प्राप्त करना चाहिये। जैसे आगके तापमें रखनेसे घातुओंके दोष दग्ध हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायामके द्वारा साधकके इन्द्रियजनित दोष दग्ध हो जाते हैं। जैसे एक हाथसे दूसरे हाथको दबाया जाता है, वैसे ही अपनी शुद्ध बुद्धिके द्वारा मनको एवं वित्तको शुद्ध कर पवित्र भावनाओंके द्वारा दुर्लभसन्तोष शान्तकर मन-बुद्धिको अत्यन्त पवित्र कर लेना चाहिये। अतः वित्तकी शुद्धिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। वित्तकी शुद्धि होनेसे शुभ और अशुभ कर्मोंका ज्ञान होता है। शुभ और अशुभ कर्मोंसे छुटकारा प्राप्त कर साधक निर्द्वन्द्व, निर्मम, निष्प्रियह और निरहंकर होकर मोक्षको प्राप्त कर लेता है<sup>३</sup>।

१-अभिधक्नुते स्नायुयुते मसजालेगतलेखम् । चर्मकन्दं दुर्गन्धयुतं मूत्रपुरीषयो ॥

जराशोकसम्भविष्टं रोगास्तनयानुत्तमम् । राजसत्त्वगुणितं च भूखण्डास्त्रिये लब्धम् ॥

(ब्राह्मण्य १४५।२-३)

२-तिले तैले गवि क्षीरे कष्टे षडकमेतनि । उपर्ये चित्तपेटस्य चित्तं धीरः सम्पन्नितः ॥

प्रमाथि च प्रपलेन मनः संयम्य बहलम् । बुद्धौर्दिशति सयम्य तद्वृत्तपित्रि यजो ॥

(ब्राह्मण्य १४५।५-६)

३-इन्द्रियैर्निपलीदैक्षीं स्वर्गधिरिव तृप्यते । सततममृतसौख्यं जगदर्थं महामते ॥

प्राणायामैर्दिदोषान् धारणाभिश्च विनिष्कम् । प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनलोभान् गुणान् ॥

ध्यायमानस्य दहन्ते पापे दोषा यथाग्निः । तपेन्द्रियकृता दोषा दहन्ते ज्ञानविप्राश्च ॥

चित्ते चित्तेन संशोध्य धर्मे धायेन शोधयेत् । मनस्तु मनसा शोध्य बुद्धे बुद्ध्या तु शोधयेत् ॥

चित्तस्यातिप्रसादेन भाति कर्म शुभशुभम् । शुभशुभीनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वो निष्प्रियहः ॥

निर्ममो निरहंकरस्ततो याति परं गतिम् ॥

(ब्राह्मण्य १४५।७—११)



सूर्यका पूर्वाह्णमें रक्तवर्ण, श्रव्येद-स्वरूप तथा राजसरूप होता है। मध्याह्णमें शङ्खवर्ण, यजुर्वेद-स्वरूप एवं सात्विक रूप होता है। सायंकालमें कृष्णवर्ण, सामवेदस्वरूप तथा तामसरूप होता है। इन तीनोंसे भिन्न ज्योतिःस्वरूप, सूक्ष्म और निरञ्जनस्वरूप चतुर्थ स्वरूप है। पञ्चासनमें बैठकर सुषुम्णा नाडी-मार्गमें चित्तको स्थिर कर प्रणवसे पूरक, कुम्भक और रेचक-रूप प्राणायाम कर पैरोंके अंगूठोंके अप्रभागसे लेकर मस्तकपर्यन्त न्यास करे। नाभिमें अग्निका, हृदयमें चन्द्रमाका

और मस्तकमें अग्निशिखाका न्यास करना चाहिये। इन सबसे ऊपर सूर्यमण्डलका न्यास करे—यह चतुर्थ स्थान है, इस स्थानको मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषको अवश्य जानना चाहिये। ऋषिगण सूर्यभगवान्‌के इसी तुरीय स्थानमें मनव स्वीनकर मुक्त हो जाते हैं। मग भी इसी स्थानका ध्यान कर मोक्षके भागी होते हैं। इस ज्ञानको सुनाकर भगवान् वेदव्यास बदरिकाश्रमकी ओर चले गये।

(अध्याय १४५)

### उत्तम एवं अधम भोजकोंके लक्षण

**राजा शतानीकने पूछा—**मुने ! भगवान् सूर्यकी पूजा करनेवाले भोजक दिव्य, उनसे उत्पन्न एवं उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिये वे पूज्य हुए किन्तु वे अभोज्य कैसे कहलाते हैं, इस विषयमें आप बतलायें ?

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! मैं इस विषयमें भगवान् वासुदेव तथा कृतवर्माके द्वारा हुए संवादको अत्यन्त संक्षेपमें बतला रहा हूँ। किसी समय नारद और पर्वत—ये दोनों मुनि साम्बपुर गये। वहाँ उन्होंने भोजकोंके यहाँ भोजन किया, अनन्तर वे दोनों विमानपर आरुढ़ हो द्वारकापुरीमें आ गये। उनके विषयमें कृतवर्माको शंका हुई कि सूर्यके पूजक होनेसे भोजकोंका अन्न अग्राह्य है, फिर नारद तथा पर्वत—इन दोनोंने उनका अन्न कैसे ग्रहण किया ? इसपर वासुदेवने कृतवर्मासे कहा—जो भोजक अव्यङ्ग धारण नहीं करते और बिना अव्यङ्गके तथा बिना स्नान किये भगवान् सूर्यकी पूजा करते हैं और शूद्रका अन्न ग्रहण करते हैं तथा देवार्चन परित्याग कर कृषि-कार्य करते हैं, जिनके जलकर्मोंदि संस्कार नहीं हुए हैं, शङ्ख धारण नहीं करते, मुण्डित नहीं रहते—वे भोजकोंमें अधम हैं। ऐसे भोजकद्वारा किये गये देवार्चन, हवन, स्नान, तर्पण, दान तथा ब्राह्मण-भोजन आदि सत्कर्म भी निष्फल होते हैं। इसीसे अशुचि होनेके कारण वे अभोज्य कहे गये हैं। भगवान् सूर्यके नैवेद्य, निर्मात्य, कुकुम्भ आदि शूद्रोंके हाथ बेचनेवाले, भगवान् सूर्यके धनको अपहृत करनेवाले भोजक उन्हें प्रिय नहीं हैं तथा वे भोजकोंमें अधम हैं। जो भोजक भगवान्‌को भोग लगाये बिना भोजन कर लेते हैं, उनका वह भोजन उन्हें नरक प्राप्त करनेवाला बन जाता है। अतः भगवान् सूर्यको अर्पण करके ही नैवेद्य भक्षण करना

चाहिये, इससे शरीरकी शुद्धि होती है।

**वासुदेवने पुनः बतलाया—**कृतवर्मन् ! भोजकोंकी प्रियताके विषयमें भगवान् सूर्यने अरुणको जो बतलाया, उसे आप सुनें—

जो भोजक पर-श्री तथा पर-धनका हरण करते हैं, देवताओं तथा वेदोंके निन्दक हैं, वे मुझे अप्रिय हैं। उनके द्वारा की गयी पूजा तथा प्रदान किये गये आर्घ्यको मैं ग्रहण नहीं करता। जो भगवती महाशेताका यजन नहीं करते एवं सूर्य-मुद्राओंको नहीं जानते तथा मेरे पार्षदीका नाम नहीं जानते, वे मेरी पूजा करनेके अधिकारी नहीं हैं और न मेरे प्रिय हैं।

इसके विपरीत देव, द्विज, मनुष्य, पितरोंकी पूजा करनेवाले, मुण्डित सिरवाले, अव्यङ्ग धारण करनेवाले, शङ्ख-ध्वनि करनेवाले, ऋषिर्हृत, तीनों कालमें स्नान एवं पूजन करनेवाले भोजक मुझे अत्यन्त प्रिय हैं एवं मेरे पूजनके अधिकारी हैं। जो रविवारके दिन पक्षी तिथि पड़नेपर नक्तञ्जन तथा सप्तमी एवं संक्रान्तिमें उपवास करते हैं एवं मुझमें विशेष भक्ति रखते हुए मेरे भक्त ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं तथा देव, ऋषि, पितर, अतिथि और भूत-यज्ञ—इन पाँचोंका अनुष्ठान करते हैं, एकभुक्त होकर सूर्यपूजा करते हैं तथा सांवत्सरिक, पार्वण, एकोद्दिष्ट आदि श्राद्ध सम्यक् करते हैं और उन तिथियोंमें दान देते हैं, वे भोजक मुझे अत्यन्त प्रिय हैं तथा जो भोजक माघ मासकी सप्तमीको करवीर-पुष्प, रक्तचन्दन, मोदकका नैवेद्य, गुग्गुलु धूप, दूध, शङ्खादि वाद्य-ध्वनि, फताका तथा छत्रादिसे मेरी पूजा करते हैं, घृतकी आहुति देकर हवन करते हैं तथा पुराणवाचक ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, वे मुझे प्रिय हैं। इतना कहकर भगवान् सूर्यदेव सुमेरु गिरि की

और बढ़ गये।

**सुमन्तु मुनि बोले—**गजन् ! अधिक कहनेसे क्या लाभ, क्योंकि जैसे वेदसे श्रेष्ठ अन्य कोई शास्त्र नहीं, गङ्गाके समान कोई नदी नहीं, अश्वमेधके समान कोई यज्ञ नहीं, पुत्र-

प्राप्तिके समान कोई सुख नहीं, माताके समान कोई आश्रय नहीं और भगवान् सूर्यके समान कोई देवता नहीं, वैसे ही भोजकोंके समान भगवान् सूर्यके अन्य कोई प्रिय नहीं है।

(अध्याय १४६-१४७)

### भगवान् सूर्यके कालात्मक चक्रका वर्णन

**सुमन्तु मुनि बोले—**गजन् ! एक बार महादेवजी साम्बने अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णके हाथमें ज्वालन-मालाओंसे प्रदीप्त सुदर्शनचक्रको देखकर पूछा—‘देव ! आपके हाथमें जो यह सूर्यके समान चक्र दिखालाग्यो दे रहा है, यह आपको कैसे प्राप्त हुआ तथा भगवान् सूर्यके चक्रको कमलकी उपमा कैसे दी गयी है ? इसे आप बताये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाबाहो ! तुमने अच्छी बात पूछी है, इसे मैं संक्षेपमें बतला रहा हूँ। मैं अत्यन्त श्रद्धापूर्वक दिव्य हजार वर्षोंतक भगवान् सूर्यकी आराधना कर इस चक्रको प्राप्त किया है। भगवान् भगवत् आकाशमें विचरण करते रहते हैं, जिनके रथ-चक्रके नाभिमण्डलमें चन्द्र आदि ग्रह अवस्थित हैं। अंग्रेमें द्वादश आदित्य बतलाये गये हैं, पृथ्वी आदि तत्व मार्गमें पड़नेवाले तत्व हैं, इन तत्वोंसे यह कालात्मक चक्र व्याप्त है। भगवान् सूर्यने अपने इस चक्रके समान ही दूसरा चक्र मुझे प्रदान किया है।

इस कमलरूप चक्रके षट्दल ही छ। कर्तुरै है। कमलके मध्यमें जो पुरुष अधिष्ठित है, वे ही भगवान् सूर्य हैं। जो भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीन काल कहे गये हैं, वे चक्रकी तीन

नाभियाँ हैं। बारह सहोने अंगे तथा पक्ष परिधिवाँ हैं, नेमियाँ दक्षिणायन तथा उत्तरायण दो अयन हैं, नक्षत्र, ग्रह तथा योग आदि भी इसी चक्रमें अवस्थित हैं। स्थूल और सूक्ष्मके भेदसे यह चक्र सर्वत्र व्याप्त है।

दुष्टोंका दमन करनेके लिये मैं इस चक्रको आराधनाके द्वारा भगवान् सूर्यसे प्राप्त किया है। इसलिये यहाँ और तत्वोंसे सम्बन्धित इस चक्रकी मैं निरन्तर पूजा करता रहता हूँ। जो चक्रमें स्थित भगवान् सूर्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह तेजमें भगवान् सूर्यके समान हो जाता है। साक्षीको जो भगवान् सूर्यका चक्र अङ्कित कर उनकी रक्तचन्दन, करवीर-पुष्प, कुंकुम, रक्त कमल, धूप, दीप, नैवेद्य, चामर, छत्र एवं फल आदिसे पूजा करता है तथा विविध नैवेद्योंका भोग लगाता है, पुण्य कथाओंका श्रवण करता है, वह अपनी सम्पूर्ण कामन्दाओंको प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार जो संक्रान्ति तथा ऋतु आदिमें चक्रकी पूजा करता है, उसके ऊपर सन्धि ग्रह प्रसन्न हो जाते हैं, वह सम्पूर्ण रोगों और दुःखोंसे रहित हो जाता है तथा समस्त ऐश्वर्योंसे युक्त होकर विजयीकी होता है। (अध्याय १४८)

### सूर्यचक्रका निर्माण और सूर्य-दीक्षाकी विधि

**साम्बने पूछा—**भगवन् ! भगवान् सूर्यके चक्रका और उसमें स्थित पद्मका चित्रने विस्तारमें किस प्रकार निर्माण करना चाहिये तथा नेमि, अर और नाभिका विभाग किस प्रकार करना चाहिये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**साम्ब ! चक्र चौंसठ अङ्गुलका और नेमि आठ अङ्गुलकी बनानी चाहिये। नाभिका विस्तार भी आठ अङ्गुलका होना चाहिये और पद्म नाभिका तीन गुना अर्थात् चौबीस अङ्गुलका होना चाहिये। कमलमें नाभि, कर्णिका और केसर भी बनाने चाहिये। नाभिसे कमलकी ऊँचाई अधिक होनी चाहिये। वहीपर द्वारके कोणमें

कमल-पुष्पके मुखकी कल्पना करनी चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्रके लिये चार द्वारोंकी कल्पना करनी चाहिये। द्वारोंको बनानेके पश्चात् ब्रह्मा आदि देवताओंका उनके नाम-मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक आवाहन कर पूजन करना चाहिये।

अर्क-मण्डलकी पूजाके लिये इस यज्ञ-क्रियाके अनुरूप दीक्षित होना चाहिये, भगवान् सूर्यने इसे मुझसे पूर्वकालमें कहा था।

**साम्बने पूछा—**भगवन् ! सूर्यचक्र-यज्ञके लिये देवताओंमें किन मन्त्रोंको कहा है ? तथा यज्ञके स्वरूप और क्रमको भी आप बतानेको कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सौम्य ! सूर्यनारायणके चक्षुमें कमल बनाकर पूर्वकी भाँति हृदयमें स्थित भगवान् सूर्यका 'सखोलक' नामसे कमलकी कर्णिका-दन्तेमें नाममन्त्र-पूर्वक चतुर्थ्यन्त विभक्ति और क्रिया लगाने हुए 'नमः' लगाकर अङ्गन्यास एवं हृदयादि न्यास तथा पूजन करना चाहिये। हवन करते समय नामके अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका प्रयोग करना चाहिये। यथा—'ॐ सखोलकाय स्वाहा।' 'ॐ सखोलकाय विद्महे दिवाकराय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।' इन चौबीस अक्षरोंवाली सूर्यगायत्रीका जप सभी कर्मोंमें करना चाहिये, अन्यथा कर्मोंका फल प्राप्त नहीं होता। यह सूर्यगायत्री ब्रह्मर्षीवाली सर्वतत्त्वमयी तथा परम पवित्र है एवं भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय है, इसलिये प्रयागपूर्वक मन्त्रके ज्ञान और कर्मकी विधिको जानना चाहिये। इससे अभीष्ट मनोरथ सिद्ध होता है।

**साधने पूछा—**भगवन् ! आदित्य-मण्डलमें किसकी, किस कार्यके लिये और कैसी दीक्षा होने चाहिये ? इसे बतलये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और कुलीन शुद्र, पुरुष अथवा स्त्री भी सूर्य-मण्डलमें दीक्षाके अधिकारी हैं। सूर्यशास्त्रके ज्ञाननेवाले सायबाटी, शुचि, वेदवेत्ता ब्राह्मणको गुरु बनाना चाहिये और भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम करना चाहिये। पक्षी तिथिमें पूर्वीक विधिके अनुसार अग्नि-स्थापन कर विधिपूर्वक सूर्य तथा अग्निकी पूजा करके हवन करना चाहिये। तदनन्तर गुरु पवित्र शिष्यको कुण्डों और अक्षतोंके द्वारा उसके प्रत्येक अङ्गमें सूर्यकी भावना कर उसके स्पर्श करे। शिष्य वस्त्रादिसे अलङ्कृत होकर पुष्प, अक्षत, गन्ध आदिसे भगवान् सूर्यको पूजा करे तथा बलि भी दे। आदित्य, वरुण, अग्नि आदिको अपने हृदयमें ध्यान करे। धौ, गुह, दधि, दूध, चावल आदि रसकर तीन चार जलसे अग्निको सिंचितकर अग्निमें पुनः हवन करे। उसके बाद गुरु शिष्यचार-स्वरूप शिष्यको दातुन दे। वह दातुन दूधवाले वृक्षका हो और उसकी लंबाई चारह अङ्गुल होनी चाहिये। दातुन करनेके पश्चात् उसे पूर्व-दिशामें फेंक देना चाहिये, उस दिशामें देखे नहीं। पूर्व, पश्चिम और ईशान कोणको ओर मुख करके दातुन करना शुभ होता है और अन्य दिशाओंमें दातुन करना अशुभ माना गया है।

निन्दित दिशामें दन्तधावनसे जो दोष लगता है, उसकी शान्तिके लिये पूजन-अर्चन करना चाहिये। पुनः गुरु शिष्यके अङ्गोंका स्पर्श करे। सूर्यगायत्रीका जपपूर्वक उसके आँखोंका स्पर्श करे। इन्द्रियसंयमके लिये शिष्यसे संकल्प करावे। तदनन्तर आशीर्वाद देकर उसे शयन करनेकी आज्ञा दे। दूसरे दिन अचमनकर सूर्यको प्रातःकाल नमस्कार कर अग्नि-स्थापन करे और हवन करे। स्वप्नमें कोई शुभ संवाद सुने अथवा दिनमें यदि कोई अशुभ लक्षण दिखायी पड़े तो सूर्यनारायणको एक सौ आहुति दे। स्वप्नमें यदि देवमन्दिर, अग्नि, नदी, सुन्दर उद्यान, उपवन, पत्र, पुष्प, फल, कमल, चाँदी आदि और वेदवेत्ता ब्राह्मण, शौर्यसम्पन्न राजा, भनाकाय क्षत्रिय, सेनामें मंडल कुलीन शुद्र, तत्त्वकी ज्ञाननेवाला, सुन्दर भाषण देनेवाला अथवा उत्तम वाहनपर सवार, वस्त्र, राज आदिकी प्राप्ति, खादन, गन्ध, धान्य आदि उपकरण अथवा सम्पत्तिकी प्राप्ति आदि स्वप्नमें दिखायी दे तो उस स्वप्नको शुभ मानना चाहिये। शुभ कर्म दिखायी पड़े तो सब कार्य शुभ ही होते हैं। अनिष्टकारक स्वप्न दिखायी पड़नेपर सप्तमीको सूर्यचक्र लिखकर सूर्यदेवकी पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मणों तथा गुरुको स्तुष्ट करना चाहिये। आदित्यमण्डल पवित्र और सभीको मुक्ति प्रदान करनेवाला है। इसलिये अपने मनमें ही आदित्य-मण्डलका ध्यान कर एक सौ आहुति देने चाहिये। इस क्रमसे दीक्षा-विधि और मन्त्रका अनुसरण करते हुए आदित्यमण्डलपर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। इससे व्यक्तिके कुलका उद्धार हो जाता है। सूर्यश्रेष्ठ पुरुषादिका श्रवण करना चाहिये। पूजनके बाद विमर्जन करे। सूर्यका दर्शन करनेके पश्चात् हो भोजन करना चाहिये। प्रतिष्ठाकी छायाका और न ही षड-नक्षत्र-योग और तिथिका लङ्घन करना चाहिये। सूर्य अयन, ऋतु, पक्ष, दिन, काल, संवत्सर आदि सभीके अधिकारी हैं और वे सभीके पूज्य तथा नमस्कार करने योग्य हैं। सूर्यको स्तुति, वन्दना और पूजा सदा करनी चाहिये। मन, वाणी और कर्मसे देवताओंकी निन्दाका परित्याग करना चाहिये। हाथ-पैर धोकर, सभी प्रकारके शोकको त्यागकर शुद्ध अन्तःकरणसे सूर्यको नमस्कार करना चाहिये। इस प्रकार संक्षेपसे मैंने सूर्य-दीक्षाकी विधिको कहा है, जो सुखभोग और मुक्तिको प्रदान करनेवाली है। (अध्याय १४९)

### भगवान् आदित्यकी सप्तावरण-पूजन-विधि

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—** वत्स । अब मैं दिखाकर भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा-विधि बतलाता हूँ । एक वेदीपर अष्टदल-कमलयुक्त घण्टल बनाकर उसमें कालचक्रकी कल्पना करनी चाहिये । उसे बारह अंगोंसे युक्त होना चाहिये । ये ही सर्वात्मा, सभी देवताओंमें श्रेष्ठ, उज्ज्वल किरणोंसे युक्त खण्डोल्क नामक भगवान् सूर्यदेव है । इसमें हजार किरणोंसे युक्त चतुर्बाहु भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये । इनके पश्चिममें अरुण, दक्षिणमें निक्षुप्ता देवी, दक्षिणमें ही रेवन्त तथा उत्तरमें विंगलक्ष्मी पूजा करनी चाहिये और वहाँ संज्ञाकी भी पूजा करनी चाहिये । अग्निक्षेत्रमें लेखककी, नैऋत्यमें अधिनीकुमारोंकी और वायव्यक्षेत्रमें वैवस्वत मनुष्यकी तथा ईशानक्षेत्रमें लोकपावनी देवी यमुनाकी पूजा करनी चाहिये । द्वितीय आवरणमें पूर्वमें आकाशशक्ति, दक्षिणमें देवदेवी, पश्चिममें गरुडकी और उत्तरमें नागराज ऐरावतकी पूजा शुभ होती है । अग्निक्षेत्रमें होल, नैऋत्यक्षेत्रमें ग्रहोल, वायव्यमें उर्वशी और ईशानक्षेत्रमें विनतादेवीकी पूजा करनी चाहिये । तृतीयावरणमें पूर्वमें शुक, पश्चिममें शनि, उत्तरमें बृहस्पति, ईशानमें बुध और मण्डलके अग्निक्षेत्रमें सन्तभाकी

पूजा करनी चाहिये । नैऋत्यक्षेत्रमें राहु तथा वायव्यक्षेत्रमें केतुकी पूजा करनी चाहिये । चौथे आवरणमें लेखक शङ्खिलोत्पन्न, यम, विरुपाक्ष, वरुण, वायुपुत्र, ईशान तथा कुम्भेर आदिकी दन-दनकी दिशाओंमें पूजा करनी चाहिये । पाँचवें आवरणमें पूर्वादि क्रमसे महाशेता, श्री, प्राग्नि, विभूति, भूति, उन्नति, पृथ्वी तथा महाकीर्ति आदि देवियोंकी पूजा करनी चाहिये तथा इन्द्र, विष्णु, अर्यमा, भग, पर्जन्य, विवस्वान्, अर्क, स्वष्टा आदि द्वादश आदित्योंकी पूजा छठे आवरणमें करनी चाहिये । सिर, नेत्र, अम्ब-शस्त्रसे युक्त रथसहित सूर्यकी सप्तवें आवरणमें पूजा करनी चाहिये । यक्ष, गन्धर्व, महाशक्ति तथा सेवक आदिकी भी पूजा करनी चाहिये । इसके बाद भगवान् भास्करका पुष्प, गन्ध आदिसे विधिपूर्वक पूजनकर—'ॐ स्वस्त्वोन्माय नमः' इस मूल मन्त्रसे अपने अङ्गोंका स्पर्श अर्थात् हृदयादिस्थान करते हुए पूजन करना चाहिये । जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक इस विधिसे सूर्यकी निम्न अथवा दोनो पक्षोंकी सप्तमीके दिन पूजन करता है, वह परमपदको प्राप्त कर लेता है ।

(अध्याय १५०)

### सौरधर्मका वर्णन

**राजा शतानीकने पूछा—** मुने ! भगवान् सूर्यका माण्डल्य कीर्तिवर्धक और सभी फलोंका नाशक है । मैंने भगवान् सूर्यनारायणके समान लोकमें किसी अन्य देवताको नहीं देखा । जो भरण-पोषण और संहार भी करनेवाले हैं वे भगवान् सूर्य किस प्रकार प्रसन्न होते हैं, उस धर्मको आप अच्छी तरह जानते हैं । मैंने वैष्णव, शैव, पौराणिक आदि धर्मोंका श्रवण किया है । अब मैं सौरधर्मको जानना चाहता हूँ । इसे आप मुझे बतायें ।

**सुमन्तु मुनि बोले—** राजन् ! अब आप सौरधर्मके विषयमें सुनें ।

यह सौरधर्म सभी धर्मोंमें श्रेष्ठ और उत्तम है । किसी समय स्वयं भगवान् सूर्यने अपने सारथि अरुणसे इसे कहा था । सौरधर्म अन्धकाररूपी दोषको दूरकर प्राणियोंको प्रकाशित करता है और यह संसारके लिये महान् कल्याणकारी

है । जो व्यक्ति श्रद्धाचित होकर सूर्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह सुख और धन-धान्यसे परिपूर्ण हो जाता है । प्रातः, मध्याह्न और सायं—त्रिकाल अथवा एक ही समय सूर्यकी उपासना अवश्य करनी चाहिये । जो व्यक्ति सूर्यनारायणका भक्तिपूर्वक अर्चन, पूजन और स्मरण करता है, वह सात जन्मोंमें किये गये सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है । जो भगवान् सूर्यकी सदा स्तुति, प्रार्थना और आराधना करते हैं, वे प्राकृत मनुष्य न होकर देवस्वरूप ही हैं । षोडशाङ्ग-पूजन-विधिको स्वयं सूर्यनारायणने कहा है, वह इस प्रकार है—

प्रातः स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये जप, हवन, पूजन, अर्घन आदिकर सूर्यको प्रणाम करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मण, शाय, पीपल आदिकी पूजा करनी चाहिये । भक्तिपूर्वक इतिहास-पुराणका श्रवण और ब्राह्मणोंको वेदाभ्यास करना चाहिये । सबसे प्रेम करना चाहिये । स्वयं पूजनकर लोगोको



पुराणादि ग्रन्थोंकी व्याख्या सुनानी चाहिये। मेरा नित्य-प्रति स्मरण करना चाहिये। इस प्रकारके उपचारोंमें जो अर्चन-पूजन-विधि बतायी गयी है, वह सभी प्रकारके लोगोंके लिये उत्तम है। जो कोई इस प्रकारसे भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करता है, वही मुनि, श्रीमान्, पाण्डित और अच्छे कुलमें उत्पन्न है। जो कोई पत्र, पुष्प, फल, जल आदि जो भी उपलब्ध हो उससे मेरी पूजा करता है उसके लिये न मैं अदृश्य हूँ और न वह मेरे लिये अदृश्य है। मुझे जो व्यक्ति जिस भावनासे देखता है, मैं भी उसे उसी रूपमें दिखायी पड़ता हूँ। जहाँ मैं

स्थित हूँ, वहीं मेरा भक्त भी स्थित होता है। जो मुझे सर्वव्यापीको सर्वत्र और सम्पूर्ण प्राणियोंमें स्थित देखता है, उसके लिये मैं उसके हृदयमें स्थित हूँ और वह मेरे हृदयमें स्थित है। सूर्यकी पूजा करनेवाला व्यक्ति बड़े-बड़े राजाओंपर विजय प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति मनसे मेरा निरन्तर ध्यान करता रहता है, उसके चिन्ता मुझे बराबर बनी रहती है कि कहीं उसे कोई दुःख न होने पाये। मेरा भक्त मुझको अत्यन्त प्रिय है। मुझमें अनन्य निष्ठा ही सब धर्मोंका सार है।

(अध्याय १५९)

### ब्रह्मादि देवताओं द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति एवं वर-प्राप्ति

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! भगवान् सूर्यकी भक्ति,

पूजा और उनके लिये दान करना तथा हवन करना सबके वशकी बात नहीं है तथा उनकी भक्ति और ज्ञान एवं उसका अभ्यास करना भी अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी उनके पूजन-स्मरणसे इसे प्राप्त किया जा सकता है। सूर्य-मन्दिरमें सूर्यकी प्रदक्षिणा करनेसे वे सदा प्रसन्न रहते हैं। सूर्यवक्त्र बनाकर पूजन एवं सूर्यनारायणका स्तोत्र-पाठ करनेवाला व्यक्ति इच्छित फल एवं पुण्य तथा विषयोंका परित्यागकर भगवान् सूर्यमें अपने मनको लगा देनेवाला धन्युष विभीक होकर उनकी निश्चल भक्ति प्राप्त कर लेता है।

**राजा शतानीकने पूछा—**द्विजश्रेष्ठ ! मुझे भगवान् सूर्यकी पूजन-विधि सुननेकी बड़ी ही अभिलषा है। मैं आपके ही मुखसे सुनना चाहता हूँ। कृपाकर कहिये कि सूर्यकी प्रतिमा स्थापित करनेसे कौन-सा पुण्य और फल प्राप्त होता है तथा सम्मार्जन करने और गन्ध आदिके लेपनसे किस पुण्यकी प्राप्ति होती है। आरती, नृत्य, मङ्गल-गीत आदि कृत्योंके करनेसे कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है। अर्घ्यदान, जल एवं पञ्चामृत आदिसे खान, कुश, रक्त पुष्प, सुवर्ण, रत्न, गन्ध, वन्दन, कपूर आदिके द्वारा पूजन, गन्धादि-विलेपन, पुताण-श्रवण एवं वाचन, अव्यङ्ग-दान और व्योमरूपमें भगवान् सूर्य तथा अरुणकी पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह बतलानेकी कृपा करें।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! प्रथम आप भगवान्

सूर्यके महनीय तेजके विषयमें सुनें। कल्पके प्रारम्भमें ब्रह्मादि देवगण अहंकारके वशीभूत हो गये। तमकामी मोहने उन्हें अपने वशमें कर लिया। उसी समय उनके अहंकारको दूर करनेके लिये एक महनीय तेज प्रकट हुआ, जिससे यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त हो गया। अन्धकार-नाशक तथा सौ योजन विस्तारयुक्त यह तेजःपुञ्ज आकाशमें ध्रमण कर रहा था। उसका प्रकटा पृथ्वीपर कमलकी कर्णिकारकी भांति दिखलायी दे रहा था। यह देख ब्रह्मादि देवगण परस्पर इस प्रकार विचार करने लगे—हमलोगोंका तथा संसारका कल्याण करनेके लिये ही यह तेजः प्रादुर्भूत हुआ है। यह तेजः कहाँसे प्रादुर्भूत हुआ, इस विषयमें वे कुछ न जान सके और इस तेजने सभी देवगणोंको आश्चर्यचकित कर दिया। तेजाधिपति उन्हें दिखायी भी नहीं पड़े। ब्रह्मादि देवताओंने उनसे पूछा—देव ! आप कौन हैं, कहाँ हैं, यह तेजकी कैसी शक्ति है ? हम सभी लोग आपका दर्शन करना चाहते हैं। उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न हो भगवान् सूर्यनारायण अपने विराट् रूपमें प्रकट हो गये। उस महनीय तेजःस्वरूप भगवान् भाम्बरकी देवगण पृथक्-पृथक् वन्दन करने लगे।

ब्रह्माजीकी स्तुतिको भाव इस प्रकार है<sup>१</sup>—हे देवदेवेश ! आप सहस्रों किरणोंसे प्रकाशमान हैं। कोणवल्लभ ! आप संसारके लिये दीपक हैं, आपको नमस्कार है। अन्तरिक्षमें

१-नमस्ते देवदेवेश सहस्रकिरणोन्मलान् लोकतोष नयनेभ्यो यस्मै कोणवल्लभ ॥

भाम्बराय नमो विष्णवे मणोन्मल्य नमो नमः । विष्णवे कलपयन्तय सौम्यकीर्तिपतेभ्यो ॥

स्थित होकर सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करनेवाले भगवान् भास्कर, विष्णु, कालचक्र, अमित तेजस्वी, सोम, काल, इन्द्र, वसु, अग्नि, खग, लोकनाथ तथा एकचक्रवाले रथसे युक्त—ऐसे नामोंवाले आपको नमस्कार है। आप अमित तेजस्वी एवं संसारके कल्याण तथा मङ्गलकारक हैं, आपका सुन्दर रूप अन्धकारको नष्ट करनेवाला है, आप तेजस्वी निधि हैं, आपको नमस्कार है। आप धर्मादि चतुर्वर्गस्वरूप हैं तथा अमित तेजस्वी हैं, क्रोध-लोभसे रहित हैं, संसारको स्थितिमें कारण हैं, आप शुभ एवं मङ्गलस्वरूप हैं तथा शुभ एवं मङ्गलके प्रदाता हैं, आप परम शान्तस्वरूप हैं तथा ब्रह्मण एवं ब्रह्मरूप हैं, ऐसे हे परब्रह्म परमात्मा जगत्पते ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये, आपको नमस्कार है।

ब्रह्माजीके बाद शिवजीने महातेजस्वी सूर्यनारायणको प्रणामकर उनकी स्तुति की—

विश्वकी स्थितिके कारण-स्वरूप भगवान् सूर्यदेव ! आपकी जय हो। अजेंय, हेम, दिवाकर, महाबाहु, भूधर, गोधर, भाव, खग, लोकप्रदीप, जगत्पति, भानु, काल, अनन्त, संवत्सर तथा शुभानन ! आपकी जय हो। कश्यपके आनन्दवर्धन, अर्दितपुत्र, सप्तशुक्लान, सौम्य, अन्धकारको दूर करनेवाले, ग्रहोंके स्वामी, कालीश, कालेश, डोकर, धर्मादि चतुर्वर्गके स्वामी ! आपकी जय हो। वेदगुरु, प्रहरण, सत्यरूप, मूलरूप, क्रोधार्थिक विनाशक,

कल्पाव-पक्षरूप तथा यतिरूप ! आपकी जय हो। प्रभो ! आप विश्वरूप, विश्वकर्मा, ओंकार, वषट्कार, स्वाहाकार तथा स्वधारूप हैं और आप ही अक्षमेधरूप, अग्नि एवं अर्यमारूप हैं, संसाररूपी सागरसे मोक्ष दिलानेवाले हे जगत्पते ! मैं संसार-सागरमें डूब रहा हूँ, मुझे अपने हाथका अवलम्बन दीजिये, आपकी जय हो<sup>१</sup>।

भगवान् विष्णुने सूर्यनारायणकी श्रद्धा और भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उनकी स्तुति की, भाव इस प्रकार है—

भूतभावन देवदेवेश ! आप दिवाकर, रवि, भानु, मार्तण्ड, भास्कर, भग, इन्द्र, विष्णु, हरि, हेम, अर्क—इन रूपोंमें प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है। लोकगुरो ! आप विभु, त्रिनेत्रधारि, प्रशस्तरामक, प्रज्ञात्मक, त्रिमूर्ति, विगति हैं, आप छः मुख, चौबीस पाद तथा चारह हाथवाले हैं, आप समस्त लोकों तथा प्राणियोंके अधिपति हैं, देवताओं तथा क्योंकि भी आप ही अधिपति हैं, आपकी नमस्कार है। जगत्कर्मात्मा ! आप ही ब्रह्म, रुद्र, प्रजापति, सोम, अदित्य, ओंकार, युहस्वति, बुध, शुक्र, अग्नि, भग, वरुण, कश्यपराज हैं। आपसे ही यह सम्पूर्ण बराबर जगत् व्याप्त है, देवता, अमर तथा मानव आदि सभी आपसे ही उत्पन्न हैं, अनप ! कश्यपके आरम्भमें संसारकी उत्पत्ति, पालन एवं संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव उत्पन्न हुए हैं, आपकी नमस्कार है। प्रभो ! आप ही वेद-रूप, दिव्यस्वरूप,

- नमस्ते पञ्चकालाय इन्द्राय चतुर्भुजे । लङ्काय लोकनाथाय एकचक्रवाद्य च ॥  
जगदिन्द्राय देवाय दिवाकरायिलेजसे । तपोदाय मुखाय तेजसे विधवे नमः ॥  
अर्धाय कश्यपराज्य भालोदितान्तजसे । मोक्षाय मोक्षदाय मुखाय च तमे नमः ॥  
श्रेयार्थोभविर्हन्ताय लोकनाथ स्थितिकेते । शुभाय शुभदाय शुभदाय शुभायने ॥  
शान्ताय शान्तकाय शान्तवेत्सवाम् नै नमः । यमसे ब्रह्मकाय ब्रह्मकाय नमो नमः ॥  
ब्रह्मदेवाय ब्रह्मरूपाय ब्रह्मणे परमायने । ब्रह्मणे च ब्रह्मदेवे कुरु देव जगत्पते ॥ (ब्राह्मणर्व १५३।५०—५७)
- १-जय भाव जयजेंय जय हेम दिवाकर । जय शम्भे पञ्चकाले राय गोधर भूधर ॥  
जय लोकप्रदीकाय जय भावे जगत्पते । जय कालकालाय सेकसा शुभानन ॥  
जय देवदिते पूर कश्यपानन्दवर्धन । तमेज जय सौम्य जय सप्तशुक्लान ॥  
ग्रहेश जय कालीश जय कालेश शुक्र । अर्यकर्मेश धर्मेज जय मोक्षेश अर्दित ॥  
जय वेदगुरुकाय प्रहरणाय नै नमः । सत्याय सत्यकाय मूलकाय शुभाय च ॥  
क्रोधलोभविनाशाय कामनाशाय नै जय । कश्यपवर्द्धकाय यतिरूपाय शम्भवे ॥  
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्माय नै जय । ओंकार वषट्कार स्वाहाकार स्वधाराय ॥  
जगदमेधरूपाय यागिकर्पायैव च । संसारलोदहन्ताय मोक्षदायकाय च ॥  
संसारविनाशाय नम देव जगत्पते । हस्तवातम्बने देव धा नै गोपेन्द्रपुते ॥ (ब्राह्मणर्व १५३।६०—६८)

यज्ञ एवं ज्ञानरूप हैं। किन्तोऽज्ज्वल ! भूतेश ! गोपते ! संसारमें निमग्न हुए हमपर आप प्रसन्न होइये, आप वेदान्त एवं यज्ञ-कलात्मक रूप हैं, आपकी उष हो, आपको नित्य नमस्कार है'।

ब्रह्मादि देवताओंकी स्तुतिसे भगवान् सूर्य बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवको अपने अखण्ड भक्ति तथा अपना अनुग्रह प्राप्त करनेका वर प्रदान करते हुए कहा—हे विष्णो ! आप देव, दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि सभीपर विजय प्राप्त कर अजेय रहेंगे। सम्पूर्ण संसारका पालन करते हुए आपकी मेरी ऊपर अचल भक्ति बने रहेंगी। ब्रह्मा भी इस जगत्की सृष्टि करनेमें समर्थ होंगे और मेरे प्रसादसे शंकर भी इस संसारका संहार कर सकेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। मेरी पूजाके फलस्वरूप आपलोग जिनियोंमें उत्कृष्ट स्थान प्राप्त कर लेंगे।

भगवान् सूर्यके इन वचनोंको सुनकर महादेवजी बोले— भगवान् ! हमलोग आपकी आराधना किस प्रकार करें, उसे आप बतायें। हमें आपकी परम पूजनीय मूर्ति तो दिखायी नहीं दे रही है, केवल प्रकाशकी आकृति और मात्र तेज ही दिखायी पड़ रहा है, यह तेज आकाश-विहीन होनेके कारण हृदयमें स्थान नहीं पा रहा है। जबतक मन किसी विषय-वस्तुमें नहीं लगता, तबतक किसी भी व्यक्तिकी भक्ति या इच्छा उस विषय-वस्तुको प्राप्त करनेकी नहीं होती। जबतक भक्ति उत्पन्न नहीं होगी, तबतक पूजन आदि करनेमें कोई भी समर्थ नहीं

होगा। इसलिये आप साकार-रूपमें प्रकट हों, जिससे कि हमलोग उस साकार-रूपका पूजन-अर्चन कर सिद्धिको प्राप्त करनेमें समर्थ हो जायें।

भगवान् सूर्यने कहा—महादेवजी ! आपने बड़ी अच्छी बात पूछी है—आप दत्तचित्त होकर सुनें। इस जगत्में मेरी चार प्रकारकी मूर्तियाँ हैं जो सम्पूर्ण संसारको व्यवस्थित करती हुई सृजन, पालन, पोषण तथा संहार आदिमें प्रत्येक समय संलग्न रहती हैं। मेरी प्रथम मूर्ति राजसी मूर्ति है, जो ब्रह्म शक्तिके नामसे प्रसिद्ध है, वह कल्पके आदिमें संसारकी सृष्टि करती है। द्वितीय शक्तिकी मूर्ति विष्णुस्वरूपिणी है, जो संसारका पालन और दुष्टोंका विनाश करती है। तृतीय मूर्ति तामसी है, जो भगवान् शंकरके नामसे विख्यात है, वह हाथमें त्रिशूल धारण किये कल्पके अन्तमें विश्व-सृष्टिकर संहार करती है। मेरी चतुर्थ मूर्ति सल्लादि गुणोंसे अतीत तथा उत्तम है, वह स्थित रहते हुए भी दिखायी नहीं पड़ती। उस अदृश्य शक्तिके द्वारा यह समस्त संसार विस्तारको प्राप्त हुआ है। ओंकार ही मेरा स्वरूप है। यह सकल तथा निष्कल और साकार एवं निराकार दोनों रूपोंमें है। यह सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त रहते हुए भी सांसारिक कर्म-फलसे रिक्त नहीं रहती, जलमें पंथपत्रकी भाँति अलिप्त रहती है। यह प्रकाश आपलोगोंके अज्ञानको दूर करने तथा संसारमें प्रवृत्ति करनेके लिये उत्पन्न हुआ है। आपलोग मेरे इस असृष्ट (निर्लिप्त) रूपकी आराधना करें।

कल्पके अन्तमें मेरे आकाशरूपमें सभी देवताओंका रूप हो जाता है। उस समय केवल आकाशरूप ही रहता

१-नमसि देवदेवेश भूतपावनपञ्चम्यः दिवाकर रवि चान् महीध भस्मन् भगवन् ॥  
इन्द्रं विष्णुं हविं हसमर्कं लोकगुहं विभुः। विन्दे जलत जगद् विन्दुते विन्दति शुक्लम् ॥  
कामुखाय नमो नित्यं विनेत्राय नमो नमः। चतुर्वैजयिन्ताय नमो हृदयस्थाय ॥  
नमो भूतपाये श्रेष्ठाय पालये नमः। देवान् दानवे त्रिदं कर्तुं पालये नमः ॥  
ते ब्रह्मा ते जगत्पथे रुद्रस्तं च प्रजापतिः। ते सोमस्तं तथोदितस्त्वय्योकाय एव हि ॥  
बृहस्पतिर्बुधस्तं हि त्वं शुक्रस्तं विधातव्यः। पयस्तं वरुणस्तं हि तमसे कश्यपश्च ॥  
त्वया ततपिदं तस्यै जगत्स्ववराज्यम्। तत एव समुद्रस्य संस्थापकमुग्रम् ॥  
ब्रह्मा चाहं च रुद्रश्च समुद्रस्यै कपाले। कल्पकटी नु पुन देव स्थितये जगदीश्वर ॥  
नमो वेदरूपाय ओंकाराय वै नमः। नमो ज्ञानरूपाय पञ्चाय च नमो नमः ॥  
प्रसीदाम्यासु देवेश भूतेश किन्तोऽज्ज्वलः। संसारार्णवप्रान्तं प्रसदं कुरु गोपते।  
वेदान्ताय नमो नित्यं नमो यज्ञकलाय च ॥

है<sup>१</sup>। पुनः भुवसे ही ब्रह्मादि देवगण तथा चराचर उत्पन्न होते हैं। हे त्रिलोचन ! मैं सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त हूँ। इसलिये मेरे व्योमरूपकी आराधना आपसहित ब्रह्म, विष्णु भी करें। त्रिलोचन ! आप गन्धमादनपर दिव्य सहस्र वर्षोत्क तपस्या करके परम शुभ षडङ्ग-सिद्धि को प्राप्त करें। जनार्दन ! आप मेरे व्योमरूपकी<sup>२</sup> ब्रह्मा और भक्तिपूर्वक आराधना कलापग्राममें निवास कर करें। जगत्पति ब्रह्मा भी अन्तरिक्षमें जाकर लोकपावन पुष्करतीर्थमें मेरी आराधना करें। इस प्रकार आराधना करनेके पश्चात् कदम्बके समान गोलकाकार, रश्मिमालासे युक्त मेरी मूर्तिकार आपलोग दर्शन करेंगे।

इस प्रकार सूर्यनारायणके वचनको सुनकर भगवान् विष्णुने उन्हें प्रणाम कर कहा—देव ! हम सभी लोग उत्तम सिद्धि प्राप्त करनेके लिये आपके परम तेजस्वी व्योमरूपका पूजन-अर्चनकर किस विधिसे आराधना करें। परमवृजित ! कृपया आप उस विधिके बतलाकर भुवसेसहित ब्रह्मा और शिवपर दया कीजिये, जिससे हमलोगोंकी परम सिद्धि प्राप्त होनेमें कोई शिष्ट-बाधा न पहुँच सके।

**भगवान् सूर्य बोले—**देवताओंमें श्रेष्ठ वासुदेव । आप शक्तवित्त होकर सुनिये। आपका प्रश्न उचित ही है। मैं अनुपम व्योमरूपकी आपलोग आराधना करे। मेरी पूजा मध्याह्नकालमें भक्तिपूर्वक सदैव करनेसे इच्छित भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान् सूर्यकि इस वाक्यको सुनकर ब्रह्मादि देवताओंने प्रणामकर कहा—‘देव ! आप धन्य हैं, हमलोगोंको आपने अपने तेजसे प्रकाशित किया है, हमलोग कृतकृत्य हो गये। आपके दर्शनमात्रसे ही सभी लोगोंने ज्ञान प्राप्त हुआ है तथा तम, मोह, तन्त्रा आदि सभी अज्ञमात्रमें ही दूर हो गये हैं। हमलोग आपके ही तेजके प्रभावसे उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं। अब आप व्योमके पूजन-विधिके बतानेकी कृपा करें।’

**भगवान् आदित्यने कहा—**आपलोग सत्य ही कह

रहे हैं, जो मैं हूँ वही आपलोग भी हैं, अर्थात् आपलोगोंके स्वरूपमें मैं ही स्थित हूँ। अहंकारी, विमूढ़, असत्य, कलहसे युक्त लोगोंके कल्याणके लिये तथा आपलोगोंके अन्धकार अर्थात् तम-मोहादिकी निवृत्तिके लिये मैंने तेजोमय स्वरूप प्रकट किया, इसलिये अहंकार, मान, दर्प आदिका परित्याग कर ब्रह्मा-भक्तिपूर्वक निरन्तर आपलोग मेरी आराधना करें। इससे मेरे सकल-निष्कल उत्तम स्वरूपका दर्शन प्राप्त होगा और मेरी दर्शनसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जायेंगी। इतना कहकर सहस्रकिरण भगवान् सूर्य देवताओंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। भगवान् भास्करके तेजस्वी रूपका दर्शनकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव सभी आश्चर्यचकित होकर परस्पर कहने लगे—‘वे तो अदिति-पुत्र सूर्यनारायण हैं। ये महातेजस्वी लोकोंको प्रकाशित करनेवाले सूर्यनारायण हैं, इन्होंने हम सभी लोगोंको महान् अन्धकाररूपी तमसे निवृत्त किया है। हम अपने-अपने स्थानपर बलकर इनकी पूजा करें, जिससे इनके प्रसादसे हमें सिद्धि प्राप्त हो सके।’

उस व्योमरूपकी ब्रह्मा-भक्तिपूर्वक पूजन करनेके लिये ब्रह्माजी पुष्करक्षेत्रमें, भगवान् विष्णु शालग्राममें और वृषध्वज शंकर गन्धमादन पर्वतपर चले गये। वहाँ मान, दर्प तथा अहंकारका परित्याग कर ब्रह्माजी चार कोणसे युक्त व्योमकी, भगवान् विष्णु चक्रमें अङ्कित व्योमकी और शिव अग्निरूपी तेजसे अभिभूत व्योमवृत्तकी सदा भक्तिपूर्वक पूजा करने लगे। ब्रह्मादि देवता गन्ध, माला, नृत्य, गीत आदिसे दिव्य सहस्र वर्षोत्क सूर्यनारायणकी पूजाकर उनकी अचल भक्ति और प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये उत्तम तपस्यामें तत्पर हो गये।

**सुमन्तु मुनि बोले—**महाराज । देवताओंके पूजनसे प्रसन्न हो वे एक रूपसे ब्रह्माके पास, एक रूपसे शंकरके पास तथा एक रूपसे विष्णुके पास गये एवं अपने चतुर्थ रूपसे रघोरुड हो आकाशमें स्थित रहे। भगवान् सूर्यने अपने योगबलसे पृथक्-पृथक् उन्हें दर्शन दिया। दिव्य रथपर

१-अन्य पुराणों तथा सांख्य, केदार आदि दर्शनिके अनुसार अकाराकार मनस्तत्त्व, यक्क अहंत्वमें और अहंका महत्-तत्त्वमें, महत्तत्त्वका अत्यक्त-तत्त्वमें और अत्यक्तत्व सत्-तत्त्वमें लय होता है, जो सैकल्प-विचलत्वमें दृश्य होता है और पुनः स्थितिके समय सत्-तत्त्वमें कल्याणके साथ अव्यक्त, महत्, मन, अहंकारके बाद अकाराकारकी उत्पत्ति होती है।

२-योगवासिष्ठमें सबको व्योमके ही अन्तर्गत स्थित मानकर इन्द्र-व्योम-उपसन्ना (दहर-उपसन्ना)का निर्देश है और ब्रह्मसूत्रके ‘आकाशस्तत्त्वित्वात्’ इस सूत्रमें अकाराकार शब्दका अर्थ परमात्मन माना गया है।



आरूढ़ सूर्यदेवने अपने अद्भुत योगबलसे देखा कि चतुर्मुख ब्रह्माजी कमलमुख-व्योमको पूजामें अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिके नतमस्तक हैं। यह देखकर ब्रह्माजीसे भगवान् सूर्यदेवने कहा—‘सुरश्रेष्ठ ! देखो, मैं वर देनेके लिये उपस्थित हूँ।’ यह सुनकर ब्रह्माजी हर्षसे प्रफुल्लित हो उठे और हाथ जोड़कर उनके कमलमुखको देखकर अति विनम्र-भावसे प्रणाम कर प्रार्थना करने लगे—

‘देवेश ! आप प्रसन्न हैं तो मेरे ऊपर कृपा कीजिये। देव ! आपके अतिरिक्त मेरे लिये अन्य कोई गति नहीं है।’

**भगवान् सूर्य बोले—**जैसा आप कह रहे हैं, उसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है। आप कारण-रूपसे मेरे प्रथम पुत्रके रूपमें उत्पन्न हो। अब आप वर माँगिये, मैं वर देनेके लिये ही आया हूँ।

**ब्रह्माजीने कहा—**भगवन् ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो मुझे उत्तम वर दें, जिससे मैं सृष्टि कर सकूँ।

**भगवान् आदित्यने कहा—**जगत्पति चतुर्मुख ब्रह्मन् ! आपको मेरे प्रसादसे सिद्धि प्राप्त हो जायगी और आप इस जगत्के सृष्टिकर्ता होंगे।

**ब्रह्माजीने कहा—**जगत्ताप ! मेरा निवास किस स्थानपर होगा।

**भगवान् सूर्य बोले—**जिस स्थानपर मेरा महद्-व्योम-पृष्ठ शंगसे युक्त उत्तम रूप रहेगा, वहाँ कदम्ब-रूपमें आप नित्य स्थित रहेंगे। पूर्व दिशामें इन्द्र, अग्निक्वणमें शान्तिहस्तिमुत अग्नि, दक्षिणमें यम, नैऋत्यक्वणमें निर्रुति, पश्चिममें वरुण और वायव्यक्वणमें वायु तथा उत्तर दिशामें कुबेरका निवास रहेगा। ईशानक्वणमें शंकर और आपका तथा मध्यमें विष्णुका निवास रहेगा।

**ब्रह्माजीने कहा—**देव ! आज मैं कृतकृत्य हो गया, जो कुछ भी मुझे चाहिये, वह सब प्राप्त हो गया।

**सुमन्तु मुनि बोले—**एजन् ! इस प्रकार भगवान् आदित्य ब्रह्माजीको वर प्रदानकर उनके साथ गन्धमादन पर्वतपर गये, वहाँ उन्होंने देखा—भूत-भावन् शिव तैज तपस्यामें संलग्न हैं। वे तेजसे युक्त व्योमका पूजन कर रहे हैं। इस प्रकार शिवद्वारा पूजन-अर्चनको देखकर भगवान् भास्कर प्रसन्न हो गये।

सं० प० पु० अ० ६—

**सूर्यभगवान्ने कहा—**धीम ! मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ। वस ! वर माँगो। मैं वर देनेके लिये उपस्थित हूँ। इसपर महादेवजीने साष्टाङ्ग प्रणाम कर स्तुति की और कहा—‘देव ! आप मुझपर कृपा करें। आप जगत्पति हैं। संसारका उद्धार करनेवाले हैं। मैं आपके अंशमें आपके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ हूँ, आप वही करें जो एक पिता अपने पुत्रके लिये करता है।’ यह वचन सुनकर भगवान् सूर्य बोले—‘शंकर ! जो तुम कह रहे हो, उसमें कोई भी संदेह नहीं है। मेरे ललाटसे तुम पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए हो। जो तुम्हारे मनमें हो वह वर माँगो।’

**महादेवजीने कहा—**भगवन् ! यदि आप मेरे ऊपर संतुष्ट हैं तो मुझे अपनी अचल भक्ति प्रदान करें, जिससे यक्ष, गन्धर्व, देव, दानव आदिपर मैं विजय प्राप्त कर सकूँ और युगके अन्तमें प्रजाकल संसार कर सकूँ। देव ! मुझे उत्तम स्थान प्रदान करें। भगवान् सूर्यने ‘ऐसा ही होगा’ कहकर कहा कि इसी प्रकार तुम मेरे परम व्योमरूपकी पूजा प्रतिदिन करते रहो और वही परम तेजस्वी व्योम तुम्हारा शस्त्र—त्रिशूल होगा।

**सुमन्तु मुनि बोले—**महाएज ! तदनन्तर भगवान् सूर्य भगवान् विष्णुको वर देने शलग्राम (मुक्तिनाथ-क्षेत्र) गये। वहाँ उन्होंने देखा कि वे कृष्णाजिन धारणकर शान्तिचित्त हो परम उत्कृष्ट तप कर रहे हैं और हृदयमें भगवान् सूर्यका ध्यान कर रहे हैं। भगवान् भास्करने अति प्रसन्न होकर कहा—‘विष्णो ! मैं आ गया हूँ, मुझे देखो।’ भगवान् विष्णुने उन्हें स्मिर हुक्ककर प्रणाम किया और कहा—‘जगन्नाथ ! आप मेरी रक्षा करें। मेरे ऊपर दया करें। मैं आपका द्वितीय पुत्र हूँ। पिता अपने पुत्रपर जैसी कृपादृष्टि रखता है, उसी प्रकार आप भी मेरे ऊपर दया-दृष्टि बनाये रखें।’

**भगवान् सूर्य बोले—**महाबाहो ! मैं तुम्हारी श्रद्धा-भक्तिके संतुष्ट हो गया हूँ। जो कुछ भी इच्छा हो, माँग लो। मैं वर प्रदान करनेके लिये ही आया हूँ।

**विष्णु भगवान्ने कहा—**भगवन् ! मैं आज कृतकृत्य हो गया। मेरे सम्मान कोई भी धन्य नहीं है, क्योंकि आप संतुष्ट होकर मुझे स्वयं वर देने आ गये। आप अपनी अचल भक्ति और शत्रुको पराजित करनेकी शक्ति मुझे प्रदान करें तथा जैसे मैं संसारका पालन कर सकूँ ऐसा वर प्रदान करें। मुझे इस प्रकारका स्थान दें जिससे कि मैं सभी लोकोंमें यशस्वी, बल,

वीर्य, यश और सुखसे सम्पन्न हो सकूँ।

**भगवान् सूर्य बोले—**‘तथास्तु’ महन्वाहो ! तुम ब्रह्मके छोटे और शिवके बड़े भ्राता हो, तुम्हें सभी देवता नमस्कार करेंगे। तुम मेरे परम भक्त और परम प्रिय हो, इसलिये तुम्हारी मुझमें अचल भक्ति रहेगी। जिस व्योमरूपका तुमने अर्चन किया है, यह व्योम हो तुम्हारे लिये चक्ररूपमें अस्त्र-शस्त्रका कार्य करेगा। यह सभी आयुष्योंमें उत्तम एवं दुर्लोक्य विनाशक है। समस्त लोक इसे नमस्कार करते हैं।

**सुमन्तु मुनि बोले—**उज्ज्व ! इस प्रकार भगवान् भास्कर भगवान् विष्णुको वर प्रदानकर अपने लोकमें चले गये और ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरने भगवान् सूर्यनारायणकी पूजाकर सृष्टि, पालन और संहार करनेकी शक्ति प्राप्त की। यह

आख्यान अति पवित्र, पुण्य और सभी प्रकारके पापोंका नाशक है। यह तीन देखोका उपाख्यान है और तीन देवता इस लोकमें पूजित हैं। यह तीन स्तोत्रोंसे युक्त तथा धर्म, अर्थ और कामका साधन है। यह धर्म, स्वर्ग, आरोग्य, धन-धान्यको प्रदान करनेवाला है। जो व्यक्ति इस आख्यानको प्रतिदिन सुनता है अथवा जो इन तीन स्तोत्रोंका पाठ करता है, वह अप्रिय विमानपर आरुढ़ होकर भगवान् सूर्यके परमपदको प्राप्त कर लेता है। पुत्रहीन पुत्र, निर्धन धन, विद्याहीन विद्या प्राप्त कर तेजसे सूर्यके समान, प्रथममें उनके किरणोंके समान हो जाता है और अनन्तकालतक सुख भोग कर ज्ञानियोंमें उत्तम स्थानको प्राप्त करता है।

(अध्याय १५२—१५६)

### सौर-धर्म-निरूपणमें सूर्यावतारका कथन

**शतानीकने पूछा—**वाङ्म ! जिन तेजस्वी भगवान् सूर्यनारायणने ब्रह्माजीको वर प्रदान किया, देवताओं और पृथ्वीको उत्पन्न किया, जो ब्रह्मादि देवताओंको प्रकाशित करनेवाले तथा समस्त जगत्के पालक, महाभूतोंसहित चौदह लोकोंके स्रष्टा, पुराणोंमें तेजरूपसे स्थित एवं पुराणोंकी आत्मा हैं तथा अग्निमें स्वयं स्थित हैं, जिनके सहस्रों सिर, सहस्रों नेत्र तथा सहस्रों चरण हैं, जिनके मुखसे लोकपालासक ब्रह्मा, वक्षःस्थलसे भगवान् विष्णु और ललाटसे साक्षात् भगवान् शिव उत्पन्न हुए हैं, जो विश्वोंके विनाशक एवं अन्धकार-नाशक, लोककी शक्तिके लिये जो अग्नि, वैदि, कुश, सुख, प्रोक्षणी, व्रत आदिको उत्पन्न कर इनके द्वारा हव्य-धाग ग्रहण करते हैं, जो युगके अनुरूप कर्मोंके विभाजन तथा क्षण, काल, काष्ठ, मुहूर्त, तिथि, मास, पक्ष, संवत्सर, ऋतु, कालयोग, विविध प्रमाण और आयुके उत्पादक तथा विनाशक हैं एवं परमज्योति और परम तपस्वी हैं, जो अण्डुत तथा परमात्मके नामसे जाने जाते हैं, वे ही महर्षि कश्यपके यहाँ पुत्रके रूपमें कैसे अवतरित हुए ?

ब्रह्मादि जिनकी उपासना करते हैं तथा वेद-वेत्ताओंमें जो उत्तम और देवताओंमें प्रभु विष्णु हैं, जो सौम्योंमें सौम्य और अग्निमें तेजःस्वरूप हैं, मनुष्योंमें मन-रूपसे तथा तपस्वियोंमें तप-रूपसे विद्यमान हैं, जो विग्रहोंमें विग्रह हैं, जो देवताओं और मनुष्यों-सहित समस्त लोकोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, वे

देखेंगे देव भगवान् सूर्य किसलिये अदितिके गर्भसे स्वयं उत्पन्न हुए ? वाङ्म ! इस विषयमें मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है, भगवान् सूर्यकी उत्पत्तिसे आश्चर्यचकित होकर ही मैं आपसे उनके आख्यानको पूछा है। महामुने ! भगवान् सूर्यके बल-वीर्य, पराक्रम, यश और उज्ज्वलित तेजका आप वर्णन करें।

**सुमन्तु मुनि बोले—**उज्ज्व ! आपने भगवान् भास्करकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें बहुत ही जटिल प्रश्न पूछा है। मैं अपनी सामर्थ्यके अनुसार कह रहा हूँ। आप उसे ब्रह्म-भक्तियुक्त सुनें।

जो भगवान् सूर्य सहस्रों नेत्रोंवाले, सहस्रों किरणोंसे युक्त और सहस्रों सिर तथा सहस्रों हाथवाले हैं, सहस्रों मुकुटोंसे सुशोभित तथा सहस्रों भुजाओंसे युक्त एवं अव्यय हैं, जो सभी लोकोंके कल्याण एवं सभी लोकोंको प्रकाशित करनेके लिये अनेक रूपोंमें अवतरित होते हैं, वही भगवान् सूर्य कश्यपद्वारा अदितिके गर्भसे पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए। महाराज ! कश्यप और अदितिसे जो-जो पुत्र उत्पन्न होते थे, वे उसी क्षण मर जाते थे। इस पुत्र-विनाशको देखकर पुत्र-शोकसे दुःखी माता अदिति व्याकुल हो अपने पति महर्षि कश्यपके पास गयीं। अदितिने देखा कि महर्षि कश्यप अग्निके समान तेजस्वी, दण्ड धारण किये कृष्ण धृग्वर्णपर आसीन तथा बलकल धारण किये हुए भगवान् भास्करके सदृश देदीप्यमान

हो रहे हैं। इस प्रकारसे उन्हें स्थित देखकर अदितिने प्रार्थना करते हुए कहा—‘देव ! आप इस तरह निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हैं ? मेरे पुत्र उत्पन्न होते ही मृत्युको प्राप्त होते जा रहे हैं।’ अदितिके इस वचनको सुनकर ऋषियोंमें उत्तम कश्यपजी ब्रह्मलोक गये और उन्होंने अदितिको बतते ब्रह्माजीको बतलाया।

**ब्रह्माजीने कहा—**पुत्र ! हमें भगवान् भास्करके परम दुर्लभ स्थानपर चलना चाहिये। यह कहकर ब्रह्मा कश्यप और अदितिके साथ विमानपर आसुद्ध होकर सूर्यदेवके भवनको गये। उस समय सूर्यलोककी सभामें कहीं वेद-ध्वनि हो रही थी, कहीं यज्ञ हो रहा था। ब्राह्मण वेदकी शिक्षा दे रहे थे। अथारह पुराणोंके ज्ञाता, विद्याविद्वत्, मौमांसक, नैयायिक, वेदान्तविद्, लोकव्यक्तिक आदि सभी सूर्यकी उपासनामें लगे हुए थे। विद्वान् ब्राह्मण जप, तप, हवन आदिमें संलग्न थे। उस सभामें रश्मिमाली भगवान् दिवाकरको महर्षि कश्यप आदिने देखा। देवताओंके गुरु बृहस्पति, असुरोंके गुरु शुक्राचार्य आदि भी यहाँपर भगवान् सूर्यकी उपासना कर रहे थे। दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, नारद, अनन्तरिक्ष, तेज, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, प्रकृति, विकृति, अन्न-उपज्ज्वलित चारों वेद और लव, ऋतु, संकल्प, प्रणव आदि बहुतसे मूर्तिमान् होकर भगवान् भास्करकी स्तुति-उपासना कर रहे थे। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, द्वेष, हर्ष, मोह, मत्सर, मान, वैष्णव, माहेश्वर, सौर, भारत, विश्वकर्मा तथा अश्विनीकुमार आदि सुन्दर-सुन्दर वचनोंसे भगवान् सूर्यका गुणगान कर रहे थे।

**ब्रह्माजीने भगवान् भास्करसे निवेदन किया—** भगवन् ! आप देवमाता अदितिके गर्भसे उत्पन्न होकर लोकका कल्याण कीजिये। इस त्रैलोक्यको अपने तेजसे प्रकाशित कीजिये। देवताओंको शरण दीजिये। असुरोंका विनाश एवं अदिति-पुत्रोंकी रक्षा कीजिये।

**भगवान् सूर्यने कहा—**आप जैसा कह रहे हैं, वैसा ही होगा। प्रसन्न होकर महर्षि कश्यप देवी अदितिके साथ

अपने आश्रममें चले आये और ब्रह्माजी भी अपने लोकको चले गये।

**सुमन्तु मुनि बोले—**महाराज ! कालान्तरमें भगवान् सूर्य अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए, जिससे तीनों लोकोंमें सुख छा गया और दैत्योंका विनाश हो गया देवताओंकी वृद्धि हुई और उनके प्रभावसे सभी लोगोंने परम आनन्द व्याप्त हो गया।

इस प्रकार देवमाता अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यके जन्म ग्रहण करनेपर आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्वगण गान करने लगे। द्वादशात्म भगवान् सूर्यकी सभी देवगण, ऋषि-महर्षि तथा दक्ष प्रजापति आदि स्तुति करने लगे। उस समय एकादश रुद्र, अश्विनीकुमार, आठों वसु, महावृक्षी गरुड, विष्णुदेव, स्वर्ण, नागराज वासुकि तथा अन्य बहुतसे नाग और राक्षस भी हाथ जोड़े खड़े थे। पितृमह ब्रह्मा भी स्वयं पृथ्वीपर आये और सभी देवता एवं ऋषि-महर्षियोंसे बोले—‘देवर्षिगण ! जिस प्रकार बालक-रूपमें उत्पन्न होकर ये सभीको देख रहे हैं, उसी प्रकार ये लोकेश्वर श्रीमान् और विश्वेश्वन्-रूपमें विख्यात होंगे। देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व आदिके जो कारण हैं वे ही आदिदेव भगवान् आदित्य हैं।’ इस प्रकार कहकर पितृमह ब्रह्माने देवताओं और ऋषियोंसहित उन्हें नमस्कार कर विधिपूर्वक उनकी अर्चना की तपश्चात् वे अपने-अपने लोकोंको चले गये।

केटोद्वार गेय तथा इन्द्रादि बारह नामोंसे युक्त भगवान् सूर्यको पुत्र-रूपमें प्राप्तकर महर्षि कश्यप अदितिके साथ परम संतुष्ट हो गये एवं सारा विश्व हर्षसे व्याप्त हो गया तथा सभी राक्षस भयभीत हो गये।

**भगवान् सूर्य बोले—**महर्षे ! आपके पुत्र नष्ट हो जाते थे, इसलिये गर्भकी सिद्धिके लिये मैं आपके यहाँ पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुआ हूँ।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! इस प्रकार भगवान् भास्करकी आराधना करके ब्रह्माजीने सृष्टि करनेका वर प्राप्त किया और कश्यपमुनिने भी भगवान् भास्करको प्रसन्न कर उन्हें पुत्ररूपमें प्राप्त कर लिया। (अध्याय १५७—१५९)



### ब्रह्मादि देवताओं द्वारा सूर्यके विराट्-रूपका दर्शन

महाराज शतानीकने कहा—मुने ! आपने भगवान् सूर्यके अद्भुत चरित्रका वर्णन किया है, जिनका पूजन ब्रह्मा आदि देवता प्रतिदिन विधिपूर्वक करते रहते हैं तथा जिस ब्रह्मकी ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सभी देवता आराधना करते रहते हैं, उसे आप बतायें।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! एक बार भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी हिमाचलपर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् शिव सिरपर अर्धचन्द्र धारण किये भगवान् विवस्वान्की पूजा कर रहे हैं। ब्रह्मा और विष्णुको वहाँ आये देखकर शिवजीने उन्हें प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की तथा उनसे कहा—'भगवन् ! आपलोगोंने भगवान् सूर्यकी आराधना कर उनके किस स्वरूपका दर्शन किया है। मुझे उनके परम रूपको जाननेकी बड़ी ही अभिलाषा है, उसे आप बतायें।'

इसपर वे दोनों बोले—हमलोगोंने भी उस परम अद्भुत रूपको नहीं देखा है। हमें उस परम अद्भुत रूपकी आराधनाके लिये सुवर्णके समान उज्ज्वल पवित्र उदयगिरिपर एक साथ चलना चाहिये। अनन्तर तीनों देव तीव्र गतिसे पर्वतश्रेण उदयाचलपर गये और वहाँ भगवान् सूर्यनारायणकी विधिपूर्वक आराधना करने लगे। सहस्रों दिव्य वर्षतक पद्यासन लगाकर ब्रह्माजी निश्चल रूपसे स्थिर हो, ऊपर हाथ करके शिलोचन भगवान् शङ्कर और गिर नीचे करके पञ्चांगिका सेवन करते हुए भगवान् विष्णु सूर्यदेवका दर्शन प्राप्त करनेके लिये कठोर तप करने लगे। ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीके उत्तम तपसे संतुष्ट हो भगवान् सूर्यनारायणने प्रकट होकर उनसे कहा—'आपलोग क्या चाहते हैं ? मैं आपलोगोंसे संतुष्ट हूँ और वर देनेके लिये उपस्थित हुआ हूँ।'

उन्होंने कहा—गोपते ! हमलोग आपके दर्शनसे कुत-कृत्य हो गये हैं। पहले ही आपकी आराधना करके हमलोगोंने शुभ वरोंको प्राप्त कर लिया है। आपकी दयासे हमलोग उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करनेमें समर्थ हैं, इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है, किन्तु देवदेवेश ! हमलोग आपके परम दुर्लभ रूपका दर्शन करना चाहते हैं।

उनके वचनोंको सुनकर लोकपूजित भगवान् सूर्यने उन्हें अपना परम दुर्लभ तेजस्वी अद्भुत विराट्-रूप दिखलाया। इनके अनेक सिर तथा अनेक मुख हैं, सभी देव तथा सभी लोक उसमें स्थित हैं। पृथ्वी पर, स्वर्ग सिर, अग्नि नेत्र, पैरकी अँगुलियों विशाच, हाथकी अँगुलियों गृह्यक, विश्वेदेव जंघा, यज्ञ कुक्षि, अप्सरागण केश तथा तारागण ही इनके रोम-रूपमें हैं। दसों दिशाएँ इनके जान और दिक्पालगण इनकी भुजाएँ हैं। वायु नासिका, प्रसाद ही क्षमा तथा धर्म ही मन है। सत्य इनकी कणी, देवी सरस्वती जिह्वा, प्रीया महादेवी अदिति और तालु योर्वहान् रुद्र हैं। स्वर्गका द्वार नाभि, वैश्वानर अग्नि मुख, भगवान् ब्रह्मा हृदय और उदर महर्षि कश्यप हैं, पीठ आठों वसु तथा सभी संक्षिप्त मरुदेव हैं। समस्त छन्द दाँत एवं ज्योतिर्वि निर्मल प्रभा हैं। महादेव रुद्र प्राण, कुक्षियों समुद्र हैं। इनके उदरमें गन्धर्व और नाग हैं। लक्ष्मी, मेधा, धृति, कर्त्तव्य तथा सभी जिह्वाएँ इनके कर्त्तव्यदेशमें स्थित हैं। इनका ललाट ही परमात्माका परमपद है। दो स्तन, दो कुक्षि और चार वेद ये आठ ही इनके यज्ञ हैं।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! सर्वदेवमय भगवान् सूर्यके इस विराट् रूपको देखकर ब्रह्मा, शिव और भगवान् विष्णु परम प्रसन्न हो गये। उन्होंने बड़ी श्रद्धासे भगवान् सूर्यको प्रणाम किया।

**भगवान् सूर्यने कहा—**देवी ! आप सबकी कठिन तपस्यासे प्रसन्न होकर आप सबके कल्याणके लिये मैंने योगियोंके द्वारा समाधि-गम्य अपने इस विराट् रूपको दिखलाया है। इसपर वे बोले—भगवन् ! आपने जो कहा है, उसमें कोई भी संदेह नहीं है। इस विराट् रूपका दर्शन पाना योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। आपकी आराधना करने तथा आपके दर्शन करनेपर कुल अप्राप्य नहीं है। आपके समान इस लोकमें दूसरा कोई देव नहीं है।

राजन् ! ब्रह्मादि देवता परम उत्कृष्ट इस रूपका दर्शन कर हर्षित हो गये और उन्होंने भगवान् सूर्यका पूजन-आराधन कर परम सिद्धि प्राप्त की। (अध्याय १६०)





### सूर्योपासनाका फल

**शतानीकने पूछा—**मुने ! आपने भगवान् सूर्यके विषयमें जो कहा, यह सत्य ही है, संसारके मूल कारण तथा परम देवत भगवान् सूर्य ही हैं, सभीको यही तेज प्रदान करते हैं। भगवान् सूर्यनारायणके पूजनसे जो फल प्राप्त होता है, आप उसे बतलानेकी कृपा करें।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! जो व्यक्ति सर्वदेवमय भगवान् सूर्यकी प्रतिष्ठा कर पूजन करता है, वह अमरत्व तथा भगवान् सूर्यका सामीप्य प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति भगवान् सूर्यका तिरस्कार कर सभी देवताओंका पूजन करता है, उस व्यक्तिके साथ भाषण करनेवाला व्यक्ति भी नरकगामी होता है। जो व्यक्ति श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी प्रतिष्ठा कर पूजन-अर्चन करता है, उसे यज्ञ, तप, तीर्थ-यात्रा आदिकी अपेक्षा कोई गुण अधिक फल प्राप्त होता है तथा उसके मातृकुल, पितृकुल एवं स्त्रीकुल—इन तीनोंका उद्धार हो जाता है और वह इन्द्रलोकमें पूजित होता है तथा वहाँ ज्ञानयोगके आश्रयणसे वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। अथवा जो राज्य चाहता है वह दूसरे जन्ममें समुद्रोपवनी वसुमतीका राजा होता है। जो व्यक्ति मिट्टीका सर्वदेवमय व्योम बनाकर भगवान् सूर्यका पूजन-अर्चन करता है, वह तीनों लोकोंमें पूजित एवं इस लोकमें धन-धान्यसे परिपूर्ण होकर अन्तमें सूर्यलोकमें

प्राप्त कर लेता है।

जो व्यक्ति भगवान् सूर्यके पिष्टमय व्योमकी रचनाकर गन्ध, धूप, पुष्प, माला, वन्दन, फल आदि उपचारोंसे पूजा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और कोई हेरा नहीं पाता। वह भगवान् सूर्यके समान प्रतापपूर्ण हो अव्यय पदको प्राप्त करता है। अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यका मन्दिर निर्माण करनेवाला स्वर्गमय विमानपर आरुढ़ होकर भगवान् सूर्यके साथ विहार करता है। यदि साधन-सम्पन्न होनेपर भी श्रद्धा-भक्तिके शून्य होकर मन्दिर आदिका निर्माण करता है तो उसे कोई फल नहीं होता। इसलिये अपने धनका तीन भाग करना चाहिये, उसमेंसे दो भाग धर्म तथा अधोपासनामें व्यय करें और एक भागसे जीवनयापन करें। धन-सम्पत्तिके सम्पन्न रहनेपर भी यदि कोई धिना भक्तिके अपना सर्वस्व भगवान् सूर्यके लिये अर्पण कर दे, तब भी वह धर्मका भागी नहीं होता, क्योंकि इसमें भक्तिकी ही प्रधानता है<sup>१</sup>। मानव संसारमें दुःख और शोकमें व्याकुल होकर तबतक भटकता है, जबतक भगवान् सूर्यकी पूजा नहीं करता। संसारमें असक्त प्राणियोंको भगवान् सूर्यके अतिरिक्त और कौन ऐसा देवता है जो बन्धनसे छुटकारा दिला सके।

(अध्याय १६१-१६२)

### विभिन्न पुण्योद्धार सूर्य-पूजनका फल

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! अमित तेजस्वी भगवान् सूर्यको स्नान कराते समय 'जय' आदि माङ्गलिक शब्दोंका उच्चारण करना चाहिये तथा शङ्ख, घेरी आदिके द्वारा मङ्गल-ध्वनि करनी चाहिये। तीनों संध्योंमें वैदिक ध्वनियोंसे श्रेष्ठ फल होता है। शङ्ख आदि माङ्गलिक वाद्योंके सहारे नीराजन करना चाहिये। जितने शशीतक भक्त नीराजन करता है, उतने युग सहस्र वर्ष वह दिव्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। भगवान् सूर्यको कपिला गौके पञ्चगव्यसे और मन्त्रपूत कुशयुक्त जलसे स्नान करनेको ब्रह्मस्नान कहते हैं। वर्षमें एक बार भी ब्रह्मस्नान करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

जो पितरोंके उद्देश्यसे शीतल जलसे भगवान् सूर्यको स्नान करता है, उसके पितर नरकोंसे मुक्त होकर स्वर्ग चले जाते हैं। मिट्टीके कलशकी अपेक्षा ताम्र-कलशसे स्नान करना सौ गुना श्रेष्ठ होता है। इसी प्रकार चाँदी आदिके कलशदान स्नान करनेमें और अधिक फल प्राप्त होता है। भगवान् सूर्यके दर्शनसे स्पर्श करना श्रेष्ठ है और स्पर्शसे पूजा श्रेष्ठ है और धूत-स्नान करना उससे भी श्रेष्ठ है। इस लोक और परलोकमें प्राप्त होनेवाले पापोंके फल भगवान् सूर्यको धूतस्नान करनेसे नष्ट हो जाते हैं एवं पुराण-श्रवणसे सात जन्मोंका पाप दूर हो जाते हैं।

एक सौ फल (लगभग छः किलो बीस ग्राम) प्रमाणसे

(जल, पञ्चामृत आदिसे) स्नान कराना 'स्नान' कहलयात है। पचीस पल (लगभग डेढ़ किलो) से स्नान कराना 'अभ्यङ्ग-स्नान' कहलयात है और दो हजार पल (लगभग एक सौ चौबीस किलो) से स्नान करनेको 'महास्नान' कहते हैं।

जो मानव भगवान् सूर्यको पुष्प-फलसे युक्त अर्घ्य प्रदान करता है, वह सभी लोकोंमें पूजित होता है और स्वर्गलोकमें अनन्दित होता है। जो अष्टाङ्ग अर्घ्य—जल, दूध, कुशका अग्रभाग, घी, दही, मधु, लाल कनेरका फूल तथा लाल चन्दन—बनाकर भगवान् सूर्यको निवेदित करता है, वह दस हजार वर्षतक सूर्यलोकमें विहार करता है। यह अष्टाङ्ग अर्घ्य भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय है<sup>१</sup>।

बाँसके पात्रसे अर्घ्य-दान करनेसे सौ गुना फल मिट्टीके पात्रसे होता है, मिट्टीके पात्रसे सौ गुना फल ताँबेके पात्रसे होता है और पलाश एवं कमलके पात्रोंसे अर्घ्य देनेका लाभ-पात्रका फल प्राप्त होता है। राजतपात्रके द्वारा अर्घ्य प्रदान करना लाख गुना फल देता है। सुवर्णपात्रके द्वारा दिया गया अर्घ्य कौटि गुना फल देनेवाला होता है। इसी प्रकार स्नान, अर्घ्य, नैवेद्य, पूष आदिका क्रमशः विभिन्न पात्रोंकी विशेषतासे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है।

धनिक या दरिद्र दोनोंको समान ही फल मिलता है, किन्तु जो भगवान् सूर्यके प्रति भक्ति-भावनासे सम्पन्न रहता है, उसे अधिक फल मिलता है। वैभव रहनेपर भी मोहवश जो पूर्ण विधि-विधानके साथ पूजन आदि नहीं करता, वह लाभसे आक्रान्त-चित्त होनेके कारण उसका फल नहीं प्राप्त कर पाता। इसलिये मन्त्र, फल, जल तथा चन्दन आदिसे विधिपूर्वक सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। इससे वह अनन्त फलको प्राप्त करता है। इस अनन्त फल-प्राप्तिके भक्ति ही मुख्य हेतु है। भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे वह सौ दिव्य कौटि वर्ष सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

यजन् ! सूर्यको भक्तिपूर्वक तालपत्रका पंखा समर्पित करनेवाला दस हजार वर्षतक सूर्यलोकमें निवास करता है।

मयूर-पंखका सुन्दर पंखा सूर्यको समर्पित करनेवाला सौ कौटि वर्षतक सूर्यलोकमें निवास करता है।

नरश्रेष्ठ ! हजारों पुष्पोंसे कनेरका पुष्प श्रेष्ठ है, हजारों बिल्वपत्रोंसे एक कमल-पुष्प श्रेष्ठ है। हजारों कमल-पुष्पोंसे एक अगस्त्य-पुष्प श्रेष्ठ है, हजारों अगस्त्य-पुष्पोंसे एक मोगरा-पुष्प श्रेष्ठ है, सहस्र कुशाओंसे शमीपत्र श्रेष्ठ है तथा हजार शमी-पत्रोंसे नीलकमल श्रेष्ठ है। सभी पुष्पोंमें नीलकमल ही श्रेष्ठ है। लाख कनेरके द्वारा जो भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह अनन्त कलयौतक सूर्यलोकमें सूर्यके समान श्रीमान् तथा पराक्रमी होकर निवास करता है। चमेली, गुलाब, बिजय, श्वेत मन्दार तथा अन्य श्वेत पुष्प भी श्रेष्ठ माने गये हैं। नग-चम्पक, सदाबहार-पुष्प, मुद्गर (मोगरा) ये सब समान ही माने गये हैं। गन्धवृत्त किन्तु अपवित्र पुष्पोंको देवताओंपर नहीं चढ़ाना चाहिये। गन्धहीन होते हुए भी पवित्र कुशादिपत्रोंको ग्रहण करना चाहिये। पवित्र पुष्प सात्त्विक पुष्प है और अपवित्र पुष्प तामसी है। रात्रिके मोगरा और वटम्बका पुष्प चढ़ाना चाहिये। अन्य सभी पुष्पोंको दिनमें ही समर्पित करना चाहिये। अधाकिले पुष्प तथा अपक्व पदार्थ भगवान् सूर्यको नहीं चढ़ाने चाहिये। फलोंके न मिलनेपर पुष्प, पुष्प न मिलनेपर पत्र और इनके अभावमें तृण, गुल्म और औषध भी समर्पित किये जा सकते हैं। इन सबके अभावमें मात्र भक्ति-पूर्वक पूजन-आराधनसे भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। जो माघ मासके कृष्ण पक्षमें सुगन्धित धुत्तन-पुष्पोंद्वारा सूर्यकी पूजा करता है, उसे अनन्त फल प्राप्त होता है। संयतचित्त होकर करवीर-पुष्पोंसे पूजा करनेवाला सभी पापोंसे रहित हो सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

अगस्त्यके पुष्पोंसे जो एक बार भी भक्तिपूर्वक सूर्यकी पूजा करता है, वह दस लाख गोदानका फल प्राप्त करता है और उसे स्वर्ग प्राप्त होता है।

मालती, रक्तकमल, चमेली, पुनाग, चम्पक, अशोक, श्वेत मन्दार, कचनार, अंधुक, करवीर, कलहार, शमी, तगर,

१-आपः क्षीरं कुशाग्रणिं पूर्णं दधि तथा मधु । रक्तानि करवीरानि तथा रक्तं च चन्दनम् ॥

अष्टाङ्ग एव अर्घ्यं वै ब्रह्मण परिकीर्तितं । सततं श्रेष्ठिजनने भास्करस्य नराधिप ॥

कनेर, केदार, अगस्त्य, चक तथा कमल-पुष्पोद्गर यथाशक्ति भगवान् सूर्यकी पूजा करनेवाला कोटि सूर्यके समान देदीप्यमान विमानसे सूर्यलोकको प्राप्त करता है अथवा पृथ्वी

या जलमें उद्यत पुष्पोद्गर श्रद्धापूर्वक पूजन करनेवाला सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

(अध्याय १६३)

### सूर्यषष्ठी-व्रतकी महिमा

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! अब आप भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय सूर्यषष्ठी-व्रतके विषयमें सुनें। सूर्यषष्ठी-व्रत करनेवालेको जितेन्द्रिय एवं क्रोधरहित होकर अर्थाचित-व्रतका पालन करते हुए भगवान् सूर्यकी पूजामें तत्पर रहना चाहिये। व्रतीको अल्प और सात्विक-भोजी तथा रात्रिभोजी होना चाहिये। स्नान एवं अग्निकार्य करते रहने चाहिये और अधःशयी होना चाहिये। मध्याह्नमें देवताओद्गर, पूर्वाह्णमें ऋषियोद्गर, अपराह्णमें पितरोद्गर और संध्यामें गुह्यकौद्गर भोजन किया जाता है। अतः इन सभी कालोंका अतिव्रतपूर्वक सूर्यव्रतके भोजनका समय रात्रि ही माना गया है। मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीसे यह व्रत आरम्भ करना चाहिये। इस दिन भगवान् सूर्यकी 'अंशुमान्' नामसे पूजा करनी चाहिये तथा रात्रिमें गोमूत्रका प्राशनकर निराहार ही विश्राम करना चाहिये। ऐसा करनेवाला अर्धक अतिरात्र-यज्ञका फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार चौथे भगवान् सूर्यकी 'सहस्रोशु' नामसे पूजा करे तथा धृक्का प्राशन करे, इससे वाजपेययज्ञका फल प्राप्त होता है। पाप मासमें कृष्ण पक्षकी षष्ठीको रात्रिमें गेदुग्ध-पान करे। सूर्यकी पूजा 'दिवकर' नामसे करे, इससे महान् फल प्राप्त होता है। फाल्गुन मासमें 'मार्तण्ड' नामसे पूजाकर, गेदुग्धका पान करनेसे अनन्त कालतक सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। चैत्र मासमें भास्करकी 'दिवस्वान्' नामसे भक्तिपूर्वक पूजाकर हविष्य-भोजन करनेवाला सूर्यलोकमें अप्सराओंके साथ आनन्द प्राप्त करता है। वैशाख मासमें 'चण्डकिरण' नामसे सूर्यकी पूजा करनेसे दस हजार वर्षोंतक सूर्यलोकमें आनन्द प्राप्त करता है। इसमें पयोव्रती होकर रहना चाहिये।

ज्येष्ठ मासमें भगवान् भास्करकी 'दिवस्पति' नामसे पूजा कर गो-भृङ्गका जल-पान करना चाहिये। ऐसा करनेसे कोटि गेटानका फल प्राप्त होता है। आषाढ़ मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीको 'अर्क' नामसे सूर्यकी पूजाकर, गोमयका प्राशन करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। श्रावण मासमें 'अर्यमा' नामसे सूर्यका पूजनकर दुग्ध-पान करे, ऐसा करनेवाला सूर्यलोकमें दस हजार वर्षोंतक आनन्दपूर्वक रहता है। भाद्रपद मासमें 'भास्कर' नामसे सूर्यकी पूजाकर पञ्चगव्य-प्राशन करे, इससे सभी यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। आश्विन मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीमें 'भय' नामसे सूर्यकी पूजा करे, इसमें एक पल गोमूत्रका प्राशन करनेसे अष्टमेघ यज्ञका फल प्राप्त होता है। कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीको 'शक्र' नामसे सूर्यकी पूजाकर दुर्गाङ्गुरका एक बार भोजन करनेसे राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है।

वर्षिके अन्तमें सूर्य-भक्तिपरायण ब्राह्मणोंको मधुसंयुक्त कायसका भोजन कराये तथा यथाशक्ति स्नान और वस्त्रादि समर्पित करे। भगवान् सूर्यके लिये काले रंगकी दूध देनेवाली गाय देनी चाहिये। जो इस व्रतका एक वर्षतक निरन्तर विधिपूर्वक सम्पादन करता है, वह सभी पापोंसे विनिर्मुक्त हो जाता है एवं सभी कामनाओंसे पूर्ण होकर शाश्वत कालतक सूर्यलोकमें आनन्दित रहता है।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! इस कृष्ण-षष्ठी-व्रतको भगवान् सूर्यने अरुणसे कहा था। यह व्रत सभी पापोंका नाश करनेवाला है। भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा करनेवाला मनुष्य अमृत तेजस्वी भगवान् भास्करके अमृत स्थानकी प्राप्त करता है। (अध्याय १६४)

### उभयसप्तमी-व्रतका वर्णन

**सुमन्तु मुनिने कहा—**राजन् ! अब मैं आपको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्गकी प्राप्ति करनेवाले भगवान् सूर्यके उत्तम व्रतको बतलाता हूँ। पौष मासके उभयपक्षकी

सप्तमियोंको जो शालि (धान), गेहूँके आटेसे बने पकाव तथा दूधका रात्रिमें भोजन करता है और जितेन्द्रिय रहता है, सत्य बोधता है तथा दिनभर उपवास करता है, तीनों संघ्याओंमें

भगवान् सूर्य तथा अग्निकी उपासना करता है, सभी भोग-पदार्थोंका परित्याग कर भूमिपर शयन करता है, मास बीतनेपर सप्तमीको घृतादिके द्वारा भगवान् सूर्यको स्नान करता है तथा उनकी पूजा करता है, नैवेद्यमें मोदक, फल, दूध तथा पक्वज निवेदित करता है, आठ ब्राह्मणोंको भोजन करता है और भगवान्को कपिला गाय निवेदित करता है, वह कोई सूर्यके समान देदीप्यमान उत्तम विमानमें आरुढ़ होकर भगवान् अंशुमालीके परम स्थानको प्राप्त करता है। कपिला गौके तथा उसकी संततियोंके शरीरमें जितने रोम हैं, उतने हजार युग वर्षोंतक वह सूर्यलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। अपने इष्टीम कुल्लोंके साथ वह यथेच्छ भोगोंका उपभोगकर अन्तमें ज्ञान-योगका समाश्रयण कर मुक्त हो जाता है।

राजन् ! इस प्रकार मैंने आपको इस संसार-समुद्रमें पार उतारनेवाले सौरधर्ममें मोक्ष-क्रमके उपाय बतलाये। यह

विद्वानोंके लिये समाश्रयणीय है।

इसी प्रकार अन्य महीनोंमें (माघसे मार्गशीर्षतक) निर्दिष्ट नियमोंका पालन करते हुए व्रत और भगवान् सूर्यकी पूजा करनेसे विभिन्न कामनाओंकी पूर्ति होती है तथा सूर्य-लोकको प्राप्ति होती है।

कुरुनन्दन ! अहिंसा, सत्य-वचन, अस्तेय, दान, क्षमा, ऋजुता, तीनों कालोंमें स्नान तथा हवन, पृथ्वी-शयन, रुक्मिभोजन—इनका पालन सभी व्रतोंमें करना चाहिये। इन गुणोंका आश्रयणकर उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले व्यक्तिके सभी पाप और भय नष्ट हो जाते हैं एवं रोगोंका नाश हो जाता है और सभी कामनाओंके अनुरूप फलकी प्राप्ति होती है। इस प्रकारका सूर्य-व्रती व्यक्ति अमित तेजस्वी होकर सूर्य-लोकको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १६५)

### निक्षुभार्क-सप्तमी तथा निक्षुभार्क-चतुष्टय-व्रत-माहात्म्य-वर्णन

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! जो स्त्री उत्तम पुष्पकी आकाङ्क्षा रखती है, उसे निक्षुभार्क नामका व्रत करना चाहिये। यह व्रत स्त्री एवं पुरुषमें परस्पर प्रीतिवर्धक, अवियोगकरक और धर्म, अर्थ तथा कामका साधक है। इस व्रतको पक्षी, सप्तमी, संक्रान्ति या रुक्मिवारके दिन करना चाहिये। भगवान् सूर्यके सहित उनकी पत्नी महादेवी निक्षुभाक्षी द्यौ-रूपमें वस्त्र, रजत तथा स्वर्णकी सुन्दर प्रतिमा बनवाये। उसे घृतादिसे स्नान कराकर गन्ध-माल्यादि तथा वस्त्रोंसे अलंकृत करे। अन्तर प्रतिमा स्थापित किये उस वितान और छत्रसे शीर्षित पादोंको सिरपर रखकर भगवान् सूर्यके मन्दिरमें ले जाय। उस प्रतिमाको एक वेदीपर स्थापित करे और प्रदक्षिणापूर्वक उसे नमस्कार कर क्षमा-याचना करे एवं उपवास रहकर हॉविके द्वारा हवन करे। फिर सूर्य-भक्त ब्राह्मणोंको शूद्र वस्त्र पहनाकर भोजन कराये। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति देदीप्यमान महायानसे सूर्यलोकमें सूर्यभक्तोंके साथ आनन्द प्राप्त करता है, फिर वह अनन्त वर्षोंतक विष्णुलोकमें आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! जो स्त्री सौभाग्यकी

आकाङ्क्षासे संयतोन्मिद होकर पक्षी अथवा सप्तमीको एक वर्षतक भोजन नहीं करती और वर्षके अन्तमें निक्षुभा तथा सूर्यकी प्रतिमा बनाकर विधिपूर्वक स्नानादि पूर्वोक्त क्रियाएँ करती है, वह पूर्वोक्त फलोंको प्राप्त करती है तथा चारों द्वारोंसे सुरक्षित स्वर्णमय यानके द्वारा रमणीय सूर्यलोकमें जाकर सभी फलोंको प्राप्त कर सौ अरब सभी लोकोंमें अभीप्सित फलका उपभोग कर इस लोकमें जन्म ग्रहण करती है तथा राजाको पतिकार्यमें प्राप्त करती है।

इसी प्रकार जो नारी कृष्ण पक्षकी सप्तमीको उपवास कर वर्षके अन्तमें शालिके चूर्णसे सुन्दर निक्षुभार्ककी प्रतिमाका निर्माण करके पीत रंगकी मालसे और पीत वस्त्रोंसे उनकी पूजा करती है तथा ये सभी कर्म सूर्यको निवेदित करती है, वह ह्यथी-दाँतके समान कान्तिवाले महायानसे सातों लोकोंमें गमनकर, सौ करोड़ वर्षतक सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होती है। नरेश्वर ! सौ अरब लोकोंमें भोगोंका उपभोगकर क्रमशः इस लोकमें जन्म ग्रहण करती तथा अभीप्सित धन-धान्य-समन्वित मनोऽनुकूल पतिको प्राप्त करती है<sup>१</sup>।

जो दृढ़व्रती नारी माघ मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको



सभी भोगोंका परित्याग कर एक वर्षतक प्रत्येक सप्तम्यको उपवास करती और वर्षके अन्तमें गन्धादि पदार्थ निक्षुभार्कको निवेदित करती है तथा मण्डी स्त्रियोंको भोजन कराती है, वह गन्धर्वसे सुशोभित विचित्र दिव्य महायानद्वारा सूर्यलोकमें जाकर अनेक सहस्र वर्षोंतक निवास करती है। वहाँ यथेष्ट सभी भोगोंका उपभोग कर इस लोकमें आनेपर राजाको पति-रूपमें वरण करती है।

राजन् ! जो स्त्री पाप और भयका नाश करनेवाले इस

निक्षुभार्क-व्रतको करती है, वह परमपद प्राप्त करती है। एक वर्षतक परम श्रद्धाके साथ इस व्रतको सम्पन्न कर वर्षान्तमें भोजक-दम्पतिको भोजन कराये और गन्ध-माल्य, सुन्दर वस्त्र आदिसे उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् पात्रमें हरिसे अलंकृत निक्षुभार्ककी सुवर्णमयी प्रतिमा भोजक-दम्पतिको निवेदित करे। देवी निक्षुभा भोजकी हैं और अर्क भोजक हैं। अतः उन दोनोंको विधिवत् श्रद्धापूर्वक पूजा करनी चाहिये।

(अध्याय १६६-१६७)

### कामप्रद स्त्री-व्रतका वर्णन

**सुपन्तु मुनि बोले—**राजन् ! जो स्त्री कार्तिक मासके दोनों पक्षोंकी पक्षी एवं सप्तमी तिथियोंमें क्षमा, अहिंसा आदि नियमोंका पालन कर, संयतेन्द्रिय होती हुई एकभुक्त रहती एवं उपवास करती है और गुड़-घीसे युक्त शालि-अन्न श्रद्धाके साथ भगवान् सूर्यको अर्पित करती है तथा करकोरके पुष्प और घृतके साथ गुग्गुलु निवेदित करती है, वह स्त्री इन्द्रनीलके समान सार्वकालिक विमानपर बैठकर दस स्थल वर्षोंतक सूर्यलोकमें आनन्दमय जीवन व्यतीत करती है। सभी लोकोंके भोगोंको भोगकर क्रमशः इस लोकमें आकर जन्म ग्रहण करती तथा अभीप्सित पतिको प्राप्त करती है। इस प्रकार वर्षभरके सभी व्रतोंकी विधि समान कही गयी है। एक समय भोजन

और उपवासका समान ही फल होता है। क्षमा, सत्य, दया, दान, ईश्वर, इन्द्रियनिग्रह, सूर्यपूजा, अग्नि-हवन, संतोष तथा अर्घ्योद्वेष्ट—ये दस सभी व्रतोंके लिये सामान्य (आवश्यक) धर्म (अङ्ग) हैं।

इसी तरह मार्गशीर्ष आदि मासोंमें निर्दिष्ट नियमोंका पालन करते हुए सूर्यकी पूजा करनेसे अभ्युदयकी प्राप्ति होती है, साथ ही सहस्रों वर्षोंतक सूर्यलोकका सुख भोगकर वह नारी अन्तमें राजपत्नी बनती है।

जो कोई भी पुरुष या स्त्री अथवा नपुंसक भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यको उपासना करते हैं वे सभी अपने मनोज्ञकूल फल प्राप्त करते हैं। (अध्याय १६८)

### भगवान् सूर्यके निमित्त गृह एवं रथ आदिके दानका माहात्म्य

**सुपन्तु मुनि बोले—**राजन् ! अपने कितने अनुसार मिट्टी, लकड़ी, पत्थर तथा पत्ते हुए ईंटोंसे जो मठ या गृहका निर्माण कर उसे सभी उपकरणोंसे युक्त करके भगवान् सूर्यके लिये समर्पित करता है वह सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। माघ मासमें तन्द्राहिन्त होकर एक-भुक्तव्रत करे और मासके अन्तमें एक रथका निर्माण करे जो विचित्र वस्त्रसे सुशोभित, चार श्वेत अश्वोंसे अलंकृत, श्वेत ध्वज, पताका एवं छत्र, चामर, दर्पणसे युक्त हो। उस रथपर छाई सेर चावलके चूर्णसे सूर्यकी प्रतिमाका निर्माण कर उसे संज्ञा देवीके साथ

रथके पिछले भागमें (जहाँ रथी बैठता है) स्थापित कर शङ्ख, भेरी आदि ध्वनियोंके साथ रात्रिमें राजमार्गमें उस रथको घुमाकर क्रमशः धीरे-धीरे सूर्य-मन्दिरमें ले जाय। वहाँ जागरण एवं पूजा करे तथा दीपक एवं दर्पण आदिसे अलंकृत कर रात्रि व्यतीत करे। प्रातः मधु, क्षीर और घृतसे उस प्रतिमाको स्नान कराकर दोन, अन्ध एवं अनाथोंको अपनी शक्तिके अनुसार भोजन कराकर दक्षिणा दे और संवाहनसे युक्त रथ भगवान् धास्करको निवेदित करे तथा अपने बन्धुओंके साथ भोजन करे।

पवित्रपुराणमें पाठका मुक्त अंश कम है, जिसे हेमदिके अध्यायमें यहाँ दिया जा रहा है—

जो नारी एक वर्षतक संयतेन्द्रिय होकर सप्तमीको निग्राह व्रत रखती है और जिसकी कर्णिका सूर्यकी हो ऐसे चाँदीके कमलको, पिष्टमय गजका निर्माणकर उसकी पीठपर स्थापित कर वर्षान्तमें उसका दान करती है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। दोष पूजन पूर्वक विधिसे ही करना चाहिये। इससे वह पुरुषरूपसे सभी सौगादि लोकोंमें भ्रमण करते हुए पृथ्वीलोकमें आकर कुल्लेन तथा रूपसम्पन्न महाकली राजाको पतिरूपमें प्राप्त करती है।

मन्त्र और धर्मसे समन्वित अपने सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ यह सूर्यरथ-व्रत समस्त कामनाओं तथा अर्थकी सिद्धि करनेवाला है। सभी व्रतोंके पुण्य और सभी यज्ञोंके फल इसी व्रतके

करनेसे प्राप्त हो जाते हैं। जो भगवान् सूर्यके निमित्त एक सबत्स गौ दान करता है, वह सप्तद्वीपवती वसुन्धराके दानका फल प्राप्त करता है। (अध्याय १६९-१७०)

### सौरधर्ममें सदाचरणका वर्णन

**सुमन्तु मुनि बोले—**एजन् ! अब मैं सौरधर्मसे सम्बद्ध सदाचारोंका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ। सूर्य-उपासकको भूखे-प्यासे, दीन-दुःखी, धके हुए, मलिन तथा ऐंगी व्यक्तिका अपनी शक्तिके अनुसार पालन और रक्षण करना चाहिये, इससे सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। पतित, नीच तथा चाण्डाल और पक्षी आदि सभी प्राणियोंको अपनी शक्तिके अनुसार दी गयी थोड़ी भी वस्तु करुणाले करुण दिले जानेसे अक्षय-फल प्रदान करती है, अतः सभी प्राणियोंपर दया करनी चाहिये। जो मधुर वाणी बोलता है, उसे इस लोक तथा परलोकमें सभी सुख प्राप्त होते हैं। अमृत प्रवर्धित करनेवाली प्रिय वाणी चन्दनके स्पर्शके समान शीतल होती है। धर्मसे युक्त वाणी बोलनेवालेको अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है।<sup>१</sup> प्रिय वाणी स्वर्गका अचल मोक्षान है, इसकी तुलनामें दान, पूजन, अभ्यापन आदि सब व्यर्थ हैं। अतिथियोंके अनेक स्तर उससे कुशल-प्रश्न करना चाहिये और यात्राके समय 'आपका मार्ग मङ्गलमय हो, आपको सभी कार्यके साधक सुख नित्य प्राप्त हों'—ऐसा कहना चाहिये। सभी समय ऐसे आशीर्वादवाचक वचन बोलने चाहिये। नमस्कारात्मक वाक्योंमें 'स्वस्ति', मङ्गल-वचन तथा सभी कर्मोंमें 'आपका नित्य कल्याण हो', ऐसा कहना चाहिये। इस प्रकारके आचरणोंका अनुष्ठान करके व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। मनुष्योंको वैसी भक्ति भगवान् सूर्यमें हो वैसी ही भक्ति सूर्यभक्तोंके प्रति भी रखनी चाहिये। किसीके द्वारा आश्वेश करने या ताड़ित होनेपर जो न आश्वेश करता है, न ताड़न करता है, वाणीमें अधिकार होनेके कारण ऐसा क्षमाशील एवं शान्त व्यक्ति सदा दुःखसे रहित होता है। सभी तीर्थोंमें क्षमा

सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये सभी क्रियाओंमें क्षमा धारण करना चाहिये। ज्ञान, योग, तप एवं यज्ञ-दानादि सत्क्रियाएँ क्रोधी व्यक्तिके लिये व्यर्थ हो जाती हैं, इसलिये क्रोधका परित्याग कर देना चाहिये<sup>२</sup>। अग्नि वाणी मर्म, अस्थि, प्राण तथा इन्द्रियको जलनेवाली होती है, इसलिये अग्नि वाणीका कभी प्रयोग नहीं करना चाहिये। क्षमा, दान, तेजस्विता, सत्य, शम, अहिंस—ये सब भगवान् सूर्यकी कृपासे ही प्राप्त होते हैं।

**सुमन्तु मुनि पुनः बोले—**महाराज ! अब आप आदिशसम्मत सौर-धर्मकी पुनः सुने। यह सौर-धर्म पाप-नाशक, भगवान् सूर्यको प्रिय तथा परम पवित्र है। यदि मार्गमें कहीं रिककी पूजा-अर्चा होती देखे तो यह समझना चाहिये कि वहाँ भगवान् सूर्यदेव स्वयं प्रत्यक्ष उपस्थित हैं। भगवान् सूर्यका मन्दिर देखकर वहाँ भगवान् सूर्यको नमस्कार करके ही वहाँसे आगे जाना चाहिये। देव-पर्व, उत्सव, श्राद्ध तथा पुण्य दिनोंमें विधिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। देवगण तथा पितृगण सूर्यका आश्रयण करके ही स्थित हैं। भगवान् सूर्यके प्रसन्न होनेपर निःसंदेह सभी प्रसन्न हो जाते हैं। सौर-धर्मके अनुष्ठानसे ज्ञान प्राप्त होता है तथा उससे वैराग्य। ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न व्यक्तिकी सूर्ययोगमें प्रवृत्ति होती है। सूर्यके योगसे वह सर्वज्ञ एवं परिपूर्ण हो जाता है तथा अपनी आत्मा में अजन्मिता होकर सूर्यके समान स्वर्गमें अनन्द-लाभ करता है।

ब्रह्मचर्य, तप, मौन, क्षमा तथा अल्पाहार—ये तपस्वियोंके पाँच विशिष्ट गुण हैं। भोग्य या अन्य विशिष्ट मार्गसे तथा न्यायपूर्वक प्राप्त धन गुणवान् व्यक्तिको देना ही दान है। हजारों सस्य-राशियोंको उत्पन्न करनेवाली जल-युक्त उर्वरा भूमिका दान भूमिदान कहा जाता है। सभी दोषोंसे रहित,

१-न हीदृक् सर्वाध्याय यथा लोकं प्रियं वक् । इहामुत्र सुखं तेषां कल्पेच्च मधुरा भवेत् ॥

अमृतसन्दिनी कावे चन्दनस्पर्शशीतलम् । धर्मविशेषितोपुक्तञ्च सुखमक्षयमाप्नुयात् ॥ (ब्राह्मण १७१ । ३८-३९)

२-सर्वेषामेव तीर्थानां क्षान्तिः परमपूजित । तस्मात्पूर्वं प्रयत्नेन क्षान्तिः कर्तव्यं क्रियामु वै ॥

ज्ञानयोगतपो यस्य यज्ञदानानि सत्क्रिया । क्रोधमनस्य युक्ता यस्यात् तस्यान् क्रोधे निवर्तयेत् ॥ (ब्राह्मण १७१ । ४०-४८)

कुलीन, अलंकृता कन्या निर्घन विद्वान् द्विजको देना कन्यादान कहा जाता है। मध्यम या उत्तम नवीन वस्त्रका दान वस्त्रदान कहा जाता है। एक मासमें दो सौ चालीस घासोंका<sup>१</sup> भक्षण करना चान्द्रायण<sup>२</sup>-व्रत कहलाता है। सभी शास्त्रोंके ज्ञाता तथा तपस्यापरायण जितेन्द्रिय ऋषियों एवं देवोंसे सेवित जल-स्थान तीर्थ कहा जाता है। सूर्यसम्बन्धी स्थानोंको पुण्य-क्षेत्र कहा जाता है। उन सूर्यसम्बन्धी क्षेत्रोंमें मरनेवाला व्यक्ति सूर्य-सायुज्यको प्राप्त करता है। तीर्थोंमें दान-देनेसे, उद्यान लगाने एवं देवालय, धर्मशाला आदि बनवानेसे अक्षय फल प्राप्त होता

है। क्षमा एवं निःस्पृहता, दया, सत्य, दान, शील, तप तथा अध्ययन—इन आठ अङ्गोंसे युक्त व्यक्ति श्रेष्ठ पात्र कहा जाता है। भगवान् सूर्यमें भक्ति, क्षमा, सत्य, दसों इन्द्रियोंका विनियम तथा सभीके प्रति मैत्रीभाव रखना सौर-धर्म है।

जो भक्तिपूर्वक भविष्यपुराण लिखता है, वह सौ कोटि युग वर्षोंतक सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो सूर्यमन्दिरका निर्माण करवाता है, उसे उत्तम स्थानकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय १७१-१७२)

## सौर-धर्मकी महिमाका वर्णन, ब्रह्माकृत

### सूर्य-स्तुति

राजा शतानीकने कहा—ब्राह्मणश्रेष्ठ ! आप सौर-धर्मका पुनः विस्तारसे वर्णन कीजिये।

सुमन्तु मुनि बोले—महाबाहो ! तुम धन्य हो, इस लोकमें सौर-धर्मका प्रेमी तुम्हारे समान अन्य कोई भी राजा नहीं है। इस सम्बन्धमें मैं आपको प्राचीन कालमें गुरु एवं ऋषण्णके बीच हुए संवादको पुनः प्रस्तुत कर रहा हूँ। आप इसे ध्यानपूर्वक सुनें।

अरुणने कहा—सगश्रेष्ठ ! यह सौर-धर्म अज्ञान-सागरमें निमग्न समस्त प्राणियोंका उद्धार करनेवाला है। पक्षिराज ! जो लोग भक्तिभावसे भगवान् सूर्यका स्मरण-कीर्तन और भजन करते हैं, वे परमपदको प्राप्त होते हैं। सगताधिप ! जिसने इस लोकमें जन्म ग्रहणकर इन देवेश भगवान् भास्करकी उपासना नहीं की, वह संसारके जेष्ठमें ही निमग्न रहता है। मनुष्य-जीवन परम दुर्लभ है, इसे प्राप्त कर जिसने भगवान् सूर्यका पूजन किया, उसीका जन्म लेना सरल है। जो ब्रह्म-भक्तिसे भगवान् सूर्यका स्मरण करता है, वह कभी किसी प्रकारके दुःखका भागी नहीं होता।

जिन्हें महान् भोगोंके सुख-प्राप्तिकी कामना है तथा जो

उपासना पाना चाहते हैं अथवा स्वर्गीय सौभाग्य-प्राप्तिके इच्छुक हैं एवं जिन्हें अतुल कान्ति, भोग, त्याग, यश, श्री, सौन्दर्य, जगत्की स्थिति, कीर्ति और धर्म आदिकी अभिलाषा है, उन्हें सूर्यकी भक्ति करनी चाहिये।

जो परम ब्रह्म-भावसे भगवान् सूर्यकी आराधना करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। विविध आकारवाली डाईकीर्तियाँ, पिशाच और राक्षस अथवा कोई भी उसे कुछ भी पीड़ा नहीं दे सकते। इनके अतिरिक्त कोई भी जीव उसे नहीं सता सकते। सूर्यकी उपासना करनेवाले मनुष्यके शत्रुगण नष्ट हो जाते हैं और उनके संग्राममें विजय प्राप्त होती है। वीर ! यह नीतिग होता है। आपत्तियों उसका स्पर्शतक नहीं कर पातीं। सूर्योपासक मनुष्यकी धन, आयु, यश, विद्या और सभी प्रकारके कल्याण-पङ्क्तियोंकी अभिवृद्धि होती रहती है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

ब्रह्मज्येने भगवान् सूर्यकी आराधना कर ब्राह्म-पदकी प्राप्ति की थी। देवोंके ईश भगवान् विष्णुने विष्णुत्व-पदको सूर्यके अर्चनसे ही प्राप्त किया है। भगवान् शंकर भी भगवान् सूर्यकी आराधनासे ही जगन्नाथ कहे जाते हैं तथा उनके

१-शुक्र पक्षमें प्रतिदिन एक-एक घासकी कुट्टि तथा कृष्ण पक्षमें एक-एक घासकी नूनलाके नियमकर पालन करनेसे दो सौ चालीस घास एक मासमें होते हैं।

२-चान्द्रायणके मुख्य तीन भेद हैं—यव-मध्य, निर्वैलिका-मध्य और शिशु-चान्द्रायण। यव-मध्यमें शुक्र पक्षकी प्रतिपदासे अक्षरम्भ कर पूर्णिमाको पंद्रह घाससे लेकर क्रमशः घटाते हुए अमवास्याको समाप्त कर दिया जाता है। निर्वैलिकामें पूर्णिमाको प्रारम्भ कर कृष्ण पक्षमें क्रमशः एक-एक घास घटाते हुए अमवास्याको उपवास कर फिर पूर्णिमाको पूरा किया जाता है और शिशु या सामान्य चान्द्रायणमें प्रतिदिन आठ घास लिया जाता है। इस प्रकार तीस दिनोंमें दो सौ चालीस घास हो जाते हैं।

प्रसादसे ही उन्हें महादेवत्व-पद प्राप्त हुआ है एवं उनकी ही आराधनासे एक सहस्र नेत्रोवाले इन्द्रने भी इन्द्रत्वको प्राप्त किया है। मातृवर्ग, देवगण, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस और सभी सुरोंके नायक भगवान् सूर्यकी सदा पूजा किया करते हैं। यह समस्त जगत् भगवान् सूर्यमें ही नित्य प्रतिष्ठित है। जो मनुष्य अन्धकारनाशक भगवान् सूर्यकी पूजा नहीं करता, वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अधिकारी नहीं है। पक्षिश्रेष्ठ ! आपतिवस्त होनेपर भी भगवान् सूर्यको पूजा सदा करणीय है। जो मनुष्य भगवान् सूर्यको पूजा नहीं करता, उसका जीवन व्यर्थ है। प्रत्येक व्यक्तिको देवाभितेय भगवान् सूर्यकी पूजा-उपासना करके ही भोजन करना चाहिये। जो सूर्यभक्त हैं, वे समस्त इन्द्रोंके सहन करनेवाले, वीर, नीति-विधि-युक्तचित्त, परोपकारपरायण तथा गुरुको सख्तमें अनुरक्त रहते हैं। वे अमानी, बुद्धिमान्, असक्त, अस्पर्धावाले, त्रिःस्पृह, ज्ञान, स्वास्थानन्द, भद्र और नित्य स्वागतवादी होते हैं। सूर्यभक्त अल्पभाषी, शूर, शास्त्रमर्मज्ञ, प्रसन्नमनस्क, शौचाचारसम्पन्न और दाक्षिण्ययुक्त होते हैं।

सूर्यके भक्त दम्भ, मासरता, तुष्णा एवं लोभसे वर्जित हुआ करते हैं। वे शठ और कुत्सित नहीं होते। जिस प्रकार कमलका पत्र जलसे निर्लिप्त रहता है, उसी प्रकार सूर्यभक्त मनुष्य विषयोंमें कभी लिप्त नहीं होते। जबतक इन्द्रियोंकी

शक्ति क्षीण नहीं होती, तबतक भगवान् सूर्यकी आराधना सम्पन्न कर लेनी चाहिये; क्योंकि मानव असमर्थ होनेपर इसे नहीं कर सकता और यह मानव-जीवन यों ही व्यर्थ चल रहा है। भगवान् सूर्यकी पूजाके सम्मान इस जगत्में अन्य कोई भी धर्मका कार्य नहीं है। अतः देवदेवेश भगवान् सूर्यका पूजन करे। जो मानव भक्तिपूर्वक ज्ञान, अज्ञ, प्रभु, देवदेवेश सूर्यको पूजा किया करते हैं, वे इस लोकमें सुख प्राप्त करके परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। सर्वप्रथम ब्रह्माजीने अपने परम प्रहृष्ट अन्तरात्मासे भगवान् सूर्यकी पूजा कर अर्जुनलि बांध कर जो स्तोत्र<sup>१</sup> कहा था, उसका भाव इस प्रकार है—

‘प्रदक्षर्ष्यसम्पन्न, ज्ञान-चित्तसे युक्त, देवोंके मार्ग-प्रणेता एवं सर्वश्रेष्ठ श्रीभगवान् सूर्यको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जो देवदेवेश शाश्वत, शोभन, शुद्ध, दिव्यस्मृति, चित्रभानु, दिवाकर और ईश्वर भी ईश हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। समस्त दुःखोंके हर्ता, प्रसन्नवदन, उत्तमाङ्ग, वरके स्थान, वर-प्रदाता, खट तथा खरेण्य भगवान् विभावसुको मैं प्रणाम करता हूँ। अर्क, अर्धमा, इन्द्र, विष्णु, ईश, दिवाकर, देवेधर, देवरात और विभावसु नामधारी भगवान् सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ।’  
इस स्तुतिका जो नित्य श्रवण करता है, वह परम कीर्तिको प्राप्तकर सूर्यलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १७३-१७४)

### सौर-धर्ममें शान्तिक कर्म एवं अभिवेक-विधि

**गरुडजीने पूछा—**अरुण ! जो आधि-व्यथिसे पीड़ित एवं रोगी, दुष्ट ग्रह तथा शत्रु आदिसे उत्पीड़ित और निरापकसे गृहीत है, उन्हें अपने कल्याणके लिये क्या करना चाहिये ? आप इसे बतलानेकी कृपा करें।

**अरुणजी बोले—**विविध रोगोंसे पीड़ित, शत्रुओंसे संतप्त व्यक्तियोंके लिये भगवान् सूर्यकी आराधनाके आतिरेक अन्य कोई भी कल्याणकारी उपाय नहीं है, अतः प्रहृष्टचित्त

और उत्प्रेक्षितके नाशक, सभी रोगों एवं राज-उपद्रवोंको शमन करनेवाले भगवान् सूर्यकी आराधना करनी चाहिये।

**गरुडजीने पूछा—**द्विजश्रेष्ठ ! ब्रह्मवादिनीके शापसे मैं पराविहीन हो गया हूँ, आप मेरे इन अङ्गोंको देखें। मेरे लिये अब कौन-सा कार्य उपयुक्त है ? जिससे मैं पुनः पल्लव्युक्त हो जाऊँ।

**अरुणजी बोले—**गरुड ! तुम शुद्ध-चित्तसे अन्धकारको

१-भगवान् भगकरे ज्ञानचित्तमनुसृतम् । देवमर्गप्रणेतात् प्रणतोऽस्मि त्वं सदा ॥

शाश्वत शोभन शुद्ध चित्रभानु दिव्यस्मृतिम् । देवदेवेशख्येदेशे प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥

सर्वदुःखहरे देवं सर्वदुःखहरे त्विम् । वरान्वये वरद्विषये वरस्थाने वरप्रदम् ॥

खरेण्ये वरदं नित्यं प्रणतोऽस्मि विभावसुम् । अर्कमर्धमण्य वेन्द्रं विष्णुविंशं दिवाकरम् ॥

देवेधरं देवरातं प्रणतोऽस्मि विभावसुम् । य इदं मनुष्यैर्विद्वं ब्रह्मलोकं सत्यं परम् ॥

रा दि कीर्तिं परा प्राप्य पुनः सूर्यपुं ब्रजेत् ॥



दूर करनेवाले जगन्नाथ भगवान् भास्करकी पूजा एवं हवन करो ।

**गरुडजीने कहा—**मैं विकलङ्ग होनेसे भगवान् सूर्यकी पूजा एवं अग्निकार्य करनेमें असमर्थ हूँ । इसलिये मेरी शान्तिके लिये अग्निका कार्य आप सम्पादित करें ।

**अरुणजी बोले—**विनतानन्दन । महाव्याधिसे प्रपण्डित होनेके कारण तुम इसके सम्पादनमें समर्थ नहीं हो, अतः मैं तुम्हारे रोगकी शान्तिके लिये पावकार्चन (अग्निहोम) करूँगा । यह लक्ष-होम सभी प्राणों, विष्टों तथा व्याधिघोका नाशक, महापुण्यजनक, शान्ति प्रदान करनेवाला, अपमृत्यु-निवारक, महान् शुभकारी तथा विजय प्रदान करनेवाला है । यह सभी देवोंकी तुष्टि प्रदान करनेवाला तथा भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय है ।

इस पावकार्चनमें सूर्य-मन्दिरके अग्निकोणमें गोमयसे भूमिको स्तूपकर अग्निकी स्थापना करे और सर्वप्रथम दिक्पालके आहुति प्रदान करे<sup>१</sup> ।

**सगश्रेष्ठ !** इस प्रकार विधिपूर्वक आहुतियाँ प्रदान करनेके अनन्तर 'ॐ भूर्भुवः स्वाहा' इसके द्वारा लक्ष हवनका सम्पादन करे । सौर-महाहोममें यही विधि कही गयी है । भगवान् भास्करके उद्देश्यसे इस अग्निकार्यको करे । यह सभी त्रेकैकी सभी प्रकारकी शान्तिके लिये उपयोगी है ।

हवनके अनन्तर शान्तिके लिये निर्दिष्ट मन्त्रोंका पाठ करते हुए अधिभेक करना चाहिये । सर्वप्रथम ग्रहोंके अधिपति भगवान् सूर्य तथा सोमादि ग्रहोंसे शान्तिकी प्रार्थना करे<sup>२</sup> ।

<sup>१</sup>रक्त कमलके सम्मान नेत्रोवाले, सहस्रकिरणोवाले, सात

१- अरुणदेहकपाय रक्तकाय महात्मने । भगधराय शङ्खाय सहस्रार्धराय य ॥

'अधोमुखाय श्रेताय स्वाहा'—इससे प्रथम आहुति दे ।

चतुर्मुखाय शङ्खाय पद्मसगराय य ॥ यदधर्माय तेष्वयं कर्मण्यनुभूतय य ।

'ऊर्ध्वमुखाय स्वाहा'—इससे द्वितीय आहुति दे ।

हेमवर्णाय देहाय ऐश्वर्याय य । सहस्रशरीरय पूर्वदिश्यमुखाय य ॥  
देवधियाय वेदत्राय निवृत्ताय शुभाय य ।

'पूर्ववदन्तय स्वाहा'—इससे तृतीय आहुति दे ।

दीप्ताय व्यावदेहाय ज्वालयमाताकुलाय य । इन्द्रकेलाभदेहाय सर्वोदयकाय य ॥  
कर्मय धर्मरत्नाय दक्षिणाग्रमुखाय य ।

'कुष्माण्धरधराय स्वाहा'—इससे चौथी आहुति दे ।

भीमजीमुखर्णाय रक्तकंधराय य । मुखकलशरीरय दिव्यकाय महात्मने ॥  
शुक्लकाय पीताय दिव्यरात्राय य ।

'वैश्वामित्रमुखाय स्वाहा'—इससे पाँचवीं आहुति दे ।

कुष्माण्डिलनेत्राय वायव्याभिमुखाय य । नीलधराय तीराय तथा वेदत्राय वेधसे ॥

'स्वनाय स्वाहा'—इस मन्त्रसे छठी आहुति दे ।

गदाहस्ताय सूर्याय विजयभूषणाय य ॥ महोदराय शङ्खाय स्वाहाधिपतये तथा ।

'उत्तराभिमुखाय महादेवप्रियाय स्वाहा'—इससे सातवीं आहुति दे ।

श्रेताय क्षेत्रधर्माय पित्रकाय महात्मने । शङ्खाय शङ्खकाय निवृत्तधरारिणे ॥

'ईशानाभिमुखायेतय स्वाहा'—इससे आठवीं आहुति दे ।

(ब्राह्मण्यर्प १७५। १८—३२)

[ यह दश दिक्पाल-होम प्रतीत होता है, किन्तु पाठकी गड़बड़से आगेय तथा वैश्वामित्रकी आहुतियोंका स्वरूप अस्पष्ट है ]

२- शान्त्यर्थं सर्वलोकां ततः शान्तिकर्माधरेत् । सिन्दूरसक्तपत्रः रक्तपद्मभलोचनः ॥

सहस्रकिरणो देवः सप्तश्रवकाहनः । गण्डिमालो भगवान् सर्वविघ्नमस्कृतः ॥

करोतु ते महाशान्तिं परपीडानिवर्तिणाम् । त्रिकलायककण्ड अयं सारमयं तु यः ॥

दशधन्वाहनो देवः आनेषक्षामृतस्यः । शीतोदुग्धमूकका यः क्षणवृद्धिस्मर्यितः ।

सोमः सौम्येन भासेन प्रणीतो ज्योतेरनु ॥

पद्मरागिनिषो भीमो मधुसूक्तलोचनः । अङ्गारकोऽग्निस्सुहो गृहपीडो व्यपीडतु ॥

पुष्परागिनिधेनेह रोहेन परिनिहृतः । पीतमात्र्यन्मरुतो नृपः पीडो व्यपीडतु ॥

अक्षोसे युक्त रथपर आरुढ, सिन्दूरके समान रक्त आभावाले, सभी देवताओंद्वारा नमस्कृत भगवान् सूर्य ग्रहपीडा निवारण करनेवाली महाशान्ति आपको प्रदान करे । शीतल किरणोंसे युक्त, अमृतात्मा, अत्रिके पुत्र चन्द्रदेव सौन्दर्यभावसे आपकी ग्रहपीडा दूर करे । पद्मरागके समान वर्णवाले, मधुके समान पिङ्गल नेत्रवाले, अग्निसदृश अङ्गारक, धूमिपुत्र भीम आपकी ग्रहपीडा दूर करे । पुष्परागके समान आभायुक्त, पिङ्गल वर्णवाले, पीत माल्य तथा वस्त्र धारण करनेवाले बुध आपकी पीडा दूर करे । ताम्र स्वर्णके समान आभायुक्त, सर्वशस्त्र-विशारद, देवताओंके गुह्य बृहस्पति आपकी ग्रहपीडा दूर कर आपको शान्ति प्रदान करे । हिम, कुन्दपुष्प तथा चन्द्रमाके समान स्वच्छ वर्णवाले, दैत्य तथा दानवोंसे पूजित, सूर्योर्वनमें तत्पर रहनेवाले, महापति, नीतिशास्त्रमें पारङ्गत शुक्रस्वर्ण आपकी ग्रहपीडा दूर करे । विविध रूपोंको धारण करनेवाले, अविज्ञात-गति-युक्त, सूर्यपुत्र शनैश्चर, अनेक शिखरोंवाले केतु एवं राहु आपकी पीडा दूर करे । सर्वोद कल्याणकी दृष्टिसे देखनेवाले तथा भगवान् सूर्यकी नित्य अर्चना करनेमें तत्पर ये

सभी ग्रह प्रसन्न होकर आपको शान्ति प्रदान करें ।'

तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—इन त्रिदेवोंसे इस प्रकार शान्तिकी प्रार्थना करे—

'पद्मासनपर आसीन, पद्मवर्ण, पद्मपत्रके समान नेत्रवाले, कमण्डलुधारी, देव-गन्धर्वोंसे पूजित, देवशिरोमणि, महातेजस्वी, सभी लोकोंके स्वामी, सूर्योर्वनमें तत्पर चतुर्भुज, दिव्य ब्रह्म शब्दसे सुशोभित ब्रह्माजी आपको शान्ति प्रदान करें । पीताम्बर धारण करनेवाले, शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करनेवाले चतुर्भुज, इयामवर्णवाले, यज्ञस्वरूप, आग्नेयोंके पति तथा सूर्यके ध्यानमें तल्लीन माधव मधुसूदन विष्णु आपको नित्य शान्ति प्रदान करें । चन्द्रमा एवं कुन्दपुष्पके समान उज्ज्वल वर्णवाले, सर्पादि विशिष्ट आभरणोंसे अलंकृत, महातेजस्वी, मलाकापर अर्धचन्द्र धारण करनेवाले, समस्त विश्वमें व्याप्त, प्रमदज्ञानमें रहनेवाले, दक्ष-यज्ञ विश्वसे करनेवाले, खरणीय, आदित्यके देहसे सम्भूत, खरदानी, देवाधिदेव तथा भस्म धारण करनेवाले महेश्वर आपको शान्ति प्रदान करें ।'

ताम्रैरिक्तसंस्तरः सर्वशस्त्रविशारदः । सर्वदेवगुरुर्विन्दे ह्यधर्षणाय मे मुनि ॥  
बृहस्पतिर्दितिः खगोल अर्धरात्र्यभरणः यः । स्वप्नेन वेत्तव्यं मेऽपि परेण मुसमर्षितः ॥  
ग्रहपीडा विनिर्विण्णं करोतु तव शान्तिकम् । सूर्योर्वनयो नित्यं प्रसन्नोऽप्यस्य स तु ॥  
हिमकुन्देन्दुवर्णधरो दैत्यदानवपूजितः । महेश्वरकाले शेषम् महावीरो महापतिः ॥  
सूर्योर्वनयो नित्यं शुक्रः शुक्रविभक्तः । नीतिशास्त्रपरो नित्यं प्रकीर्तो ज्योतिषतु ॥  
नानारूपधरोऽप्ययं अविज्ञातगतिश्च यः । केतुर्विन्दतेऽपि यव केतुर्विन्दतेऽपि ॥  
एकचूले द्विचूलश्च विदिष्यः पञ्चचूलकः । महावीरस्य स तु यन्मन्त्रेऽनुवि विपतः ॥  
सूर्यपुत्रोऽग्निपुत्रस्तु ब्रह्मविष्णुशिवममरः । अनेकशिखरः केतुः स ते पीडा व्यसेदनु ॥  
एते ग्रहा महापानः सूर्योर्वनराः सदा । शान्तिं कुर्वन्तु ते इहाः सदाकाले हितेक्षणः ॥

(ब्राह्मण १७५।३६—५०)

१-पद्मासनः पद्मवर्णः पद्मपत्रनिधेयः । कमण्डलुधरः श्रीमान् देवगन्धर्वपूजितः ॥  
चतुर्भुजो देवपतिः सूर्योर्वनराः सदा ।  
सुरज्येष्ठो महातेजः सर्वलोकप्रवासीः । ब्रह्मप्रन्देन दिव्येन ब्रह्म शान्तिं करोतु ते ॥  
पीताम्बरधरो देव आग्नेयिदमितः सदा । शङ्खचक्रगदाधरः इयामवर्णश्चतुर्भुजः ॥  
यज्ञदेहः क्रमो देव आग्नेयिदमितः सदा । शङ्खचक्रगदाधरनिर्विण्णधरो मधुसूदनः ॥  
सूर्यपत्न्यन्वितो नित्यं विगतिर्विगतप्रयः । सूर्योर्वनयो नित्यं विष्णुः शान्तिं करोतु ते ॥  
शिशुकुन्देन्दुसंस्तरो विभुशालीरहितः । चतुर्भुजो महातेजः पुष्पाङ्गकुन्दरोकरः ॥  
चतुर्भुजो भस्मधरः श्मशान्निधयः सदा । गोवर्गिर्विधनित्यवस्तव्यं च क्रतुदुष्कृतः ॥  
को वरेण्यो परतो देवदेवो महेश्वरः । आदित्यदेवसम्भूतः स ते शान्तिं करोतु वै ॥

(ब्राह्मण १७६।१—८)

तदनन्तर सभी मातृकाओंसे शान्तिके लिये प्रार्थना करे—

‘परागके समान आभावाली, अक्षमाल्य एवं कमण्डलु धारण करनेवाली, आदित्यकी आराधनामें तथा आश्लेषा देनेमें तत्पर, सौम्यवदनवाली ब्रह्माणी प्रसन्न होकर तुम्हें शान्ति प्रदान करें। हिम, कुन्द-पुष्प तथा चन्द्रमाके समान वर्णवाली, महावृषभपर आरुढ़, हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाली, आश्चर्यजनक आभरणोंसे विभूत, चतुर्भुजा, चतुर्वक्त्र तथा त्रिनेत्रधारिणी पापोंका नाश करनेवाली, वृषभध्वज शंकरकी अर्चनामें तत्पर, महाश्वेता नामसे विख्यात आदित्यवर्धिता इन्द्राणी आपको शान्ति प्रदान करें। सिन्दूरके समान अरुण विपद्वाली,

सभी अलंकारोंसे विभूषित, हाथमें शक्ति धारण करनेवाली, सूर्यकी अर्चनामें तत्पर, महान् पराक्रमशालिनी, वरदायिनी, मयूरवाहिनी देवी कौमारो आपको शान्ति प्रदान करें। गदा एवं चक्रको धारण करनेवाली, पीताम्बरधारिणी, सूर्यार्चनमें नित्य तत्पर रहनेवाली, असुरमर्दिनी, देवताओंके द्वारा पूजित चतुर्भुजा देवी वैष्णवी आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। ऐरावतपर आरुढ़, हाथमें चक्र धारण करनेवाली, महाबलशालिनी, सिद्ध-गन्धर्वोंसे सेवित, सभी अलंकारोंसे विभूषित, चित्र-विचित्र अरुणवर्णवाली, सर्वत्रलोचना देवी इन्द्राणी आपको शान्ति प्रदान करें। वराहके समान नवसिक्कवाली, श्रेष्ठ वराहपर आरुढ़, विकटा, दोल, चक्र तथा

१-परागप्रभा देवी चतुर्वदनपङ्कजाः अक्षमाल्यधारिण्यः कमण्डलुधरा शुभा ॥

ब्रह्मणी सौम्यवदन आदित्यवर्धना रताः शान्तिं करोतु तुभ्यं आश्लेषादपरा सदा ॥

महाश्वेति विख्याता आदित्यवर्धिता सदा हिमकुन्दपुष्पसूरा महावृषभधारिणी ॥

त्रिशूलहस्ताभराता विभूताभरणा सती चतुर्भुजा चतुर्वक्त्रा त्रिनेत्रा कपयिनी ॥

वृषभध्वजधराता इन्द्राणी शान्तिं करोतु ॥

मयूरवाहना देवी सिन्दूरप्रणयिनीः शक्तिप्रदा वराहया सर्वालंकारभूषिता ॥

सूर्यभक्ता महाशैवी सुखवीरवाता सदा कौमारो वरा देवी शान्तिं करोतु ते ॥

गदाचक्रधरा इत्यथ पीताम्बरधरा सदा चतुर्भुजा हि सा देवी वैष्णवी सुरपूजिता ॥

सूर्यार्चनपरा नित्यं सूर्यकण्ठप्रभाताः शान्तिं करोतु ते नित्यं सर्वोत्सृजिणी देवी ॥

ऐरावतगङ्गाकटा वराहसुता महाबलाः सर्वत्रलोचना देवी वर्णताः कर्तुं शक्ता ॥

सिद्धगन्धर्वसेविता सर्वालंकारभूषिता इन्द्राणी ते सदा देवी शान्तिं करोतु ते ॥

वराहधोणा विकटा वराहभारिणीः इत्यथकटाया सा देवी शङ्खचक्रगदाधरा ॥

तेजपतीति निमिषान् पूजयन्ती सदा शैव्यः कदाही वरा देवी तप शान्तिं करोतु वै ॥

अर्षिकेशा कटीसामा त्रिभीसा स्यादुपध्वजः कण्ठप्रदाना धेरा सङ्खचक्रगदा सती ॥

कण्ठप्रदायिनी कुरा सङ्खचक्रधारिणी अरुणा विष्णुनयना राजवर्मावर्णितता ॥

गोशुताभरणा देवी प्रेतसत्तानिबन्धिनीः शिवकण्ठेन धेरा शिवकण्ठप्रपङ्करी ॥

सामुद्रा चण्डकण्ठेन सदा शान्तिं करोतु ते ॥

चण्डमुखधरा देवी मुखदेहगता सती कण्ठप्रदायिनी कुरा सङ्खचक्रधारिणी ॥

अक्षराशामासो देवप्रसाधना स्नेहप्रदाः पूजनी मारुः सर्वालंकाराः पितृमाताः ॥

वृद्धाश्रयेषु पूज्यन्ते यान्ते देवो मनीषिभिः सन्ने प्रसादे सन्नादे इति सामुद्रास्तथा ॥

पितामही तु तत्पता वृद्धा या च पित्रमही इत्येतान् पितृमाताः शान्तिं ते पितृमाताः ॥

सर्वं मातृकादेव्यः समुद्रा अव्ययवयः जगद्व्याया प्रसिद्धकले क्षीरकण्ठा महेदयाः ॥

शान्तिं कुर्वन्तु ता नित्यमदित्यवर्धना रताः शान्तेन योगेन शन्यः शन्ये तप शान्तिं ॥

सर्वालंकारमुखेन गणैः च मुग्धवयः पीताम्बरप्रतिमौषधेन त्रिभक्त्येन शोभता ॥

रत्नप्रदितलकोपेता चन्द्रेक्षार्धधारिणी विष्णुभरपरा देवी सर्वभरणभूषिता ॥

वरा सौम्यरूपाणां शोभा गुणसुसम्पन्नाः पावनमात्रसेतुता उम्हा देवी कण्ठप्रदा ॥

साक्षतागल्य रूपेण शान्तेनमितोक्ताः शान्तिं करोतु ते प्रीति आदित्यवर्धने रताः ॥

गदा धारण करनेवाली, त्र्यम्बावदात्र, तेजस्विनी, प्रतिक्षण भगवान् सूर्यकी आराधना करनेवाली, वरदायिनी देवी चारही आपको शक्ति प्रदान करे ।

श्याम-कटि-प्रदेशवाली, मांसरहित कंकालस्वरूपिणी, कपाल-वदना, भयंकर तलवार, भंडा, सङ्क्रान्त और वरमुद्रा धारण करनेवाली, क्रूर, लाल-पीले नेत्रोंवाली, गजचर्मधारीणी, गोश्रुतधारणा, प्रेतस्थानमें निवास करनेवाली, देसमेंमें भयंकर परंतु शिवस्वरूपा, हाथमें चण्ड-मुण्डके कपाल धारण किये हुए तथा कपालकी माला पहने चन्द्ररूपिणी देवी चामुण्डा तुम्हें शक्ति प्रदान करे<sup>१</sup>—

आकाशमातृकार्यै, लोकमातृकार्यै तथा अन्य लोक-मातृकार्यै, भूतमातृकार्यै, अन्य पितृ-मातृकार्यै, वृद्धि-आदौमें जिनकी पूजा होती है वे पितृमातृकार्यै, माता, प्रमाता, वृद्धप्रमाता—ये मातृ-मातृकार्यै, शान्त चित्तसे आपको शक्ति प्रदान करें । ये सभी मातृकार्यै अपने हाथोंमें अव्युध धारण करती हैं और संसारको व्याप्त करके प्रतिष्ठित रहती हैं तथा भगवान् सूर्यकी आराधनामें तत्पर रहती हैं । सुन्दर अङ्ग-

असङ्गवाली तथा सुन्दर कटि-प्रदेशवाली, पीत एवं त्रयाम वर्णवाली, मिश्र आभावाली, तिलकसे सुशोभित ललाटवाली, अर्धचन्द्ररेखा धारण करनेवाली, सभी आभरणोंसे विभूषित, चित्र-विचित्र वस्त्र धारण करनेवाली, सभी स्त्रीस्वरूपोंमें गुण और सम्पत्तियोंके कारण सर्वश्रेष्ठ शोभावाली, आदित्यकी आराधनामें तत्पर, केवल भावनामात्रसे संतुष्ट होनेवाली वरदायिनी भगवती उमादेवी अपने अर्पित तेजस्वी एवं शान्त-रूपसे प्रत्यक्ष प्रकट होकर प्रसन्न हो आपको शक्ति प्रदान करें ।

अनन्तर कर्तिकेय, नन्दीश्वर, विनायक, भगवान् शंकर, जगन्माता, पार्वती, चण्डेश्वर, ऐन्द्री आदि दिशाएँ, दिग्गजोंके अधिपति, लोकपालोंकी नगरियाँ, सभी देवता, देवी सरस्वती तथा भगवती अपराजितासे इस प्रकार शक्तिकी श्रवणा करे<sup>२</sup>—

सङ्क्रान्त धारण किये हुए, शक्तिसे युक्त, भगुरवाहन, कृत्तिका और भगवान् रुद्रसे उद्भूत, समस्त देवताओंसे अर्पित तथा आदित्यसे घर-घात भगवान् कर्तिकेय अपने तेजसे

१-ये सप्त विश्वमाताएँ कही गयी हैं । उक्तआदित्यके चण्ड-पदमें इन सप्तोंके साथ ही भगवती महालक्ष्मीकी भी विश्वमाता कहा गया है ।

२-अबसे बालरूपेण सङ्क्रान्तविश्वराजनः । पूर्वेण कदनः शीर्षोऽधिशतः । इतिवैष्णवः ॥

कृत्तिकायाश्च रुद्रस्य पादोद्भूतः । सूर्योक्तः । कर्तिकेयो महालक्ष्मी आदित्यवर्धितः ।

शक्तिं करोतु ते नित्यं बाले मौक्त्यं च तेजसा ॥

आग्नेये बालश्च देव आग्नेयं च सङ्ग्रहीतः । क्षीरवज्रपटोऽधाराव्ययः । कनकमुद्रधः ॥

शूलहस्तो महाप्राज्ञो नन्दीश्वरोऽधिपतिः । शक्तिं करोतु ते शम्भो धर्म्यं च कतिपुनर्ययम् ॥

धर्मोत्तमपुत्रो नित्यमवलः । सन्ध्याचक्षुः । पद्मोदरो महाकायः । विष्णोश्चैवसमप्रभः ॥

एकदंष्ट्रोऽलक्ष्यो देवो गजवक्त्रो महाबलः । नारायणोऽर्च्यते । चक्रधारणभूषितः ॥

सर्वोऽसम्पदुद्धानो गणधाराको वरदः ।

श्रीमस्य तनयो देवो नाकशेखरः विनायकः । करोतु ते महाशक्तिं धामकायैवतत्परः ॥

इन्द्रनीलनिभसम्पन्नो द्यौतशूलमुर्धधराः । रुद्रस्वरधरः । क्षीमन् । कृष्णङ्गो नागभूषणः ॥

पाण्डुरोदमातुलमालम्ब्य महाशरधरः । करोतु ते महाशक्तिं प्रीतः । प्रीतेन चेतसा ॥

वरस्वरधरा कन्यः । नाकशेखरभूषितः । विद्वज्ज्ञो च ज्ञानी । पुण्यं लोकतमसङ्कतः ॥

सर्वोऽद्विकरः देवो प्रसादपरमात्मदा । शक्तिं करोतु ते यज्ञ भुवस्य सङ्ग्रहीतः ॥

विष्णोऽयमेव सर्वेण महाशक्तिमर्दिनी । धनुःशक्रजडालः । सङ्क्रान्तिस्यारीणी ॥

आतर्जन्मवत्करा सर्वोऽवकाशिनी । शक्तिं करोतु ते दुर्ग भवानी च शिवा तथा ॥

अभिमूक्यो ह्यतिशयोक्त्यसो भृङ्गिर्दिग्दीप्तः ।

सूर्यात्मको महावीरः । सर्वोऽवकाशिनः । सूर्यभक्तियरो नित्यं शिवं ते सम्बधच्छतम् ॥

प्रचण्डगणसेन्येशो महापद्मसङ्घर्षकः । अशनालार्जितकरः । चण्डेश्वरो वरः ॥

चण्डगणहरो नित्यं ब्रह्महत्याविनाशनः ।

शक्तिं करोतु ते नित्यमदित्याराधने रतः । करोतु च महायोगी कल्याणानी परमरामम् ॥



आपको बल, सौख्य एवं शान्ति प्रदान करें। हाथमें शूल एवं श्वेत वस्त्र धारण किये हुए, स्वर्ण-आभूषण, भगवान् सूर्यकी आराधना करनेवाले, तीन नेत्रोंवाले नन्दीश्वर आपको धर्ममें उत्तम बुद्धि, आरोग्य एवं शान्ति प्रदान करें। चिकने अञ्जनके समान आभायुक्त, महोदर तथा महावक्रय नित्य अचल आरोग्य प्रदान करें। नाना आभूषणोंसे विभूषित नागको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण किये हुए, समस्त अर्थ-सम्पत्तिवर्षके उद्धारक, एकदन्त, उलकट-स्वरूप, गजवक्त्र, महाबलशाली, गणोंके अध्यक्ष, वर-प्रदाता, भगवान् सूर्यकी अर्चनामें तत्पर, शंकरपुत्र विनायक आपको महाशान्ति प्रदान करें। इन्द्रनीलके समान आभावाले, त्रिनेत्रधारी, प्रदीप्त विशूल धारण करनेवाले, नागोंसे विभूषित, पाशोंको दूर करनेवाले तथा अलक्ष्य रूपवाले, मल्लोंके नाशक भगवान् शंकर प्रसन्न चित्तसे आपको महाशान्ति प्रदान करें। नाना अलंकारोंसे विभूषित, सुन्दर वस्त्रोंको धारण करनेवाली, देवताओंकी जननी, सारे संसारमें नमस्कृत, समस्त सिद्धियोंकी प्रदायिनी, प्रसाद-प्राप्तिकी एकमात्र स्थान जगन्माता भगवती पार्वती आपको शान्ति प्रदान

करें। शिथिल इयामल वर्णवाली, धनुष-चक्र, खड्ग तथा पहिशा आयुधोंको धारण की हुई, सभी उपद्रवोंका नाश करनेवाली, विशाल बाहुओंवाली, महामहिष-मर्दिनी भगवती भवान् दुर्गा आपको शान्ति प्रदान करें। अल्पत सूक्ष्म, अतिश्लेष्मी, तीन नेत्रोंवाले, महावीर, सूर्यभक्त भृंगिर्गिष्टि आपको नित्य कल्याण करें। विशाल घण्टा तथा रुद्राक्ष-माला धारण किये हुए, ब्रह्महत्यादि उत्कट पाशोंका नाश करनेवाले, प्रचण्डगणोंके सेनापति, आदित्यकी आराधनामें तत्पर महायोगी चण्डेश्वर आपको शान्ति एवं कल्याण प्रदान करें। दिव्य आकाश-मातृकाई, अन्य देव-मातृकाई, देवताओंद्वारा पूजित मातृकाई जो संसारको व्याप्त करके अर्वास्थित हैं और सूर्योदयमें तत्पर रहती हैं, वे आपको शान्ति प्रदान करें। रौद्र कर्म करनेवाले तथा रौद्र स्थानमें निवास करनेवाले रुद्रगण, अन्य समस्त गणाधिप, दिशाओं तथा विदिशाओंमें जो विग्रहोंसे अर्वास्थित रहते हैं, वे सभी प्रसन्नचित्त होकर मेरे द्वारा दी गयी इस बलि (नैवेद्य) को ग्रहण करें। ये आपको नित्य सिद्धि प्रदान करें और आपको भयोंसे रक्षा करें।

अकाराग्रतरो दिव्यसत्त्वान् देवमातः ।

सूर्योदयस्य देवो जगद्व्याप्य अवर्धिष्यत् । शान्तिं कुर्वन् ते नित्यं मातः सुपूजितः ॥  
ये रुद्र रौद्रकर्मणो रौद्रस्वभावविभिनः । कर्तारो रुद्रगणस्य गणपदवर्धिष्यत् ये ॥

विग्रहपूजासभा कान्ये विधिदिशु समर्पितः ।

सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्यन् मे बलिम् । सिद्धिं कुर्वन् ते नित्यं भवेद्यः पन्थु सर्वतः ॥  
ऐन्द्रदयो गणा ये तु वज्रहस्त महाबलः । शिम्बुन्देन्दुसदृश नीलकण्ठश्चरैरहितः ॥  
दिव्यान्तरिक्षा भीमस्य कालस्तल्लव्यमिनः । ऐन्द्रः शान्तिं कुर्वन् भद्राणि च पुनः पुनः ॥  
अग्नेय्या ये भूतः सर्वे ध्रुवस्तनुवृक्षिणः । सूर्योदयस्य रतञ्च जयमुन्निभासया ॥  
विराटलोकहित दिव्य अग्नेय्यं चक्रवर्त्यः । आदित्यगणपतयः आदित्यगणपतयः ॥

शान्तिं कुर्वन् ते नित्यं प्रयच्छन् बलिं मम ।

भयादित्यसमा ये तु सततं दण्डवत्प्रभः । आदित्यगणपतयः प्रं प्रयच्छन् ते सदा ॥  
ऐन्द्रस्य संविद्यते ये तु वज्रहस्तः शूलगणः । मल्लोद्भूतिलोहस्य नीलकण्ठः विलोहितः ॥  
दिव्यान्तरिक्षा भीमस्य कालस्तल्लव्यमिनः । सूर्योदयस्य नित्यं पूजितस्तनुवृक्षिणम् ॥  
ततः सुप्रीतमनसो लोकपालैः समन्वितः । शान्तिं कुर्वन् ते नित्यं प्रं प्रयच्छन् पूजितः ॥  
अमरावती पुरी नाम पूर्वभागे अवर्धिष्यत् । विद्याधरागणवर्धो सिद्धगणवर्धिष्यत् ॥

रुद्राक्षचक्रादिना महारत्नैर्वर्धिष्यत् ।

तत्र देवपतिः श्रीमान् वक्रवर्णिर्हवतः । ऐन्दवैर्यैस्तलेन शेषधमेन शेषते ॥  
ऐरवतगजाकृतो गैरिकाश्वो मत्तदुतिः । देवेन्द्रः सततं हृष्ट आदित्यगणपते रतः ॥  
सूर्यज्ञानैकपरमः सूर्यभक्तिसम्पन्नः । सूर्यप्रणमः परमं शान्तिं तेऽद्य प्रयच्छतु ॥  
आग्नेयदिशिभागे तु पुरी तेजसती शुभः । कनकदेवगणवर्धो नवराजोवर्धिष्यत् ॥  
तत्र ज्वालसमावृतीर्णो दीप्तह्वरसम्पुतिः । पुराणे दहन्ते देवो ज्वलनः क्षपनाशनः ॥

हाथोंमें वस्त्र लिये हुए, महाबलशाली, सफेद, नीले, काले तथा लाल वर्णवाले, पृथ्वी, आकाश, पाताल तथा अन्तरिक्षमें रहनेवाले ऐन्द्रगण निरन्तर आपको कल्याण करें और शान्ति प्रदान करें। आप्रेयी दिशामें रहनेवाले निरन्तर ज्वलन्शील, जपाकुसुमके समान लाल तथा लोहित वर्णवाले, हाथमें निरन्तर दण्ड धारण करनेवाले सूर्यके पक्त भस्कर आदि भैंरे द्वारा दिये गये बलि (नैवेद्य) को ग्रहण करें और आपको नित्य शान्ति एवं कल्याण प्रदान करें। ईशानकोणमें अवस्थित शान्ति-स्वभावयुक्त, त्रिशूलधारी, अङ्गोंमें घस्र धारण किये हुए, नीलकण्ठ, रक्तवर्णवाले, सूर्य-पूजनमें तत्पर, अन्तरिक्ष, आकाश, पृथ्वी तथा सर्गमें निवास करनेवाले रुद्रगण आपको नित्य शान्ति एवं कल्याण प्रदान करें।

रत्नोंके प्राक्गरो एवं महारत्नोंसे शोभित, विद्याधर एवं सिद्ध-गन्धर्वोंसे सुसेवित पूर्वदिशामें अवस्थित अमरावती नामवाली नगरीमें महाबली, वज्रपाणि, देवताओंके अधिपति इन्द्र निवास करते हैं। वे ऐरावतपर आरुढ़ एवं स्वर्गकी आभाके समान प्रकाशमान हैं, सूर्यकी आराधनामें तत्पर तथा नित्य प्रसन्न-चित रहनेवाले हैं, वे परम शान्ति प्रदान करें।

विविध देवगणोंसे व्याप्त, भौति-भौतिक रत्नोंसे शोभित, अग्निकोणमें अवस्थित तेजस्वी नामकी पुरी है, उसमें स्थित जस्त्ये हुए अंगारोंके समान प्रकाशवाले, ज्वालमालाओंसे व्याप्त, निरन्तर ज्वलन् एवं दहनशील, पापनाशक, आदित्यकी आराधनामें तत्पर अग्निदेव आपके पापोंका सर्वथा नाश करें एवं शान्ति प्रदान करें। दक्षिण दिशामें संयमनीपुरी स्थित है, वह नाना रत्नोंसे सुशोभित एवं सैकड़ों सुरासुरोंसे व्याप्त है, उसमें रहनेवाले हरित-पिङ्गल नेत्रोंवाले महामहिषपर आरुढ़, कृष्ण वस्त्र एवं मालासे विभूषित, सूर्यकी आराधनामें तत्पर महार्तेजस्वी यमराज आपको क्षेम एवं आरोग्य प्रदान करें। नैऋत्यकोणमें स्थित कृष्णा नामकी पुरी है, जो महान् रक्षोगण, प्रेत तथा पिशाच आदिके व्याप्त है, उसमें रहनेवाले रक्त माला और तन्त्रोंसे सुशोभित हाथमें तलवार लिये, कण्ठज्वदन, सूर्यकी आराधनामें तत्पर राक्षसोंके अधिपति निर्ऋतिदेव शान्ति एवं धन-धान्य प्रदान करें। पश्चिम दिशामें शुद्धवती नामकी नगरी है, वह अनेक किन्नरोंसे सेवित तथा भोगिगणोंसे व्याप्त है। यहाँ स्थित हरित तथा पिङ्गल वर्णके नेत्रवाले वरुणदेव प्रसन्न होकर आपको शान्ति प्रदान करें। ईशान-कोणमें स्थित

आदित्याराधनरत आदित्यगतममस्तः । शान्तिं करोतु ते देवस्य च पारशीक्षयम् ॥

वैषलती पुरी तथा दक्षिणेन महावनः । सुरसुरासुखलोके नगराभ्युपगता ॥

तत्र कुन्देन्दुरावराजो हरिपिङ्गललोचनः । गणपतिपुत्रकण्डः कृष्णवस्त्रधरपूज्यः ॥

अपकीर्णः महोत्तमः सूर्यधर्मपूज्यः । अद्विजाराधनरतः क्षेमलोभ्ये ददातु ते ॥

नैऋते दिविभूमे तु पुरी कृष्णेति विभुता । महारक्षोन्मत्तैर्बलीशक्त्येतेनैकतः ॥

तत्र कुन्दानिधो देवो रक्तवस्त्रधरपूज्यः । सङ्गुणैर्महातेजः कण्ठज्वदनेभ्यस्रतः ॥

रक्षेन्द्रो वसति नित्यपादित्याराधने रतः । करोतु मे सदा शान्तिं धनं धान्यं प्रयच्छतु ॥

पश्चिमे तु दिशे भूमे पुरी शुद्धवती सदा । नानाभोगिसमकीर्णं कनकैकतसेवितम् ॥

तत्र कुन्देन्दुरावराजो हरिपिङ्गललोचनः । शान्तिं करोतु मे प्रीतः शान्तः शान्तेन चेतसा ॥

यशोवती पुरी रम्या देशसौ दिशन्तीक्षिता ।

नानागणसमाकीर्णा नाकवृत्तशुभालम्बा । तेजःप्रकाशपर्यन्ता अक्षीगम्या सरोज्यमात्रा ॥

तत्र कुन्देन्दुरावराजो हरिपिङ्गललोचनः ।

त्रिनेत्रः शान्तकृष्णः अक्षमालाधराधरः । ईशानः परमो देवः सदा शान्तिं प्रयच्छतु ॥

भूलोके तु भुवलोके निवसति य ये सदा । देवदेवः शुभयुक्तः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥

जनलोके महर्लोके परलोके । गताः ये । ते सर्वे मुदिता देवाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥

सरस्वती सूर्यपत्न्या शान्तिददा विदधतु मे ।

वह्न्यग्नेकरस्था यः सरोजकरपल्लवाः । सूर्यपत्न्याश्रिता देवो विभूतिं ते प्रयच्छतु ॥

हारेण सुविचित्रेण भास्वत्कनकसेवितः । अपराजिता सूर्यपत्न्या करोतु विजयं तव ॥

यशस्वेयसी नामकी अनुपम पुरीमें रहनेवाले त्रिनेत्रधारी ज्ञानात्मा ऋद्राक्ष-मालाधारी परमदेव ईशान (भगवान् शंकर) आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। भूः, भुवः, महः एवं जन आदि लोकोंमें रहनेवाले प्रसन्नचित्त देवता आपको शान्ति प्रदान करें।

सूर्यभक्त सरस्वती आपको शान्ति प्रदान करें। हाथमें कमल धारण करनेवाले तथा सुन्दर स्वर्ण-सिंहासनपर अवस्थित, सूर्यकी आराधनामें तत्पर भगवती महालक्ष्मी आपको ऐश्वर्य प्रदान करें और आदित्यकी अराधनामें तल्लीन, विचित्र वर्णक सुन्दर हार एवं कनकमेखला धारण करनेवाली सूर्यभक्त भगवती अपराजिता आपको विजय प्रदान करें।'

इसके अनन्तर सत्ताईस नक्षत्रों, मेघादि द्वादश राशियों, सप्तर्षियों, महातपस्वियों, ऋषियों, सिद्धों, विद्याधरों, दैत्येन्द्रों तथा अष्ट नागोंसे शान्तिकी प्रार्थना करें\*।

'परमश्रेष्ठ कृत्तिका, वरानना रोहिणी, भृगुशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य तथा आश्लेष (पूर्व दिशामें रहनेवाली) ये सभी नक्षत्र-मातृकाएँ सूर्यार्चनमें रत हैं और प्रभा-मालासे विभूषित हैं। मघा, पूर्वा तथा उत्तरफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा—ये दक्षिण दिशाकर आश्रय ग्रहण कर भगवान् सूर्यकी पूजा करती रहती हैं। आकाशमें उड़ित होनेवाली ये नक्षत्र-मातृकाएँ आपको शान्ति प्रदान करें। पश्चिम दिशामें रहनेवाली अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा

\* कृत्तिका परमा देवी रोहिणी च वरानना । भृगुशिराश्च भद्रा आर्द्रा वायव्योन्मूलका ॥  
पुनर्वसुतथा पुष्य आश्लेष च तथापि । सूर्यार्चनस्य नित्यं सूर्यभक्तानुपश्रिताः ॥  
अर्धयानि सदा देवयार्दिन्ये सुते सदा । तत्तत्तत्ततो ह्येताः प्रभासाविविभूिताः ॥

मघा सर्वगुणैरेता पूर्वा वैव तु फाल्गुनी । मघा विराजता सदा दक्षिण दिग्दर्शिता ॥  
अर्धयानि सदा देवयार्दिन्ये सुपूजिताम् । तस्मिन् शान्तिकं ह्येतं कुर्वन्तु रगन्धैरिताः ॥  
अनुराधा तथा ज्येष्ठा मूल सूर्यभुजरा । पूर्वाकाश महावीर्य अजाया चोत्तरा तथा ॥  
अर्धजिह्वाय नक्षत्रं अक्षयं च यदुत्तमम् । एताः पश्चिमास्ते टीला तत्रापि धानुर्मुखे ॥  
भास्वते पूजयन्तेतः सर्वकाले भूषाविजः । शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूतिं च महर्द्धिकम् ॥  
पश्चिमाः शान्तिकं तु पूर्वोत्तराश्च तथा ॥

उत्तराभाद्रपदी नक्षत्रिके च महावते । भरणी च मघादेवी त्रिभुमुत्तरा विजता ॥  
सूर्यार्चनस्य शिवायार्दिनामपरायता । शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूतिं च महर्द्धिकम् ॥  
मेघो भृगुशिरः शिखो भृगुशिरः करः । पूर्वैव भद्रावन्ते सूर्यदीपकाः शुभाः ॥  
शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं भक्त्या सूर्यराज्यजे । पुष्य कन्य च परमा मकराक्षयि बुद्धिमान् ॥  
एते दक्षिणभागे तु पूजयन्ति स्त्री सदा । भक्त्या परमया नित्यं शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
मिथुनं च तुला कुम्भः पश्चिमे च व्यवस्थिताः । जगन्पते सदावरायार्दिन्ये प्रह्लापकम् ॥  
शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं तपस्वीकशक्तपरा । सगन्धैरकनुषाभ्यां ये सुता सततं बुधैः ॥  
ऋषयः सा विजयता ध्रुवास्तः परमेष्ठिनस्तः । भृगुशिराश्च सम्पत्ताः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
कश्यपे गालवे गार्गे विश्वामित्रे महाभुनिः । मुनिर्दशो वसिष्ठश्च मार्कण्डेयः पुलस्त्यः ऋतुः ॥  
वरदो भृगुशिर्यो भारद्वाजश्च वै मुनिः । काल्योनिः कौण्डिन्को कस्तुरः शक्रव्योऽथ पुनर्वसुः ॥  
शालक्यस्त इत्येते श्रवणोऽथ महातपः । सूर्यधर्मेष्ठिनस्तः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
मुनिस्तथा महापात्रा ऋषिस्तथाः कुम्भीकः । सूर्यार्चनस्य नित्यं शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
सिद्धाः समुद्रतपस्व्यो ये कान्ये ते महातपः । विद्याधरा महावक्त्रे गम्ढश्च तस्य सह ॥  
आदित्यपराश्च ह्येते आदित्यार्चने रताः । सिद्धिं ते सन्धयच्छन्तु आशीर्वादपरायणाः ॥  
समुच्चैरुत्तमानेन्द्रः शिबुजगो महाबलः । महन्नाथोऽथ विजयतो दैत्यः परमवीर्यवान् ॥  
प्राह्मधियस देवस्य नित्यं पूजयन्तपः । काले वीर्यं च ते हृदिमार्गेण च कुर्वन्तु ते ॥  
महाज्यो यो हयग्रीवः प्रह्लादः प्रपयन्ति । अग्निमुखो महान् दैत्यः कालनेमिर्गहनस्तः ॥  
एते दैत्य महामानः सूर्यधर्मेन भाविताः । तृष्टिं कलं तथाऽज्येष्ठ्ये प्रपच्छन्तु सूरयः ॥



तथा उत्तराषाढा, अभिजित् एवं श्रवण—ये नक्षत्र-मातृकाएँ निरन्तर भगवान् भारुकरकी पूजा करती रहती हैं, ये आपको वर्धनशील ऐश्वर्य एवं शान्ति प्रदान करें। उत्तर दिशामें अवस्थित धनिष्ठा, शतभिष, पूर्व तथा उत्तरभाद्रपद, रेवती, अधिनी एवं भरणी नामकी नक्षत्र-मातृकाएँ नित्य सूर्यकी पूजा करती रहती हैं, ये आपको नित्य वर्धनशील ऐश्वर्य एवं शान्ति प्रदान करें।

पूर्वदिशामें अवस्थित तथा भगवान् सूर्यके चरणकमलोंमें भक्तिपूर्वक आराधना करनेवाली मेघ, सिंह तथा धनु राशिवाँ आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। दक्षिण दिशामें स्थित रहनेवाली, भगवान् सूर्यकी अर्चना करनेवाली वृष, कन्या तथा मकर राशिवाँ परमा भक्तिके साथ आपको शान्ति प्रदान करें। पश्चिम दिशामें स्थित एवं निरन्तर प्रह्लादायक भगवान् आदित्यकी आराधना करनेवाली मिथुन, तुला तथा कुम्भ राशिवाँ आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। [कर्क, वृश्चिक तथा मीन राशिवाँ जो उत्तर दिशामें स्थित रहती हैं तथा भगवान् सूर्यकी भक्ति करती हैं, आपको शान्ति प्रदान करें।]

भगवान् सूर्यके अनुग्रहसे सम्पन्न ध्रुव-मण्डलमें

रहनेवाले समर्पिण आपकी शान्ति प्रदान करें। कश्यप, गाल्व, गार्ग्य, विश्वामित्र, दक्ष, वसिष्ठ, मार्कण्डेय, क्रतु, नारद, भृगु, आत्रेय, भारद्वाज, वाल्मीकि, कौशिक, वाल्य, शाकल्य पुनर्वसु तथा शल्लोकथन—ये सभी सूर्य-ध्यानमें तत्पर रहनेवाले महातपस्वी ऋषिगण आपको शान्ति प्रदान करें। सूर्यकी आराधनामें तत्पर ऋषि तथा मुनिकन्याएँ, जो निरन्तर आशीर्वाद प्रदान करनेमें तत्पर रहती हैं, आपको नित्य सिद्धि प्रदान करें।

भगवान् सूर्यकी पूजामें तत्पर दैत्यराजेन्द्र नमुचि, महाबली शङ्खकर्ण, पराक्रमी महानाथ—ये सभी आपके लिये बल, बौर्य एवं अहोरोषकी प्राप्तिके लिये निरन्तर कामना करें। महान् सम्पत्तिशाली हयग्रीव, अत्यन्त प्रभावशाली प्रह्लाद, अग्निमुख, वरालम्बि—ये सभी सूर्यकी आराधना करनेवाले दैत्य आपको पुष्टि, बल और आरोग्य प्रदान करें। वैरोचन, हिरण्यक्ष, तुवंसु, सुलोचन, मुचकुन्द, मुकुन्द तथा रैवतक—ये सभी सूर्यभक्त आपकी पुष्टि प्रदान करें। दैत्यराजिन्दा, दैत्यकन्याएँ तथा दैत्यकुमार—ये सभी आपकी शान्तिके लिये कामना करें।

वैरोचनो हिरण्यक्षस्तुवंसुश्च सुलोचनः । मुचकुन्दो मुकुन्दश्च दैत्यै रैवतकस्तथा ॥  
भावेन परमेष्ठये गच्छते सन्तः शिवम् । सख्यं च सुखायान् पुष्टिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
दैत्यराज्यो महाभाग दैत्यराज कन्यकाः शुभाः । कुब्जा ये च दैत्यान् शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
आरोहेन शशिम् रक्तपातलोत्पलः । महाभयः कृतघ्नोऽपि शङ्कायाः कृततलया ॥  
अनलो नागराजेन्द्र अद्वित्यराधने शतः । महापातकैव हन्तुं शक्तिंयस्तु करोतु ते ॥  
अतिशीतेन देहेन विस्तुरन्ध्रोगमगताः । वेतसः खड्गिद्विजः कृतस्वस्तिकलान्विताः ॥  
नागपदं तक्षकः श्रीमान् नागकेशश्च समन्वितः । करोतु ते महाशान्तिं सर्वदोषविनाशहाम् ॥  
अतिकुर्वीत त्रीनं सुवीर्यविजयलोकः । कण्ठरेतसवर्षेणो धोरदंशुपुष्पोत्तः ॥  
कर्कोदको घटानगो विशदर्वकलान्वितः । विशदस्वर्वाग्निमोहाय हन्तुं शान्तिं करोतु ते ॥  
पटवलीः पद्मकान्तिः कुलत्पलपानेक्षणः । रजस्तः पद्मे महानगरो मिव भास्वरपूजकः ॥  
स ते शान्तिं शुभं शीघ्रमचलं सम्पद्यन्तु । उपमेन देहधरोऽपि श्रीमन्मालाद्वीपिनः ॥  
विशदर्वकलोपलो गोपायो रेतसपानितः । शङ्खपालद्विजः दीप्तः सूर्यसदस्वपूजकः ॥  
महाविषं गरुश्रेष्ठं हन्तुं शान्तिं करोतु ते । अतिवीर्य देहेन चन्द्रार्पितरोशरः ॥  
दीपधरो कृतघ्नोऽपि सुमलकलान्वितः ।  
कुलिङ्को नाग नागेन्द्रो मिव सूर्यसपथनः । अपद्रव्यं विषं धोरं करोतु तत्र शान्तिवन् ॥  
अन्तरिक्षं च ये नाग ये नागाः स्वर्गमेभिषताः । विरिक्तपदुनेषु ये नागा भुवि संस्थिताः ॥  
पातालं ये स्थिता नागाः सर्वे यत्र समाहितः । सूर्यखट्वर्पणसखाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
नागिन्यो नागकन्यकाश्च तथा नागकुमारकाः । सूर्यभक्तः सुमनसः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
य इदं जगत्संस्थानं कीर्तयिष्यन्नुक्तं तदा । न ते सर्वं विहितंति न विषं क्रम्यते सदा ॥



नागराजेन्द्र अनन्त, अत्यन्त पीले झरिरवाले, त्रिस्फुरित फणवाले, स्वस्तिक-चिह्नसे युक्त तथा अत्यन्त तेजसे उदीप्त नागराज तक्षक, अत्यन्त कृष्ण वर्णवाले, कण्ठमें तीन रेखाओंसे युक्त, भयंकर आयुधरूपी दंष्ट्रसे समन्वित तथा विषके दर्पसे बलवन्वित महानाग कर्कोटक, पदके समान कान्तिवाले, कमलके पुष्पके समान नेत्रवाले, पद्मवर्णके महानाग पद्म, इयामवर्णवाले, सुन्दर कमलके समान नेत्रवाले, विषरूपी दर्पसे उन्मत्त तथा ग्रीवामें तीन रेखावाले श्लेष्मसम्पन्न महानाग शंखपाल, अत्यन्त गौर शरीरवाले, चन्द्रार्धकृत-शेखर, सुन्दर फणोंसे युक्त नागेन्द्र कुलिक (और नागराज वासुकि) सूर्यकी आराधना करनेवाले—ये सभी आहुनाग महाविषको नष्ट करके आपको निरन्तर अचल महाशक्ति प्रदान करें। अन्तरिक्ष, स्वर्ग, गिरिकन्दराओं, दुर्गों तथा भूमि एवं पातालमें रहनेवाले, भगवान् सूर्यके अर्चनमें आसक्त समस्त नागगण और नागपत्नियों, नागकन्याएँ तथा नागकुमार सभी प्रसन्नचित होकर आपको सदा शान्ति प्रदान करें।

जो इस नाग-शान्तिका श्रवण या कथन करता है, उसे

सर्पगण कभी भी नहीं काटते और विषका प्रभाव भी उनपर नहीं पड़ता।

तदनन्तर गङ्गादि पुण्य नदियों, यक्षेन्द्रों, पर्वतों, सागरों, राक्षसों, प्रेतों, पिशाचों, अप्सारादि प्रहों, सभी देवताओं तथा भगवान् सूर्यसे शान्तिकी कामनाके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

‘ब्रह्माधिपति भगवान् सूर्यकी नित्य आराधना करनेवाली पुण्यतोया गङ्गा, महादेवी यमुना, नर्मदा, गौतमी, कावेरी, वरुणा, देविका, निरञ्जना तथा मन्दाकिनी आदि नदियाँ और महानद शोण, पृथ्वी, स्वर्ग एवं अन्तरिक्षमें रहनेवाली नदियाँ आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। यक्षराज कुम्भर, महायक्ष मणिभद्र, यक्षेन्द्र सुचिर, पाञ्चिक, महातेजस्वी धृतराष्ट्र, यक्षेन्द्र विश्वास, कञ्जक तथा अन्तरिक्ष एवं स्वर्गमें रहनेवाले समस्त यक्षगण, यक्षपत्नियाँ, यक्षकुमार तथा यक्ष-कन्याएँ जो सभी सूर्यकी आराधनामें तत्पर रहते हैं—ये आपको शान्ति प्रदान करें, नित्य वस्तुपात्र, बल, सिद्धि भी दीप्त प्रदान करें एवं मङ्गलमय बनायें।

१-गङ्गा पुण्य महादेवी यमुना ज्येष्ठा नदी। गौतमी यक्षि कावेरी वरुणा देविका तथा ॥

सर्वव्यापिती देवि लोकेशो लोकनयकम् ।

पूजयति सदा त्वं सूर्यसङ्गप्रभापितः । शान्तिं कुर्वेत् ते नित्यं सूर्यध्यानकामनाः ॥

निरञ्जना नाम नदी शोणश्चापि मण्डान्तः । मन्दाकिनी च वारुणा तथा सर्वविहात शुभा ॥

एतास्मान्मात्रं बहवो भूयि विष्णुभक्तैस्तथा । सूर्यध्यानं त्वं सूर्यसङ्गम् ॥

महावैश्वानरो देवो यक्षराजो महादेवः । यक्षकोटिपरिवृतो यक्षसंघस्यपरोष्ठतः ॥

महाविश्वरूपतः सूर्यपदाब्जिने रतः । सूर्यध्यानकामनाः सूर्यध्यानं धारितः ॥

शान्तिं करोतु ते मीनः पद्मपत्रलोचनः । मणिभद्रो महामखो मणिपञ्चविभूषितः ॥

यक्षेन्द्रेण हरेण कण्ठस्थेन राजते ।

यक्षिणीयक्षकन्याधिः पञ्चविंशतिपदः । सूर्यध्यानकामनाः करोतु त्वं शान्तिकम् ॥

सुचिरो नाम यक्षेन्द्रो मणिपञ्चकभूषितः । तत्पदे हेमपद्मपञ्चद्वयेन विराजते ॥

बहुयक्षसमाकर्मणो यक्षैर्मितविप्रतः । सूर्यपूजाम्ने पुनः करोतु त्वं शान्तिकम् ॥

पाञ्चिको यम यक्षेन्द्रः कण्ठस्थमभूषितः । कुकुटेन विधिवेन बाहुजान्वितेन तु ॥

यक्षानन्दसमाकर्मणो यक्षकोटिसम्बन्धितः । सूर्यध्यानतः श्रोतुं करोतु त्वं शान्तिकम् ॥

धृतराष्ट्रो महतेजा नानापक्षाधिपः सगः । दिक्पट्टः शुक्लपद्मो मणिकण्ठमभूषितः ॥

सूर्यपक्षः सूर्यरतः सूर्यपूजापरायणः । सूर्यसङ्गसम्पन्नः करोतु त्वं शान्तिकम् ॥

विष्णुपञ्चक यक्षेन्द्रः शैलपरात महामुनिः । तन्महाकण्ठमभूषितमभूषितमभूषितः ॥

सूर्यपूजारी भक्तः कञ्जकः कञ्जमनिमः । तेजसादित्यमेकाग्रः करोतु त्वं शान्तिकम् ॥

अन्तरिक्षगता यक्षा ये यक्षः स्वर्गधामिनः । यक्षकवधरा यक्षः सूर्यपत्न्या दृढव्रताः ॥

तद्भक्तसङ्गदामनसः सूर्यपूजासमुत्सुकाः । शान्तिं कुर्वेत् ते इष्टः शान्ताः शान्तिपरपण्याः ॥

भगवान् सूर्यकी आराधना करनेवाले सभी पर्वत, ज्वलि प्रदान करनेवाले वृक्ष, सभी सागर तथा पवित्रारण्य आपको शक्ति प्रदान करें। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग तथा पातालमें निवास करनेवाले एवं भगवान् सूर्यकी आराधना करनेवाले महाबलशाली और कामरूप सभी राक्षस, प्रेत, पिशुन एवं सभी दिग्गजोंमें अवस्थित अप्समारग्रह तथा ज्वरग्रह आदि आपको नित्य शान्ति प्रदान करें।

जिन भगवान् सूर्यके दक्षिण भागमें किण्वु, काम भागमें शंकर और ललाटमें ब्रह्मा सदा स्थित रहते हैं, ये सभी देवता उन भगवान् सूर्यके तेजसे सम्पन्न होकर आपको शक्ति प्रदान करें तथा सौरधर्मको जाननेवाले समस्त देवगण संसारके सूर्यभक्तों एवं सभी प्राणियोंको सर्वदा शक्ति प्रदान करें।

अन्धकार दूर करनेवाले तथा जय प्रदान करनेवाले विश्वान् भगवान् भास्करकी सदा जय हो। ग्रहोंमें उत्तम तथा कल्याण करनेवाले, कमलको विवर्धित करनेवाले भगवान्

सूर्यकी जय हो, ज्ञानस्वरूप भगवान् सूर्य ! आपको नमस्कार है। शक्ति एवं दीप्तिका विधान करनेवाले, तमोहन्ता भगवान् अजित ! आपको नमस्कार है, आपकी जय हो। सहस्र-किरणोज्ज्वल, दंष्ट्रिस्वरूप, संसारके निर्माता आपको बार-बार नमस्कार है, आपकी जय हो। गायत्रीस्वरूपवाले, पृथ्वीको धारण करनेवाले सवित्री-प्रिय मार्तण्ड भगवान् सूर्यदेव ! आपको बार-बार नमस्कार है, आपकी जय हो।

**सुमन्तु मुनि बोले—**राजन् ! इस विधानसे अरुणके द्वारा कैनेत्ये गरुडके कल्याणके लिये शक्ति-विधान करते ही वे सुन्दर पेशोंसे समन्वित हो गये। वे तेजमें बुधके समान देदीप्यमान और बलमें किण्वुके समान हो गये। राजन् ! देवाधिदेव सूर्यके प्रसादसे सुपर्णके सभी अवयव पूर्ववत् हो गये।

**राजन् !** इसी प्रकार अन्य रोगग्रस्त मानवगण इस अतिप्रकारसे (सौरी-शक्तिसे) नीरोग हो जाते हैं। इसलिये इस

पश्चिमो विविधकारणतया पञ्चकुम्भरक्तः । पञ्चकान्त महाभक्तः सूर्योपधनतया ॥  
शक्तिं सप्तमयने क्षेमं कले कल्पयन्मुदयम् । शिष्टं चासु प्रपन्नं नित्यं च सुखमकीलतः ॥  
पर्वताः सर्वतः सर्वे वृक्षाश्चैव महर्दिकः । सूर्यपत्तः सदा सर्वे शक्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
सागराः सर्वतः सर्वे गूढारण्यनि कृत्स्नतः । सूर्यसत्पथगतः कुर्वन्तु त्वं शक्तिभक्तम् ॥  
राक्षसाः सर्वतः सर्वे घोररुद्रा महाबलः । ज्वलन्त राक्षसा ये तु अन्तरीक्षणतश्च ये ॥  
पाताले राक्षसा ये तु नित्यं सूर्यर्षभे रक्तः । शक्तिं कुर्वन्तु ते सर्वे तेजसा निपटदीपिताः ॥  
प्रेताः प्रेतागणाः सर्वे ये प्रेता सर्वलोभुषाः । अतिदीपिता ये प्रेता ये प्रेता अधिराजिनः ॥  
अन्तरिक्षे च ये प्रेतास्तथा ये सर्गकामिनः । पाताले भूतले चापि ये प्रेता कामकर्षिणः ॥  
एकध्वजस्थो यस्य यस्तु देवो वृषभजः । तेजसा तस्य देवस्य शक्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
ये पिशुना महालीक्यं कुट्टिमन्तो महाबलः । नगररूपकाः सर्वे सर्वे च गुणवन्तः ॥  
अन्तरिक्षे विशाखा ये स्वने ये च महाबलः । पाताले भूतले ये च बहुरुद्रा मन्त्रेज्जः ॥  
यस्याहं सारथिर्ह्येव यस्य त्वं नुरगः सदा । तेजसा तस्य देवस्य शक्तिं कुर्वन्तु तेऽज्जम् ॥  
अप्सरारुद्राः सर्वे सर्वे चापि ज्वरग्रहाः । ये च सर्गकीलताः सर्वे भूमिग ये प्रोदतयाः ॥  
पाताले तु ग्राह्ये ये च ये ग्राह्यः सर्वतो गताः । दक्षिणे विजये यस्य सूर्यस्य च स्थितो हरिः ॥  
इतो यस्य सदा कामे ललाटे कज्जः स्थितः । तेजसा तस्य देवस्य शक्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
इति देवदयः सर्वे सूर्यपञ्चविधयिनः । कुर्वन्तु जगत् शक्तिं सूर्यपतेन स्रष्टा ॥  
जय सूर्यस्य देवस्य तमोहने विश्वक्से । जयप्रदाय सूर्यस्य भास्कराय नमोऽस्तु ते ॥  
ग्रहोत्तमस्य देवस्य जय कल्याणकारिणे । जय पञ्चकिण्ठाय वृषभस्य ते नमः ॥  
जय दीप्तिविधानाय जय शक्तिविधायिने । तमोहन्त जयदीव्य अजितस्य नमो नमः ॥  
जयार्कं जय दीप्तिं सहस्रकिणोज्ज्वल । जय निर्मललोकात्मनश्चिदाय नमो नमः ॥  
गायत्रीदेहरूपस्य सवित्रीदयितस्य च । धर्मधाय सूर्यस्य मार्तण्डाय नमो नमः ॥

शान्ति-विधानको प्रत्यक्षपूर्वक करना चाहिये। यदुत्पत्ता, दुर्भिक्ष, सभी उत्पातोंमें तथा अनावृष्टि आदिमें लक्ष-होमसमन्वित सौरसूक्तसे यक्षपूर्वक पूजन कर एवं वाहय-सूक्तसे प्रसन्नचित हो श्री, मधु, तिल, यव एवं मधुके साथ प्रायससे हवन एवं शान्ति करे और सप्तधान हो बलि (नैवेद्य) प्रदान करे। ऐसा करनेसे देवतागण मनुष्योंके कल्याणको कामना करते हैं एवं उनके लिये लक्ष्मीकी वृष्टि करते हैं। जो मनुष्य भगवान् दिवाकरका ध्यान कर इस शान्ति-अध्यायको पढ़ता या सुनता है, वह रणमें शत्रुपर विजय हो परम सम्मानको प्राप्त कर एकवज्र शास्त्र होकर सदा आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है। वह पुत्र-पौत्रोंमें प्रतिष्ठित होकर आदित्यके समान तेजस्वी एवं प्रभासमन्वित व्याधिशून्य जीवन-यापन करता है। वीर। जिसके कल्याणके उद्देश्यसे इस शान्तिकाध्याय (शान्तिकल्प) का पाठ किया जाता है, वह वात-पित्त, कफजन्य रोगोंसे पीड़ित नहीं होता एवं उसको

न तो सर्पके दंशसे मृत्यु होती है और न अकालमें मृत्यु होती है। उसके शरीरमें विषका प्रभाव भी नहीं होता एवं जड़ता, अम्लत्व, मूकता भी नहीं होती। उत्पत्ति-भय नहीं रहता और न किसीके द्वारा किया गया अपिचार-कर्म सफल होता है। रोग, महान् उत्पत्ति, महाविषैले सर्प आदि सभी इसके श्रवणसे शान्त हो जाते हैं। सभी गङ्गादि तीर्थोंका जो विशेष फल है, उसका कई गुना फल इस शान्तिकारध्यायके श्रवणसे प्राप्त होता है और दस राजसूय एवं अन्य यज्ञोंका फल भी उसे मिलता है। इसे सुननेवाला सौ वर्षतक व्याधिरहित नोरोग होकर जीवन-यापन करता है। गोहत्या, कुतघ्न, ब्रह्मघाती, गुस्तल्पगामी और शरणगत, दीन, आर्त, मित्र तथा विधायी व्यक्तिके साथ घात करनेवाला, दुष्ट, पापाचारी, पितृघातक तथा मनुष्यातक सभी इसके श्रवणसे निःसंदेह पापमुक्त हो जाते हैं। यह अत्रिचर्य अतिशय उत्तम एवं परम पुण्यमय है।

(अध्याय १७५—१८०)



### विविध स्मृति-धर्मों तथा संस्कारोंका वर्णन

**राजा शतानीकने कहा—**बहन्। पाँच प्रकारके जो स्मृति आदि धर्म हैं, उन्हें जाननेकी मुझे बड़ी ही अभिलाषा है। कृपापूर्वक आप उनका वर्णन करें।

**सुमन्तुजी बोले—**महाराज। भगवान् भक्तने अपने सारथि अरुणसे जिन पाँच प्रकारके धर्मोंको बतलाया था, मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ, आप उन्हें सुनें।

**भगवान् सूर्यने कहा—**गुरुदास। स्मृतिश्रेष्ठ धर्मका मूल सनातन वेद ही है। पूर्वानुभूत ज्ञानका स्मरण करना ही स्मृति है। स्मृत्यादि धर्म पाँच प्रकारके होते हैं। इन धर्मोंका फलन करनेसे स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है तथा इस लोकमें सुख, यश और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। पहला वेद-धर्म है। दूसरा है आश्रम-धर्म अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यस। तीसरा है वर्णाश्रम-धर्म अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। चौथा है गुणधर्म और पाँचवाँ है नैमित्तिक धर्म—ये ही स्मृत्यादि पाँच प्रकारके धर्म कहे गये हैं। वर्ण और आश्रमधर्मिक अनुसार अपने कर्तव्योंका निर्वाह करते हुए कर्मोंको सम्पादित करना ही वर्णाश्रम और आश्रमधर्म कहलाता है। जिस धर्मका प्रवर्तन

गुणोंके द्वारा होता है, वह गुणधर्म कहलाता है। किसी निमित्तको लेकर जो धर्म प्रवर्तित होता है, उसे नैमित्तिक धर्म कहते हैं। यह नैमित्तिक धर्म जाति, द्रव्य तथा गुणके आधारपर होता है।

विषय और विधि-रूपमें शास्त्र दो प्रकारके होते हैं। स्मृतिर्यो पाँच प्रकारकी हैं—दृष्ट-स्मृति, अदृष्ट-स्मृति, दृष्टादृष्ट-स्मृति, अनुवाद-स्मृति और अदृष्टादृष्ट-स्मृति। सभी स्मृतिश्रेष्ठ मूल वेद ही है। स्मृतिधर्मिक साधन-स्थान ब्रह्मचर्य, मध्यक्षेत्र, मध्यदेश, आर्यवर्त तथा यज्ञिय आदि देश हैं। सरस्वती और दुष्यती (कुरुक्षेत्रके दक्षिण सीमाकी एक नदी) इन दो देव-नदियोंके बीचका जो देश है वह देव-निर्मित देश ब्रह्मचर्य नामसे कहा जाता है। हिमाचल और विन्ध्यपर्वतके बीचके देशको जो कुरुक्षेत्रके पूर्व और प्रयागके पश्चिममें स्थित है उसे मध्यदेश कहा जाता है। पूर्व-समुद्र तथा पश्चिम-समुद्र, हिमालय तथा विन्ध्यचल पर्वतके बीचके देशको आर्यवर्त देश कहा जाता है। जहाँ कृष्णसार मृग (कस्तूरी मृग) विचरण करते हैं और स्वभावतः निवास करते हैं, वह यज्ञिय देश है। इनके अतिरिक्त दूसरे अन्य देश म्लेच्छ-देश हैं जो

वश आदिके योग्य नहीं हैं। द्विजातियोंको चाहिये कि विचारपूर्वक इन देशोंमें निवास करें।

**भगवान् आदित्ये पुनः कथा—**सगराज ! अब मैं आश्रमधर्म बतला रहा हूँ। ब्रह्मचर्याश्रम-धर्म, गृहस्थश्रम-धर्म, वानप्रस्थाश्रम-धर्म और संन्यासाश्रम-धर्म—क्रमसे इन चार प्रकारसे जीवनयापन करनेको आश्रमधर्म कहा जाता है। एक ही धर्म चार प्रकारसे विभक्त हो जाता है। ब्रह्मचर्यको गायत्रीकी उपासना करना चाहिये। गृहस्थको संतानोत्पत्ति और ब्राह्मण, देव आदिकी पूजा करनी चाहिये। वानप्रस्थको देवव्रत-धर्मका और संन्यासीको नैष्ठिक धर्मका पालन करना चाहिये। इन चारों आश्रमोंके धर्म वेदमूलक हैं। गृहस्थको ऋतुचक्रमें मन्त्रपूर्वक गर्भाधान-संस्कार करना चाहिये। तीसरे मासमें पुंसवन तथा छठे अथवा सातवें मासमें खैमन्तोन्नयन-संस्कार करना चाहिये। जन्मके समय जातकर्म-संस्कार करना चाहिये। जातक (शिशु) को स्वर्ण, धौ, मधुक मन्त्रोद्धार प्राशन कराना चाहिये। जन्मसे दसवें, ग्यारहवें या बारहवें दिन शुभ मुहूर्त, तिथि, नक्षत्र, योग आदि देखकर नामकरण-संस्कार करना चाहिये। शास्त्रानुसार छठे मासमें अन्नप्राशन करना चाहिये। सभी द्विजाति बालकोंका वृद्धकरण-संस्कार एक वर्ष अथवा तीसरे वर्षमें करना चाहिये। ब्राह्मण-बालकका आठवें वर्षमें, क्षत्रियका ग्यारहवें और वैश्यका

बारहवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार करना उतम होता है। गुरुसे गायत्रीकी दीक्षा ग्रहण कर वेदाध्ययन करना चाहिये। विद्याध्ययनके पश्चात् गुरुकी आज्ञा प्राप्तकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये और गुरुको यथेष्ट सुवर्णादि देकर प्रसन्न करना चाहिये। गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर अपने समान वर्णवाली उतम गुणोंसे युक्त कन्यासे विवाह करना चाहिये। जो कन्या माता-पिताके कुलमें सप्त पीढ़ीतककी न हो और समान गोत्रकी न हो ऐसी अपने वर्णकी कन्यासे विवाह करना चाहिये।

विवाह आठ प्रकारके होते हैं—ब्राह्म, दैव, आर्य, ब्रजपाल, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। वर और कन्याके गुण-दोषको भलीभाँति परस्परके बाद ही विवाह करना चाहिये। कन्याएँ अवस्था-भेदसे चार प्रकारकी होती हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—गौरी, नक्षिका, देवकन्या तथा रोहिणी। सप्त वर्षकी कन्या गौरी, दस वर्षकी नक्षिका, बारह वर्षकी देवकन्या तथा इससे अधिक आयुकी कन्या रोहिणी (राजकन्या) कहलाती है। निन्दित कन्याओंसे विवाह नहीं करना चाहिये। द्विजातियोंको अग्निके साध्यमें विवाह करना चाहिये। स्त्री-पुरुषके परस्पर मधुर एवं दृढ़ सम्बन्धोंसे धर्म, अर्थ और कर्मकी उत्पत्ति होती है और वही मोक्षका कारण भी है।

(अध्याय १८१-१८२)

### श्राद्धके विविध भेद तथा वैश्वदेव-कर्मकी महिमा

**भगवान् सूर्ये अनुरा (अरुण)से कथा—**अरुण ! द्विजमात्रको विधिपूर्वक पञ्च-महायज्ञ—भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, दैवयज्ञ और मनुष्ययज्ञ करना चाहिये। बलिबैश्वदेव करना भूतयज्ञ, तर्पण करना पितृयज्ञ, वेदका अध्ययन और अध्यापन करना ब्रह्मयज्ञ, हवन करना दैवयज्ञ तथा परस्पर आये हुए अतिथिको सत्कारपूर्वक भोजन आदिसे संतुष्ट करना मनुष्ययज्ञ कहा जाता है।

श्राद्ध बारह प्रकारके होते हैं—नित्य-श्राद्ध, नैमित्तिक-श्राद्ध, काय-श्राद्ध, वृद्धि-श्राद्ध, सपिण्डन-श्राद्ध, पार्वण-श्राद्ध, गोष्ठ-श्राद्ध, वृद्धि-श्राद्ध, कर्माङ्ग-श्राद्ध, दैविक श्राद्ध, औपचारिक श्राद्ध तथा सांवत्सरिक श्राद्ध। तिल, व्रीहि (धान्य), जल, दूध, फल, मूल, शाक आदिसे पितृओंकी

संतुष्टिके लिये प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये। जो श्राद्ध प्रतिदिन किया जाता है, वह नित्य श्राद्ध है। एकोद्दिष्ट श्राद्धको नैमित्तिक-श्राद्ध कहते हैं। इस श्राद्धको विधिपूर्वक सम्पन्न कर अयुष्म (विषम संख्या) ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये। जो श्राद्ध सम्पन्नापरक किया जाता है, वह काय-श्राद्ध है। इसे पार्वण-श्राद्धकी विधिसे करना चाहिये। वृद्धिके लिये जो श्राद्ध किया जाता है, उसे वृद्धि-श्राद्ध कहते हैं। ये सभी श्राद्धकर्म पूर्वाह्न-कालमें उपवीती होकर करने चाहिये। सपिण्डन-श्राद्धमें चार पात्र बनाने चाहिये। उनमें गन्ध, जल और तिल छोड़ना चाहिये। प्रेत-पात्रका जल पितृ-पात्रमें छोड़े। इसके लिये 'ये समानाः' (यजुः ११।४५-४६) मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये।



स्वीकृत भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। अमावास्या तथा किसी पर्वपर जो श्राद्ध किया जाता है, उसे पार्वण-श्राद्ध कहते हैं। गौओंके लिये किया जानेवाला श्राद्ध-कर्म गोष्ठ-श्राद्ध कहा जाता है। पितरोंकी तृप्तिके लिये, सम्पत्ति और सुखको प्राप्ति-हेतु तथा विद्वानोंकी संतुष्टिके निमित्त जो ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाता है, वह पुद्गलपथ-श्राद्ध है। गर्वाधान, सोमनोपवन तथा पुंसवन-संस्कारोंके समय किया गया श्राद्ध कर्माङ्ग-श्राद्ध है। यात्रा आदिके दिन देवताके उद्देश्यसे घोंके द्वारा किया गया हवनदि कार्य दैविक श्राद्ध कहलाता है। शरीरकी वृद्धि, शरीरकी पुष्टि तथा अश्ववृद्धिके निमित्त किया गया श्राद्ध औपचारिक श्राद्ध कहलाता है। सभी श्राद्धोंमें सांवत्सरिक श्राद्ध सबसे श्रेष्ठ है। इसे मृत व्यक्तिकी तिथिपर करना चाहिये। जो व्यक्ति सांवत्सरिक श्राद्ध नहीं करता, उसकी पूजा न मैं ग्रहण करता हूँ, न विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र एवं अन्य देवगण ही ग्रहण करते हैं। इसलिये प्रत्यक्षपूर्वक प्रत्येक वर्ष मृत व्यक्तिकी तिथिपर सांवत्सरिक श्राद्ध करना चाहिये। जो व्यक्ति माता-पिताका वार्षिक श्राद्ध नहीं करता, वह घोर तामिस्र नामक नरकको प्राप्त करता है और अन्तर्में सूक्ष्म-योगमें उत्पन्न होता है।

**अरुणने पूछा—**भगवन् ! जो व्यक्ति माता-पिताकी मृत्युकी तिथि, मास और पक्षको नहीं जानता, उस व्यक्तिको किस दिन श्राद्ध करना चाहिये ? जिससे वह नरकभागी न हो ?

### मातृ-श्राद्धकी संक्षिप्त विधि

**भगवान् आदित्यने कहा—**अरुण ! रात्रिमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये। रात्रिमें किया गया श्राद्ध राक्षसी श्राद्ध कहा जाता है। दोनों संध्याओंमें और सूर्यके अस्त होनेपर भी श्राद्ध करना निषिद्ध है।

**अरुणने पूछा—**भगवन् ! माताका श्राद्ध किस प्रकार करना चाहिये और माता किन्हे माना गया है ? नान्दीमुख-पितरोंका पूजन किस प्रकार करना चाहिये, इन्हें मुझे बतानेकी कृपा करे।

**भगवान् आदित्यने कहा—**खगशार्दूल ! मैं मातृ-श्राद्धकी विधि बतला रहा हूँ, उसे सुनिये।

मातृश्राद्धमें पूर्वाह्न-कालमें आठ विद्वान् ब्राह्मणोंको

**भगवान् आदित्यने कहा—**पक्षिराज अरुण ! जो व्यक्ति माता-पिताके मृत्युके दिन, मास और पक्षको नहीं जानता, उस व्यक्तिको अमावास्याके दिन सांवत्सरिक नामक श्राद्ध करना चाहिये। जो व्यक्ति मार्गशीर्ष और माघमें पितरोंके उद्देश्यसे विशिष्ट भोजनादिद्वारा मेरी पूजा-अर्चना करता है, उसपर मैं अति प्रसन्न होता हूँ और उसके पितर भी संतुष्ट हो जाते हैं। पितर, गौ तथा ब्राह्मण—ये मेरे अत्यन्त इष्ट हैं। अतः विशेष धार्तिकपूर्वक इनकी पूजा करना चाहिये।

वेद-विकल्पद्वारा और खोंदारा प्राप्त किया गया धन पितृकार्य और देव-पूजादिमें नहीं लगाना चाहिये। वैश्वदेव कर्मसे होन और भगवान् आदित्यके पूजनसे होन वेदवेत्ता ब्राह्मणको भी निन्द्य समझना चाहिये। जो वैश्वदेव किये बिना ही भोजन कर लेता है वह मूर्ख नरकको प्राप्त करता है, उसका अन्न-पाक व्यर्थ है। प्रिय हो या अप्रिय, मूर्ख हो या विद्वान् वैश्वदेव कर्मके समय आया हुआ व्यक्ति अतिथि होता है और वह अतिथि स्वर्गका संपन्नरूप होता है। जो बिना तिथिका विचार किये ही आता है उसे अतिथि कहते हैं। वैश्वदेव-कर्मके समय जो न तो पहले कभी आया हो और न ही उसके पुनः आनेकी सम्भावना हो तो उस व्यक्तिको अतिथि जानना चाहिये। उसे स्वक्षान् विश्वदेवके रूपमें ही समझना चाहिये।

(अध्याय १८३-१८४)

भोजन करना चाहिये तथा एक और अन्य नवम सर्वदैवत्य ब्राह्मणको भी भोजन देना चाहिये। इस प्रकार गौ ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये। खव, तिल, दधि, गन्ध-पुष्पादिसे युक्त अर्घ्यद्वारा सबको पूजा करनी चाहिये तथा सभी ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। ब्राह्मणोंको मधुर मिष्टान्न भोजन करना चाहिये। भोजनमें कटु पदार्थ नहीं होने चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पिण्डदान देना चाहिये। दही-अक्षतका पिण्ड बनाये। एक घीरस मण्डप बनाकर उसकी प्रदक्षिणा करे। सख्य होकर हाथसे पुरीय कुशों तथा पुष्पोंको चढ़ाना चाहिये। माता, प्रमाता, वृद्धप्रमाता, पितामही, प्रपितामही, वृद्धप्रपितामही तथा अन्य अपने कुलमें

जो भी माताएँ हों, उन्हें आदरपूर्वक निमन्त्रित करना चाहिये। इस प्रकार माताओंको उद्दिष्ट कर छः पिण्ड बनाकर पूजन करना चाहिये। नान्दीमुखको उद्दिष्ट कर पाँच उत्तम ब्राह्मणोंको पाँच पितरोंके रूपमें भोजन करना चाहिये। नान्दीमुख-श्राद्धमें ब्राह्मणोंको विधिवत् भोजन कराकर उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

खगाधपते ! श्राद्धमें दौहित्र अर्थात् नाती, कुतुप वेल्ल (एक

(अध्याय १८५)

### सौरधर्ममें शुद्धि-प्रकरण

भगवान् भास्करने कहा—खगाधिप ! ब्राह्मणोंको नित्य पवित्र तथा मधुरभाषी होना चाहिये, उन्हें प्रतिदिन स्नानादिसे पवित्र हो चन्दनादि सुगन्धित द्रव्योंको धारणकर देवताओंका पूजन आदि करना चाहिये। सूर्यको निष्पोजन नहीं देखना चाहिये और नम्र स्त्रीको भी नहीं देखना चाहिये। मैथुनसे दूर रहना चाहिये। जलमें मूत्र तथा विहाका परित्याग नहीं करना चाहिये। शास्त्रोक्त नियमोंके अनुसार कर्म करने चाहिये। शास्त्र-वर्णित कर्मानुष्ठानके अतिरिक्त कोई भी व्रतादि नहीं करने चाहिये।

खगाधिपते ! अभक्ष्य-भक्षण सभी वर्णोंके लिये वर्जित है। द्रव्यकी शुद्धि होनेपर ही कर्मकी शुद्धि होती है अन्यथा कर्मके फलकी प्राप्तिमें संशय हो बना रहता है। जातिसे दुष्ट, क्रियासे दुष्ट, कालसे दुष्ट, संसर्गसे दुष्ट, आश्रयसे दुष्ट तथा सहल्लेख (स्वभावतः निन्दित एवं अभक्ष्य) पदार्थमें अथवा दूषित हृदयके एवं कापटी व्यक्तिके स्वभावमें परिवर्तन नहीं होता। लहसुन, गाजर, प्याज, कुकुरमुत्ता, बैंगन (सफेद) तथा मूली (लाल) आदि जाल्या दूषित हैं। इनका भक्षण नहीं करना चाहिये। जो वस्तु क्रियाके द्वारा दूषित हो गयी हो अथवा पतितोंके संसर्गसे दूषित हो गयी हो, उसका प्रयोग न करे। अधिक समयतक रखा गया पदार्थ कालदूषित कहलाता है, यह हानिकर होता है, पर दही तथा मधु आदि पदार्थ कालदूषित नहीं होते। सुरा, लहसुन तथा सात दिनोंके अंदर व्यायी हुई गायके दूधसे युक्त पदार्थ और कुत्तेद्वारा स्पर्श किये गये पदार्थ संसर्ग-दुष्ट कहे जाते हैं। इन पदार्थोंका परित्याग करना चाहिये। शुद्धसे तथा विकल्पाङ्ग आदिसे स्पृष्ट पदार्थ आश्रय-दूषित कहा जाता है। जिस वस्तुके भक्षण करनेमें

बड़े दिनका समय) और तिल—ये तीन पवित्र माने गये हैं तथा तीन प्रशंसा-योग्य कहे गये हैं—शुद्धि, अक्रोध और श्रेष्ठता न करना। एक वस्त्र धारण कर देव-पूजन और पितरोंके कर्म नहीं करने चाहिये। बिना उत्तरीय वस्त्र धारण किये पितर, देवता और मनुष्योंका पूजन, अर्चन तथा भोजन आदि सब कार्य निष्फल होता है।

मनमें स्वभावतः घृणा उत्पन्न हो जाती है, जैसे पुरीष (विष्टा) के प्रति स्वभावतः घृणा उत्पन्न होती है—उसे ग्रहण नहीं करना चाहिये। वह सहल्लेख दोषयुक्त पदार्थ कहा गया है। खीर, दूध, पाक्यादिक भक्षण शास्त्रोक्त विधिके अनुसार ही करना चाहिये।

सपिण्डमें दस दिन, बारह दिन अथवा पंद्रह दिन और एक मासमें श्रेत-शुद्धि हो जाती है। सूतकशौच तथा मरणशौचमें दस दिनोंके भीतर किसी व्यक्तिके यहाँ भोजन नहीं करना चाहिये। दशरात्र एवं एकदशहके भीतर जानेपर बारहवें दिन स्नान करनेसे शुद्धि हो जाती है। संवत्सर पूर्ण हो जानेपर स्नान-यात्रसे ही शुद्धि हो जाती है। सपिण्डमें जन्म और मृत्यु होनेपर अशौच लगता है। दाँत आनेतकके बालककी मृत्यु हो जानेपर सद्यः शुद्धि हो जाती है। बूढ़ाकरणके पहले बालककी मृत्यु हो जानेपर एक दिन-रातकी अशुद्धि होती है तथा बूढ़ाकरणके बाद और यशोपवीत लेनेके पहले मृत्यु होनेपर विरात्र अशुद्धि होती है और इसके अनन्तर दशरात्रकी अशुद्धि होती है। गर्भ-स्त्राव हो जानेपर तीन रात्रिके पश्चात् जलसे स्नान करनेके बाद शुद्धि होती है। असपिण्डी (एवं सगोत्री)-की मृत्यु होनेपर तीन अहोरात्रके बाद शुद्धि होती है। यदि केवल शव-यात्र करता है तो स्नानयात्रसे शुद्धि हो जाती है।

द्रव्यकी शुद्धि आगमें तपाने, मिट्टी और जलसे धोने तथा मल हटाने, प्रक्षालन करने, स्पर्श और प्रोक्षण करनेसे होती है। द्रव्य-शुद्धिके पश्चात् स्नान करनेसे शुद्धि होती है। श्रातःकालका स्नान नित्य-स्नान है, ग्रहणमें स्नान करना काव्य-स्नान है तथा खीर और शौचादिके पश्चात् जो स्नान किया जाता है वह नैमित्तिक स्नान है, इससे पापादिकी निवृत्ति होती है।

(अध्याय १८६)

## श्रद्धाकी महिमा, खखोल्लक-मन्त्रका पाहात्य तथा गौकी महिमा

**अरुणने पूछा—**भगवन् आदित्यदेव ! मनुष्य किस पुण्यकर्मका सम्पादन कर स्वर्ग जाते हैं ? कर्मयज्ञ, तपोयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ध्यानयज्ञ और ज्ञानयज्ञ—इन पाँच यज्ञोंमें सर्वोत्तम यज्ञ कौन है ? इन यज्ञोंका क्या फल है और इनसे कौन-सी गति प्राप्त होती है ? धर्म और अधर्मके कितने भेद कहे गये हैं ? उनके साधन क्या हैं और उनसे कौन-सी गति होती है ? नारकी पुरुषोंके पुनः पृथ्वीपर आनेपर भोगसे शेष कर्मोंके कौन-कौनसे चिह्न उपलब्ध रहते हैं ? इस धर्माधर्मसे व्याप्त भवसागर तथा गर्भमें आगमन-रूपी दुःखसे कैसे मुक्ति प्राप्त होती है ? इसे आप बतलानेकी कृपा करें ।

**भगवान् सूर्य बोले—**अरुण ! स्वर्ग और अस्वर्ग (मोक्ष) के फलको देनेवाले तथा नरकरूपी समुद्रसे पार कराने-वाले, पापहारी एवं पुण्यप्रद धर्मको सुनो । धर्मके पूर्वमें तथा मध्यमें और उसके अन्तमें श्रद्धा आवश्यक् है । श्रद्धानिष्ठ ही धर्म प्रतिष्ठित होता है, अतः धर्म श्रद्धामूलक ही है । वेद-ग्रन्थोंके अर्थ अतीव गूढ़तम हैं । उनमें प्रधान पुरुष परमेश्वर अर्थाश्रित हैं, अतः इनमें श्रद्धाके आश्रयसे ही ग्रहण किया जा सकता है । ये इस बाह्य वस्तुसे नहीं देखे जाते । श्रद्धारहित देवता भी भौतिक-भौतिके शरीरको कष्ट देनेपर तथा अव्यधिक अर्थव्यय करनेपर भी धर्मिक सूक्ष्मरूप वेदमय परमात्माको नहीं प्राप्त कर सकते । श्रद्धा परम सूक्ष्म धर्म है, श्रद्धा यज्ञ है, श्रद्धा हवन, श्रद्धा तप, श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है । यह सम्पूर्ण जगत् श्रद्धामय ही है, अश्रद्धासे सर्वस्व जीवन देनेपर भी कुछ फल नहीं होता । बिना श्रद्धाके किया गया कार्य सफल नहीं होता । अतः मानवको श्रद्धा-सम्पन्न होना चाहिये\* ।

हे खगश्रेष्ठ ! अब मैं मण्डलके विषयमें सुनो । मेरा कल्याणमय मण्डल खखोल्लक नामसे विख्यात है । यह तीनों देवों एवं तीनों गुणोंसे परे एवं सर्वज्ञ है । यह सर्वशक्तिमान् है । 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्रमें यह मण्डल अवस्थित है । जैसे घोर

संसार-सागर अनादि है वैसे ही खखोल्लक भी अनादि और संसार-सागरका शोधक है । जैसे व्याधियोंके लिये ओषधि होती है वैसे ही यह संसार-सागरके लिये ओषधि है । मोक्ष चाहनेवालोंके लिये मुक्तिका साधन और सभी अर्थोंका साधक है । खखोल्लक नामका यह मेरा मन्त्र सदा उच्चारण एवं स्मरण करने योग्य है । जिसके हृदयमें यह 'ॐ नमः खखोल्लकाय' मन्त्र स्थित है, उसीने सब कुछ पढ़ा है, सुना है और सब कुछ अनुष्ठित किया है—ऐसा समझना चाहिये ।

मनीषियोंने इस खखोल्लकको भार्तेण्डके नामसे कहा है । उसके प्रति श्रद्धायुक्त होनेपर पुण्य प्राप्त होता है और अश्रद्धासे अधःपतन होता है । सूर्य-सम्बन्धी वचनको कहनेवाले गुरुकी सूर्यके समान पूजा करनी चाहिये । यह गुरु भवसागरमें निमग्न व्यक्तिका उद्धार कर देता है । सौरधर्मरूपी शीतल जलके द्वारा जो अज्ञानरूपी वह्निसे संताप मनुष्यको शांत करता है, उसके समान गुरु कौन होगा ? जो भक्तोंको ज्ञानरूपी अमृतसे आशीर्षित करते हैं, भला उनकी कौन पूजा नहीं करेगा । स्वर्ग और अस्वर्ग (मोक्ष) की प्राप्तिके लिये देवाधिदेव सूर्यके द्वारा जो वाक्य कहे गये हैं, वे अतिशय कल्याणकारी हैं । राग, द्वेष, अक्षमा, क्रोध, काम, लूणाका अनुसरण करनेवाले व्यक्तिका कदा हुआ वाक्य नरकका साधन होनेसे दुर्भीषित कहा जाता है । अविद्यात्मक संसारके क्लेश-साधक मृदुल आलस्यवाले संस्कृत वाक्यसे भी क्या लाभ है ? जिस वाक्यके सुननेसे राग-द्वेष अदिका नाश एवं पुण्य प्राप्त होता है, वह कठोर वाक्य भी अतिशय शोभाजनक है । स्मृतियाँ, महाभारत, वेद, महान् शास्त्र यदि धर्म-साधक न बन सकें तो इनका अध्ययनमात्र अपनी आपुर्ण व्यतीत करनेके लिये ही है । सहस्रों वर्षकी आयु प्राप्त करनेपर भी शास्त्रका अन्त नहीं मिलता । अतः सभी शास्त्रोंको छोड़कर अक्षर तत्मात्र (परमात्मा) का ज्ञान कर परलोकके अनुरूप आचरण करना चाहिये । मनुष्योंके समर्थ

\* श्रद्धापूर्वः सदा धर्मः श्रद्धामध्यक्षमस्तिष्ठति । श्रद्धानिष्ठप्रतिपक्षः धर्मः श्रद्धा प्रसिद्धिः ॥

कृष्णभारतः सूक्ष्मः प्रधानपुरुषः । श्रद्धामयं गूढं न योगः यः पश्यति ॥

कार्यक्षेत्रीयं यदुपरि वैकार्यस्य शक्तिः । धर्मः सत्त्वयुक्तः सूक्ष्मः श्रद्धापूर्वः सूर्यः ॥

श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा यज्ञाद्वे तपः । श्रद्धा मोक्षश्च स्वर्गश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत् ॥

सर्वस्वं जीवितं यदि ददातु श्रद्धा यः यः । ननु यत् स फलं किञ्चित् तस्मान्श्रद्धायां भवेत् ॥ (ब्राह्मपर्व १८७।९—१३)

शरीरसे भी क्या लाभ है जो पारलौकिक पुण्य-भारको वहन करनेमें असमर्थ है। जो सौर-ज्ञानके माहात्म्यको उच्चारण करनेमें असमर्थ है, वह शक्तिसम्पन्न और पण्डित होते हुए भी मूर्ख है। इसलिये जो सौर-ज्ञानके सद्भावकी महिमामें तत्पर रहता है, वही पण्डित, समर्थ, तपस्वी और जितेन्द्रिय है। जो नृप गुरुको सम्पूर्ण पृथिवी, धन और सुवर्ण आदि देकर भी यदि अन्यायपूर्वक सौर-ज्ञानकी जिज्ञासा करता है अर्थात् अन्यायाचरण करते हुए पृष्ठता है तो उसे षडक्षर-मन्त्रका उपदेश गुरुको नहीं देना चाहिये। जो भगवान् सूर्यके धर्मको न्यायपूर्वक विनम्र भावसे सुनता है और कहता है, यह उचित स्थानको प्राप्त करता है, अन्यथा उसके विपरीत नाकको जाता है।

जो भगवान् सूर्यके षडक्षर-मन्त्रसे विधानपूर्वक गोदूध-द्वारा सूर्यकी पूजा करता है वह मनुष्योंमें श्रेष्ठ है। देवासुरोद्धार मन्थन करनेपर क्षीरसागरसे सभी लोकोंकी मातृस्वरूपा पवित्र गौएँ उत्पन्न हुई—नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुमन्ता तथा शोभनावती। गौएँ तेजसे सूर्यके समान हैं। ये सम्पूर्ण संसारका उपकार करनेके लिये एवं देवताओंकी तृप्तिके लिये और मुझे स्नान करानेके लिये उत्पन्न हुई हैं। ये मेरा ही आधार लेकर स्थित हैं। गौओंके सभी अङ्ग पवित्र हैं। उनमें एतों रस निहित हैं। गायके गोबर, मूत्र, गोरोचन, दूध, दही तथा घृत—ये छः पदार्थ परम पवित्र हैं तथा सभी सिद्धियोंको देनेवाले हैं। सूर्यका परम प्रिय विल्ववृक्ष गोमयसे ही उत्पन्न हुआ है, उस वृक्षपर कमलहस्ता लक्ष्मी विराजमान रहती है, अतः यह श्रीवृक्ष कहा जाता है। गोमयसे पट्ट उत्पन्न होता है और उससे कमल उत्पन्न हुए हैं। गोरोचन परम मङ्गलमय, पवित्र और सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। गोमूत्रसे सभी देवोंका

आहार-शस्त्राभ्युपयोग, भास्करके लिये भोग्य एवं प्रियदर्शन सुगन्धित गुग्गुल उत्पन्न हुआ है। जगत्के सभी बीज क्षीरसे उत्पन्न हुए हैं। कामनाको सिद्धिके लिये सभी माहात्म्य वस्तु दहीसे उत्पन्न समझे। देवोंका अतिशय प्रिय अमृत घृतसे उत्पन्न है, अतः घी, दूध, दहीसे भगवान् सूर्यको स्नान करना चाहिये। अनन्तर उष्ण जल और कषायसे स्नान करना चाहिये। फिर शीतल जलसे स्नान कराकर गोरोचनका लेपन एवं विल्वपत्र, कमल और नीलकण्ठमालसे पूजन करना चाहिये। शर्करासुक्त गुग्गुलुसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करें। दूध, दही, भात, मधुके साथ शर्करा एवं विविध भक्ष्य पदार्थोंको निवेदित करें। इसके बाद भगवान् भास्करकी प्रदक्षिणा कर उनसे क्षमा-याचना करें।

इस विधिसे जो दिनपति भगवान् भानुकी षडङ्ग-पूजा करता है, वह इस लोकमें सभी कामनाओंको प्राप्तकर अपने कुलको इक्षीय पीडियोंको स्वर्गमें ले जाता है तथा उन्हें वहाँ प्रेषित कर स्वयं ज्योतिष्क नामक स्थानको प्राप्त करता है। भगवान् भास्करकी पूजामें पत्र, पुष्प, फल, जल जो भी अर्पित होता है वह सब तथा सूर्य-सम्बन्धी गौएँ भी सूर्यलोकको प्राप्त करती हैं, इसमें संदेह नहीं है। देश, काल तथा विधिके अनुकूप षड्द्वयपूर्वक यज्ञात्रको दिया गया अल्प भी दान अक्षय होता है। हे वीर! तिलका अर्धधरिमाणमात्र सत्यात्रको दिया गया षड्द्वयपूर्वक दान सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। जिसने ज्ञानापी जलसे स्नान कर लिया है और शीलरूपी भस्मसे अपनेको शुद्ध कर लिया है, वह सभी पात्रोंमें उत्तम सत्यात्र माना गया है। जप, इन्द्रियदमन और संयम मनुष्यको संसार-मायामें पार उतारनेवाले साधन हैं।

(अध्याय १८७)

## पञ्चमहायज्ञ एवं अतिथि-माहात्म्य-वर्णन, सौर-धर्ममें दानकी महत्ता और पात्रापात्रका निर्णय तथा पञ्च महापातक

सप्ताश्ववाहन (भगवान् सूर्य) ने कहा—हे वीर! जो प्राणी सूर्य, अग्नि, गुरु तथा ब्राह्मणको निवेदन किये बिना स्वयं जो कुछ भी भक्षण करता है वह पाप-भक्षण करता है।

गृहस्थ मनुष्योंके कृषिकर्मसे, वाणिज्यसे, क्रोध और असत्य आदिके आचरणसे तथा पञ्चसूना<sup>१</sup>-दोषसे पाप होते हैं। सूर्य, गुरु, अग्नि और अतिथि आदिके सेवारूप पञ्चमहायज्ञोंसे ये

१-भोजन पात्रकेका स्नान (पूजा), अष्टा आदि पीनेकेका स्नान (पानी आदि), मसाला आदि कुटने-पीनेकेका स्नान (लेंदा, मिल्कट आदि), जल रखनेके स्नान तथा झाड़ू देनेका कर्म—इन्हीं अन्तर्गते ही दानकी सम्भावना रहती है। अतः गुरुत्वके लिये इन्हीं ही पञ्चसूना-दोष कहा गया है।



पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य पापोंसे भी वह लिप्त नहीं होता, अतः इनकी नित्य पूजा करनी चाहिये। देवाधिदेव दिवाकरके प्रति जो इस प्रकार भक्ति करता है, वह अपने पितरोंको सभी पापोंसे विमुक्त कर स्वर्ग ले जाता है।

हे स्वर्ग ! भगवान् सूर्यकी दर्शनमात्रसे ही गङ्गा-जानका फल एवं उन्हें प्रणाम करनेसे सभी तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है तथा सभी पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। संध्या-समयमें सूर्यकी सेवा करनेवाला सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। एक बार भी भगवान् सूर्यकी अराधना करनेसे ब्रह्म, विष्णु, महेश, पितृगण तथा सभी देवगण एक ही साथ पूजित एवं संतुष्ट हो जाते हैं।

ब्राह्मण भगवान् सूर्यकी पूजा करने तथा सौर-भक्तोंको भोजन करनेसे पितृगण तृप्त हो जाते हैं। पुराणवेत्ताको आते हुए देखकर सभी अशेषधियाँ यह कहकर आनन्दसे नृत्य करने लगती हैं कि आज हमें अक्षय स्वर्ग प्राप्त होगा। पितृगण एवं देवगण अतिथिके रूपमें लोकके अनुग्रह और ब्रह्माके परीक्षणके लिये आते हैं, अतः अतिथिको आया हुआ देखकर हाथ जोड़कर उसके सम्मुख जाना चाहिये तथा स्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अन्न आदिद्वारा उसकी सेवा करनी चाहिये। अतिथि रूप-सम्पन्न है या कुरूप, मलिन वस्त्रधारी है अथवा स्वच्छ वस्त्रधारी इसपर विद्वान् पुरुषको विचार नहीं करना चाहिये; उसका यथेष्ट स्वागत करना चाहिये।

अरुण ! दान सत्पात्रको ही देना चाहिये, जैसे कछे मिट्टीके पात्रमें रखा हुआ द्रव—जल आदि पदार्थ नष्ट हो जाता है, जैसे ऊपर-भूमिमें बोया गया बीज और धस्यमें हवन किया गया हव्य पदार्थ निष्फल हो जाता है वैसे ही अपात्रको दिया गया दान भी निष्फल हो जाता है।

स्वर्गश्रेष्ठ ! जो दान करुणापूर्वक ब्रह्माके साथ प्राणियोंको दिया जाता है, वह सभी कर्मोंमें उत्तम है। होन, अन्न, कृपण, बाल, वृद्ध तथा ओतुरको दिये गये दानका फल अनन्त होता है। साथ पुरुष दाताके दानको अपने स्वार्थका उद्देश्य न

रखकर ग्रहण करते हैं। इससे दाताका उपकार होता है। कोई अर्थों यदि घरपर आये तो कौन ऐसा व्यक्ति है जो उसका आदर नहीं करेगा। घर-घर याचना करनेवाला याचक पूज्य नहीं होता। कौन दाता है और कौन याचक इसका भेद देना और लेनेवालेके हाथसे ही सूचित हो जाता है। जो दाता व्यक्ति याचकको आया हुआ देखकर दान देनेकी अपेक्षा उसकी पात्रतापर विचार करता है, वह सभी कर्मोंको करता हुआ भी पारम्परिक दाता नहीं है। संसारमें यदि याचक न हों तो दानधर्म कैसे होगा ? इसलिये याचकको 'स्वागत है, स्वागत है'—यह कहते हुए दान देना चाहिये।

याचकको प्रेमपूर्वक आधा हास भी दिया जाय तो वह श्रेष्ठ है, किन्तु बिना प्रेमका दिया हुआ बहुत-सा दान भी व्यर्थ है, ऐसा मनीषियोंने कहा है। इसलिये अनन्त फल चाहनेवाले व्यक्तिको सत्कारपूर्वक दान देना चाहिये। इससे मरनेपर भी उसकी कीर्ति बनी रहती है। प्रिय एवं मधुर वचनोंद्वारा दिया गया दान कल्याणकारी है, किन्तु कठोरतासे असत्कारपूर्वक दिया गया दान युक्त दान नहीं है। अनराध्यासे कुछ होकर याचकको दान देनेसे न देना अच्छा है। प्रेमसे रहित दान न धर्म है, न धन है, न श्रेष्ठ है। दान, प्रदान, नियम, यज्ञ, ध्यान, हवन और तप—ये सभी क्रोधके साथ करनेपर निष्फल हो जाते हैं।

ब्रह्माके साथ आदरपूर्वक ग्रहीताका अर्चन कर दान देनेवाले तथा ब्रह्म एवं आदरपूर्वक दान ग्रहण करनेवाले—दोनों स्वर्ग प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत देना और लेना ये दोनों नरक-प्राप्तिके कारण बन जाते हैं। उदारता, स्वागत, मैत्री, अनुकम्पा, अमत्सर—इन पाँच प्रकारोंसे दिया गया दान महान् फल देनेवाला होता है।

हे स्वर्गश्रेष्ठ ! वाराणसी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, गङ्गा और समुद्रतट, तैमिषारण्य, महापुण्य, मूलस्थान, मुण्डारिस्वामी (उड़ीसाका कोणार्कक्षेत्र) कालप्रिय (कालपी), शौरिक्रवाम—ये स्थान देवताओं और पितरोंसे सेवित कहे गये हैं। सभी सूर्याश्रम, पर्वतोंसे युक्त सभी नदियाँ, गी, सिद्ध

१-न तदानमसत्कारकुरूप्यमौलिकृन्म । कां न दनमर्थिभ्यः संकुटंवल्लभयन् ॥

न तदने न ये श्रोतर्न धर्मो विपक्षितः । दानब्रह्मर्नवनप्राप्यन् हृते तपः ॥

फलैर्नापि कृते सर्वं क्रोधोऽज्य निष्फले स्वर्ग ॥

(ब्राह्मपर्व १८९। १९-२०)

और मुनियोंसे प्रतिष्ठित स्थान पुण्यक्षेत्र कहे गये हैं। सूर्यमन्दिरसे युक्त स्थानोंमें रहनेवालेको दिया गया थोड़ा भी दान क्षेत्रके प्रभावसे अनन्त फलप्रद होता है। सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, उतरायण, विषुव, व्यतीपात, संक्रान्ति—ये सब पुण्यकाल कहे गये हैं। इनमें दान देनेसे पुण्यको वृद्धि होती है। भक्तिभाव, परमप्रीति, धर्म, धर्मभावना तथा प्रतिपत्ति—ये पाँच श्रद्धाके पर्याय हैं। श्रद्धापूर्वक विधानोंके साथ सुपात्रको दिया गया दान उत्तम एवं अनन्त फलप्रद कहा गया है, अतः अक्षय पुण्यकी इच्छासे श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। इसके विपरीत दिया गया दान भारस्वरूप ही है। अर्त, दोन और गुणवान्को श्रद्धाके साथ थोड़ा भी दिया गया दान सभी कामनाओंका पूरक और सभी श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त करनेवाला होता है। मनीषियोंने श्रद्धाको ही दान माना है। श्रद्धा ही दान, श्रद्धा ही परम तप तथा श्रद्धा ही यज्ञ और श्रद्धा ही परम उपवास है। अहिंसा, क्षमा, सत्य, नम्रता, श्रद्धा, इन्द्रियसंयम, दान, यज्ञ, तप तथा ध्यान—ये दस धर्मके साधन हैं।

पर-स्त्री तथा परद्रव्यकी अपेक्षा करनेवाला और गुरु, अर्त, अशक्त, विदेशमें गये हुए तथा शत्रुसे पराभूत व्यक्तिको कष्ट देनेवाला पापकर्मा कहा जाता है। ऐसे व्यक्तियोंका परित्याग कर देना चाहिये, किंतु उसकी भावी तथा उसके मित्र

एवं पुत्रका अपमान नहीं करना चाहिये। उनका अवमान करना गुरुनिन्दाके समान पातक माना गया है। ब्राह्मणको मारनेवाला, सुर-पान करनेवाला, स्वर्ण-खोर, गुरुकी शय्यापर शयन करनेवाला एवं इनके साथ सम्पर्क रखनेवाला—ये पाँच महापातक कहे गये हैं। जो ब्रह्मेध, द्वेष, भय एवं लोभसे ब्राह्मणका अपमान करता है, वह ब्रह्महत्याका कहा गया है। जो याचना करनेवालेको और ब्राह्मणको कुलाकर 'मेरे पास कुछ नहीं है' ऐसा कहकर बिना कुछ दिये लौटा देता है, वह चाण्डालके समान है। देव, द्विज और गौके लिये पूर्वप्रदत्त भूमिका जो अपहरण करता है, वह ब्रह्मघात है। जो मूर्ख सौख्यान्को प्राप्तकर उसका परित्याग कर देता है अर्थात् तदनुकूल आचरण नहीं करता, उसे सुर-पान करनेवालेके समान जानना चाहिये। अग्निहोत्रके परित्यागी, माता और पिताके परित्यागी, कुलकर्मके साक्षी, निजके हन्ता, सूर्य-भक्तोंके अप्रियको और पञ्चयज्ञोंके न करनेवाले, अमक्ष्य-मक्षण करनेवाले तथा निरपराध प्राणियोंको मारनेवालेको सर्वोपपत्त्यकी प्राप्ति नहीं होती। सर्वजगत्यति भानुकी आराधनासे आत्मलोकका आधिपत्य प्राप्त होता है। अतः मोक्षकामीको भोगकी आसक्तिका परित्याग कर देना चाहिये। जो विरक्त है, शान्तचित्त है, वे सूर्यसम्बन्धी लोकको प्राप्त करते हैं। (अध्याय १८८-१८९)

### पातक, उपपातक, यममार्ग एवं यमयातनाका वर्णन

सप्ताश्वतिलक भगवान् सूर्यने कहा—जगज्ज्ञ ! मानसिक, वाचिक तथा कायिक-भेदसे पाप अनेक प्रकारके होते हैं, जो नरक-प्राप्तिके कारण हैं। उन्हें मैं संक्षेपमें बतला रहा हूँ—

गौओंके मार्गमें, वनमें, नगरमें और घाटमें आग लगाना आदि सुरापानके समान महापातक माने गये हैं। पुरुष, स्त्री, हाथी एवं घोड़ोंका हरण करना तथा गोचरभूमिमें उत्पन्न फसलोंको नष्ट करना, चन्दन, अगरु, कपूर, कस्तूरी, रेशमी वस्त्र आदिकी चोरी करना और धरोहर (धाती) बस्तुस अपहरण करना—ये सभी सुवर्णस्तोत्रके समान महापातक माने गये हैं। कन्याका अपहरण, पुत्र एवं मित्रकी स्त्री तथा भगिनीके प्रति दुराचरण, कुमारी कन्या और अत्यजकी स्त्रीके साथ सहवास, सवर्णोंके साथ गमन—ये सभी गुरु-द्रव्यपर शयन (गुरुपत्नी-गमन)के समान महापातक माने गये हैं।

ब्राह्मणको अर्थ देनेका वचन देकर नहीं देनेवाले, सदाचारिणी पत्नीका परित्याग करनेवाले, साधु, यन्त्र एवं तपस्विषोका त्याग करनेवाले, गौ, भूमि, सुवर्णको प्रयत्नपूर्वक चुरानेवाले, भगवद्भक्तोंको उपवीडित करनेवाले, धन, धान्य, कृप तथा यन्त्र आदिकी चोरी करनेवाले तथा अपूज्योंकी पूजा करनेवाले—ये सभी उपपातकी हैं।

नारियोंकी रक्षा न करना, ऋषियोंको दान न देना, देवता, अग्नि, साधु, माध्वी, गौ तथा ब्राह्मणकी निन्दा करना पितर एवं देवताओंका उच्छेद, अपने कर्तव्य-कर्मका परित्याग, दुःशैल्यता, नस्तिक्ता, पशुके साथ कटाचार, रजःस्रवसे दुष्टाचार, अप्रिय खोलना, फूट डालना आदि उपपातक कहे गये हैं।

जो गौ, ब्राह्मण, सत्य-सम्पदा, तपस्वी और साधुओंके दूषक हैं, वे नरकगामी हैं। परिश्रमसे तपस्या करनेवालेका

छिद्रान्वेषण करनेवाला, पर्वत, गोशाला, अग्नि, जल, वृक्षोंकी छाया, उद्यान तथा देवायतनमें मल-मूत्रका परित्याग करनेवाला, काम, क्रोध तथा मदसे आविष्ट पराये दोषोंके अन्वेषणमें तत्पर, पाश्र्विकोंका अनुगामी, मार्ग रोकनेवाला, दूसरेकी सौभाग्य अपहरण करनेवाला, नीच कर्म करनेवाला, भूतोंके प्रति अतिशय निर्दयी, पशुओंका दमन करनेवाला, दूसरेकी गुप्त बातोंको कान लगाकर सुननेवाला, गौको मारने अथवा उसे बार-बार त्रास देनेवाला, दुर्बलकी सहायता न करनेवाला, अतिशय भारसे प्राणीको कष्ट देनेवाला और असमर्थ पशुको जोतनेवाला—ये सभी पातकी कहे गये हैं तथा नरकगामी होते हैं। जो परीक्षामें किसी प्रकार भी सरसोंके बराबर किसीका धन चुरता है, वह निश्चित ही नरकमें जाता है। ऐसे पापियोंको मृत्युक उपरान्त यमलोकमें खतना-शरीरकी प्राप्ति होती है। यमकी आज्ञासे यमदूत उसे यमलोकमें ले जाते हैं और वहाँ उसे बहुत दुःख देते हैं। अधर्म करनेवाले प्राणियोंके शास्ता धर्मराज कहे गये हैं। इस लोकमें जो पर-स्त्रीगामी हैं, चोरी करते हैं, किसीके साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करते हैं तो इस लोकका राजा उन्हें दण्ड देता है। परंतु छिपकर पाप करनेवालोंको धर्मराज दण्ड देते हैं। अतः किये गये पापोंका प्रायश्चित्त करना चाहिये। अनेक प्रकारके शास्त्र-कथित प्रायश्चित्तोंके द्वारा पातक नष्ट हो जाते हैं। शरीरसे, मनसे और वाणीसे किये गये पाप बिना भोगे अन्य किसी प्रकारसे कोटि कल्पोंमें भी नष्ट नहीं होते। जो व्यक्ति स्वयं अच्छा कर्म करता है, करता है या उसका अनुमोदन करता है, वह उत्तम सुख प्राप्त करता है।

**सप्ताष्टतिलक भगवान् सूर्यने पुनः कहा—**हे खगश्रेष्ठ ! पाप करनेवालोंको अपने पापोंके निमित्त और सेजस भोगना पड़ता है। गर्भस्थ, जायमान, बालक, तरुण, मध्यम, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, नपुंसक सभी शरीरधारियोंको यमलोकमें अपने किये गये शुभ और अशुभ फलोंको भोगना पड़ता है। वहाँ सत्यवादी चित्रगुप्त आदि धर्मरजको जो भी शुभ और अशुभ कर्म बतलाते हैं, उन कर्मोंका फल उस प्राणीको अवश्य ही भोगना पड़ता है। जो सौम्य-हृदय, दया-समन्वित एवं शुभकर्म करनेवाले हैं, वे सौम्य पथसे और जो मनुष्य क्रूर कर्म करनेवाले एवं पापाचरणमें संलग्न हैं, वे शीघ्र

दक्षिण-मार्गसे कष्ट सहन करते हुए यमपुरीमें जाते हैं। वैवस्वतपुरी छियासी हजार अस्सी योजनमें है। शुभ कर्म करनेवाले व्यक्तियोंको यह धर्मपुरी समीप ही प्रतीत होती है और रौद्रमार्गसे जानेवाले पापियोंको अतिशय दूर। यमपुरीका मार्ग अत्यन्त भयंकर है, कहीं कटि बिछे है और कहीं बालू-ही-बालू है, कहीं तलवारकी धारके समान है, कहीं नुकीले पर्वत हैं, कहीं असह्य कड़ी धूप है, कहीं साइयाँ और कहीं लोहेकी कीले हैं। कहीं वृक्षों तथा पर्वतोंसे गिराया जाता हुआ वह पापी व्यक्ति प्रेतांश में युक्त मार्गमें दुःखित हो यात्रा करता है। कहीं ऊबड़-खाबड़, कहीं कंकरीले और कहीं तप्त बालुकामय मार्गोंसे चलना पड़ता है। कहीं-अन्धकाराच्छन्न भयंकर कष्टमय मार्गसे बिना किसी आश्रयके जाना पड़ता है। कहीं सींगोंसे परिध्वात मार्गसे, कहीं दावाग्रसे परिपूर्ण मार्गसे, कहीं तप्त पर्वतसे, कहीं हिमाच्छादित मार्गसे और कहीं अग्निमय मार्गसे गुजरना पड़ता है। उस मार्गमें कहीं सिंह, कहीं व्याघ्र, कहीं काटनेवाले भयंकर कबूट्टे, कहीं भयंकर जोक, कहीं अजगर, कहीं भयंकर मल्लिकार्जुन, कहीं विष यमन करनेवाले सर्प, कहीं विशाल बलेश्वर प्रमादी राजसमूह, कहीं भयंकर चिच्छू, कहीं खड़े-खड़े भूगोवाले महिष, रौद्र हाकिमिन्ध, कर्णल राक्षस तथा महान् भयंकर व्याधियाँ उसे पीड़ित करती हैं, उन्हें भोगता हुआ पापी व्यक्ति यममार्गमें जाता है। उसपर कभी पाषाणकी वृष्टि होती है, कभी बिजली गिरती है तथा कभी वायुके झंझावातोंमें वह उलझाया जाता है और कहीं अंगारोंकी वृष्टि होती है। ऐसे भयंकर मार्गोंसे पापाचरण करनेवाले भूख-प्याससे व्याकुल मूढ़ पापीको यमदूत यमलोककी ओर ले जाते हैं।

अतः पाप छोड़कर पुण्य-कर्मका आचरण करना चाहिये। पुण्यसे देवत्व प्राप्त होता है और पापसे नरककी प्राप्ति होती है। जो थोड़े समयके लिये भी मनसे भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह कभी भी यमपुरी नहीं जाता। जो इस पृथिवीपर सभी प्रकारसे भगवान् भास्करकी पूजा करते हैं, वे पापसे वैसे ही रिक्त नहीं होते, जैसे कमलपत्र जलसे रिक्त नहीं होता। इसलिये सभी प्रकारसे भुवन-भास्करकी भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिये।

### सप्तमी-व्रतमें दन्तधावन-विधि-वर्णन

भगवान् सूर्यने कहा—विनतानन्दन अरुण ! सौभाग्यकी प्राप्ति होती है ।

अयनकाल, विषुवकाल, संक्रान्ति तथा ग्रहणकालमें सदा भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये । सप्तमीमें तो विशेषरूपसे उनकी पूजा करनी चाहिये । सप्तमियाँ सात प्रकारकी कही गयी हैं—अर्कसम्पुटिका-सप्तमी, मरीचि-सप्तमी, निम्ब-सप्तमी, फलसप्तमी, अनोदना-सप्तमी, विजय-सप्तमी तथा सातवीं काष्मिका-सप्तमी । माघ मास या मार्गशीर्ष मासमें शुद्ध पक्षके सप्तमीको उपवास ग्रहण करना चाहिये । आर्त व्यक्तिके लिये मास और पक्षका नियम नहीं है । रात बीतनेमें जब आधा प्रहर शेष रहे, तब दन्तधावन करना चाहिये । महर्षिके दंतुक्तासे दन्तधावन करनेपर पुत्र-प्राप्ति, भैरव्यासे दुःखनाश, कटरी (वेर) और बृहती (भटकटैया) से शीघ्र ही रोगमुक्ति, बिल्वसे ऐश्वर्य-प्राप्ति, खैरसे धन-संचय, कटम्बासे शत्रुनाश, अतिमुक्तकसे अर्थप्राप्ति, आठरूपक (अठ्ठसा) से गुरुता प्राप्त होती है । पीपलके दातूनसे यज्ञ और जातिमें प्रधानता तथा करवीरसे अचल परिज्ञान प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं । शिरीषकी दातूनसे विपुल लक्ष्मी और प्रियंगुके दातूनसे परम

अर्थप्राप्त अर्थकी सिद्धिके लिये सुखपूर्वक बैठकर कणिका संयम करके निम्न लिखित मन्त्रसे दातूनके वृक्षको प्रार्थना कर दातून करे—

वरं त्वामभिजानामि कामदं च वनस्पते ।

सिद्धिं प्रयच्छ मे नित्यं दन्तकाष्ठ वमोऽस्तु ते ॥

(ब्राह्मपर्व १९३।१३)

‘वनस्पते । आप श्रेष्ठ कामनाओंको प्रदान करनेवाले हैं, ऐसा मैं भस्त्रेर्भाँति जानता हूँ । हे दन्तकाष्ठ ! मुझे सिद्धि प्राप्त करावे । आपको नमस्कार है ।’

इस मन्त्रका तीन बार जप करके दन्तधावन करना चाहिये ।

दूसरे दिन पवित्र होकर भगवान् सूर्यको प्रणाम कर यथेष्ट जप करे । तदनन्तर अग्निमें स्नान करे । अपराह्न-कालमें मिट्टी, गोबर और जलसे स्नानकर विधिपूर्वक नियमोंके साथ दूध वस्त्र धारण कर पवित्र हो, देवाधिदेव दिवाकरकी भक्तिपूर्वक विधिपूर्वक पूजा और गायत्रीका जप करे । (अध्याय १९३)

### स्वप्न-फल-वर्णन तथा उदक-सप्तमी-व्रत

भगवान् सूर्यने कहा—हे सागश्रेष्ठ । व्रतोंकी चाहिये कि जप, होम आदि सभी क्रियाओंको विधिपूर्वक सम्पन्न कर देवाधिदेव भगवान् सूर्यका ध्यान करता हुआ भूमिपर शयन करे । स्वप्नमें यदि मनुष्य भगवान् सूर्य, इन्द्रध्वज तथा चन्द्रमाको देखे तो उसे सभी समृद्धियाँ सुलभ होती हैं । मृत्तर, पौधर, दर्पण, स्वर्णालंकार, रुधिरसाव तथा केशशतको देखे तो ऐश्वर्यलाभ होता है । स्वप्नमें वृक्षाधिरोपण शीघ्र ऐश्वर्यदायक है । महिषी, सिंही तथा गौका अपने हाथसे दोहन और इनका बन्धन करनेपर राज्यका लाभ होता है । नाभिका स्पर्श करनेपर दुर्बुद्धि होती है । पेड़ एवं सिंहको तथा जलमें उत्पन्न जन्तुको मारकर स्वयं खानेसे, अपने अङ्ग, अस्थि, अग्नि-भक्षण, मदिरा-पान, सुवर्ण, चाँदी और पद्मपत्रके पात्रमें खीर खानेपर उसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है । घृत या युद्धमें विजय देखना

सुखद होता है । अपने शरीरके ग्रन्थिलन तथा शिरोबन्धन देखनेसे ऐश्वर्य प्राप्त होता है । माला, गृह वस्त्र, अश्व, पशु, पक्षीका लाभ और विद्याका अनुलेपन प्रशंसनीय माना गया है । अश्व या रथपर यात्राका स्वप्न देखना शीघ्र ही संततिके आगमनका सूचक है । अनेक सिर और भुजाएँ देखनेपर घरमें लक्ष्मी आती है । वेदाध्ययन देखना श्रेष्ठ है । देव, द्विज, श्रेष्ठ वीर, गुरु, वृद्ध तपस्वी स्वप्नमें मनुष्यको जो कुछ कहें उसे सत्य ही मानना चाहिये<sup>१</sup> । इनका दर्शन एवं आशीर्वाद श्रेष्ठ फलदायक है । पर्वत, अश्व, सिंह, बैल और हाथीपर विशिष्ट पराक्रमके साथ स्वप्नमें जो आरोहण करता है, उसे महान् ऐश्वर्य एवं सुखकी प्राप्ति होती है । ग्रह, तारा, सूर्यका जो स्वप्नमें परिवर्तन करता है और पर्वतका उन्मूलन करता है, उसे पृथ्वीपति होनेका संकेत मिलता है । शरीरसे अंतिक्रम निकलना, समुद्र



एवं नदियोंका पान करना ऐश्वर्य-प्राप्तिका सूचक है। जो स्वप्ने समुद्रको एवं नदीको साहसके साथ पार करता है, उसे धिरजीवी पुत्र होता है। यदि स्वप्ने कृमिको भक्षण करना देखता है, तो उसे अर्यकी प्राप्ति होती है। सुन्दर अश्वोंको देखनेसे लाभ होता है। मङ्गलकारी वस्तुओंसे योग होनेपर आरोग्य और धनकी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

भगवान् भास्कर अज्ञानभक्तिको दूरकर अपनी अवलभित प्रदान करते हैं, उनके विधिपूर्वक पूजन करनेके पश्चात्

सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम कर प्रार्थना करनी चाहिये। जो व्यक्ति भगवान् भास्करकी पूजा करता है, वह उत्तम विमानमें बैठकर सूर्यलेकको जाता है। विधिपूर्वक पूजन करनेके पश्चात् उनके यथेष्ट मन्त्रोंका जप तथा हवन करना चाहिये। सप्तमीके दिन भगवान् सूर्यनारायणका विधिपूर्वक पूजन कर केवल आधी अङ्गुलि जल पीकर ज्ञत करनेको उदकसप्तमी कहते हैं, यह सदैव सुख देनेवाली है।

(अध्याय १९४—१९७)



### सूर्यनारायणकी महिमा, अर्घ्य प्रदान करनेका फल तथा आदित्य-पूजनकी विधियाँ

महाराज शतानीकने कहा—सुमन्तु मुने ! इस लोकमें ऐसे कौन देवता हैं जिनकी पूजा-स्तुति करके सभी मनुष्य शुभ-पुण्य और सुखका अनुभव करते हैं। सभी धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म कौन है ? आपके विचारसे कौन पूजनीय है तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता किसकी पूजा-अर्चना करते हैं और आदिदेव किस देवताको कहा जाता है ?

सुमन्तुजी बोले—राजन् ! मैं इस विषयमें भगवान् वेदव्यास और भीष्मपितामहके उस संवादको कह रहा हूँ जो सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा सुख प्रदान करनेवाला है, उसे आप सुनें।

एक समय गङ्गाके किनारे वेदव्यासजी बैठे हुए थे। वे अश्विके समान जागृतव्यमान, तेजमें आदित्यके सम्बन्ध, साक्षात् नारायणतुल्य दिखायी दे रहे थे। भगवान् वेदव्यास महाभारतके कर्ता तथा वेदके अर्थोंको प्रकाशित करनेवाले हैं और ऋषियो तथा राजर्षियोंके आचार्य हैं, कुरुवंशके स्वामी हैं, साथ ही मेरे परमपूज्य हैं। इन वेदव्यासजीके पास कुरुश्रेष्ठ महातेजस्वी भीष्मजी आये और उन्हें प्रणाम कर कहने लगे।

भीष्मपितामहने पूछा—हे महामो पराशरनन्दन ! आपने सम्पूर्ण वाङ्मयकी व्याख्या मुझसे की है, किन्तु मुझे भगवान् भास्करके सम्बन्धमें संशय उत्पन्न हो गया है। सर्वप्रथम भगवान् आदित्यको नमस्कार करनेके पश्चात् ही अन्य देवताओंको नमस्कार किया जाता है। इसमें क्या कारण है ? ये भगवान् भास्कर कौन हैं ? कहाँसे उत्पन्न हुए हैं ? हे द्विजश्रेष्ठ ! इस लोकके कल्याणके लिये उस परम तत्त्वको कहिये। मुझे जाननेकी बड़ी ही अभिलाषा है।

सं० भ० पु० अ० ७—

व्यासजीने कहा—भीष्म ! आप अवश्य ही किङ्कर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है कि भगवान् भास्करकी स्तुति, पूजन-अर्चन सभी सिद्ध और ब्रह्मादि देवता करते हैं। सभी देवताओंमें आदिदेव भगवान् भास्करको ही कहा जाता है। वे संसार-सागरके अन्धकारको दूरकर सब लोकों और दिशओंको प्रकाशित करते हैं। ये सभी धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्मस्वरूप हैं। ये पूज्यतम हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवता आदिदेव भगवान् आदित्यकी ही पूजा करते हैं। आदित्य ही आदिति और कश्यपके पुत्र हैं। ये आदिकर्ता हैं, इसीलिये भी आदित्य कहे जाते हैं। भगवान् आदित्यने ही सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न किया है। देवता, असुर, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, पक्षी आदि तथा इन्द्रादि देवता, ब्रह्मा, दक्ष, कश्यप सभीके आदिकारण भगवान् आदित्य ही हैं। भगवान् आदित्य सभी देवताओंमें श्रेष्ठ और पूजित हैं।

भीष्मपितामहने पूछा—पराशरनन्दन महर्षि व्यासजी ! यदि भगवान् सूर्यनारायणका इतना अधिक प्रभाव है तो प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल— इन तीनों कालोंमें राक्षसादि कैसे इन्हें स्तुत करते हैं तथा भगवान् आदित्य फिर कैसे चक्रवत् घूमते रहते हैं ? हे द्विजोत्तम ! यह उन्हें कैसे ग्रसित करता है ?

व्यासजीने कहा—पिशाच, सर्प, डाँकिली, दानव आदि जो क्रोधमें उत्पन्न हो भगवान् सूर्यनारायणपर आक्रमण करते हैं, भगवान् सूर्यनारायण उन्हें प्रताड़ित करते हैं। यह मुहूर्तादि कालस्वरूप भगवान् सूर्यका ही प्रभाव है। संसारमें धर्म एकमात्र भगवान् सूर्यका आधार लेकर प्रवर्तित होता है। ब्रह्मादि देवता सूर्यमण्डलमें स्थित रहते हैं। भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार

करनेमात्रसे ही सभी देवताओंको नमस्कार प्राप्त हो जाता है। तीनों कालोंमें संध्या करनेवाले ब्राह्मणजन भगवान् आदित्यको ही प्रणाम करते हैं। भगवान् भास्करके बिम्बके नीचे राहु स्थित है। अमृतकी इच्छा करनेवाला राहु विमानस्य अमृत-घटसे थोड़ा भी अमृत छलकनेपर उस अमृतको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे जब विमानके अति संनिवृत्त पहुँचता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि राहुने सूर्यनारायणको प्रसित कर लिया है, उसे ही ग्रहण कहा जाता है। आदित्य भगवान्को कोई प्रसित नहीं कर सकता, क्योंकि वे ही इस बराबर जगत्का विनाश करनेवाले हैं। दिन, रात्रि, मुहूर्त आदि सब आदित्य भगवान्के ही प्रभावसे प्रकाशित होते हैं। दिन, रात्रि, धर्म, अधर्म जो कुछ भी इस संसारमें दृष्टिगोचर हो रहा है, उन सबको भगवान् आदित्य ही उत्पन्न करते हैं। वे ही उसका विनाश भी करते हैं। जो व्यक्ति भगवान् आदित्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, उस व्यक्तिको भगवान् आदित्य प्रीति ही संतुष्ट होकर कर प्रदान करते हैं तथा बाज, शीर्ष, सिद्धि, ओषधि, धन-धान्य, सुवर्ण, रूप, सौभाग्य, आरोग्य, यश, कीर्ति, पुत्र, पौत्रादि और मोक्ष आदि सब कुछ प्रदान करते हैं, इसमें संदेह नहीं है।

**भीष्मने कहा—**महात्मन् ! अब आप मुझसे सौरधर्मके स्नानकी विधि रहस्यसहित बतलायें। जिससे भगवान् आदित्यकी पूजाकर मनुष्य सभी प्रकारके दोषोंमें छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

**व्यासजी बोले—**भीष्म ! मैं सौर-स्नानकी संक्षिप्त विधि बतला रहा हूँ, जो सभी प्रकारके पापोंको दूर कर देती है। सर्वप्रथम पवित्र स्थानसे मृत्तिका ग्रहण करे, तदनन्तर उस मृत्तिकाको दक्षिणमें लगाये। फिर जलको अभिमन्त्रित कर स्नान करे। शङ्ख, तुलसी आदिसे ध्वनि करते हुए सूर्यनारायणका ध्यान करना चाहिये। भगवान् सूर्यके 'ह्रीं ह्रीं सः' इस मन्त्रराजसे आचमन करना चाहिये। फिर देवताओं एवं ऋषियोंका तर्पण और स्तुति करनी चाहिये। अप्सव्य होकर पितरोंका तर्पण करे। अनन्तर संध्या-वन्दन करे। उसके बाद भगवान् भास्करको अञ्जलिसे जल देना चाहिये। स्नान करनेके बाद श्यशर-मन्त्र 'ह्रीं ह्रीं सः' अथवा षडशर-मन्त्र 'स्वस्वोल्काय नमः' का जप करना चाहिये। जिस मन्त्रराजसे पूर्वमें कहा है उस मन्त्रराजसे हृदयादि न्यास करना चाहिये।

मन्त्रको हृदयङ्गम कर भगवान् सूर्यनारायणको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। एक ताम्रपात्रमें गन्ध, त्वल चन्दन आदिसे सूर्य-मण्डल बनाकर उसमें करवीर (कनेर) आदिके पुष्प, गन्धोदक, रक्तचन्दन, कुश, तिल, चावल आदि स्थापित कर घुटनेको मोड़ उस ताम्र-पात्रको उठाकर सिरसे लगाये और भक्तिपूर्वक 'ह्रीं ह्रीं सः' इस मन्त्रराजसे भगवान् सूर्यनारायणको अर्घ्य प्रदान करे। जो व्यक्ति इस विधिसे भगवान् आदित्यको अर्घ्य निवेदन करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। हजारों संक्रान्तियों, हजारों चन्द्रग्रहणों, हजारों ग्रेटनी तथा पुष्कर एवं कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल केवल सूर्यनारायणको अर्घ्य प्रदान करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। सौर-दीक्षा-विहीन व्यक्ति भी यदि भगवान् आदित्यको सेवसरपर्यन्त अर्घ्य प्रदान करता है तो उसे भी वही फल प्राप्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। फिर दीक्षाको ग्रहण कर जो विधिपूर्वक अर्घ्य प्रदान करता है, वह व्यक्ति इस संसार-सागरको पारकर भगवान् भास्करमें विरहीन हो जाता है।

**भीष्मने कहा—**भगवन् ! आपने पाप-हरण करनेवाली स्नान-विधि तो बता दी, अब कृपाकर उनकी पूजा-विधि बतायें, जिससे मैं भगवान् सूर्यकी पूजा कर सकूँ।

**व्यासजी बोले—**भीष्म ! अब मैं आदित्य-पूजनकी विधि कह रहा हूँ, आप सुनें। आदित्यपूजनको चाहिये कि स्नानादिसे पवित्र होकर किसी शुद्ध एकान्त स्थानमें प्रसन्न होकर भास्करकी पूजा करे। वह श्रेष्ठ सुन्दर आसनपर पूर्वाभिमुख बैठे। सूर्य-मन्त्रोंसे करन्यास एवं हृदयादि-न्यास करे। इस प्रकार आत्मशुद्धिकर न्यासद्वारा भगवान् सूर्यकी अपनेमें भावना करे। अपनेको भास्कर समझकर स्थण्डिलपर भानुकी स्थापना करके विधिवत् पूजा करे। दक्षिण-पार्श्वमें पुष्पकी टोकरी एवं वाम पार्श्वमें जलसे परिपूर्ण ताम्रपात्र स्थापित करे। पूजाके लिये उपकल्पित सभी द्रव्योंका अर्घ्यपात्रके जलमें प्रोक्षण कर पूजन करे, अनन्तर मन्त्रवेत्ता एकप्रचित होकर सूर्यमन्त्रोंका जप करे।

**भीष्मने कहा—**भगवन् ! अब आप भगवान् सूर्यकी वैदिक अर्घ्य-विधि बतलायें।

**व्यासजी बोले—**भीष्म ! आप इस सम्बन्धमें सुरज्येष्ठ

ब्रह्मा तथा विष्णुके मध्य हुए संवादको सुनें। एक बार ब्रह्माजी मेरुपर्वतपर स्थित अपनी मनोवती नामकी सभामें सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उसी समय विष्णुभगवान्ने प्रणाम कर उनसे कहा—‘ब्रह्मन् ! आप भगवान् भास्करकी आराधना-विधि बतायें और मण्डलस्थ भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये, इसे कहें।’

ब्रह्माने कहा—महाबाहो ! आपने बहुत उत्तम बात पूछी है, आप एकाग्रचित्त होकर भगवान् भास्करकी पूजन-विधि सुनिये।

सर्वप्रथम शास्त्रोक्त विधिसे भूमिका विधिवत् शोधनकर केसर आदि गन्धोंसे सात आवरणोंसे युक्त कर्णिकसमन्वित एक अष्टदलकमल बनाये। उसमें दीप्ता आदि सूर्यकी दिव्य अष्ट शक्तियोंको पूर्वादि-क्रमसे ईशानकोणतक स्थापित करे। बीचमें सर्वतोमुखी देवीकी स्थापना करे। दीप्ता सूर्य, ज्यो, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युत् और सर्वतोमुखी—ये नौ सूर्यशक्तियाँ हैं। इन शक्तियोंका अवाहनकर पदकी कर्णिकाके ऊपर भगवान् भास्करकी स्थापित करना चाहिये। ‘उदु त्वं जातवेदसः’ (यजुः ७।४१) तथा ‘अग्नि दूतः’ (यजुः २२।१७) —ये मन्त्र अवाहन और उपस्थानके कहे गये हैं। ‘आ कुण्ठोन रजसाः’ (यजुः ३३।४३) तथा ‘ह्यः सः शुचिषद्’ (यजुः १०।२४) इन मन्त्रोंसे भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। ‘अपसे तारकः’ मन्त्रसे दीप्तादेवीकी पूजा करे। ‘अदुप्रमस्य केतवो’ (यजुः ८।४०) मन्त्रसे सूर्यमादेवीकी, ‘तारणिर्विद्यदर्शतो’ (यजुः ३३।३६) से जयाकी, ‘प्रत्याह्देवानाः’ इस मन्त्रसे भद्राकी, ‘येना प्रायक चक्षमाः’ (यजुः ३३।३२) इस मन्त्रसे विभूतिकी, ‘विद्यामेवि’ इस मन्त्रसे विमलादेवीकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकारसे अमोघा, विद्युत् तथा सर्वतोमुखी देवियोंकी भी पूजा करनी चाहिये। अनन्तर वैदिक मन्त्रोंसे सप्तावरण-पूजन-पूर्वक मध्यमें भगवान् सूर्यकी पूजा करे। भगवान् सूर्य एक चक्रवाले रथपर बैठकर श्वेत कमलपर स्थित हैं। उनका त्रल वर्ण है। वे सर्वाभरणभूषित तथा सभी लक्षणोंसे समन्वित और महातेजस्वी हैं। उनका विम्ब वर्तुलकार है। वे अपने हाथोंमें कमल और धनुष लिये हैं। ऐसे उनके स्वरूपका ध्यानकर नित्य श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये।

भगवान् विष्णुने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! मण्डलस्थ भगवान् भास्करकी प्रतिमालूपमें किस प्रकारसे पूजा की जाय, उसे आप यत्नपूर्वक कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—हे सुव्रत ! आप एकाग्रचित्त-मनसे प्रतिमा-पूजन-विधिको सुनिये। ‘इमे स्तोः’ (यजुः १।१) इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यके सिर-प्रदेशका पूजन करना चाहिये। ‘अग्निमैत्रेः’ (ऋः १।१।१) इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यके दक्षिण हाथकी पूजा करनी चाहिये। ‘अग्न आ याहि’ (ऋः ६।१६।१०) इस मन्त्रसे सूर्यभगवान्के दोनों चरणोंकी पूजा करनी चाहिये। ‘आ जिघ्रः’ (यजुः ८।४२) इस मन्त्रसे पुष्पमाला समर्पित करनी चाहिये। ‘योगे योगे’ (यजुः ११।१४) इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये। ‘समुद्रं गच्छ’ (यजुः ६।२१) तथा ‘इमं मे गङ्गे’ (ऋः १०।७५।५) तथा ‘समुद्रज्येष्ठाः’ (ऋः ७।४९।१) इन मन्त्रोंसे उन्हें अंगराग लगायें। ‘आ प्रायसः’ (यजुः १२।११२) इस मन्त्रसे दुग्ध-स्नान, ‘दधिक्वाण्ये’ (यजुः २३।३२) इस मन्त्रसे दधिस्नान, ‘तेजोऽसि शुक्लः’ (यजुः २२।१) इस मन्त्रसे घृत-स्नान तथा ‘था ओषधीः’ (यजुः १२।७५) इस मन्त्रद्वारा ओषधि-स्नान करायें। इसके बाद ‘द्विष्ठा’ (यजुः २३।३४) इस मन्त्रसे भगवान्का उद्घाटन करे। फिर ‘था नस्तोके’ (यजुः १६।१६) इस मन्त्रसे पुनः स्नान करायें। ‘विष्णो रराट’ (यजुः ५।२१) इस मन्त्रसे गन्ध तथा जलसे स्नान करायें। ‘स्वर्णं धार्यः’ (यजुः १८।५०) इस मन्त्रसे पाप देना चाहिये। ‘इदं विष्णुर्वि चक्षमे’ (यजुः ५।१५) इस मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। ‘वेदोऽसि’ (यजुः २।२१) इस मन्त्रसे यज्ञोपवीत और ‘बृहस्पते’ (यजुः २६।२३) इस मन्त्रसे तन्त्र-उपवस्त्र आदि भगवान् सूर्यको चढ़ाना चाहिये। इसके अनन्तर पुष्पमाला चढ़ायें। ‘धूरसि धूर्वः’ (यजुः १।८) इस मन्त्रसे गुगुलुसहित धूप दिखाना चाहिये। ‘समिद्धो’ (यजुः २९।१) इस मन्त्रसे रोचना लगायें। ‘दीर्घायुस्तः’ (यजुः १२।१००) इस मन्त्रसे आलक्त (आलता) लगायें। ‘सहस्रशीर्षा’ (यजुः ३१।१) इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यके सिरका पूजन करना चाहिये। ‘संभावया’ इस मन्त्रसे दोनों नेत्रों और ‘विद्युत्तश्च’ (यजुः १७।१९) इस मन्त्रसे

भगवान् सूर्यके सम्पूर्ण शरीरका स्पर्श करना चाहिये। 'श्रीऽहं लक्ष्मीऽहम्' (यजु- ३१।२२) इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए विधिपूर्वक भगवान् सूर्यनारायणका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजन-अर्चन करना चाहिये। (अध्याय १९८—२०२)

### भगवान् भास्करके व्योम-पूजनकी विधि तथा आदित्य-माहात्म्य

**विष्णु भगवान्ने पूछा—**हे सुरश्रेष्ठ चतुष्पत्न ! अब आप भगवान् आदित्यके व्योम-पूजनकी विधि बतलाये। अष्ट-शुद्धयुक्त व्योमस्वरूप भगवान् भास्करकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये।

**ब्रह्माजीने कहा—**महाबाहो ! सुवर्ण, चाँदी, ताम्र तथा लोहा आदि अष्ट धातुओंसे एक अष्ट शुद्धमय व्योम बनाकर उसकी पूजा करनी चाहिये। सर्वप्रथम उसके मध्यमें भगवान् भास्करकी पूजा करनी चाहिये। 'महिषासो-' इस मन्त्रसे अनेक प्रकारके पुण्योंको चढ़ाना चाहिये। 'ज्ञानारविन्द-' (यजु- २०।५०) तथा 'उदीरताम्यवर-' (यजु- १९।४९) इत्यादि वैदिक मन्त्रोंसे शुद्धोंकी तथा 'नमोऽस्तु सर्वभ्यो-' (यजु- १३।६) इस मन्त्रसे व्योमपीठकी पूजा करनी चाहिये। जो व्यक्ति ग्रहोंके साथ सब पापोंको दूर करनेवाले व्योम-पीठस्थ भगवान् सूर्यको नमस्कार कर उनका पूजन करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

भगवान् भास्करकी पूजा करके गुस्से सुन्दर वस्त्र, जुता, सुवर्णकी औगूठी, गंध, पुष्प, अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ निवेदित करने चाहिये। जो व्यक्ति इस विधिसे उपवास रखकर भगवान् सूर्यकी पूजा-अर्चना करता है, वह बहुत पुण्यप्राप्त, बहुत धनवान् और कीर्तिमान् हो जाता है। भगवान् सूर्यके उत्तरायण तथा दक्षिणायन होनेपर उपवास रखकर जो व्यक्ति उनकी पूजा करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञ करनेका फल, विद्या, कीर्ति और बहुतसे पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय जो व्यक्ति उपवास रखकर भगवान् भास्करकी पूजा-अर्चना आदि करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

इसी प्रकार भगवान् भास्करके स्वयं व्योमकी प्रतिमा

बनाकर उसकी प्रतिष्ठा और वैदिक मन्त्रोंसे विविध उपचारोंद्वारा उसकी पूजा करे। पूजनके अनन्तर ऋग्वेदकी पाँच ऋचाओंसे भगवान् आदित्यकी परास्तुति करे। इसके बाद भास्करको अष्टाङ्ग निवेदित करे। अनन्तर भगवान् सूर्यकी टीका, सुस्नान, जप, भद्रा, विभूति, विमल, अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी नामवाली नौ दिव्य शक्तियोंका पूजन करे।

इस विधिसे जो भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह इस लोक और परलोकमें सभी मनःकामनाओंको पूर्ण कर लेता है। पुत्र चाहनेवालेको पुत्र तथा धन चाहनेवालेको धन प्राप्त हो जाता है। कन्यायोंको कन्या और वेदार्थोंको वेद प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति निष्कलमभावसे भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, उसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। इतना कहकर ब्रह्माजी शांत हो गये।

**व्यासजीने पुनः कहा—**हे भोम ! अब आप ध्यान करने योग्य ग्रहोंके स्वरूपका तथा भगवान् आदित्यके माहात्म्यका श्रवण करे। भगवान् सूर्यका वर्ण ज्वालाकुसुमके समान लाल है। वे महातेजस्वी श्वेत पदपर स्थित हैं। सभी लक्षणोंसे समन्वित हैं। सभी अलङ्कारोंसे विभूषित हैं। उनके एक मुख है, दो भुजाएँ हैं। रक्त वस्त्र धारण किये हुए वे ग्रहोंके मध्यमें स्थित हैं। जो व्यक्ति तीनों समय एकाग्रचित्त होकर उनके इस रूपका ध्यान करता है, वह शीघ्र ही इस लोकमें धन-धान्य प्राप्त कर लेता है और सभी पापोंसे छूटकर तेजस्वी तथा बलवान् हो जाता है। श्वेत वर्णके चन्द्रमा, रक्त वर्णके मंगल, रक्त तथा श्याम-मिश्रित वर्णके बुध, पीत वर्णके बृहस्पति, शङ्ख तथा दूधके समान श्वेत वर्णके शुक्र, अञ्जनके समान कृष्ण वर्णके शनि, लज्जवर्तके समान नील वर्णके राहु और केतु कहे गये हैं। इन ग्रहोंके साथ ग्रहोंके अधिपति भगवान्

१-

उच्छान् पुष्करवन्त वीरवन्ति धर्मिनः प्रथमवन्तम् ।

चत्वारि वाक् परिमिता पद्वि तानि विदुर्ब्रह्मणा ये कर्त्तव्यः । गुहा शनिं निहितं मेघवर्षितं सुरीये कान्ते मनुष्या वदन्ति ॥  
इन्द्रं विन्दे वरुणमग्निमिन्द्रायो दिव्यः स सूर्यो जगत्पतिः । एकं सत् विन्दे बहुधा वदन्तस्मिं यमे भर्तारिभानवाहः ॥  
कृष्णं निगन्ते हरयः सूर्याय अतो वस्तस्य दिक्कुलवर्षिः । उ आकृष्टवन्तस्तद्गन्तव्यदिदं पूतेन पृथिवी व्युद्यते ॥  
ये स्वर्गा वसुकिर् वः सुतः सरस्वति रमिह धारणे कः ।



सूर्यनारायणका जो व्यक्ति ध्यान एवं पूजन करता है, उसे द्वादश ही महासिद्धि प्राप्त हो जाती है, सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं तथा महादेवत्वकी प्राप्ति हो जाती है।

सूर्यनारायणके समान कोई देवता नहीं और न ही उनके समान कोई गति देनेवाला है। सूर्यके समान न तो ब्रह्मा हैं और न अग्नि। सूर्यके धर्मके समान न कोई धर्म है और न उनके समान कोई धन। सूर्यके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है और न तो कोई शुभचिन्तक ही है। सूर्यके समान कोई माता नहीं और न तो कोई गुरु ही है। सूर्यके समान न तो कोई तीर्थ है और न उनके समान कोई पवित्र ही है। समस्त लोकों, देवताओं तथा पितरोंमें एक भगवान् सूर्य ही व्याप्त हैं, उनका ही स्तवन, अर्चन तथा पूजन करनेसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणकी आराधना करता है, वह इस भवसागरको पार कर जाता है। भगवान् सूर्यके प्रसन्न हो जानेपर राजा, चोर, ग्रह, सर्प आदि पीड़ा नहीं देते तथा दमिद्धता और सभी दुःखोंमें भी निवृत्ति हो जाती है।

रविवारके दिन ब्रह्म-भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यनारायणकी पूजाकर नक्त व्रत करनेवाला व्यक्ति अमरत्वको प्राप्त करता है।



### सप्त-सप्तमी तथा द्वादश मास-सप्तमी-व्रतोंका वर्णन

इतानीकने कहा—मुने! भगवान् भास्करको अति प्रिय जिन अर्कसम्पुटिका आदि सात सप्तमी-व्रतोंकी आपने पूर्वमें चर्चा की है, उन्हें बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तुजी बोले—महामते! मैं सात सप्तमियोंका वर्णन कर रहा हूँ, उन्हें सुनिये। पहली सप्तमी अर्कसम्पुटिका नामकी है। दूसरी मरिचसप्तमी, तीसरी निम्बसप्तमी, चौथी फलसप्तमी पवित्री अनोदनासप्तमी, छठी विजयसप्तमी तथा सातवीं कामिका नामकी सप्तमी है। इनकी संज्ञा विधि इस प्रकार है—

उत्तरायण या दक्षिणायनमें, शुक्ल पक्षमें, रविवारके दिन ग्रहणपं, पुलिङ्गवाची नक्षत्रमें—इन सप्तमी-व्रतोंको ग्रहण करना चाहिये। व्रतोंको जितेन्द्रिय, पवित्रता-सम्पन्न और ब्रह्मचारी होकर सूर्यकी अर्चनामें रत रहना चाहिये तथा जप-होमार्चनमें तत्पर रहना चाहिये। व्रतोंको चाहिये कि पञ्चमीके दिन एकभुक्त रहकर षष्ठीके दिन जितेन्द्रिय रहे एवं निन्द्य पदार्थोंका भक्षण न करे। अर्क-सेवनसे पहली सप्तमी,

भगवान् मार्तण्डकी प्रीतिके लिये जो संक्रान्तिमें विधिपूर्वक श्राद्ध करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। जो व्यक्ति भास्करकी प्रीतिके लिये उपवास रखकर षष्ठी या सप्तमीके दिन विधिवत् श्राद्ध करता है, वह सभी दोषोंसे निवृत्त होकर सूर्यलोकको प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति सप्तमीके दिन विशेषकर रविवार अथवा ग्रहणके दिन भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा करता है, उसको सभी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। ग्रहणके दिन भगवान् भास्करका पूजन करना उन्हें अतिप्रिय है। भगवान् आदित्य परमदेव हैं और सभी देवताओंमें पूज्य हैं। उनको पूजा कर व्यक्ति इच्छित फलको प्राप्त कर लेता है। धन चाहनेवालेको धन, पुत्र चाहनेवालेको पुत्र तथा मोक्षार्थीको मोक्ष प्राप्त हो जाता है और वह अमर हो जाता है।

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! भीष्मसे ऐसा कहकर वेदव्यसजी अपने स्वनको चले गये और भीष्मने भी ब्रह्म-भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यनारायणकी विधि-विधानसे पूजा की। राजन्! अद्य भी भगवान् भास्करकी पूजा करें, इससे आपको शश्वत स्थान प्राप्त होगा। (अध्याय २०३—२०७)

मरिचसे दूसरी सप्तमी तथा निम्बपत्रसे तीसरी सप्तमी व्यतीत करें। फलसप्तमीमें फलोंका भक्षण करना चाहिये। अनोदना-सप्तमीके दिन अन्न भक्षण न करके उपवास करें। विजय-सप्तमीके दिन वायु भक्षण कर उपवास करें। कामिका सप्तमीको भी हविष्य भोजनकर यथाविधि सम्पन्न करना चाहिये। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन सप्तमी-व्रतोंको करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त कर लेता है।

अर्कसम्पुटिका-व्रतसे सात पीढ़ीतक अवलम्बिता बनी रहती है। मरिच-सप्तमीके अनुष्ठानसे प्रिय पुत्रादिका साथ बना रहता है। निम्बसप्तमीके पालनसे सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है और फल-सप्तमी-व्रतके करनेसे व्रती अनेक पुत्र-पौत्रादिसे युक्त हो जाता है। अनोदना-सप्तमीके व्रतसे धन-धान्य, पशु, सुवर्ण, आरोग्य तथा सुख सदा सुलभ रहते हैं। विजय-सप्तमीका व्रत करनेसे शत्रुगण नष्ट हो जाते हैं। कामिका-सप्तमीका विधिवत् अनुष्ठान करनेसे पुत्रकी

कामना करनेवाला पुत्र, अर्थको कामना करनेवाला अर्थ, विद्या-प्राप्तिको कामना करनेवाला विद्या और राज्यको कामना करनेवाला राज्य प्राप्त करता है। पुण्य हो या कर्म इस व्रतको विधिपूर्वक सम्पन्न कर परमशक्तिको प्राप्त कर लेते हैं। उनके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। उनके कुलमें न कोई अंधा होता है, न कुली, न नग्नसक और न कोई विकलवृद्ध तथा न निर्धन। लोभवश, प्रमादवश या अज्ञानवश यदि व्रत-भङ्ग हो जाय तो तीन दिनतक भोजन न करे और मुष्णन कराकर प्रायश्चित्त करे। पुनः व्रतके नियमोंको ग्रहण करे।

**सुमन्तुजीने कहा—**राजन् ! वैशाख वारह मासोंकी शुद्ध सप्तमियोंमें गोमय, यावक, सुखे पत्ते, दूध अथवा भिक्षान्न भक्षण कर अथवा एकभुक् रहकर उपवास करना

चाहिये। भगवान् सूर्यको पूजा कमल-पुष्प, नाना प्रकारके गन्ध, चन्दन, गुग्गुलु धूप आदि विविध उपचारोंसे करनी चाहिये तथा इन्हीं उपचारोंसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी भी पूजा कर उन्हें तर्पणा देकर संतुष्ट करना चाहिये। इससे व्रतीको अपार तर्पणाकाले यज्ञोंका फल प्राप्त होता है और वह सूर्यलोकमें पूजित होता है। वैशाख वारह मासोंमें पूजित होनेवाले भगवान् सूर्यके बारह नाम इस प्रकार हैं—वैश्वेदे विष्णु, वैश्वक्त्रमे अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान्, आषाढमें दिवाकर, श्रावणमें परजन्य, भाद्रपदमें वरुण, आश्विनमें मार्तण्ड, कार्तिकमें भागीव, मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भग तथा फाल्गुनमें त्वष्टा।

(अध्याय २०८-२०९)

### अर्कसम्पुटिका-सप्तमीव्रत-विधि, सप्तमी-व्रत-माहात्म्यमें कौटुम्बिका आस्थान

**सुमन्तुजी बोले—**राजन् ! फाल्गुन मासके शुद्ध पक्षकी सप्तमीको अर्कसप्तमी कहते हैं। इसमें पक्षीको उपवास रहकर स्नान करके गन्ध, पुष्प, गुग्गुलु, अर्क-पुष्प, श्वेत कारवीर एवं चन्दनादिसे भगवान् दिवाकरकी पूजा करनी चाहिये। रविकी प्रसन्नताके लिये वैश्वदेव गृहोदक समर्पित करे। इस प्रकार दिनमें भानुकी पूजा करके रातमें निद्राहित होकर उनके मन्त्रका जप करे।

**शतानीकने पूछा—**मुने ! भगवान् सूर्यका प्रिय मन्त्र कौन-सा है ? उसे बोलते और धूप-दीपका भी निर्दिश करें जिससे उस मन्त्रका जप करता हुआ मैं दिवाकरकी पूजा कर सकूँ।

**सुमन्तुजीने कहा—**हे भरतश्रेष्ठ ! मैं इस विधिको संक्षेपमें कह रहा हूँ। व्रतीको चाहिये कि एकाग्रचित्त होकर षडक्षर-मन्त्रका जप, होम तथा पूजा आदि सभी कर्म समाहित करे। सर्वप्रथम यथाशक्त गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। सौरी गायत्री-मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ भास्कराय विद्महे सहस्ररश्मिं धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयान्।' इसे भगवान् सूर्यने स्वयं कहा है। यह सौरी गायत्री-मन्त्र परम श्रेष्ठ है। इसका श्रद्धापूर्वक एक बार जप करनेसे ही मानव पवित्र हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। सप्तमीके दिन प्रातःकाल एकाग्रचित्त हो उस मन्त्रका जप करे

और भीष्मपूर्वक भास्करकी पूजा करे। राजन् ! यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये। धनकी कंजुसी न करे। जो सूर्यके प्रति श्रद्धा-सम्पन्न नहीं है, उन्हें भोजन नहीं करना चाहिये। शाल्योदन, पैर, अपूप, गुहमे धने पुर, दूध तथा दहीका भोजन करना चाहिये। इससे भास्कर तृप्त होते हैं। भोजनके वस्तु पदार्थ इस प्रकार हैं—कुलधी, मसूर, सेम तथा खड़ी। उड़द आदि, कड़ुका तथा दुर्गन्धयुक्त पदार्थ भी निषेधित नहीं करने चाहिये।

अर्कवृक्षकी 'ॐ सप्तोल्काय नमः' से पूजा कर अर्कजलवृक्षोंको शरण करे। फिर स्नानकर अर्क-पुष्पसे रविकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये और 'अर्को मे प्रीयताम्' सूर्यदेव मुझपर प्रसन्न हो, ऐसा कहे। तदनन्तर देवताके सम्मुख दत्त और ओंकार स्पष्ट किये बिना निम्नलिखित मन्त्रसे अर्कसम्पुटकी प्रार्थना करते हुए जलके साथ पूर्वाभिमुख होकर अर्कपुट निगल जाय।

ॐ अर्कसम्पुट भद्रं ते सुभद्रं मेऽस्तु वै सदा।

यमापि कुरु भद्रं ते प्राशनम् वित्तले भय ॥

(वाक्यार्थ २१०।७३)

इस मन्त्रका जप करते हुए जो अर्कका ध्यान करता है तथा अर्कसम्पुटका प्राशन करता है, वह श्रेष्ठ शक्ति प्राप्त होता है।

दाँतसे स्पर्श न किये जानेके कारण अर्कपुट अर्कसम्युक्त कहलाता है। जो इस विधिसे वर्षभर सूर्यनारायणकी प्रसन्नताके लिये श्रद्धापूर्वक सप्तमी-व्रत करता है, उस मनुष्यका धन सात पीढ़ीतक अक्षय तथा अवल हो जाता है। हे राजन् ! इस व्रतके अनुष्ठानसे सामगान करनेवाले महर्षि कौथुमि कुष्ठरोगसे मुक्त हो गये तथा सिद्धि प्राप्त की। साथ ही बृहद्वल्क, राजा जनक, महर्षि याज्ञवल्क्य तथा कृष्णपुत्र साम्ब—इन सबने भी भगवान् सूर्यकी पूजा करके और इस व्रतके अनुष्ठानसे उनकी साम्यता प्राप्त कर ली। यह अर्क-सप्तमी पवित्र, पाषाणदिनी, पुण्यप्रद तथा धन्य है। अपने कल्याणके लिये इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये।

**शतानीकने पूछा—**मुने ! जनक आदिने भगवान् सूर्यकी पूजा करके जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त की, उसे तो मैंने बहुधा सुना है, किन्तु महर्षि कौथुमिने किस प्रकार अर्कको आराधना कर सिद्धि प्राप्त की और वे कैसे कुष्ठ-रोगसे मुक्त हुए, इसका मुझे ज्ञान नहीं है। वे कौथुमि कौन थे, उन्हें कैसे कुष्ठ हुआ ? हे द्विजप्रेष्ठ ! किस प्रकार उन्होंने देवाधिदेव दिवाकरकी आराधना की ? इन सभी बातोंको मुझे संक्षेपमें सुनाये।

**सुमन्तुजीने कहा—**राजन् ! अपने बहुत अच्छी विज्ञप्ता की है। इस विषयको आप श्रवण करो। प्राचीन कालमें हिरण्यनाभ नामके एक विद्वान् ब्राह्मण थे। वे अपने पुत्रके साथ महाराजा जनकके आश्रमपर गये। वहाँ अनेक ब्राह्मणोंके साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। क्रोधवश कौथुमिसे एक ब्राह्मणका वध हो गया। पुत्रके द्वारा विप्रको मारा गया देखकर पिताने कौथुमिका परित्याग कर दिया। सज्जने तथा कुटुम्बियोंने भी उनका खलिष्कार कर दिया। शोक और दुःखसे दुःखी होकर वे दिव्य देवाल्लयोंमें गये और उन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्राएँ कीं, किन्तु ब्रह्महत्यासे मुक्ति न मिल सकी। ब्रह्महत्याके कारण उन्हें भयंकर कुष्ठ नामक व्याधिने ग्रस्त कर लिया। नाक, कान आदि अङ्ग गलकर गिर गये। शरीरसे पौध और रक्त बहने लगा। समस्त पृथ्वीपर घूमते हुए वे पुनः अपने

पिताके घर आये। दुःखसे व्याकुलचित हो उन्होंने अपने पितासे कहा—‘तात ! मैं पवित्र तीर्थों और अनेक देवाल्लयोंमें गया, किन्तु इस क्रूर ब्रह्महत्यासे मुक्त नहीं हो सका। प्रायश्चित्त करनेपर भी मुझे इससे छुटकारा नहीं मिला है। अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कैसे मैं रोगसे मुक्ति पाऊँ ? हे अनप। अल्प परिश्रम-साध्य जिस कर्मके करनेसे इस ब्रह्महत्यारूपी व्याधिसे मुझे छुटकारा मिले, उस उपायको आप शीघ्र बताये और मेरा कल्याण करें।’

**हिरण्यनाभने कहा—**पुत्र ! पृथ्वीमें घूमते हुए तुमने जो प्रेश प्राप्त किया है, उसे मैं भर्त्स्यभाँति जानता हूँ। तुम अनेक तीर्थोंमें गये और प्रायश्चित्त भी किये, परंतु ब्रह्महत्यासे मुक्ति न मिली, अब मैं एक उपाय बताता हूँ, उस उपायसे तुम अन्यायस ही ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाओगे।

**कौथुमिने कहा—**विधो ! मैं ब्रह्मादि देवोंमें किसकी आराधना करूँ ? मैं तो शरीरसे भी विकल हूँ, अतः सभी कर्मोंका यथावत् सम्पादन मुझसे सम्भव नहीं है, फिर किस प्रकार मैं देवताको संतुष्ट कर सकूँगा।

**हिरण्यनाभने कहा—**ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, वरुण आदि देवताओंमें भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा की है और इसी व्रतण वे स्वर्गलोकमें आनन्दित हो रहे हैं। हे पुत्र ! मैं भगवान् सूर्यके समान किसी भी देवताको नहीं जानता हूँ। वे सभी जगन्नाओंको देनेवाले और माता-पिता तथा सभीके मान्य हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। इसीलिये तुम उनके मन्त्रका जप करते हुए तथा सामवेदके मन्त्रोंका गान करते हुए भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करो और उनसे सम्बन्धित इतिहास-पुराण आदिका श्रवण करो, इससे तुम्हें शीघ्र ही रोगसे मुक्ति मिलेगी और तुम मोक्ष प्राप्त कर लगे।

**सुमन्तुजीने कहा—**राजन् ! सामगान करनेवाले महर्षि कौथुमिने श्रद्धा-समन्वित हो अपने पिताद्वारा निर्दिष्ट सूर्योपसनाकी विधिसे भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी आराधना की। भगवान् भास्करकी कृपासे महर्षि कौथुमि दिव्य मूर्तिमान् हो गये और उन्होंने भगवान् भास्करके दिव्य मण्डलमें प्रवेश किया<sup>१</sup>। (अध्याय २१०-२११)

१-महर्षि कौथुमि एक वैदिक मन्त्रब्रह्मा ऋषि हैं। सामवेद-संहिताकी कौथुमि शम्भो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और इस समय वही प्राप्त हैं। उसका द्रष्टा ऋषि वही हैं। वे प्रायः सम्भग भी कहलाते हैं। सौतकीय चरकचूड-ग्रन्थमें सामवेदकी ऋषि एक हजार शालाओंकी विसृत्त वर्ण्य हैं।

### मरिच-सप्तमी-व्रत-वर्णन

**सुमन्तुजीने कहा—**हे वीर ! मैं तुमको अर्कसमर्पितकालकी संक्षिप्त विधि बतलाया। अब मरिच-सप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, इसमें मरिचका भक्षण किया जाता है। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिको उपवास रहकर सौरधर्मकी विधिसे अनुसार भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा करना चाहिये। 'ॐ वं फट्' यह महाबलशाली मन्त्र साक्षात् सूर्यस्वरूप हो है। इसका बारम्बार स्मरण एवं जप करनेसे मानव एक वर्षमें ही देवेश भगवान् भास्करका दर्शन प्राप्त कर लेता है और अन्तमें व्याधि तथा मृत्युसे मुक्त हो सूर्यलोकको प्राप्त करता है। व्रती आत्मशुद्धार्थ मरिच-सप्तमीके दिन सौर-मन्त्र एवं मुद्राओंसे हृदयादि अङ्गन्यास कर प्राणायाम आदि करे। भगवान्को अर्घ्य प्रदान करे। विविध पुष्पोंको अर्पित करे। स्नान कराये, नैवेद्य अर्पित करे। संयत होकर सूर्यमन्त्रोक्त जप करे। व्योममुद्रा दिखकर प्रदक्षिणा करे, तबन करे और हृदयमुद्रासे भगवान्का विसर्जन करे। भगवान्को पूजन आदि कर्मोंमें तत्पश्चात् मुद्राओंकी दियाये। मुद्राओंके नाम इस प्रकार हैं—किकिणी, व्याम, अक्ष, पंचिनी, अकिणी, ज्वालिनी, तेजनी, गभसिनी, शिखिनी, सूर्यवक्त्र, सहस्रकिरण, उदया, मध्यमा, अस्तमनी, मालिनी, तर्जनी तथा कुम्भमुद्रा। इन मुद्राओंके साथ जो भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, उससे वे

प्रसन्न हो जाते हैं। इस विधिसे ब्रह्माने भगवान् सूर्यकी पूजा की थी। राजन् ! तुम भी इस विधिसे भास्करकी पूजा करो। इस विधिसे जो सदा रविकी पूजा करता है, वह भगवान् सूर्यदेवके दिव्य भाषको प्राप्त कर लेता है। नृप ! इस विधिसे देवेशकी पूजा कर यथाशक्ति ब्राह्मणकी विधिपूर्वक भोजन कराकर सप्तमीके दिन मन्त्रपूर्वक सूर्यका स्मरण करते हुए मौन होकर भोजन करे और भोजनसे पहले मरिचकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

ॐ खखोल्काय स्वाहा। प्रीयता प्रियसङ्गदो भव स्वाहा ॥

ऐसा करनेसे व्रतीको प्रिय व्यक्तिको सम्भोग उसी क्षण प्राप्त हो जाता है। यह मरिच-सप्तमी प्रियसंगमदायिनी और पुण्यको प्रदान करनेवाली तथा कर्मन्त्राओंकी पूर्ति करनेवाली है। एक वर्षतक इस सप्तमी-व्रतका पालन करनेसे पुत्रदिकोसे विषोग नहीं होता। इसीलिये महाबाहो! इस प्रियदायिनी सप्तमीको तुम भी करो। देवराज इन्द्रने इस मरिच-सप्तमीको उपवास कर महाराज्ञी शर्वीका सङ्ग प्राप्त किया था। महाबलशाली राजा नलने भी इस सप्तमीको उपवास कर दमयन्तीको प्राप्त किया था और श्रीरामने भी इस सप्तमीके दिन उपवास कर भगवती सीताको प्राप्त किया था।

(अध्याय २१२—२१४)

### निम्ब-सप्तमी तथा फलसप्तमी-व्रतका वर्णन

**सुमन्तुजीने कहा—**हे वीर ! अब मैं तृतीय निम्ब-सप्तमी (वैशाख शुक्ल-सप्तमी)की विधि बतला रहा हूँ, आप सुने। इसमें निम्ब-पत्रका सेवन किया जाता है। यह सप्तमी सभी तरहके व्याधियोंको हरनेवाली है। इस दिन राधेमें शङ्खधनुष, शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये हुए भगवान् सूर्यका ध्यान कर उनकी पूजा करनी चाहिये। भगवान् सूर्यका मूल मन्त्र है—'ॐ खखोल्काय नमः'। 'ॐ आदित्याय विद्महे विश्वभागाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।' यह सूर्यका गायत्री-मन्त्र है।

पूजामें सर्वप्रथम समाहित-चित्त होकर प्रयत्नपूर्वक मन्त्रपूत जलसे पूजाके उपचारोंका प्रोक्षण करे। अपनेमें भगवान् सूर्यकी भावना करके उनका ध्यान करते हुए मन्त्रवित् हृदय आदि अङ्गोंमें मन्त्रका विन्यास करे। सम्मार्जनी मुद्रासे

दिशतओका प्रतिबोधन करे। भूशोधन करना चाहिये। पूजाकी यह विधि सप्तेक लिये अभीष्ट फल देनेवाली है।

पवित्र स्थानमें कर्णिकायुक्त एक अष्टदल-कमल बनाये, उसमें आवाहिनी मुद्राके द्वारा भगवान् सूर्यका आवाहन करे। वहाँपर मनोहर-स्वरूप खखोल्क भगवान् सूर्यको स्नान कराये। मन्त्रमूर्ति भगवान् सूर्यकी स्थापना और स्नान आदि कर्म मन्त्रोंद्वारा करने चाहिये। आग्नेय दिशामें भगवान् सूर्यके हृदयको, ईशानकोणमें सिरकी, नैऋत्यकोणमें शिखाकी एवं पूर्वदिशामें दोनों नेत्रोंकी भावना करे। इसके अनन्तर ईशानकोणमें सोम, पूर्व दिशामें मंगल, आग्नेयमें बुध, दक्षिणमें वृहस्पति, नैऋत्य दिशामें शुक्र, पश्चिममें शनि, वायव्यमें केतु और उत्तरमें राहुकी स्थापना करे। कमलकी द्वितीय कक्षामें



भगवान् सूर्यके तेजसे उत्पन्न द्वादश आदित्यों—धन, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूष, चन्द्र तथा विष्णुको स्थापित करे। पूर्वमें इन्द्र, दक्षिणमें यम, पश्चिममें वरुण, उत्तरमें कुबेर, ईशानमें ईश्वर, अग्निक्षेत्रमें अग्निदेवता, वैश्वदेवमें पितृदेव, वायव्यमें वायु तथा जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, शेष, वासुकि, रेवती, विनायक, महाधेता, राजी, सुवर्चस्व आदि तथा अन्य देवताओंके समूहको यथास्थान स्थापित करना चाहिये। सिद्धि, वृद्धि, स्मृति, उत्पलमास्तिनी तथा श्री इनकी अपने दक्षिण पार्श्वमें स्थापित करना चाहिये। प्रज्ञावती, शिभा, हारीत, वृद्धि, वृद्धि, विसृष्टि, पौर्णमासी तथा विभावरी आदि देव-शक्तियोंकी अपने उत्तर भगवान् सूर्यके समीप स्थापित करना चाहिये।

इस प्रकार भगवान् सूर्य तथा उनके परिकरों एवं देव-शक्तियोंकी स्थापना करनेके अनन्तर मन्त्रपूर्वक धूप, दीप, नैवेद्य, अलंकार, वस्त्र, पुष्प आदि उपचारोंको भगवान् सूर्य तथा उनके अनुगामी देवोंको प्रदान करे। इस विधिसे जो घमकारकी सदा अर्चना करता है, वह सभी कामनाओंको पूर्ण कर सूर्यलोकको प्राप्त करता है। निम्नलिखित मन्त्रद्वारा निम्बकी शार्धनाकर उसे भगवान्को निवेदित करके प्रार्थना करे—

त्वं निम्ब कटुकतात्वासि आदित्यनिलपलला ।

सर्वरोगहरः ज्ञानो भव मे प्रदानं सदा ॥

‘हे निम्ब ! तुम भगवान् सूर्यके आश्रयस्थान हो। तुम कटु स्वभाववाले हो, तुम्हारे भक्षण करनेसे मेरे सभी रोग सदाके लिये नष्ट हो जायें और तुम मेरे लिये शान्तस्वरूप हो जाओ।’

इस मन्त्रमें निम्बका प्रार्थना कर भगवान् सूर्यके समक्ष पृथ्वीपर बैठकर सूर्यमन्त्रका जप करे। इसके बाद यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा दे। अनन्तर संवत्-वाक् हो लक्षणवर्जित मधुर भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक इस निम्ब-सप्तमीका व्रत करनेवाला व्यक्ति सभी रोगोंसे मुक्त हो सूर्यलोकको जाता है।

सुमन्तुजीने कहा—राजन् ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिमें उपवास कर भगवान् सूर्यकी सौर-विधानसे पूजा करनी चाहिये। पुनः अष्टमीको स्नानकर दिवाकरकी पूजा कर ब्राह्मणोंको खजूर, नारियल, मातुलुङ्ग (बिजौर) तथा आम्रके फलोंको भगवान्के सम्मुख रखना चाहिये और ‘सार्धैः प्रीयताम्’ ऐसा कहकर इन्हें ब्राह्मणोंको निवेदित कर दे। यह फल-सप्तमी कहलाती है। ‘सर्वं भवन्तु सत्कथा सम काथाः समन्ततः।’ ऐसा कहकर स्वयं भी उन्हीं फलोंका भक्षण करे। इस फल-सप्तमीका एक वर्षतक श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक व्रत करनेसे पुत्र-पौत्रोंकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय २१५)

## ब्राह्मपर्व-श्रवणका माहात्म्य, पुराण-श्रवणकी विधि,

### पुराणों तथा पुराणवाचक व्यासकी महिमा

सुमन्तुजीने कहा—राजन् ! भविष्यपुराणके इस प्रथम ब्राह्मपर्वके सुननेसे मानव सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सहस्रों अभ्युद्योग, वाजपेय एवं राजसूय यज्ञों, सभी तीर्थ-यात्राओं, वेदाभ्यास तथा पृथ्वीदान करनेका फल प्राप्त कर

लेता है। इतिहास-पुराणके श्रवणके अतिरिक्त ऐसा कोई साधन नहीं है, जो सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर सके। पुराण-श्रवणका जो फल बतलाया गया है, वही फल पुराणके पाठसे भी होता है, इसमें कोई संदेह नहीं।

१-यहाँ भविष्यपुराणका पाठ कुछ भ्रष्ट प्रतीत होता है। सप्त सप्तम-व्रतमेंसे अर्धशत अनेकाना, विजय तथा कामिनी सप्तमीव्रत छूट गये हैं। चतुर्वर्ग-विश्वामिनि (हेमचन्द्र) के व्रतचन्द्रमें भविष्यपुराणके नामसे इन व्रतोंका विवरणसे वर्णन आया है। वैदिक शुक्ल सप्तमी अनेकाना-सप्तमी, माघ शुक्ल सप्तमी विजया-सप्तमी तथा फाल्गुन शुक्ल सप्तमी कामिनी-सप्तमी कहे गये हैं। विजया-सप्तमीमें सूर्यसाहस्रनाम स्तोत्र भी पढ़ा गया है। इससे लगता है कि हेमचन्द्रके पास भविष्यपुराणकी प्रामाणिक एवं पूर्ण श्रुति सुरक्षित थी। पुराणोंको उपेक्षामें ही इस समयकी प्रतिये वह अंग संश्लिष्ट हो गया है।

२-इतिहासपुराणाध्याय न लम्बा पावन गुणम्। येन श्रवणमत्रेण मुच्यते सर्वकर्मण्यैः ॥

विभिन्न राजर्षीकृत गुणवती पत्रफले कृतः। यद्येकं च व्रतं पठते न विद्वान्मते ॥ (ब्राह्मपर्व २१६। ३४-३५)

**शतानीकने पूछा—**भगवन् । महाभारत, रामायण एवं पुराणोंका श्रवण तथा पठन किस विधानसे करना चाहिये ? पुराण-वाचकके क्या लक्षण हैं ? भगवान् वाचोत्कृष्टका क्या स्वरूप है ? वाचककी विधिवत् पूजा करनेसे क्या फल होता है ? पर्वकी समाप्तिपर वाचकोंको क्या देना चाहिये ? इसे आप बतानेकी कृपा करें ।

**सुमन्तुजी बोले—**राजन् ! आपने इतिहास-पुराणके सम्बन्धमें अच्छी जिज्ञासा की है । महाबाहो ! इस सम्बन्धमें पूर्वकालमें देवगुरु बृहस्पति तथा ब्रह्मर्षीके मध्य जो संवाद हुआ था, उसे आप श्रवण करें ।

मानव विशेष भक्तिपूर्वक इतिहास और पुराणका श्रवण कर ब्रह्महत्यादि सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है । पवित्र होकर प्रातः, सायं तथा रात्रिमें जो पुराणका श्रवण करता है, उस व्यक्तिसे ब्रह्म, विष्णु तथा महेश संतुष्ट हो जाते हैं । प्रातःकाल भगवान् ब्रह्मा, सायंकाल विष्णु और रात्रिमें महादेव प्रसन्न होते हैं<sup>१</sup> । राजन् ! अब वाचकके विधानकी सुनिये । पवित्र वस्त्र पहनकर शुद्ध होकर प्रदक्षिणापूर्वक जब वाचक आसनपर बैठता है तो वह देवस्वरूप हो जाता है । आसन न बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा । वाचकके आसनकी सटा वन्दना की जानी चाहिये । वाचकके आसनको व्यासपीठ कहा जाता है । पीठके गुरुका आसन समझना चाहिये । वाचकके आसनपर सुनने-वालेको कभी भी नहीं बैठना चाहिये । देवताओंकी अर्चना करके विशेषरूपसे ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये । सभी समागत व्यक्तियोंको साथमें लेकर पुराण-ग्रन्थ वाचकके लिये प्रदान करें । उस ग्रन्थको नतमस्तक हो प्रणाम करें । तब शान्तचित्त होकर श्रवण करें ।

ग्रन्थका सूत्र (धारा) वासुकि कहा गया है । ग्रन्थका पत्र भगवान् ब्रह्मा, उसके अक्षर जनार्दन, सूत्र शंकर तथा पतित्व्य सभी देवता है । सूत्रके मध्यमें अग्नि और सूर्य स्थित रहते हैं । इनके आगे सभी ग्रह तथा दिशाएँ अवस्थित रहती हैं । शंक्रुको

मेरु कहा गया है । रितस्थानको आकाश कहा गया है । ग्रन्थके ऊपर तथा नीचे रहनेवाले दो काष्ठफलक द्वावा-पृथिवीरूपमें सूर्य और चन्द्रमा हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ देवमय है और देवताओंद्वारा पूजित है । इसलिये अपने कल्याणकी कामनासे इतिहास-पुराणादि श्रेष्ठ ग्रन्थोंको अपने घरमें रखना चाहिये, उन्हें नमस्कार करना चाहिये तथा उनकी पूजा करनी चाहिये<sup>२</sup> ।

राजन् ! वाचक ग्रन्थको हाथमें ग्रहण कर ब्रह्मा, व्यास, वाल्मीकि, विष्णु, शिव, सूर्य आदिको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके ब्रह्मासम्निवित होकर ओजस्वी स्वरमें अक्षरीका स्पष्ट उच्चारण करते हुए तथा सतत स्वरोंसे युक्त यथासमय यथोचित रस एवं भावोंको प्रकट करते हुए ग्रन्थका पाठ करे । इस प्रकार वाचकके मुखसे जो श्रोता निश्चयतः ब्रह्मापूर्वक इतिहास-पुराण और रामचरितको सुनता है, वह सभी फलनोंको प्राप्त कर सभी योगोंसे मुक्त हो जाता है और विपुल पुण्यको प्राप्त कर भगवान् के उद्यम और अद्भुत स्थानको प्राप्त करता है ।

श्रोताको चाहिये कि वह खानादिसे पवित्र होकर वाचकको प्रणाम करके उसके सम्मुख आसनपर बैठे और वाणीको संवत् कर सुसमाहित हो वाचककी बातोंको सुने ।

महाबाहो ! व्यासस्वरूप वाचकको नमस्कार करनेपर शंशयके बिना अन्य कुछ भी नहीं बोलना चाहिये । कथा-सम्बन्धी धार्मिक शंका या जिज्ञासा उत्पन्न होनेपर वाचकसे नम्रतापूर्वक पूछना चाहिये, क्योंकि व्यासस्वरूप वक्ता उसका गुरु और धर्मबन्धु है । वाचकको भी भलीभाँति उसे समझना चाहिये, क्योंकि वह गुरु है, इसीलिये सबपर अनुग्रह करना उसका धर्म है । उतरके अनन्तर 'तुम्हारा कल्याण हो' यह कहकर पुनः आगेकी कथा सुनानी चाहिये । श्रोताको अपनी वाणीपर नियन्त्रण रखना चाहिये । वाचक ब्राह्मणको ही होना चाहिये । प्रत्येक मासमें धारण करे तथा वाचककी पूजा करे, महीनाके पूर्ण होनेपर वाचकको स्वर्ण प्रदान करे ।

१- इतिहासपुराणनि श्रुत्वा भगव्य विशेषतः । तुष्यते सर्वदेवेषु ब्रह्महत्यादिपर्विषे ॥

सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुक्लिर्भूत्वा शुक्ली च । तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शंकरस्तथा ॥

प्रत्युषे भगवान् ब्रह्मा दिनाने तुष्यते हरिः । महादेवस्तथा रात्रौ शुक्लतां तुष्यते विष्णुः ॥

२- इत्यं देवमयं होतुं पूरकं देवपूजितम् । नमस्तं पूजयेत् न गृहे यथायं विभूतये ॥

प्रथम पारणामें वाचककी अपनी शक्तिके अनुसार पूजा करनेपर अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है। कर्त्तिकसे आरम्भकर आश्विनतक प्रत्येक मासमें एक-एक पारणपर पूजन करनेसे क्रमशः अग्निष्टोम, गौसव, ज्योतिष्टोम, सौत्रामणि, वाजपेय, वैष्णव, माहेश्वर, ब्राह्म, पुण्डरीक, आदित्य, राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। इस प्रकार यज्ञ-फलकी प्राप्ति कर वह निःसंदेह उत्तम लोकको प्राप्त करता है।

पर्वको सम्पत्तिपर गन्ध, माला, विविध वस्त्र आदिसे वाचककी पूजा करनी चाहिये। स्वर्ण, रजत, गाय, कर्सेका दोहन-पात्र आदि वाचकको प्रदान कर कथा-श्रवणका फल प्राप्त करना चाहिये। वाचकसे बहुत दान देने योग्य सुपात्र और कोई नहीं है, क्योंकि उसकी जिह्वाके अप्रभागपर सभी शास्त्र विराजमान रहते हैं। जो अद्वैतपूर्वक वाचकको भोजन करता है, उसके पितर सौ वर्षतक तृप्त रहते हैं। जैसे सभी देवोंमें सूर्य श्रेष्ठ है वैसे ही ब्राह्मणोंमें वाचक श्रेष्ठ है। वाचक

व्यास कहा जाता है। जिस देश, नगर, गाँवमें ऐसा व्यास निवास करता है वह क्षेत्र श्रेष्ठ माना जाता है। वहकि निवासी धन्य हैं, कृतार्थ हैं, इसमें संदेह नहीं। वाचकको प्रणामकरनेसे जिस फलको प्राप्ति होती है, उस फलको प्राप्ति अन्य कर्मोंसे नहीं होती।

जैसे कुरुक्षेत्रके समान कोई दूसरा तीर्थ नहीं, गङ्गाके समान कोई नदी नहीं, भास्करसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं, अश्वमेधके समान कोई यज्ञ नहीं, पुत्र-जन्मके तुल्य सुख नहीं, वैसे ही पुराणवाचक व्यासके समान कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता। देवकार्य, पितृकार्य सभी कर्मोंमें यह परम पवित्र है<sup>१</sup>।

राजन् ! इस प्रकार मैंने पुराणश्रवणकी विधि तथा वाचकके माहात्म्यको बतलाया। विधिके अनुसार ही पुराणादिक श्रवण एवं पाठ करना चाहिये। स्नान, दान, जप, होम, पितृ-पूजन तथा देवपूजन आदि सभी श्रेष्ठ कर्म विधि-पूर्वक अनुष्ठित होनेपर ही उत्तम फल प्रदान करते हैं।

(अध्याय २१६)

॥ भविष्यपुराणान्तर्गत ब्राह्मपर्व सम्पूर्ण ॥



१-कुरुक्षेत्रसमे तीर्थे न द्वितीये प्रयच्छते। न नदी यज्ञस्य तुल्या न देशो भास्करादरः ॥  
 नाश्वमेधसमे पुण्ये न कपं ब्रह्महत्याय। पुरजन्ममुपैतुल्यं न सुखं विद्यते यथा ॥  
 तथा व्याससमो विप्रो न कश्चिद् प्राप्यते नृप। दैवे कर्मणि पित्र्ये च पावनः परमो नृणाम् ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

## मध्यमपर्व

(प्रथम भाग)

### गृहस्थाश्रम एवं धर्मकी महिमा

जयति भुवनदीपो भास्करो लोककर्ता

जयति स शितिदेहः शार्ङ्गधन्वा मुरारिः ।

जयति च शशिवोली रुद्रनामाभिधेयो

जयति सकलमीलिर्भानुमांश्चित्रभानुः ॥

‘संसारकी सृष्टि करनेवाले भुवनेके दीपस्वरूप भगवान् भास्करकी जय हो । इयाम् शरीरवाले शार्ङ्गधन्वाधी भगवान् मुरारिकी जय हो । भस्मकपर चन्द्रमा धारण किये हुए भगवान् रुद्रकी जय हो । सभीके मुकुटमणि तेजोमय भगवान् चित्रभानु (सूर्य) की जय हो ।’

एक बार पौराणिकोंमें श्रेष्ठ रोमहर्षेण स्मृतजीमें मुनियोंने प्रणामपूर्वक पुराण-संहिताके विषयमें बृहत् । स्मृतजी मुनियोंके वचन सुनकर अपने गुरु सत्यवती-पुत्र महर्षि वेदव्यासको प्रणामकर कहने लगे । मुनियों । मैं जगत्के कारण ब्रह्म-स्वरूपको धारण करनेवाले भगवान् हरिको प्रणामकर पापका सर्वथा नाश करनेवाली पुराणकी दिव्य कथा कहता हूँ, जिसके सुननेसे सभी पापकर्म नष्ट हो जाते हैं और परमगति प्राप्त होती है । द्विजगण ! भगवान् विष्णुके द्वारा कहा गया भविष्यपुराण अत्यन्त पवित्र एवं आयुष्यप्रद है । अब मैं उसके पञ्चम-पर्वका वर्णन करता हूँ, जिसमें देव-प्रतिष्ठा आदि इष्टानु-कर्मोंका वर्णन है । उसे आप सुने—

इस मध्यमपर्वमें धर्म तथा ब्राह्मणादिकी प्रशंसा, आपदादमक निरूपण, विद्या-माहात्म्य, प्रतिष्ठा-निर्माण, प्रतिष्ठा-स्थापना, प्रतिष्ठाका लक्षण, करल-व्यवस्था, सर्ग-प्रतिसर्ग आदि पुराणका लक्षण, भूगोलका निर्णय, तिथियोंका निरूपण, श्राद्ध, संकल्प, मन्वन्तर, मुमुर्षु, मरणासत्रके कर्म, दानका माहात्म्य, भूत, भविष्य, युग-धर्मानुशासन, उच्च-नीच-निर्णय, प्रायश्चित्त आदि विषयोंका भी समावेश है ।

मुनियो ! तीनों आश्रमोंका मूल एवं उत्पत्तिक स्थान गृहस्थाश्रम ही है । अन्य आश्रम इसीसे जीवित रहते हैं, अतः गृहस्थाश्रम सबसे श्रेष्ठ है । गार्हस्थ्य-जीवन ही धर्मानुशासित

जीवन है । धर्मरहित होनेपर अर्थ और काम उसका परित्याग कर देते हैं । धर्मसे ही अर्थ और काम उत्पन्न होते हैं, मोक्ष भी धर्मसे ही प्राप्त होता है, अतः धर्मका ही आश्रयण करना चाहिये । धर्म, अर्थ और काम यही त्रिवर्ण है । प्रकरणान्तरसे ये क्रमशः त्रिगुण अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुणात्मक हैं । सात्त्विक अथवा धार्मिक व्यक्ति ही सच्ची उन्नति करते हैं, राजस मध्य स्थानको प्राप्त करते हैं । जघन्यगुण अर्थात् तामस व्यवहारवाले निम्न भूमिको प्राप्त करते हैं । जिस पुरुषमें धर्मसे समन्वित अर्थ और काम व्यवस्थित रहते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर मरनेके अनन्तर मोक्षको प्राप्त करते हैं, इसलिए अर्थ और कामको समन्वित कर धर्मका आश्रय ग्रहण करें । ब्रह्मवादीदमोंने कहा है कि धर्मसे ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है । स्वामी-जङ्गम अर्थात् सम्पूर्ण चाणक्य विश्वको धर्म ही धारण करता है । धर्ममें धारण करनेकी जो शक्ति है, वह ब्राह्मी शक्ति है, वह आद्यन्तरहित है । कर्म और ज्ञानमें धर्म प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं । अतः ज्ञानपूर्वक कर्मयोगका आचरण करना चाहिये । प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलकके भेदसे वैदिक कर्म दो प्रकारके हैं । ज्ञानपूर्वक त्याग संन्यास है, संन्यासियों एवं योगियोंके कर्म निवृत्तिपरक हैं और गृहस्थोंके वेद-शास्त्रानुकूल कर्म प्रवृत्तिपरक हैं । अतः प्रवृत्तिके सिद्ध हो जानेपर मोक्षकाम्यको निवृत्तिका आश्रय लेना चाहिये, नहीं तो पुनः-पुनः संसारमें आना पड़ता है । शम, दम, दया, दान, अलोप, विषयोक्त त्याग, सरलता या निरुद्धलता, निष्क्रोध, अनसूया, तीर्थयात्रा, सत्य, संतोष, आस्तिकता, श्रद्धा, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजन, विशेषरूपसे ब्राह्मणपूजा, अहिंसा, सत्यवादिता, निन्दाका परित्याग, शुभानुष्ठान, शौचाचार, प्राणियोपर दया—ये श्रेष्ठ आचरण सभी वर्णोंके लिये सामान्य रूपसे कहे गये हैं । श्रद्धामूलक कर्म ही धर्म कहे गये हैं, धर्म श्रद्धाभावमें ही स्थित है, श्रद्धा ही निष्ठा है, श्रद्धा ही प्रतिष्ठा है और श्रद्धा ही धर्मकी जड़ है । विधिपूर्वक गृहस्थधर्मका



पालन करनेवाले ब्राह्मणोंको प्रजापतिलोक, क्षत्रियोंको पूर्वक जीवन व्यतीत करनेवाले शूद्रोंको गन्धर्वलोककी प्राप्ति इन्द्रलोक, वैश्योंको अमृतलोक और तीनों वर्णोंको परिचया- होती है। (अध्याय १)



### सृष्टि तथा सात ऊर्ध्व एवं सात पाताल लोकोंका वर्णन

श्रीसृत्तजी बोले—मुनियो ! अब मैं कल्पके अनुसार सैकड़ों मन्वन्तरोंके अनुगत ईश्वर-सम्बन्धी कालचक्रका वर्णन करता हूँ।

सृष्टिके पूर्व यह सब परम अन्धकार-निमग्न एवं सर्वथा अप्रतिज्ञात-स्वरूप था। उस समय परम कारण, व्यापक एकमात्र रुद्र ही अवस्थित थे। सर्वव्यापक भगवान्ने आत्मस्वरूपमें स्थित होकर सर्वप्रथम मनकी सृष्टि की। फिर अहंकारकी सृष्टि की। उससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध नामक पञ्चतन्मात्रा तथा पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति की। इनमेंसे आठ प्रकृति हैं (अर्थात् दूसरेको उत्पन्न करनेवाली हैं) — प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्शको तन्मात्राएँ। पाँच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन—ये सोलह इनकी विवृतिर्या हैं। ये किसीकी भी प्रकृति नहीं हैं, क्योंकि इनसे किसीकी उत्पत्ति नहीं होती। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं। कानका शब्द, त्वक्का स्पर्श, चक्षुका रूप, जिह्वाका रस, नासिकाका गन्ध हैं। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानके घटसे वायुके पाँच प्रकार हैं। सत्व, रज और तम—ये तीन गुण कहे गये हैं। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है और उससे उत्पन्न सारा चराचर विश्व भी त्रिगुणात्मक है। उस भगवान् वासुदेवके तेजसे ब्रह्मा, विष्णु और शम्भुका आविर्भाव हुआ है। वासुदेव अशरीरी, अजन्मा तथा अयोनिज हैं। उनमें परे कुल भी नहीं है। ये प्रत्येक कल्पमें जगत् और प्राणियोंकी सृष्टि एवं उपसंहार भी करते हैं।

वहतर युगोंका एक मन्वन्तर तथा चौदह मन्वन्तरका एक कल्प होता है। यह कल्प ब्रह्माका एक दिन और रात है। भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक और ब्रह्मलोक—ये सात लोक कहे गये हैं। पाताल, विमल, अतल, तल, तालतल, सुतल और रसतल—ये सात पाताल हैं। इनके आदि, मध्य और अन्तमें रुद्र रहते हैं। महेश्वर लीलालके लिये संसारको उत्पन्न करते हैं और संहार भी करते

हैं। ब्रह्मप्राप्तिको इच्छा करनेवालेकी ऊर्ध्वगति कही गयी है।

ऋषि सर्वदर्शी (परमात्मा) ने सर्वप्रथम प्रकृतिकी सृष्टि की। उस प्रकृतिसे विष्णुके साथ ब्रह्मा उत्पन्न हुए। द्विजश्रेष्ठो ! इसके बाद बुद्धिसे नैमित्तिकी सृष्टि उत्पन्न हुई। इस सृष्टिक्रममें स्वप्नभूय ब्रह्माने सर्वप्रथम ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया। अनन्तर क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रकी सृष्टि की। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दिशओंकी कल्पना की। लोकालोक, द्वीपों, नदियों, सागरों, तीर्थों, देवस्थानों, मेघगर्जनों, इन्द्रधनुषों, उल्कापातों, केतुओं तथा विद्युत् आदिको उत्पन्न किया। यथासमय ये सभी उसी परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। भूधमसे ऊपर एक करोड़ योजन विस्तृत महलोक है। ब्राह्मण-श्रेष्ठ वहाँ कल्पान्तपर्यन्त रहते हैं। महलोकसे ऊपर दो करोड़ योजन विस्तृत जनलोक है, वहाँ ब्राह्मके पुत्र मनकादि रहते हैं। जनलोकसे ऊपर तीन करोड़ योजनवाला तपोलोक है, वहाँ तापत्रयारहित देवगण रहते हैं। तपोलोकसे ऊपर छः करोड़ योजन विस्तृत सत्यलोक है, जहाँ भृगु, अंसिष्ठ, अत्रि, दक्ष, महर्षिच आदि प्रजापतिपौत्रोंका निवास है। जहाँ समस्तकुमार आदि मित्र योगिगण निवास करते हैं, वह ब्रह्मलोक कहा जाता है। उस लोकमें विश्वात्मा विश्वतोमुख गुरु ब्रह्म रहते हैं। आस्तिक ब्रह्मवादी, यतिगण, योगी, तापस, मित्र तथा जाक उन परमेश्वरी ब्रह्माजीकी गाथाका गान इस प्रकार करते हैं—‘परमपदकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले योगियोंका द्वार यही परमपद लोक है। वहाँ जाकर किसी प्रकारका शोक नहीं होता। वहाँ जानेवाला विष्णु एवं ईश्वरस्वरूप हो जाता है। करोड़ों सूर्यके समान देदीप्यमान यह स्थान बड़े कष्टसे प्राप्त होता है। ज्वालामालाओंसे परिव्याप्त इस पुरका वर्णन नहीं किया जा सकता।’ इस ब्रह्मधाममें नरायणका भी भवन है। माया-सहचर परात्पर श्रीमान् हरि यहाँ शयन करते हैं। इसे ही पुनरावृत्तिसे रहित विष्णुलोक भी कहा जाता है। यहाँ आनेपर कोई भी लौटकर नहीं आता। भगवान्के प्रपन्न महात्मागण ही जनार्दनको प्राप्त करते हैं। ब्रह्मासनसे ऊर्ध्व परम ज्योतिर्मय शुभ स्थान है। उसके ऊपर

वह्नि परिव्याप्त है, वहीं पार्वतीके साथ भगवान् शिव विश्रजमान रहते हैं। सैकड़ों-हजारों विद्वान् और मनीषियोगेन्द्र वे चिन्त्यमान होकर प्रतिष्ठित रहते हैं। वहाँ निर्यत ब्रह्मवादी द्विजगण ही जाते हैं। महादेवमें सतत ध्यानरत, तपस, ब्रह्मवादी, अहंता-ममताके अध्याससे रहित, काम-क्रोधसे शून्य, ब्रह्मत्व-समन्वित ब्राह्मण ही उनकी देख सकते हैं—वही रुद्रलोक है। ये सातों महालोक कहे गये हैं।

द्विजगणो ! पृथ्वीके नीचे महातल आदि पाताललोक है। महातल नामक पाताल स्वर्णमय तथा सभी वर्णोंमें अलंकृत है। वह विविध प्रासादों और शुभ देवालयोंसे समन्वित है।



### भूगोल एवं ज्योतिष्मत्कका वर्णन

श्रीसुतजी बोले—मुनियो ! अब मैं भूलोकका वर्णन करता हूँ। भूलोकमें जम्बू, प्रद्य, शालमलि, कुश, ज्येष्ठ, इक्षक और पुष्कर नामके सात महाद्वीप हैं, जो सात समुद्रोंसे आवृत हैं। एक द्वीपसे दूसरे द्वीप क्रम-क्रमसे ठीक दूने-दूने आकार एवं विस्तारवाले हैं और एक सागरसे दूसरे सागर भी दूने आकारके हैं। क्षीरोद, इक्षुरसोद, क्षारोद, फुलोद, दध्योद, क्षीरसरित्त्व तथा जलोद—ये सात महासागर हैं। यह पृथ्वी पचास करोड़ योजन विस्तृत, समुद्रमें चारों ओरसे घिरे हुई तथा सात द्वीपोंसे सम्बन्धित है। जम्बूद्वीप सभी द्वीपोंके मध्यमें सुशोभित हो रहा है। उसके मध्यमें सोनेकी कर्जितवालय महामेरु पर्वत है। इसकी ऊँचाई चौगुनी हजार योजन है। यह महामेरु पर्वत नीचेकी ओर सोलह हजार योजन पृथ्वीमें प्रविष्ट है और ऊपरी भागमें इसका विस्तार बीस हजार योजन है। नीचे (तलहटी)में इसका विस्तार सोलह हजार योजन है। इस प्रकार यह पर्वत पृथ्वीरूप कमलकी कर्णिका (कोष)के समान है। इस मेरु पर्वतके दक्षिणमें हिमवान्, हिमकूट और निषध नामके पर्वत हैं। उत्तरमें नील, श्वेत तथा शृंगी नामके वर्ष-पर्वत हैं। मध्यमें लक्षयोजन प्रमाणवाले दो (निषध और नील) पर्वत हैं। उनसे दूसरे-दूसरे दस-दस हजार योजन कम हैं। (अर्थात् हेमकूट और श्वेत नब्बे हजार योजन तथा हिमवान् और शृंगी अस्सी-अस्सी हजार योजनतक फैले हुए हैं।) वे सभी दो-दो हजार योजन लम्बे और इतने ही चौड़े हैं।

द्विजो ! मेरुके दक्षिण भागमें भारतवर्ष है, अनन्तर

वहाँपर भगवान् अनन्त, बुद्धिमान् मुचुकुन्द तथा बलि भी निवास करते हैं। भगवान् शंकरसे सुशोभित रसातल शैलमय है। सुतल पोलवर्ण और वितल मृगेकी कर्जितवालय है। वितल श्वेत और तल कृष्णवर्ण है। वहाँ वासुकि रहते हैं। कालनेमि, केनतेय, नमुचि, शङ्खकर्ण तथा विविध नाग भी वहाँ निवास करते हैं। इनके नीचे रौरव आदि अनेकों नरक हैं, उनमें पक्षियोंको गिराया जाता है। पाताल्लोक नीचे शेष नामक केण्वी शरीर है। वहाँ कालश्रमि रुद्रस्वरूप नरसिंह भगवान् लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु नागरूपी अनन्तके नामसे प्रसिद्ध हैं। (अध्याय २-३)

किपुत्रवर्ष और हरिवर्ष ये मेरु पर्वतके दक्षिणमें हैं। उत्तरमें यम्बक, अश्व, हिरण्य तथा उत्तरकुरुवर्ष हैं। ये सब भारतवर्षके समान ही हैं। इनमेंसे प्रत्येकका विस्तार नौ सहस्र योजन है, इनके मध्यमें इत्यवृतवर्ष है और उसके मध्यमें उन्नत मेरु स्थित है। मेरुके चारों ओर नौ सहस्र योजन विस्तृत इत्यवृतवर्ष है। महाभाग ! इसके चारों ओर चार पर्वत हैं। ये चारों पर्वत मेरुकी बरिसे हैं, जो दस सहस्र योजन परिमाणमें ऊँची हैं। इनमेंसे पूर्वमें मन्दर, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विपुल और उत्तरमें सुप्तर्ष है। इनपर कन्दव, जम्बू, पीपल और वट-वृक्ष हैं। महर्षिगण ! जम्बूद्वीप नाम होनेका कारण महाजम्बू वृक्ष भी यहाँ है, उसके फल महान् गजराजके समान बड़े होते हैं। जब वे पर्वतपर गिरते हैं तो फटकर सब ओर फैल जाते हैं। उसीके रससे जम्बू नामकी प्रसिद्ध नदी वहाँ बहती है, जिसका जल वहाँ रहनेवाले पीते हैं। उस नदीके जलका पान करनेसे वहाँ निवासियोंको पसीना, दुर्गन्ध, कुदृष्टा और इन्द्रिय-क्षय नहीं होता। वहाँ निवासी शुद्ध हृदयवाले होते हैं। उस नदीके किनारेकी मिट्टी उस रससे मिलकर मन्द-मन्द वायुके द्वारा सुखाये जानेपर 'जाम्बूनद' नामक सुवर्ण बन जाती है, जो सिद्ध पुरुषोंका पूषण है।

मेरुके पास (पूर्वमें) भद्राश्ववर्ष और पश्चिममें केतुपालवर्ष है। इन दो वर्षोंके मध्यमें इत्यवृतवर्ष है। विप्रश्रेष्ठ ! मेरुके ऊपर ब्रह्माका उत्तम स्थान है। उसके ऊपर इन्द्रका स्थान है और उसके ऊपर शंकरका स्थान है। उसके

ऊपर वैष्णवलोक तथा उससे ऊपर दुर्गालोक है। इसके ऊपर सुवर्णमय, निरकार दिव्य ज्योतिर्मय स्थान है। उसके भी ऊपर भक्तोंका स्थान है, यहाँ भगवान् सूर्य रहते हैं। ये परमेश्वर भगवान् सूर्य ज्योतिर्मय चक्रके मध्यमें निखल रूपसे स्थित हैं। ये मेरुके ऊपर राशिचक्रमें भ्रमण करते हैं। भगवान् सूर्यका रथ-चक्र मेरु पर्वतकी नाभिमें रात-दिन वायुके द्वारा भ्रमण कराया जाता हुआ ध्रुवका आश्रय लेकर प्रतिष्ठित है। दिक्पाल आदि तथा यह यहाँ दक्षिणसे उत्तर मार्गकी ओर प्रतिभास चलते रहते हैं। हास और वृद्धिके क्रमसे रविके द्वारा जब

चन्द्रमास लङ्घित होता है, तब उसे मलमास कहा जाता है<sup>१</sup>। सूर्य, सोम, बुध, चन्द्र और शुक्र शीघ्रगामी ग्रह हैं। दक्षिणायन मार्गसे सूर्य गतिमान् होनेपर सभी ग्रहोंके नीचे चलते हैं। विस्तीर्ण मण्डल कर उसके ऊपर चन्द्रमा गतिशील रहता है। सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल सोमसे ऊपर चलता है। नक्षत्रोंके ऊपर बुध और बुधसे ऊपर शुक्र, शुक्रसे ऊपर मंगल और उससे ऊपर बृहस्पति तथा बृहस्पतिसे ऊपर शनि, शनिके ऊपर सप्तर्षिमण्डल और सप्तर्षिमण्डलके ऊपर ध्रुव स्थित है।

(अध्याय ४)

### ब्राह्मणोंकी महिमा तथा छब्बीस दोषोंका वर्णन

श्रीसुतजी बोले—हे द्विजोत्तम ! तैनों वर्णोंमें ब्राह्मण जन्मसे प्रभु है। हव्य और कव्य सभीकी रक्षाके लिये तपस्याके द्वारा ब्राह्मणकी प्रथम सृष्टि की गयी है। देवगण इन्हींके मुखसे हव्य और पितृगण कव्य सोकार करते हैं। अतः इनसे श्रेष्ठ कौन हो सकता है। ब्राह्मण जन्मसे ही श्रेष्ठ हैं और सभीसे पूजनीय हैं। जिसके गर्भाधान आदि अदृष्टात्मासे संस्कार इन्द्रविधिसे सम्पन्न होते हैं, वही सच्चा ब्राह्मण है। द्विजकी पूजाकर देवगण स्वर्गफल भोगनेका स्वप्न प्राप्त करते हैं। अन्य मनुष्य भी ब्राह्मणकी पूजाकर देवत्वका प्राप्त करते हैं। जिसपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं। वेद भी ब्राह्मणोंके मुखमें से निहित रहते हैं। सभी विषयोंका ज्ञान होनेके कारण ब्राह्मण ही देवताओंकी पूजा, पितृकार्य, यज्ञ, विवाह, बह्मिकार्य, शान्तिकर्म, स्वस्वयन आदिके सम्पादनमें प्रशस्त है। ब्राह्मणके बिना देवकार्य, पितृकार्य तथा यज्ञ-कर्मोंमें दान, होम और बलि ये सभी निष्फल होते हैं।

ब्राह्मणकी देसकर श्रद्धापूर्वक अभिवादन करना चाहिये, उसके द्वारा कहे गये 'दीर्घायुर्विव' शब्दसे मनुष्य चिरजीवी होता है। द्विजश्रेष्ठ ! ब्राह्मणकी पूजासे आयु, कीर्ति, विद्या और धनकी वृद्धि होती है। जहाँ जलसे विप्रोक्त पाद-प्रक्षालन

नहीं किया जाता, वेद-शास्त्रोंका उच्चारण नहीं होता और जहाँ स्वाहा, स्वाधा और स्वाधिका ध्वनि नहीं होती ऐसा गृह शमशानके समान है<sup>२</sup>।

विद्वानोंने नक्षत्रगामी मनुष्योंके छब्बीस दोष बतलाये हैं, जिन्हें त्यागकर शुद्धतापूर्वक निवास करना चाहिये—  
(१) अधम, (२) विषम, (३) पशु, (४) पिशुन, (५) कृपण, (६) पाषाण, (७) नष्ट, (८) रुष्ट, (९) दुष्ट, (१०) पुष्ट, (११) दृष्ट, (१२) कण, (१३) अन्ध, (१४) खण्ड, (१५) चण्ड, (१६) कुष्ट, (१७) दत्ता-पहारक, (१८) वक्ता, (१९) कट्य, (२०) दण्ड, (२१) नीच, (२२) खल, (२३) बाबाल, (२४) बपल, (२५) मलमस तथा (२६) सेयी।

उपयुक्त छब्बीस दोषोंके भी अनेक भेद-प्रभेद बतलाये गये हैं। विप्रेन्द्र ! इन (छब्बीस) दोषोंका विकरण संक्षेपमें इस प्रकार है—

१. गुरु तथा देवताके सम्मुख जूता और छाता धारण कर जानेवाले, गुरुके सम्मुख उच्च आसनपर बैठनेवाले, यानपर चढ़कर तीर्थ-यात्रा करनेवाले तथा तीर्थमें प्राप्य धर्मका आचरण करनेवाले—ये सभी अधम-संज्ञक दोषयुक्त व्यक्ति कहे गये हैं। २. प्रकटमें प्रिय और मधुर वाणी बोलनेवाले पर

१-रविण लङ्घितो मासश्चन्द्रः कथ्यते मलमासकः । (मध्यपर्व ४। २७)

प्रकाशन्तरसे यह श्लोक ज्योतिषके 'मेरुजैन्यहिते' ग्रन्थसे मलमास उदाहृतः । इसी वाक्यके भावका श्लोक है।

२-२ विप्रकटोदककट्यनि न वेदशास्त्रप्रतिर्जितनि । स्वाहास्वधस्वधिकाध्वजितनि शमशान्तुल्यनि गृहणि तानि ॥

हृदयमें हालाहल विष धारण करनेवाले, कहते कुछ और है तथा आचरण कुछ और ही करते हैं—ये दोनों विषम-संज्ञक दोषयुक्त व्यक्ति कहे जाते हैं। ३. मोक्षकी चिन्ता छोड़कर सांसारिक चिन्ताओंमें श्रम करनेवाले, हरिकी सेवासे रहित, प्रयागमें रहते हुए भी अन्यत्र स्नान करनेवाले, प्रत्यक्ष देवको छोड़कर अदृष्टकी सेवा करनेवाले तथा शास्त्रोंके सार-तत्त्वको न जाननेवाले—ये सभी पशु-संज्ञक दोषयुक्त व्यक्ति हैं। ४. बलसे अथवा छल-छद्मसे या मिथ्या प्रेमका प्रदर्शन कर ठगनेवाले व्यक्तिको पिशुन दोषयुक्त कहा गया है। ५. देव-सम्बन्धी और पितृ-सम्बन्धी कर्मोंमें मधुर अन्नको व्यवस्था रहते हुए भी म्लान और तिक्त अन्नका भोजन करनेवाला दुर्बुद्धि भ्रान्त कृपण है, उसे न तो स्वर्ग मिलता है और न मोक्ष ही। जो अप्रसन्न मनसे कुत्सित वस्तुका दान करता एवं क्रोधके साथ देवता आदिकों पूजा करता है, वह सभी धर्मोंमें बहिष्कृत कृपण कहा जाता है। निर्दुष्ट होते हुए भी शुभका परित्याग तथा शुभ शरीरका विक्रय करनेवाला कृपण कहलता है। ६. माता-पिता और गुरुका त्याग करनेवाला, पवित्रकार-रहित, पिताके सम्मुख निःसंकोच भोजन करनेवाला, जीवित पिता-माताका परित्याग करनेवाला, उनकी कभी भी सेवा न करनेवाला तथा होम-यज्ञादिका लोप करनेवाला अपिष्ट कहलता है। ७. साधु अन्नचरणका परित्याग कर झूठी सेवाका प्रदर्शन करनेवाले, वेद्यागामी, देव-धनके द्वारा जीवन-यापन करनेवाले, धार्मिक व्यभिचारद्वारा प्राप्त धनसे जीवन-यापन करनेवाले या कन्याको बेचकर अथवा स्त्रीके धनसे जीवन-यापन करनेवाले—ये सब नष्ट-संज्ञक व्यक्ति हैं—ये स्वर्ग एवं मोक्षके अधिकारी नहीं हैं। ८. जिसका मन सदा क्रुद्ध रहता है, अपनी हीनता देखकर जो क्रोध करता है, जिसकी भीड़ें कुटिल हैं तथा जो क्रुद्ध और रुष्ट स्वभाववाला है—ऐसे ये पाँच प्रकारके व्यक्ति रुष्ट कहे गये हैं। ९. अकार्यमें या निन्दित आचारमें ही जीवन व्यतीत करनेवाला, धर्मकार्यमें अस्थिर, निद्रालु, दुर्व्यसनमें आसक्त, महापायी, स्त्री-सेवी, सदैव दुष्टोंके साथ वार्तालाप करनेवाला—ऐसे सात प्रकारके व्यक्ति दुष्ट कहे गये हैं। १०. अकेले ही मधुर-मिष्टान्न भक्षण करनेवाले, वृद्धक, सज्जनोंके निन्दक, शूकरके समान वृत्तिवाले—ये सब

पुष्ट संज्ञक व्यक्ति कहे जाते हैं। ११. जो निगम (वेद), आगम (तन्त्र) का अध्ययन नहीं करता है और न इन्हें सुनता ही है, वह पापात्मा हृष्ट कहा जाता है। १२-१३. श्रुति और स्मृति ब्राह्मणोंके ये दो नेत्र हैं। एकसे रहित व्यक्ति काना और दोनोंसे हीन अन्ध कहा जाता है। १४. अपने सहोदरसे विवाद करनेवाला, माता-पिताके लिये अप्रिय वचन बोलनेवाला खण्ड कहा जाता है। १५. शास्त्रकी निन्दा करनेवाला, चुगलखोर, राजगामी, शूद्रसेवक, शूद्रकी पत्नीसे अनाचरण करनेवाला, शूद्रके घरपर पड़े हुए अन्नको एक बार भी खानेवाला या शूद्रके घरपर पाँच दिनोंतक निवास करनेवाला व्यक्ति चण्ड दोषवाला कहा जाता है। १६. आठ प्रकारके कुशोंसे समन्वित, त्रिकुष्टी, शास्त्रमें निन्दित व्यक्तियोंके साथ वार्तालाप करनेवाला अधम व्यक्ति कुष्ठ-दोषयुक्त कहा जाता है। १७. कौटुके समान भ्रमण करनेवाला, कुत्सित-दोषसे युक्त व्यापार करनेवाला दत्तापहारक कहा गया है। १८. कुप्यन्धित एवं अज्ञानी होते हुए भी धर्मका उपदेश देनेवाला वक्ता है। १९. गुरुजनोंकी वृत्तिको हरण करनेकी चेष्टा करनेवाला तथा करशी-निवासी व्यक्ति यदि बहुत दिन करशीको छोड़कर अन्यत्र निवास करता है, वह कदर्य (कैजूम) है। २०. मिथ्या क्रोधका प्रदर्शन करनेवाला तथा राजा न होते हुए भी दण्ड-विधान करनेवाला व्यक्ति दण्ड (उग्रण्ड) कहा जाता है। २१. ब्राह्मण, राजा और देव-सम्बन्धी धनका हरण कर, उस धनसे अन्य देवता या ब्राह्मणोंको संतुष्ट करनेवाला या उस धनका भोजन या अन्नको देनेवाला व्यक्ति खरके समान नीच है, जो अक्षर-अध्यासमें तत्पर व्यक्ति केवल पढ़ता है, किन्तु समझता नहीं, व्यकरण-शास्त्रशून्य व्यक्ति पशु है, जो गुरु और देवताके आगे कहता कुछ है और करता कुछ और है, अनाचारी-दुराचारी है वह नीच कहा जाता है। २२. गुणवान् एवं सज्जनोंमें जो दोषका उन्वेषण करता है वह व्यक्ति खल कहलता है। २३. धाम्यहीन व्यक्तिके परिहासयुक्त वचन बोलनेवाला तथा पाण्डालोंके साथ मिलेज्व होकर वार्तालाप करनेवाला वाचाल कहा जाता है। २४. पक्षियोंके पालनेमें तत्पर, विल्लीके द्वारा आनीत पशुको बाँटनेके बहाने बंदरकी भाँति स्वयं भक्षण



करनेवाला, व्यर्थमें तृणका छेदक, मिट्टीके डेलेको व्यर्थमें भेदन करनेवाला, मांस भक्षण करनेवाला और अन्यकी स्त्रीमें आसक्त रहनेवाला व्यक्ति चपल कहल्यता है। २५. तैल, उबटन आदि न लगानेवाला, गन्ध और चन्दनसे शून्य नित्यकर्मको न करनेवाला व्यक्ति मलीमस कहल्यता है। २६. अन्यायसे अन्यको घरका धन ले लेनेवाला तथा अन्यायसे धन कमानेवाला, शास्त्र-निषिद्ध धनोको ग्रहण करनेवाला, देव-पुस्तक, राज, मणि-मुक्ता, अन्न, गौ, भूमि

तथा स्वर्णका हरण करनेवाला स्तेयी (चोर) कहा जाता है। साथ ही देव-चिन्तन तथा परस्पर कल्याण-चिन्तन न करनेवाले, गुरु तथा माता-पिताका पोषण न करनेवाले और उनके प्रति पालनीय कर्तव्यका आचरण न करनेवाले एवं उपकारी व्यक्तिके साथ समुचित व्यवहार न करनेवाले—ये सभी स्तेयी हैं। इन सभी दोषोंसे युक्त व्यक्ति रक्तपूर्ण नरकमें निवास करते हैं। इनका सम्यक् ज्ञान सम्यग्र हो जानेपर मनुष्य देवत्वको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय ५)

### माता, पिता एवं गुरुकी महिमा

**श्रीसुतजी बोले—**द्विजश्रेष्ठ ! चारों वर्णोंके लिये पिता ही सबसे बड़ा अपना सहायक है। पिताके सम्मान अन्य कोई अपना बन्धु नहीं है, ऐसा वेदोक्त कथन है। माता-पिता और गुरु—ये तीनों पथप्रदर्शक हैं, पर इनमें माता ही सर्वोपरि है। भाइयोंमें जो क्रमशः बड़े हैं, वे क्रम-क्रमसे ही विद्वेष आदरके पात्र हैं। इन्हें द्वादशी, अमृतवासा तथा संक्रान्तिके दिन यथाशक्ति धणियुक्त वस्त्र दक्षिणाके रूपमें देना चाहिये, दक्षिणापयन और उत्तरायणमें, विषुव संक्रान्तियों तथा चन्द्र-सूर्य-ग्रहणके समय यथाशक्ति इन्हें भोजन कराना चाहिये। अनन्तर इन फर्शोंसे<sup>१</sup> इनकी चरण-वन्दना करनी चाहिये, क्योंकि विधिपूर्वक वन्दन करनेसे ही सभी तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। स्वर्ग और अपवर्ण-रूपी फलको प्रदान करनेवाले एक आद्य ब्रह्मस्वरूप पिताको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनकी प्रसन्नतासे संसार सुन्दर रूपमें दिखायी देता है, उन पिताका मैं तिलयुक्त जलसे तर्पण करता हूँ। पिता ही जन्म देता है, पिता ही पालन करता है, पितृगण ब्रह्मस्वरूप हैं, उन्हें नित्य पुनः-पुनः

नमस्कार है। हे पिता ! आपके अनुग्रहसे लोकधर्म प्रवर्तित होता है, आप साक्षात् ब्रह्मरूप हैं, आपको नमस्कार है।

जो अपने उदररूपी विचरमें रखकर स्वयं उसकी सभी प्रसरसे रक्षा करती है, उन पर प्रकृतिस्वरूप जननीदेवीको नमस्कार है। मातः ! आपने बड़े कष्टसे मुझे अपने उदर-प्रदेशमें धारण किया, आपके अनुग्रहसे मुझे यह संसार देखनेको मिला, आपको बार-बार नमस्कार है। पृथिवीपर जितने लोथे और सगर आदि हैं उन सबको स्वरूपधृता आपको अपनी कल्याण-प्राप्तिके लिये मैं नमस्कार करता हूँ। जिन गुरुदेवोंके प्रसादसे मैंने यशस्वी विद्या प्राप्त की है, उन भावसागरके सेतु-स्वरूप दिशरूप गुरुदेवोंको मेरा नमस्कार है। अभ्यजन् ! वेद और वेदाङ्ग-शास्त्रोंके तत्व आपमें प्रतिष्ठित हैं। आप सभी प्राणियोंके आधार हैं, आपको मेरा नमस्कार है। ब्रह्मण सम्पूर्ण संसारके चलते-फिरते परम पावन तीर्थस्वरूप हैं। अतः हे विष्णुरूपी भूदेव ! आप मेरा पाप नष्ट करें, आपको मेरा नमस्कार है।

१-स्वर्गवर्णप्रदकेकमाद्यं ब्रह्मस्वरूपं पितरं नमामि । यतो जगत् पश्यति साकारं ते तर्पयामः स्तिलैस्तिलैर्वृतैः ॥

पितरौ जनयन्तौ पितरः पालयन्ति च । पितरौ ब्रह्मरूपं हि तेभ्यो नित्यं नमो नमः ॥  
यस्माद्विजयतो लोकसत्त्वदर्शः प्रकृतिः । नमस्तुभ्यो पितरः साक्षाद्ब्रह्मरूपं नमोऽस्तु ते ॥  
या कुक्षिविचरो कुलं स्वयं रक्षति सर्वतः । नमामि जननीं देवीं परां प्रकृतिरूपिणीम् ॥  
कुक्ष्येण महता देव्या धरितोऽहं यथोदरे । स्वप्नसागरादुदुष्टं पालयित्वं नमोऽस्तु ते ॥  
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सागरार्द्रेणि सर्वतः । वसन्ति च तानि मेमि मातरं भूमित्तवे ॥  
गुरुदेवप्रसादेन लब्धं विद्यां यशस्करी । दिशरूपं नमस्तस्मै संसारार्णवसेतवे ॥  
वेदवेदाङ्गशास्त्राणां तत्त्वं यत् प्रतिष्ठितम् । आधारः सर्वभूतानामभ्यजन् नमोऽस्तु ते ॥  
ब्रह्मणो जगतां लोथे पावनं परमं यत् । भूदेव हर मे वपं विष्णुरूपिन् नमोऽस्तु ते ॥

द्विजो ! जैसे पिता श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पिताके बड़े-छोटे भाई और अपने बड़े भाई भी पिताके समान ही मान्य एवं पूज्य हैं। आचार्य ब्रह्माक्षी, पिता प्रजापतिक्षी, माता पृथ्वीक्षी और भाई अपनी ही मूर्ति हैं। पिता मेरुस्वरूप एवं वसिष्ठ-स्वरूप सनातन धर्ममूर्ति हैं। ये ही प्रत्यक्ष देवता हैं, अतः इनको

आज्ञाकर पालन करना चाहिये। इसी प्रकार पितामह एवं पितामही (दादा-दादी) के भी पूजन-वन्दन, रक्षण, पालन और सेवनको अत्यन्त महिमा है। इनकी सेवाके पुण्योंकी तुलनामें कोई नहीं है, क्योंकि ये माता-पिताके भी परम पूज्य हैं। (अध्याय ६)

### पुराण-श्रवणकी विधि तथा पुराण-वाचककी महिमा

**श्रीसुतजी बोले—**ब्राह्मणो ! पूर्वकालमें महातेजस्वी ब्राह्मणोंने पुराण-श्रवणकी जिस विधिकी मुझसे कहा था, उसे मैं आपको सुना रहा हूँ, आप सुने।

इतिहास-पुराणोंके भक्तिपूर्वक सुननेसे ब्रह्महत्या आदि सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है, जो श्रातः-समय तथा रात्रिमें पवित्र होकर पुराणोंका श्रवण करता है, उसपर ब्रह्मा, विष्णु और इंकर संतुष्ट हो जाते हैं<sup>१</sup>। प्रातःकाल इसके पढ़ने और सुननेवालेसे ब्रह्माजी प्रसन्न होते हैं तथा सायंकालमें भगवान् विष्णु और रात्रिमें भगवान् इंकर संतुष्ट होते हैं। पुराण-श्रवण करनेवालेको शुद्ध वस्त्र धारण कर कृष्ण-मृगचर्म तथा कुशके आसनपर बैठना चाहिये। आसन न अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा। पहले देवता और गुरुकी तीन प्रदक्षिणा करे, तदनन्तर दिक्पालोंको नमस्कार करे। फिर ओंकारमें अर्चिष्ठित देवताओंको नमस्कार करे एवं शाश्वत धर्ममें अर्चिष्ठित धर्मशास्त्र-ग्रन्थोंको भी नमस्कार करे।

श्रोताका मुख दक्षिण दिशाकी ओर और वाचकका मुख उत्तरकी ओर हो। पुराण और महाभारत कथाकी यही विधि कही गयी है। हरिवंश, रामायण और धर्मशास्त्रके श्रवणकी इससे विपरीत विधि कही गयी है। अतः निर्दिष्ट विधिसे सुनना या पढ़ना चाहिये। देवालय या तीर्थमें इतिहास-पुराणके वाचनके समय सर्वप्रथम उस स्थान और उस तीर्थकी माहात्म्यका वर्णन करना चाहिये। अनन्तर पुराणादिक वाचन करना चाहिये। माहात्म्यके श्रवणसे मोक्षान्नका फल मिलता है। गुरुकी आज्ञासे माता-पिताका अभिवादन करना चाहिये। ये वेदके सम्मान, सर्वधर्ममय तथा सर्वज्ञानमय हैं। अतः द्विजश्रेष्ठ ! माता-पिताकी सेवासे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है।

पुराणादि पुस्तकोंका हरण करनेवाला नरकको प्राप्त होता है। वेददि ग्रन्थों तथा तान्त्रिक ग्रन्थोंको स्वयं लिखकर उनका वाचन न करे। वाचकोंकी चाहिये कि वेदग्रन्थोंका विपरीत अर्थ न बतलावे और न वेदग्रन्थोंका अशुद्ध पाठ करे। क्योंकि ये दोनों अत्यन्त पवित्र हैं, ऐसा करनेपर उन्हें पावमानी श्रापोंका सौ बार जप करना चाहिये। पुराणादिके प्रारम्भ, मध्य और अवसानमें तथा ग्रन्थमें प्रणवका उच्चारण करना चाहिये।

देवीर्निर्गित पुस्तकोंको विदेव-स्वरूप समझकर गन्ध-पुष्पादिसे उसकी पूजा करनी चाहिये। ग्रन्थके रचनेवाले (धारा) भूजको नागरज वासुकिका स्वरूप समझना चाहिये। इनका सम्मान न करनेपर दोष होता है। अतः उसका कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिये। ग्रन्थके पक्षोंको भगवान् ब्रह्मा, अक्षरोंको जनार्दन, अक्षरोंमें लगी मात्राओंको अव्यय प्रकृत, लिपिोंको महेश तथा लिपिोंकी मात्राओंको सरस्वती समझना चाहिये।

पुराण-वाचकको चाहिये कि पुराण-संहिताओंमें परिगणित सभी ज्ञास, जैर्मनि अर्द्ध महर्षियों तथा इंकर, विष्णु आदि देवताओंको आदि, मध्य और अवसानमें नमस्कार करे। इनका स्मरण कर धर्मशास्त्रार्थवेत्ता विप्रको पुराणादिक एकाग्रचित्त हो पाठ करना चाहिये। वाचकोंका स्पष्टाक्षरोंमें उच्चारण करते हुए सुन्दर ध्वनिमें सभी प्रकारोंके तान्त्रिक अर्थोंको स्पष्ट बतलाना चाहिये। पुराणादि-धर्मसंहिताके श्रवणसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र विशेषतः अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करते हैं एवं सभी कामनाओंको भी प्राप्त कर लेते हैं तथा सभी पापोंमें मुक्त

१-इतिहासपुराणि कृता धकृता द्विजोत्तमाः। मुण्यो मर्कटेष्वेव ब्रह्महत्याश्रिते च यत्नः।

समय प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा मूर्च्छितः यः। तस्य विष्णुमुखा ब्रह्मा मुन्येन शङ्करेण च ॥ (पद्मपुराण, १।७।३-४)

होकर बहुत-से पुण्योंकी प्राप्ति कर लेते हैं।

जो वाचक सदा सम्पूर्ण ग्रन्थके अर्थ एवं तात्पर्यको सम्यक् रूपसे जानता है, वही उपदेश करनेके योग्य है और वही विप्र व्यास कहा जाता है। ऐसे वाचक विप्र जिस नगर या ग्राममें रहते हैं, वह पुण्यक्षेत्र कहा जाता है। वहकि निवासो धन्य तथा सफल-आत्मा है, कृतार्थ है एवं उनके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

जैसे सूर्यरहित दिन, चन्द्रशून्य रात्रि, बालकसे शून्य गृह तथा सूर्यके बिना ग्रहोंकी शोभा नहीं होती, वैसे ही व्याससे रहित सभाकी भी शोभा नहीं होती।

**श्रीसुतजी बोले—**द्विजोत्तम ! गुरुको चाहिये कि अध्यात्मविषयक पुराणका अध्यापन ज्ञानी, धार्मिक, पवित्र, भक्त, शांत, वैष्णव, ब्रह्मरहित तथा जितेन्द्रिय दिव्यको कराये। अन्यायसे धनार्जन करनेवाले, निर्भय, दाम्भिक, द्वेषी, निरर्थक और मन्द्यर गतिवाले एवं सेव्यरहित, यज्ञ न करनेवाले, पुरुषत्वहीन, कठोर, क्रुद्ध, कृपण, व्यसनी तथा निन्दक शिष्यको दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। पुत्र-पौत्र



### पूर्व-कर्म-निरूपण

**सुतजीने कहा—**ब्राह्मण ! युगान्तर्गते ब्रह्मणे जिस अन्तर्वेदि और बहिर्वेदकी बात बतलायी है, वह द्वार और करिगुरुके लिये अत्यन्त उत्तम मानी गयी है। जो कर्म ज्ञानसाध्य है, उसे अन्तर्वेदिकर्म कहते हैं। देवताकी स्थापना और पूजा बहिर्वेदि (पूर्व) कर्म है। वह बहिर्वेदि-कर्म दो प्रकारका है—कुर्वा, पोखरा, तालाब आदि खुदवाना और ब्राह्मणोंको संतुष्ट करना तथा गुरुजनोकी सेवा।

निष्कामभावपूर्वक किये गये कर्म तथा व्यवसनपूर्वक किया गया हरिस्मरणादि श्रेष्ठ कर्म अन्तर्वेदि-कर्मके अन्तर्गत आते हैं, इनके अतिरिक्त अन्य कर्म बहिर्वेदि-कर्म कहलाते हैं। धर्मका कारण राजा होता है, इसलिये राजाकी धर्मका पालन करना चाहिये और राजाका आश्रय लेकर प्रजाको भी बहिर्वेदि (पूर्व) कर्मोंका पालन करना चाहिये। यो तो बहिर्वेदि (पूर्व) कर्म सतासी प्रकारके कहे गये हैं, फिर भी इनमें तीन प्रधान हैं—देवताका स्थापन, प्रासाद और तडाग आदिका निर्माण। इसके अतिरिक्त गुरुजनोकी पूजापूर्वक पितृपूजा,

आदिके अतिरिक्त नम्र व्यक्तिको भी विद्या देनी चाहिये। विद्याको अपने साथ लेकर मर जाना अच्छा है, किंतु अनधिकारी व्यक्तिको विद्या नहीं देनी चाहिये। विद्या कहती है कि मुझे भक्तिहीन, दुर्जन तथा दुष्टात्मा व्यक्तिको प्रदान मत करो, मुझे अप्रमादी, पवित्र, ब्रह्मचारी, सार्धक तथा विभिन्न सज्जनको ही दो। यदि निषिद्ध व्यक्तिको श्रेष्ठ विद्याधन दिया जाता है तो दात और ग्रहणकर्ता—इन दोनोंमेंसे एक स्वल्प समयमें ही यमपुरी चला जाता है। पढ़नेवालेको चाहिये कि वह आध्यात्मिक, वैदिक, अलौकिक विद्या पढ़ानेवालेको प्रथम सादर प्रणाम कर अध्ययन करे। कर्मकाण्डका अध्ययन बिना व्योतिषज्ञानके नहीं करना चाहिये। जो विषय शास्त्रोंमें नहीं कहे गये हैं और जो म्लेच्छोंद्वारा कथित हैं, उनका कभी भी अभ्यास नहीं करना चाहिये। जो स्वयं धर्माचरण कर धर्मका उपदेश करता है, वही ज्ञान देनेवाला पिता एवं गुरु-स्वरूप है तथा ऐसे ज्ञानदाताका ही धर्म प्रवर्तित होता है।

(अध्याय ७-८)

देवताओंका अधिवासन और उनकी प्रतिष्ठा, देवता-प्रतिमा-निर्माण तथा वृक्षारोपण आदि भी पूर्व-कर्म हैं।

देवताओंकी प्रतिष्ठा उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ-भेदसे तीन प्रकारकी होती है। प्रतिष्ठामें पूजा, हवन तथा दान आदि ये तीन कर्म प्रधान हैं। तीन दिनोंमें सम्पन्न होनेवाले प्रतिष्ठा-विधानोंमें अट्ठाईस देवताओंकी पूजा तथा जापकरूपमें सोलह ब्राह्मण रखकर प्रतिष्ठा करनी चाहिये। प्रतिष्ठाकी यह उत्तम विधि कही गयी है। ऐसा करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। मध्यम प्रतिष्ठा-विधिमें यजन करनेवाले चार विद्वान् ब्राह्मण तथा तेईस देवता होते हैं। इसमें नवग्रह, दिक्पाल, वरुण, पृथ्वी, शिव आदि देवताओंकी एक दिनमें ही पूजा सम्पन्न कर देवताकी प्रतिष्ठा की जाती है। जो मात्र गणपति, ग्रह-दिक्पाल-वरुण और शिवकी अर्चना कर प्रतिष्ठा-विधान किया जाता है, वह कनिष्ठ विधि है। क्षुद्र देवताओंकी भी प्रतिमाएँ नाना प्रकारके वृक्षोंकी लकड़ियोंसे बनायी जाती हैं।

नवीन तालाब, खावली, कुण्ड और जल-पौसरा आदिक

निर्माण कर संस्कार-कार्यके लिये गणेशादि-देवपूजन तथा हवनादि कार्य करने चाहिये। तदनन्तर उनमें वापी, पुष्करिणी (नदी) आदिका पवित्र जल तथा गङ्गाजल डालना चाहिये।

एकसठ हाथका प्रासाद उत्तम तथा इससे आधे प्रमाणका मध्यम और इसके आधे प्रमाणसे निर्मित प्रासाद कनिष्ठ माना जाता है। ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवालेको देवताओंकी प्रतिमाके मानसे प्रासादका निर्माण करना चाहिये। नूतन तडागका निर्माण करनेवाला अथवा जहाँ तडागका नवीन रूपमें निर्माण करनेवाला व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कुलका उद्धार कर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वापी, कूप, तालाब, बगीचा तथा जलश्रेष्ठ निर्माण-स्थानको जो व्यक्ति बार-बार स्वच्छ या संस्कृत करता है, वह मुक्तिरूप उत्तम फल प्राप्त करता है। जहाँ विघ्नो एवं देवताओंका निवास हो, उनके मध्यवर्ती स्थानमें वापी, तालाब आदिका निर्माण मानवोंको करना चाहिये। नदीके तटपर और श्मशानके समीप उनका निर्माण न करे। जो मनुष्य वापी, मन्दिर आदिकी प्रतिष्ठा नहीं करता, उसे अनिष्टका भय होता है तथा वह फलका भागी भी होता है। अतः जनसंकुल गाँवोंके समीप बड़े तालाब, मन्दिर, कूप आदिका निर्माण कर उनकी प्रतिष्ठा शास्त्रविधिसे करना चाहिये। उनके शास्त्रोक्त विधिसे प्रतिष्ठित होनेपर उत्तम फल प्राप्त होते हैं। अतएव प्रयत्नपूर्वक मनुष्य न्यायशर्जित धनसे शुभ मुहूर्तमें शक्तिके अनुसार ब्रह्मपूर्वक प्रतिष्ठा करे। भगवान्‌के कनिष्ठ, मध्यम या श्रेष्ठ मन्दिरको बनानेवाला व्यक्ति विष्णुलोकको प्राप्त होता है और क्रमिक मुक्तिको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति गिरे हुए या गिर रहे अर्थात् जीवंत मन्दिरका रक्षण करता है, वह समस्त पुण्योंका फल प्राप्त करता है। जो

व्यक्ति विष्णु, शिव, सूर्य, ब्रह्मा, दुर्गा तथा लक्ष्मीनारायण आदिके मन्दिरोंका निर्माण करता है, वह अपने कुलका उद्धार कर कठिनाई करस्पृहक स्वर्गलोकमें निवास करता है। उसके बाद वहसि मृत्युलोकमें आकर राजा या पूज्यरूप धनी होता है। जो भगवती विष्णुसुन्दरीके मन्दिरमें अनेक देवताओंकी स्थापना करता है, वह सम्पूर्ण विश्वमें स्मरणीय हो जाता है और स्वर्गलोकमें सदा पूजित होता है। जलकी महिमा अपरम्पार है। परंपकार या देव-कार्यमें एक दिन भी किया गया जलका उपयोग मातृकुल, पितृकुल, भार्याकुल तथा आचार्यकुलकी अनेक पाँद्यियोंको तार देता है। उसका स्वयंका भी उद्धार हो जाता है। अविमुक्त दशार्णव तीर्थमें देवार्चन करनेसे अपना उद्धार होता है तथा अपने पितृ-मातृ आदि कुलोंको भी वह तार देता है। जलके ऊपर तथा प्रासाद (देवालय) के ऊपर रहनेके लिये घर नहीं बनवाना चाहिये। प्रतिष्ठित अथवा अप्रतिष्ठित शिवलिंगको कभी उखाड़ना नहीं चाहिये। इसी प्रकार अन्य देव-प्रतिमाओं और पूजित देववृक्षोंको चालित नहीं करना चाहिये। उसे चालित करनेवाले व्यक्तिको वैरव नरककी प्राप्ति होती है, परंतु यदि नगर या ग्राम उजड़ गये हों, अपना स्थान किसी कारण छोड़ना पड़े या विप्लव मचा हो तो उसकी पुनः प्रीति बिना विचारके करना चाहिये।

शुभ मुहूर्तके अभावमें देवमन्दिर तथा देववृक्ष आदि स्थापित नहीं करने चाहिये। बादमें उन्हें हटानेपर ब्रह्महत्याका दोष लगता है। देवताओंके मन्दिरके सामने पुष्करिणी आदि बनाने चाहिये। पुष्करिणी बनानेवाला अनन्त फल प्राप्तकर ब्रह्मलोकमें पुनः नीचे नहीं आता।

(अध्याय ९)



### प्रासाद, उद्यान आदिके निर्माणमें भूमि-परीक्षण तथा वृक्षारोपणकी महिमा

**सूतजी बोले—**ब्राह्मणो ! देवमन्दिर, तडाग आदिके निर्माण करनेमें सबसे पहले प्रमाणानुसार गृहीत की गयी भूमिका संशोधन कर दस हाथ अथवा पाँच हाथके प्रमाणमें बैल्लेसे उसे जुतवाना चाहिये। देवमन्दिरके लिये गृहीत भूमिको सफेद बैल्लेसे तथा कूप, बगीचे आदिके लिये काले बैल्लेसे जुतवाये। यदि वह भूमि ब्रह्म-यागके लिये हो तो उसे जुतवानेकी आवश्यकता नहीं, मात्र उसे स्वच्छ कर लेना

चाहिये। उस पूर्वोक्त स्थानको तीन दिन जुतवाना चाहिये। फिर उसमें पाँच प्रकारके धान्य बोने चाहिये। देवपक्षमें तथा उद्यानके लिये सात प्रकारके धान्य बपन करने चाहिये। मूँग, उड़द, धान, तिल, साँचा—ये पाँच व्रीहिगण हैं। मसूर और मटर या चना मिलायेसे सात व्रीहिगण होते हैं। (यदि ये बीज तीन, पाँच या सात रात्रिमें अङ्कुरित हो जाते हैं तो उनके फल इस प्रकार जानने चाहिये—तीन रातवाली भूमि उत्तम, पाँच



उतवाली भूमि मध्यम तथा सतत उतवाली भूमि कनिष्ठ है। कनिष्ठ भूमिको सर्वथा त्याग देना चाहिये। (१) क्षेत्र, लाल, चोली और काली—इन चार वर्णोंवाली पृथ्वी क्रमशः ब्रह्मणदि चारों वर्णोंके लिये प्रशंसित मानी गयी है। प्रासाद आदिके निर्माणमें पहले भूमिकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। उसकी एक विधि इस प्रकार है—अस्मिन्नाथ (लगभग एक हाथ लंबा) बिल्बकाष्ठको बारह अंगुलके गड्ढेमें गाड़कर, उसके भूमिसे ऊपरवाले भागमें चारों ओर चार लकड़ियाँ लगाकर उन्हें ऊनसे लपेटकर तेलसे चिरो ले। इन्हें चार बलियोंके रूपमें दीपककी भाँति प्रज्वलित करें। पूर्व तथा पश्चिमकी ओर खाली जलती रहे तो शुभ तथा दक्षिण एवं उत्तरकी ओरकी जलती रहे तो अशुभ माना गया है। यदि चारों बलियाँ बुझ जायें या मन्द हो जायें तो विपत्तिहारक है<sup>१</sup>। इस प्रकार सम्यक्-रूपसे भूमिकी परीक्षाकर उस भूमिको सूखसे आर्सेहित तथा कीर्तित कर वास्तुका पूजन करें। तदनन्तर वास्तुवर्ति देकर भूमि खोदनेवाले स्तम्भकी भी पूजा करें। वस्तुके मध्यमें एक हाथके पैमानेमें भूमिको घी, मधु, स्वर्णमिश्रित जल तथा रत्नमिश्रित जलसे ईशानाभिमुख होकर स्वीय दे, फिर खोदते समय 'आ ब्रह्मन्'<sup>२</sup> इस मन्त्रका उच्चारण करें। जो वास्तुदेवताका विना पूजन किये प्रासाद, तहान आदिका निर्माण करता है, यमराज उसका आध पुण्य नष्ट कर देते हैं।

अतः प्रासाद, आराम, उद्यान, महाकुप, गृहनिर्माणमें पहले वास्तुदेवताका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। जहाँ स्तम्भकी आवश्यकता हो वहाँ साल, नीर, पलाश, केसर, खैर तथा बकुल—इन वृक्षोंसे निर्मित युग कलियुगमें प्रशस्त माने गये हैं। यदि वापी, कुप आदिका विधिहीन स्तम्भ एवं आश्र आदि वृक्षोंका विधिहीन रोपण करें, तो उसे कुल भी फल प्राप्त नहीं होता, अपितु केवल अधोगति ही मिलती है। नदीके किनारे, इमंशान तथा अपने घरसे दक्षिणकी ओर तुलसीवृक्षका

रोपण न करें, अन्यथा यम-यातना भोगनी पड़ती है। विधि-पूर्वक वृक्षोंका रोपण करनेसे उसके पत्र, पुष्प तथा फलके स्व-रेणुओं आदिका समागम उसके पितरोंको प्रतिदिन तृप्त करता है।

जो व्यक्ति छाया, फूल और फल देनेवाले वृक्षोंका रोपण करता है या भर्गमें तथा देवाल्यमें वृक्षोंको लगाता है, वह अपने पितरोंको बड़े-बड़े पणोसे तारता है और रोपणकर्ता इस मनुष्य-लोकमें महती कीर्ति तथा शुभ परिणामोंका प्राप्त करता है तथा अतीत और अनागत पितरोंको स्वर्गमें जाकर भी तारता ही रहता है। अतः द्विजगण! वृक्ष लगाना अत्यन्त शुभ-दायक है। जिसको पुत्र नहीं है, उसके लिये वृक्ष ही पुत्र है, वृक्षरोपणकर्ताके लौकिक-पारलौकिक कर्म वृक्ष ही करते रहते हैं तथा स्वर्ग प्रदान करते हैं। यदि कोई अधन्य वृक्षका आरोपण करता है तो वाही उसके लिये एक लाख पुत्रोंसे भी बढ़कर है। आचार्य अपनी सद्गतिके लिये क्रम-से-क्रम एक या दो या तीन अधन्य-वृक्ष लगाना ही चाहिये। हजारा, लाख, करोड़ जो भी मुक्तिके साधन हैं, उनमें एक अधन्य-वृक्ष लगानेको बराबरी नहीं कर सकते।

अशोक-वृक्ष लगानेसे कभी शोक नहीं होता, प्रक्ष (पाकड़) वृक्ष उत्तम स्त्री प्रदान करवाता है, ज्ञानरूपी फल भी देता है। विष्णुवृक्ष दीर्घ आयुष्य प्रदान करता है। जामुनका वृक्ष धन देता है, तैलूका वृक्ष कुलवृद्धि कराता है। दाहिम (अनार) का वृक्ष स्त्री-सुख प्राप्त कराता है। बकुल पाप-नाशक, खैरुल (निनिश) जल-वृद्धिप्रद है। भातकी (घब) स्वर्ग प्रदान करता है। तटवृक्ष मोक्षप्रद, आमवृक्ष अर्पण कामनाप्रद और गुवाक (सुपारी) का वृक्ष सिद्धिप्रद है। खन्वल, मधूक (महुआ) तथा अर्जुन-वृक्ष सब प्रकारका अन्न प्रदान करता है। कदम्ब-वृक्षसे विपुल लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। तिलिटी (इमली) का वृक्ष धर्मदुष्क माना गया है।

१-भूमि-परीक्षा, वास्तु-विधान तथा प्रासाद आदिकी प्रतीक्षा आदिका विस्तृत विचार समस्तज्ञानसूत्रकार, वास्तुशास्त्रकालभ, बृहत्संहिता, जिल्परक, गृह्यसूत्राणि आदि ग्रन्थोंमें हुआ है। मत्स्य, अथि तथा विष्णुधर्मोपनिषद्में भी इसकी कही गयी है। इस विद्याका संक्षिप्त उल्लेख श्रुत्येद, शतपथ ब्राह्मण, श्रौतसूत्रों एवं मनुस्मृति ३।८२ आदिमें भी है। वास्तुविद्याके मुख्य प्रवर्तक एवं ज्ञाता विश्वकर्मा और मय राजन्य हैं।

२-आ ब्रह्मन् ब्रह्मणो ब्रह्मण्यन्तरीं कथयतां गड्ढे एकन्तः शुभ इत्यन्तेऽस्मिन्नाथी महारथो जगतां लोभाधी धेनुवीर्यदानश्चकान्तः सतीः पूर्वभ्यर्षेण विष्णु रथेष्टः समीपे युवाय वज्रमनस्य वीर्यो जायतां निजामे-निकामे न-परन्त्ये यत्किं कलकल्यो न ओषधयः पण्यन्तो योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

शमी-वृक्ष रोग-नाशक है। केशरसे शत्रुओंका विनाश होता है। श्वेत वट धनप्रदाता, पनस (कटहल) वृक्ष मन्द बुद्धिकारक है। मर्कटी (कैयाच) एवं कदम-वृक्षके लगानेसे संततिका क्षय होता है।

शीशम, अर्जुन, जयन्ती, करवीर, बेल तथा पल्लव-वृक्षोंके आरोपणसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। विधिपूर्वक वृक्षका रोपण करनेसे स्वर्ग-सुख प्राप्त होता है और रोपणकालके तीन वर्षोंके फल नष्ट हो जाते हैं। सौ वृक्षोंका रोपण करनेवाला ब्रह्मा-रूप और हजार वृक्षोंका रोपण करनेवाला विष्णुरूप बन जाता है। वृक्षके आरोपणमें वैशाख मास श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ अशुभ है। आषाढ़, श्रावण तथा भाद्रपद ये भी श्रेष्ठ है। आश्विन, कार्तिकमें वृक्ष लगानेसे विनाश या क्षय होता है। श्वेत तुलसी प्रशस्त मानी गयी है। अश्वत्थ, छटवृक्ष और श्रीवृक्षका छेदन करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मघाती कहलला है। वृक्षच्छेदी व्यक्ति मूक और सैकड़ों वर्षाभयोंसे युक्त होता है। तिलिहीके बीजोंको इक्षुदण्डसे पीसकर उसे जलमें मिलाकर सींचनेसे अशोककी तथा नारियलके जल एवं रजह-जलसे सींचनेसे आम्रवृक्षकी वृद्धि होती है। अश्वत्थ-वृक्षके मूलसे

दस हाथ चारों ओरका क्षेत्र पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र माना गया है और उसको छाया जहाँतक पहुँचती है तथा अश्वत्थ-वृक्षके संसर्गसे बहनेवाला जल जहाँतक पहुँचता है, वह क्षेत्र गङ्गाके समान पवित्र माना गया है।

**सुतजी पुनः बोले—**विप्रश्रेष्ठ ! तान्त्रिक पद्धतिके अनुसार सभी प्रतिष्ठादि कार्यमें शुद्ध दिन ही लेना चाहिये। वृक्षोंके उद्यानमें कुआँ अवश्य बनवाना चाहिये। तुलसी-वनमें कोई पाग नहीं करना चाहिये। तालाब, बड़े बाग तथा देवस्थानके मध्य सेतु नहीं बनवाना चाहिये। परंतु देवस्थानमें तडाग बनवाना चाहिये। शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठामें अन्य देवोंके स्थापना नहीं करने चाहिये। इसमें देश-काल (और शीवागमों) की मर्यादाके अनुसार आचरण करना चाहिये। उनके विपरीत आचरण करनेपर आयुका हान होता है। द्विजगण ! तालाब, कुएँकी तथा उद्यान आदिका जो परिमाण बताया गया हो, यदि उससे कम पैमानेपर ये बनाये जायें तो दोष है, किंतु दस हाथके परिणाममें हो तो कोई दोष नहीं है। यदि ये दो हजार हाथोंसे अधिक प्रमाणमें बनाये गये हों तो उनकी प्रतिष्ठा विधिपूर्वक अवश्य करनी चाहिये। (अध्याय १०-११)

### देव-प्रतिमा-निर्माण-विधि

**सुतजी बोले—**बाह्यगो ! अब मैं प्रतिमाका शास्त्रसम्मत लक्षण कहता हूँ। उत्तम लक्षणोंसे रचित प्रतिमाका पूजन नहीं करना चाहिये। पाषाण, काष्ठ, मूर्तिक, रत्न, ताम्र एवं अन्य धातु—इनमेंसे किसीकी भी प्रतिमा बनायी जा सकती है<sup>१</sup>। उनके पूजनसे सभी अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं। मन्दिरके मापके अनुसार शुभ लक्षणोंसे समस्त प्रतिमा बनवानी चाहिये। परम आठ अङ्गुलसे अधिक ऊँची मूर्तिक पूजन नहीं करना चाहिये। देवालयेके द्वारकी जो ऊँचाई हो उसे आठ भागोंमें विभक्त कर तीन भागके मापमें पिण्डिका तथा दो भागके मापमें देव-प्रतिमा बनाये। चौरासी अङ्गुल (साढ़े तीन हाथ) की प्रतिमा वृद्धि करनेवाली होती है। प्रतिमाके मुखकी

लम्बाई बारह अङ्गुल होनी चाहिये। मुखके तीन भागके प्रमाणमें चिबुक, ललाट तथा नासिका होनी चाहिये। नासिकाके बराबर ही कान और ग्रीवा बनानी चाहिये। नेत्र दो अङ्गुल-प्रमाणके बनाने चाहिये। नेत्रके मानके तीसरे भागमें औंखकी तारिका बनानी चाहिये। तारिकाके तृतीय भागमें सुन्दर दृष्टि बनानी चाहिये। ललाट, भस्त्रक तथा ग्रीवा—ये तीनों बराबर पापके हों। सिरका विस्तार बत्तीस अङ्गुल होना चाहिये। नासिका, मुँस और ग्रीवासे हृदय एक सीधमें होना चाहिये। मूर्तिकी जितनी ऊँचाई हो उसके आधमें कटि-प्रदेश बनाना चाहिये। दोनों बाहु, जंघा तथा ऊर परस्पर समान हों। टखने चार अङ्गुल ऊँचे बनाने चाहिये। पैरके अँगूठे तीन

१-भस्त्रपुराणमें प्रतिमा-निर्माणके लिये विप्र वस्तुओंको प्रस्ताव करतला है—

सौवर्णी राजसी क्वपि ताम्री रजमयी तथा । प्रैत्ये दामययी क्वपि लोहमदीसमयी तथा ॥

ऐतिकाधातुयुक्ता वा ताम्रकंस्यमयी तथा । शुक्लरजमयी क्वपि देवतायां प्रशस्यते ॥ (२५८/२०-२१)

मुक्ता, चाँदी, ताँबा, रज, पत्थर, देवदाग, लोह-मोटा, पीतल और काँसा निर्मित अथवा शुभ काष्ठोंकी बनी हुई देवप्रतिमा प्रशस्त मानी गयी है।

अङ्गुलके हो और उसका विस्तार छः अङ्गुलका हो। अङ्गुलके बराबर ही तर्जनी होनी चाहिये। शेष अङ्गुलियाँ क्रमशः छोटी हो तथा सभी अङ्गुलियाँ नखयुक्त बनाये। पैरको लंबाई चौदह अङ्गुलमें बनानी चाहिये। अङ्गुर, ओष्ठ, वक्षःस्थल, भ्रू, ललाट, गण्डस्थल तथा कपोल भरे-पूरे सुझौल सुन्दर तथा मसल बनाने चाहिये, जिससे प्रतिमा देखनेमें सुन्दर मालूम हो। नेत्र विशाल, फैले हुए तथा लालिमा लिये हुए बनाने चाहिये।

इस प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्भव प्रतिमा शुभ और पूज्य मानी गयी है। प्रतिमाके मस्तकमें मुकुट, कण्ठमें हार, बाहुओंमें कटक और अंगद पहनाने चाहिये। मूर्ति सर्वाङ्ग-सुन्दर, आकर्षक तथा तत्तत् अङ्गोंके अभूषणोंसे अलंकृत होनी चाहिये। भगवान्की प्रतिमामें देवकलशोंका आधान होनेपर भगवत्प्रतिमा प्रत्येकको अपनी ओर नरबस आकृष्ट कर लेती है और अभीष्ट वस्तुका लाभ कराती है।

जिसका मुखमण्डल दिव्य प्रभासे जगमगा रहा हो, कानोंमें चित्र-विचित्र मणियोंके सुन्दर कुण्डल तथा हाथोंमें कनक-मालाएँ और मस्तकपर सुन्दर केश सुशोभित हो, ऐसी

भक्तोंको कर देनेवाली, स्नेहसे परिपूर्ण, भगवतीकी सौम्य कैशोरी प्रतिमाका निर्माण कराये। भगवती विधिपूर्वक अर्चना करनेपर प्रसन्न होती है और उपासकोंके मनोरथोंको पूर्ण करती है।

नव ताल (साढ़े चार हाथ) की विष्णुकी प्रतिमा बनानी चाहिये। तीन तालकी वामुदेवकी, पाँच तालकी नृसिंह तथा हयग्रीवकी, आठ तालकी नारायणकी, पाँच तालकी महेशकी, नव तालकी भगवती दुर्गाकी, तीन-तीन तालकी लक्ष्मी और सरस्वतीकी तथा सात तालकी भगवान् मूर्षकी प्रतिमा बनवानेका विधान है।

भगवान्की मूर्तिको स्थापना तीर्थ, पर्वत, तालाब आदिके समीप करनी चाहिये अथवा नगरके मध्यभागमें या जहाँ ब्राह्मणोंका समूह हो, वहाँ करनी चाहिये। इनमें भी अधिकतम आदि सिद्ध क्षेत्रोंमें प्रतिष्ठा करनेवालेके पूर्वापर अनन्त कुल्लेका उद्धार हो जाता है। कलियुगमें चन्दन, अमर, विल्व, शीर्षीक तथा पद्मकाष्ठ आदि वस्तुओंके अभावमें मृन्मयी मूर्ति बनानी चाहिये। (अध्याय १२)



### कुण्ड-निर्माण एवं उनके संस्कारकी विधि और ग्रह-शान्तिका माहात्म्य

**सुतजी बोले—**द्विजश्रेष्ठ ! अब मैं यज्ञकुण्डोंके निर्माण एवं उनके संस्कारकी संक्षिप्त विधि बतला रहा हूँ। कुण्ड दस प्रकारके होते हैं—(१) चौकोर, (२) वर्त, (३) पद्म, (४) अर्धचन्द्र, (५) योनिकी आकृतिक, (६) चन्द्राकार, (७) पञ्चकोण, (८) सप्तकोण (९) अष्टकोण और (१०) नौ कोणोंवाला।

सबसे पहले भूमिका संशोधन कर भूमिपर पड़े हुए तृण, केश आदि हटा देने चाहिये। फिर उस भूमिपर भस्म और अंगार धुमाकर भूमि-शुद्धि करनी चाहिये, तदनन्तर उस भूमिपर जल-सिंचनकर बीजारोपण करे और सात दिनोंके बाद कुण्ड-निर्माणके लिये खनन करना चाहिये। तत्पश्चात् अभीष्ट उपर्युक्त दस कुण्डोंमेंसे किसीका निर्माण करना चाहिये। कुण्ड-निर्माणार्थ विधिवत् नाप-जोखके लिये सूत्रका उपयोग करे। कामना-भेदसे कुण्ड भी अनेक आकारके होते हैं। कुण्डके अनुरूप ही मेखला भी बनायी जाती है। यज्ञमें आहुतियोंकी संख्याका भी अलग-अलग विधान है। विधि-

ग्रन्थोंके अनुसार आहुति देनी चाहिये। मानरहित हवन करनेसे कोई फल नहीं मिलता। अतः बुद्धिमान् मनुष्यको मानका पूर्ण ज्ञान राखकर ही कुण्डका विधिवत् निर्माण कर यज्ञानुष्ठान करना चाहिये।

जिस यज्ञका जितना मान होता है, उसी मानकी ही योजना करनी चाहिये। पचास आहुतियोंका मान सामान्य है, इसके बाद सौ, हजार, अयुत, लक्ष और कोटि होम भी होते हैं। बड़े-बड़े यज्ञ सम्पत्ति रहनेपर हो सकते हैं या राजा-महाराजा कर सकते हैं। मनुष्य अपने-अपने प्राक्तन कर्मके अनुसार सुख-दुःखका उपभोग करता है तथा शुभाशुभ-फल ग्रहोंके अनुसार भोगता है। अतः शान्ति-पुष्टि-कर्ममें ग्रहोंकी शान्ति प्रयत्नपूर्वक परम भक्तिसे करनी चाहिये। दिव्य, अन्तरिक्ष और पृथिवी-सम्बन्धी बड़े-बड़े अद्भुत उत्पत्तियोंके होनेपर शुभाशुभ फल देनेवाली ग्रह-शान्ति करनी चाहिये। इन अवसरोंपर अयुत होम करना चाहिये। काण्य-कर्म या शान्ति-पुष्टिके लिये ग्रहोंका भक्तिपूर्वक नित्य

पूजन एवं हवन करना चाहिये। कलामें ग्रहोंके लिये लक्ष एवं कोटि होमका विधान है। गृहस्थको आभियारिक कर्म नहीं करना चाहिये।

कुण्डोंका इस्तेमाल संस्कार करना चाहिये। जिन संस्कार किये होम करनेपर अर्थ-हानि होती है। अतः संस्कार करके होमादि क्रियाएँ करनी चाहिये।

कुण्डोंके स्थानका ओंकारपूर्वक अवेशन, कुण्डके जलसे प्रोक्षण, त्रिशूलोक्षण तथा सूत्रसे आवेशित करना, कलिलित करना, अग्निजिह्वाकी भावना करना एवं अन्याहरण आदि अथारह संस्कार होते हैं। शूद्रके घरसे अग्नि कभी न लये। स्त्रीके द्वारा भी अग्नि नहीं मँगवानी चाहिये। शुद्ध एवं पवित्र व्यक्तिद्वारा अग्नि प्रहण करना चाहिये। तदनन्तर अग्निप्रक्ष संस्कार करे और उसे अपने अधिमुख रखे। अग्नि-बीज (१) और शिव-बीज (२) से उसका प्रोक्षण करे और शिव-शक्तिका ध्यान करे, इससे अभीष्ट सिद्धिकी प्राप्ति होती है। उसके बाद वायुके सहारे अग्नि प्रज्वलित करे। देवी भगवतीका और भगवान्का अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय आदिसे पूजन करे। अग्नि-पूजनमें इस मन्त्रका उपयोग करे—

‘पितृपितृरुह दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा’

यजुदत्तमुनिने अग्निकी तीन जिह्वाएँ बतलायी है— हिरण्या, कनका तथा कृष्णा<sup>१</sup>। समिधा-भेदसे जिन जिह्वा-भेदोंका वर्णन है, उनका उन्नीमें विनियोग करना चाहिये। बहुरूपा, अतिरूपा और सात्विका—इसका योग-कर्ममें विनियोग होता है। आन्यहोममें हिरण्या, विमघु (दूध, चीनी और मधु—इन तीनोंके समाहार) से हवन करनेपर कर्णिका,

शुद्ध क्षीरसे हवन करनेपर रक्ता, नैत्यिक कर्ममें प्रभा, पुष्पहोममें बहुरूपा, अन्न और पायससे हवन करनेमें कृष्णा, इक्षुहोममें पद्मरगा, पद्महोममें सुवर्णा और लोहिता, विल्वपत्रसे हवन करनेपर श्वेता, तिल-होममें धूमिनी, काष्ठ होममें करालिका, पितृहोममें लोहितास्या, देवहोममें मनोजवा नामकी अग्निज्वाला कही गयी है। जिन-जिन समिधाओंसे हवन किया जाता है, उन-उन समिधाओंमें ‘वैश्वानर’ नामक अग्निदेव स्थित रहते हैं।

अग्निसे मुखमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक आहुति पढ़नेपर अग्नि देवता सभी प्रकारका अभ्युदय करते हैं। मुखके अतिरिक्त शेष स्थानोंपर आहुति देनेसे अनिष्ट फल होता है। अग्निकी जिह्वाएँ विशेषरूपसे पृथक्पृथक् हिरण्या एवं अन्यान्य आहुतियोंमें गणना, चक्रा, कृष्णाभा, सुप्रभा, बहुरूपा तथा अति-रूपिका नामसे प्रसिद्ध हैं। कुण्डके उदरमें अर्थात् मध्यमें आहुतियाँ देनी चाहिये। इधर-उधर नहीं देनी चाहिये। चन्दन, अगरु, कस्तूर, पाटल तथा वृथिका (जूही) के समान अग्निसे प्रादुर्भूत गन्ध सभी प्रकारका कल्याणकारक होता है।

यदि अग्निकी ज्वाला छिन्न-वृत्त-रूपमें उठती हो तो मृत्युभय होता है और धनका क्षय होता है। अग्नि बुझ जाने तथा अत्यधिक धुआँ होनेपर भी महान् अनिष्ट होता है। ऐसी स्थितियोंमें प्रायश्चित्त करना चाहिये। पहले अष्टाईस आहुतियाँ देकर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। अनन्तर घीसे मूल मन्त्रद्वारा पचीस आहुतियाँ देनी चाहिये। तीनों कालोंमें महाभजन करे तथा श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करे। (अध्याय २३—२५)

### अग्नि-पूजन-विधि

सुतजी बोले—ब्राह्मणो ! नित्य-नैमित्तिक यागादिकी समाप्तिमें हवन हो जानेपर भगवान् अग्निदेवकी षोडश उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। अग्निसे वायुद्वारा प्रदीप्त कर पीठस्थ देवताओंकी पूजा कर हाथमें लाल फूल ले निम्न मन्त्र पढ़कर ध्यान करे—

इष्टं शक्तिस्वस्तिकाभीतिमुष्टेर्दीर्घेर्दीर्घार्धरिपन्तं वरात्तम् ।

हेमावकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद्वाग्निं बद्धयौलिं जटाधिः ॥

(मन्त्रसूत्र २।१६।३)

‘भगवान् अग्निदेवता अपने हाथोंमें उत्तम इष्ट (यज्ञपात्र), शक्ति, स्वस्तिक और अभय-मुद्रा धारण किये हैं, देदीप्यमान सुवर्ण-सदृश उनका स्वरूप है, कमलके ऊपर विराजमान हैं, तीन नेत्र हैं तथा वे जटाओं और मुकुटसे सुशोभित हैं।’

मन्त्रपढ़के पूर्व आदि द्वारदेशोंमें कामदेव, इन्द्र, वराह तथा कार्तिकेयको अवाहित कर स्थापित करे। तदनन्तर आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा गन्धादि उपचारोंसे पूजन कर आठ मुद्राएँ प्रदर्शित करे। फिर सुवर्ण-वर्णवाले निर्मल, प्रज्वलित,

१-प्रकरणान्तरे विश्वमूर्ति, मूर्तिर्द्विनेत्र, भूषवर्णा, मनोजवा, लोहितास्या, करालिका तथा काली—ये भी तात प्रकारकी अग्निजिह्वाएँ कही गयी हैं।



सर्वतोमुख, महाजिह्व तथा महोदर भगवान् अग्निदेवकी इसके बाद भगवान् अग्निदेवका विविध उपचारोंसे पूजन करें ।  
आकाश-रूपमें पूजा करें । अग्निकी जिह्वाओंका भी ध्यान करें ।

(अध्याय १६)

१-सर्वप्रथम निम्नलिखित मनसे तीन पुष्पगुच्छोंद्वारा अग्निदेवको अर्पण प्रदान करें—

**आसन-मन्त्र**—जगदिः सर्वभूतानां संसारव्यवहारकः । परमज्योतीरूपमस्यकारणं ससारव्यवहारकः ॥

संसार-रूपी सागरसे उद्धार करनेवाले, सम्पूर्ण प्राणियोंमें अग्नि, परम ज्योतिः-स्वरूप है अग्निदेव ! आप इस आसनको ग्रहण कर मुझे सफल बनायें । अनन्तर करबद्ध धारणा करें—

**प्रवक्ष्यन्-मन्त्र**—वैश्वानर नमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन । स्वागतं ते सुरश्रेष्ठ इदंति बुक्क नमोऽस्तु ते ॥

हे हव्यवाहन वैश्वानर देव ! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं, आपका स्वागत है, आपको नमस्कार है, आप इदंति प्रदान करें ।

**पञ्च-मन्त्र**—नमस्ते भगवन् देव आपोनायकमन्त्रकः । सर्वलोकाहितार्थं पाद्यं च प्रतिगृह्णाताम् ॥

न-नायकस्वरूप है भगवान् वैश्वानरदेव । आपको नमस्कार है । आप समस्त संसारके हितके लिये इस पाद्य-जलको ग्रहण करें ।

**अर्घ्य-मन्त्र**—नारायण परं धाम ज्योतीरूपं सनातन । गृह्णातामीं मया दत्तं विश्वकर्म नमोऽस्तु ते ॥

हे विश्वकर्म ! आप ज्योतीरूप हैं, आप ही सनातन, पाय पाय एवं नारायण हैं, आपको नमस्कार है, आप मेरे द्वारा दिये गये इस अर्घ्यको ग्रहण करें ।

**आलयमनीय मन्त्र**—जगददित्यकर्मण प्रवक्ष्यति यः सदा । तस्मै प्रवक्ष्यत्ययं नमस्ते जलवेदसे ॥

जो आदित्यकर्मसे सम्पूर्ण संसारको नित्य प्रवर्णित करते रहते हैं, ऐसे इन जलवेदा तथा प्रवक्ष्यत्ययं भगवान् वैश्वानरको नमस्कार है । हे अग्निदेव ! इस आलयमनीय जलको आप ग्रहण करें ।

**सायनीय मन्त्र**—धनञ्जय नमस्तेऽस्तु सर्वव्यवहाराय । स्वादीये ते मया दत्तं सर्वव्यवहारीन्द्रिये ॥

सभी पाषाणोंका चरित्र करनेवाले हे धनञ्जयदेव । आपको नमस्कार है । सम्पूर्ण व्यवहारोंकी सिद्धिके लिये मेरे द्वारा दिये गये इस सायनीय जलको आप ग्रहण करें ।

**अङ्गश्लेषण एवं मन्त्र-मन्त्र**—हुताशन महाबाहो देवदेव सनातन । इतलं ते प्रगच्छामि देहि मे परमं वदम् ॥

हे देवदेव सनातन महाबाहु हुताशन ! मैं आपको इतल हूँ, मुझे आप वरम वद प्रदान करें (मेरे द्वारा वदत इस अङ्गश्लेषण एवं मन्त्रको आप स्वीकार करें) ।

**अर्पणकार-मन्त्र**—ज्योतिषां ज्योतीरूपसामगजदिनिष्कसंयुतः । मया दत्तमर्पणकारमर्पणं नमोऽस्तु ते ॥

अपने सनत्से कभी च्युत न होनेवाले हे अग्निदेव । अर्पणकार न अग्नि है न अणु । आप ज्योतिषोंके परमज्योतीरूप हैं, आपको मेरा नमस्कार है । मेरे दिये गये इस अर्पणकारको आप अर्पण करें ।

**गन्ध-मन्त्र**—देवीदेवा मुदं याति वस्य सम्पन्नसमायताम् । सर्वलोकोपशान्त्यर्थं नमोऽयं प्रतिगृह्णाताम् ॥

हे देव । आपके सम्पन्न संनिधानसे सभी देवी-देवता प्रसन्न हो जाते हैं । सम्पूर्ण लोकोंकी शान्तिके लिये मेरे द्वारा दिये गये इस गन्धको आप ग्रहण करें ।

**पुष्प-मन्त्र**—विष्णुस्तवं हि ब्रह्मा च ज्योतिषां गतिर्देव । गृह्णातु पुष्पं देवेत सन्नुत्तमं जगद् धरेत् ॥

हे देवेत ! आप ही ब्रह्मा, विष्णु तथा ज्योतिषोंकी गति हैं और आप ही ईश्वर हैं । आप इस पुष्पको ग्रहण करें, जिससे सदा संसार पुष्पगन्धसे सुवासित हो जाय ।

**धूप-मन्त्र**—देवतानीं पितॄणां च सुखमेकं सनातनम् । धूतोऽयं देवदेवेत गृह्णातां मे धनञ्जय ॥

हे देवदेवेत धनञ्जय ! आप देवताओं और पितरोंके सुख प्राप्त करनेमें एकमात्र सनातन आधार हैं । आप मेरे द्वारा वदत इस धूपको ग्रहण करें ।

**टीप-मन्त्र**—लोकः सर्वभूतेषु स्वाधारेषु वरेषु च । परमात्म परात्मः प्रदीपः प्रतिगृह्णाताम् ॥

परमात्मन् ! आप सम्पूर्ण परापर प्राणियोंमें व्याप्त हैं । आपकी आकृति परम उत्कृष्ट है । आप इस टीपको ग्रहण करें ।

**नैवेद्य-मन्त्र**—नमोऽस्तु यज्ञपतये प्रथमे जातवेदसे । सर्वलोकाहितार्थं नैवेद्यं प्रतिगृह्णाताम् ॥

हे यज्ञपति जातवेदा ! आप इदंतिरहते हैं तथा समस्त संसारका कल्याण करनेवाले हैं, आपको मेरा नमस्कार है । मेरे द्वारा वदत इस नैवेद्यको आप ग्रहण करें । परम अन्नस्वरूप मधु भी नैवेद्यके रूपमें निवेदित करें तथा यज्ञपति भी अर्पित करें । अन्तमें समस्त कर्म भगवान् अग्निदेवको निवेदित कर दें—

हुताशन नमस्तुभ्यं नमस्ते हव्यवाहन । लोकनाथ नमस्तेऽस्तु नमस्ते जातवेदसे ॥

हे हुताशनदेव । आपको नमस्कार है, हव्यवाहन लोकनाथ ! आपको नमस्कार है, हे जातवेदा ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है ।

### विविध कर्मोंमें अग्निके नाम तथा होम-द्रव्योंका वर्णन

**सूतजी बोले—**ब्राह्मणो ! अब मैं शास्त्रसम्मत-विधिके अनुसार किये गये विविध यज्ञोंमें अग्निके नामोंका वर्णन करता हूँ। शतार्ध-होममें, पाँच सौ संख्यातककी आहुतिवाले यज्ञोंमें अग्निको कश्यप कहा गया है। इसी प्रकार आन्य-होममें विष्णु, तिल-यागमें वनस्पति, सहस्र-यागमें ब्राह्मण, अयुत-यागमें हरि, लक्ष-होममें वह्नि, कोटि-होममें हुताशन, शान्तिक कर्मोंमें वरुण, मारण-कर्मोंमें अरुण, नित्य-होममें अनल, प्रायश्चित्तमें हुताशन तथा अन्न-यज्ञमें स्नेहित नाम कहा गया है। देवप्रतिष्ठामें स्नेहित, वास्तुयाग, मण्डप तथा पशु-यागमें प्रजापति, प्रपा-यागमें नाग, महादानमें हविर्भुक्, गोदानमें रुद्र, कन्यादानमें योजक तथा तुल्य-पुण्य-दानमें धातारूपसे अग्निदेव स्थित रहते हैं। इसी प्रकार कुक्षेत्तरमें अग्निका सूर्य, वैश्वदेव-कर्ममें पावक, दीक्षा-ग्रहणमें जनार्दन, उषोऽह्नमें काल, रावदाहमें कल्प, पर्णराहमें यम, अस्विदाहमें विश्वश्विदक, गर्भाधानमें मरुतु, सीमन्तमें पिङ्गल, पुंसवनमें इन्द्र, नामकरणमें पार्थिव, निक्रमणमें ह्यटक, प्राशनमें रुधि, चूड्यकरणमें षडानन, व्रतोपदेशमें समुद्रव, उपनयनमें यौतिहोत्र, समावर्तनमें धनञ्जय, उदरमें जटर, समुद्रमें बडवानल, शिखामें विष्णु तथा लवदि शब्दोंमें सौम्य नाम

हैं। अक्षाग्निक मन्थर, रथाग्निक जातवेदम्, गजाग्निक मन्दर, मूर्खाग्निक विन्ध्य, तोयाग्निक वरुण, ब्राह्मणाग्निक हविर्भुक्, पर्वताग्निक नाम क्रतुर्भुक् है। दावाग्निको सूर्य कहा जाता है। दीपाग्निक नाम पावक, गृह्णाग्निका धरणीपति, घृताग्निका नल और स्तुतिर्वाग्निक नाम राक्षस है।

जिन द्रव्योंका होममें उपयोग किया जाता है, उनका निश्चित प्रमाण होता है। प्रमाणके बिना किया गया द्रव्योंका होम फलदायक नहीं होता। अतः शास्त्रके अनुसार प्रमाणका परिज्ञान कर लेना चाहिये। घी, दुध, पञ्चगव्य, दधि, मधु, लग्ना, गुड़, ईख, पत्र-पुष्प, सुपारी, समिध, व्रीहि, डंठलके साथ जपपुष्प और केसर, कमल, जीवन्ती, मातुलुङ्ग (बिजौरा नींबू), नारियल, कुम्भाण्ड, ककड़ी, गुरुच, तिट्ठक, तीन पत्तोंवाली दूब आदि अनेक होम-द्रव्य कहे गये हैं। भूर्जपत्र, शमी तथा समिध प्रादेशमात्रके होने चाहिये। बिल्वपत्र तीन पत्रयुक्त, किन्तु शिग्र-भिन्न नहीं होना चाहिये। इनमें शाख निर्दिष्ट प्रमाणसे न्यूनता या अधिकता नहीं होनी चाहिये। अभीष्ट-प्राप्तिके निमित्त किये जानेवाले शान्तिकर्म शास्त्रोक्त रीतिमें सम्पन्न होने चाहिये।

(अध्याय १७-१८)

### यज्ञ-पात्रोंका स्वरूप और पूर्णाहुतिकी विधि

**सूतजी बोले—**ब्राह्मणो ! यज्ञक्रियाके उपयोगमें आनेवाली सुवाके निर्माणमें—श्रीपर्णी, शिशपा, क्षीरी (दूधवाले वृक्ष) बिल्व और खदिरके काष्ठ प्रशस्त माने गये हैं। याग-क्रियामें इनसे बने सुवाके उपयोगमें सिद्धि प्राप्त होती है। देव-प्रतिष्ठामें आँवला, खदिर और केसरके वृक्षको भी सुवाके लिये श्रेष्ठजने उत्तम कहा है। सुवा प्रतिष्ठकार्थमें, सप्ताशन तथा संस्कार-कर्मों और यज्ञदिकार्योंमें प्रयुक्त होता है। सुवाके निर्माणमें बिल्व-काष्ठ ग्रहण करना चाहिये, परंतु उसके ग्रहणके समय रित्त्र आदि तिथियाँ न हों। उस काष्ठको ग्रहण करनेवाला व्यक्ति पहले उपवास करे और मद्य, मांस आदि सभी वस्तुओंका परित्याग कर दे, स्त्री-सम्पर्कसे भी दूर रहे। एक काष्ठसे सुवा और सुक् दोनोंका निर्माण किया जा सकता है। इनका निर्माण शास्त्रोक्त विधिके अनुसार करना

चाहिये। दर्वी अर्थात् करछुलका निर्माण स्वर्ण या तंबिके किया जाना चाहिये। यदि काष्ठसे करछुल बनानी हो तो गंधारी वृक्ष, तेंदूका वृक्ष और दूधवाले वृक्षके काष्ठसे बारह अङ्गुलीकी बनानी चाहिये। उसका नीचेका मण्डल दो अङ्गुलीका होना चाहिये। यज्ञ-साधनमें यह उपयोगी है। तंबिकी करछुल चालीस तोले, प्रायः आधा किलोकी होती है और उसका मण्डल पाँच अंगुलीका तथा लंबाई आठ हाथकी होती है। यही दर्वी (करछुल) पायस-निर्माणमें उपयोगी है। आज्य-शोधनके लिये दस तोलेकी ताम्रमयी करछुल होती है। इसके अभावमें पीपलके काष्ठसे सोलह अङ्गुलीके मापमें दर्वी (करछुल) बनाये। आज्य-स्थाली तंबिकी या मिट्टीकी भी हो सकती है।

**सूतजी बोले—**ब्राह्मणो ! अब मैं पूर्णाहुतिकी विधि

वतला रहा है, इसके अनुष्ठानसे यज्ञ पूर्ण होता है। अतएव पूर्णाहुति विधिपूर्वक करनी चाहिये। पूर्णाहुतिके बाद यज्ञमें आवाहित किये गये देवताओंको अर्घ्य देना चाहिये।

यदि यज्ञ अपूर्ण रहे तो यज्ञमान शीविहीन हो जाता है और यज्ञ पूर्ण फलप्रद नहीं होता। युकामें घर रखकर भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये। यज्ञ सम्पन्न हो जानेपर ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये। तदनन्तर यज्ञमान घरमें प्रवेश कर कुल-देवताओंकी प्रार्थना करे। प्रतिष्ठा-यागमें पूर्णाहुतिके समय 'सप्त ते' (यजु- १७।७९), 'देहि मे' (यजु- ३।५०), 'पूर्णा दर्वि' (यजु- ३।४९) तथा 'पुनन्तु' (यजु- १९।३९) इन मन्त्रोंका पाठ करे तथा नित्य-नैमित्तिक यागमें 'पुनन्तु', 'पूर्णा दर्वि', 'सप्त ते' तथा 'देहि मे'—का पाठ करे। विद्वानोंको इनमें अपने कुल-परम्पराका भी विचार करना चाहिये। पूर्णाहुति खाड़ा होकर सम्पन्न करना चाहिये, बैठकर नहीं। महहोम तथा शतहोममें एक पूर्णाहुति देने चाहिये। सहस्रयागमें दो, अयुत-होममें चार, सहस्र पुष्पहोममें एक, मृदु पुष्प-होममें एक, शत इक्षु-होममें दो, गर्वाधान, आकप्राशन, सीमन्तोन्नयन संस्कारोंमें और प्रायश्चित्तादि कर्म तथा नैमित्तिक वैश्वदेव-यागमें एक पूर्णाहुति देनेका विधान है।

मन्त्रोच्चारणमें ऋषि-छन्द, विनियोगादिका प्रयोग करना चाहिये। यदि इनका प्रयोग न किया जाय तो फल-प्राप्तिमें न्यूनता होती है। 'सप्त ते' इस ब्राह्मण-मन्त्रके कौण्डिन्य ऋषि, जगती छन्द और अग्नि देवता हैं। 'देहि मे' इस मन्त्रके प्रजापति ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और प्रजापति देवता हैं। 'पूर्णा दर्वि' इस मन्त्रके शतक्रतु ऋषि, अनुष्टुप् छन्द एवं अग्नि देवता हैं। 'पुनन्तु' इस मन्त्रके पयन ऋषि, जगती छन्द तथा देवता अग्नि हैं।

इस रीतिसे तत्-तत् मन्त्रोंके उच्चारणके समय ऋषि, छन्द एवं देवताका स्मरण करना चाहिये। जप-कालमें मन्त्रोंकी संख्या अवश्य पूरी करनी चाहिये। निर्दिष्ट संख्याके बिना किया गया जप फलदायी नहीं होता। अयुत-होम, लक्ष-होम और कोटि-होममें जिन ऋषिज् ब्राह्मणोंका वरण किया जाय, वे ज्ञान एवं काम-क्रोधरहित हों। ऋत्विजोंकी संख्या अभीष्ट होमानुसार करनी चाहिये। प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजाकर एवं दक्षिणा प्रदान कर उन्हें संतुष्ट करना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक याग-कर्म करनेवाला व्यक्ति वसु, आदित्य और मरुद्गणोंके द्वारा शिवलोकमें पूजित होता है तथा अनेक कल्पोंतक वहाँ निवास कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है। जो किसी कामनाके बिना अर्थात् निष्काम-भावपूर्वक ईश्वरार्पण-बुद्धिसे लक्ष-होम करता है, वह अपने अभीष्टको प्राप्त कर परमपद प्राप्त कर लेता है। पुत्रार्थी पुत्र, धनार्थी धन, भार्याार्थी भार्या और कुम्भारी गृध्र पतियोंको प्राप्त करती है। राज्यप्राप्त राज्य तथा लक्ष्मीकी कामनावाला व्यक्ति अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करता है। जो व्यक्ति निष्कामभावपूर्वक कोटि-होम करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। ब्रह्मज्ञाने स्वयं वतलाया है कि कोटि-होम लक्ष-होमसे सौ गुना श्रेष्ठ है। ऋत्विज् ब्राह्मणोंके अभावमें आचार्य भी होता बन सकता है। आमनेमें कुशासन प्रशस्त माना गया है।

देवता पद्यासनपर स्थित रहते हैं और वास भी करते हैं, अतः पद्यासनस्य होकर ही अर्चना करनी चाहिये। 'देवो भूत्वा देवान् वजेत' इस न्यायके अनुसार पद्यासनस्य देवताओंका अर्चन पद्यासनस्य होकर ही करना चाहिये। यदि ऐसा न किया जाय तो सम्पूर्ण फल यक्षिणी हरण कर लेती है।

(अध्याय १९—२१)

॥ प्रथम भाग सम्पूर्ण ॥



ॐ श्रीपरमात्मने नमः

## मध्यमपर्व (द्वितीय भाग)

यज्ञादि कर्मोंके मण्डल-निर्माणका विधान तथा क्रौञ्चादि पक्षियोंके दर्शनका फल

सूतजीने कहा—ब्राह्मणगण ! अब मैं आपलोगोंसे पुराणोंमें वर्णित मण्डल-निर्माणके विषयमें कहूँगा। बुद्धिमान व्यक्ति हाथसे नापकर मण्डलका माप निश्चित करे। फिर उसे तत्तत् स्थानोंमें विधि-विहित लाल आदि रंग भरें। उनमें देवताओंके अस्त्र-विशेष बाहर, मध्य और कोणमें लिखकर प्रदर्शित करे। शम्भु, गौरी, ब्राह्म, राम और कृष्ण आदिका अनुक्रमसे निर्देश करे। फिर सीमा-रेखाओंके एक अद्भुत ऊँचा उब-उन अर्ध-भागोंसे युक्त करे। दिश और विष्णुके मन्त्रयागमें शम्भुसे प्रारम्भ कर देवताओंकी परिकल्पना—ध्यात करे। प्रतिष्ठामें रामपर्वना, जलाशयमें कृष्णपर्वना और दुर्गायागमें ब्रह्मादिकी परिकल्पना करे। मण्डलका निर्माण अधम ब्राह्मण एवं शूद्र न करे। सूतजीने पुनः कहा—अब मैं ब्रह्मका स्वरूप बतलाता हूँ। सभी शास्त्रोंमें उसका उल्लेख मिलता है जो गोपनीय है। यह क्रौञ्च (पक्षी-विशेष) - महाक्रौञ्च, मध्य-ब्रह्म और कनिष्ठ-ब्रह्म-भेदसे तीन प्रकारका

वर्णित है। इसका दर्शन सैकड़ों जन्मोंमें किये गये पापोंको नष्ट करता है। मयूर, वृषभ, सिंह, क्रौञ्च और कपिको भस्ममें, खेतमें और वृक्षपर भूलसे भी देख ले तो उसको नमस्कार करे, ऐसा करनेसे दर्शनके सैकड़ों ब्रह्महत्याजनित पाप नष्ट हो जाते हैं। उनके पोषणमें कीर्ति मिलती है और दर्शनसे धन तथा आयु बढ़ती है। मयूर ब्रह्माका, वृषभ सदाशिवका, सिंह दुर्गाका, ब्रह्म नारायणका, बाघ त्रिपुरसुन्दरी-लक्ष्मीका रूप है। स्नानकर यदि प्रतिदिन इनका दर्शन किया जाय तो ग्रहदोष मिट जाता है। इसीलिये प्रयागपूर्वक इनका पोषण करना चाहिये। सभी यज्ञोंमें सर्वतोभद्रमण्डल सभी प्रकारकी पुष्टि प्रदान करता है। सर्वशक्तमान् ईश्वरने साधकोंके हितके लिये उसका प्रकाश किया है। सम्पूर्ण स्मार्त-यागोंमें सर्वतोभद्रमण्डलका विशेष रूपसे निर्माण किया जाता है और तत्-तत् स्थानोंमें तत्-तत् रंगोंसे पूरित किया जाता है।

(अध्याय १-२)

—२६—

## यज्ञादि कर्ममें दक्षिणाका माहात्म्य, विभिन्न कर्मोंमें पारिश्रमिक व्यवस्था और कलश-स्थापनका वर्णन

सूतजी बोले—ब्राह्मणों ! शास्त्रविहित यज्ञादि कर्म दक्षिणा रहित एवं परिमाणविहीन कभी नहीं करना चाहिये। ऐसा यज्ञ कभी सफल नहीं होता। जिस यज्ञका जो माप बतलाया गया है, उसीके अनुसार विधान करना चाहिये। मान्यरहित यज्ञ करनेवाले व्यक्ति नरकमें जाते हैं। आन्धर्य, लोभ, ब्रह्म तथा जितने भी सहयोगी हों, वे सभी विधिज्ञ हों।

अस्सी वरदों (कौड़ियों) का एक पण होता है। सोलह पणोंका एक पुराण कहा जाता है, सात पणोंकी एक रजतमुद्रा तथा आठ रजतमुद्राओंकी एक स्वर्णमुद्रा कही जाती है, जो यज्ञ आदिमें दक्षिणा दी जाती है। बड़े ठाकुरोंकी प्रतिष्ठा-यज्ञमें दो स्वर्णमुद्राएँ, कृपोत्सर्गमें आधी स्वर्णमुद्रा (निष्क), तुलसी एवं आमलकी-यागमें एक स्वर्णमुद्रा (निष्क) दक्षिणा- रूपमें विहित है। लक्ष-होममें चार स्वर्ण-मुद्रा, कोटि-होम,

देव-प्रतिष्ठा तथा श्रासंदेके उत्सर्गमें अठारह स्वर्ण-मुद्राएँ दक्षिणारूपमें देनेका विधान है। तद्वाग तथा पुष्करिणी-यागमें आधी-आधी स्वर्णमुद्रा देनी चाहिये। महादान, दीक्षा, कृपोत्सर्ग तथा गया-श्राद्धमें अपने विभवके अनुसार दक्षिणा देनी चाहिये। महाभारतके श्रवणमें अस्सी रत्नी तथा ग्रहयाग, प्रतिष्ठाकर्म, लक्षहोम, अद्भुत-होम तथा कोटिहोममें सौ-सौ रत्नी सुवर्ण देना चाहिये। इसी प्रकार शास्त्रोंमें निर्दिष्ट सत्पात्र व्यक्तियों को दान देना चाहिये, अपात्रको नहीं। यज्ञ, होममें द्रव्य, कष्ट, मृत आदिके लिये शास्त्र-निर्दिष्ट विधिका ही अनुसरण करना चाहिये। यज्ञ, दान तथा व्रतादि कर्मोंमें दक्षिणा (तत्काल) देनी चाहिये। बिना दक्षिणाके ये कार्य नहीं करने चाहिये। ब्राह्मणोंका जब वरण किया जाय तब उन्हें रत्न, सुवर्ण, चाँदी आदि दक्षिणारूपमें देना चाहिये। वस्त्र एवं



भूमि-दान भी विहित है। अन्यान्य दानों एवं यज्ञोंमें दक्षिणा एवं द्रव्योंका अलग-अलग विधान है। विधानके अनुसार निम्न दक्षिणा देनेमें असमर्थ होनेपर यज्ञ-कार्यकी सिद्धिके लिये देव-प्रतिमा, पुस्तक, रत्न, गाय, धान्य, तिल, रुद्राक्ष, फल एवं पुष्प आदि भी दिये जा सकते हैं। सूतजी पुनः बोले— ब्राह्मणो ! अब मैं पूर्णपात्रका स्वरूप बतलाता हूँ। उसे सुनें। काम्य-होममें एक मुष्टिके पूर्णपात्रका विधान है। आठ मुष्टी अन्नको एक कुष्ठिका कहते हैं। इसी प्रमाणसे पूर्णपात्रको निर्माण करना चाहिये। उन पात्रोंको अलग कर द्वार-प्रदेशमें स्थापित करें।

कुण्ड और कुट्टमलोंके निर्माणके पारिश्रमिक इस प्रकार है— चौकोर कुण्डके लिये रौप्यादि, सर्वतोभद्रकुण्डके लिये दो रौप्य, महासिंहासनके लिये पाँच रौप्य, सहस्रार तथा मेरुपृष्ठ-कुण्डके लिये एक बैल तथा चार रौप्य, महाकुण्डके निर्माणमें द्विगुणित स्वर्णपद, वृत्तकुण्डके लिये एक रौप्य, पद्मकुण्डके लिये वृषभ, अर्धचन्द्र-कुण्डके लिये एक रौप्य, खनिक्कुण्डके निर्माणमें एक धेनु तथा चार मरुत स्वर्ण, शैवपागमें तथा उद्यापनमें एक मारुत स्वर्ण, इष्टिकाकरणमें प्रतिदिन दो पण पारिश्रमिक देना चाहिये। सण्ड-कुण्ड- (अर्ध गोलकाकर-) निर्माताको दस वराट (एक वराट बराबर असौ कौड़ी), इससे बड़े कुण्डके निर्माणमें एक कर्कणी (मारुतका चौथाई भाग), सात हाथके कुण्ड-निर्माणमें एक पण, बृहत्कुण्डके निर्माणमें प्रतिदिन दो पण, गृह-निर्माणमें प्रतिदिन एक रत्ती सोना, कोष्ठ बनवाना हो तो आधा पण, रंगसे रंगनेमें एक पण, वृक्षोंके रोपणमें प्रतिदिन डेढ़ पण पारिश्रमिक देना चाहिये। इसी तरह पृथक् कर्मोंमें अनेक रीतियोंसे पारिश्रमिकका विधान किया गया है। यदि नापित सिरसे मुण्डन करे तो उसे दस कर्कणी देनी चाहिये। स्त्रियोंके नख आदिके रत्ननके लिये कर्कणीके साथ पण भी देना चाहिये। धानके रोपणमें एक दिनका एक पण

पारिश्रमिक होता है। तैल और क्षारसे वर्जित वस्त्रकी धुलाईके लिये एक पण पारिश्रमिक देना चाहिये। इसमें वस्त्रकी लम्बाईके अनुसार कुछ वृद्धि भी की जा सकती है। मिट्टीके खोदनेमें, कुटाल चलानेमें, इक्षु-दण्डके निष्पीडन तथा सहस्र पुष्प-चयनमें दस-दस कर्कणी पारिश्रमिक देना चाहिये। छोटी माला बनानेमें एक कर्कणी, बड़ी माला बनानेमें दो कर्कणी देना चाहिये। दीपकका आधार कसि या पीतलका होना चाहिये। इन दोनोंके अभावमें मिट्टीका भी आधार बनाया जा सकता है<sup>१</sup>।

सूतजी पुनः बोले— ब्राह्मणो ! अब मैं कलशोंके विषयमें विहित मत प्रकट करता हूँ, जिसका उपयोग करनेसे मङ्गल होता है और यात्रामें सिद्धि प्राप्त होती है। कलशमें सात अङ्ग अथवा पाँच अङ्ग होते हैं। कलशमें केवल जल भरनेसे ही सिद्धि नहीं होती, इसमें अक्षत और पुष्पोंमें देवताओंका आवाहन कर उनका पूजन भी करना चाहिये— ऐसा न करनेसे पूजन निष्फल हो जाता है। वट, अश्वत्थ, धव-वृक्ष और बिल्व-वृक्षके पत्तलोंको कलशके ऊपर रखें<sup>२</sup>। कलश सोना, चाँदी, ताँबा या मृत्तिकाके बनाये जाते हैं। कलशका निर्माण अपनी सामर्थ्यके अनुसार करे। कलश अभेद्य, निश्छिद्र, नवीन, सुन्दर एवं जलसे पुरित होना चाहिये। कलशके निर्माणके विषयमें भी विहित प्रमाण बतलाया गया है। बिना धानके बना हुआ कलश उपयुक्त नहीं माना गया है। जहाँ देवताओंका आवाहन-पूजन किया जाय, उन्हींकी संनिधिमें कलशकी स्थापना करनी चाहिये। व्यक्तिगत करनेपर फलका अपहरण शक्य कर लेते हैं। स्वस्तिक बनाकर उसके ऊपर निर्दिष्ट विधिसे कलश स्थापित कर वरुणादि देवताओंका आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिये।

(अध्याय ३—५)



१- भविष्यपुराणका यह अध्याय इतिहासकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वका है। केवल कौटिल्य अर्थशास्त्र और मुकुर्तीविरुद्ध ही भारतकी प्राचीन मुद्राओं एवं पारिश्रमिकका पता चलता है। अन्य किसी पुराण या धार्मिक ग्रन्थमें इनका कोई संकेत नहीं किया गया है। गीताप्रेससे प्रकाशित 'महर्षिवाद और रामराज्य' पुस्तकके पारिश्रमिकजाले प्रकरणमें इसपर पूरा विचार किया गया है तथा 'कल्याण' सन् १९६४ ई-के अङ्कमें भी इसपर विचार प्रकट किया गया है।

२- प्रचलित परम्परामें आम, पीतल, बरगद, ब्रह्म (चकड़) तथा उटुम्बर (गूलर)—ये पञ्च-पत्तल्य कहे गये हैं।

### चतुर्विध मास-व्यवस्था एवं मलमास-वर्णन

**सुतजी बोले—**ब्राह्मणो ! अब मैं (विभिन्न प्रकारके) मासोंका वर्णन करता हूँ। मास चार प्रकारके होते हैं— चान्द्र, सौर, सावन तथा नाक्षत्र। शुक्ल प्रतिपदामें लेकर अमावास्या-तकका मास चान्द्र-मास कहा जाता है। सूर्यको एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तिमें प्रवेश करनेका समय सौर-मास कहलाता है। पूरे तीस दिनोंका सावन-मास होता है। अधिनीसे लेकर ऐश्वरीयर्ष्य तक नाक्षत्र-मास होता है। सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयतक जो दिन होता है, उसे सावन-दिन कहते हैं। एक तिथिमें चन्द्रमा जितना भोग करता है, वह चान्द्र-दिवस कहलाता है। राशिके तीसवें भागको सौर-दिन कहते हैं। दिन-रातको मिलाकर अहोरात्र होता है। किसी भी तिथिको लेकर तीस दिन बाद आनेवाली तिथितकका समय सावन-मास होता है। प्रार्थना, अन्नप्राशन तथा मन्त्रोपासनमें, राजाके कर-ग्रहणमें, व्यवहारमें, यज्ञमें तथा दिनकी गणना आदिमें सावन-मास प्राज्ञ है। सौर-मास विवाहादि-संस्कार, यज्ञ-व्रत आदि सत्कर्म तथा खानादिमें प्राज्ञ है। चान्द्र-मास पार्वण, अष्टकाश्राद्ध, साधारण श्राद्ध, धार्मिक कार्यों आदिके लिये उपयुक्त है। वैज आदि मासोंमें तिथिको लेकर जो कर्म विहित हैं, वे चान्द्र-माससे करने चाहिये। सोम या पितृगणोंके कार्य आदिमें नाक्षत्र-मास प्रशस्त माना गया है। चित्रा नक्षत्रके योगसे वैशी पूर्णिमा होती है, उससे उपलब्धित मास वैज कहा जाता है। वैज आदि जो बारह चान्द्र-मास हैं, वे तत्-तत् नक्षत्रके योगसे तत्-तत् नामवाले होते हैं।

जिस महानेमें पूर्णिमाका योग न हो, वह प्रजा, पशु आदिके लिये अहितकर होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों नित्य तिथिकर भोग करते हैं। जिन तीस दिनोंमें संक्रमण न हो, वह मलमास, मलमास या अधिक मास (पुरुषोत्तम मास) कहलाता है, उसमें सूर्यको कोई संक्रान्ति नहीं होती। प्रायः अर्द्धाई वर्ष (बत्तीस मास) के बाद यह मास आता है। इस महानेमें सभी तरहकी प्रेत-क्रियाएँ तथा सपिण्डन-क्रियाएँ की जा सकती हैं। परंतु यज्ञ, विवाहादि कार्य नहीं होते। इसमें तीर्थस्नान, देव-दर्शन, व्रत-उपवास आदि, सोमलोभयन, शत्रुशान्ति, पुंसवन और पुत्र आदिकर मुख-दर्शन किया जा सकता है। इसी तरह शुक्लमासमें भी ये क्रियाएँ की जा सकती हैं। राज्याभिषेक भी मलमासमें हो सकता है। व्रतारम्भ, प्रतिष्ठा, वृद्धाकर्म, उपनयन, मन्त्रोपासना, विवाह, नूतन-गृह-निर्माण, गृह-प्रवेश, गौ आदिका ग्रहण, आश्रमस्नानमें प्रवेश, तीर्थ-यात्रा, अभिषेक-कर्म, कृषोत्सर्ग, कन्याका द्विरागमन तथा यज्ञ-यागादि—इन सबका मलमासमें निषेध है। इसी तरह शुक्लमास एवं उसके वार्धक्य और बाल्यावयवों में इनका निषेध है। गुरुके अस्त एवं सूर्यके सिंहराशिमें स्थित होनेपर अधिक मासमें जो निषिद्ध कर्म हैं, उन्हें नहीं करना चाहिये। कर्क राशिमें सूर्यके आनेपर भगवान् इष्टन करते हैं और उनके तुल्यराशिमें आनेपर निद्राका त्याग करते हैं। (अध्याय ६)

### काल-विभाग, तिथि-निर्णय एवं वर्षधरके विशेष

#### पर्वों तथा तिथियोंके पुण्यप्रद कृत्य

**सुतजी बोले—**ब्राह्मणो ! देव-कर्म या पैतृक-कर्म कालके आधारपर ही सम्पन्न होते हैं और कर्म भी नियत समयपर किये जानेपर पूर्णरूपेण फलप्रद होते हैं। समयके बिना की गयी क्रियाओंका फल तीनों कालों तथा लोकोंमें भी प्राप्त नहीं होता। अतः मैं कालके विभागोंका वर्णन करता हूँ।

यद्यपि काल अमूर्तरूपमें एक तथा भगवान्का ही अन्यतम स्वरूप है तथापि उपाधियोंके भेदसे वह दीर्घ, लघु आदि अनेक रूपोंमें विभक्त है। तिथि, नक्षत्र, वार तथा रात्रिक सम्बन्ध आदि जो कुछ हैं, वे सभी कालके ही अङ्ग हैं और पक्ष,

मास आदि रूपसे वर्षान्तरेमें भी आते-जाते रहते हैं तथा वे ही सब कर्मोंके साधन हैं। समयके बिना कोई भी स्वतन्त्ररूपसे कर्म करनेमें समर्थ नहीं। धर्म या अधर्मका मुख्य द्वार काल ही है। तिथि आदि काल-विशेषोंमें निषिद्ध और विहित कर्म बताये गये हैं। विहित कर्मोंका पालन करनेवाला स्वर्ग प्राप्त करता है और विहितका त्यागकर निषिद्ध कर्म करनेसे अधोगति प्राप्त करता है। पूर्वार्द्धव्यापिनी तिथिमें वैदिक क्रियाएँ करनी चाहिये। एकोदश श्राद्ध मध्याह्नव्यापिनी तिथिमें और पार्वण-श्राद्ध अपराह्न-व्यापिनी तिथिमें करना चाहिये। वृद्धिश्राद्ध आदि

प्रातःकालमें करने चाहिये। ब्रह्माजीने देवताओंके लिये तिथियोंके साथ पूर्वाह्नकाल दिया है और पितरोंको अपराह्न। पूर्वाह्णमें देवताओंका अर्चन करना चाहिये।

तिथियाँ तीन प्रकारकी होती हैं—खर्वा, दर्पा और हिस्सा। लक्षित होनेवाली खर्वा, तिथिबुद्धि दर्पा तथा तिथिहानि हिस्सा कही जाती है। इनमें खर्वा और दर्पा अंगेकी लेनी चाहिये और हिस्सा (क्षय-तिथि) पूर्वमें लेनी चाहिये। शुक्ल पक्षमें पर लेनी चाहिये और कृष्ण पक्षमें पूर्वा। भगवान् सूर्य जिस तिथिको प्राप्त कर उदित होते हैं, वह तिथि खान-दान आदि कृत्योंमें उचित है। यदि अस्त-समयमें भगवान् सूर्य दस घटीपर्यन्त रहते हैं तो वह तिथि रात-दिन समझनी चाहिये। शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्षमें खर्वा या दर्पा तिथिके अस्तपर्यन्त सूर्य रहे तो पितृकार्यमें वही तिथि ग्राह्य है। दो दिनमें मध्यह्नकालव्यापिनी तिथि होनेपर अस्तपर्यन्त रहनेवाली प्रथम तिथि श्राद्ध आदिमें विहित है। द्वितीया तृतीयासे तथा चतुर्थी पञ्चमीसे युक्त हो तो ये तिथियाँ पुण्यप्रद मानी गयी हैं और उसके विपरीत होनेपर पुण्यका ह्रास करती हैं। षष्ठी पञ्चमीसे एवं अष्टमी सप्तमीसे विद्ध हो तथा दशमी से एकादशी, त्रयोदशीसे चतुर्दशी और चतुर्दशीसे अमावास्या विद्ध हो तो उनमें उपवास नहीं करना चाहिये, अन्यथा पुत्र, कलत्र और भनका ह्रास होता है। पुत्र-भार्यादिसे रहित व्यक्ति-का यज्ञमें अधिकार नहीं है। जिस तिथिको लेकर सूर्य उदित होते हैं, वह तिथि खान, अध्ययन और दानके लिये श्रेष्ठ समझनी चाहिये। कृष्ण पक्षमें जिस तिथिमें सूर्य अस्त होते हैं, वह खान, दान आदि कर्मोंमें पितरोंके लिये उत्तम मानी जाती है।

सुतजी कहते हैं—ब्राह्मणों! अब मैं ब्रह्माजीद्वारा बतलायी गयी श्रेष्ठ तिथियोंका वर्णन करता हूँ। आश्विन, कार्तिक, माघ और चैत्र इन महीनोंमें खान, दान और भगवान् शिव तथा विष्णुका पूजन दस गुना फलप्रद होता है। प्रतिपदा तिथिमें अग्निदेवका यजन और हवन करनेसे सभी तरहके धान्य और ईषित धन प्राप्त होते हैं। यदि शुक्ल पक्षमें द्वितीया तिथि बृहस्पतिवारसे युक्त हो तो उस तिथिमें विधिपूर्वक भगवान् अग्निदेवका पूजन और नक्तवत करनेसे इच्छित ऐश्वर्य प्राप्त होता है। मिथुन (आषाढ़) और कर्क (श्रावण) राशिके सूर्यमें जो द्वितीया आये, उसमें उपवास करके भगवान् विष्णुका पूजन करनेवाली स्त्री कभी विधवा नहीं होती।

अश्विन-श्रवण द्वितीया (श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीया तिथि)को गन्ध, पुष्प, वस्त्र तथा विविध नैवेद्योंसे भगवान् लक्ष्मीनारायणकी पूजा करनी चाहिये। (इस व्रतसे पति-पत्नीका परस्पर वियोग नहीं होता।) वैशाख शुक्ल पक्षकी तृतीयामें गङ्गाजीमें स्नान करनेवाला सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वैशाख मासकी तृतीया स्वाती नक्षत्र और माघकी तृतीया रोहिणीयुक्त हो तथा आश्विन-तृतीया वृषराशिसे युक्त हो तो उसमें जो भी दान दिया जाता है, वह अक्षय होता है। विशेषरूपसे इनमें हविष्यान्न एवं मोदक देनेसे अधिक लाभ होता है तथा गुड़ और कर्पूरसे युक्त जलदान करनेवालेकी विद्वान् पुरुष अधिक प्रशंसा करते हैं, वह मनुष्य ब्रह्मलोकमें पुजित होता है। यदि बुधवार और ब्रह्मणसे युक्त तृतीया हो तो उसमें खान और उपवास करनेसे अनन्त फल प्राप्त होता है। भारणी नक्षत्रयुक्त चतुर्थीमें यमदेवताकी उपासना करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति मिलती है। भाद्रपदकी शुक्ल चतुर्थी शिवलोकमें पुजित है। कार्तिक और माघ मासके ग्राहणीमें खान, जप, तप, दान, उपवास और श्राद्ध करनेसे अनन्त फल मिलता है। चतुर्थीमें सम्पूर्ण विद्येकी नाश तथा इच्छा-पूर्तिके लिये भगवान् गणेशकी पूजा मोदक आदिसे भक्तिपूर्वक करनी चाहिये।

श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीमें द्वार-देशके दोनों ओर गोमयसे नागोंकी रचनाकर दूध, दही, सिंदूर, चन्दन, गङ्गाजल एवं मुग्धचित्त इव्योंसे नागोंका पूजन करना चाहिये। नागोंका पूजन करनेवालेके कुलमें निर्भयता रहती है एवं प्राणोंकी रक्षा भी होती है। श्रावण कृष्ण पक्षकी चतुर्थीमें नागोंके पत्तोंसे मनसा देवीकी पूजा करनेसे कभी सर्वभय नहीं होता। भाद्रपदकी षष्ठीमें खान, दान आदि करनेसे अनन्त पुण्य होता है। विप्रगणों! माघ और कार्तिककी षष्ठीमें व्रत करनेसे इहलोक और परलोकमें असीम कीर्ति प्राप्त होती है। शुक्ल पक्षकी सप्तमीमें यदि संक्रान्ति पड़े तो उसका नाम महाजया या सूर्यप्रिया होती है। भाद्रपदकी सप्तमी अपराजिता है। शुक्ल या कृष्ण पक्षकी षष्ठी या सप्तमी रविवारसे युक्त हो तो वह ललिता नामकी तिथि पुत्र-पौत्रोंकी वृद्धि करनेवाली और महान् पुण्यदायिनी है।

आश्विन एवं कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीमें

अष्टादशभुजाका पूजन करना चाहिये। आषाढ़ और श्रावण

मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीमें चण्डिकादेवीका प्रातःकाल स्नान करके अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजन कर रात्रिमें अभिषेक करना चाहिये। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीमें अशोक-पुष्पसे मृण्मयी भगवती देवीका अर्चन करनेसे सम्पूर्ण शोक निवृत्त हो जाते हैं। श्रावण मासमें अथवा सिंह-संक्रान्तिमें रोहिणीयुक्त अष्टमी हो तो उसकी अत्यन्त प्रशंसा की गयी है। प्रतिमासकी नवमीमें देवीकी पूजा करनी चाहिये। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी दशमीको शुद्ध आहारपूर्वक रहनेवाले ब्रह्मलोकमें जाते हैं। ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी दशमी गङ्गादशहर कहलाती है। आश्विनकी दशमी विजया और कार्तिककी दशमी महापुण्या कहलाती है।

एकादशी-व्रत करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इस व्रतमें दशमीको जितेन्द्रिय होकर एक ही बार भोजन करना चाहिये। दूसरे दिन एकादशमें उपवास कर द्वादशमें पारण करनी चाहिये। द्वादशी तिथि द्वादश प्राणोंका हरण करती है। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीमें अनेक पुण्यादि सम्प्रदायोंसे कामदेवकी पूजा करे। इसे अनङ्ग-त्रयोदशी कहा जाता है। चैत्र मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमी शनिवार या शतभिषा नक्षत्रसे युक्त हो तो गङ्गामें स्नान करनेसे सैकड़ों सूर्यग्रहणका फल प्राप्त होता है। इसी मासके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी यदि शनिवार या शतभिषासे युक्त हो तो वह महावास्तवी-पर्व कहलाता है। इसमें किया गया स्नान, दान एवं श्राद्ध अक्षय होता है। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी दम्भर्षजिनी कही जाती है। इस दिन धनुरेकी जड़में कामदेवका अर्चन करना चाहिये, इससे उत्तम स्थान प्राप्त होता है। अनन्त-चतुर्दशीका व्रत सम्पूर्ण प्राणोंका नाश करनेवाला है। इसे भक्तिपूर्वक

करनेसे मनुष्य अनन्त सुख प्राप्त करता है। प्रेत-चतुर्दशी (यम-चतुर्दशी) को तपस्वी ब्राह्मणोंको भोजन और दान देनेसे मनुष्य यमलोकमें नहीं जाता। फाल्गुन मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी शिकरात्रिके नामसे प्रसिद्ध है और वह सम्पूर्ण अभिलषणाओंकी पूर्ति करनेवाली है। इस दिन चारों पहरोमें स्नान करके भक्तिपूर्वक शिवजीकी आराधना करनी चाहिये। चैत्र मासकी पूर्णिमा चित्र नक्षत्र तथा गुरुवारसे युक्त हो तो वह महाचैत्री कही जाती है। वह अनन्त पुण्य प्रदान करनेवाली है। इसी प्रकार विशाखादि नक्षत्रसे युक्त वैशाखी, महाज्येष्ठी आदि बारह पूर्णिमाएँ होती हैं। इनमें किये गये स्नान, दान, जप, नियम आदि सत्कर्म अक्षय होते हैं और ब्रतीके पितर संतुष्ट होकर अक्षय विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं। हरिद्वारमें महावैशाखीका पर्व विशेष पुण्य प्रदान करता है। इसी प्रकार शालग्राम-क्षेत्रमें महाचैत्री, पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें महाज्येष्ठी, शुङ्गल-क्षेत्रमें महापाद्मी, केदारमें महाश्रावणी, बदरिकाक्षेत्रमें महाभद्रा, पुष्कर तथा वनप्रकुन्जमें महाकार्तिकी, अयोध्यामें महामार्गशीर्षी तथा महाचैत्री, प्रयागमें महामाघी तथा नैमिषारण्यमें महाफाल्गुनी पूर्णिमा विशेष फल देनेवाली है। इन पर्वोंमें जो भी शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं, वे अक्षय हो जाते हैं। आश्विनकी पूर्णिमा कौमुदी कही गयी है, इसमें चन्द्रोदय-कालमें विधिपूर्वक लक्ष्मीकी पूजा करनी चाहिये। प्रत्येक अमावास्याको तर्पण और श्राद्धकर्म अवश्य करना चाहिये। कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी अमावास्यामें प्रदोषके समय लक्ष्मीका सर्वाधि पूजन कर उनकी प्रीतिके लिये दीपोंको प्रज्वलित करना चाहिये एवं नदीतीर, पर्वत, गोष्ठ, उमशान, वृक्षमूल, चौखण्ड, अपने घरमें और चत्वरमें दीपोंको सजाना चाहिये। (अध्याय ७-८)

### गोत्र-प्रवर आदिके ज्ञानकी आवश्यकता

**सूतजी कहते हैं—**ब्राह्मणों। गोत्र-प्रवरकी परम्पराको जानना अत्यन्त आवश्यक होता है, इसलिये अपने-अपने गोत्र या प्रवरको पिता, आचार्य तथा शास्त्रद्वारा जानना चाहिये। गोत्र-प्रवरको जाने बिना किया गया कर्म विपरीत फलदायी होता है। कश्यप, वसिष्ठ, विश्वामित्र, आङ्गिरस, ज्येष्ठा,

मैकुन्त्य, कत्स, कल्पायन, अगस्त्य आदि अनेक गोत्रप्रवर्तक ऋषि हैं। गोत्रोंमें एक, दो, तीन, पाँच आदि प्रवर होते हैं। समस्त गोत्रमें विवाहादि सम्बन्धोंका निषेध है। अपने गोत्र-प्रवरदिक ज्ञान शास्त्रान्तरेसे कर लेना चाहिये।<sup>१</sup>

वास्तवमें देखा जाय तो सारा जगत् महामुनि कश्यपसे

१-गोत्र-प्रवर-निर्णय 'गोत्र-प्रवर-निबन्ध-कटव' आदि कई महत्व निबन्ध ग्रन्थ हैं। मत्स्यपुराणके अध्याय १९५-२०५ तकमें विस्तारसे यह विषय आया है तथा स्कन्दपुराणके मातेश्वर-खण्ड एवं ब्रह्मलोकमें भी इसका विचार किया गया है।



उत्पन्न हुआ है। अतः जिन्हें अपने गोत्र और प्रवक्ता ज्ञान नहीं मालूम न हो तो स्वयंको काश्यप<sup>१</sup> गोत्रीय मानकर उनका प्रवर है, उन्हें अपने पिताजीसे ज्ञात कर लेना चाहिये। यदि उन्हें लगाकर शास्त्रानुसार कर्म करना चाहिये। (अध्याय ९)

## वास्तु-मण्डलके निर्माण एवं वास्तु-पूजनकी संक्षिप्त विधि<sup>२</sup>

**सूतजी कहते हैं—**ब्राह्मणो ! अब मैं वास्तु-मण्डलके संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ। पहले भूमिपर अक्षुरोंका रोपण करके भूमिकी परीक्षा कर ले। तदनन्तर उत्तम भूमिके मध्यमें वास्तु-मण्डलका निर्माण करे। वास्तु-मण्डलके देवता पैतालीस हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) शिवो, (२) पर्यन्, (३) जयन्त, (४) कुलिशायुध, (५) सूर्य, (६) सत्य, (७) वृष, (८) आकाश, (९) वायु, (१०) पूष, (११) वितथ, (१२) गुहा, (१३) यम, (१४) तन्वर्ष, (१५) मृगाराज, (१६) मृग, (१७) पितृगण, (१८) दौवारिक, (१९) सुखिन्, (२०) पुष्पदन, (२१) वरुण, (२२) असुर, (२३) पशु, (२४) पाश, (२५) रोग, (२६) अहि, (२७) मोक्ष, (२८) भल्लपाट, (२९) सोम, (३०) सर्प, (३१) अदिति, (३२) दिति, (३३) अप, (३४) सावित्र, (३५) जय, (३६) रुद्र, (३७) अर्यमा, (३८) सविता, (३९) विवस्वान्, (४०) विबुधाधिप, (४१) मित्र, (४२) राजयक्ष्मा, (४३) पृथ्वीधर, (४४) आपवत्स तथा (४५) ब्रह्मा।

इन पैतालीस देवताओंके साथ ही वास्तु-मण्डलके बाहर ईशानकोणमें चरको, अश्विकोणमें विदारौ, नैऋत्यकोणमें पूतना तथा वायव्यकोणमें पापराक्षसीकी स्थापना करनी चाहिये। मण्डलके पूर्व दिशामें स्कन्द, दक्षिणमें अर्यमा, पश्चिममें जम्भक तथा उत्तरमें पितृपिच्छकी स्थापना करनी चाहिये। इस प्रकार वास्तु-मण्डलमें तिरपन देवी-देवताओंकी स्थापना होती है। इन सभीका अलग-अलग मन्त्रोंसे पूजन करना चाहिये। मण्डलके बाहर ही पूर्वोदि दस दिशाओंमें दस दिक्पाल देवताओं—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुम्भर, ईशान, ब्रह्मा तथा अनन्तकी भी यथास्थान पूजा कर उन्हें बलि (नैवेद्य) निवेदित करनी चाहिये। वास्तु-मण्डलकी रेखाएँ खेत वर्णसे तथा मध्यमें कमल लाल वर्णसे अनुरञ्जित करना चाहिये। शिवी आदि पैतालीस देवताओंके कोष्ठकोंको रक्तादि रंगोंसे अनुरञ्जित करना चाहिये। गृह, देवमन्दिर, महाकूप आदिके निर्माणमें तथा देव-प्रतिष्ठा आदिमें वास्तु-मण्डलका निर्माणकर वास्तुमण्डलस्य देवताओंका आवाहनकर उनका पूजन आदि करना चाहिये। पवित्र स्थानपर लिप्पी-पुती डेढ़

१-राखके लिये एकमात्र परमात्म ही परमव्यक्तार्थ ध्येय-उप है और काश्यपमन्द सूर्यके रूपमें वे प्रायश्चर्यमें समस्तका पालन, संरक्षण—तथा तथा प्रवक्ताके रूपमें, फिर वायु—मण्डलके रूपमें समस्त प्राणियोंके जीवन देने हैं। इसलिये सभी वैश्य और संन्यासी अपनेको अण्डुत-गोत्रीय ही मानते हैं। प्राचीन परम्पराके अनुसार वेदध्यायनों वैदिक गण्डा, सूत्र, ऋषि, गोत्र और प्रवक्ता ज्ञान आवश्यक था। यह विषय आधुनिकयुग गृहयुद्धों में निर्दिष्ट है।

२-जिस भूमिपर मनुष्यदि प्राणी निवास करते हैं, उसे वास्तु कहा जाता है। इसके गृह, देवमण्डल, ग्राम, नगर, पुर, दुर्ग आदि अनेक भेद हैं। इसपर वास्तुशास्त्रालम्ब, समग्रद्वारसूत्रधार, कृत्तर्कविद्या, शिल्पाक, गृहसूत्रपूजा, हस्तशिल्पशास्त्र तथा अग्निल-वाह्यरात्र आदि ग्रन्थोंमें पूर्ण विचार किया गया है। पुराणोंमें मत्स्य, अग्नि तथा विष्णुसंहितपुराणमें भी यह महत्वपूर्ण विषय आया है। 'कल्याण' के देवताओंमें भी वास्तु-पञ्चमिके विषयमें सामग्री संकलित की गयी है। वास्तुके अतिरिक्तके विषयमें मत्स्यपुराणमें आया है कि अथर्वसंस्कृतके चतुर्थके समय भगवान् शंकरके ललाटे जो स्वेदचिन्दु गिरे उसमें एक भयंकर आकृतिवाला पुरुष प्रकट हुआ। जब वह चित्प्रेषके भक्षण करनेके लिये उठात हुआ, तब शंकर आदि देवताओंने उसे पृथ्वीपर सुलभकर वास्तुदेवता (वास्तुपुराण) के रूपमें स्वीकृत किया और उसके प्रतीकमें सभी देवताओंने जास किया। इसीलिये वह वास्तुदेवता कहलाया। देवताओंने उसे बुझित होनेका वर भी प्रदान किया। वास्तुदेवताकी पूजाके लिये वास्तुप्रतिष्ठा तथा वास्तुचक्र बनया जाता है। वास्तुचक्र प्रायः ४९ से लेकर एक सार्दस पञ्चमक होता है। चित्र-चित्र अवसरोज चित्र-चित्र वास्तुचक्रोंका निर्माणकर उनमें देवताओंका आवाहन, स्थापन एवं पूजन किया जाता है। चौसठ पञ्चमक तथा इक्यासी पञ्चमक वास्तुचक्रके पूजनकी परम्परा विशेषरूपसे प्रचलित है। इन सभी वास्तुचक्रके धेतोमें प्रायः इन्द्रादि दस दिक्पालोंके साथ शिवी आदि पैतालीस देवताओंका पूजन किया जाता है तथा उन्हें पायसात्र बलि प्रदान की जाती है। वास्तुमण्डलमें वास्तुदेवता (वास्तुदेवता) की पूजाकर उनसे सर्वोत्थि शान्ति एवं कल्याणकी प्रार्थना की जाती है।



विष्णुस्वरूप वास्तोष्पतिकी इस स्तुतिको कहा है। इसका जो प्रयत्नपूर्वक निरन्तर पाठ करता है, उसे अमरता प्राप्त हो जाती है और जो हल्कमल्लके मध्य निवास करनेवाले भगवान् अभ्युत-विष्णुका ध्यान करता है, वह वैष्णवी सिद्धि प्राप्त करता है। यज्ञकर्मकी पूर्णतामें आचार्यको पर्याप्तियों गौ तथा सुवर्ण दक्षिणामें दे, अन्य ब्राह्मणोंको भी सुवर्ण प्रदान करे। प्रजापत्य और विष्टकृत् हवन करे। आचार्य और ऋत्विज मिलकर यजमानपर कलशके जलसे अभिषेक करे। पूर्णहुति देकर भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर

यजमान घरमें प्रवेश करे, अनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराये। दोन, अन्ध और कृष्णोंका अपनी शक्तिके अनुसार सम्मान करे। फिर अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वयं भोजन करे। उस दिन भोजनमें दूध, कसैले पदार्थ, भुने हुए शक्कर तथा करेल आदि निषिद्ध पदार्थोंका उपयोग न करे। शाल्यज, मूली, कटहल, आम, मधु, घी, गुड़, सेंधा नमकके साथ मातुलुङ्ग (बिजौरा नौब), बदरीफल, धात्रीफल एवं तिल और मरिच आदिसे बने पदार्थ भोजनमें प्रशस्त कहे गये हैं।

(अध्याय १०—१३)

### कुशकण्डिका-विधान तथा अग्नि-जिह्वाओंके नाम

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणों। अब मैं याग-विशेषमें स्वगृह्याग्नि-विधि कह रहा हूँ। अपनी वेदादि शास्त्रोंके अनुकूल ही गृह्याग्नि-विधि करनी चाहिये। दूसरेकी शास्त्रोंके विधानसे याग-विशेषोंका अनुष्ठान करनेपर भयको प्राप्ति होती है और कीर्तिको नाश होता है। पुत्र, कन्या और आगे उत्पन्न होनेवाले पुत्रादि गृह्यनामसे कहे जाते हैं। यजमानके जितने दावाद होते हैं, वे सब गृह्यनामसे कहे जाते हैं। उनके संस्कार, याग और शक्तिवर्त्म-क्रियाओंमें अपने गृह्याग्निसे ही अनुष्ठान करना चाहिये। आचार्यद्वारा विहित कल्पको दशमूतिमें कहा गया है। आचार्य इन कर्मोंमें तीन कुशाओंका परिग्रहण करता है। जिस मन्त्रसे कुशा ग्रहण करता है, उसके ऋषि दक्ष, जगती छन्द और विष्णु देवता हैं। पृथ्वीके शोधनमें 'भूरसि-' (यजुः १३।१८) इस मन्त्रका विनियोग करे। इस मन्त्रके ऋषि सुवर्ण हैं, गायत्री और जगती छन्द तथा सूर्य देवता हैं। अनन्तर उन तीन कुशाओंकी तर्जनी तथा अँगूठोंसे एकड़कर ईशानकोणसे लेकर दक्षिण होते हुए ईशानकोणतक वलयाकृतिमें घुमाये तथा उनसे भूमिका मार्जन करे। यही

परिसंपूजन-क्रिया है। 'मा नलोके' (यजुः १६।१६) इस मन्त्रके द्वारा रोमवसे भूमिका उपलेखन करे। तदनन्तर (शैरकी लकड़ीसे बने स्पर्शके द्वारा) रेखाकरण करे। पूरवसे पश्चिमकी ओर तीन रेखाएँ खींचे। पहली रेखा दक्षिणकी ओर अनन्तर उत्तरकी ओर बढ़े। इसके विपरीत करनेपर अमङ्गल होता है। इसके बाद अङ्गुष्ठ तथा अनामिकासे उन तीनों रेखाओंसे मिट्टी निकाले, इसे उद्धरण कहा जाता है। इस समय 'मित्रावरुणाभ्यां' (यजुः ७।२३) इत्यादि मन्त्रोंका स्मरण करे। अनन्तर कुशपुष्पोदक अथवा पञ्चगव्य या पञ्चरजोदक अथवा पञ्चपल्लवोंके जलसे अभ्युक्ष्ण (अभिषिञ्चन) करे। अनन्तर कर्मवाधनभूत लौकिक स्वार्त अथवा श्रौताग्निका आनयन करे और अपने सामने स्थापित करे। इस क्रियामें 'मे गृह्याग्नि' इस मन्त्रका पाठ करे। 'ऋष्यादाग्नि' (यजुः ३५।१९) इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए लायी गयी अग्निमेंसे कुछ आग दक्षिण दिशाकी ओर फेंक दे, यह 'ऋष्यादाग्नि' कही गयी है। ऋष्यादाग्निका ग्रहण न करे। 'संस्मरक्ष' इस मन्त्रसे उस अग्निका आवाहन करे। तदनन्तर

पदानाभे इपीकेरो दत्त दामेदरो हरीः। विविज्मन्त्रिकेकेरो ब्रह्मणः प्रोतिवर्धनः॥

भक्तप्रियोऽप्युतः सत्यः सत्यवाक्यो धुवः शुचिः। सन्ध्यां दशमन्त्राद्विज्मन्त्रादनुष्ठानायकः॥

विदारी विनयः शान्तसारसी वैद्युत्प्रभः। यज्ञसत्वं हि कर्त्तव्यमस्मिन्मन्त्रास्तत्प्रभः॥

तौ स्वधा तं हि स्वहा तं मुधा च पुनश्चोत्तः।

नमो देवदिदेवाय विष्णवे शाश्वतय च। अनन्तपात्रमेवाय नमस्ते गजदन्धव॥

ब्रह्मसाधयिमे प्रोक्तं महादेवेन भवितुम्। प्रपन्नार् यः पठेन्नियम्यतश्च स गच्छति॥

ध्यायन्ति ये नित्यमनन्तपुनः। हृत्पदमधो स्तनकण्ठनिधनम्।

उत्तसप्तमोऽप्युपेकमोऽथ ते यान्तं निदिदं पश्यं तु वैजयन्तम्॥

(मध्यमपर्य २।१२।१५६—१६३)

‘वैश्वानरः’ (यजुः २६।७) इस मन्त्रसे कुण्ड आदिमें अग्नि-स्थापन करे। ‘वज्राग्निः’ इस मन्त्रसे अग्नि की प्रदक्षिणा करे तथा अग्निदेवको नमस्कार करे। अग्निके दक्षिणमें वरुण किये गये ब्रह्माको कुशके आसन्नर ‘ब्रह्मन् ब्रह्म उपविश्यताम्’ कहकर बैठये। उस समय ‘ब्रह्म जज्ञाने’ (यजुः १३।३) तथा ‘द्यौष्ठी धेनुः’ इन दो मन्त्रोंका पाठ करे। अग्निके उत्तरभागमें प्रणीता-पात्रको स्थापित करे। ‘इमे मे वरुणः’ (यजुः २१।१) इस मन्त्रसे प्रणीता-पात्रको जलसे धार दे। इसके अनन्तर कुण्डके चारों ओर कुश-परिहारण करे और काष्ठ (समिधा), वीहि, अन्न, तिल, अपूप, भृङ्गराज, फल, दही, दूध, घनस, नारिकेल, मोदक आदि यज्ञ-सम्बन्धे प्रयोज्य पदार्थोंको यथास्थान स्थापित करे। विंशत्यक्षरोंकी एकलक्ष्मीसे बनी सुवा तथा शमी, शमीपत्र, बरुमाली आदि भी स्थापित करे। प्रणीता-पात्रका स्पर्श होम-कालमें नहीं करना चाहिये। ज्ञान-कुण्डको यज्ञपर्यन्त स्थिर रखना चाहिये। प्रादेशमात्रके दो पवित्रका बनाकर प्रोक्षणी-पात्रमें स्थापित करे। प्रणीता-पात्रके जलसे प्रोक्षणी-पात्रमें तीन बार जल डाले। प्रोक्षणी-पात्रको बायें हाथमें रखकर मध्यमा तथा अङ्गुष्ठसे पवित्रक ग्रहण कर ‘पवित्रं ते’ (ऋः १।८३।१) इस मन्त्रसे तीन बार जल छिड़के, स्थापित पदार्थोंका प्रोक्षण करे और प्रोक्षणी-पात्रको प्रणीता-पात्रके दक्षिण-भागमें यथास्थान रख दे। प्रादेशमात्रके अनन्तरमें आज्यस्थाली रखे। घीको अग्निमें तपाये, घीमेंसे अपद्रव्योंका निरसन करे। इसके बाद पर्येषिकरण करे। एक जलते हुए आगके अंगारोंको लेकर आज्यस्थाली और चरुस्थालीके ऊपर प्रक्षालन करायें। इस समय ‘कुलधिविनी’ (यजुः १४।२) इस मन्त्रका पाठ करे। अनन्तर सुवाको दायें

हाथमें ग्रहण कर अग्निपर तपाये। सम्मार्जन-कुशाओंसे सुवाको मूलसे अग्रभागकी ओर सम्मार्जित करे। इसके बाद प्रणीताके जलमें तीन बार प्रोक्षण करे। पुनः सुवाको आगपर तपाये और प्रोक्षणीके उत्तरकी ओर रख दे। आज्यपात्रको सामने रख ले। पवित्रोंसे घीका तीन बार उत्सवण कर ले। पवित्रोंसे ईशानसे आरम्भकर दक्षिणावर्त होते हुए ईशानपर्यन्त पर्युक्षण करे। अनन्तर अग्निदेवका इस प्रकार ध्यान करे— ‘अग्नि देवताका रत्न वर्ण है, उनके तीन मुख हैं, वे अपने बायें हाथमें कमण्डलु तथा दाहिने हाथमें सुवा ग्रहण किये हुए हैं।’ ध्यानके अनन्तर सुवा लेकर हवन करे।

इस प्रकार स्वगृहीत विधिसे द्वारा ब्रह्म तथा ऋत्विजोंका वरुण करना चाहिये। कुशकण्डिका-कर्म करके अग्निका पूजन करे। आचार, आज्यभाग, महाव्याहृति, प्रायश्चित्त, प्राजापत्य तथा शिष्टकृत हवन करे। प्रजपति और इन्द्रके निमित्त दी गयी आहुतियाँ आभारसंज्ञक हैं। अग्नि और सोमके निमित्त दी जानेवाली आहुतियाँ आज्यभाग कहलाती हैं। ‘भूर्भुवः स्वः’—ये तीन महाव्याहृतियाँ हैं। ‘अयाह्वाने’ इत्यादि पवित्र मन्त्र प्रायश्चित्त-संज्ञक हैं। एक प्राजापत्य आहुति तथा एक शिष्टकृत आहुति—इस प्रकार होममें चौदह आहुतियाँ नित्य-संज्ञक हैं। इस प्रकार चतुर्दश आहुत्यात्मक हवन कर कर्म-निमित्तक देवताको उद्देश्यकर प्रधान हवन करना चाहिये। अग्नि की सात विद्याएँ कही गयी हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) हिरण्या, (२) कनका, (३) रत्न, (४) आरक्त, (५) सुप्रभा, (६) बहुरूपा तथा (७) सती। इन विद्या-देवियोंके ध्यान करनेसे सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय १४—१६)

### अधिवासनकर्म एवं यज्ञकर्ममें उपयोज्य उत्तम ब्राह्मण तथा धर्मदेवताका स्वरूप

सुतजी कहते हैं—ब्राह्मणों ! देव-प्रतिष्ठाके पहले दिन देवताओंका अधिवासन करना चाहिये और विधिसे अनुसर अधिवासनके पदार्थ—धान्य आदिकी प्रतिष्ठाकर यूप आदिको भी स्थापित कर लेना चाहिये। कलशके ऊपर गणेशजीकी स्थापना कर दिक्पाल और ग्रहोंका पूजन करना चाहिये। तड़गा तथा उद्यानकी प्रतिष्ठामें प्रधानरूपसे ब्रह्माकी, ज्ञानि-यागमें तथा प्रपायागमें वरुणकी, शैव-प्रतिष्ठामें शिवकी और सोम,

सूर्य तथा विष्णु एवं अन्य देवताओंका भी पाद्य-अर्घ्य आदिसे अर्चन करना चाहिये। ‘हृषदातिवः’ (यजुः २०।२०) इस मन्त्रसे पहले प्रतिमाको स्नान करायें। स्नानके अनन्तर मन्त्रोंद्वारा गन्ध, फूल, फल, दुर्वा, सिंदूर, चन्दन, सुगन्धित तैल, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, वस्त्र आदि उपचारोंसे पूजन करे। मण्डपके अंदर प्रधान देवताका आवाहन करे और उसीमें अधिवासन करे। सुरक्षा-कर्मियोंद्वारा उस स्थानकी



सुरक्षा करवाये। तदनन्तर आचार्य, यजमान और ऋत्विक् मधुर पदार्थोंका भोजन करें। बिना अधिवासन-कर्म सम्पन्न किये देवप्रतिष्ठाका कोई फल नहीं होता। नित्य, नैमित्तिक अथवा काश्य कर्मोंमें विधिके अनुसार कुण्ड-मण्डपकी रचनाकर हवन-कार्य करना चाहिये।

ब्राह्मणों। यज्ञकर्ममें अनुष्ठानके प्रणालसे आठ होता, आठ द्वारपाल और आठ याजक ब्राह्मण होने चाहिये। ये सभी ब्राह्मण शुद्ध, पवित्र तथा उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न वेदमन्त्रोंमें पारङ्गत होने चाहिये। एक जप करनेवाले आपकका भी करण करना चाहिये। ब्राह्मणोंकी गन्ध, माल्य, वस्त्र तथा टाँगिया आदिके द्वारा विधिके अनुसार पूजा करनी चाहिये। उत्तम सर्वलक्षणसम्पन्न तथा विद्वान् ब्राह्मण न मिलनेपर किये गये यज्ञका उत्तम फल प्राप्त नहीं होता। ब्राह्मण वर्णोंके सम्बन्ध गोत्र और नामका निर्देश करे। तुल्यपुरुषोंके दानमें, सर्प-पर्वतोंके दानमें, वृषोत्सर्गमें एवं कन्धदानमें गोवृक्षके साथ प्रवसका भी उच्चारण करना चाहिये। मृत भार्याबाल, कृष्ण, शुद्धके घरमें निवास करनेवाला, ब्रौन्, वृक्षलैपल, बन्धुद्वेषी, गुरुद्वेषी, स्त्रीद्वेषी, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, भग्नदत्त, टाँगिक, प्रतिष्ठाही, कुनसी, व्यभिचारी, कुडी, निद्रालु, व्यसनी, अदीक्षित, महाव्रणी, अपुत्र तथा केवल अपना ही भरण-पोषण करनेवाला—ये सब यज्ञके पात्र नहीं हैं। ब्राह्मणोंके करण एवं पूजनके मन्त्रोंके भाव इस प्रकार हैं— आचार्यदेव ! आप ब्रह्माकी मूर्ति हैं। इस संसारसे मेरी रक्षा करें। गुरु ! आपके प्रसादसे ही यह यज्ञ करनेका सुअवसर भुझे प्राप्त हुआ है। चिरकालतक मेरी कीर्ति बनी रहे। आप मुझपर प्रसन्न होंगे, जिससे मैं यह कार्य सिद्ध कर सकूँ। आप सब भूतोंके अवधि हैं, संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाले हैं। ज्ञानरूपी अमृतके

आप आचार्य हैं। आप यजुर्वेदस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। ऋत्विज्गणो ! आप षडङ्ग वेदोंके ज्ञाता हैं, आप हमारे लिये मोक्षप्रद हों। मण्डलमें प्रवेश करके उन ब्राह्मणोंको अपने-अपने स्थानोंपर क्रमशः आदरसे बैठाये। वेदीके पश्चिम भागमें आचार्यको बैठाये, कुण्डके अग्र-भागमें ब्रह्माको बैठाये। होत, द्वारपाल आदिको भी यथास्थान आसन दे। यजमान उन आचार्य आदिको सम्बोधित कर प्रार्थना करे कि आप सब नारायणस्वरूप हैं। मेरी यज्ञको सफल बनायें। यजुर्वेदके तत्त्वार्थको जाननेवाले ब्रह्मरूप आचार्य ! आपको प्रणाम है। आप सम्पूर्ण यज्ञकर्मके साक्षीभूत हैं। ऋग्वेदार्थको जाननेवाले इन्द्ररूप ब्रह्मन् ! आपको नमस्कार है। इस यज्ञकर्मकी सिद्धिके लिये ज्ञानरूपी मङ्गलमूर्ति भगवान् शिवको नमस्कार है। आप सभी दिशाओं-विदिशाओंसे इस यज्ञकी रक्षा करें। दिक्पालरूपी ब्राह्मणोंको नमस्कार है।

अतः, देवार्चन तथा यागादि कर्म संकल्पपूर्वक करने चाहिये। काम संकल्पमूलक और यज्ञ संकल्पसम्भूत है। संकल्पके बिना जो धर्माचरण करता है, वह कोई फल नहीं प्राप्त कर सकता। गङ्गा, सूर्य, चन्द्र, घी, भूमि, रात्रि, दिन, सूर्य, सोम, यम, काल, पञ्च महाभूत—ये सब शुभाशुभ-कर्मके साक्षी हैं<sup>१</sup>। अतएव विचारवान् मनुष्यको अशुभ कर्मोंसे विरत हो धर्मका आचरण करना चाहिये। धर्मदेव शुभ अतिरेकाले एवं श्वेतवस्त्र धारण करते हैं। वृषस्वरूप ये धर्मदेव अपने दोनो हाथोंमें वस्त्र और अभय-मुद्रा धारण किये हैं। ये सभी प्राणियोंको सुख देते हैं और राज्ञोंके लिये एकमात्र मोक्षके कारण हैं। इस प्रकारके स्वरूपवाले भगवान् धर्मदेव सत्पुरुषोंके लिये कल्याणकारी हों तथा सदा सबकी रक्षा करें<sup>२</sup>। (अध्याय १७-१८)

### प्रतिष्ठा-मुहूर्त एवं जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा-विधि

सुतजी कहते हैं—ब्राह्मणों ! ऋषियोंने देवता आदिकी जबतक भगवान् विष्णु शयन नहीं करते, तबतक प्रतिष्ठा आदि प्रतिष्ठामें पाप, फलानु आदि छः मास नियत किये हैं। कार्य करने चाहिये। शुक्र, गुरु, बुध, सोम—ये चार बार शुभ

१-गङ्गा शदित्यन्तरी च सौर्षमी चक्रिमरी ॥

सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च। एते शुभाशुभान्येव कर्मणे नमः साक्षिणः ॥ (मध्यमपर्व २।१८।४३-४४)

२-धर्मः शुभप्रभुः शिवात्मधरः कर्णोद्धरिणः। कृते हस्तप्लवमप्यं वीर्यं सततं रूपं परं चोदयत् ॥

सर्वप्राणिमुक्तायः कृतार्थः मोक्षस्त्रिणः। सदा सोमं चतुर्वर्त्ति चैव सततं भुवत् सता भूतये ॥ (मध्यमपर्व २।१८।४६)

हैं। जिस लग्नमें शुभ ग्रह स्थित हों एवं शुभ ग्रहोंकी दृष्टि पड़ती हो, उस लग्नमें प्रतिष्ठा करनी चाहिये। तिथियोगमें द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, प्रयोदशी तथा पूर्णिमा तिथियाँ उत्तम हैं। प्राण-प्रतिष्ठा एवं जलशय आदि कार्य प्रशस्त शुभ मुहूर्तमें ही करने चाहिये। देवप्रतिष्ठा और बड़े यागोंमें सोलह हाथका एवं चार द्वारोंसे युक्त मण्डपका निर्माण करके उसके दिशा-विदिशाओंमें शुभ ध्वजारें फहरानी चाहिये। पाकड़, गूलर, पीपल तथा बरगदके तोरण चारों द्वारोंपर पूर्वादि क्रमसे बनाये। मण्डपको मालाओं आदिसे अलंकृत करे। दिक्पालोंकी पताकाएँ उनके वर्णोंके अनुसार बनवानी चाहिये। मध्यमें नीलवर्णकी पताका लगानी चाहिये। ध्वज-दण्ड यदि दस हाथका हो तो पताका पाँच हाथकी बनवानी चाहिये। मण्डपके द्वारोंपर कदली-स्तम्भ रक्ता चाहिये तथा मण्डपको सुराजित करना चाहिये। मण्डपके मध्यमें एवं कोणोंमें वेदियोंकी रचना करनी चाहिये। योनि और मेखला-मण्डित कुण्डका तथा वेदीपर सर्वतोभद्र-चक्रका निर्माण करना चाहिये। कुण्डके ईशान-भागमें कलशकी स्थापना कर उसे माला आदिसे अलंकृत करना चाहिये।

यजमान पञ्चदेव एवं यज्ञेश्वर नाचयणको नमस्कार कर प्रतिष्ठा आदि क्रियाकर संकल्प करके ब्राह्मणोंसे इस प्रकार अनुज्ञा प्राप्त करे—‘मैं इस पुण्य देशमें पञ्चस्रोत-विधित जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा करूँगा। आप सभी मुझे इसके लिये आज्ञा प्रदान करें।’ ऐसा कहकर मातृ-श्राद्ध एवं वृद्धि-श्राद्ध सम्पन्न करे। भेरी आदिके मङ्गलमय गानोंके साथ मण्डपमें षोडशक्षर ‘हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।’ आदि मन्त्र लिखे एवं इन्द्रादि दिक्पाल देवताओं तथा उनके आयुधों आदिका भी यथास्थान चित्रण करे। फिर आचार्य और ब्रह्माका खरण करे। वरुणके अनन्तर आचार्य तथा ब्रह्मा यजमानसे प्रसन्न हो उसके सर्वविध कल्याणकी कामना करके ‘स्वस्ति’ ऐसा कहे। अनन्तर सपत्नीक यजमानको सर्वविधियोंसे ‘आपो हि ह्यः’ (यजु- ११।५०) इस मन्त्रद्वारा ब्रह्मा, ऋत्विक् आदि स्नान करावें। यव, गोघृत,

नैवार, तिल, साँवा, शालि, प्रियंगु और व्रीहि—ये आठ सर्वोपधि कहे गये हैं। आचार्यादिद्वारा अनुज्ञात सपत्नीक यजमान शुरू यज्ञ तथा चन्दन आदि धारणकर पुरोहितको आगेकर मङ्गल-घोषके साथ पुत्र-पौत्रादिसहित पश्चिमद्वारसे यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश करे। वहाँ वेदीकी प्रदीक्षणा कर नमस्कार करे। ब्राह्मणकी आज्ञाके अनुसार यजमान निश्चित आसनपर बैठे। ब्राह्मणलोग स्वस्तिवाचन करें। अनन्तर यजमान पाँच देवोंका पूजन करे। फिर सरसों आदिसे विप्रकर्ता भूतोंका अपसरण करावे। यजमान अपने बैठनेके आसनका पुष्प-चन्दनसे अर्घ्य करे। अनन्तर भूमिका हाथसे स्पर्शकर इस प्रकार कहे— 'पृथ्वीमाता ! तुमने लोकोंको धारण किया है और तुमने विष्णुने धारण किया है। तुम मुझे धारण करो और मैं आसनको पवित्र करूँ।' फिर सूर्यको अर्घ्य देकर गुरुको हाथ जोड़कर प्रणाम करे। हृदयकमलमें इष्ट देवताका ध्यानकर तीन प्राणायाम करे। ईशान दिशामें कलशके ऊपर विद्याराज गणेशजीकी गन्ध, पुष्प, यज्ञ तथा विविध नैवेद्य अर्पितसे 'गणानां स्वाः' (यजु० २३।१९) मन्त्रसे पूजन करे। अनन्तर 'आ ब्रह्मन्' (यजु० २२।२२) इस मन्त्रसे ब्राह्मणजीकी, 'तद्भिष्योः' (यजु० ६।५) इस मन्त्रसे भगवान् विष्णुकी पूजा करे। फिर वेदीके चारों ओर सभी देवताओंको स्व-स्व स्थानपर स्थापित कर उनका पूजन करे। इसके बाद 'राजाधिराजाय प्रसन्नः' इस मन्त्रसे भृशुद्धि कर श्वेत पचासनपर विराजमान, शुद्धस्फटिक तथा शङ्ख, कुन्द एवं इन्दुके समान उज्ज्वल वर्ण, किरीट-कुण्डलधारी, श्वेत कमल, श्वेत मातृ और श्वेत वस्त्रसे अलंकृत, श्वेत गन्धसे अनुलिप्त, हाथमें पाश लिये हुए, सिद्ध, गन्धर्वों तथा देवताओंसे स्तूयमान, नागलोककी शोभारूप, मकर, ग्राह, कूर्म आदि नाना जलचरोंसे आवृत, जलशायी भगवान् वरुणदेवका ध्यान करे। ध्यानके अनन्तर पञ्चाङ्गन्यास करे। अर्घ्यस्थापन कर मूलमन्त्रका जप करे तथा उस जलसे आसन, यज्ञ-सामग्री आदिका प्रोक्षण करे। फिर भगवान् सूर्यको अर्घ्य दे। अनन्तर ईशानकोणमें भगवान् गणेश, अग्निकोणमें गुरुपादक तथा

१-पुण्यि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुता धृता ॥

त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रपादने कुरु ।

अन्य देवताओंका यथाक्रम पूजन करे। मण्डलके मध्यमें शक्ति, सागर, अनन्त, पृथ्वी, आधारशक्ति, कुर्म, सुमेरु तथा मन्दर और पञ्चतत्वोंका साङ्गोपाङ्ग पूजन करे। पूर्व दिशामें कलशके ऊपर धेत अक्षत और पुष्प लेकर भगवान् वरुणदेवका आवाहन करे। वरुणको आठ मुद्रा दिखाये। गायत्रीसे स्नान कराये तथा पाद्य, अर्घ्य, पुष्पाञ्जलि आदि उपचारोंसे वरुणका पूजन करे। प्रहो, लोकपालों, दस दिक्पालों तथा पीठपर ब्रह्मा, विष्णु, गणेश और पृथ्वीका गन्ध, चन्दन आदिसे पूजन करे। पीठके ईशानादि कोणोंमें कमल, अम्बिका, विश्वकर्मा, सरस्वती तथा पूर्वोद्विद्रोंमें उनवास मरुद्गणोंका पूजन करे। पीठके बाहर पिशाच, राक्षस, भूत, वेताल आदिकी पूजा करे। कलशपर सूर्योदय नवग्रहोंका आवाहन एवं ध्यानकर पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य एवं बलि आदिद्वारा मन्त्रपूर्वक उनकी पूजा करे और उनकी पताकाएँ उन्हें निवेदित करे। विधिपूर्वक सभी देवताओंका पूजनकर शतहृदयका पाठ करना चाहिये। हवन करनेके समय वारुणसूक्त, रात्रिसूक्त, रौद्रसूक्त, पवमानसूक्त, पुरुषसूक्त, शक्तसूक्त, अग्निमूक्त, सौरसूक्त, ज्येष्ठसाम, वामदेवसहस्र, रथन्तरसाम तथा रक्षोघ्न आदि सूक्तोंका पाठ करना चाहिये। अपने गृहोक्त-विधिसे कुण्डोंमें अग्नि प्रदीप्त कर हवन करना चाहिये। जिस देवका यज्ञ होता है अथवा जिस देवताकी प्रतिष्ठा हो उसे प्रथम आहुतियाँ देनी चाहिये। अनन्तर तिल, आण्य, पायस, पत्र, पुष्प, अक्षत तथा समिधा आदिसे अन्य देवताओंके मनत्रोंसे उन्हें आहुतियाँ देनी चाहिये।

पञ्चदिवसात्मक प्रतिष्ठायागमें प्रथम दिन देवताओंका आवाहन एवं स्थापन करना चाहिये। दूसरे दिन पूजन और हवन, तीसरे दिन बलि-प्रदान, चौथे दिन चतुर्थीकर्म और पाँचवें दिन नीराजन करना चाहिये। नित्यकर्म करनेके अनन्तर ही नैमित्तिक कर्म करने चाहिये। इसीसे कर्मफलकी प्राप्ति होती है।

दूसरे दिन प्रातःकाल सर्वप्रथम प्रतिष्ठायाग देवताका सर्वाधिमिश्रित जलसे ब्राह्मणोंद्वारा वेदमन्त्रोंके पाठपूर्वक महस्नान तथा मन्त्राभिषेक कराये, तदनन्तर चन्दन आदिसे उसे

अनुलिप्त करे। तत्पश्चात् आचार्य आदिकी पूजाकर उन्हें अलंकृत कर गोदान करे। फिर मङ्गल-घोषपूर्वक तालाबमें जल छोड़नेके लिये संकल्प करे। इसके बाद उस तालाबके जलमें नागयुक्त वरुण, मकर, कच्छप आदिकी अलंकृत प्रतिमाएँ छोड़े। वरुणदेवकी विशेषरूपसे पूजा कर उन्हें अर्घ्य निवेदित करे। पुनः उसी तालाबके जल, सप्तमृत्तिका-मिश्रित जल, तीर्थ-जल, पञ्चामृत, कुशोदक तथा पुष्पजल आदिसे वरुणदेवको स्नान कराकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि प्रदान करे। सभी देवताओंको बलि प्रदान करे। मङ्गलघोषके साथ नीराजन कर प्रदक्षिणा करे। एक वेदीपर भगवान् वरुण तथा पुष्करिणीदेवीकी यथाशील स्वर्ण आदिकी प्रतिमा बनाकर भगवान् वरुणदेवके साथ देवी पुष्करिणीका विवाह कराकर उन्हें वरुणदेवके लिये निवेदित कर दे। एक काष्ठका यूप जो यज्ञस्थानकी ईशानिक बगल हो, उसे अलंकृत कर तद्भागके ईशान दिशामें मन्त्रपूर्वक गाढ़कर स्थिर कर दे। प्रासादके ईशानकोणमें, प्रसाद दक्षिण भागमें तथा आवासके मध्यमें यूप गाढ़ना चाहिये। इसके अनन्तर दिक्पालोंको बलि प्रदान करे। ब्राह्मणोंको भोजन एवं दक्षिणा प्रदान करे।

उस तद्भागके जलके मध्यमें 'जलमातृभ्यो नमः' ऐसा कड़क जलमातृकाओंका पूजन करे और मातृकाओंसे प्रार्थना करे कि मातृका देवियों! तीनों लोकोंके चराचर प्राणियोंकी संतुष्टिके लिये यह जल भैंर द्वारा छोड़ा गया है, यह जल संसारके लिये आनन्ददायक हो। इस जलशयकी आपलोग रक्षा करे। ऐसी ही मङ्गल-प्रार्थना भगवान् वरुणदेवसे भी करे। अनन्तर वरुणदेवको बिम्ब, पद्म तथा नागमुद्राएँ दिखाये। ब्राह्मणोंको उस जलशयका जल भी दक्षिणाके रूपमें प्रदान करे। अनन्तर तर्पण कर अग्निकी प्रार्थना करे। स्वयं भी उस जलका पान करे। पितरोंको अर्घ्य प्रदान करे। अनन्तर पुनः वरुणदेवकी प्रार्थना कर, जलशयकी प्रदक्षिणा करे। फिर ब्राह्मणोंद्वारा वेद-ध्वनियोंके उत्थारणपूर्वक यज्ञमान अपने घरमें प्रवेश करे और ब्राह्मणों, दीनों, अम्हों, कृपणों तथा कुम्हारिकोंको भोजन कराकर संतुष्ट करे तथा भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। (अध्याय १९—२१)

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

## मध्यमपर्व (तृतीय भाग)

उद्यान-प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! उद्यान आदिकी प्रतिष्ठामें जो कुछ विशेष विधि है, अब उसे बता रहा हूँ, आपलोग सुनें। सर्वप्रथम एक चौकोर मण्डलकी रचना कर उसपर अष्टदल कमल बनाये। मण्डलके ईशानकोणमें कलशकी स्थापनाकर उसपर भगवान् गणनाथ और वरुणादेवकी पूजा करे। तदनन्तर मध्यम कलशमें सूर्यादि ग्रहोंका पूजन करे। फिर पश्चिमादि द्वारदेशोंमें ब्रह्मा और अनन्त तथा मध्यमें वरुणकी पूजा करे। जलभूरित कलशमें भगवान् वरुणका आवाहन करते हुए कहे—‘वरुणादेव ! मैं आपका आवाहन करता हूँ। विभो ! अब हमें स्वर्ग प्रदान करे।’ तदनन्तर पूर्वभागमें मन्दरगिरिकी स्थापना कर तोरणपर विष्णुभस्मेनकी पूजा करे और कर्णिका-देशमें भगवान् वासुदेवका पूजन करे। भगवान् वासुदेव शुद्ध स्फटिकके सदृश हैं। वे अपने चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स-चिह्न और कौस्तुभमणि सुशोभित है तथा मस्तक सुन्दर मुकुटसे अलंकृत है। उनके दक्षिण भागमें भगवती कमला, वाम भागमें पुष्टिदेवी विराजमान हैं। सुर, असुर, सिद्ध, किन्नर, यक्ष आदि उनकी स्तुति करते हैं। ‘विष्णो रराट्-’ (यजु- ५।२१) इस मन्त्रसे भगवान् विष्णुकी पूजा करे। उनके साममें सेकर्णनादि-व्यूह और विमल आदि शक्तियोंकी धूप, दीप आदि उपचारोंसे अर्चना कर प्रार्थना करे। उनके सामने घीका दीप जलाये और गुगुलुका धूप प्रदान कर घृतमिश्रित खीरका नैवेद्य लगाये। कर्णिकाके दक्षिणकी ओर कमलके ऊपर स्थित सोमका ध्यान करे। उनका वर्ण शुक्ल है, वे शान्त-स्वरूप हैं, वे अपने हाथोंमें वरद और अभय-मुद्रा धारण किये हैं एवं केन्द्रादि धारण करनेके कारण अत्यन्त शोभित हैं। ‘इमं देवा-’ (यजु- ९।४०) इस मन्त्रसे इनकी पूजा कर इन्हें घृतमिश्रित भतक नैवेद्य अर्पण करे। पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र, ज्येष्ठ, आकाश, वरुण, अग्नि, ईशान, तत्पुरुष तथा वायुकी पूजा करे। कर्णिकाके वाम भागमें शुक्ल वर्णवाले महर्देवका

‘ब्रह्मर्क-’ (यजु- ३।६०) इस मन्त्रसे पूजन कर नैवेद्य आदि प्रदान करे। भगवान् वासुदेवके लिये हविष्यसे आठ, सोमके लिये अष्टाईस तथा शिवके लिये दो खीरकी आहुतियाँ दे। गणेशजीके घीकी एक आहुति दे। ब्रह्मा एवं वरुणके लिये एक-एक आहुति और ग्रहों एवं दिक्पालोंके लिये विहित समिधाओं तथा घीसे एक-एक आहुतियाँ दे।

अग्निकी सात जिह्वाओं—कराली, धूमली, श्वेता, लेहिता, स्वर्णप्रभा, अतिरक्ता और पद्मरंगाको भी मन्त्रोंसे पूत एवं मधुमिश्रित हविष्यद्वारा एक-एक आहुति प्रदान करे। इसी प्रकार अग्नि, सोम, इन्द्र, पृथ्वी और अन्तरिक्षके निमित्त मधु और खीर-युक्त यज्ञोंसे एक-एक आहुतियाँ प्रदान करे। फिर गन्ध-पुष्पादिके उनकी पृथक्-पृथक् पूजा करके रुद्रसूक्त तथा खीरसूक्तका जप करे। अनन्तर घूपको धर्तरीभक्ति स्नान कराकर और उसका मार्जनकर उसे उद्यानके मध्य भागमें गड़ दे। घूपके प्रातः-भागमें सोम तथा ववस्पर्तिके लिये ध्वजाओंको लगा दे। ‘जोऽष्टात्मना-’ (यजु- ७।४८) इस मन्त्रसे वृक्षोंका कर्णवेध संस्कार करे। एक तीली सूईसे वृक्षके दक्षिण तथा वाम भागके दो पत्तोंका छेदन करे। नवग्रहोंकी तृष्टिके लिये लड्डू आदिका भोग लगाये तथा बालक और कुमारियोंको मालपूजा किलाये। रजित सूत्रोंसे उद्यानके वृक्षोंको आवेष्टित करे। उन वृक्षोंको जलदिका प्रदान कराये और यह प्रार्थना-मन्त्र पढ़े—

वृक्षाग्रात् पतितस्यापि आरोहात् पतितस्य च ।

मरणे चास्ति भङ्गे वा कर्ता धार्धनं लिप्यते ॥

(मध्यमपर्व ३।१।३१)

तत्पर्य यह कि विधिपूर्वक उद्यान आदिमें लगाये गये वृक्षके ऊपरसे यदि कोई गिर जाय, गिरकर मर जाय या अस्थि टूट जाय तो उस पापका भागी वृक्ष लगानेवाला नहीं होता।

उद्यानके निमित्त पूजा आदि कर्म करनेवाले आचार्यको स्वर्ण, धान, गाय तथा दक्षिणा प्रदान कर उनकी प्रदक्षिणा करे। श्रुतिवक्त्रों को भी स्वर्ण, रजत आदि दक्षिणामें दे। ब्रह्माको



भी दक्षिणा देकर संतुष्ट करे एवं अन्य सदस्योंको भी प्रसन्न करे। अनन्तर यजमान स्थापित अधिकारशक्त जलसे स्नान करे। सूर्योस्तसे पूर्व ही पूर्णाहुति सम्पन्न करे। सम्पूर्ण कार्य पूर्णकर अपने घर जाय और विशेषों द्वारा वहाँ बल, काम, हयग्रीव, माधव, पुरुषोत्तम, वासुदेव, भनाभ्यस और नारायण—इन सबका विधिवत् स्मरण कर पूजन कराये और पञ्चगव्यमिश्रित दधि-भातका नैवेद्य समर्पित करे।

बल आदि देवताओंकी पूजा करनेके पश्चात् दक्षिणकी ओर 'स्वोना पृथिवी-' (यजुः ३५।२१) इस मन्त्रसे पृथ्वीदेवीका पूजन करे। मधुमिश्रित पायसाश्रका नैवेद्य अर्पित करे। पृथ्वीदेवी शुद्ध काञ्चन वर्णकी आभासे युक्त है। हाथमें वरद और अभयमुद्रा धारण किये हुए है। सम्पूर्ण अलंकारोंसे अलंकृत है। धरके दास भागमें विश्वकर्माका यजन करे। 'विश्वकर्म्म-' (ऋ० १०।८१।६) यह मन्त्र उनके पूजनमें विनियुक्त है। भगवान् विश्वकर्माका वर्ण शुद्ध स्फटिकके समान है, ये झूल और टंकजो धारण करनेवाले हैं तथा शास्त्रस्वरूप हैं। इन्हें मधु और शिष्टकाकी बलि दे। अनन्तर कौष्माण्डमूक तथा पुरुषमूकका पाठ करे। इसी पृथ्वी-होम-

कर्ममें मधु और पायस-युक्त हविष्यसे आठ आहुतियाँ दे तथा अन्य देवताओंको एक-एक आहुति दे।

उद्यानके चारों ओर अथवा बीच-बीचमें उद्यानकी रक्षाके लिये मेड़ोंका निर्माण करे, जिन्हें धर्मसेतु कहा जाता है। उद्यानकी दृढ़ताके लिये विशेष प्रबन्ध करे। धर्मसेतुका निर्माण कर उनसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

पिच्छिले पतितान् च उच्छिन्नाङ्गसंगतः ॥

प्रतिष्ठिते धर्मसेतौ धर्मो मे स्यान्न पातकम् ।

ये चात्र प्राणिनः सन्नि रक्षं कुर्वन्नि सेतवः ।

वेदाध्ययनं यत्पुण्यं तथैव हि समर्पितम् ॥

(मध्यपर्व ३।१।४४—४६)

तात्पर्य यह कि यदि कोई व्यक्ति इस धर्मसेतु (मेड़) पर चलते समय गिर जाय, किसल जाय तो इस धर्मसेतुके निर्माणका कोई पाप भुझे न लगे। क्योंकि इस धर्मसेतुका निर्माण मैंने धर्मकी अभिवृद्धिके लिये ही किया है। इस स्थानपर आनेवाले प्राणियोंकी ये धर्मसेतु रक्षा करते हैं। वेदाध्ययन आदिसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य इस धर्मसेतुके निर्माण करनेपर प्राप्त होता है। (अध्याय १)

## गोचर-भूमिके उत्सर्ग तथा लघु उद्यानोंकी प्रतिष्ठा-विधि

[ भारतमें पहले सभी ग्राम-नगरोंकी सभी दिशाओंमें कुछ दूरतक गोचर-भूमि रहती थी। उसमें गाये स्वच्छन्द-रूपसे चरती थीं और वह भूमि सर्वसामान्यके भी धूमने-फिरनेके उपयोगमें आती थी। छोटे-छोटे बालक भी उसमें क्रीड़ा करते थे। यह प्रथा अभी कुछ दिनों पहलेतक थी, पर अब वह सर्वथा लुप्त हो गयी है, इससे गो-धनकी बड़ी हानि हुई है। जिसका फल प्रकृति अनावृष्टि, भीषण महर्षत (महँगी), दुष्कालकी स्थिति, भूकम्प, महापुद्ग और सर्वत्र निर्दोष लोगोकी हत्याके रूपमें प्ररोध तथा प्रत्यक्ष-रूपसे दे रही है। इसकी निवृत्तिक एकमात्र समाधान है प्राचीन पुराणोक्त सदाचार, गो-सेवा और आस्तिकतापूर्ण आध्यात्मिक दृष्टिका पुनः अनुसंधान और अनुसरण करना। भला, आजकी दशासे, जहाँ किसीको भी किसी भी स्थितिमें तनिक भी शान्ति नहीं है, इससे अधिक और विनाशकी बात क्या हो सकती है! इस दृष्टिसे यह अध्याय विशेष महत्वका है और सभी पाठकोंको अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने ग्राम-नगरोंके चतुर्दिक् गोचरका या गो-प्रचार-भूमिका उत्सर्ग कर गो-संरक्षणमें हाथ बैटना चाहिये।—सम्पादक ]

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं गोचर-भूमिके विषयमें बता रहा हूँ, आप सुनें। गोचर-भूमिके उत्सर्ग-कर्ममें सर्वप्रथम लक्ष्मीके साथ भगवान् विष्णुकी विधिके अनुसार पूजा करनी चाहिये। इसी तरह ब्रह्म, रुद्र, कार्तिकेय, वराह, सोम, सूर्य और महादेवजीका क्रमशः विविध उपचारोंसे पूजन करे। हवन-कर्ममें लक्ष्मीनारायणको तीन-तीन आहुतियाँ दींसे

दे। क्षेत्रपालोंको मधुमिश्रित एक-एक लजाहुति दे। गोचरभूमिका उत्सर्ग करके विधानके अनुसार यूपकी स्थापना करे तथा उसकी अर्चना करे। वह यूप तीन हाथका ऊँचा और नागरुणोसे युक्त होना चाहिये। उसे एक हाथसे भूमिके मध्यमें गाड़ना चाहिये। अनन्तर 'विशेषा-' (ऋ० १०।२।६) इस मन्त्रका उच्चारण करे और 'नागाधिपतये नमः', 'अच्युताय

नमः' तथा 'धौमाय नमः' कहकर यूपके लिये लाजा निवेदित करे। 'मयि गृह्णाथ' (यजुः १३।१) इस मन्त्रसे रुद्रमूर्ति-स्वरूप उस यूपकी पछोपचार-पूजा करे। आचार्यको अन्न, वस्त्र और दक्षिणा दे तथा होता एवं अन्य ऋत्विजोंको भी अभीष्ट दक्षिणा दे। इसके बाद उस गोचरभूमिमें रख छोड़कर इस मन्त्रको पढ़ते हुए गोचरभूमिको उत्सर्ग कर दे—

शिवलोकास्तथा गावः सर्वदेवसुपूजिताः ॥

गोभ्य एषा मया भूमिः सम्यग्दत्ता शुभार्थिना ।

(मध्यखण्ड ३।२।१२-१३)

'शिवलोकस्वरूप यह गोचरभूमि, गोलोक तथा गौरी सभी देवताओंद्वारा पूजित है, इसलिये कल्याणकी कामनासे मैंने यह भूमि गौओंके लिये प्रदान कर दी है।'

इस प्रकार जो सम्पन्नित-चित होकर गौओंके लिये गोचरभूमि समर्पित करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है। गोचरभूमिमें जितनी संख्यामें तुण, गुल्म उगाते हैं, उतने हजारों वर्षतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। गोचरभूमिकी सीमा भी निश्चित करनी चाहिये। उस भूमिकी रक्षाके लिये पूर्वमें वृक्षोंका रोपण करे। दक्षिणमें सेतु (मेड़) बनाये। पश्चिममें कैंटीले वृक्ष लगाये और उत्तरमें कूपका निर्माण करे। ऐसा करनेमें कोई भी गोचरभूमिकी सीमाका लङ्घन नहीं कर सकेगा। उस भूमिको जलधारा और घाससे परिपूर्ण करे। नगर या ग्रामके दक्षिण दिशामें गोचरभूमि छोड़नी चाहिये। जो व्यक्ति किसी अन्य प्रयोजनसे गोचरभूमिको जोतता, सोदता या नष्ट करता है, वह अपने कुलोंको पातकी बनाता है और अनेक ब्रह्म-व्रत्याओंसे आक्रान्त हो जाता है।

जो भलीभाँति दक्षिणाके साथ गोचर-भूमिका दान करता है, वह उस भूमिमें जितने तुण है, उतने समयतक स्वर्ग और विष्णुलोकसे च्युत नहीं होता। गोचर-भूमि छोड़नेके बाद ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे। वृषोत्सर्गमें जो भूमि-दान करता है, वह प्रेतयोनिकी प्राप्त नहीं होता। गोचर-भूमिके उत्सर्गके समय जो मण्डप बनाया जाता है, उसमें भगवान् वासुदेव और सूर्यका

पूजन तथा तिल, गुड़की आठ-आठ आहुतियोंसे हवन करना चाहिये। 'देहि मे' (यजुः ३।५०) इस मन्त्रसे मण्डपके ऊपर चार शूक्र घट स्थापित करे। अनन्तर सौर-सूक्त और वैष्णव-सूक्तका पाठ करे। आठ घटपत्रोंपर आठ दिक्पाल देवताओंके चित्र या प्रतिमा बनाकर उन्हें पूर्वादि आठ दिशाओंमें स्थापित करे और पूर्वादि दिशाओंके अधिपतियों— इन्द्र, अग्नि, यम, निर्वृति आदिसे गोचरभूमिकी रक्षाके लिये प्रार्थना करे। प्रार्थनाके बाद चारों वर्णोंकी, मृग एवं पक्षियोंकी अर्घ्यस्थितिके लिये विशेषरूपसे भगवान् वासुदेवकी प्रसन्नताके लिये गोचरभूमिको उत्सर्जन करना चाहिये। गोचरभूमिके नष्ट-भष्ट हो जानेपर, घासके जोर्ण हो जानेपर तथा पुनः घास उगानेके लिये पूर्ववत् प्रतिष्ठा करनी चाहिये, जिससे गोचरभूमि अक्षय बनी रहे। प्रतिष्ठाकार्यके निमित्त भूमिके सोदने आदिमें कोई जीव-जन्तु मर जाय तो उससे मुझे पाप न लगे, प्रत्युत धर्म ही हो और इस गोचरभूमिमें निवास करनेवाले मनुष्यों, पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओंका आपके अनुग्रहसे निरन्तर कल्याण हो ऐसी भगवन्से प्रार्थना करनी चाहिये। अनन्तर गोचरभूमिको त्रिगुणित पवित्र धागेद्वारा सात बार आवेष्टित कर दे। आवेष्टनके समय 'सुत्रामाणी पृथिवी' (श्रुः १०।६३।१०) इस ऋचाका पाठ करे। अनन्तर आचार्यको दक्षिणा दे। मण्डपमें ब्राह्मणोंको भोजन कराये। दान, उग्रा एवं कृपणोंको संतुष्ट करे। इसके बाद मङ्गल-ध्वनिके साथ अपने घरमें प्रवेश करे। इसी प्रकार तालाब, कुआँ, कूप आदिकी भी प्रतिष्ठा करनी चाहिये, विशेषरूपसे उसमें वसुदेवकी और नागोंकी पूजा करनी चाहिये।

ब्राह्मणों। अब मैं छोटे एवं साधारण उद्यानोंकी प्रतिष्ठाके विषयमें बता रहा हूँ। इसमें मण्डल नहीं बनाना चाहिये। खैरक शूभ स्थानमें दो हाथके स्थाण्डिलपर कलश स्थापित करना चाहिये। उसपर भगवान् विष्णु और सोमकी अर्चना करनी चाहिये। केवल आचार्यका वरण करे। सूत्रसे वृक्षोंको आवेष्टित कर पुष्प-मालाओंसे अलंकृत करे। अनन्तर जलधारासे वृक्षोंको सींचे। पाँच ब्राह्मणोंको भोजन कराये।

१-गाया शत वृक्षोंको यात्रा सिद्धकरनितः। नद्विचर्यते विस्मृतं दत्तं सर्ववन्दनम् ॥

जिस गोचर-भूमिमें सौ गायें और एक बैल स्वात्न रूपसे विधान करते हो, वह भूमि गोचर-भूमि कहलाती है। ऐसी भूमिको दान करनेसे सभी पापोंका नाश होता है। अन्य बृहस्पति, वृद्धाश्रित, जलान्न आदि स्मृतिलोक के मतसे ग्रन्थ ३,००० हाथ लम्बी-चौड़ी भूमिको यज्ञांगम है।

वृक्षांका कर्णविध संस्कार करे और संकल्पपूर्वक उनका उत्सर्जन कर दे। मध्य देशमें यूप स्थापित करे और दिशा-विदिशाओं तथा मध्य देशमें कदली-वृक्षका रोपण करे और विधानपूर्वक घोंसे होम करे। फिर स्विष्टकृत् हवन कर

पूर्णहुति दे। वृक्षके मूलमें धर्म, पृथ्वी, दिशा, दिक्पाल और यक्षकी पूजा करे तथा आचार्यको संतुष्ट करे। दक्षिणामें गाय दे। सब कार्य विधानके अनुसार परिपूर्ण कर भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। (अध्याय २-३)

### अश्वत्थ, पुष्करिणी तथा जलशय्यके प्रतिष्ठाकी विधि

**सुतजी बोले—**ब्राह्मणों! अश्वत्थ-वृक्षकी प्रतिष्ठा करनी हो तो उसकी जड़के पास दो हाथ लम्बी-चौड़ी एक खेदीका निर्माण कर चन्दन आदिसे प्रोक्षित करे। उसपर कमलकी रचना कर अर्घ्य प्रदान करे। प्रथम दिनकी रात्रिमें 'तद्विष्णोः' (यजु ६।५) इस मन्त्रद्वारा कलश-स्थापन कर गन्ध, चन्दन, दुर्वा तथा अक्षत समर्पण करे। चन्दन-लिप्त श्वेत सूत्रोंसे कलशोंकी आवेष्टित करे। प्रथम कलशके ऊपर गणेशजीका, दूसरे कलशपर ब्रह्माजीका पूजन करे। दिशाओंमें दिक्पाल और वृक्षके मूलमें नवग्रहोंका पूजन-अर्चन करे। वृक्षके मूलमें विष्णु, मध्यमें शंकर तथा आगे ब्रह्माकी पूजा कर हवन करे। पिष्टकाज-बलि दे। आचार्यको दक्षिणा देकर वृक्षको जलधारासे सींचे, उसकी प्रदक्षिणा करे और भगवान् सूर्यको अर्घ्य निवेदित कर घर आ जाय।

बावली आदिकी प्रतिष्ठामें प्रथम भूतशुद्धि करके सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। तदनन्तर गणेश, गुरुपदुका, जय और भद्रका समाहित होकर पूजन करे। मण्डलके मध्यमें अधोल-शक्ति, अनन्त तथा कूर्मकी पूजा करे। चन्द्र, सूर्य आदिको भी मण्डलमें पूजन करे। दूसरे पात्रमें पुष्पदि उपचारोंसे भगवान् वरुणका पूजन करे। कमलके पूर्वादि पत्रोंमें इन्द्रादि दिक्पालोंकी, उनके आयुधोंकी तथा मध्यमें ब्रह्माकी पूजा करे। 'भूर्भुवः स्वः' इन तत्त्वोंकी भी पूजा करे। मण्डलके ऊपर भागमें नागरूप अनन्तकी पूजा करे। इसके बाद हवन करे। प्रथम आहुति वरुणदेवको दे फिर दिक्पालों, नारायण, शिव, दुर्गा, गणेश, ग्रहों और ब्रह्माको प्रदान करे। स्विष्टकृत् हवन करके बलि प्रदान करे। एक अष्टदल कमलके ऊपर वरुणकी रजत-प्रतिमा स्थापित करे और पुष्करिणी (बावली) की प्रतिमा स्वर्णकी बनाये और उसका पूजनकर जलशय्यमें छोड़ दे। जलशय्यके मध्यमें नौका आरोपित करे। जलशय्यके बीचमें ऋत्विक् होम करे। शेषनागकी मूर्ति भी जलशय्यमें

छोड़ दे। सम्पूर्ण कार्योंके सम्पन्न कर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। जलशय्यमें मकर, ग्राह, मीन, कूर्म एवं अन्य जलचर प्राणी तथा कमल, डीवाल आदि भी छोड़े। अनन्तर जलशय्यकी प्रदक्षिणा करे। स्नाना और सोपों भी छोड़े। दूधकी धारा भी दे। पुष्करिणीको चारों ओरसे रक्तसूत्रसे आवेष्टित करे। दोनोंको संतुष्ट कर घरमें प्रवेश करे।

ब्राह्मणों! अब मैं नलिनी (जिस तालाबमें कमल हो), खास तथा हृद (गहरे जलशय्य) की प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि बतल रहा हूँ। इन सबकी प्रतिष्ठा करनेके पहले दिन भगवान् वरुणदेवकी सुवर्ण-प्रतिमा बनाकर 'आपो हि ह्यः' (यजु ११।५०) इस मन्त्रसे उसका जलधिवास करे, अनन्तर एक सौ कमल-पुष्पोंमें प्रतिमाका पुष्पाधिवास करे। तत्पश्चात् मण्डलमें आकर पूर्वमुख बैठे और कलशपर गणेश, वरुण, शंकर, ब्रह्मा, विष्णु एवं सूर्यकी पूजा करे। वरुणके लिये घी और पायसकी आहुति दे। अन्य देवताओंकी सुधाद्वारा एक-एक आहुति प्रदान कर पायस-बलि दे। फिर नलिनी-खापी आदिका संकल्पपूर्वक उत्सर्जन कर दे। मध्यमें वृक्षकी स्थापना करे। तदनन्तर गोदान दे और दक्षिणा प्रदान करे। पूर्णहुतिके अनन्तर भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे और अपने घरमें प्रवेश करे।

**द्विजो !** अब मैं वृक्षोंके प्रतिष्ठा-विधानका वर्णन करता हूँ। वृक्षकी स्थापना कर सूत्रसे परिवेष्टित करे, फिर उसके पश्चिम भागमें कलश-स्थापना करे। कलशमें ब्रह्मा, सोम, विष्णु और वनस्पतिको पूजन करे। अनन्तर तिल और यवसे आठ-आठ आहुतियाँ दे। कदली-वृक्ष तथा यूपका उत्सर्जन करे, फिर लगायें गये वृक्षके मूलमें धर्म, पृथ्वी, दिशा, दिक्पाल एवं यक्षकी पूजा करे तथा आचार्यको संतुष्ट करे। आचार्यको गोदान दे, दक्षिणा प्रदान करे। वृक्ष-पूजनके बाद भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। (अध्याय ४—८)

### घट, बिल्व तथा पूगीफल आदि वृक्ष-युक्त उद्यानकी प्रतिष्ठा-विधि

**सूतजी कहते हैं—**ब्राह्मणो ! घट-वृक्षकी प्रतिष्ठामें

वृक्षके दक्षिण दिशामें उसकी जड़के पास तीन हाथकी एक वेदी बनाये और उसपर तीन कलश स्थापित करे। उन कलशोंपर क्रमशः गणेश, शिव तथा विष्णुकी पूजा कर चढ़से होम करे। घट-वृक्षको त्रिगुणित रक्त सूत्रोंसे आवेष्टित करे। बलिमें यव-क्षीर प्रदान करे और घूपस्नान आरोपित करे। घट-वृक्षके मूलमें यक्ष, नाग, गन्धर्व, सिद्ध और मरुद्गणोंकी पूजा करे। इस प्रकार सम्पूर्ण क्रियाएँ विधिके अनुसार पूर्ण करे।

बिल्ववृक्षकी प्रतिष्ठामें पहले दिन वृक्षका अभिषेचन करे। 'व्यम्बकं' (यजुः ३।६०) इस मन्त्रसे वृक्षको पवित्र स्थानपर स्थापित कर 'सुनावमा' (यजुः २१।७) इस मन्त्रसे गन्धोदकद्वारा उसे स्नान कराये। 'मे गृह्णामि' इस मन्त्रसे वृक्षपर अक्षत चढ़ाये। 'कषा नक्षिप्र' (यजुः २७।३९) इस मन्त्रसे धूप, वस्त्र तथा माला चढ़ाये। तदनन्तर रुद्र, विष्णु, दुर्गा और धनेश्वर—कुम्भेश्वर पूजन करे। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर शास्त्रानुसार विष्णुक्रियासे निवृत्त होकर घासमें सात ब्राह्मण-दम्पतीको भोजन कराये। फिर

बिल्वके मूलप्रदेशमें दो हाथकी वर्तुलाकार वेदीका निर्माण करे। उसको गेरू तथा सुन्दर पुष्प-चूर्णोंसे रञ्जितकर उसपर अष्टदल-कमलकी रचना करे। वृक्षको लाल सूत्रसे पाँच, सात या नौ बार वेष्टित करे। वृक्ष-मूलमें उत्तराभिमुख होकर त्रीति रोपे तथा शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणेश, शैव, अनन्त, इन्द्र, वनपाल, सोम, सूर्य तथा पृथ्वी—इनका क्रमशः पूजन करे। तिल और अक्षतसे हवन करे तथा घी एवं भातका नैवेद्य दे। यक्षोंके लिये उड़द और भातका भोग लगाये। ग्रहोंकी तुष्टिके लिये चाँसके पात्रपर नैवेद्य दे। बिल्व-वृक्षको दक्षिण दिशासे दूधको घास प्रदान करे। घूपका आरोपण करे, वृक्षका कर्णवेध-संस्कार करे और भगवान् सूर्यको आर्य्य प्रदान करे।

यदि रात हाथको लेबाई-चौड़ाईका उद्यान हो, जिसमें गुफरी या आम आदिके फलदायक वृक्ष लगे हों तो ऐसे उद्यानकी प्रतिष्ठामें वास्तुमण्डलकी रचनाकर वास्तु आदि देवताओंका पूजन करके यज्ञ-कर्म करे। विशेषरूपसे विष्णु एवं प्रज्जलित आदि देवताओंका पूजन करे। हवनके अन्तमें ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे।

(अध्याय ९—११)

### मण्डप, महायूप और पौसले आदिकी प्रतिष्ठा-विधि

**सूतजी कहते हैं—**द्विजगणो ! अब मैं यागोंके

निर्मित निर्मित होनेवाले मण्डपोंकी प्रतिष्ठा-विधि बतलाऊँ हूँ। वह मण्डप शिलामय हो या काष्ठमय अथवा तृण-पत्रादिसे निर्मित हो। ऐसी स्थितिमें अधिवासनके प्रारम्भमें घूप-लग्न-मूर्तमें घट-स्थापन करे। उस कलशपर सूर्य, सोम और विष्णुकी अर्चना करे। 'आपो हि द्या' (यजुः ११।५०) इस मन्त्रद्वारा कुशोदकसे तथा 'आप्यायस्व' (यजुः १२।११४) इस मन्त्रद्वारा सुगन्ध-जलसे प्रोक्षण करे। 'गन्धद्वारा' (श्रीसूक्त ९) इस ऋचासे चन्दन, सिन्दूर, आलता और अञ्जन समर्पण करे। फिर दूसरे दिन प्रातः वृद्धि-श्राद्ध करे। घूप लक्षणवाले मण्डपमें दिक्पालोंकी स्थापना करे। मध्यमें वेदोंके ऊपर मण्डल विधित करे। उसमें सूर्य, सोम, विष्णुकी तथा कलशपर गणेश, नवग्रह आदिकी पूजा करे। सूर्यके लिये १०८ बार पायस-होम करे। विष्णु और सोमका उद्देश्य कर

बारह आहुतियाँ एवं पायस-बलि दे। वास्तु-देवताका पूजन करे और उनको अर्घ्य देकर विधिबद्ध आहुति प्रदान करे, फिर उस मण्डलको संस्कारपूर्वक योग्य ब्राह्मणोंके लिये समर्पित करे। उसे विधिबद्ध दक्षिणा दे और सूर्यके लिये अर्घ्य प्रदान करे। तृण-मण्डपमें विशेषरूपसे वासुदेवोंके साथ भगवान् सूर्यकी पूजा करे। एक घटके ऊपर वरदायक भगवान् गणेशजीकी पूजा कर विसर्जन करे। ईशानकोणमें घूप स्थापित कर सभी दिशाओंमें ध्वजा फहराये।

ब्राह्मणो ! अब मैं बार हाथसे लेकर सोलह हाथके प्रमाणमें निर्मित महायूपकी एवं पौसला तथा कुरै आदिकी प्रतिष्ठा-विधि बतला रहा हूँ। इनकी प्रतिष्ठामें गर्ग-त्रिरात्र यज्ञ करना चाहिये। पौसलेके पश्चिम भागमें श्वेत कुम्भपर भगवान् वरुणकी स्थापित कर 'गायत्री' मन्त्र तथा 'आपो हि द्या' (यजुः ११।५०) इन मन्त्रोंसे उन्हें स्नान करना चाहिये।



उसके बाद गन्ध, तेल, पुष्प और धूप आदिसे मन्त्रपूर्वक उनकी अर्चना कर उन्हें वस्त्र, नैवेद्य, दीप तथा चन्दन आदि निवेदित करना चाहिये। प्रतिष्ठाके अन्तमें श्राद्ध कर एक ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन करना चाहिये। आठ हाथका एक मण्डप बनाकर उसमें कलशकी स्थापना करे। उसपर नारायणके साथ वरुण, शिव, पृथ्वी आदिको तत्-तत् मन्त्रोंसे पूजन करे, उसके बाद स्थालीपाक-विधानसे हवनके लिये कुशकर्ण्डका करे। भगवान् वरुणका पूजन कर सुवाद्याय उन्हें 'वरुणाय' (यजु- ४।३६) इत्यादि मन्त्रोंसे दस आहुतियाँ प्रदान करे। अन्य देवताओंके लिये क्रमशः एक-एक आहुति

दे। उसके बाद स्विष्टकृत् हवन करे और अग्निकी सप्तविद्वाओंके नामसे चरुका हवन करे। तदनन्तर सभीको नैवेद्य और बलि प्रदान करे। इसके पश्चात् संकल्प-वाक्य पढ़कर कूपका उत्सर्जन कर दे। ब्राह्मणोंको पर्याखिनी गाय एवं दक्षिणा प्रदान करे। यदि छोटें कूपकी प्रतिष्ठा करनी हो तो गणेश तथा वरुणदेवताकी कलशके ऊपर विधिवत् पूजा करनी चाहिये। लाल सूत्रसे कलशको वेष्टित करना चाहिये। दूध स्थापित करनेके पश्चात् संकल्पपूर्वक कूपका उत्सर्जन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको विधिवत् सम्मानपूर्वक दक्षिणा देनी चाहिये। (अध्याय १२-१३)

### पुष्पवाटिका तथा तुलसीकी प्रतिष्ठा-विधि

**सुतजी कहते हैं—**ब्राह्मणों। पुष्पवाटिकाकी प्रतिष्ठामें तीन हाथकी एक वेदीका निर्माण कर उसपर घटकी स्थापना करे। पुष्पाधिवाससे एक दिन पूर्व ब्राह्मण-भोजन कराये। कलशपर गणेश, सूर्य, सोम, अग्निदेव तथा नारायणका आवाहन कर पूजन करे। वेदीपर मधु तथा पायससे हवन करे। ईशानकोणमें विधिवत् यूपका समारोपण कर उसके मूलमें गुरुवारके दिन गेहूँओका रोपण कर उन्हें सींचे। वाटिकाको रक्त सूत्रसे आवेष्टित करे। वाटिकाके पुष्प-वृक्षोंका कर्णवेध कराकर उन्हें कुशोदकसे स्नान कराये और ब्राह्मणोंको धान्य, यव और गेहूँ दक्षिणारूपमें प्रदान करे और वाटिकाकी जलधारासे सींचे।

तुलसीकी प्रतिष्ठा ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें विधिपूर्वक करनी चाहिये। प्रतिष्ठाके लिये शुद्ध दिन अथवा एकदशी तिथि होनी चाहिये। रात्रिमें घटकी स्थापना कर विष्णु, शिव, सोम, ब्रह्मा तथा इन्द्रका पूजन करे। गायत्री-मन्त्र तथा पूर्वोक्त देवताओंके मन्त्रोंद्वारा उन्हें स्नान कराये। 'कया नक्षत्र' (यजु- २७।३९) इस मन्त्रसे गन्ध, 'अ-शुना' (यजु- २०।२७) इस मन्त्रसे इत्र, 'त्वां गन्धर्वा' (यजु- १२।९८) तथा 'मा नस्तोके' (यजु- १६।१६) आदि मन्त्रोंसे पुष्प, 'श्रीष्ट ते' (यजु- ३१।२२) तथा 'वैश्वदेवी' (यजु- १९।४४) इन मन्त्रोंसे दुर्वा, 'स्येण वो' (यजु- ७।४५) इस मन्त्रसे दर्पण और 'याः फलिनीर्या' (यजु- १२।८९) इस मन्त्रसे फल अर्पण करे तथा 'समिद्धो'

(यजु- २९।१) इस मन्त्रसे अज्जन लगाये। तुलसीकी पीले सूत्रसे आवेष्टित कर उसके चारों ओर दूध और जलकी धारा दे। कलश तथा तुलसीको वस्त्रसे भलीभाँति आच्छादित कर पर आ जाय। दूसरे दिन 'तद्विष्णोः' (यजु- ६।५) इस मन्त्रसे सुहागिनी विरबेद्वारा मङ्गल-गायनपूर्वक उसे स्नान कराये। गन्तु-पूजापूर्वक वृद्धि-श्राद्ध करे। गन्ध आदि पदार्थोंद्वारा आचार्य, होत और ब्रह्मा आदिको वरुण करे। दस हाथके मण्डपमें गोलका वेदीका निर्माण करे और वहाँ भगवान् नारायणका पूजन करे। वेदीके मध्य ग्रह, लोकपाल, सूर्य और परस्तरणीकी पूजा करे। कलशके चारों ओर रुद्र और वसुओंका पूजन करे। कुश-कर्ण्डका करके, तिल-यवसे हवन करे। विष्णुको उद्दिष्ट कर १०८ आहुतियाँ दे। अन्य देवताओंको यथाशक्ति आहुति प्रदान करे। दूध स्थापित कर चरुकी बलि दे। चतुर्दिक् कदली-सम्भ स्थापित कर ध्वजारै फहराये। दक्षिणामें सर्प, तिल-धान्य एवं पर्याखिनी गाय प्रदान करे। तुलसीको क्षीरघात दे।

कुल ऐसे भी वृक्ष हैं, जिनकी प्रतिष्ठा नहीं होती। जैसे—जयन्ती, सोमवृक्ष, सोमवट, फनस (कटहल), कटम्ब, मिम्ब, कनकफाल्गु, शार्वलि, निम्बक, बिम्ब, अशोक आदि। इनके अतिरिक्त भद्रक, शमीकोण, चंडातक, कक तथा खर्दिर आदि वृक्षोंकी प्रतिष्ठा तो करनी चाहिये, किंतु इनका कर्णवेध-संस्कार नहीं करना चाहिये।

(अध्याय १४—१७)

### एकाह-प्रतिष्ठा तथा काली आदि देवियोंकी प्रतिष्ठा-विधि

**सूतजीने कहा—**ब्राह्मणो ! कलियुगमें अल्प सामर्थ्यवान् व्यक्ति देवता आदिकी प्रतिष्ठा एक दिनमें भी कर सकता है। जिस दिन प्रतिष्ठा करनी हो उसी दिन विद्वान् ब्राह्मण घृताधिवास कराये। जब सूर्य भगवान् उतरायणके हों, तब प्रतिष्ठादि कार्य करने चाहिये। शरत्काल व्यतीत हो जानेपर वसन्त ऋतुमें यज्ञकर आरम्भ करना चाहिये। नारायण आदि मूर्तियोंके बत्तीस भेद हैं। गजानन आदि देवताओंकी प्रतिष्ठा विहित कालमें ही करनी चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्य नित्य-क्रियासे निवृत्त होकर आभ्युदयिक कर्म करे। अन्तरा ब्राह्मणोंको भोजन कराये। फिर यज्ञ-गृहमें प्रवेश करे। वहाँ प्रत्येक कुम्भके ऊपर भगवान् गणेश, नवग्रह तथा दिक्पालोंका विधिपूर्वक पूजन करे। वेदीपर भगवान् विष्णु और उनके परिवारका पूजन करे। सर्वप्रथम भगवान् विष्णुको विधिपूर्वक तीर्थ, समुद्र, नदियों आदिके जल, पञ्चामृत, पञ्चगव्य, सप्त-मृत्तिकाभिश्चित जल, तिलके तेल, कषाय-द्रव्य और पुष्पेदकसे स्नान कराये। तुलसी, आम्र, शमी, कपूर तथा करवीरके पत्र-पुष्पोंसे उनकी पूजा करे। इसके बाद मूर्तिमें प्राण-प्रतिष्ठा सम्पन्न करे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक हवन करे। ब्राह्मणोंको दक्षिणाद्वारा संतुष्टकर पूर्णाहुति प्रदान करे।

ब्राह्मणो ! अब मैं काली आदि महाशक्तियोंकी प्रतिष्ठा एवं अधिवासनकी संक्षिप्त विधि बतला रहा हूँ। प्रतिष्ठाके पूर्व दिन देवीकी प्रतिमाका अधिवासन कर आभ्युदयिक श्राद्ध करे। सर्वप्रथम भगवतीकी प्रतिमाको कमलयुक्त जलमें, फिर

पञ्चगव्यसे स्नान कराये। कुम्भके ऊपर भगवती दुर्गाकी अर्चना करे। तदनन्तर मूर्तिकी प्राण-प्रतिष्ठा करे। विलम्ब-पत्र और विलम्ब-फलोंसे सौ आहुतियाँ दे। दक्षिणामें सुवर्ण प्रदान करे। भगवती कालिका और ताराकी प्रतिमाओंका अलग-अलग अर्चन करे। भगवतीको नाना प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंसे तीन दिनतक स्नान कराये और नैवेद्य अर्पण करे। तबिके कालशपर तीन दिनतक प्रातःकालमें देवीकी अर्चना करे फिर कन्याओद्वारा सुगन्धित जलसे भगवतीको स्नान कराये। अष्टवें दिन भी रात्रिमें विशेष पूजन करे एवं पायस-होम करे।

अगमोंके अनुसार शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठामें तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराये और विशेषरूपसे भगवान्को प्रतिमाका अधिवासन करे। नित्य-क्रिया करके आभ्युदयिक श्राद्ध करे। दूसरे दिन प्रातः आचार्यका वरण करे। विधिके अनुसार प्रतिमाको स्नान कराकर शिवलिङ्गका परिवारके साथ पूजन करे। विधिपूर्वक तिलमयी या खर्णमयी अधवा साक्षात् गौका दान करे। हवनकी समाप्तिपर शुद्ध घृतसे वसुधाया प्रदान करे। इसी तरह सूर्य, गणेश, ब्रह्मा आदि देवताओं तथा काराही एवं त्रिपुरादेवी और भुवनेश्वरी, महामाया, अम्बिका, कामाक्षी, इन्द्राक्षी तथा अपराजिता आदि महाशक्तियोंकी प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा भी विधिपूर्वक करनी चाहिये और रात्रि-जागरण कर महान् उत्सव करना चाहिये। देवीकी प्रतिष्ठामें कुमारी-पूजन भी करना चाहिये।

(अध्याय १८-१९)

### दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्षजन्म उत्पात तथा उनकी शान्तिके उपाय १

**सूतजी कहते हैं—**ब्राह्मणो ! अब मैं विविध प्रकारके अपशकुनों, उत्पातों एवं उनके फलोंका वर्णन कर रहा हूँ। आपलोग सावधान होकर सुनें। जिस व्यक्तिको लग्न-कुण्डली अथवा गोचरमें पाप-ग्रहोंका योग हो तो उसकी शान्ति करनी चाहिये। दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम—ये तीन प्रकारके उत्पात होते हैं। ग्रह, नक्षत्र आदिसे जो अनिष्टकी आशंका होती है वह दिव्य उत्पात कहलाता है। उत्कृष्टपात, दिशओंका दाह

(मण्डलके उदय, सूर्य-चन्द्रके ईर्द-गिर्द पड़नेवाले घेरका दिक्कायी देना), आकाशमें गम्भर्वनगरका दर्शन, खण्डवृष्टि, अनावृष्टि या अतिवृष्टि आदि अन्तरिक्षजन्म उत्पात हैं। जलदाहों, वृक्षों, पर्वतों तथा पृथ्वीसे प्रकट होनेवाले भूकम्प आदि उत्पात भौम उत्पात कहलाते हैं। अन्तरिक्ष एवं दिव्य उत्पातोंका प्रभाव एक सप्ताहतक रहता है। इसकी शान्तिके लिये उत्कृष्ट उपाय करना चाहिये अन्यथा वे बहुत कालतक

१-इन उत्पातोंका तथा इनकी शान्तियोंका विस्तृत विधान अथर्वक शान्तिकल्प एवं अथर्वसंहितादिमें दिया गया है। मत्स्यपुराणके २२८ से २३८ तकके अध्यायोंमें भी यह विषय निम्नलिखित है।

प्रभावी रहते हैं। देवताओंका हँसना, रुधिर-साव होना, अकस्मात् बिजली एवं वज्रका गिरना, हिंसा और निर्दयताका बढ़ना, सर्पोंका आरोहण करना—ये सब दैव दुर्निमित्त हैं। मेघसे उत्पन्न वृष्टि केवल शिलातलपर ही गिरे तो एक सप्ताहके अंदर उत्पन्न प्राणी नष्ट हो जाते हैं। एक राशिपर शनि, मंगल और सूर्य—ये पापग्रह स्थित हो जायें और पृथ्वी अकस्मात् धुँएँसे ढकी दीखे तो भारी जनसंसारकी सम्भावना होती है। यदि बृहस्पति अपनी राशिका अतिचार<sup>१</sup> करें और शनि वहाँ स्थित न हो तो राज्य-नष्ट होनेकी सम्भावना रहती है। यदि सूर्य कुछ समयतक न दिखायी दे और दिशाओंमें दाह होने लगे, धूमकेतु दिखायी दे और बार-बार भूकम्प होता हो तथा राजाके जन्म-दिनमें इन्द्रधनुष दिखायी पड़े तो वह उसके लिये भारी दुर्निमित्त है। भयंकर आंधी-तूफान आ जाय, पक्षोंका आपसमें युद्ध दिखलायी दे, तीन महीनेमें ही दूसरा ग्रहण लग जाय अथवा उल्कापात हो, आकाश और भूमिपर मेढुक दौड़ने लगे, हलदीके समान पीली वृष्टि हो, पत्थरोंमें सिंह और विल्लेकी आकृति दिखलायी पड़े तो राष्ट्रमें दुर्भिक्ष और राजाका विनाश होता है। घरमें अथवा कुम्भके सूर्यमें (फाल्गुन मासमें) नदीका वेग अकस्मात् बहुत बड़ जाय तो राष्ट्रमें विप्लव होता है। ये सब सूर्यजन्य अद्भुत उत्पात हैं। हवन आदिद्वारा इनकी शान्ति करनी चाहिये। 'आ कुम्भेन' (यजुः ३३।४३) इस सूर्यग्रहद्वारा हवन करना चाहिये। धान्यादिका निस्सार हो जाना, गौओंका निस्तेज हो जाना, कुओंका जल सहसा सूख जाना—ये सब भी सूर्यजनित उत्पात हैं, इनकी शान्तिके लिये कमल-पुष्पोंसे एक सहस्र आहुतियाँ देनी चाहिये। विकृत पक्षी, पाँदुवर्ण कपोल, श्वेत उल्लू, काला कौआ और कालकुल पक्षी यदि घरमें गिरे तो उस घरमें महान् उत्पात मच जाता है। गलेकी मालखई आपसमें टकराने लगे, सद्यः उत्पन्न बालकको दाँत हो, देवताओंकी मूर्तियाँ हँसती हों, मूर्तियोंमें पसीना दीख पड़े और घड़ेमें अथवा घरमें सर्प और मण्डूकज्य प्रसव हो जाय तो उस घरकी गृहिणी छः मासके अंदर नष्ट हो जाती है। घरपर या वृक्षपर बिजली कड़कड़ाकर गिरने और आगकी ज्वालाएँ दिखायी देनेपर महान् उत्पात होता है। इन सबकी शान्तिके

लिये रविवारके दिन भगवान् सूर्यकी प्रसन्नता-हेतु उनकी पूजा करे। तिल एवं पायसकी दस हजार आहुतियाँ प्रदान करे। गो-दान करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। इससे शीघ्र शान्ति होती है। अचानक घबरा, चामर, छत्र तथा सिंहासनसे विभूषित रथपर राजाका दिखलायी देना तथा स्त्री-पुरुषोंकी लड़ाई ये भी महान् उत्पात हैं। पृथ्वीका कँपना, पहाड़ोंका टकराना, कोयल और उल्लूका रोना आदि सुनायी पड़े तो राजा, मन्त्री, राजपुत्र, हाथी आदि विनष्ट होते हैं।

साढ़ एवं सुषारीके वृक्ष एक साथ उत्पन्न हो जायें तो उस घरमें रहनेवालोंपर विपत्तिकी सम्भावना होती है। दूसरे वृक्षोंमें अन्य वृक्षोंके फूल-फल लगे हुए दीखें तो ये सोमग्रहजन्य उत्पात हैं। इसकी शान्तिके लिये सोमवारके दिन सोमके निमित्त दधि, मधु, घृत तथा पलाश आदिसे 'इमं वेष्टा' (यजुः १।४०) इस मन्त्रसे एक हजार आहुतियाँ दे और घरमें भी हवन करे।

उड़द और जौकी ढेरियाँ सहसा लुप्त हो जायें, दही, दूध, घी और फलफलोंमें रुधिर दिखलायी पड़े, एकएक घरमें आग-जैसा लगना दिखायी दे, बिना बादलके ही बिजली चमकने लगे, घरके सभी पशु तथा मनुष्य रुग्ण-से दिखायी पड़ें, तो मङ्गल ग्रहमें उत्पन्न उत्पात समझने चाहिये। इनसे राजा, अमात्य तथा घरके स्वामियोंका विनाश होता है। ऐसे भयंकर उपद्रवोंको देखकर मङ्गलकी शान्तिके लिये दही, मधु, घीसे युक्त सैर और गूलरकी समिधासे 'अग्निर्मूर्धा' (यजुः ३।१२) इस मन्त्रसे दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये। तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणामें लाल वस्तुएँ देनी चाहिये तथा सोने या तंबिकी मङ्गलकी प्रतिमा बनाकर दानमें देनी चाहिये। इससे शान्ति होती है।

गौर यदि घरमें पैँछ उठाकर स्वयं दीड़ने लगे और कुत्ते तथा सुअर घरपर चढ़ने लगे तो उस घरकी स्त्रियोंको भीषण क्रोधाकी आशंका होती है। गृहस्वामीका पूर्णतः मिथ्यावादी होना तथा राजाका वाद-विवादमें फँसना, घरमें गौओंका विल्लपना, पृथ्वीका हिलना, घरमें मेढुक तथा सर्पका जन्म लेना—ये सभी उत्पात बुधग्रहजन्य हैं। इसमें राज्य तथा घरके नष्ट होनेकी सम्भावना होती है। इन उत्पातोंकी शान्तिके

१-एक राशिका भोगकाल समाप्त हुए बिना तीव्रगतिसे आगे चलय जाना। यह स्थिति केवल मंगलसे लेकर शान्तिके प्रहोकी होती है।

लिये बुधवारके दिन बुध ग्रहके उद्देश्यसे दही, मधु, घी तथा अपामार्गकी समिधा एवं चरुसे 'उत्तुष्णस्व' (यजु- १५।५४) इस मन्त्रद्वारा दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये। बुधकी सुवर्णकी प्रतिमा तथा पर्यस्विनी गाय ब्राह्मणको दानमें देनी चाहिये।

पशुओंका असमयमें समागम और उनसे यमल संतर्पितयेकी उत्पत्ति, जौ, ब्रौहि आदिका सहसा लुप्त हो जाना, गृहस्ताम्बका सहसा टूटना, अग्निमें बिल्लरी तथा गेंदकका नखोंसे जमीन कुदेना और इनका घरपर चढ़ना, ये सभी दोष जहाँ दिखायी दें, वहाँ छः महिनैके भीतर ही घरका विनाश होता है—कोई प्राणी मर जाता है या कुटुम्बमें कलह होता है तथा अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। बिल्व-वृक्षपर गृध्र और गृध्रीका एक साथ दिखलायी देना राजाके लिये विध्वंसकारक तथा प्रासादके लिये हानिकारक होता है। इस दोषसे अमात्यवर्ग राजाके विपरीत हो जाता है। ये सभी गृहस्थातिजनित दोष हैं। इनकी शान्तिके लिये गृहस्थांतिके निमित्त शान्ति-होम करना चाहिये तथा पर्यस्विनी गाय एवं स्वर्णकी गृहस्थांतिकी प्रतिमाका दान करना चाहिये।

राक्षसद्वारा धड़ेका जल पीनेका आभास होना; सिंह, शर्करा, तेल, चाँदी, ताण्डवनृत्य, उड़द-भात, धान्य आदिका आभास होना; घरमें ताँबा, कपड़ा, लोहा, मोसा तथा पीतल आदिका रखा दिखायी देनेका आभास होना; ऐसे उत्पत्तकर धनके नाश होनेकी सम्भावना रहती है और अनेक व्याधियाँ होती हैं, राजा भयंकर उपद्रव तथा बन्धनमें पड़ जाता है। गौ, अश्व तथा सेवकोंका विनाश होता है। दन्तार्थिकको छोड़कर दंतिके ऊपर दंतिका निकलना, शलकाके समान दंत निकलना—ये भी दोषकारक हैं। बर्तनमें, घड़ोंमें यदि बादलके गरजनैकी आवाज सुनायी दे तो गृहस्वामीपर विपत्तिकी सम्भावना होती है—ये शुक्रग्रहजनित दोष हैं। इनकी शान्तिके लिये शुक्रवारके दिन दही, मधु, घृतयुक्त शमीपत्रसे हवन करे तथा दो सफेद वस्त्र, पर्यस्विनी श्वेत गौ, और सुवर्णकी शुक्रकी प्रतिमाका दान करना चाहिये।

मन्दिरकी जमीन यदि रक्त वर्णकी अथवा पुष्पित दिखलायी दे तो वहाँ भी उत्पातकी सम्भावना होती है। आकाशमें जलती हुई आग दिखायी दे तो स्त्री-पुरुषोंकी हानि

और राष्ट्रमें विद्रोहकी सम्भावना होती है। सभी ओषधियाँ और मत्स्य रसविहीन हो जायें; हाथी, घोड़े, मतवाले होकर हिंसक हो जायें; राजाके लिये नगर तथा गाँवमें सभी शत्रु हो जायें; गौ, महिष आदि पशु अनायास उत्पात मचाने लगें; घरमें दरवाजोंमें गेह और शंखिनी प्रवेश करे तो अशुभ समझना चाहिये; इससे राज-पीड़ा और धन-हानि होती है। ये सभी उत्पात शनिग्रहजनित समझने चाहिये। इनकी शान्तिके लिये विविध सस्यो तथा समिधाओंसे शनिवारके दिन 'शं नो देवी' (यजु- ३६।१२) इस मन्त्रसे दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये और चरुसे भी हवन करना चाहिये। नीली सवत्सा पर्यस्विनी गाय, दो वस्त्र, सोना, चाँदी, शनिकी प्रतिमा आदि दक्षिणमें ब्राह्मणको देनी चाहिये।

बादलके गरजे बिना लाल-खेली शिलावृष्टिका दिखलायी देना, बिना हवाके वृक्षका हिलना-डुलना दिखलायी देना, इन्द्रध्वज तथा इन्द्रधनुषका गिरना, दिनमें सियासोका तथा रात्रिमें डलूका रोना, एक बैलका दूसरे बैलके कन्धुद्वर मुँह रखकर रैधाना, ऐसे दोष होनेपर देशमें पापकी वृद्धि होती है तथा राजा राज्य एवं धर्मसे व्युत्त हो जाता है। गौ और ब्राह्मणमें परस्पर द्वन्द्व मच जाता है, वाहन नष्ट हो जाते हैं। यदि आकाशमें ध्वजकी छाया दिखलायी पड़े तो राष्ट्रमें महान् विद्रोह होता है। यदि जलमें जलती हुई आग दिखलायी दे और सिर अथवा शरीरपर बिजली गिर जाय तो उसका जीवन दुर्लभ हो जाता है। दरवाजोंके किनारोंपर अथवा स्तम्भपर अग्नि अथवा धूम दिखलायी दे तो मृत्युका भय होता है। आकाशमें वज्रापात, अग्निकी ज्वालाके मध्य धुआँ, नगरके मध्य किसी अनहोनी घटनाका दिखलायी देना, रात्रि ले जाते समय उस रात्रि उठकर बैठ जाना; स्थापित लिङ्गका गमन करना; भूकम्प, आँधी-तूफान, उत्कटापात होना; बिना समय वृक्षोंमें फल-फूल लगना—ये सभी उत्पात राहुजन्य हैं। इनकी शान्तिके लिये दही, मधु, घी, दूध, अन्न आदिसे 'कथा वक्षिष्व' (यजु- २७।३९) इस मन्त्रद्वारा रविवारके दिन दस हजार आहुतियाँ राहुके लिये दे, चरुसे भी हवन करे। पर्यस्विनी कपिल गौ, अतसी, तिल, शीख और युग्मवस्त्र ब्राह्मणको दानमें दे। वारुणहोम भी करे। इससे सारे दोष-पाप नष्ट हो जाते हैं।



यदि जम्बूक, गुध, कीर्ण आदि भोग धनि करते हैं तथा भयंकर नृत्य करते हैं तो मनुष्य की आशंका होती है, जलती हुई आगके समान भूमिकेतुस दिखलप्रयी पड़ना, जमीनका शिसकना मालूम होना—ऐसी स्थितिमें राजा पीड़ित होता है, राज्यमें अकाल पड़ता है तथा अनेक प्रकारके अनिष्ट होते हैं। इनकी शांतिके लिये स्वर्णछत्रयुक्त स्याल घोड़ेसे युक्त सूर्यमण्डप बनाकर ब्राह्मणको दान करे। जित्तबन्ध भी दे, ऐन्द्र मन्त्रसे हवन करे। यदि अकस्मात् साल, ताल, अश्व, सर्पिर, कमल आदि घरके अंदर हो उत्पन्न हो तो ये सभी केतुग्रहजन्य दोष हैं। इनकी शांतिके लिये "अथर्वक-" (यजुः ३।१०) इस मन्त्रसे दही, मधु, धूलसे दस हजार आहुतियाँ दे तथा वर भी प्रदान करे। नीली सफ़ासा पर्यासिनी गाय, बकर, केतुकी प्रतिमा आदि ब्राह्मणको दान करे।

दक्षिण दिशामें अपनी छाया अपने पैरके एकदम समीप आ जाय और छायामें दो या पाँच सिर दिखलायी दे अपना छिन्न-भिन्न कपमें सिर दिखलायी दे तो देखनेवालेकी सख्तहक पीतर ही मरुपकी आशंका होती है। जबकि, बिलम्बे, तोता

तथा कालोत्तरा मैत्रुन दिशालयी दे तो ये दुर्निमित्त राहुजन्म उत्पन्न है। इनकी शक्तिके लिये शनिवारके दिन शक्तिके निमित्त दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये। अर्क-पुष्पसे शनिकी पूजा करे तथा वस्त्रसे सौ बार आहुति दे। वाम और दक्षिणके क्रमसे यदि बाहु, पैर तथा आँखमें स्पन्दन हो तो इससे मृत्युका भय होता है। यह सोमग्रहजनित दुर्निमित्त है। पुराक, यज्ञोपवीत, वस्त्र तथा इन्द्र-ध्वजमें आग लगा जाय तो यह सूर्यजन्म दुर्निमित्त है। इसकी शक्तिके लिये सूर्यके निमित्त विमधुयुक्त कनेरके पुष्पोंसे आहुतियाँ देनी चाहिये। जिन ग्रहोंका दुर्निमित्त दिशालयी दे, उसकी शक्तिके लिये ग्रहों तथा उसके अधिदेवता और प्रत्यधिदेवताके निमित्त भी विधिपूर्वक पूजन-हवन-सवन, दान आदि करना चाहिये। विधिके अनुसार क्रिया न करनेसे दोष होता है। अतः ये सभी शास्त्रादि-कर्म शास्त्रोक्त विधानोंके अनुसार ही करने चाहिये। इससे शक्ति प्राप्त होती है और सर्वविध कल्याण-मङ्गल होता है।

(अध्याय २०)



॥ अष्टादशोऽध्यायः, तृतीयः भागः सम्पूर्णः ॥

॥ भविष्यपुराणान्तर्गत मध्यमपर्यं सम्पूर्ण ॥



## प्रतिसर्गपर्व (प्रथम खण्ड)

[ वास्तवमें भविष्यपुराणके भविष्य नामकी सार्थकता प्रतिसर्गपर्वमें ही वर्तितार्थ हुई दीखती है। वंशानुकीर्तन सभी पुराणोंका मुख्य लक्षण है—'वंशानुकीर्तने वेति पुराणे पञ्चलक्षणम्।' यह विषय सभी पुराणोंमें प्राप्त होता है। भविष्यपुराणमें तो कई स्थानोंपर आया है, पर प्रतिसर्गपर्वमें अधुनिक इतिहासका मार्ग प्रशस्त कर दिया है। अरबी-फारसी और उर्दूमें इतिहासको तबारीख (तारीख) कहते हैं। सभी घटनाओंका उल्लेख तारीख (तिथि, वर्ष) क्रमपूर्वक हुआ है। अंग्रेजीमें भी इतिहासका सही नाम 'क्रानिकल्स' है। भारतीय दृष्टिमें कालका प्रवाह अनन्त है। एक सृष्टिके बाद दूसरी सृष्टिमें कल्प-महाकल्प लगे हुए हैं—जैसे—'इहो बसत मोहि सुन खग ईसा। बीते कल्प सात अरु बीसा ॥' इसलिये किसी एक कल्पका ही वर्णन एक पुराणमें सम्भव होता है। प्रतिसर्गपर्व अपनेको खण्ड-कल्पमें वैवस्वत मन्वन्तरका ही इतिहास-निर्देशक मतला रहा है और बड़ी सतृप्त्यनुभूतिसे सत्ययुग, त्रेतायुग आदिके टीकानुसार राजाओंके राज्य आदिका उल्लेख कर रहा है। बादमें कलियुगी राजाओंके वंशका भी वर्णन करता है। प्रस्तुत विवरणमें रामोक्त विरोध श्रुतिके लिये वाल्मीकीय रामायण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, श्रीमद्भागवतके साथ अन्य ग्रन्थों एवं ऐतिहासिक पौराणिक कोषोंमें भी सहायता ली गयी है।—सम्पादक ]

### सत्ययुगके राजवंशका वर्णन

नारायण नमस्कृत्य नरं शेषं बरोलमम् ।

देवी सरस्वती व्यासे ततो जयमुदीरयेत् ॥

'भगवान् नर-नारायणके अवतारस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके सखा नरसिंह अर्जुन, उनकी स्त्रीत्वओंको प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उनके वरिष्ठोंका वर्णन करनेवाले वेदव्यासको नमस्कार कर अष्टादश पुराण, रामायण और महाभारत आदि जय नमसे व्यवस्थित ग्रन्थोंका वाचन करना चाहिये।'।

महामुनि आचार्य शौनकजीने पूछा—मुने ! ब्रह्माकी आयुके उत्तरार्धमें भविष्य नामके महाकल्पमें प्रथम वर्षके तीसरे दिन वैवस्वत नामक मन्वन्तरके अष्टाईसवें सालयुगमें कौन-कौन राजा हुए ? आप उनके चरित्र तथा राज्यकारिका वर्णन करें ।

मृतजी बोले—वैवस्वतकल्पमें ब्रह्माके वर्षके तीसरे दिन सातवें मूर्तुकी प्रारम्भ होनेपर महाराज वैवस्वत मनु उत्पन्न हुए। उन्होंने सरयू नदीके तटपर दिव्य सौ वर्षोत्क तपस्या की और उनकी छीकसे उनके पुत्ररूपमें राजा इक्ष्वाकुका जन्म हुआ।

ब्रह्माके वरदानसे उन्होंने दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति की। राजा इक्ष्वाकु भगवान् विष्णुके परम भक्त थे। उनकी कुपासे उन्होंने छत्तीस हजार वर्षोत्क राज्य किया। उनके पुत्र विकुक्षि हुए, अपने पिता इक्ष्वाकुसे सौ वर्ष कम अर्थात् पैंतीस हजार सौ सौ वर्षोत्क राज्य करके वे स्वर्ग पधार गये। उनके पुत्र रिपुञ्जय हुए और उन्होंने भी पिता विकुक्षिसे सौ वर्ष कम अर्थात् पैंतीस हजार आठ सौ वर्षोत्क राज्य किया। उनके पुत्र वसुस्त्य हुए। उन्होंने पैंतीस हजार सात सौ वर्षोत्क राज्य किया। उनके पुत्र अनेना हुए, उन्होंने पैंतीस हजार छः सौ वर्षोत्क राज्य किया। अनेनाके पुत्र पृथु नामसे विख्यात हुए। उन्होंने पैंतीस हजार पाँच सौ वर्षोत्क राज्य किया और उनके पुत्र विष्वगन्ध हुए, उन्होंने पैंतीस हजार चार सौ वर्षोत्क राज्य किया। उनके पुत्र अट्टि हुए, उन्होंने पैंतीस हजार तीन सौ वर्षोत्क राज्य किया। उनके पुत्र भद्राश्व हुए, जिन्होंने पैंतीस हजार दो सौ वर्षोत्क राज्य किया। राजा भद्राश्वके पुत्र युवनाश्व हुए, उन्होंने पैंतीस हजार एक सौ वर्षोत्क राज्य किया। उनके पुत्र श्रावस्ती हुए। (इन्होंने श्रावस्ती नामकी नगरी बसायी थी।) उस समय सत्ययुगमें समग्र भारतवर्षमें धर्म अपने तप,

तौच, दया तथा सत्य धारों धारणोंसे<sup>१</sup> विद्यमान था। इन सभी इक्ष्वाकुवंशी राजाओंने उत्थाचलसे अन्ताचलपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीपर नीति एवं धर्मपूर्वक राज्य किया। महाराज श्रवस्तने पीलीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र बृहदश हुए, उन्होंने चौतीस हजार सौ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र कुशलयाध हुए, उन्होंने चौतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया।

महाराज कुशलयाधके पुत्र दृढाश हुए, जिन्होंने अपने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् तैलीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र निरुष्मक हुए, उन्होंने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् चलीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र संकटाश हुए, उन्होंने एक हजार वर्ष कम अर्थात् इकतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र प्रसेनजित हुए, उन्होंने तीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। इसके बाद रणरथ हुए, उन्होंने उनतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र माभ्यश हुए, उन्होंने अपने पितासे एक सौ वर्ष कम अर्थात् उनतीस हजार सत्त सौ वर्षोंतक राज्य किया। महाराज माभ्यशके पुत्र पुष्पकुश हुए, उन्होंने उनतीस हजार छः सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र विशदश हुए, उनके रथमें तीस घोड़े जुते रहते थे, इन्हेंसिधे वे विशदशके नामसे विख्यात हुए। राजा विशदशके पुत्र अनरण्य हुए, उन्होंने अठ्ठाईस हजार वर्षोंतक शासन किया। महाराज अनरण्यके पुत्र पुषदश हुए, वे छः हजार वर्षोंतक राज्य करके अन्तमें पितृलोकाधी चले गये। अनन्तर हर्षक्षनामके राजा हुए, उन्होंने राज पुषदशसे एक हजार वर्ष कम अर्थात् पाँच हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र वसुमान् हुए, उन्होंने उनसे एक हजार वर्ष कम अर्थात् चार हजार वर्षोंतक राज्य किया। तदनन्तर उनके त्रिधन्वा नामका पुत्र हुआ, उसने अपने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् तीन हजार वर्षोंतक राज्य किया। तबतक भारतमें सत्य-युगका द्वितीय पट समाप्त हो गया।

महाराज त्रिधन्वाके पुत्र त्र्यम्बरजि हुए, वे अपने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् दो हजार वर्षोंतक राज्य करके

सर्ग चले गये। उनके पुत्र विशकु हुए और उन्होंने मात्र एक हजार वर्ष राज्य किया। उनके कारण राजा विशकु हीनताके ज्ञान हुए। उनके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए, इन्होंने बीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र रोहित हुए, उन्होंने पिताके समान ही राज्य किया। उनके पुष्का नाम द्वारैत था। राजा द्वारैतने भी पिताके समान ही दीर्घकालतक राज्य किया। उनके पुत्र चक्रुधुर हुए। पिताके तुल्य वर्षोंतक उन्होंने राज्य किया। उनके पुत्र विजय हुए। इन्होंने भी पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र रुक हुए, उन्होंने भी पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। ये सभी राजा विष्णुभक्त थे एवं इनकी सेना बहुत विशाल थी। उनके राज्यमें धर्म-सत्यकी समृद्धि तथा प्रचुर धन-सम्पत्ति सभीको सुलभ थी। उस समय सत्ययुगका पूर्ण धर्म विद्यमान था।

सत्ययुगके तृतीय चरणके मध्यमें राजा वसुधके पुत्र महाराज सागर हुए। वे शिवभक्त तथा सदाचार-सम्पन्न थे। उनके (एक रथसे उत्पन्न साठ हजार) पुत्र सागर नामसे प्रसिद्ध हुए। भूमिमें तीस हजार वर्षोंतक उनका राज्य-काल मन्द है। (कथित भूमिके शापसे) सागर-पुत्र नष्ट हो गये। दूसरी रथसे असमेजस नामका एक पुत्र हुआ। उनके पुत्र अशुक्ल हुए। उनके दिलीप और दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए, जिनके छः पृथ्वीपर लगी गयी वज्रा भगीरथी नामसे प्रसिद्ध हुईं। भगीरथके पुत्र क्षुत्सेन हुए। महाराज सागरसे क्षुत्सेनतक सभी राजा दीव थे। क्षुत्सेनके पुत्र नभान्न तथा नाभान्नके पुत्र राजा अम्बरीष अत्यन्त प्रसिद्ध विष्णुभक्त हुए, जिनकी रक्षामें सुदर्शनचक्र छल-दिन निरुक्त रहता था। तबतक भारतमें सत्ययुगका तीसरा चरण समाप्त हो चुका था।

सत्ययुगके चतुर्थ चरणमें महाराज अम्बरीषके पुत्र विष्णुद्वीप हुए, उनके पुत्र अयुताश, अयुताशके पुत्र अयुत्पत्नी, उनके पुत्र सर्वशत्रु तथा उनके पुत्र कल्पापवाद हुए। कल्पापवादके पुत्र सुदासको वसिष्ठजीके आशीर्वादसे ऋष्यन्तसे उत्पन्न अश्वमेध (सौदाम) नामका पुत्र प्राप्त हुआ। सौदामन्यके वे सत्त राजा वैष्णव कहे गये हैं। गुरुके शापसे सौदामने अज्ञोन्मीलित अपना सम्पूर्ण राज्य गुरुको समर्पित कर

दिया। गोकर्ण लिङ्ग-भक्त शैव कहा जाता है। राजा अश्वमेधके पुत्र हरिवर्मा साधुओंके पूजक थे। उनके पुत्र दशरथ (प्रथम) हुए, उनके पुत्र दिलीप (प्रथम) हुए, उनके पुत्र विश्वामित्र हुए, उन्होंने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके अधर्म-आचरणके कारण उस समय सौ वर्षोंतक भयंकर अनापूर्ति हुई, जिससे उनका राज्य विनष्ट हो गया और उनके अग्रज करनेपर महर्षि वसिष्ठने यज्ञकर यज्ञके द्वारा खड्ग नामक पुत्र उत्पन्न किया। राजा खड्गजीने शस्त्र धारण कर इन्द्रकी सहायतासे तीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। तदनन्तर देवताओंसे कर प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की। उनके पुत्र टोष्यबाहु हुए, उन्होंने बीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र सुदर्शन हुए। महामनीषी सुदर्शनने राजा कशीराजकी पुत्रीसे विवाह कर देवीके प्रसादसे राजाओंको जीतकर धर्मपूर्वक सम्पूर्ण भारतखण्डपर चौध हजार वर्षोंतक राज्य किया।

एक दिन स्वप्नमें महाकालीने राजा सुदर्शनसे कहा— 'वत्स ! तুম अपने पत्नीके साथ तथा महर्षि वसिष्ठ आदिसे सम्मनित होकर हिमालयपर जाकर निवास करो; क्योंकि शीघ्र ही भीषण इंद्रावतारके प्रभावसे भारतखण्डका प्रायः क्षय हो जायगा। पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओंके अनेक उपद्वीप इंद्रावतारके कारण समुद्रके गर्तमें विलीन-से हो गये हैं। भारतवर्षमें भी आजके सत्रह दिन भीषण इंद्रावतार आवेगा।' स्वप्नमें भगवतीद्वारा प्रत्यक्ष निर्देश पाकर महाराज सुदर्शन प्रधान राजाओं, वैश्यों तथा ब्राह्मणों और अपने परिकरोंके साथ हिमालयपर चले गये और भारतका बड़ा-सा भूभाग समुद्री-तूफान आदिके प्रभावसे नष्ट हो गया। सम्पूर्ण प्राणी विनष्ट हो गये और सारी पृथ्वी जलमग्न हो गयी। पुनः कुछ समयके अनन्तर भूमि स्थलरूपमें दिखलाई देने लगी।

(अध्याय १)

### प्रेतायुगके सूर्य एवं चन्द्र-राजवंशोंका वर्णन

सूतजी बोले—महामुने। वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिमें बृहस्पतिवारके दिन महाराज सुदर्शन अपने परिकरोंके साथ हिमालयपर्वतसे पुनः अयोध्या लौट आये। मायादेवीके प्रभावसे अयोध्यापुरी पुनः विविध अन्न-धानसे परिपूर्ण एवं समृद्धिसम्पन्न हो गयी। महाराज सुदर्शनने<sup>१</sup> दस हजार वर्षोंतक राज्यकर नित्यलोकको प्राप्त किया। उनके पुत्र दिलीप (द्वितीय) हुए, उन्हें नन्दिनी गौके वरदानसे क्षेत्र रपु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा दिलीपने दस हजार वर्षोंतक भलीभाँति राज्य किया। दिलीपके बाद पितृके ही सम्मान महाराज रघुने भी राज्य किया। भृगुनन्दन ! प्रेत्यमें वे सूर्यवंशी क्षत्रिय रघुवंशी नामसे प्रसिद्ध हुए। ब्रह्मणके वरदानसे उनके अज नामक पुत्र हुआ, उन्होंने भी पिताके समान ही राज्य किया। उनके पुत्र महाराज दशरथ (द्वितीय) हुए, दशरथके पुत्ररूपमें (भगवान् विष्णुके अवतार) स्वयं राम उत्पन्न हुए। उन्होंने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया। श्रीरामके पुत्र कुशने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। कुशके

पुत्र अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके पुत्र नल<sup>२</sup> हुए, जो शक्तिके परम उत्पत्तिक थे। नलके पुत्र नभ, नभके पुत्र पुच्छरिक्त, उनके पुत्र क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाके देवानीक और देवानीकके पुत्र अहीनग तथा अहीनगके पुत्र कुरु हुए। इन्होंने प्रेत्यमें सौ योजन विस्तारका कुरुक्षेत्र बनाया। कुरुके पुत्र चरित्रात्र, उनके चलस्थल, चलस्थलके पुत्र उषध, उनके वज्रनाभि, वज्रनाभिके पुत्र शङ्खनाभि और उनके व्युत्थनाभि हुए। व्युत्थनाभिके पुत्र विश्वपाल, उनके स्वर्णनाभि और स्वर्णनाभिके पुत्र पुष्पसेन हुए। पुष्पसेनके पुत्र ध्रुवसन्धि तथा ध्रुवसन्धिके पुत्र अपवर्मा हुए। अपवर्माके पुत्र शीघ्रगन्ता, शीघ्रगन्ताके पुत्र मरुपाल और उनके पुत्र प्रसुश्रुत हुए। प्रसुश्रुतके पुत्र सुसंधि हुए। उन्होंने पृथ्वीके एक छोरसे दूसरे छोरतक राज्य किया। उनके पुत्र अमर्यण हुए। उन्होंने पिताके समान राज्य किया। उनके पुत्र महाश्व, महाश्वके पुत्र बृहद्वल और इनके पुत्र बृहदशान हुए। बृहदशानके पुत्र मुरुक्षेप, उनके वत्सपाल और उनके पुत्र वत्सव्यूह हुए। वत्सव्यूहके पुत्र राजा

१- राजा सुदर्शनकी विनष्ट कथा देवीभागवतके तृतीय स्कन्धमें प्राप्त होती है।

२- वे नल दम्पतीके पति अत्यन्त प्रसिद्ध महाराज नामसे विदित हैं।



प्रतिष्येधो ह्यु। उनके पुत्र देवकर और उनके पुत्र सहदेव हुए। सहदेवके पुत्र बृहदश, उनके भानुवत तथा भानुवतके सुप्रतीक हुए। उनके मरुदेव<sup>१</sup> और मरुदेवके पुत्र सुनक्षत्र हुए। सुनक्षत्रके पुत्र केशीनर, उनके पुत्र अन्तरिक्ष और अन्तरिक्षके पुत्र सुवर्णाक्ष हुए। सुवर्णाक्षके पुत्र अमित्राक्ष, उनके पुत्र बृहद्रथ और बृहद्रथके पुत्र धर्मराज हुए। धर्मराजके पुत्र कृत्तवज्र और उनके पुत्र रणजय हुए। रणजयके पुत्र सञ्जय, उनके पुत्र शाक्यवर्धन और शाक्यवर्धनके पुत्र श्रेष्ठदान हुए। श्रेष्ठदानके पुत्र अतुलविक्रम, उनके पुत्र प्रसेनजित् और प्रसेनजित्के पुत्र शुद्रक हुए। शुद्रकके पुत्र सूर्य हुए। वे सभी महाराज अपने वंशज तथा देवीकी आराधनामें रत रहते थे। यह खाण्डिमें तत्पर रहकर अन्तमें इन सभी राजाओंमें सर्गलोक प्राप्त किया। जो बुढ़के वंशज हुए, वे सब पूर्ण शुद्ध क्षत्रिय नहीं थे।

त्रेतायुगके तृतीय वरगके प्रारम्भमें नवीनता आ गयी। देवराज इन्द्रने ऐहिणी-पति चन्द्रमाकी पृथ्वीपर भोज। चन्द्रमाके तीर्थराज प्रयागको अपनी राजधानी बनाया। वे भगवान् विष्णु तथा भगवान् शिवकी आराधनामें तत्पर रहे। भगवती महाशक्तिकी प्रसादात्मे लिये उन्होंने सौ पञ्च क्रिये और अट्टारह हजार वर्षोंतक राज्यकर वे पुनः सर्गलोक चले गये। चन्द्रमाके पुत्र बुध हुए। बुधका विवाह इत्यके साथ विधिपूर्वक हुआ, जिससे पुत्रराजाकी उत्पत्ति हुई। राजा पुरुवरामे चौदह हजार वर्षोंतक पृथ्वीपर शासन किया। उनको भगवान् विष्णुकी आराधनामें तत्पर रहनेवाला आयु नामका एक धर्मोत्तम पुत्र उत्पन्न हुआ। महाराज आयु सत्सीस हजार वर्षोंतक राज्यकर गन्धर्वलोकको प्राप्त करके पुनः स्वर्गमें देवताके समान आनन्द भोग रहे हैं। आयुके पुत्र हुए नहुष, जिन्होंने अपने पिताके समान ही धर्मपूर्वक पृथ्वीपर राज्य किया। तदनन्तर उन्होंने इन्द्रलोकको प्राप्तकर तीनों लोकोंको अपने अधीन कर लिया। फिर बादमें महर्षि दुर्वासोक शपथसे<sup>२</sup> राजा नहुष अजगद हो गये। इनके पुत्र यक्षति हुए। यक्षतिके

पौत्र पुत्र हुए, जिनमेंमें तीन पुत्र मरुच्छ देवदेवे शशक हो गये<sup>३</sup>। शेष दो पुत्रोंने आर्यत्वको प्राप्त किया। उनमें यदु ज्येष्ठ थे और पुत्र बर्हिष्ठ। उन्होंने तपोवत तथा भगवान् विष्णुको प्रसादसे एक लक्ष वर्षोंतक राज्य किया, अनन्तर वे रैकुण्ठ चले गये।

यदुके पुत्र ज्येष्ठने सठ हजार वर्षोंतक राज्य किया। ज्येष्ठके पुत्र वृजिनाभ हुए, उन्होंने बीस हजार वर्षोंतक पृथ्वीपर शासन किया। उनको स्वाहार्वन नामका एक पुत्र हुआ। उनके पुत्र चित्राश्व हुए और उनके अरविन्द हुए। अरविन्दकी विष्णुधर्माक्षरपरायण श्रवम् नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उनके लामस हुए, लामसके उग्रम लामका पुत्र हुआ। उनके पुत्र प्रोत्तमशुक हुए तथा प्रोत्तमशुकके पुत्र भमलेशु हुए। उनके पुत्र वराकृत हुए, उन्हें व्याघ्र नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। व्याघ्रके पुत्र विदर्भ हुए। उनके ब्रध्न नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उनके पुत्र कुन्तिधोज हुए। कुन्तिधोजने पातालमें निवास करनेवाली पुत्र दैत्यकी पुत्रीसे विवाह किया, जिससे वृषपर्वा नामका पुत्र हुआ। उनके पुत्र मण्डविष्ठ हुए, जो देवीके भक्त थे। उन्होंने प्रयागके प्रसिद्धानपुर (हौसी) में दस हजार वर्षोंतक राज्य किया फिर वे सर्ग सिधार गये। मण्डविष्ठके पुत्र जनभोज (पथम) हुए और उनका पुत्र प्रथिव्यान् हुआ। प्रथिव्याके पुत्र प्रवीर हुए। उनके पुत्र नभस हुए, नभसके पुत्र भवद और उनके सुपुत्र नामका पुत्र हुआ। सुपुत्रके पुत्र वाहुगा, उनके पुत्र संघति और संघतिके पुत्र धनदाति हुए। धनदातिके पुत्र ऐराध, उनके पुत्र रत्नोत्तर और रत्नोत्तरके पुत्र सुतल हुए। सुतलके पुत्र संघरण हुए, जिन्होंने हिमालय पर्वतपर तपस्या करनेकी इच्छा की और सौ वर्षोंतक तपस्या करनेपर भगवान् सुषीने अपनी तपती नामकी कन्यासे इच्छा विवाह कर दिया। संतुष्ट होकर राजा संघरण सूर्यलोक चले गये। तदनन्तर कालके प्रभावसे त्रेतायुगका अन्त समय उपस्थित हो गया, जिससे चारों समुद्र उमड़ उठे और प्रलयका दृश्य उपस्थित हो गया। दो वर्षोंतक पृथ्वी

१-अथ सभी पुराणोंमें मरुदेवराज कीर्तिक वर्णन है। पुराणोंके अनुसार वह देवतिके साथ काशी लामों निवासकर साधन कर रहे हैं, किंतु इस पुराणके अनुसार सूर्यदेवराज कीर्तिक वर्णन बहुत अलग है, जो ब्रह्म कीर्तिकपुराणके वर्णन ज्ञात है।

२-महाभारत आदिमें ये अलग-अलग स्थानों अलग-अलग हैं।

३-इसका पुत्र विषमय मन्त्रपुराणके आश्रितक अर्थवादीमें ज्ञात होता है।

पर्वतोंसहित समुद्रमें विलीन रही। इंद्रावातेकें प्रभावसे समुद्र सूख गया, फिर महर्षि अगस्त्यके तेजसे भूमि स्थलीभूत होकर दोखने लगी और पाँच वर्षिके अंदर पृथ्वी वृक्ष, दूर्वा आदिसे

सम्पन्न हो गयी। भगवान् सूर्यदेवकी आज्ञासे महाराज संवरण महारानी तपती, महर्षि वसिष्ठ और तीनों वर्णिके लोगोंके साथ पुनः पृथ्वीपर आ गये। (अध्याय २)

### द्वापर युगके चन्द्रवंशीय राजाओंका वृत्तान्त

**महर्षि शौनकने पूछा—**लोमहर्षणजी! आप यह बताइये कि महाराज संवरण<sup>१</sup> किस समय पृथ्वीपर आये और उन्होंने कितने समयतक राज्य किया तथा द्वापरमें कौन-कौन राजा हुए, यह सब भी बताये।

**सुतजी बोले—**माहर्षे! महाराज संवरण भ्रातृपदके कृष्ण पक्षकी प्रयोदशी तिथिको शुक्लवारके दिन मुनिपोंके साथ प्रतिष्ठानपुर (झुंसी) में आये। विश्वकर्मनि वहाँ एक ऐसे विशाल प्रासादका निर्माण किया, जो ऊँचाईमें आधा कोस या डेढ़ किलोमीटरके लगभग था। महाराज संवरणने पाँच क्षेत्रन या बीस कोसके क्षेत्रमें प्रतिष्ठानपुरको अत्यन्त सुन्दरता एवं स्वच्छतापूर्वक बसाया। एक ही समयमें (चन्द्रमाके पुत्र) बुधके वंशमें उत्पन्न प्रसेन और मनुवंशीय राजा सात्वत शूरसेन मधुरा (मधुर) के शासक हुए। म्लेच्छवंशीय शम्भुपाल (दाढ़ी रखनेवाला) मरुदेश (अरब, ईरान और ईराक) के शासक हुए। क्रमशः प्रजाओंके साथ राजाओंकी संख्या बढ़ती गयी। राजा संवरणने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। इसके बाद उनके पुत्र अर्वाक्ष हुए, उन्होंने भी दस हजार वर्षोंतक शासन किया। उनके पुत्र सूर्यजापीने पिताके शासनकालके आधे समयतक राज्य किया। उनके पुत्र सौरपञ्चमरायण सूर्यपञ्च हुए। उनके पुत्र आदित्यवर्धन, आदित्यवर्धनके पुत्र इन्द्रशात्वा और उनके पुत्र दिवाकर हुए। इन्होंने भी प्रायः अपने पितासे कुछ कम ही दिनोंतक राज्य किया। दिवाकरके पुत्र प्रभाकर और प्रभाकरके पुत्र भास्वदात्मा हुए। भास्वदात्माके पुत्र विवस्वन्, उनके पुत्र हरिदश्वर्धन और उनके पुत्र वैकर्तन हुए। वैकर्तनके पुत्र अर्केष्टिमान्, उनके पुत्र मारुतश्वत्सल और मारुतश्वत्सलके पुत्र मिहिरार्ध तथा उनके अरुणपोषण हुए। अरुणपोषणके पुत्र सुमणि, सुमणिके पुत्र तरुणयज्ञ और उनके पुत्र मैत्रेष्टिवर्धन हुए। मैत्रेष्टिवर्धनके पुत्र धित्रभानूर्जक, उनके वैरोचन और वैरोचनके पुत्र हंसन्यायी

हूए। उनके पुत्र वेदप्रवर्धन, वेदप्रवर्धनके पुत्र सावित्र और इनके पुत्र धनपाल हुए। धनपालके पुत्र म्लेच्छहन्ता, म्लेच्छहन्ताके आनन्दवर्धन, इनके धर्मपाल और धर्मपालके पुत्र ब्रह्मभक्त हुए। उनके पुत्र ब्रह्मेष्टिवर्धन, उनके पुत्र आश्वत्थपूजक हुए और उनके परमेष्ठी नामक पुत्र हुए। परमेष्ठीके पुत्र हरण्यवर्धन, उनके धातुयाजी, उनके विधातृप्रपूजक और उनके पुत्र दृष्टिणाक्रतु हुए। दृष्टिणाक्रतुके पुत्र वैरघ्न, उनके पुत्र कमलासन और कमलासनके पुत्र शम्भवर्ती हुए। शम्भवर्तीके पुत्र ब्राह्मदेव और उनके पितृवर्धन, उनके सोमदत्त और सोमदत्तके पुत्र सौमदत्ति हुए। सौमदत्तिके पुत्र सौमवर्धन, उनके अवतंस, अवतंसके पुत्र प्रतंस और प्रतंसके पुत्र परतंस हुए। परतंसके पुत्र अपातंस, उनके पुत्र समतंस, उनके पुत्र अनुतंस और अनुतंसके पुत्र अधितंस हुए। अधितंसके अधितंस, उनके पुत्र समुतंस, उनके तंस और तंसके पुत्र दुष्यन्त हुए।

महाराज दुष्यन्तकी पत्नी शकुन्तलसे भरत नामके पुत्र हुए, जो सदा सूर्यदेवकी पूजामें तत्पर रहते थे। महाराज भरतने महामाया भगवतीकी कृपासे सम्पूर्ण पृथ्वीपर छत्तीस हजार वर्षोंतक पञ्चवर्ती सम्राट्के रूपमें राज्य किया और उनके पुत्र महाबल हुए। महाबलके पुत्र भरद्वाज हुए। भरद्वाजके पुत्र मनुमान् हुए, जिन्होंने अट्ठारह हजार वर्षोंतक पृथ्वीपर शासन किया। उनके पुत्र वृहक्षेत्र, उनके पुत्र सुहोत्र और सुहोत्रके पुत्र कीर्तिहोत्र हुए, इन्होंने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। कीर्तिहोत्रके पुत्र यज्ञहोत्र, यज्ञहोत्रके पुत्र शक्रहोत्र हुए। इन्द्रदेवने प्रसन्न होकर इन्हें स्वर्ग प्रदान किया। उस समय अयोध्यामें महाबली प्रतापेन्द्र नामक राजा हुए, उन्होंने दस हजार वर्षोंतक भारतपर शासन किया। इनके पुत्र मण्डलीक हुए। मण्डलीकके पुत्र विजयेन्द्र, विजयेन्द्रके पुत्र धनुर्दीप्त हुए।

महाराज शक्रहोत्र इन्द्रकी आज्ञासे धृताचीके साथ पुनः

१-इनकी विस्तृत कथा महाभारतके अर्द्धपर्व (अ० ९४) में विस्तारसे, किन्तु १७२ तक प्रायः अज्ञेय रही है।

भूतलपर आये और उन्होंने राजा धनुर्दत्तको खीटकर पृथ्वीपर शासन किया। इन्द्रकोशके भूतलकीसे हस्ती नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। हस्तीने ऐरावत हाथीके बंधोपर आरुढ़ होकर पश्चिममें अपने नामसे हस्तिना नामक नगरीका निर्माण किया। यह दस योजना विसृज्य है तथा स्वर्गलोकके तटपर अवस्थित है। वहाँ उन्होंने दस हजार वर्षोंतक निवासकर राज्य किया। महाराज हस्तीके पुत्र अजमीव, अजमीवके पुत्र रत्नवत, रत्नवतके पुत्र सुशम्भ और उनके पुत्र कुरु हुए। इन्द्रके वरदानसे वे सदेह स्वर्ग चले गये।

उस समय मधुरामें सात्वत-वंशमें वृष्णि नामके एक महाबली राजा हुए। उन्होंने भगवान् विष्णुके वरदानसे पाँच हजार वर्षोंतक सम्पूर्ण राज्यको अपने अधीन रखा। राजा वृष्णिके पुत्र निरावृत्ति हुए, निरावृत्तिके पुत्र दशग्री, दशग्रीके पुत्र विश्वामुन और विश्वामुनके पुत्र जीमूत और इनके पुत्र विकुण्ठि हुए। विकुण्ठिके पुत्र भीमरथ, उनके पुत्र नवरथ और नवरथके दशरथ हुए। उनके पुत्र शकुनि, उनके कुशुम्भ और कुशुम्भके पुत्र देवराथ हुए। देवराथके पुत्र देवशेखर, उनके पुत्र मधु और मधुके पुत्र नवरथ और उनके कुशवत्स हुए। इन सभी लोगोंने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। कुशवत्सके पुत्र अनुरथ, उनके पुरुहोत्र और पुरुहोत्रके पुत्र विश्विज्ज हुए, उनके सात्वतवान् और उनके पुत्र भजमान हुए। उनके पुत्र विदूरथ, उनके सुरपत्त और सुरपत्तके सुमन्त हुए। इन सभीने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। सुमन्तके पुत्र तृतिशेखर, उनके लघयम्भुव, उनके हरिदीपक और हरिदीपकके देवमेघा हुए। इन सभीने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। देवमेघाके पुत्र सुरपाल हुए।

इसके बाद तृतीय चरणके सम्पन्न होनेपर देवराज इन्द्रकी आज्ञासे आयी सुकेशी नामकी अम्बरके लम्बी कुरु राजा हुए। इन्होंने कुरुक्षेत्रका निर्माण किया जो बीस योजना विसृज्य है। विद्वानोंने उसे पुण्यक्षेत्र बताया है। महाराज कुरुने बारह हजार वर्षोंतक राज्य किया। इनके पुत्र जह्नु, जह्नुके सुरथ और

सुरथके पुत्र विदूरथ हुए। विदूरथके पुत्र सर्वभीम, इनके जयसेन और उनके पुत्र अर्णव हुए। महाराज अर्णवका शासन-क्षेत्र चारों समुद्रतक था और इन्होंने अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। अर्णवके पुत्र अयुतायु हुए, जिन्होंने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। अयुतायुके पुत्र अशोधन, उनके आश्र, उनके पुत्र भीमसेन और भीमसेनके पुत्र दिलीप हुए। इन सभी राजाओंने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। दिलीपके पुत्र प्रताप हुए, इन्होंने पाँच हजार वर्षोंतक शासन किया। प्रतापके पुत्र शन्तनु हुए और उन्होंने एक हजार वर्षोंतक राज्य किया, उन्हें विचित्रवीर्य नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जिन्होंने दो सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र पाण्डु हुए, उन्होंने पाँच सौ वर्षोंतक राज्य किया, उनके पुत्र युधिष्ठिर हुए, उन्होंने पचास वर्षोंतक राज्य किया। युधिष्ठिर (दुर्लभ) ने सठ वर्षोंतक राज्य किया और कुशधेयने (युधिष्ठिरके भाई भीमसेन)के द्वारा उसकी मृत्यु हुई।

अन्तमें बरतमें दैत्योंका देवताओंद्वारा भारी संहार हुआ था। वे ही सब दैत्य शन्तनुके राज्यमें पुनः भूलोकमें उत्पन्न हुए। दुर्लभकी विशाल सेनाके भारसे परिभ्रष्ट बसुंधरा इन्द्रकी शासनमें गयीं, तब भगवान् श्रीहरिको अवतार हुआ। लैरि बसुंधराके द्वारा देवकीके गर्भसे उन्होंने अवतार लिया। वे एक सौ पैंतीस वर्षोंतक पृथ्वीपर रहकर उसके बाद गोलोक चले गये। भगवान् श्रीकृष्णका अवतार इसपरके चतुर्थ चरणके अन्तमें हुआ था।

इसके बाद हस्तिनापुरमें अभिमन्युके पुत्र परीक्षितने राज्य किया। परीक्षितके राज्य करनेके बाद उनके पुत्र जनमेजयने राज्य किया। तदनन्तर उनके पुत्र महाराज शतानीक पृथ्वीके शासक हुए। उनके पुत्र यज्ञदत्त (सहस्रानीक) हुए। उनके पुत्र निहङ्क (निचम्बु) हुए। उनके पुत्र उष् (उष्ण) पाल हुए। उनके पुत्र चित्ररथ और चित्ररथके पुत्र धृतिमान् और उनके पुत्र सुपेण हुए, सुपेणके पुत्र सुनीध, उनके मलयपाल, उनके चक्षु

१-विभिन्न पुराणोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी स्थितिकालका उल्लेख कुछ अन्तरसे प्राप्त होता है, विशेषकर महाभारत, भागवत, हरिवंश, विष्णुपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण और गर्गोपनिषद्में भी उनका विस्तृत चरित्र प्राप्त होता है। अधिकांश स्थलोंपर उनका स्थितिकाल एक ही पक्षीसर्व ही निर्दिष्ट है।

२-इनके शासनकालमें ही गङ्गा हस्तिनापुरके अधीनमें आने लगी। अतः इन्होंने कौरवोंकी राजधानी बनाया, जो प्रयागसे चार योजना पश्चिम थी। (विष्णुपुराण ४।२१)

और चक्षुके पुत्र सुखवला (सुखावल) हुए। सुखवलाके पुत्र पाण्डित्य हुए। पाण्डित्यके पुत्र सुनय, सुनयके पुत्र मेधावी, उनके नृपञ्च और उनके पुत्र मृदु हुए। मृदुके पुत्र तिम्रज्योति, उनके बृहद्रथ और उनके पुत्र वसुदान हुए। इनके पुत्र रातानीक हुए, उनके पुत्र उदयन, उदयनके अहीनर, अहीनरके निरमित्र तथा

निरमित्रके पुत्र क्षेमक हुए। महाराज क्षेमक राज्य छोड़कर कलपप्रधान चले गये। उनकी मृत्यु म्लेच्छोंके द्वारा हुई। नारदजीके उपदेश एवं सत्यवाससे उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम प्रद्योत हुआ। राजा प्रद्योतने म्लेच्छ-यज्ञ किया जिससे म्लेच्छोंका विनाश हुआ। (अध्याय ३)

### म्लेच्छवंशीय राजाओंका वर्णन तथा म्लेच्छ-भाषा आदिका संक्षिप्त परिचय

**शौनकने पूछा—**विक्रान्त यह मुने! उस प्रद्योतने कैसे म्लेच्छ-यज्ञ किया? मुझे यह सब बतलावें।

**श्रीसुतजीने कहा—**महापुने! किसी समय क्षेमकके पुत्र प्रद्योत इतिनापुरमें विराजमान थे। उस समय नारदजी वहाँ आये। उनके देखकर प्रसन्न हो राजा प्रद्योतने विधिबन्ध उनकी पूजा की। सुखपूर्वक बैठे हुए मुनिने राजा प्रद्योतसे कहा—‘म्लेच्छोंके द्वारा भरे गये तुम्हारे पित्त कमलोकको चले गये हैं। म्लेच्छ-यज्ञके प्रभावसे उनकी नाकसे मुक्ति होगी और उन्हें स्वर्गधि गति प्राप्त होगी। आतः तुम म्लेच्छ-यज्ञ करो।’ यह सुनकर राजा प्रद्योतकी अंखिं ज़ेधसे लाल हो गयीं। तब उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर कुनक्षेत्रमें म्लेच्छ-यज्ञको तत्काल आरम्भ करा दिया। सोलह योजनमें चतुर्मुखीय यज्ञ-कुण्डका निर्माणकर देवताओंका अवाहनकर उस राजाने म्लेच्छोंका हनन किया। ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर अभिषेक कराया। इस यज्ञके प्रभावसे उनके पित्त क्षेमक स्वर्गलोक चले गये। तभीसे राजा प्रद्योत सर्वत्र पृथ्वीपर म्लेच्छहन्ता (म्लेच्छोंको मारनेवाले) नामसे प्रसिद्ध हो गये। उसका पुत्र वेदवान् नामसे प्रसिद्ध हुआ।

म्लेच्छरूपमें स्वयं कलिन ही राज्य किया था। अनन्तर कलिनने अपनी पत्नीके साथ नारायणकी पुताकर दिव्य स्तुति की; स्तुतिसे प्रसन्न होकर नारायण प्रकट हो गये। कलिनने उनसे कहा—‘हे नाथ! राजा वेदवान्के पित्त प्रद्योतने मेरे सन्तानका विनाश कर दिया है और मेरे प्रिय म्लेच्छोंको नष्ट कर दिया है।’

**भगवान्ने कहा—**कले! कई कारणोंसे अन्य युगोंकी अपेक्षा तुम श्रेष्ठ हो। अनेक ऋषीको धारणकर मैं तुम्हारी इच्छाको पूर्ण करूँगा। आदम नामका पुरुष और हव्यवती (होवा) नामकी पत्नीसे म्लेच्छवंशोंकी वृद्धि करनेवाले उत्पन्न होंगे। यह कहकर श्रीहरी अन्तर्धान हो गये

और कलियुगको इससे बहुत आनन्द हुआ। उसने नीलचल पर्वतपर आकर कुछ दिनोंतक निवास किया।

राजा वेदवान्को सुनन्द नामका पुत्र हुआ और किना संतानके ही वह मृत्युको प्राप्त हुआ। इसके बाद आर्यावर्त देश सभी प्रकार क्षीण हो गया और धीरे-धीरे म्लेच्छोंका बल बढ़ने लगा। तब वैमिशारण्यनिवासी अठारसी हजार ऋषि-मुनि हिमालयपर चले गये और वे बदरी-क्षेत्रमें आकर भगवान् विष्णुकी कक्षा-कार्त्तमें संलग्न हो गये।

**सुतजीने पुनः कहा—**पुने! द्वारा युगके सोलह हजार वर्ष रोष कालमें आर्य-देशकी भूमि अनेक कलितियोंसे समन्वित रही; पर इतने समयमें कहीं गृध्र और कहीं वर्णसेनर राजा भी हुए। अठार हजार दो सौ दो वर्ष द्वारा युगके रोष रह जानेपर वह भूमि म्लेच्छ देशके राजाओंके प्रभावमें आने लग गयी। म्लेच्छोंका अहिंसे पुरुष अदम्य, उसकी स्त्री हव्यवती (होवा) दोनों इन्द्रियोक्त दमनकर ध्यानपरायण रहते थे। ईश्वरने प्रधान नगरके पूर्वभागमें चार कोसवाला एक रमणीय महावनका निर्माण किया। वायव्यके नीचे जाकर कलियुग सर्वरूप धारणकर हीवाके पास आया। उस धूर्त कलिनने हीवाको धोखा देकर गृध्रके पतेमें लपेटकर दूषित वायुयुक्त फल उसे खिला दिया, जिससे विष्णुकी आज्ञा भंग हो गयी। इससे अनेक पुत्र हुए, जो सभी म्लेच्छ कहलवेंगे। आदम पत्नीके साथ स्वर्ग चला गया। उसका श्वेत नामसे विख्यात श्रेष्ठ पुत्र हुआ, जिसकी एक सौ बारह वर्षकी आयु कही गयी है। उसका पुत्र अनुह हुआ, जिसने अपने पित्तसे कुछ कम ही वर्ष शासन किया। उसका पुत्र कीनाश था, जिसने पित्तमहकें समान राज्य किया। महत्फल नामका उसका पुत्र हुआ, उसका पुत्र मानगर हुआ। उसको विरट नामका पुत्र हुआ और अपने नामसे नगर बसाया। उसका पुत्र विष्णुधर्तिपरायण हनूक हुआ। फलोक



हवन कर उसने अध्यात्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त किया। मलेच्छधर्मपरायण वह सदाशैर स्वर्ग चला गया। इसने द्विजोंके आचार-विवाहका पालन किया और देवपूजा भी की, फिर भी वह विद्वानोंके द्वारा मलेच्छ ही कहा गया। मुनियोंके द्वारा विष्णुभक्ति, अग्निपूजा, अहिंसा, तपसा और इन्द्रियदमन—ये मलेच्छोंके धर्म कहे गये हैं। इनका पुत्र मर्तोच्छल हुआ।

उसका पुत्र लोमक हुआ, अन्तमें उसने स्वर्ग प्राप्त किया। तदनन्तर उसका न्यूह नामका पुत्र हुआ, न्यूहके सीम, शम और भाव—ये तीन पुत्र हुए। न्यूह आत्मध्यान-परायण तथा विष्णुभक्त था। किसी समय उसने स्वयंसे विष्णुका दर्शन प्राप्त किया और उन्होंने न्यूहसे कहा—‘कस ! तुझे, आजसे सातवें दिन प्रलय होगा। हे भक्तश्रेष्ठ ! तुम सभी लोगोंने साथ नावपर चढ़कर अपने जीवनकी रक्षा करना। फिर तुम बहुत विख्यात व्यक्ति बन जाओगे। भगवान्की आज्ञा मानकर उसने एक सुदृढ़ नौकाका निर्माण कराया, जो तीन सौ हाथ लम्बी, पचास हाथ चौड़ी और तीस हाथ ऊँची थी और सभी जीवोंसे समन्वित थी। विष्णुके ध्यानमें तप्यता हुआ वह अपने वंशजोंके साथ उस नावपर चढ़ गया। इसी बीच इन्द्रदेवने चालीस दिनोंतक लगातार मेघोंसे मूसलधार कृति करायी। सम्पूर्ण भारत सागरोंके जलसे प्राणित हो गया। चारों सागर मिल गये, पृथ्वी दृष्ट गयी, पर हिमालय पर्वतका बदरी-सेर पानीसे ऊपर हो रहा, वह नहीं दृष्ट पाया। अद्भुत हीकर महाबादी मुनिगण, अपने शिष्योंके साथ वहीं स्थिर और सुरक्षित रहे। न्यूह भी अपनी नौकाके साथ वहीं आकर बच गये। संसारके शेष सभी प्राणी विनष्ट हो गये। उस समय मुनियोंने विष्णुमायाको स्तुति की।

**मुनियोंने कहा—**‘महाकालीको नमस्कार है, माता देवकीको नमस्कार है, विष्णुपत्नी महालक्ष्मीको, राधादेवीको और रेवती, पुण्यवती तथा स्वर्णवतीको नमस्कार है। कामाक्षी, माया और माताको नमस्कार है। महाबायुके प्रभावसे-मेघोंके भयंकर शब्दसे एवं उस जलकी धाराओंसे दारुण भय उत्पन्न हो गया है। भैरव ! तुम इस भयसे हम विकरोंकी रक्षा करो।’ देवीने प्रसन्न होकर जलकी कृदिके तुरंत ज्ञान कर

दिया। हिमालयकी प्रान्तवर्ती शिपिला नामकी भूमि एक वर्षमें जलके दूट जानेपर स्थलके रूपमें टीकने लगी। न्यूह अपने वंशजोंके साथ उस भूमिपर आकर निवास करने लगा।

**शौनकने कहा—**मुनीश्वर ! प्रलयके बाद इस समय जो कुछ वर्तमान है, उसे अपनी दिव्य दृष्टिके प्रभावसे जानकर बतलाये।

**सूतजी बोले—**शौनक ! न्यूह नामका पूर्वनिर्दिष्ट मलेच्छ राजा भगवान् विष्णुकी भक्तिमें लीन रहने लगा, इससे भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर उसके वंशकी कृति की। उसने वेद-शास्त्र और संस्कृतसे बहिर्भूत मलेच्छ-भाषाका विस्तार किया और करिबकी कृदिके लिये बाह्यी\* भाषाको अवशब्दवाली भाषा बनाया और उसने अपने तीन पुत्रों—सीम, शम तथा भावके नाम क्रमशः सिम, शम तथा याकृत रख दिये। याकृतके सात पुत्र हुए—जुम, माजुज, मादी, पुनान, नुवलोम, सक् तथा तीरास। इनके नामपर अलग-अलग देश प्रसिद्ध हुए। जुमके दस पुत्र हुए। उनके नामोंसे भी देश प्रसिद्ध हुए। सूतनकी अलग-अलग संतानें इलेश, तरलेश, किली और हूटा—इन चार नामोंसे प्रसिद्ध हुईं तथा उनके नामसे भी अलग-अलग देश बसे। न्यूहके द्वितीय पुत्र शम (शम) से चार पुत्र कहे गये हैं—कुश, मिश्र, कुज, कनअ। इनके नामपर भी देश प्रसिद्ध हैं। कुशके छः पुत्र हुए—सञ्ज, हकील, सर्वत, उरगम, सचनिका और महावली नियमज। इनकी भी कलन, सिना, रोराक, अकन, कपुन और रसनादेशक आदि संतानें हुईं। इतनी बातें ऋषियोंकी सुनाकर सूतजी समाधिस्थ हो गये।

बहुत वर्षोंके बाद उनकी सम्पत्ति खुली और वे कहने लगे—‘ऋषियो ! अब मैं न्यूहके ज्येष्ठ पुत्र राजा सिमके वंशजक वर्णन करता हूँ, मलेच्छ-राजा सिमने पाँच सौ वर्षोंतक भलीभाँति राज्य किया। अर्कन्सद उसका पुत्र था, जिसने चार सौ चौदह वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र सिंहल हुआ, उसने भी चार सौ सठ वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र इव हुआ, उसने पितृके समान ही राज्य किया। उसका पुत्र फलज हुआ, जिसने दो सौ चालीस वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र

\* बाह्यीको लिपिकेका मूल बना गया है। राजा न्यूहके इदम्मे लगे अक्षर लेकर भगवान् विष्णुने उसकी कृदिके प्रति किया, इसलिए उसने अपनी लिपिके उलटी पंक्तिसे दाहिनेसे बायीं ओर प्रवर्तित किया, जो उर्दू, अरबी, फारसी और हिब्रूकी लेखन-प्रक्रियामें देखा जाता है।

रक्त हुआ, उसने दो सौ सैतौस वर्षोंतक राज्य किया। उसके जूज नामक पुत्र हुआ, पिताके समान ही उसने राज्य किया। उसका पुत्र नहूर हुआ, उसने एक सौ साठ वर्षोंतक राज्य किया। हे राजन् ! अनेक शत्रुओंका भी उसने विनाश किया। नहूरका पुत्र ताहर हुआ, पिताके समान उसने राज्य किया। उसके अविग्रह, नहूर और हारन—ये तीन पुत्र हुए।

हे मुने ! इस प्रकार मैंने नाममात्रसे म्लेच्छ राजाओंके वंशोंका वर्णन किया। सरस्वतीके शापसे ये राजा म्लेच्छ-भाषा-भाषी हो गये और आचारमें अधम सिद्ध हुए। कलियुगमें इनकी संख्याकी विशेष वृद्धि हुई, किन्तु मैं संक्षेपमें ही इन वंशोंका वर्णन किया। संस्कृत भाषा भारतवर्षमें ही किसी तरह बची रही<sup>१</sup>। अन्य भागमें म्लेच्छ भाषा ही आनन्द देनेवाली हुई।

**सूतजी पुनः बोले—**भारगवतनय महामुने शौनक ! तीन सहस्र वर्ष कलियुगके भीत जानेपर अक्वली नगरीमें शङ्ख नामका एक राजा हुआ और म्लेच्छ देशमें शक्तीका राजा राज्य करता था। इनकी अभिवृद्धिके कारण सुनो। दो हजार वर्ष कलियुगके भीत जानेपर म्लेच्छवंशकी अधिक वृद्धि हुई और विश्वके अधिकांश भागकी भूमि म्लेच्छमयी हो गयी तथा

प्राँति-प्राँतिके मत चल पड़े। सरस्वतीका तट ब्रह्मावर्त-क्षेत्र ही शुद्ध बचा था। मूशा नामका व्यक्ति म्लेच्छोंका आचार्य और पूर्व-पुरुष था। उसने अपने मतकी सारे संसारमें फैलवायी। कलियुगके आनेसे भारतमें देवपूजा और वेदभाषा प्रायः नष्ट हो गयी। भारतमें भी धीरे-धीरे प्राकृत और म्लेच्छ-भाषाका प्रचार प्रारम्भ हुआ। व्रजभाषा और महाराष्ट्री—ये प्राकृतके मुख्य भेद हैं। कन्नौ और गुर्जरा (अंग्रेजी) म्लेच्छ भाषाके मुख्य भेद हैं। इन भाषाओंके और भी चार लाख मुख्य भेद हैं। प्राकृतमें कानौपकी पानी और बुभुक्षाकी भूख कहा जाता है। इसी तरहसे म्लेच्छ भाषामें पितृकी पैतर-फादर और भ्रातृकी कादर-बादर कहते हैं। इसी प्रकार आहुतिके आनु, जानुकी जैनु, रंजवारकी संदे, काल्गुनकी फरवरी और पशुकी मिकसटी कहते हैं। भारतमें अयोध्या, मधुरा, कशी आदि पवित्र स्थल पुरिषी हैं, उनमें भी अब हिंसा होने लग गयी है। डाकू, डाक, भिल्ल तथा मूर्ख व्यक्ति भी आर्षदेश—भारतवर्षमें धर गये हैं। म्लेच्छदेशमें म्लेच्छ-धर्मको माननेवाले सुखसे रहते हैं। यही कलियुगकी विशेषता है। भारत और इसके छोपेमें म्लेच्छोंका राज्य रहेगा, ऐसा समझकर हे मुनिश्रेष्ठ ! अहस्तांग शीर्षक भजन करो। (अध्याय ४-५)



**काश्यपके उपाध्याय, दीक्षित आदि दस पुत्रोंका नामोत्पत्ति, मगधके राजवंश और बौद्ध**

**राजाओंका तथा बौद्धान और परमार आदि राजवंशोंका वर्णन**

**शौनकजीने पूछा—**महाराज ! ब्रह्मावर्तमें<sup>२</sup> म्लेच्छजन कबों नहीं आ सके, इसका कारण बतायें।

**सूतजी बोले—**मुने ! सरस्वतीके प्रभावसे वे सब कहीं नहीं आ सके। यहाँ काश्यप नामके एक ब्राह्मण रहते थे। वे कलिके हजार वर्ष बीतनेपर देवताओंकी आज्ञासे स्वर्गलोकसे ब्रह्मावर्तमें आये। उनकी धर्म-पत्नीका नाम था अर्षावती। उससे काश्यपके दस पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम इस प्रकार

हैं—उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शृङ्ग, मिश्र, अमिशोत्री, द्विकेटी, त्रिकेटी, पाण्ड्य तथा चतुर्वेदी। ये अपने नामके अनुकूल गुणवाले थे। उनके पिता काश्यप, जो सभी ज्ञानोंसे समन्वित और सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञाता थे, उनके बीच रहकर उन्हें ज्ञान देते रहते थे। काश्यपने काश्मीरमें जाकर जगज्जननी सरस्वतीको रक्तपुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य तथा पुष्पजलके द्वारा संतुष्ट किया। देखीकी स्तुति करते हुए

१-पहले संस्कृतका सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार था। कालीयुगमें अब भी इसका पूरा प्रचार है तथा सुमात्र, जावा, जापान आदिमें कुछ अंशमें इसका प्रचार है। चीनमें, इन्दोनेशिया, कम्बोडिया और वीतमें भी इसका बहुत प्रचार है। चीनमें संस्कृतकी बहुत उपेक्षा हुई, पर चीन, मरा और तिबेटके सिक्किमकी सभ्यतासे अब पुनः इसका साथी विश्वविद्यालयोंमें अध्ययन होने लग रहा है। यों कहना चाहिये कि भारतमें ही इसकी उपेक्षा हो रही है। पश्चात्पक्षी वैज्ञानिक उपनिषद् संस्कृतका ही मुख्य स्रोतमान रहा है। क्लेगकी रोष-भाषा संस्कृतसे बहुत मिलती थी। सभी सभ्य भाषाओंके व्याकरणोपर संस्कृतके व्याकरणका बहुत प्रभाव है। मैक्समूलरनियम तथा राजटनने अपने-अपने कोशोंमें इसके अनेक अद्भुत उदाहरण उपलब्ध किये हैं।

२-ब्रह्मावर्त मुख्यतःसे गङ्गाका उत्तरी भाग है, जो बिजौरसे लेकर प्रयागतक और उत्तरमें बँसगावतक फैला है।

काश्यपने कहा—‘मातः ! शंकरप्रिये ! मुझपर आपकी करुणा क्यों नहीं होती ? देवि ! आप सारे संसारकी माता हैं, फिर मुझे जगत्से बाहर क्यों मानती हैं ? देवि ! देवताओंके लिये धर्मश्रेष्ठियोंको आप क्यों नहीं मारती हैं ? म्लेच्छोंको मोहित करीजिये और उत्तम संस्कृत भाषाका विस्तार करीजिये । अम्ब ! आप अनेक रूपोंको धारण करनेवाली हैं, हुंकारस्वरूपा हैं, आपने भूभ्रूलोचनको मारा है । दुर्गारूपमें आपने भयंकर दैत्योंको मारकर जगत्में सुख प्रदान किया है । मातः ! आप दम्भ, मोह तथा भयंकर गर्वका नाशकर सुख प्रदान करें और दुष्टोंका नाश करें तथा संसारमें ज्ञान प्रदान करें ।’

इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर सरस्वतीदेवीने उन काश्यप मुनिके मनमें निवासकर उन्हें ज्ञान प्रदान किया । वे मुनि मित्र देशमें चले गये और उन्होंने वहाँ म्लेच्छोंको मोहित कर उन्हें द्विजम्बा बना लिया । सरस्वतीके अनुग्रहसे उन लोगोके साथ सदा मुनिवृत्तिमें तत्पर मुनिश्रेष्ठ काश्यपने आर्यदेशमें निवास किया । उन आर्योंकी देखीके वरदानसे बहुत बृद्धि हुई । काश्यप मुनिका राज्यकाल एक सौ बीस वर्षतक रहा । राज्यपुत्र नामक देशमें आठ हजार शुद्ध हुए । उनके राजा आर्य पुरु हुए । उनसे ही मागधकी उत्पत्ति हुई । मागध नामके पुत्रका अभिषेककर पुरु चले गये । यह सुनकर भृगुश्रेष्ठ शौनक आदि ऋषि प्रसन्न हो गये । फिर वे पौराणिक सूक्तोंके नमस्कार कर विष्णुके ध्यानमें तत्पर हो गये । चार वर्षतक ध्यानमें रहकर वे उठे और नित्य-नैमित्तिक क्रियाओंको सम्पन्न कर पुनः सूक्तोंके पास गये और बोले—‘लोमहर्षणजी ! अब आप मागध राजाओंका वर्णन करें । किन्तु मागधोंने कलियुगमें राज्य किया, हे व्यासशिष्य ! आप हमें यह बतायें ।’

**सूतजीने कहा—**मागध-प्रदेशमें काश्यपपुत्र मागधने पितासे प्राप्त राज्यका भार वहन किया । उन्होंने आर्यदेशको अलग कर दिया । पाञ्चाल (पंजाब) से पूर्वका देश मगध<sup>१</sup> देश कहा जाता है । मगधको आग्नेय दिशामें कलिंग

(उड़ीसा), दक्षिणमें अवन्तिदेश, वैशाल्यमें आनर्त (गुजरात), पश्चिममें सिन्धुदेश, वायव्य दिशामें कैकय देश, उत्तरमें मद्रदेश और ईशानमें कुल्लिन्द देश है । इस प्रकार आर्यदेशका उन्होंने भेद किया । इस देशका नामकरण महात्मा मागधके पुत्र<sup>२</sup> किया था । अनन्तर राजने यज्ञके द्वारा बलरामजीको प्रसन्न किया, इसके फलस्वरूप बलभद्रके अंशसे शिशुनागका जन्म हुआ, उसने सौ वर्षतक राज्य किया । उसे काकत्वर्मा नामका पुत्र हुआ, उसने नब्बे वर्षतक राज्य किया । उसे क्षेमधर्मा नामका पुत्र हुआ, उसने अस्सी वर्ष राज्य किया । उसका पुत्र क्षेत्रज्ञ हुआ, उसने सत्तर वर्षतक राज्य किया । उसके वेदमिश्र नामक पुत्र हुआ, उसने साठ वर्षतक शासन किया । उसे अजातरिपु (अजातशत्रु) नामक पुत्र हुआ, उसने पचास वर्षतक राज्य किया । उसका पुत्र दर्भक हुआ, उसने चालीस वर्षतक राज्य किया । उसे उदयाश्व<sup>३</sup> नामका पुत्र हुआ, उसने तीस वर्षतक शासन किया । उसका पुत्र नन्दवर्धन हुआ, उसने बीस वर्षतक शासन किया । नन्दवर्धनका पुत्र नन्द हुआ, उसने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया । नन्दके प्रनन्द हुआ, जिसने दस वर्ष राज्य किया । उससे परानन्द हुआ, उसने अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक ही राज्य किया । उससे समानन्द हुआ, उसने बीस वर्ष राज्य किया । उससे प्रियातनन्द हुआ, उसने भी पिताके समान वर्षोंतक राज्य किया । उसका पुत्र देवानन्द हुआ, उसने भी पिताके समान राज्य किया । देवानन्दका पुत्र यशोधन हुआ, उसने अपने पिताके आधे वर्षोंतक (दस वर्ष) राज्य किया । उसका पुत्र धौर्वाणन्द और उसका पुत्र महानन्द हुआ । दोनोंने अपने-अपने पिताके समान वर्षोंतक राज्य किया ।

इसी समय कलिंगे हरिको स्मरण किया । अनन्तर प्रसिद्ध गौतम नामक देवताकी काश्यपसे उत्पत्ति हुई । उसमें बौद्धधर्मको संस्कृतकर षट्ठन नगर (कपिलवस्तु) में प्रचार किया और दस वर्षतक राज्य किया<sup>४</sup> । उससे शाक्यमुनिका जन्म हुआ, उसने भी बीस वर्षतक राज्य किया । उससे

१-यहाँसे लेकर आगे उदयाश्वतक मगधके राजवंशका वर्णन है, जिसकी राजधानी राजगृह थी ।

२-इसीने राजगृहसे हटाकर राजधानी गङ्गाके किनारे बसायी और उसका नाम कलिंगपुत्र या पटना पड़ा । इसके आगेके राजागण पटनासे ही भारतका शासन करते थे ।

३-यहाँसे आगे अब लिच्छवि राजवंशका वर्णन है, जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी ।

शुद्धोदन नामक पुत्र हुआ, उसने तीस वर्षतक शासन किया। उससे शक्यसिंहका जन्म हुआ। कलियुगके दो हजार वर्ष व्यतीत हो जानेके बाद शताब्दिमें उसने शासन किया। कलिके प्रथम चरणमें वेदमार्गको उसने विनष्ट कर दिया और साठ वर्षतक उसने राज्य किया। उस समय प्रायः सभी बौद्ध हो गये। विष्णुस्वरूप उसके राजा होनेपर जैसा राजा था, वैसी ही प्रजा हो गयी, क्योंकि विष्णुकी शक्तिके अनुसार ही जगत्में धर्मकी प्रवृत्ति होती है। जो मनुष्य मायापति हरिकी शासनमें जाते हैं, वे उनकी कृपाके प्रभावसे मोक्षके मार्ग ही जाते हैं। शक्यसिंहका पुत्र बुद्धसिंह हुआ, उसने तीस वर्ष राज्य किया। उसका पुत्र (शिष्य) चन्द्रगुप्त<sup>१</sup> हुआ, जिसने पारसीदेशके राजा सुलूष (सेल्यूकस) की पुत्रीके साथ विवाह कर यवन-सम्बन्धी बौद्धधर्मका प्रचार किया। उसने साठ वर्षतक शासन

किया। चन्द्रगुप्तका पुत्र बिन्दुसार (बिम्बसार) हुआ। उसने भी पिताके समान राज्य किया। उसका पुत्र अशोक हुआ। उसी समय कान्यकुब्ज देशका एक ब्राह्मण आबू पर्वतपर चला गया और वहाँ उसने विधिपूर्वक ब्रह्महोत्र सम्पन्न किया। वेदमन्त्रोंके प्रभावसे यज्ञकुण्डसे चार क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई—प्रमर—परमार (सामवेदी), यपहानि—चौहान (कृष्णयजुर्वेदी) त्रिवेदी—गहरवार (शुक्ल यजुर्वेदी) और परिहारक (अथर्ववेदी) क्षत्रिय थे। वे सब ऐरावत-कुलमें उत्पन्न राजेश्वर आशुद होते थे। इन लोगोंने अशोकके वंशजोंको अपने अधीन कर भारतवर्षके सभी बौद्धोंको नष्ट कर दिया।

अवन्तमें प्रमर—परमार राजा हुआ। उसने चार योजन विस्तृत अम्बावती नामक पुरीमें स्थित होकर सुसज्जित जीवन व्यतीत किया। (अध्याय ६)

### महाराज विक्रमादित्यके चरित्रका उपक्रम

**सूतजी बोले—**शौनक ! विष्णुष्ट पर्वतके अक्ष-पासके क्षेत्र (प्रायः आजके पूरे बन्देलखण्ड एवं खपेलखण्ड)में परिहार नामका एक राजा हुआ। उसने रमणीय कलियुग नगरमें रहकर अपने पराक्रमसे बौद्धोंको परास्त कर पूरी प्रतिष्ठा प्राप्त की। राजपूतानेके क्षेत्र (दिल्ली नगर)में यपहानि—चौहान नामक राजा हुआ। उसने अति सुन्दर अजमेर नगरमें रहकर सुसज्जित राज्य किया। उसके राज्यमें चारों वर्ग स्थित थे। आनर्त (गुजरात) देशमें शुक्ल नामक राजा हुआ, उसने झारकाको राजधानी बनाया।

**शौनकजीने कहा—**हे महाभाग ! अब आप अग्रिमवेशी राजाओंका वर्णन करें।

**सूतजी बोले—**ब्राह्मण ! इस समय मैं योगनिद्राके वशमें हो गया हूँ। अब आपलोग भी भगवान्का ध्यान करें। अब मैं थोड़ा विश्राम करूँगा। यह सुनकर मुनिगण भगवान् विष्णुके ध्यानमें लीन हो गये। लम्बे अन्तरालके बाद ध्यानमें उठकर सूतजी पुनः बोले—महाशुने ! कलियुगके सौतीस सौ दस वर्ष व्यतीत होनेपर प्रमर नामक राजाने राज्य करना प्रारम्भ

किया। उन्हें महामद (मुहम्मद) नामक पुत्र हुआ, जिसने पिताके शासन-कालके आधे समयतक राज्य किया। उसे देवाधि नामक पुत्र हुआ, उसने भी पिताके ही तुल्य वर्षतक राज्य किया। उसे देवदूत नामक पुत्र हुआ, उसके गन्धर्वसेन नामक पुत्र हुआ, जिसने पचास वर्षतक राज्य किया। वह अपने पुत्र शुक्लका अभिषेक कर वन चला गया। शङ्खने तीस वर्षतक राज्यभार सँभाला। उसी समय देवराज इन्द्रने वीरमती नामक एक देवगङ्गाको पृथ्वीपर भेजा। शङ्खने वीरमतीसे गन्धर्वसेन नामक पुत्रत्वकी प्राप्त किया। पुत्रके जन्म-समयमें अक्षराशमे पुष्पवृष्टि हुई और देवताओंने द्रुधी बजायी। सुखप्रद शीतल-मन्द वायु बहने लगी। इसी समय अपने शिष्योंसहित शिवदृष्टि नामके एक ब्राह्मण तपस्याके लिये वनमें गये और शिवकी आराधनासे वे शिवस्वरूप हो गये।

तीन हजार वर्ष पूर्ण होनेपर जब कलियुगका आगमन हुआ, तब इसके विनाश और आर्यधर्मकी अभिवृद्धिके लिये वे ही शिवदृष्टि गृहस्थकी निवासभूमि कैलाससे भगवान् शंकरकी आज्ञा पकर पृथ्वीपर विक्रमादित्य नामसे प्रसिद्ध

१-अब यहाँमें फिर पाटलिपुत्रके राजवंशका वर्णन प्रारम्भ हुआ और यह चन्द्रगुप्त ही मौर्यवंशका पहला राजा था। जिसने भारतके साथ अन्य देशोंपर अधिकार किया था, जिन्हें बादमें अशोकने बौद्ध देश बना डाला। उन दिनों वे सभी देश भारतके ही उपनिवेश थे। जिसका यहाँ आगे वर्णन है। चन्द्रगुप्तने ही सेल्यूकसकी पुत्रीसे शादी की थी।



हुए। ये अपने माता-पिताको आनन्द देनेवाले थे। ये बचपनसे ही महान् बुद्धिमान् थे। बुद्धिविशारद विक्रमादित्य पाँच वर्षकी ही बाल्यावस्थामें तप करने वनमें चले गये। बाछ वषाँतक प्रयत्नपूर्वक तपस्स कर वे ऐश्वर्य-सम्पन्न हो गये। उन्होंने अम्बावती नामक दिव्य नगरमें आकर बत्तीस मूर्तियोंमें समन्वित, भगवान् शिवद्वारा अभिरक्षित रमणीय और दिव्य सिंहासनको सुशोभित किया। भगवती पार्वतीके द्वारा प्रेषित एक वैताल उनकी रक्षामें सदा तत्पर रहता था। उस वीर राजाने महाकालेश्वरमें जाकर देवाधिदेव महादेवकी पूजा की और अनेक व्युहोंसे परिपूर्ण धर्म-सभाकर निर्माण किया।

जिसमें विविध मणियोंसे विभूषित अनेक धातुओंके स्तम्भ थे। शैलकजी ! उसने अनेक लताओंसे पूर्ण, पुष्पांजित स्थानपर अपने दिव्य सिंहासनको स्थापित किया। उसने वेद-वेदाङ्ग-पारंगत मुख्य ब्राह्मणोंको बुलाकर विधिवत् उनकी पूजाकर उनसे अनेक धर्म-गाथाएँ सुनीं। इसी समय वैताल नामक देवता ब्राह्मणका रूप धारण कर 'आपकी जय हो', इस प्रकार कहता हुआ वहाँ आया और उनका अभिवादन कर आसनपर बैठ गया। उस वैतालने राजासे कहा— 'राजन् ! यदि आपको सुननेकी इच्छा हो तो मैं आपको इतिहाससे परिपूर्ण एक रोचक अवलम्बन सुनाता हूँ<sup>१</sup>, इसे आप सुनें। (अध्याय ७)

## ॥ प्रतिसर्गपर्व, प्रथम खण्ड सम्पूर्ण ॥



१-भारतवर्षमें विक्रमादित्य अन्यन्त प्रसिद्ध राजा, परमेश्वरी और सर्वज्ञ-सत्त्ववाली राजा हुए हैं। स्कन्द आदि पुराणों, बृहत्कथा और द्वाविंशतपुराणिका, विष्णुसहस्रनाम्नी, कथामरि-सागर, पुरुष-परोक्ष आदि ग्रन्थोंमें इनका चरित्र वर्णित है। अब इस केंद्रिकके इतिहासके दूसरे भागमें इनका चरित्र आया है। येने विष्णु और विष्णुवन्दन आदिने अनेक विक्रमादित्योंकी राजा की है, पर ये महाराज विक्रमादित्य उल्लिखितोंके राजा थे और कर्कटदास, अमरगिरि, वसन्तमूर्ति, वैद्यराज पद्मम्बी, घटकर्ण आदि कवयों इनकी ही राजसभाको दिव्य विद्वद्भिर्भूतिवाँ थी। विष्णुकी आगे पीछे कोई डरमा नहीं है। राजा भोजमें लेकर बादशाह अकबरलक सभोंने अपनी सभाको वैसे ही नगरावोंमें आलेकृत करनेका प्रयत्न किया था।

## प्रतिसर्गपर्व

(द्वितीय खण्ड)

## स्वामी एवं सेवककी परस्पर भक्तिका आदर्श \*

(राजा रूपसेन तथा वीरवरकी कथा)

**सूतजी बोले—**महामुने ! एक बार रुद्रकिंकर वैतालने सर्वप्रथम भगवान् शंकरका ध्यान किया और फिर महाराज विक्रमादित्यसे इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया—

राजन् ! अब आप एक मनोहर कथा सुनें। प्राचीन कालमें सर्वसमृद्धिपूर्ण वर्षमान नामक नगरमें रूपसेन नामका एक धर्मात्मा राजा रहता था। उसकी पतिव्रता रानीका नाम विद्वन्माला था। एक दिन राजाके दरबारमें वीरवर नामका एक क्षत्रिय गुणी व्यक्ति अपनी पत्नी, कन्या एवं पुत्रके साथ वृत्तिके लिये उपस्थित हुआ। राजाने उसकी विनयपूर्ण बातोंको सुनकर प्रतिदिन एक सहस्र स्वर्णमुद्रा वेतन निश्चित कर महलके सिंहद्वारपर रक्षकके रूपमें उसकी नियुक्ति कर ली। कुछ दिन बाद राजाने अपने गुप्तचरोंसे जब उसकी अधिक स्थितिका पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि वह अपना अधिकांश द्रव्य यज्ञ, तीर्थ, शिव तथा विष्णुके मन्दिरोंमें अग्राधनार्थ वार्यमि तथा साधु, ब्राह्मण एवं अनाथोंमें वितरित कर अत्यल्प शेषसे अपने परिवर्जनके पालन करता है। इससे प्रसन्न होकर राजाने उसकी स्थायी नियुक्ति कर दी।

एक दिन जब आधी रातमें घूमलाधार वृष्टि, बादलोंकी गरज, बिजलीकी चमक एवं इंद्रावातसे रात्रिकी विभीषिका सौमा पार कर रही थी, उसी समय श्मशानसे किसी नारीकी करुणक्रन्दन-ध्वनि राजाके कानोंमें पड़ी। राजाने सिंहद्वारपर उपस्थित वीरवरसे इस रुदन-ध्वनिका पता लगानेके लिये कहा। जब वीरवर तलवार लेकर चला, तब राजा भी उसके भयकी आशंका तथा उसके सहयोगके लिये एक तलवार लेकर गुप्तरूपसे स्वयं उसके पीछे लग गया। वीरवरने श्मशानमें पहुँचकर एक स्त्रीको वहाँ रोते देखा और उससे जब इसका कारण पूछा, तब उसने कहा कि 'मैं इस रात्र्यकी

लक्ष्मी—राष्ट्रलक्ष्मी हूँ—इसी मासके अन्तमें राजा रूपसेनकी मृत्यु हो जायगी। राजाकी मृत्यु हो जानेपर मैं अनाथ होकर कहाँ जाऊँगी'—इसी चिन्तासे मैं रो रही हूँ।

स्वामिभक्त वीरवरने राजाके दीर्घायु होनेका उससे उपाय पूछा। इसपर वह देवी बोली—'यदि तুম अपने पुत्रकी बलि चण्डिकादेवीके सामने दे सको तो राजाके आयुकी रक्षा हो सकती है।' फिर क्या था, वीरवर उलटे पाँव घर लौट आया और अपनी पत्नी, पुत्र तथा लड़कीबड़े जगाकर उनकी सम्मति लेकर उनके साथ चण्डिकाके मन्दिरमें जा पहुँचा। राजा भी गुप्तरूपसे उसके पीछे-पीछे सर्वत्र चलता रहा। वीरवरने देवीकी प्रार्थना कर अपने स्वामीकी आयु बढ़ानेके लिये अपने पुत्रकी बलि चड़ा दी। भाईका कटा सिर देखकर दुःखसे उसकी बहिनका हृदय विदीर्ण हो गया—वह मर गयी और इसी शोकमें उसकी माता भी चल बसी। वीरवर इन तीनोंका दाह-संस्कार कर स्वयं भी राजाकी आयुकी वृद्धिके लिये बलि चढ़ गया।

राजा छिपकर यह सब देख रहा था। उसने देवीकी प्रार्थना कर अपने जीवनको व्यर्थ बताते हुए अपना सिर कटनेके लिये ज्यों ही तलवार खींची, त्यों ही देवीने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—'राजन् ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारी आयु तो सुरक्षित हो ही गयी, अब तुम अपनी इच्छानुसार कर माँग लो।' राजाने देवीसे परिवर्जनोपहित वीरवरको जिलानेकी प्रार्थना की। 'तथास्तु' कहकर देवी अन्तर्धान हो गयी। राजा प्रसन्न होकर चुपके-से वहाँसे चलाकर अपने महलमें आकर लेट गया। इधर वीरवर भी चञ्चित होता हुआ और देवीकी कृपा मानता हुआ अपने पुनर्जीवित परिवारको घरपर छोड़कर राजप्रासादके सिंहद्वारपर

\* भारतवर्षमें प्राचीन कालसे 'वैताल-पञ्चविराटिका' या 'वैतालपञ्चवर्ष'की कथाएँ जो विक्रम-वैताल-संवादके रूपमें लोकमें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, उनका मूल भक्तिग्रन्थगत हो प्रतीत होता है। ये कथाएँ श्री-सुशोभिके अमरवर्णित एवं अनैतिक आकर्षणसे सम्मिलित होती हैं, भी लोक-व्यवहारकी दृष्टिसे शिक्षाप्रद भी हैं। अतः उनमेंसे कुछ कथाएँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

आकर खड़ा हो गया।

अनन्तर राजाने वीरवारको बुलाकर रातमें रोनेवाली नारीके रुदनका कारण पूछा, तो वीरवारने कहा—‘राजन् ! वह तो कोई चुड़ैल थी, मुझे देखते ही वह अदृश्य हो गयी। चिन्ताकी कोई बात नहीं है।’ वीरवारकी स्वामिभक्ति और धीरताको देखकर राजा रूपसेन अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने अपनी कन्याका विवाह वीरवारके पुत्रसे कर दिया तथा उसे अपना मित्र बना लिया। इतनी कथा कहकर वैताल शान्त हो गया। वैतालने राजा विक्रमसे फिर पूछा—‘राजन् ! इस कथामें परस्पर सबने एक दूसरेके लिये खेहवश अपने प्राणोंका उत्सर्ग किया, पर सबसे अधिक खेह और त्याग किसका था ? यह आप बताइये।’

### ब्राह्मण-पुत्री महादेवीकी कथा

वैतालने कहा—राजन् ! उज्जयिनी नामकी नगरमें चन्द्रवंशमें उत्पन्न महाबल नामसे विख्यात अत्यन्त बुद्धिमान् तथा वैदादि-शास्त्रोंका ज्ञाता एक राजा निवास करता था। उसका स्वामिभक्त हरिदास नामका एक दूत था। हरिदासकी पत्नी भक्तिमाला साधु पुरुषोंकी सेवामें तत्पर रहती थी। भक्तिमालाको सभी विद्याओंमें परागत कमलके समान नेत्रवाली अत्यन्त रूपवती एक कन्या उत्पन्न हुई, उसका नाम था महादेवी। एक दिन महादेवीने अपने पिता हरिदाससे कहा—‘तात ! अब मुझे ऐसे योग्य पुरुषको दीजियेगा, जो गुणोंमें मुझसे भी अधिक हो, अन्य किसीको नहीं।’ अपनी पुत्रीकी बात सुनकर हरिदास बड़ा प्रसन्न हुआ और ‘ऐसा ही होगा’—कहकर हरिदास राजसभामें आया और उसने राजाका अभिनन्दन किया। तदनन्तर राजाने कहा—‘हरिदास ! तुम मेरे ससुर तैलंग देशके राजा हरिश्चन्द्रके पास जाओ और उनका कुशल-समाचार जानकर शीघ्र ही मुझे बताओ।’ हरिदास आज्ञा पाकर राजा हरिश्चन्द्रके पास गया और उसने उन्हें अपने स्वामी महाबलका कुशल-समाचार बतलाया। स्वरा कुशल-समाचार जानकर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने हरिदाससे पूछा—‘प्रणो ! आप विद्वान् हैं, मुझे यह बताये कि कलिक आगमन हो गया, यह कैसे मालूम होगा ?’

हरिदासने कहा—राजन् ! जब वेदोंकी मर्यादाई नष्ट

राजा बोले—यद्यपि सभीने अपने-अपने कर्तव्यका अद्भुत आदर्श उपस्थित किया, फिर भी राजाका स्नेह ही सबसे अधिक मान्य प्रतीत होता है, क्योंकि वीरवार राजसेवक था, उसे अपनी सेवाके प्रतिफलमें स्वर्णमुद्राएँ मिलती थीं, अतः उसने स्वर्णप्राप्तिकी दृष्टिसे अपना उत्सर्ग किया, वीरवारकी पत्नी पतिव्रता थी, धर्मसेही थी, इसलिये उसने अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। बहिनका अपने भाईमें प्रेम था, पुत्रका अपने पितामें स्नेह था, यह तो स्वभाववश होता ही है, किन्तु राजा रूपसेनने महान् खेहका आदर्श उपस्थित किया, जो कि वे एक सामान्य सेवकके लिये भी अपना प्राणोत्सर्ग करनेको उद्यत हो गये, अतः उनकी स्नेहमय त्याग महान् त्याग है।

हो जायें और वेदोंक धर्म विपरीत दिखलायी देने लगे, तब कलिक आगमन समझना चाहिये, साध ही कलिके प्रिय स्नेहगण कहे गये हैं। अधर्म ही जिसका मित्र है, ऐसे कलिके द्वारा सभी देवताओंको अपमानित किया गया हो, तब कलिक आगमन समझना चाहिये। राजन् ! पापकी स्त्रीका नाम है भृश (असत्य), उसका पुत्र दुःख कहा गया है। दुःखकी स्त्री है दुर्गति, जो कलियुगमें घर-घरमें व्याप्त रहेगी। सभी राजा क्रोधके वशीभूत हो जायेंगे तथा सभी ब्राह्मण क्रमके दास हो जायेंगे। धनिक-वर्ग लोभके वशीभूत हो जायेंगे तथा शूद्रजन महत्त्वके प्राप्त करेंगे। स्त्रियाँ लज्जासे रहित होंगी और सेवक स्वामीके ही प्राण हरण करनेवाले होंगे। पृथ्वी निष्फल (सत्त्वशून्य) हो जायगी। ऐसी स्थितिमें समझना चाहिये कि कलिक आगमन हो गया है, किन्तु कलियुगमें जो मनुष्य भगवान् श्रीहरिकी शरणमें जायेंगे, वे ही आनन्दसे रह पायेंगे, अन्य कोई नहीं।

यह सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे बहुत-सी दक्षिणा देकर बिदा किया तथा राजा महाबलको सम्पूर्ण समाचार देकर अपने पहलमें चला आया और वह विप्र भी अपने शिविरमें आ गया। उसी समय एक बुद्धिकोविद नामक बुद्धिमान् ब्राह्मण वहाँ आया और उसने अपनी विशिष्ट विद्याओंका हरिदासके सामने प्रदर्शन किया— उस ब्राह्मणने मन्त्र जपकर देवीकी आराधना की और एक

महान् आश्चर्यजनक शीघ्रग नामक विमान प्रकटकर हरिदासको दिखलाया। उसकी विद्याओंसे मुग्ध होकर हरिदासने उसे अपनी कन्याके योग्य समझकर उसका वरण कर लिया।

हरिदासका पुत्र था मुकुन्द। वह विद्याध्ययनके लिये अपने गुरुके यहाँ गया था, जब वह अपने गुरुसे विद्याओंको पढ़ चुका तो गुरुदक्षिणाके लिये प्रार्थना करने लगा। गुरुने उससे कहा—‘अरे मुकुन्द! सुनो, तुम गुरुदक्षिणाके रूपमें अपनी बहिन महादेवी मेरे दैवज्ञ पुत्र भीमान्को समर्पित कर दो।’ ‘ठीक है’—ऐसा कहकर मुकुन्द अपने घर आ गया।

इधर हरिदासकी पत्नी भक्तिमालाने द्रौणशिष्य वामन नामक एक विप्रका जो शब्दवेधी बाण चलानेमें कुशल एवं शस्त्रविद्याका ज्ञाता था, उसकी विद्यासे प्रभावित होकर अपनी कन्याके लिये दक्षिणा, ताम्बूल आदिके द्वारा पुजित कर उसका वरण कर लिया।

समय आनेपर पिता, पुत्र तथा माताद्वारा वरण किये गये तीनों गुणवान् ब्राह्मण महादेवी नामवाली उस कन्याको प्राप्त करनेके लिये हरिदासके यहाँ आ पहुँचे। इसी बीच एक राक्षस अपनी मायासे उस कन्या महादेवीका हरण कर विन्ध्यपर्वतपर चला गया। यह समाचार जानकर ये तीनों कन्याधर्मी दुःखी होकर येने लगे। जब उनमेंसे गुरुपुत्र भीमान् नामक दैवज्ञ विद्वान् ब्राह्मणसे कन्याका पता पूछा गया तो उसने बतलाया कि वह कन्या विन्ध्यपर्वतपर राक्षसद्वारा हरण कर ले जायी गयी है। तदनन्तर उस कन्याको प्राप्तिके लिये द्वितीय

दुर्दिक्षोर्विद नामक ब्राह्मणने अपने द्वारा बनाये गये अक्षराशब्दों विमानपर उन दोनों विप्रोंको बैठाकर विन्ध्यपर्वतपर पहुँचाया। तब शब्दवेधी बाणोंको चलानेमें निपुण वामन नामक तीसरे ब्राह्मणने धनुषपर बाणका संधान किया और बाणसे उस राक्षसको मार डाला। वे तीनों कन्या महादेवीको प्राप्त कर उसी विमानमें बैठाकर उज्जयिनीमें वापस लौट आये।

वहाँ पहुँचकर तीनों ब्राह्मण अपने-अपने कार्यका महत्त्व बताते हुए कन्याके वास्तविक अधिकारी होनेके लिये परस्परमें विवाद करने लगे, यह निर्णय नहीं हो सका कि कन्याका विवाह किसके साथ हो।

वैतालने राजा विक्रमसे पूछा—‘राजन्! आप बतलाये कि इन तीनोंमें विवाहका अर्थात् कन्या प्राप्त करनेका अधिकारी कौन है?’

राजा विक्रमादित्यने कहा—‘जिस विद्वान् गुरुके पुत्र ज्योतिषी ब्राह्मणने कन्याका यह पता बताया कि वह राक्षसद्वारा चुराकर विन्ध्यपर्वतपर पहुँचायी गयी है, वह ब्राह्मण कन्याके लिये पितृतुल्य है और जिस दूसरे ब्राह्मण दुर्दिक्षोर्विदने अपने मन्त्रबलद्वारा उत्पन्न विमानसे महादेवी नामकी कन्याको यहाँ पहुँचाया, वह भाईके समान है, किन्तु जिस वामन नामक ब्राह्मण युवकने शब्दवेधी बाणोंसे राक्षसके साथ युद्ध कर उसे मार गिराया, वही और ब्राह्मण इस कन्याको प्राप्त करनेका योग्य अधिकारी है।’



### समान-वर्णमें विवाह-सम्बन्धका औचित्य (त्रिलोकसुन्दरीकी कथा)

वैताल पुनः बोला—‘राजन्! अब मैं एक दूसरी कथा सुनाता हूँ। चम्पापुरी (भागलपुर) नामकी एक प्रसिद्ध नगरी थी, वहाँ चम्पकेश नामका एक बलवान् और धनुर्धरी राजा रहता था। उसकी रानीका नाम था सुलोचना। उसके त्रिलोक-सुन्दरी नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका मुख चन्द्रमाके समान, भौंहें धनुषकी प्रत्यङ्गके समान, नेत्र मृगके समान तथा शब्द कोकिलके समान थे। राजन्! उस बालासे देवता भी विवाह करना चाहते थे, अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या? उसके स्वयंवरमें लोकविश्रुत सभी राजा तथा देवराज इन्द्र,

वरुण, कुम्भर, धर्मराज और यम आदि देवता भी मनुष्यका शरीर धारण करके आये। उनमेंसे इन्द्रदत्ते कन्याके पिता राजा चम्पकसे कहा—‘राजन्! मैं सभी राक्षसोंमें कुशल हूँ, रूपवान् एवं मन्त्रेरम हूँ, अतः आप अपनी पुत्रीको मुझे समर्पित कर दें।’ दूसरे धर्मदत्तेने कहा—‘राजन्! मैं धनुर्विद्यामें कुशल एवं मन्त्रेरम हूँ, आप अपनी कन्या मुझे समर्पित करें।’ तीसरेने कहा—‘राजन्! मेरा नाम धनपाल है, मैं सभी प्राणियोंकी भाषा जानता हूँ, मैं गुणवान् और रूपवान् भी हूँ। आप अपनी कन्या मुझे समर्पित कर सुखी रहिये।’



चौधेने कहा—‘राजन् ! मैं सर्वकाल-विराजद् हुँ, प्रतिदिन अपने इहोगमसे पाँच राज प्राप्त करता हूँ, उनमेंसे पुण्यके लिये एक राज, होमके लिये द्वितीय राज, अश्वमेधके लिये तृतीय राज, पत्नीके लिये चतुर्थ राज तथा शेष अन्तिम राज भोजनके लिये व्यय करता हूँ। अतः आप अपनी कन्या मुझे सर्वकाल-विराजदको प्रदान करें।’

यह सुनकर राजा आश्चर्यसे यह गया कि अपनी कन्या मैं कैसे दूँ। वह कुछ विश्वास नहीं कर पाया। अन्तमें उसने सारी बातें कन्याको बतायीं और उससे पूछा कि तुम्हें इनमेंसे कौन-सा कर अभीष्ट है, पर कन्या किलोकसुन्दरीने लज्जितवश कुछ भी उत्तर नहीं दिया।



### विषयी राजा राज्यके विनाशका कारण बनता है (राजा धर्मवत्सल्य और मन्त्री सत्यप्रकाशकी कथा)

**वैतालने पुनः राजासे कहा—**राजन् ! प्राचीन कालमें रमणीय पुण्यपुर (पूजा) नगरमें धर्मवत्सल्य नामका एक राजा राज्य करता था। उसका मन्त्री सत्यप्रकाश था। मन्त्रीकी स्त्रीका नाम था लक्ष्मी। एक बार राजा धर्मवत्सल्यने मन्त्रीसे कहा—‘मित्रिण ! अश्वमेधके कितने श्रेष्ठ है ? यह मुझे बताओ।’ उसने कहा—‘महाराज ! अश्वमेध पार प्रशस्त है। (१) ब्राह्मणधर्मका अश्वमेध जो ब्रह्मचर्य है, वह श्रेष्ठ है। (२) गृहस्थधर्मका विषयानन्द मध्यम है। (३) वनप्रस्थका धर्मानन्द सामान्य है और (४) संन्यासमें जो विराजानन्दकी प्राप्ति है, वह अश्वमेध उससे उत्तम है। राजन् ! इनमें गृहस्थाश्रमका विषयानन्द स्त्री-प्राप्त्य है, क्योंकि गृहस्थाश्रममें स्त्रीके बिना सुख नहीं मिलता।’

यह सुनकर राजा अपने अनुकूल धर्मरायणा पत्नी प्राप्त करनेके लिये अन्य देशमें गला गया, किन्तु उसे मन्त्रीनुकूल पत्नी नहीं प्राप्त हुई। तब उसने अपने मन्त्रीसे कहा—‘मैं अनुसूय कोई स्त्री दूँगी।’ यह सुनकर मन्त्री विभिन्न देशोंमें गया। पर जब कहीं भी उसे राजाके योग्य स्त्री नहीं मिली तो वह सिन्धु देशमें आकर समुद्रकी ओर बढ़ा। मन्त्री तीर्थोंमें श्रेष्ठ सिन्धुको देखकर वह प्रसन्न हुआ। मन्त्री सत्यप्रकाशने समुद्रमें इस प्रकार प्रार्थना की—‘सभी राजाके आशय, सिन्धुदेशके स्वामिन् ! आपको नमस्कार है। शरणागतवस्तु ! मैं आपकी से. घ. पु. अ. १—

**वैतालने पूछा—**राजन् ! अब आप बतायें कि उस कन्याके योग्य कर इनमेंसे कौन था ?

**राजा बोला—**रक्षिकर ! वह रूपवती कन्या विलोक-सुन्दरी धर्मदत्तके योग्य है, क्योंकि सुन्दरत वैताल, शास्त्रीका ज्ञाता है, अतः वहीसे वह द्विज कहा जायगा। भाषा जानने-बोला तथा धन-धान्यका विस्तार करनेवाला धनसाल खणिक कहा जायगा। तृतीय जो कलाविद् है और रक्षोका व्यापार करता है, वह राजा कहा जायगा। वैताल ! सचर्चाके लिये ही कन्या योग्य होती है, अतः धनुर्वेद-शास्त्रमें जो निपुण धर्मदत्त है, वह वहीसे शक्ति बढलवायगा, इसलिये उस शक्ति कन्याका विवाह धर्मदत्तके साथ ही किया जाना चाहिये।

राजाने कहा—‘राजन् ! गङ्गा आदि नदियोंके समान जलधारा। आपकी नमस्कार है। मैं राजाके लिये आप उत्तम स्त्री-राज प्रदान करें। यदि ऐसा आप नहीं करेंगे तो मैं अपने प्राण यहाँ दे दूँगा।’ कटीपति सागर वह स्त्रुति सुनकर प्रसन्न हो गये और उसे जलमें बिदुमके पत्थरोंके, मुक्तकयी कालसे समन्वित एक वृक्षको दिखाया, जिसके ऊपर मोरगा, सुकुमारी एक सुन्दरी कन्या स्थित थी। वह कुछ ही क्षणोंमें देखते ही देखते वह कन्या वृक्षावहित पुनः जलमें लीन हो गयी।

यह देखकर अतिशय आश्चर्यचकित होकर मन्त्री सत्य-प्रकाश पुनः राजाके पास लौट आया और उसने सारी बातें राजाको सुनायीं। पुनः दोनों समुद्रके किनारे आये। राजाने भी मन्त्रीके समान ही कन्याको वृक्षपर बैठा देखा और राजाके देखते ही वह कन्या वृक्षवत् जलमें प्रविष्ट हो गयी। इस अद्भुत दृश्यको देखकर राजा भी समुद्रमें प्रविष्ट हो गया तथा उसी कन्याके साथ राजातमें पहुँच गया और मन्त्री वापस लौट आया।

**राजाने कहा—**मन्त्रिण ! मैं तुम्हारे लिये यहाँ आया हूँ। गन्धर्व विवाहमें मुझे प्राप्त करो। उसने हँसकर कहा—‘नृपते ! जब कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी तिथि आयेगी, तब मैं देवी-मन्दिरमें आकर तुम्हें मिलूँगी।’ राजा लौट आया और पुनः कृष्ण चतुर्दशीके दिन हाथमें तालवार लेकर देवीके

मन्दिरमें गया। वह कन्या राजासे पूर्व ही मन्दिरमें पहुँच चुकी थी। उसी समय बकवहन नामके एक राक्षसने आकर उस कन्याका स्पर्श किया। यह देखकर राजा क्रोधित हो गया। उसने राक्षसका सिर तलवारसे काट दिया। पुनः उस कन्यासे कहा—'धर्मिणि! तুম सत्य बताओ, यह कौन था और यहाँ कैसे आया?' उसने कहा—'राजन्! मैं विद्याधरकी कन्या हूँ। मेरा नाम मदवती है। मैं पिताजीकी प्रिय कन्या हूँ। एक बार मैं किसी समय वनमें गयी थी और भोजनके समय पिता-माताके पास घरमें नहीं पहुँच सकी थी। मेरे पिताजीने ध्वजके द्वाप साप वृत्तान्त जान लिया, उन्होंने मुझे शाप दे दिया कि 'मदवती! कृष्ण चतुर्दशीको तुमको राक्षस ग्रहण करेगा।' जब मुझे शापकी बात पालुम हुई, तब मैंने रोते हुए पिताजीसे पूछा—'देव! मेरी इस शापसे मुक्ति कब होगी?' उन्होंने कहा—'पुत्री! जब कृष्ण चतुर्दशीको कोई राजा तुम्हारा वरन करेगा, तब तुम्हारे शापकी निवृत्ति हो जावगी।'

मदवतीने कहा—'राजन्! अत्यन्त अनुग्रहसे आज मैं शापसे मुक्त हो गयी हूँ। आपकी आज्ञा पाकर अब मैं अपने पिताके घर जाना चाहती हूँ। यह सुनकर राजाने कहा—'तुम मेरे साथ मेरे घर चलो। इसके बाद मैं तुम्हें तुम्हारे पिताके पास ले चलूँगा।' वह राजाकी बात मानकर राजाके महलमें आ

गयी और राजासे उसका विवाह हो गया। उस राजाके नगरमें महान् उत्सव हुआ। मन्त्रीने देखा कि राजाके साथ एक दिव्य कन्या भी आयी है। कुछ दिनों बाद मन्त्री एकएक मृत्युको ज्ञात हो गया।

वैतालने पूछा—'राजन्! बताओ, उस मन्त्रीके मरनेमें क्या कारण है? क्या रहस्य है?'

राजा विक्रमने कहा—'मन्त्री सत्यप्रवरा राजाका मित्र और प्रजाका परम द्वितीय था। उसके ही समुद्योगसे राजाको श्रेष्ठ मदवती नामकी विद्याधर-कन्या रानीके रूपमें प्राप्त हुई थी, किन्तु मदवतीके साथ विवाहके बाद मन्त्री सत्यप्रवराने देखा कि राजा मदवतीको पाकर विलासी होते जा रहे हैं और राज्य एवं प्रजाकी उपेक्षा करने लगे हैं। दिन-रात विषय-सुखमें ही लिप्त रहने लगे हैं। यह देखकर उसने समझ लिया कि अब शीघ्र ही इस राज्यका विनाश होनेवाला है; क्योंकि जब राजा विषयी एवं स्वार्थी बन जाता है, तब राज्यका नश्वर अवश्य होता है। ऐसी स्थितिमें मेरी प्रायश्चात् भी व्यर्थ सिद्ध होगी, अतः राज्यके विनाशको मैं अपनी आँखोंसे न देख सकूँ, इसीलिये पहले ही मैं अपने प्राणोक्त उत्सर्ग कर देता हूँ। वैताल! यही सत्यप्रवर मन्त्री सत्यप्रवराने अपने प्राणोक्त परित्याग कर दिया।

### किये गये कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है (हरिस्वामीकी कथा)

वैतालने पुनः कहा—'राजन्! ब्रह्मपुर नामक एक रमणीय नगरमें ब्रह्मर्षि नामक एक राजा राज्य करता था। उसकी विशालाश्री नामकी पतिव्रता पत्नी थी। रानीने पुत्रकी कामनासे भगवान् शंकरकी आराधना की। उनकी कृपासे उसे कामदेवके सम्मान एक सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ, जो देवताओंके अंशसे सम्भूत था। उसका नाम रखा गया हरिस्वामी। सभी सम्पत्तियोंसे समन्वित वह हरिस्वामी पृथ्वीपर देवताके सम्मान सुख भोगने लगा। देवतामुनिके शापसे एक देवाङ्गन मानुषीरूपमें रूपलावण्यका नामसे उत्पन्न होकर राजकुमार हरिस्वामीकी पत्नी हुई। एक समय वह सुन्दरी अपने प्रासङ्गिक आनन्दपूर्वक शय्यापर शयन कर रही थी। उस समय सुकल नामक एक गन्धर्व आया और उसने प्रगाढ़ निद्रामें निमग्न उस रानीका अपहरण कर लिया। जब हरिस्वामी उठा, तब अपनी

पत्नीको न देखकर उसे ढूँढ़ने लगा। उसके न मिलनेपर वह व्याकुल हो गया और मगर छोड़कर वनमें चला गया तथा सभी विषयोंका परित्याग कर एकमात्र भगवान् श्रीहरिके ध्यानमें लीन हो गया और पितावृत्तिक आशय ग्रहणकर संन्यासी हो गया।

एक दिन वह संन्यासी (राजा हरिस्वामी) पिता र्षीनेके लिये एक ब्राह्मणके घर आया और ब्राह्मणने प्रसन्नतापूर्वक खीर बनाकर उसके दी। खीरका पात्र लेकर वह वहाँसे खान करने चला आया। खीरका पात्र उसने बटवृक्षपर रख दिया और सब नदीमें खान करने लगा। उसी समय वहाँसे एक सर्प आया और उसने उस खीरमें अपने मुँहसे विष उगल दिया। जब संन्यासी हरिस्वामी खानसे आकर खीर खाने लगा तो विषके प्रभावसे वह बेहोश होने लगा और उस ब्राह्मणके

पास आकर कहने लगा—‘अरे दुष्ट ब्राह्मण ! तुम्हारे हाथ दिये गये विषमय खीरको खाकर अब मैं मर रहा हूँ। इसलिये तुम्हें ब्रह्महत्याका पाप लगेगा।’ यह कहकर वह संन्यासी मर गया और उसने अपनी तपस्याके प्रभावसे शिकलोकको प्राप्त किया।

**वैतालने राजासे पूछा—**राजन् ! इनमें ब्रह्महत्याका पाप किसको लगेगा ? यह मुझे बताओ।

**राजाने कहा—** विषमय नागने अज्ञानवश स्वभावतः उस पायसको विषमय कर दिया, अतः ब्रह्महत्याका पाप उसे नहीं होगा।

चूँकि संन्यासी बुभुक्षित था और भिक्षा माँगने ब्राह्मणके घर आया था, ब्राह्मणके लिये वह अतिथि देव-स्वरूप था। अतः अतिथिधर्मका पालन करना उसके कुल-धर्मके अनुकूल

## जीवन-दानका आदर्श

(जीमूतवाहन और कल्पवृक्षकी कथा)

**रुद्राधिकार वैतालने राजा विक्रमादित्यसे कहा—** महाराज ! कन्यकुब्ज (कञ्जौज) में दानराज, सत्यवती एवं देवी-पूजनमें तत्पर एक ब्राह्मण रहता था। वह प्रतिग्रहसे प्राप्त द्रव्यका दान कर देता था। एक बार शास्त्रीय नवदुर्गात्मक व्रत आया। उसे दानमें कुछ भी द्रव्य प्राप्त नहीं हो सका, अतः वह बहुत चिन्तित हो गया, सोचने लगा, कौन-सा उपाय करूँ, जिससे मुझे द्रव्यकी प्राप्ति हो। मैंने दुर्गा-पूजामें कन्याओंको निमन्त्रित किया है, अब उन्हें कैसे भोजन कराऊँगा। वह इसी चिन्तामें निमग्न हो रहा था कि देवीकी कृपासे उसे अनायास पाँच मुद्रार्पण प्राप्त हो गयीं और उसीसे उसने व्रत सम्पन्न किया। उसने नौ दिनोंतक निराहार व्रत किया था। उस व्रतके प्रभावसे मरकर उसने देवस्वरूपको प्राप्त किया। फलतः वह विद्याधरोक्त स्वामी जीमूतकेतु हुआ। वह हिमालय पर्वतके रम्य स्थानमें रहता था। वहाँ वह भक्तिपूर्वक कल्पवृक्षकी पूजा भी करता था। उस वृक्षके प्रभावसे उसे सभी कल्पओंमें कुशल जीमूतवाहन नामका एक पुत्र प्राप्त हुआ।

पूर्वजन्ममें वह जीमूतवाहन मध्यदेशका शूरसेन नामक राजा था। किसी समय वह राजा शूरसेन आखेटके लिये महर्षि वाल्मीकिकी निवासभूमि उत्पलावर्त नामक वनमें आया। वहाँ

ही था। उसने श्रद्धासे खीर बनाकर संन्यासीको निवेदित किया; ऐसेमें वह कैसे ब्रह्महत्याका भागी बन सकता है ? यदि वह विष मिलाकर अन्न देता, तभी ब्रह्महत्या उसे लगती, क्योंकि अतिथिको अपमान भी ब्रह्महत्याके समान ही है। अतः ब्राह्मणको ब्रह्महत्या नहीं लगेगी। शेष बच गया वह संन्यासी। चूँकि अपने किये गये शुभाशुभ कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है। अतः वह संन्यासी अपने किसी जन्मान्तरिय कर्मवश कालको प्रेरणासे स्वतः ही मर, उसकी मृत्यु स्वाभाविक रूपसे ही हुई। इसमें किसीका दोष नहीं। पायसका भोजन करना तो मरनेमें केवल निमित्तमात्र ही था। अतः उसे भी ब्रह्महत्या नहीं लगेगी। इस प्रकार इन तीनोंमें किसीको भी ब्रह्महत्या नहीं लगेगी।

यैत्र शुक्ल नवमीको उसने विधिवत् रामजन्मका श्रीरामनवमी-उत्सव किया। उसने महर्षि वाल्मीकिकी कुटीमें रात्रि-जागरण भी किया। रामनवमी राधाके प्रवणजन्य पुण्यके प्रभावसे वह शूरसेन राजा ही जीमूतकेतुके पुत्र-रूपमें जीमूतवाहन नामक विद्याधर हुआ।

उस महात्मा जीमूतवाहनने भी कल्पवृक्षकी श्रद्धापूर्वक पूजा की। एक वर्षकी भीतर ही प्रसन्न होकर उस वृक्षने उससे वर माँगनेको कहा। इसपर जीमूतवाहनने कहा— ‘महावृक्ष ! मेरा नगर आपकी कृपासे धन-धान्य-सम्पन्न हो जाय। कल्पवृक्षने नगरको पृथ्वीमें सर्वश्रेष्ठ कर दिया। वहाँ कोई भी ऐसा नहीं था जो कल्पवृक्षके प्रभावसे राजाके सम्मान न हो गया हो। अनन्तर वे पिता और पुत्र दोनों तपस्याके लिये वनमें चले गये और अतिशय रमणीय मलयाचलपर कठोर तपस्या करने लगे।

राजन् ! एक दिन राजा मलयध्वजकी पुत्री कमलाक्षी शिवकी पूजाके लिये अपनी सखियोंके साथ शिव-मन्दिरमें आयी। उसी समय जीमूतवाहन भी पूजाके लिये मन्दिरमें पहुँचा। सभी अलंकारोंसे अलंकृत दिव्य राजकन्याको देखकर उसे प्राप्त करनेकी इच्छा जीमूतवाहनको जाग्रत हुई तथा इसके

लिये उसने प्रार्थना भी की। अन्तमें कन्याके पिता मलयध्वजने जीमूतवाहनसे उसका विवाह करा दिया।

राजा मलयध्वजका पुत्र विश्वाक्सु एक दिन अपने बहनेई जीमूतवाहनके साथ गन्धमादन पर्वतपर गया। वहाँ उसने नर-नारायणको प्रणाम किया। उसी शिखरपर भगवान् विष्णुका वाहन गरुड़ आया। उस समय शङ्खचूड़ नागकी माता, जहाँ जीमूतवाहन या वहाँ विलाप कर रही थी। स्त्रीके करुणक्रन्दनको सुनकर दीनवत्सल जीमूतवाहन दुःखी होकर शीघ्र ही वहाँ पहुँचा। वृद्धाको आश्वासन देकर उसने पूछा—‘तुम क्यों रो रही हो? तुम्हें क्या कष्ट है?’ वह बोली—‘देव! आज मेरा पुत्र गरुड़का भक्ष्य बनेगा, उसके वियोगके कारण दुःखसे व्याकुल होकर मैं रो रही हूँ।’ यह सुनकर राजा जीमूतवाहन गरुड़-शिखरपर गया। गरुड़ उसे अपना भक्ष्य समझकर फकड़कर आकाशमें ले गया। जीमूतवाहनकी पत्नी कमलाक्षी आकाशमें गरुड़के द्वार भक्षण किये जाते हुए अपने पतिको देखकर दुःखसे रोने लगी। परंतु बिना कष्टके छाये जाते उस जीमूतवाहनको मानव-रूपमें देखकर गरुड़ डर गया और जीमूतवाहनसे कहने लगा—‘तुम मेरे भक्ष्य क्यों बन गये?’ इसपर उसने कहा—‘शङ्खचूड़ नागकी माता बड़ी दुःखी थी, उसके पुत्रकी रक्षाके लिये मैं तुम्हारे पास आया।’ जब यह भटना शङ्खचूड़ नागको मालूम हुई तो दुःखी होकर वह शीघ्र ही गरुड़के पास आया और कहने लगा—‘कृपसागर! आपके भोजनके लिये मैं उपस्थित हूँ। महाभते! इस दिव्य मनुष्यको छोड़कर मुझे अपना आहार बनाइये।’ जीमूतवाहनकी महानता और परोपकारकी भावना

देखकर गरुड़ अत्यन्त प्रसन्न हो गया और उसने विद्याधर जीमूतवाहनको लौन कर दिये। ‘अब मैं आगेसे कभी शङ्खचूड़के वंशजको नहीं खाऊँगा। श्रेष्ठ जीमूतवाहन! तुम विद्याधरकी नगरीमें श्रेष्ठ राज्य प्राप्त करोगे और एक लाख वर्षतक आनन्दका उपभोग कर वैकुण्ठ प्राप्त करोगे।’ इतन कहकर गरुड़ अपाहृत हो गया और जीमूतवाहनने पितासे राज्य प्राप्त किया तथा अपनी पत्नी कमलाक्षीके साथ राज्य-सुख भोगकर अन्तमें वह वैकुण्ठलोकको चला गया।

**वैतालने राजासे पूछा—**भूते! अब आप बताइये कि शङ्खचूड़ तथा जीमूतवाहन—इन दोनोंमें किसको महान् फल प्राप्त हुआ और दोनोंमें कौन अधिक साहसी था?

**राजा बोला—**वैताल! शङ्खचूड़को ही महान् फल प्राप्त हुआ; क्योंकि उपकार करना तो राजाका स्वभाव ही होता है। राजा जीमूतवाहनने शङ्खचूड़के लिये यद्यपि अपना जीवन देकर महान् त्याग एवं उपकार किया, उसीके फलस्वरूप गरुड़ने प्रसन्न होकर उसे राज्य एवं वैकुण्ठ-प्राप्तिका वर प्रदान किया, तथापि राजा होनेसे जीमूतवाहनका जीवन-दान (नागकी रक्त कत्त) कर्तव्यकोटिमें आ जाता है। अतः उसका त्याग शङ्खचूड़के त्याग एवं साहसके सामने महत्त्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता, परंतु शङ्खचूड़ने निर्भय होकर अपने शत्रु गरुड़को अपना शरीर समर्पित कर एक महान् धर्मात्मा राजाके प्राण बचाये थे। अतः शङ्खचूड़ ही सबसे बड़े फलका अधिकारी प्रतीत होता है। वैताल राजाके इस उत्तरसे संतुष्ट हो गया।

### साधनामे मनोयोगकी महत्ता (गुणाकारकी कथा)

**वैतालने पुनः कहा—**राजन्! उज्जयिनीमें महासेन नामका एक राजा था। उसके राज्यमें देवशर्मा नामका एक ब्राह्मण रहता था। देवशर्माका गुणाकर नामका एक पुत्र था, जो द्यूत, मद्य आदिका व्यसनी था। उस दुष्ट गुणाकरने पितृका सारा धन द्यूत आदिमें नष्ट कर दिया। उसके बन्धुओंने उसका परित्याग कर दिया। वह पृथ्वीपर इधर-उधर भटकने लगा। दैवयोगसे गुणाकर एक सिद्धके आश्रममें आया, वहाँ कपटी

नामके एक योगीने उसे कुछ खानेको दिया, किंतु भूखसे पीड़ित होते हुए भी उसने उस अन्नको पिशाच आदिसे दूषित समझकर ग्रहण नहीं किया। इसपर उस योगीने उसके आतिथ्यके लिये एक यक्षिणीको बुलाया। यक्षिणीने आकर गुणाकरका आतिथ्य-स्वागत किया। तदनन्तर वह कैलास-शिखरपर चली गयी। उसके वियोगसे विह्वल होकर गुणाकर पुनः योगीके पास आया। योगीने यक्षिणीको आकृष्ट करनेवाली



विद्या गुणाकरको प्रदान की और कहा—‘कस ! तुम चासीस दिनतक जलमें स्थित रहकर आधी रातमें इस शुभ मन्त्रका जप करो । ऐसा करनेपर यदि तुम मन्त्र सिद्ध कर लोगे तो मन्त्रकी शक्तिके प्रभावसे वह यक्षिणी तुम्हें प्राप्त हो जायगी । गुणाकरने वैसा ही किया, किंतु वह यक्षिणीको प्राप्त नहीं कर सका । अन्तमें विवश होकर योगीकी आज्ञासे अपने घर लौट आया । उसने अपने माता-पिताको नमस्कार कर वह रात्रि बितायी । दूसरे दिन प्रातः वह गुणाकर सन्यासियोंके एक मठमें गया और वहाँ शिष्य-रूपमें रहने लगा । पञ्चाशतिके मध्यमें स्थित होकर उसने पवित्र हो यक्षिणीको प्राप्त करनेके लिये कपर्दीद्वारा बताया गये मन्त्रका पुनः जप करना प्रारम्भ किया, पर यक्षिणी फिर भी नहीं आयी, जिससे उसे बड़ा कष्ट हुआ ।

**वैतालने ज्ञानविशारद राजासे पूछा—**‘महाभाग ! गुणाकर अपनी प्रिया यक्षिणीको क्यों नहीं प्राप्त कर सका ?’

**राजा बोला—**कइकियर । साधकको सिद्धिके लिये तीन आवश्यक गुण होने चाहिये—मन, वाणी तथा शरीरका ऐक्यत्व । मन और वाणीकी एकतासे किया गया कर्म परलोकमें सुखप्रद होता है । वाणी और शरीरसे किया गया कार्य सुन्दर होता है । वह इस जन्ममें आंशिक फल देता है

और परलोकमें अधिक फलप्रद होता है । मन और शरीरके द्वारा किया गया कर्म दूसरे जन्ममें सिद्धि प्रदान करता है; परंतु मन, वाणी और शरीर—इन तीनोंकी तन्मयतासे सम्पादित कर्म इस जन्ममें ही शीघ्र फल प्रदान करता है और अन्तमें मोक्ष भी प्रदान करता है । अतः साधकको कोई भी कार्य अत्यन्त मनोयोगसे करना चाहिये ।

गुणाकरने यद्यपि दो बार बड़े कष्टपूर्वक मन्त्रका जप किया; किंतु दोनों ही बारकी साधनामें मनोयोगकी कमी रही । जलके भीतर तथा पञ्चाग्नि-सेवन आदिमें शरीरका योग रहा और वाणीसे जप भी होता रहा, किंतु गुणाकरका मन मन्त्रमें न लगकर यक्षिणीमें लगा हुआ था । इसी कारण उसे मन्त्र-शक्तिकर विश्वास भी न हो सका । शरीर और वाणीका योग होते हुए भी मन्त्रका योग न रहनेके कारण गुणाकर यक्षिणीको प्राप्त न कर सका, किंतु कर्म तो उसने किया ही था, फलतः परलोकमें वह यक्ष हुआ और यक्ष होकर यक्षिणीको प्राप्त किया । इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी भी कार्यकी पूर्ण सिद्धिके लिये मन, वाणी और शरीर—इन तीनोंका ही योग आवश्यक है । इनमें भी मन्त्रका योग परम आवश्यक है ।

## संतानमें समान-भाव रखें

(ममले पुत्रकी कथा)

**वैतालने पुनः कहा—**राजन् ! विष्णुकुटुम्बमें ऊणदत्त नामका एक विख्यात राजा रहता था । एक दिन वह एक मृगव्र पशु पकड़ करते हुए एक वनमें अविष्ट हो गया । मध्याह्न-कालमें वह एक सरोवरके पास पहुँचा और वहाँ उसने अपनी सखीके साथ कमल-पुष्पोंका चयन करती हुई एक सुन्दर मुनि-कन्याको देखा । उसके श्रेष्ठ रूपको देखकर राजाने उसे अपनी रानी बनानेका निश्चय किया । वह कन्या भी राजाको देखकर प्रसन्न हुई । दोनों परस्पर प्रीतिपूर्वक एक दूसरेको देखने लगे । उसकी सखीसे राजाने जब उस कन्याका पता पूछा, तब उसने कहा कि यह एक मुनिकी धर्मपुत्री है । उसी समय उस कन्याके पिता वहाँ आ पहुँचे । मुनिको देखकर राजाने विनयपूर्वक उनसे पूछा—‘मुने ! उतम धर्म क्या है ?’

इसपर महापत्नीकी मुनि बोले—‘उजन् ! असहायका पालन-पोषण, राजागात्रकी रक्षा और दया करना यही मुख्य धर्म है । भयभीतको अभय-दान देनेके समान कोई दान नहीं है । उदण्डको दण्ड देना चाहिये । पुण्यजनकी पूजा करनी चाहिये । गौ एवं जघानमें नित्य आदर-भाव रखना चाहिये । दण्ड देनेमें समान-भाव रखना चाहिये, पक्षपात नहीं करना चाहिये । देवताकी पूजामें छल-छद्म एवं कपटको छोड़कर श्रद्धा-भक्ति-रूपी मत्स्यका आश्रय ग्रहण करना चाहिये । गुरु एवं श्रेष्ठ जनकी पूजामें इन्द्रिय-निग्रह एवं समाहितचित्तताका विशेष ध्यान रखना चाहिये । दान देते समय मृदुताका आश्रय ग्रहण करना चाहिये । थोड़े-से भी हुए निन्द्य कर्मको बहुत बड़ा अपराध समझकर सर्वथा उससे विरत रहना चाहिये’ ।

ऐसा कहकर उस मुनिने अपनी कन्याका विवाह राजकुमारके साथ कर दिया। राजा उसे लेकर अपनी राजधानीकी ओर चला। मार्गमें उसने एक वटवृक्षके नीचे विश्राम किया। उसी समय उसकी पत्नीको खा जानेके लिये एक राक्षस वहाँ आया और कहने लगा कि 'तुम दोनोंमें मेरा स्थान अपवित्र कर दिया है, अतः मैं तुमलोगोंको खा जाऊँगा।' राजाके शमा माँगनेपर उसने पुनः कहा—'यदि तुम किसी सात वर्षके ब्राह्मण-बालकको मेरे खानेके लिये प्रस्तुत करो तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगा।' राजा राक्षसको वचन देकर अपनी पत्नीके साथ महलमें चला आया।

दूसरे दिन राजाने मन्त्रियोंको सब समाचार कह सुनाया। मन्त्रियोंके परामर्शपर राजाने एक ब्राह्मणको एक लक्ष स्वर्ण-मुद्राएँ देकर उसके मध्यम पुत्रको राक्षसको समर्पित करनेके लिये राजी कर लिया। उस ब्राह्मणपुत्रने भी पिताके लिये अपना बलिदान देना स्वीकार कर लिया। यथासमय उसे

लेकर सभी राक्षसके पास पहुँचे। ज्यों ही बलिदानका समय आया, त्यों ही वह ब्राह्मणका बालक पहले हँसा और फिर उच्च स्वरसे रोने लगा।

**वैतालने पूछा**—राजन् ! बताओ कि मृत्युके समय वह ब्राह्मण-बालक पहले क्यों हँसा और बादमें फिर क्यों रोया ?

**राजाने कहा**—वैताल ! बड़ा पुत्र पिताको प्रिय होता है और छोटा पुत्र माताको प्रिय होता है। इसलिये माता-पितासे अपनेको उपेक्षित जानकर और अन्य कोई शरण्य न देखकर बड़ी आशासे मध्यम पुत्रने राजाकी शरण ग्रहण की, परंतु अपनी पत्नीका प्रिय चाहनेवाले उस निर्दयी राजा रूपदत्तके हाथमें मृत्युरूपी तलवार देखकर उस ब्राह्मणकुमारको पहले हँसी आ गयी और फिर मेरा यह उत्तम शरीर अधम राक्षसको प्राप्त होगा, यह सोचकर वह दुःखी होकर उच्च स्वरसे रोता हुआ पश्चात्ताप करने लगा। वैताल राजाके इस उत्तरसे बहुत प्रसन्न हुआ।

## पक्षे कम, समझो ज्यादा

(चार मुखोंकी कथा)

**वैतालने राजासे पुनः कहा**—राजन् ! रमणीय जयपुरमें वर्धमान नामका एक राजा था। उसके गाँवमें वेदवेदाङ्गपारंगत विष्णुस्वामी नामका एक साधन निवास करता था। वह राधा-कृष्णका भक्त था। उसके चार पुत्र थे, जो विभिन्न व्यसनमें लगे रहते थे। वे जैसा निन्दित कर्म करते थे, वैसा ही उनका नाम भी निन्दित ही हो गया। पहला पुत्र द्यूतकर्मा था, दूसरा व्यभिचारी, तीसरा विषयी और चौथा नास्तिक था। संयोगसे दुर्भाग्यवश वे सभी निर्धन हो गये। एक बार वे सभी अपने पिता विष्णुस्वामीके पास गये। उन लोगोंने विनयपूर्वक उन्हें नमस्कार किया और कहा—'पिताजी ! हमलोगोंकी लक्ष्मी कैसे नष्ट हो गयी ?' पिताने कहा—'द्यूतकर्मा ! द्यूतकर्म धनको नष्ट कर देता है। यह पापका मूल है। द्यूतकर्मसे व्यभिचार, चौर्य और निर्दयता आदि उत्पन्न होते हैं। यह महान् दुष्परिणामकारी है। द्यूतकर्म

करनेके कारण तुम्हारे द्रव्यका नाश हुआ।' यह सुनकर उसने कहा—'पितृचरण ! आप मुझे कृपा धन-प्राप्तिका सही मार्ग बताये।' पिताने कहा—'तीर्थ और व्रतके प्रभावसे तुम्हारे पाप नष्ट हो जायेंगे। तुम अपने माता-पिताकी बातोंपर ध्यान दो, उनका कहना मानो।' तदनन्तर पिताने द्वितीय पुत्रसे कहा—'पुत्र ! तुम व्यभिचारी हो। चेश्याका संग बड़ा अशुभ है। तुम इस अशुभ कर्मको त्यागकर ब्रह्मचर्यपूर्वक ब्रह्मपरायण हो। ब्रह्मचर्यव्रत धारण करो।' तृतीय पुत्र विषयीसे कहा—'मांस और मदिरा सदा पापकी वृद्धिके कारण हैं, इनके द्वारा तुम चौर्य-कर्म करोगे और नरकगामी होगे, इसलिये तुम ऐश्वर्यसम्पन्न जगत्पति, सर्वोत्तम भगवान् विष्णुके निमित्त द्रव्योंको समर्पित कर मौन होकर भोजन करो' और अपने नास्तिक पुत्रसे कहा—'तुम देवविन्दा आदि नास्तिक-भावको छोड़कर शुद्ध आस्तिक-मार्गका अवलम्बन

अनर्हन् दण्डमादद्याद्दण्डपूजाकर्मं धमेन् । विप्रता येद्विने पितृं समता दण्डनिषेधे ॥

सल्लता सुरपूजायं दण्डता गुणपूजने । मृतुता उमसमये संसृष्टिनिन्दाकर्मणि ॥

(प्रतिमार्गखं २ (१९) ५-७)

करो, आत्मा शुद्ध-बुद्ध एवं नित्य है और महादेवी चण्डिका महाशक्ति है। सभी प्राणियोंके हृदय-गुह्यमें स्थित देवतागण परमात्माके अङ्ग हैं। उनका ज्ञान प्राप्तकर पापको शान्तिके लिये उनकी पूजा करो।'

यह सुनकर वे चारों पुत्र अपने पिताके द्वारा निर्दिष्ट साधनोंमें प्रवृत्त हो गये और सुन्दर ज्ञानको प्राप्तिके लिये सर्वेश्वर शिवकी आराधना भी करने लगे। भगवान् शंकरने वर्षभरमें उन्हें संजीवनी विद्या प्रदान कर दी। वे संजीवनी विद्या प्राप्त कर एक वनमें आये और वहाँ बिसरी व्याघ्रकी अस्थियोंपर विद्याकी परीक्षा करने लगे। प्रथम पुत्रने मरे हुए व्याघ्रकी अस्थियोंको एकत्र करके उसपर मन्त्रपूत जल छिड़का। उस मन्त्रके प्रभावसे वे अस्त्रियाँ पंजर-रूप हो गयीं। दूसरे व्यभिचारी पुत्रने उसपर मन्त्रपूत जल छिड़का जिसके प्रभावसे वह पंजर मांस और हडिरसे सम्पन्न हो गया। विषयी पुत्रने उसके ऊपर अभिमन्त्रित जल छिड़का। फलस्वरूप लवा और प्राण उसमें आ गये। सोये हुए व्याघ्रको जीवित करनेके लिये नास्तिक पुत्रने जल छिड़का। मन्त्रके प्रभावसे जीवित होनेपर उस व्याघ्रने उन सभीका भक्षण कर लिया।

**वैतालने राजासे पूछा—**राजन्! अब आप बताये कि उन चारोंमें सबसे बड़ा मूर्ख कौन था ?

**राजा बोले—**जिसने मरे हुए व्याघ्रको जिलाया,

वही सबसे बड़ा मूर्ख है। इस उत्तरसे वैताल अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

**वैतालने पुनः राजासे कहा—** राजा विक्रमादित्य ! भगवान् शंकरकी आज्ञासे ही मैं तुम्हारे पास आया था। अनेक प्रकारके प्रश्नोत्तरोंके द्वारा मैंने तुम्हारी परीक्षा ली और तुमने सबका बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर दिया। इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारी भुजाओंमें मेरा निवास रहेगा, जिससे तुम पृथ्वीके समस्त शत्रुओंको जीत लोगे। दसुओंके द्वारा सभी पुरियाँ, विविध क्षेत्र, नगर आदि नष्ट कर दिये गये हैं। इसलिये शास्त्रमें बताये गये परिमाणके आधारपर पुनः उनकी रचना कराओ और न्यायपूर्वक पृथ्वीका शासन करो। तुम्हारे राज्यमें पुनः धर्मकी स्थापना होगी।

इतना कहकर वह वैताल देवीकी आराधनाका निर्देश देकर वहीं अपरिहीत हो गया। राजा विक्रमादित्यने मुनियोंकी आज्ञासे अश्वमेध-यज्ञ किया और वह चक्रवर्ती राजा हुआ। धर्मपूर्वक राज्य करते हुए अन्तमें राजा विक्रमादित्यने स्वर्गलोक प्राप्त किया।

राजा विक्रमादित्यके स्वर्गगमनकी जानकारी शीनकादि महर्षियोंने लोमहर्षण सूतजी महाशयसे पुनः इतिहास एवं पुराणकी पुण्यमयी कथाओंका श्रवण किया और फिर अतृप्त होते हुए वे सभी अपने-अपने स्थानोंकी ओर चले गये। (अध्याय १—२३)



### सत्यनारायणव्रत-कथा

[भारतवर्षमें सत्यनारायणव्रत-कथा अत्यन्त लोकप्रिय है और जनता-जनार्दनमें इसका प्रचार-प्रसार भी सर्वाधिक है। भारतीय सनातन परम्परामें किसी भी माङ्गलिक कार्यका प्रारम्भ भगवान् गणपतिके पूजनसे एवं उस कार्यकी पूर्णता भगवान् सत्यनारायणकी कथा-श्रवणसे सम्पत्ती जाती है। वर्तमान समयमें भगवान् सत्यनारायणकी प्रचलित कथा स्कन्दपुराणके रेवाखण्डके नामसे प्रसिद्ध है, जो पाँच या सात अध्यायोंके रूपमें उपलब्ध है। भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपूर्वमें भी भगवान् सत्यनारायणव्रत-कथाका उल्लेख मिलता है, जो छः अध्यायोंमें प्राप्त है। यह कथा स्कन्दपुराणकी कथासे मिलती-जुलती होनेपर भी विशेष रोचक एवं श्रेष्ठ प्रतीत होती है। सत्यनारायणव्रत-कथाकी प्रसिद्धिके साथ अनेक शंका-समाधान भी इसपर होते रहते हैं तथा लोग यह भी पूछते हैं कि साधु वर्णिक, काष्ठधिकेता, शतानन्द ब्राह्मण, उत्कामुख, तुंगध्वज आदि राजाओंमें कौन-सी कथाएँ सुनी थीं और वे कथाएँ कहाँ गयीं तथा इस कथाका प्रचार कबसे हुआ ? इस सम्बन्धमें यही जानना चाहिये कि कथाके माध्यमसे मूल सत्-तत्त्व परमात्माका ही इसमें निरूपण हुआ है, जिसके लिये गीतामें 'वासतो विद्याते भावो नाभावो विद्याते सतः' आदि शब्दोंमें यह स्पष्ट किया गया है कि इस माध्यमय दुःखद संसारकी वास्तविक सत्ता ही नहीं है। परमेश्वर ही त्रिकालाव्यहित सत्य है और एकमात्र वही ज्ञेय, ध्येय एवं उपास्य है। ज्ञान-वैराग्य और अनन्य भक्तिके द्वारा वही साक्षात्कार करनेके योग्य है। भागवत (१०।२।२६)में भी कहा गया है—

सत्यव्रतं सत्यधरं विप्रसत्यं सत्यस्य ध्येयं निहितं च सत्ये ।

सत्यस्य सत्यमृतमन्यनेत्रे सत्तात्पदकं त्वं शरणं प्रपन्नाः ॥

यहाँ भी सत्यव्रत और सत्यनारायणव्रतका तात्पर्य उन शुद्ध सर्वविद्यानन्द परमात्मासे ही है। इसी प्रकार निम्नलिखित श्लोकमें—

अन्तर्ध्विज्जन्त भवन्तमेव ह्यतत्त्वजन्तो मृगयन्ति सन्तः ।

असन्तध्वन्यन्यद्विप्रन्तोष सन्ते गुणे तं किमु यन्ति सन्तः ॥ (श्रीमद्भा० १०।१४।२८)

—संसारमें धनीधियोंद्वारा सत्य-तत्त्वकी खोजकी कठ निर्दिष्ट है, जिसे प्राप्तकर मनुष्य सर्वथा कृतार्थ हो जाता है और सभी आराधनाएँ उसीमें पर्याप्त हो जाती हैं। निष्कलम-उपासनासे सत्यस्वरूप जगत्पणकी प्राप्ति हो जाती है।

अतः श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक पूजन, कथा-श्रवण एवं प्रसन्न आदिके द्वारा उन सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान् सत्यनारायणकी उपासनासे लाभ उत्पन्न चाहिये।—सम्पादक ]

### कथाका उपक्रम—

व्यासजी बोले—एक समयकी बात है, नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंने पौराणिक श्रीसूतजीसे विनयपूर्वक पूछा— 'भगवन् ! संसारके कल्याणके लिये आप यह बतलानेकी कृपा करें कि चारों युगोंमें कौन पूजनीय और कौन सेवनीय है तथा कौन सबके अभीष्ट मनोरथोंके पूर्ण करनेवाला है ? मानव अनायास ही किसकी आराधनाद्वारा अपनी मङ्गलमयी कामनाको प्राप्त कर सकता है ? ब्रह्मन् ! आप ऐसे मत्त्व उपायको बतलायें जो मनुष्योंकी कौर्तिके बढ़ानेवाला हो। शौनकादि ऋषियोंद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर श्रीसूतजी भगवान् सत्यनारायणकी प्रार्थना करने लगे—

नवाम्बोजनेत्रे

रमाकेलिपात्रे

चतुर्बाहुवामीकं

चारुगात्रम् ।

जगत्त्राणोहेतुं

रिपो

धूम्रकेतुं

सदा सत्यनारायणं स्तौमि देवम् ॥

(प्रतिसर्गपूर्व २।२४।४)

(श्रीसूतजीने प्रार्थना करते हुए कहा—)

'प्रफुल्लित नवीन कमलके समान नेत्रवाले, भगवती लक्ष्मीके अङ्गिकापात्र, चतुर्भुज, सुवर्णकान्तिके समान सुन्दर शरीरवाले, संसारकी रक्षा करनेके एकमात्र मूल कारण तथा शत्रुओंके लिये धूम्रकेतुस्वरूप भगवान् सत्यनारायणदेवकी मैं



स्तुति करता हूँ।

श्रीराम सहलक्ष्मण सकरुण सीतान्वित सात्विक

वैदेहीमुखपद्मलुब्धमधुर पौलस्त्यसंहारकम् ।

वन्दे वन्द्यपदाम्बुजं सुरवरं भक्तानुकम्पाकरं

शत्रुघ्नेन हनूमता च भरतेनसेवितं तपस्वम् ॥

(प्रतिसर्गपर्व २।२४।५)

‘जो भगवान् करुणाके निधान हैं, जिनके चरणकमल वन्दनीय हैं, जो भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं, जो लक्ष्मणजीके साथ रहते हैं और माता श्रीसीतासे समन्वित हैं तथा माता वैदेही श्रीजनकनन्दिनीजीके मुख-कमलकी ओर स्निग्धभावसे देखते रहते हैं, उन शत्रुघ्न, हनुमान् तथा भरतसे सेवित, पुलस्त्यकुलका संहार करनेवाले, सत्यस्वयं सुरश्रेष्ठ राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्रकी मैं वन्दना करता हूँ।’

**सूतजीने कहा—**ऋषियो ! अब मैं आपसे श्रेष्ठ राजाओंके चरित्रोंसे सम्बद्ध एक इतिहासका वर्णन करता हूँ, उसे आपलोग श्रवण करें। यह पवित्र आख्यान कलियुगके सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला, कामसाओंको पूर्ण करनेवाला, देवताओंद्वारा आपासित, ब्राह्मणोंद्वारा प्रशंसित, विद्वानोंको आनन्दित करनेवाला तथा विशेष रूपसे सत्येककी चर्चास्वरूप है।

**ऋषियो !** एक समय योगी देवर्षि नारदजी सबके कल्याणकी कामनासे विविध लोकमें भ्रमण करते हुए इस मृत्युलोकमें आये। यहाँ उन्होंने देखा कि अपने-अपने किये गये कर्मके अनुसार संसारके प्राणी नाना प्रकारके क्लेशों एवं दुःखोंसे दुःखी हैं और विविध आधि एवं व्याधिसे ग्रस्त हैं। यह देखकर उन्होंने सोचा कि कौन-सा ऐसा उपाय है, जिससे इन प्राणियोंके दुःखका नाश हो। ऐसा विचारकर वे विष्णु-लोकमें गये। वहाँ उन्होंने शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमालासे अलंकृत, प्रसन्नमुख, शान्त, सनक-सनन्दन तथा सनत्कुमारदिसे संस्तुत भगवान् नारायणका दर्शन किया। उन देवाधिदेवका दर्शनकर नारदजी उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—‘वाणी और मनसे जिनका स्वरूप परे है और जो अनन्तशक्तिसम्पन्न हैं, आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं, ऐसे

महान् आत्मा निर्गुणस्वरूप आप परमात्माको मेरा नमस्कार है। सभीके आदिपुरुष लोकौपकारपरायण, सर्वत्र व्याप्त, तपोमूर्ति आपको मेरा बार-बार नमस्कार है।’

**देवर्षि नारदकी स्तुति सुनकर भगवान् विष्णु बोले—**देवर्षे ! आप किस कारणसे यहाँ आये हैं ? आपके मनमें कौन-सी चिन्ता है ? महाभाग ! आप सभी बातें बताये। मैं उचित उपाय करूँगा।

**नारदजीने कहा—**प्रभो ! लोकोंमें भ्रमण करता हुआ मैं मृत्युलोकमें गया था, वहाँ मैंने देखा कि संसारके सभी प्राणी अनेक प्रकारके क्लेश-तापोंसे दुःखी हैं। अनेक रोगोंसे ग्रस्त हैं। उनकी वैसी दुर्दशा देखकर मेरे मनमें बड़ा कष्ट हुआ और मैं सोचने लग्य कि किस उपायसे इन दुःखी प्राणियोंका उद्धार होगा ? भगवन् ! उनके कल्याणके लिये आप कोई श्रेष्ठ एवं सुगम उपाय बतलानेकी कृपा करें। नारदजीके इन वचनोंको सुनकर भगवान् नारायणने साधु-साधु शब्दोंसे उनका अधिनन्दन किया और कहा—‘नारदजी ! जिस विषयमें आप पूछ रहे हैं, उसके लिये मैं आपको एक सनातन व्रत बतलाता हूँ।’

भगवान् नारायण सत्ययुग और त्रेतायुगमें विष्णुस्वरूपमें फल प्रदान करते हैं और द्वापरमें अनेक रूप धारणकर फल देते हैं, परंतु कलियुगमें सर्वव्यापक भगवान् सत्यनारायण प्रत्यक्ष फल देते हैं, क्योंकि धर्मके चार पाद हैं—सत्य, शौच, तप और दान। इनमें सत्य ही प्रधान धर्म है। सत्यपर ही लोकका व्यवहार टिका है और सत्यमें ही ब्रह्म प्रतिष्ठित है, इसलिये सत्यस्वरूप भगवान् सत्यनारायणका व्रत परम श्रेष्ठ कहा गया है।

**नारदजीने पुनः पूछा—**भगवन् ! सत्यनारायणकी पूजाका क्या फल है और इसकी क्या विधि है ? देव ! कृपासागर ! सभी बातें अनुष्णपूर्वक मुझे बताये।

**श्रीभगवान् बोले—**नारद ! सत्यनारायणकी पूजाका फल एवं विधि बहुमुख ब्रह्मा भी बतलानेमें समर्थ नहीं है, किन्तु संक्षेपमें मैं उसका फल तथा विधि बतला रहा हूँ,

आप सुने —

सत्यनारायणके व्रत एवं पूजनसे निर्धन व्यक्ति धनाढ्य और पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रवान् हो जाता है। राज्यच्युत व्यक्ति राज्य प्राप्त कर लेता है, दुष्टिहीन व्यक्ति दुष्टिसम्पन्न हो जाता है, बन्दी बन्धनमुक्त हो जाता है और भयर्त व्यक्ति निर्भय हो जाता है। अधिक क्या ? व्यक्ति जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, उसे वह सब प्राप्त हो जाती है। इसलिये मुने ! मनुष्य-जन्ममें भक्तिपूर्वक सत्यनारायणकी अवश्य आराधना करनी चाहिये। इससे वह अपने अभिलषित वस्तुको निःसन्देह शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।

इस सत्यनारायण-व्रतके करनेवाले व्रतीको चाहिये कि वह प्रातः दन्तधावनपूर्वक स्नानकर पवित्र हो जाय। हाथमें तुलसी-मंजरीको लेकर सत्यमें प्रतिष्ठित भगवान् श्रीहरिको इस प्रकार ध्यान करे—

नारायणं	सान्द्रधनावदातं
चतुर्भुजं	पीतमहाईवासरम् ।
प्रसन्नवक्त्रं	नमस्कृत्यलोकने
सनन्दनादौल्यसेवितं	धजे ॥
करोमि ते व्रतं देव सार्यकालं त्वदर्शनम् ।	
शुक्ला गात्रां त्वदीयां हि प्रसादं ते भजाम्यहम् ॥	

(प्रतिसर्गपर्व २।२४।२६-२७)

‘सधन भेषके समान अत्यन्त निर्मल, चतुर्भुज, अति श्रेष्ठ पीले वस्त्रको धारण करनेवाले, प्रसन्नमुख, नवीन कमलके समान नेत्रवाले, सनक-सनन्दनादिसे उपसेवित भगवान् नारायणका मैं सतत चिन्तन करता हूँ। देव ! मैं आपके सत्यस्वरूपको धारणकर सार्यकालमें आपकी पूजा करूँगा। आपके रमणीय चरित्रको सुनकर आपके प्रसाद अर्थात् आपकी प्रसन्नताका मैं सेवन करूँगा।’

इस प्रकार मगमें संकल्पकर सार्यकालमें विधिपूर्वक भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। पूजामें पाँच कलश रखने चाहिये। कदली-स्तम्भ और बंदनकर लगाने चाहिये। स्वर्णमण्डित भगवान् शालग्रामको पुरुषसूक्त (यजु-

३१।१-१६) द्वारा पश्चामृत आदिसे भलीभाँति स्नान कराकर चन्दन आदि अनेक उपचारोंसे भक्तिपूर्वक उनकी अर्चना करना चाहिये। अनन्तर भगवान्को निम्न मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रणाम करना चाहिये—

नमो भगवते नित्यं सत्यदेवाय धीमहि ।

चतुःपदार्चदात्रे न नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥

(प्रतिसर्गपर्व २।२४।३०)

‘यैश्वर्यरूप भगवान् सत्यदेवको नमस्कार है, मैं आपको सदा ध्यान करता हूँ। आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस चतुर्विध पुरुषार्थको प्रदान करनेवाले हैं, आपको बार-बार नमस्कार है।’

इस मन्त्रको यथाशक्ति जपकर १०८ बार हवन करे। उसके दशशंसे तर्पण तथा उसके दशशंसे मार्जन कर भगवान्को कथाको सुनना चाहिये, जो छः अध्यायोंमें उपनिबद्ध है। भगवान्की इस कथामें सत्य-धर्मकी ही मुख्यता है। कथा-श्रवणके अनन्तर भगवान्को प्रसादको चार भागोंमें विभक्तकर उसे भलीभाँति वितरण करे। प्रथम भाग आचार्यको दे, द्वितीय भाग अपने कुटुम्बको, तृतीय भाग श्रोताओंको और चतुर्थ भाग अपने लिये रखे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराये एवं स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। देवों ! इस विधिसे सत्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। ब्रह्म-भक्तिपूर्वक सत्यनारायणकी पूजा करनेवाला व्रती सभी अभीष्ट कामनाओंको इसी जन्ममें प्राप्त कर लेता है। इस जन्ममें किये गये पुण्यफलको दूसरे जन्ममें भोगा जाता है और दूसरे जन्ममें किये गये कर्मोंका फल मनुष्यको यहाँ भोगना पड़ता है। ब्रह्मपूर्वक किया गया सत्यनारायणका व्रत सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है।

नारदजीने कहा—भगवन् ! आज ही आपकी आज्ञासे भूगण्डलमें इस सत्यदेव-व्रतको मैं प्रतिष्ठित करूँगा। यह कहकर नारदजी तो पृथ्वीपर व्रतका प्रचार करने चले गये और भगवान् नारायणदेव अन्तर्धान हो काशीपुरीमें चले आये।

(अध्याय २४)

[ सत्यनारायणव्रत-कथाका प्रथम अध्याय ]



## सत्यनारायणव्रत-कथायें शतानन्द ब्राह्मणकी कथा

**सुतजी बोले—**ऋषियो ! भगवान् नारायणने स्वयं कृपापूर्वक देवर्षी नारदजीद्वारा जिस प्रकार इस व्रतका प्रचार किया, अब मैं उस कथाको कहता हूँ, आपलोग सुनें—

लोकप्रसिद्ध काशी नगरीमें एक श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण रहते थे, जो विष्णु-व्रतपरायण थे, वे गृहस्थ थे, दोन थे तथा स्त्री-पुत्रवान् थे। वे भिक्षा-वृत्तिसे अपना जीवन-यापन करते थे। उनका नाम शतानन्द था। एक समय वे भिक्षा माँगनेके लिये जा रहे थे। उन विनीत एवं अतिशय शान्त शतानन्दको मार्गमें एक वृद्ध ब्राह्मण दिखाने दिये, जो सबकुछ हरि ही थे। उन वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी श्रीहरिने ब्राह्मण शतानन्दसे पूछा—  
'द्विजश्रेष्ठ ! आप किस निमित्तसे कहाँ जा रहे हैं ?' शतानन्द बोले—'सौम्य ! अपने पुत्र-कलत्रादिके भरण-पोषणके लिये धन-याचनाकी कामनासे मैं धनिकोंके पास जा रहा हूँ।'

**नारायणने कहा—** द्विज ! निर्धनताके कारण आपने दीर्घकालसे भिक्षा-वृत्ति अपना रखी है, इसकी निवृत्तिके लिये सत्यनारायणव्रत कलियुगमें सर्वोत्तम उपाय है। इसलिये मेरे कथनके अनुसार आप कमलनेत्र भगवान् सत्यनारायणके चरणोंकी शरण-ब्रह्मण करें, इससे दारिद्र्य, शोक और सभी संतापोंका विनाश होता है और मोक्ष भी प्राप्त होता है।

करुणामूर्ति भगवान्के इन वचनोंको सुनकर ब्राह्मण शतानन्दने पूछा—'ये सत्यनारायण कौन हैं ?'

**ब्राह्मणरूपधारी भगवान् बोले—** नाना रूप धारण करनेवाले, सत्यव्रत, सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले तथा निरञ्जन वे देव इस समय विप्रका रूप धारणकर तुम्हारे सामने आये हैं। इस महान् दुःखरूपी संसार-सागरमें पड़े हुए प्राणियोंको तारनेके लिये भगवान्के चरण नैकरूप हैं। जो बुद्धिमान् व्यक्ति हैं, वे भगवान्की शरणमें जाते हैं, किन्तु विषयोंमें व्याप्त विषयबुद्धिवाले व्यक्ति भगवान्की शरणमें न जाकर इसी संसार-सागरमें पड़े रहते हैं'। इसलिये द्विज ! संसारके कल्याणके लिये विविध उपचारोंसे भगवान् सत्यनारायण-

देवकी पूजा, आराधना तथा ध्यान करते हुए तुम इस व्रतको प्रकाशमें लाओ।

विप्ररूपधारी भगवान्के ऐसा कहते ही उस ब्राह्मण शतानन्दने मेथोंके समान नीलवर्ण, सुन्दर चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म लिये हुए और पीताम्बर धारण किये हुए, नवीन विकसित कमलके समान नेत्रवाले तथा मन्द-मन्द मधुर मुसकानवाले, वनमालावुक्त और धौरोंके द्वारा घुम्पित चरण-कमलवाले पुरुषोत्तम भगवान् नारायणके सङ्काट दर्शन किये।

भगवान्को खण्डी सुनने और उनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेसे उस विप्रके सभी अङ्ग पुलकित हो उठे, आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये। उसने भूमिपर गिरकर भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और गद्गद वाणीसे वह उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—

संसारके स्वामी, जगत्के कारणके भी कारण, अनाद्योक्ति तथा, कल्याण-मङ्गलको देनेवाले, शरण देनेवाले, पुण्यरूप, पवित्र, अण्यक्त तथा व्यक्त होनेवाले और आधिभौतिक, अधिदैविक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकारके तापोका समूल उच्छेद करनेवाले भगवान् सत्यनारायणको मैं प्रणाम करता हूँ। इस संसारके रक्षयिता सत्यनारायणदेवको नमस्कार है। विश्वके भरण-पोषण करनेवाले शुद्ध सत्यस्वरूपको नमस्कार है तथा विश्वका विनाश करनेवाले कराल महाकालस्वरूपको नमस्कार है। सम्पूर्ण संसारका मङ्गल करनेवाले आत्ममूर्तिस्वरूप है भगवान् ! आपको नमस्कार है। आज मैं धन्य हो गया, पुण्यवान् हो गया, आज मेरा जन्म लेना सफल हो गया, जो कि मन-वाणीसे अगम-अगोचर आपका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। मैं अपने भाग्यकी क्या सराहना करूँ। न जाने मेरे किस पुण्यकर्मका यह फल था, जो मुझे आपके दर्शन हुए। प्रभो ! आपने क्रियाहीन इस मन्द-बुद्धिके शरीरको सफल कर दिया'।

लोकनाथ ! रमापते ! किस विधिसे भगवान् सत्य-

१-दुःखोदीर्घनिमग्नानां तद्विजयनी हते। कुशलः शरणं यच्छि केने विषयव्यसिक्तः ॥ (प्रतिसर्गपूर्व २।२५।१०)

२-प्रणमामि जगन्नाथं जगत्कारणकारकान्। अनाद्यन्तरे सिद्धं शतानन्दनं शुचिम् ॥

अव्यक्तं व्यक्ततां यतः तावन्नयिष्येवम् ॥

नमः सत्यनारायणाय नमः नमः शुद्धसत्यं विश्वस्य भवे। कल्यणं कल्यणं विश्वस्य ह्ये नमस्ते जगन्मङ्गलायाममूर्ते ॥

नारायणका पूजन करना चाहिये, विभी ! कृपाकर उसे भी अन्न बतायें। संसारको मोहित करनेवाले भगवान् नारायण मधुर वाणीमें बोले—‘विप्रेन्द्र ! मेरी पूजामें बहुत अधिक धनकी आवश्यकता नहीं, अनायास जो धन प्राप्त हो जाय, उसीसे श्रद्धापूर्वक मेरा यजन करना चाहिये। जिस प्रकार मेरी स्तुतिसे, स्मृतिसे ग्राह-प्रसन्न गजेन्द्र, अजामिल संकटसे मुक्त हो गये, इसी प्रकार इस व्रतके आश्रयसे मनुष्य तत्काल क्लेशमुक्त हो जाता है। इस व्रतकी विधिको सुनें—

अभीष्ट कामनाकी सिद्धिके लिये पूजाकी सामग्री एकत्रकर विधिपूर्वक भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। सवा सेरके लगभग गोधूम-चूर्णमें दूध और शक्कर मिलाकर, उस चूर्णकी धृतसे युक्तकर हरिकों निवेदित करना चाहिये, यह भगवान्को अत्यन्त प्रिय है। पञ्चमूत्रके द्वारा भगवान् शालग्रामको स्नान कराकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा ताम्बूलदि उपचारोंसे मनोज्ञद्वारा उनकी अर्चना करनी चाहिये। अनेक मिश्रण तथा भक्ष्य-भोग्य पदार्थों एवं ऋतुकारलोद्भूत विविध फलों तथा फूलोंसे भक्ति-पूर्वक पूजा करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणों तथा स्वजनैक साथ मेरी कथा, राजा (तुल्लाभज) के इतिहास, भीलोंकी और वणिक् (साधु) की कथाको आदरपूर्वक श्रवण करना चाहिये। कथाके अनन्तर भक्तिपूर्वक सत्यदेवको प्रणामकर प्रसन्नता वितरण करना चाहिये। तदनन्तर भोजन करना चाहिये। मेरी प्रसन्नता द्रव्यादिसे नहीं, अपितु श्रद्धा-भक्तिसे ही होती है।

विप्रेन्द्र ! इस प्रकार जो विधिपूर्वक पूजा करते हैं, वे पुत्र-पौत्र तथा धन-सम्पत्तिसे युक्त होकर श्रेष्ठ भोगैक उपभोग करते हैं और अन्तमें मेरा सान्निध्य प्राप्त कर वे स्वयं आनन्दपूर्वक रहते हैं। व्रती जो-जो कामना करता है, वह उसे

अवश्य ही प्राप्त हो जाती है।

इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और वे ब्राह्मण भी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। मन-ही-मन उन्हें प्रणाम कर वे भिक्षाके लिये नगरकी ओर चले गये और उन्होंने मनमें यह निश्चय किया कि ‘आज भिक्षामें जो धन मुझे प्राप्त होगा, मैं उससे भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करूँगा।’

उस दिन अनायास बिना माँगी ही उन्हें प्रचुर धन प्राप्त हो गया। वे आश्चर्यचकित हो अपने घर आये। उन्होंने सारा कृतज्ञ अपनी धर्मपत्नीको बताया। उसने भी सत्यनारायणके व्रत-पूजाका अनुमोदन किया। वह पतिकी आज्ञासे श्रद्धापूर्वक बाजारसे पूजाकी सभी सामग्रियोंको ले आयी और अपने धनु-बाण्यों तथा पट्टोसियोंको भगवान् सत्यनारायणकी पूजामें सम्मिलित होनेके लिये बुला ले आयी। अनन्तर शतानन्दने भक्तिपूर्वक भगवान्की पूजा की। कथाकी सम्पत्तिपर प्रसन्न होकर उनकी कामनाओंकी पूर्ण करनेके उद्देश्यसे भक्तवत्सल भगवान् सत्यनारायणदेव प्रकट हो गये। उनका दर्शनकर ब्राह्मण शतानन्दने भगवान्से इस लोकमें तथा परलोकमें सुख तथा पराधत्तकी याचना की और कहा—‘हे भगवन् ! आप मुझे अपना दास बना लें।’ भगवान् भी ‘तथास्तु’ कहकर अन्तर्धान हो गये। यह देखकर कथामें आये सभी जन अत्यन्त विस्मित हो गये और ब्राह्मण भी कृतकृत्य हो गया। वे सभी भगवान्को दण्डवत् प्रणामकर आदरपूर्वक प्रसन्न ग्रहणकर ‘यह ब्राह्मण धन्य है, धन्य है’ इस प्रकार कहते हुए अपने-अपने घर चले गये। तभीसे लोकमें यह प्रचार हो गया कि भगवान् सत्यनारायणका व्रत अभीष्ट कामनाओंकी सिद्धि प्रदान करनेवाला, क्लेशनाशक और भोग-मोक्षको प्रदान करनेवाला है। (अध्याय २५)

### [ सत्यनारायणव्रत-कथाका द्वितीय अध्याय ]

—१६००—

### सत्यनारायणव्रत-कथामें राजा चन्द्रचूडका आख्यान

सूतजी बोले—ऋषियो ! प्राचीन कालमें केदारनाथके प्रज्ज्वलत्त राजा रहते थे। वे अत्यन्त शान्त-स्वभाव, मणिपूरक नामक नगरमें चन्द्रचूड नामक एक धार्मिक तथा मनुष्याधी, धीर-प्रवृत्ति तथा भगवान् नारायणके भक्त थे।

धनोऽस्यैव कृती धनो भवेज्ज सकलं मम । यद्वन्द्येऽप्येको यत्नं मम प्रत्यक्षमागतः ॥

दिष्टं किं वर्णयामाहो न जाने कस्य ज्ञं फलम् । किमप्यहं नन्दस्य देहोऽयं फलवान् कृतः ॥

(प्रतिसर्गपूर्व २।२५।१५—१९)



विन्ध्यदेशके म्लेच्छगण उनके शत्रु हो गये। उस राजावर उन म्लेच्छोंसे अस-शस्त्रोंद्वारा भयानक युद्ध हुआ। उस युद्धमें राजा चन्द्रचूड़की विशाल चतुरङ्गिणी सेना अधिक नष्ट हुई, किन्तु कूट-युद्धमें निपुण म्लेच्छोंकी सेनाकी क्षति बहुत कम हुई। युद्धमें दम्भी म्लेच्छोंसे परास्त होकर राजा चन्द्रचूड़ अपना राष्ट्र छोड़कर अकेले ही वनमें चले गये। तोर्यटनके बहाने इधर-उधर घूमते हुए वे काशीपुरीमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि घर-घर सत्यनारायणकी पूजा हो रही है और यह काशी नगरी द्वारकाके समान ही भव्य एवं समृद्धिरज्जवी हो गयी है।

वहाँकी समृद्धि देखकर चन्द्रचूड़ विस्मित हो गये और उन्होंने सदानन्द (शतानन्द) ब्राह्मणके द्वारा की गयी सत्यनारायण-पूजाकी प्रसिद्धि भी सुनी, जिसके अनुसरणसे सभी शील एवं धर्मसे समृद्ध हो गये थे। राजा चन्द्रचूड़ भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनेवाले ब्राह्मण सदानन्द (शतानन्द) के पास गये और उनके चरणोंपर गिरकर उनसे सत्यनारायण-पूजाकी विधि पूछी तथा अपने राज्यभट्ट होनेकी कथा भी बतलायी और कहा—‘ब्रह्मन् ! लक्ष्मीपति भगवान् जनार्दन जिस व्रतसे प्रसन्न होते हैं, पापके नाश करनेवाले उस व्रतको बतलाकर आप मेरा उद्धार करें।’

सदानन्द (शतानन्द)ने कहा—‘राजन् ! क्षीयति भगवान्को प्रसन्न करनेवाला सत्यनारायण नामक एक ब्रह्म व्रत है, जो समस्त दुःख-शोकवदिक शम्भक, धन-धान्यक

प्रवर्धक, सौभाग्य और संततिक प्रदाता तथा सर्वत्र विजय-प्रदायक है। राजन् ! जिस किसी भी दिन प्रदोषकालमें इनके पूजन आदिक अव्ययजन करना चाहिये। बदलीदलके सन्ध्यासे मण्डित, तोरणोंसे अलंकृत एक मण्डपकी रचनाकर उसमें पाँच कलशोंकी स्थापना करना चाहिये और पाँच ध्वजारें भी लगानी चाहिये। व्रतीको चाहिये कि उस मण्डपके मध्यमें ब्राह्मणोंके द्वारा एक रमणीय वेदिकाकी रचना करवाये। उसके ऊपर स्वर्णसे मण्डित शिलारूप भगवान् नारायण (शालग्राम) को स्थापित कर प्रेम-भक्तिपूर्वक चन्दन, पुष्प आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे। भगवान्का ध्यान करते हुए भूमिपर शयनकर सात रात्रि व्यतीत करे।

यह सुनकर राजा चन्द्रचूड़ने काशीमें ही भगवान् सत्यनारायणकी शीघ्र ही पूजा की। प्रसन्न होकर रात्रिमें भगवान्ने राजाको एक उत्तम तलवार प्रदान की। शत्रुओंको नष्ट करनेवाली तलवार प्राप्त कर राजा ब्राह्मणश्रेष्ठ सदानन्दको प्रणाम कर अपने नगरमें आ गये तथा छः हजार म्लेच्छ दस्त्रुओंको मारकर उनसे अपार धन प्राप्त किया और नर्मदाके मनेहर तटपर पुनः भगवान् श्रीहरिकी पूजा की। वे राजा प्रत्येक मासको पूर्णिमाके प्रेम और भक्तिपूर्वक विधि-विधानसे भगवान् सत्यदेवकी पूजा करने लगे। उस व्रतके प्रभावसे वे लक्ष्यों धर्मोंके अधिपति हो गये और साठ वर्षतक राज्य करते हुए अन्तमें उन्होंने विष्णुलोकको प्राप्त किया। (अध्याय २६)

### [ सत्यनारायण-व्रत-कथाका तृतीय अध्याय ]

#### सत्यनारायण-व्रतके प्रसंगमें लकड़हारोंकी कथा

सुतजी बोले—ऋषियो ! अब इस सम्बन्धमें सत्यनारायण-व्रतके आचरणसे कृतकृत्य हुए पितृस्तेकी कथा सुनें। एक समयकी बात है, कुछ निषादगण वनसे लकड़ियाँ काटकर नगरमें लाकर बेचा करते थे। उनमेंसे कुछ निषाद काशीपुरीमें लकड़ी बेचने आये। उन्होंनेसे एक बहुत प्यारा लकड़हार विष्णुदास (शतानन्द) के आश्रममें गया। वहाँ उसने जल पिया और देखा कि ब्राह्मणलोग भगवान्की पूजा कर रहे हैं। भिक्षुक शतानन्दका वैभव देखकर वह चकित हो गया और सोचने लगा—‘इतने दरिद्र ब्राह्मणके पास यह अपार वैभव कहाँसे आ गया ? इसे तो आजतक मैंने

अकिञ्चन ही देखा था। आज यह इतना महान् धनी कैसे हो गया ?’ इसपर उसने पूछा—‘महाराज ! आपको यह ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हुआ और आपको निर्धनतासे मुक्ति कैसे मिली ? यह बतानेका कष्ट करें, मैं सुनना चाहता हूँ।’

शतानन्दने कहा—‘हाँ ! यह सब सत्यनारायणकी आराधनाका फल है, उनकी आराधनासे क्या नहीं होता। भगवान् सत्यनारायणकी अनुकम्पाके बिना किञ्चित् भी सुख प्राप्त नहीं होता।

निषादने उनसे पूछा—‘महाराज ! सत्यनारायण भगवान्का क्या माहात्म्य है ? इस व्रतकी विधि क्या है ? आप

उनकी पूजाके सभी उपचारोंका वर्णन करें, क्योंकि उपकार-परायण संत-महात्म्य अपने हृदयमें सबके लिये समान भाव रखते हैं, किसीसे कोई कल्याणकारी बात नहीं छिपाते<sup>१</sup>।

**शतानन्द बोले—**एक समयकी बात है, केदारखेत्रके मणिपूरक नगरमें रहनेवाले राजा चन्द्रचूड मेरे आश्रममें आये और उन्होंने मुझसे भगवान् सत्यनारायण-व्रत-कथाके विधानको पूछा। हे निषादपुत्र! इसपर मैंने जो उन्हें बताया था, उसे तुम सुनो—

सकाम भावसे अथवा निष्कामभावसे किसी भी प्रकार भगवान्की पूजाका मनमें संकल्पकर उनकी पूजा करनी चाहिये। सवा सेर गोधूमके चूर्णको मधु तथा सुगन्धित घृतसे संस्कृतकर नैवेद्यके रूपमें भगवान्को अर्पण करना चाहिये। भगवान् सत्यनारायण (शालग्राम) को पञ्चामृतसे स्नान कराकर चन्दन आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। घण्टा, अण्ड, संवाक, दधि, दुग्ध, क्षतुफल, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य आदिसे भक्तिपूर्वक भगवान्की पूजा करनी चाहिये। यदि वैभव रहे तो और अधिक उत्साह एवं समारोहसे पूजा करनी चाहिये। भगवान् भक्तिसे जितना प्रसन्न होते हैं, उतना विपुल इन्द्रियोंसे प्रसन्न नहीं होते। भगवान् सम्पूर्ण विश्वके स्वामी एवं आपन्नकाम हैं, उन्हें किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, केवल भक्तोंके द्वारा अर्पित की हुई वस्तुको वे ग्रहण करते हैं। इसीलिये दुर्योधनके द्वारा की जानेवाली राजपूजाको छोड़कर भगवान्ने विदुरजीके आश्रममें आकर शाक-भाजी और पूजाकी ग्रहण किया। सुराम्भके तण्डुल-कणको स्वीकार कर भगवान्ने उन्हें मनुष्यके लिये सर्वथा दुर्लभ सम्पत्तियाँ प्रदान कर दीं। भगवान् केवल

प्रोतिपूर्वक भक्तियों ही अपेक्षा करते हैं। गोप, गृध, वणिक्, व्याध, हनुमान्, विभीषणके अतिरिक्त अन्य वृत्रासुर आदि दैत्य भी नारायणके सान्निध्यको प्राप्त कर उनके अनुग्रहसे आज भी आनन्दपूर्वक रह रहे हैं<sup>२</sup>।

**निषादपुत्र!** मेरी बात सुनकर उस राजा चन्द्रचूडने पूजा-सामग्रियोंको एकत्रितकर आदरपूर्वक भगवान्की पूजा की; फलस्वरूप वे अपना नष्ट हुआ इन्द्र्य प्राप्तकर आज भी अमरन्दित हो रहे हैं। इसलिये तुम भी भक्तिसे सत्यनारायणकी उपासना करो। इससे तुम इस लोकमें सुखको प्राप्त कर अन्तमें भगवान् विष्णुको सान्निध्य प्राप्त करोगे।

यह सुनकर वह निषाद कृतकृत्य हो गया। विप्रश्रेष्ठ शतानन्दको प्रणम कर अपने घर जाकर उसने अपने सान्निध्यको भी हरि-सेवाका माहात्म्य बताया। उन सबने भी प्रसन्नचित हो अर्द्धपूर्वक यह प्रतिज्ञा की कि आज काष्टको बेचकर हमलोगोंको जितना धन प्राप्त होगा, उससे अपने सभी यन्त्र-वायुधोंके साथ अर्द्ध एवं विधिपूर्वक हम सत्य-नारायणकी पूजा करेंगे। उस दिन उन्हें कष्ट बेचनेसे पहलेकी अपेक्षा चौगुना धन मिला। घर आकर उन सबने सारी बात खियोंकी बलासे और फिर सबने मिलकर आदरपूर्वक भगवान् सत्यनारायणकी पूजा की और कथाका श्रवण किया तथा भक्तिपूर्वक भगवान्का प्रसाद सबको वितरितकर स्वयं भी ग्रहण किया। पूजाके प्रभावसे पुर, पत्नी आदिसे समन्वित निषादगणोंने पृथ्वीपर इन्द्र और श्रेष्ठ ज्ञान-दृष्टिको प्राप्त किया। द्विजश्रेष्ठ! उन सबने यथेष्ट भोगोंका उपभोग किया और अन्तमें वे सभी योगिजनोंके लिये भी दुर्लभ वैश्वव्यापको प्राप्त हुए। (अध्याय २७)

### [ सत्यनारायणव्रत-कथाका चतुर्थ अध्याय ]

१-साधूनां समीपितानामुपकारकत्वं सत्तम्। न गोपं विद्यते विधिघातकस्योत्तमज्ञम् ॥

(प्रतिसर्गपर्व २।२७।८)

२-न तुष्येद्व्यसम्भार्यकत्वा केवलत्वा यथा। भगवान् कीदः पूर्णं न धनं वृणुष्वन् कर्षजम् ॥  
दुर्योधनकृतां त्यक्त्वा राजपूजां जनार्दनः। विदुरस्याश्रमे वासमतिर्धो जगृहो विभुः ॥  
सुराम्भसं दुलकणा जगन्नाथं मानुषदुर्लभः। सम्पदेऽप्यदानीं श्रौत्वा भक्तिमाजनेष्यते ॥  
गोपे गुप्ते वसिष्ठव्याधो हनुमान् सविभीषणः। वेऽन्ने पालयन् दैत्य वृत्राकाशकदम्बः ॥  
नारायणान्तिके ज्ञायं सेततेऽस्मादि यद्वत् ॥

(प्रतिसर्गपर्व २।२७।१५—१९)

## सत्यनारायण-व्रतके प्रसंगमें साधु वणिक् एवं जामाताकी कथा

**सुतजी बोले—**ऋषियो ! अब मैं एक साधु वणिक्की कथा कहता हूँ। एक बार भगवान् सत्यनारायणका भक्त मणिपूरक नगरका स्वामी महावशशी राजा चन्द्रपूड अपने प्रजाओंके साथ व्रतपूर्वक सत्यनारायण भगवान्का पूजन कर रहा था, उसी समय रत्नपुर (रत्नसारपुर) निवासी महाधनी साधु वणिक् अपनी नौकाको धनसे परिपूर्ण कर नदी-तटसे यात्रा करता हुआ वहाँ आ पहुँचा। वहाँ उसने अनेक ग्रामवासियोंसहित मणि-मुक्तसे निर्मित तथा श्रेष्ठ कितनादिसे विभूषित पूजन-मण्डपको देखा, गीत-वाद्य आदिकी ध्वनि तथा वेदध्वनि भी वहाँ उसे सुनायी पड़ी। उस रम्य स्थानको देखकर साधु वणिक्ने अपने नौविकको आदेश दिया कि यहींपर नौका रोक दो। मैं यहाँकि आयोजनको देखना चाहता हूँ। इसपर नौविकने वैसा ही किया। तबसे उतरकर उस वणिक्ने लोगोंसे जानकारी प्राप्त की और वह सत्यनारायण भगवान्की कथा-मण्डपमें गया तथा वहाँ उसने उन सभीसे पूछा—‘महाशय ! आपलोग यह क्यों-सा पुण्यकार्य कर रहे हैं ?’ इसपर उन लोगोंने कहा—‘हमलोग अपने माननीय राजाके साथ भगवान् सत्यनारायणकी पूजा-कथाका आयोजन कर रहे हैं। इसी व्रतके अनुष्ठानसे इन्हे निष्कण्टक राज्य प्राप्त हुआ है। भगवान् सत्यनारायणकी पूजासे धनकी कामनावाला द्रव्य-लाभ, पुत्रकी कामनावाला उत्तम पुत्र, ज्ञानकी कामनावाला ज्ञान-दृष्टि प्राप्त करता है और भगवान् मनुष्य सर्वथा निर्भय हो जाता है। इनकी पूजासे मनुष्य अपनी सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।’

यह सुनकर उसने गलेमें वस्त्रको कई बार लपेटकर भगवान् सत्यनारायणको दण्डवत् प्रणाम कर सभासदोंको भी सादर प्रणाम किया और कहा—‘भगवन् ! मैं संततिहीन हूँ, अतः मेरा सारा ऐश्वर्य तथा सारा उद्यम सभी व्यर्थ है, हे कृपासागर ! यदि आपकी कृपासे पुत्र या कन्या मैं प्राप्त करूँगा तो स्वर्णमयी पताका बनाकर आपको पूजा करूँगा।’ इसपर सभासदोंने कहा—‘आपकी कामना पूर्ण हो।’ तदनन्तर उसने भगवान् सत्यनारायण एवं सभासदोंको पुनः प्रणामकर

प्रसन्न ग्रहण किया और हृदयसे भगवान्का चिन्तन करता हुआ वह साधु वणिक् सबके साथ अपने घर गया। घर आनेपर माङ्गलिक द्रव्योंसे स्त्रियोंने उसका यथोचित स्वागत किया। साधु वणिक् अतिशय आश्चर्यके साथ मङ्गलमय अन्न-पुरमें गया। उसकी पतिव्रता पत्नी लीलावतीने भी उसकी स्त्रियोचित सेवा की। भगवान् सत्यनारायणकी कृपासे समय आनेपर बन्धु-बान्धवोंको आनन्दित करनेवाली तथा कमलके समान नेत्रोंवाली उसे एक कन्या उत्पन्न हुई। इससे साधु वणिक् अतिशय आनन्दित हुआ और उस समय उसने पर्याप्त धनका दान किया। वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर उसने कन्याके व्रतकर्म आदि मङ्गलकृत्य सम्पन्न किये। उस बालिकाकी जन्मकुण्डली बनवाकर उसका नाम कलावती रखा। कलानिधि चन्द्रमाकी कलाके समान वह कलावती नित्य बढ़ने लगी। आठ वर्षकी बालिका गौरी, नौ वर्षकी रोहिणी, दस वर्षकी कन्या तथा उसके अग्रे (अर्थात्) बारह वर्षकी बालिका प्रौढ़ा या रजसला कहलाती है<sup>१</sup>। समयानुसार कलावती भी बढ़ते-बढ़ते बिकाहके योग्य हो गयी। उसका पिता कलावतीकी बिकाह-योग्य जानकर उसके सम्बन्धकी चिन्ता करने लगा।

काञ्चनपुर नगरमें एक शंखपति नामका वणिक् रहता था। वह कुत्सीन, रूपवान्, सम्पत्तिशाली, शील और उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न था। अपनी पुत्रीके योग्य उस वरको देखकर साधु वणिक्ने शंखपतिका वरण कर लिया और शुभ लग्नेमें अनेक माङ्गलिक उपचारोंके साथ अभिके सौनिधायमें वेद, वाद्य आदि ध्वनिके साथ यथाविधि कन्या उसे प्रदान कर दी, साथ ही मणि, मोती, मृगा, वस्त्राभूषण आदि भी उस साधु वणिक्ने मङ्गलके लिये अपनी पुत्री एवं जामाताको प्रदान किये। साधु वणिक् अपने दाम्पत्यको अपने घरमें रखकर उसे पुत्रके समान मानता था और वह भी पिताके समान साधु वणिक्का आदर करता था। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। साधु वणिक्ने भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनेका पहलें यह संकल्प लिया था कि ‘संतान प्राप्त होनेपर मैं

१-अष्टवर्षी, भ्रुकेंद्रगौरी नववर्षी व रोहिणी॥

दशवर्षी भवेत् कन्या ततः प्रौढा रजसला। (श्रीसर्गार्च २।२८।२१-२२)

भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करूँगा' पर वह इस बातको भूल ही गया। उसने पूजा नहीं की।

कुछ दिनोंके बाद वह अपने जामातके साथ व्यापारके निमित्त सुदूर नर्मदाके दक्षिण तटपर गया और वहाँ व्यापारनरत होकर बहुत दिनोंतक ठहरा रहा। पर वहाँ भी उसने सत्यदेवकी किसी प्रकार भी उपासना नहीं की और परिणामस्वरूप भगवान्के प्रकोपका भाजन बनकर वह अनेक संकटोंमें प्रसक्त हो गया। एक समय कुछ चोरोंने एक निस्तब्ध रात्रिमें वहकि राजमहलसे बहुत-सा द्रव्य तथा मोतीकी मालाको चुरा लिया। राजाने चोरीकी बात ज्ञात होनेपर अपने राजपुरुषोंको बुलाकर बहुत फटकारा और कहा कि 'यदि तुमलोगोंने चोरीका पता लगाकर साथ धन यहाँ दो दिनोंमें उपस्थित नहीं किया तो तुमहारी असावधानीके लिये तुम्हें मृत्यु-दण्ड दिया जायगा।' इसपर राजपुरुषोंने सर्वत्र व्यापक छान-बीन की, परंतु बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे उन चोरोंका पता नहीं लगा सके। फिर वे सभी एकत्रित होकर विचार करने लगे—'अच्छो! बड़े कष्टकी बात है, चोर तो मिला नहीं, धन भी नहीं मिला, अब राजा हमलोगोंको परिवारके साथ मार डालेगा। मरनेपर भी हमें प्रेत-योनि प्राप्त होगी। इसलिये अब तो यही बेवकाल है कि 'हमलोग पवित्र नर्मदा नदीमें डूबकर मर जायें। क्योंकि नर्मदाके

प्रभावसे हमें शिवलोककी प्राप्ति होगी।' वे सभी राजपुरुष आपसमें ऐसा निश्चयकर नर्मदा नदीके तटपर गये। वहाँ उन्होंने उस साधु खणिकुको देखा और उसके कण्ठमें मोतीकी माला भी देखी। उन्होंने उस साधु खणिकुको ही चोर समझ लिया और वे सभी प्रसन्न होकर उन दोनों (साधु खणिकु और उसके जामात) को धनसहित पकड़कर राजाके पास ले आये। भगवान् सत्यनारायण भी पूजा करनेमें असत्यका आश्रय लेनेके कारण खणिकुके प्रतिकूल हो गये थे। इसी कारण राजाने भी विचार किये बिना ही अपने सेवकोंको आदेश दिया कि इनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर खजानेमें जमा कर दो और इन्हें दण्डकूपी लगाकर जेलमें डाल दो। सेवकोंने राजाज्ञाका पालन किया। खणिकुकी बातोंपर किसीने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अपने जामातके साथ वह खणिकु अत्यन्त दुःखित हुआ और विलाप करने लगा—'हा पुत्र! मेरा धन अब कहाँ चला गया, मेरी पुत्री और पत्नी कहाँ है? विधाताकी प्रतिकूलता तो देखो। हम दुःख-सागरमें निमग्न हो गये। अब इस संकटसे हमें कौन पार करेगा? मैंने धर्म एवं भगवान्को विरुद्ध आचरण किया। यह उन्हीं कर्मोंका प्रभाव है।' इस प्रकार विलाप करते हुए वे समुद्र और जामात कई दिनोंतक जेलमें भीषण संतापका अनुभव करते रहे। (अध्याय २८)

[ सत्यनारायण-व्रत-कथाका प्रथम अध्याय ]

### सत्य-धर्मके आश्रयसे सबका उद्धार (लीलावती एवं कलावतीकी कथा)

सूतजीने कहा—ऋषियो! आध्यात्मिक, अधिदैविक तथा आधिभौतिक—इन तीनों तपोको हरण करनेवाले भगवान् विष्णुके मङ्गलमय चरित्रको जो सुनते हैं, वे सदा हरिके धाममें निवास करते हैं, किंतु जो भगवान्का आश्रय नहीं ग्रहण करते—उन्हें विस्मृत कर देते हैं, उन्हें कष्टमय नरक प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुकी पत्नीका नाम कमला (लक्ष्मी) है। इनके चार पुत्र हैं—धर्म, यज्ञ, राजा और चोर। ये सभी लक्ष्मी-प्रिय हैं अर्थात् ये लक्ष्मीको इच्छा करते हैं। ब्राह्मणों और अतिथियोंको जो दान दिया जाता है, वह धर्म कहा जाता है, उसके लिये धनकी आवश्यकता है। स्वाहा और स्वाधाके द्वारा जो देवयज्ञ और पितृयज्ञ किया जाता है, वह

यज्ञ कहा जाता है, उसमें भी धनकी अपेक्षा होती है। धर्म और यज्ञकी रक्षा करनेवाला राजा कहलाता है, इसलिये राजाको भी लक्ष्मी—धनकी अपेक्षा रहती है। धर्म और यज्ञको नष्ट करनेवाला चोर कहलाता है, वह भी धनकी इच्छासे चोरी करता है। इसलिये ये चारों किसी-न-किसी रूपमें लक्ष्मीके किन्नर हैं। परंतु जहाँ सत्य रहता है, वहाँ धर्म रहता है और वहाँ लक्ष्मी भी स्थिर-रूपमें रहती है।

वह खणिकु सत्य-धर्मसे च्युत हो गया था (उसने सत्यनारायणका व्रत न कर प्रतिज्ञा-भंग की थी) इसीलिये राजाने उस खणिकुके घरसे भी साथ धन हरण करवा लिया और घरमें चोरी भी हो गयी। बेचारी उसकी पत्नी लीलावती



एवं पुत्री कलावतीके साथ अपने वस्त्र-आभूषण तथा मकान बेचकर जैसे-तैसे जीवन-यापन करने लगी।

एक दिन उसकी कन्या कलावती भूखसे व्याकुल होकर किसी ब्राह्मणके घर गयी और वहाँ उसने ब्राह्मणको भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करते हुए देखा। जगन्नाथ सत्यदेवकी प्रार्थना करते हुए देखकर उसने भी भगवान्से प्रार्थना की—‘हे सत्यनारायणदेव ! मेरे पिता और पति यदि घरपर आ जायेंगे तो मैं भी आपकी पूजा करूँगी।’ उसकी बात सुनकर ब्राह्मणोंने कहा—‘ऐसा ही होगा।’ इस प्रकार ब्राह्मणोंसे आश्वासनयुक्त आशीर्वाद प्राप्त कर वह अपने घर वापस आ गयी। रात्रिमें देरसे लौटनेके कारण मातने उससे झटिते हुए पूछा कि ‘बेटी ! इतनी रात तक तुम कहाँ रही ?’ इसपर उसने उसे प्रसाद देते हुए सत्यनारायणके पूजा-वृत्तान्तको बताया और कहा—‘माँ ! मैंने वहाँ सुन कि भगवान् सत्यनारायण कलियुगमें प्रत्यक्ष फल देनेवाले हैं, उनकी पूजा मनुष्यगण सदा करते हैं। माँ ! मैं भी उनकी पूजा करना चाहती हूँ, तुम मुझे आज्ञा प्रदान करो। मेरे पिता और स्वामी अपने घर आ जायें, यही मेरी कामना है।’

रातमें ऐसा मनमें निश्चयकर प्रातः वह कलावती शीलपाल नामक एक वणिक्के घरपर धन प्राप्त करनेकी इच्छासे गयी और उसने कहा—‘बन्धो ! थोड़ा धन दे, जिससे मैं भगवान् सत्यनारायणकी पूजा कर सकूँ।’ यह सुनकर शीलपालने उसे पाँच अश्लीकियाँ दीं और कहा—‘कलावती ! तुम्हारे पिताका कुछ ऋण शेष था, मैं उन्हे ही वापस कर रहा हूँ, इसे देकर आज मैं उद्धार हो गया।’ यह कहकर शीलपाल गया—तीर्थमें श्राद्ध करने चला गया। कन्याने अपनी माँ लीलावतीके साथ उस द्रव्यसे कल्याणप्रद सत्यनारायण-व्रतका श्रद्धा-पत्तिके विधिपूर्वक अनुष्ठान किया। इससे सत्यनारायण भगवान् संतुष्ट हो गये।

उधर नर्मदा-तटवासी राजा अपने राजमहलमें सो रहा था। रात्रिके अन्तिम प्रहरमें ब्राह्मण-वेषधारी भगवान् सत्यनारायणने स्वप्नमें उससे कहा—‘राजन् ! तुम शीघ्र उठकर उन निर्दोष वणिकोंको बन्धनमुक्त कर दो। वे दोनों बिना अपराधके ही बंदी बना लिये गये हैं। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।’ इतना कहकर वे

अन्तर्हित हो गये। राजा निद्रासे सहसा जग उठा। वह परमात्माका स्मरण करने लगा। प्रातःकाल राजा अपनी सभामें आया और उसने अपने मन्त्रीसे देखे गये स्वप्नका फल पूछा। महामन्त्रीने भी राजासे कहा—‘राजन् ! बड़े आश्चर्यकी बात है, मुझे भी आज ऐसा ही स्वप्न दिखलायी पड़ा। अतः उस वणिक् और उसके जामाताको बुलाकर भलीभाँति पूछ-ताछ कर लेनी चाहिये।’ राजाने उन दोनोंको बंदी-गृहसे बुलवाया और पूछा—‘तुम दोनों कहाँ रहते हो और तुम कौन हो ?’ इसपर साधु वणिक्ने कहा—‘राजन् ! मैं रत्नपुरका निवासी एक वणिक् हूँ। मैं व्यापार करनेके लिये यहाँ आया था। पर देववरा आपके सेवकोंने हमें चोर समझकर पकड़ लिया। साथमें यह मेरा जामाता है। बिना अपराधके ही हमें मर्नि-मुत्तकके घोरी लगी है। राजेन्द्र ! हम दोनों चोर नहीं हैं। आप भलीभाँति विचार कर लें।’ उसकी बातें सुनकर राजाको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने उन्हें बन्धनमुक्त कर दिया। अनेक प्रकारसे उन्हें अलंकृत कर भोजन कराया और वस्त्र, आभूषण आदि देकर उनका सम्मान किया। साधु वणिक्ने कहा—‘राजन् ! मैंने करणगरमें अनेक कष्ट भोगे हैं, अब मैं अपने नगर जाना चाहता हूँ, आप मुझे आज्ञा दें।’ इसपर राजाने अपने कोषाध्यक्षके माध्यमसे साधु वणिक्की नौका रखी आदिसे परिपूर्ण करवा दी। फिर वह साधु वणिक् अपने जम्मातके साथ राजाद्वारा सम्मानित हो द्विगुणित धन लेकर रत्नपुरकी ओर चला।

साधु वणिक्ने अपने नगरके लिये प्रस्थान किया, पर भगवान् सत्यनारायणका पूजन वह उस समय भी भूल गया। भगवान् सत्यदेवने जो कलियुगमें तत्काल फल देते हैं, पुनः तपस्वीका रूप धारणकर वहाँ आकर उससे पूछा—‘साधो ! तुम्हारी इस नौकामें क्या है ?’ इसपर साधु वणिक्ने उत्तर दिया—‘आपको देनेके लिये कुछ भी धन मेरे पास नहीं है। नाथमें केवल कुछ लताओंके पत्ते भरे पड़े हैं।’ साधु वणिक्के ऐसा कहनेपर तपस्वीने कहा—‘ऐसा ही होगा।’ इतना कहकर तपस्वी अन्तर्धान हो गये। उनके ऐसा कहते ही नौकामें धनके बदले केवल पत्ते ही दीखने लगे। यह सब देखकर साधु अत्यन्त चिन्तित एवं चिन्तित हो गया, उसे मूर्च्छा-सी आ गयी। वह अनेक प्रकारसे विलाप करने लगा। खजपात होनेके समान



गया। वह हवाके वेगसे हिलते हुए केलेके पत्तेके समान काँपने लगी। हा नाथ ! हा वरन्त ! कहकर विस्फाप करने लगी और कहने लगी—‘हे विधाता ! अपने मुझे पतितसे वियुक्त कर मेरी आशा तोड़ दी। पतिके बिना स्त्रीका जीवन अधूरा एवं निष्फल है।’ कलावती आर्तस्वरमें भगवान् सत्यनारायणसे बोली—‘हे सत्यसिन्धो ! हे भगवान् सत्यनारायण ! मैं अपने पतिके वियोगमें जलमे डूबनेवाली हूँ, आप मेरे अपराधोंको क्षमा करें। पतिको प्रकट कर मेरे प्राणोंकी रक्षा करें।’ (इस प्रकार जब वह अपने पतिके पादुकाओंको लेकर जलमें प्रवेश करनेवाली थी थी) उसी समय आकाशवाणी हुई—‘हे साधो ! तुम्हारी पुत्रीने मेरे प्रसादका अपमान किया है। यदि वह पुनः पर जाकर श्रद्धापूर्वक प्रसादको ग्रहण कर ले तो उसका पति नौकासहित यहाँ अवश्य दीखेगा, चिन्ता मत करो।’ इसपर आश्चर्यचकित

हो कलावतीने वैया ही किया और उसे उसका पति पुनः अपनी नौकासहित दीखने लगा। फिर क्या था ? सभी परस्पर आनन्दसे मिले और पर आकर साधु वणिक्ने एक लाख मुद्राओंसे बड़े समारोहपूर्वक भगवान् सत्यदेवकी पूजा की और आनन्दसे रहने लगा। पुनः कभी भगवान् सत्यदेवकी उपेक्षा नहीं की। उस व्रतके प्रभावसे पुत्र-पौत्रसमन्वित अनेक भोगोंका उपभोग करते हुए सभी स्वर्गलोक चले गये। इस इतिहासको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सुनता है, वह भी विष्णुका अत्यन्त प्रिय हो जाता है। अपनी मनःकामनाकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

**सुतजी बोले—**अधिराजो ! मैंने सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ इस सत्यनारायण-व्रतको कहा। ब्राह्मणके मुखसे निकला हुआ यह व्रत कलिकलमें अतिशय पुण्यप्रद है।

(अध्याय २९)

[ श्रीसत्यनारायण-व्रत-कथाका षष्ठ अध्याय ]

(सत्यनारायण-व्रत-कथा सम्पूर्ण)

—४—

**पितृशर्मा और उनके वंशज—व्याडि, पाणिनि और वररुचि आदिकी कथा**

**अधिराजोने कहा—**भगवन् ! तीनों दुःखोंके विनाश करनेवाली व्रतोंमें सर्वश्रेष्ठ सत्यनारायण-व्रतको हमलोगोंने सुना, अब आपसे हमलोग ब्रह्मचर्यका महत्त्व सुनना चाहते हैं।

**सुतजी बोले—**अधिराजो ! कलियुगमें पितृशर्मा नामका एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था। वह वेदवेदाङ्गोंके तत्वोंको जाननेवाला था और पापकर्मोंमें डरता रहता था। कलियुगके भयंकर समयको देखकर वह बहुत चिन्तित हुआ। उसने सोचा कि किस आश्रमके द्वारा मेरा कल्याण होगा, क्योंकि कलिकलमें संन्यास-मार्ग टप और पाखण्डके द्वारा खण्डित हो गया है, वानप्रस्थ तो समाप्त-सा ही है, वस, कहीं-कहीं ब्रह्मचर्य रह गया है, किन्तु गार्हस्थ्य-जीवनका कर्म सभी कर्मोंमें श्रेष्ठ मान

गया है। अतः इस घोर कलियुगमें मुझे गृहस्थ-धर्मका पालन करनेके लिये विवाह करना चाहिये। यदि भाग्यसे अपनी मनोकामिका अनुसार आचरण करनेवाली स्त्री मिल जाती है, तब मेरा जन्म सफल एवं कल्याणकारी हो जायगा। इस प्रकार विचार करते हुए पितृशर्माने उत्तम पत्नी प्राप्त करनेके लिये विवेचारी जगन्नाथ भगवतोंकी चन्दन आदिसे पूजाकर स्तुति प्रारम्भ की।

पितृशर्माकी स्तुति सुनकर देवी प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने कहा—‘हे दिव्यश्रेष्ठ ! मैंने तुम्हारी स्त्रीके रूपमें विष्णुपरा नामक ब्राह्मणकी कन्याको निर्दिष्ट किया है।’ तदनन्तर पितृशर्मा उस देवी ब्राह्मचारिणीसे विवाह करके यथुरामे निवास करते हुए गृहस्थ-धर्मानुसार जीवन-यापन

१-नमः प्रकृते सर्वार्थैः कैवल्यार्थे नमो नमः । त्रिगुणैश्चमलार्थे सुयोग्ये नमो नमः ॥

महात्म्यजनन्यै च इन्द्रकर्मैः नमो नमः । ब्रह्ममार्तमनुभूय महोत्तराणिममि ॥

पुष्पगुणधै शुद्धार्थे नमो मत्तर्तमे नमः । विद्यायै शुद्धसत्त्वार्थे तत्त्वार्थे मत्तर्तमेव ॥

नमो मत्तर्तमेव ततः शुद्धार्थे नमो नमः । कान्यै यत्तत्त्वमेव नमो मत्तर्तमेव नमः ॥

स्त्रीयै शुद्धलोभ्यै नमो नमो नमः । नमो नमो नमः ॥ (प्रतिसर्गपर्व २।३०।१०—१४)

करने लगा। चारों वेदोंको जाननेवाले उसे चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम थे—ऋक्, यजुष, साम तथा अथर्व। ऋक्के पुत्र व्याडि थे, जो न्याय-शास्त्र-विशारद थे। यजुषके पुत्र लोकविश्रुत भीमसेन हुए। सामके पुत्र पाणिनि हुए जो व्याकरण-शास्त्रमें पारंगत थे और अथर्वकि पुत्र वररुचि हुए।

एक समय वे चारों पितृशर्मकि साथ मगध देशके अधिपति राजा चन्द्रगुप्तकी सभामें गये। अतिशय सम्मानपूर्वक राजाने उन लोगोका पूजन करा। पूछा—‘द्विजगण! कौन-सा ब्रह्मचर्यव्रत श्रेष्ठ है?’ इसपर व्याडिने कहा—‘महाशय! जो व्यक्ति उस परम पुरुषदेवकी न्यायपूर्वक आराधनामें तत्पर रहता है, वह श्रेष्ठ ब्रह्मचारी है।’ भीमसेनने कहा—‘यजन्। जो श्रेष्ठ व्यक्ति यज्ञमें ब्रह्म आदि देवताओंका पूजन करता है और रोचना आदिसे उनका अर्चन एवं तर्पण आदि करता है तथा भगवान्के प्रसादको ग्रहण करता है, वह ब्रह्मचारी है।’ यह सुनकर पाणिनिने कहा—‘यजन्! उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्मृतोसे या परा, पश्यन्ती, मध्यमा खाणीमें शब्दब्रह्मका

आराधक तथा लिङ्ग, धातु एवं गणोंसे समन्वित सूत्रपाठोंसे शब्दब्रह्मकी आराधना करनेवाला सच्चा ब्रह्मचारी है और वही ब्रह्मको प्राप्त करता है।’ यह सुनकर वररुचिने कहा—‘हे मगधाधिपते! जो व्यक्ति उपनीत होकर गुरुकुलमें निवास करता हुआ दण्ड, केश और नखधारी भिक्षार्थी वेदाध्ययनमें तत्पर रहते हुए गुरुकी आज्ञाके अनुसार गुरुके गृहमें निवास करता है, वह ब्रह्मचारी कहा गया है।’

इनके वचनोंको सुनकर पितृशर्मनि कहा कि ‘जो गृहस्थ-धर्ममें रहता हुआ पितरो, देवताओं और अतिथियोंका सम्मान करता है और इन्द्रिय-संयमपूर्वक ऋतुकालमें ही भार्याका उपगमन करता है, वही मुख्य ब्रह्मचारी है।’ यह सुनकर यजने कहा—‘स्वामिन्! कलिकालके लिये आधका ही कथन उचित, सुगम और उत्तम धर्म है, यही मेरा भी मत है।’

यह कहकर वह राजा पितृशर्मका शिष्य हो गया और उसने अन्तर्में सर्वलोकको प्राप्त किया। पितृशर्मा भी भगवान् श्रीहरीका ध्यान करते हुए हिमालय पर्वतपर जाकर योगध्यान-परमण हो गया। (अध्याय ३०)

### महर्षि पाणिनिका इतिवृत्त

**ऋषियोंने पूछा—**भगवन्! सभी तीर्थों, दानों आदि धर्मसाधनोंमें उत्तम साधन क्या है, जिसका अश्रय लेकर मनुष्य क्लेश-सागरको पार कर जाय और मुक्ति प्राप्त कर ले?

**सूतजी बोले—**प्राचीन कालमें सामके एक श्रेष्ठ पुत्र थे, जिनका नाम पाणिनि था। कणादके श्रेष्ठ शास्त्र शिष्योंसे वे पराजित एवं लज्जित होकर तीर्थयात्राके लिये चले गये। प्रायः सभी तीर्थोंमें खान तथा देवता-पितरोंका तर्पण करते हुए वे केदार-क्षेत्रका जल पानकर भगवान् शिवके ध्यानमें तत्पर हो गये। पतोंके आहारपर रहते हुए वे सप्तारण्यमें जल ग्रहण करते थे। फिर उन्होंने दस दिनतक जल ही ग्रहण किया। बादमें वे दस दिनोंतक केवल वायुके ही आहारपर रहकर भगवान् शिवका ध्यान करते रहे। इस प्रकार जब अष्टाद्वीस दिन व्यतीत हो गये तो भगवान् शिवने प्रकट होकर उनसे वर

पाँनेको कहा। भगवान् शिवकी इस अमृतमय खाणीको सुनकर उन्होंने गद्गद खाणीसे सर्वेश, सर्वलिङ्गेश, गिरिजावल्लभ हरकी इस प्रकार स्तुति की—

‘यहान् इदंको नमस्कार है। सर्वेश्वर सर्वहितकारी भगवान् शिवको नमस्कार है। अभय एवं विद्या प्रदान करनेवाले, नन्दी-काहन भगवान्को नमस्कार है। पापका विनाश करनेवाले तथा समस्त लोकोंके सब्भो एवं समस्त मायारूपी दुःखोंका हरण करनेवाले तेजःस्वरूप अनन्तमूर्ति भगवान् शंकरको नमस्कार है।’ देवेश। यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे मूल विद्या एवं परम शास्त्र-ज्ञान प्रदान करनेकी कृपा करें।

**सूतजी बोले—**यह सुनकर महादेवजीने प्रसन्न होकर ‘अ इ उ ण्’ आदि मङ्गलकारी सर्ववर्णमय सूत्रोंको उन्हें प्रदान किया। ज्ञानरूपी समोवरके सत्परूपी जलसे जो राग-द्वेषरूपी मलका नाश करनेवाला है, उस मानसतीर्थकी प्राप्त करनेपर

१-यंगे हठप्रय मरते सर्वेश्वर द्वितीयके। नन्दीसेमध्य देवाय विद्याप्रवक्ष्याथ च॥

पापान्तकण्य भर्गवि नन्दोऽनन्तप वेधसे। यंगे मण्डहरेराय नमसे लोकशंकर॥ (प्रतिमर्गवर् २. ३१। ७-८)



अर्थात् उस मानस तीर्थमें अवगाहन करनेपर सभी तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। यह महान् मानस-ज्ञान-तीर्थ ब्रह्मके साक्षात्कार करनेमें समर्थ है। पाणिने ! मैं यह सर्वोत्तम तीर्थ तुम्हें प्रदान किया है, इससे तुम कृतकृत्य हो जाओगे। यह कहकर भगवान् रुद्र अन्तर्हित हो गये और पाणिनि अपने घरपर आ गये। पाणिनिने सूवपाठ, धातुपाठ, गणपाठ और

लिङ्गसूत्र-रूप व्याकरण शास्त्रका निर्माण कर परम निर्वाण प्राप्त किया।<sup>१</sup> अतः भार्गवश्रेष्ठ ! तुम मनोमय ज्ञानतीर्थका अवलम्बन करो। उन्हींसे कल्याणमयी सर्वोत्तम तीर्थमयी गङ्गा प्रकट हुई है। गङ्गासे बढ़कर उत्तम तीर्थ न कोई हुआ है और न आगे होगा।

(अध्याय ३१)



### खोपदेवके चरित्र-प्रसंगमें श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

**सूतजी बोले—**महामुने शौनक ! तोताड़िमें एक खोपदेव नामके ब्राह्मण रहते थे। वे कुलभक्त और वेद-वेदाङ्गपारंगत थे। उन्होंने गोप-गोपिष्ठोंसे प्रतिष्ठित पुन्यदायन-तीर्थमें जाकर देवाधिदेव जनार्दनकी आराधना की। एक वर्ष बाद भगवान् श्रीहरिने प्रसन्न होकर उन्हें अतिशय श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान किया। उसी ज्ञानके द्वारा उनके हृदयमें भागवती कथाका उदय हुआ। जिस कथाको श्रीशुकदेवजीने बुद्धिमान् राजा परीक्षितको सुनाया था, उस सनातनी मोक्ष-स्वरूप कथाका खोपदेवने हरि-लोलामृत नामसे पुनः वर्णन किया। कथाकी समाप्तिपर जनार्दन भगवान् विष्णु प्रकट हुए और बोले 'महामते ! वर माँगे।' खोपदेवने अतिशय खेहमयी वाणीमें कहा—'भगवन् ! आपकी नमस्कार है। अगर सम्पूर्ण संसारपर अनुग्रह करनेवाले हैं। आपसे देव, मनुष्य, पशु-पक्षी सभी निर्मित हुए हैं। नरकोंसे दुःखी प्राणी भी इस कलिपुगमें आपके ही नामसे कृतार्थ होते हैं। महर्षि वेदव्यासस्थित श्रीमद्भागवतका ज्ञान तो आपने मुझे प्रदान किया है, पुनः यदि आप वर प्रदान करना चाहते हैं तो उस भागवतका माहात्म्य मुझसे कहें।'

**श्रीभगवान् बोले—**खोपदेव ! एक समय भगवान् शंकर पार्वतीके साथ दाम्प और पाञ्चण्डसे युक्त बौद्धोंके राज्य प्राप्त होनेपर काशीमें उत्तम भूमि देखकर वहाँ स्थित हो गये। भगवान् शंकरने आनन्दपूर्वक प्रणाम करते हुए कहा—'हे सच्चिदानन्द ! हे विभो ! हे जगत्के आनन्द प्रदान

करनेवाले। आपके जय हो।' इस प्रकारकी वाणी सुनकर पार्वतीने भगवान् शंकरसे पूछा—'भगवन् ! आपके समान दूसरा अन्य देवता कौन है जिसे आपने प्रणाम किया।' इसपर भगवान् शिवने कहा—'महादेवि ! यह काशी परम पवित्र क्षेत्र है, यह स्वयं सनातन ब्रह्मस्वरूप है, यह प्रणाम करने योग्य है। यहाँ मैं सप्ताह-यज्ञ (भागवत-सप्ताह-यज्ञ) करूँगा।' उस यज्ञ-स्थलकी रक्षाके लिये भगवान् शंकरने बर्गेश, गणेश, नन्दी तथा गुह्यकोंको स्थापित किया और स्वयं ध्यानमें स्थित होकर माता पार्वतीसे सात दिनतक भागवती कथा कहलें रहे। आठवें दिन पार्वतीको सोते देखकर उन्होंने पूछा कि 'तुम्हने कितनी कथा सुनी।' उन्होंने कहा—'देव ! मैं अमृत-मन्थनपर्यन्त विष्णुचरित्रका श्रवण किया।' इसी कथाको वहाँ वृक्षके कोटरमें स्थित शूकरूपी शुकदेव सुन रहे थे। अमृत-कथाके श्रवणसे वे अमर हो गये। मेरी इस आज्ञासे यह शुक साक्षात् तुम्हारे हृदयमें स्थित है। खोपदेव ! तुम्हने इस दुर्लभ भागवत-माहात्म्यको मेरे द्वारा प्राप्त किया है। अब तुम जाकर राजा विक्रमके पिता गन्धर्वसेनको नर्मदाके तटपर इसे सुनाओ। हरि-माहात्म्यका दान करना सभी दानोंमें उत्तम दान है। इसे विष्णुभक्त बुद्धिमान् सत्पात्रकी ही सुनाना चाहिये। भूखेको अन्न-दान करना भी इसके समान दान नहीं है। यह कहकर भगवान् श्रीहरि अन्तर्हित हो गये और खोपदेव बहुत प्रसन्न हो गये।

(अध्याय ३२)



१-सूवपाठ धातुपाठ गणपाठ तथैव च।

लिङ्गसूत्रं तथा कलां परं निर्वाणमप्यवबन्ध॥

## श्रीदुर्गासप्तशतीके आदिचरित्रका माहात्म्य (व्याधकर्मोंकी कथा)

**ऋषियोंने पूछा—**सूतजी महाराज ! अब आप हमलोगोंको यह बतलानेकी कृपा करें कि किस सोचके पाठ करनेसे वेदोंके पाठ करनेका फल प्राप्त होता है और पाप विनष्ट होते हैं ।

**सूतजी बोले—**ऋषियों ! इस विषयमें आप एक कथा सुनें । राजा विक्रमादित्यके राज्यमें एक ब्राह्मण रहता था । उसकी स्त्रीका नाम था कामिनी । एक बार वह ब्राह्मण श्रीदुर्गासप्तशतीका पाठ करनेके लिये अन्यत्र गया हुआ था । इधर उसकी स्त्री कामिनी जो अपने नामके अनुरूप कर्म करनेवाली थी, पतिके न रहनेपर निन्दित कर्ममें प्रवृत्त हो गयी । फलतः उसे एक निन्द्य पुत्र उत्पन्न हुआ, जो व्याधकर्मों नामसे प्रसिद्ध हुआ । वह भी अपने नामके अनुरूप कर्म करनेवाला था, धूर्त था तथा वेद-शास्त्रसे रहित था । उस ब्राह्मणने अपनी स्त्री एवं पुत्रके निन्दित कर्म और पापमय आचरणको देखकर उन दोनोंको घरसे निकाल दिया तथा स्वयं धर्ममें लक्ष्य रहते हुए विभ्याचल पर्वतपर प्रतिदिन चण्डीपाठ करने लगा । जगदम्बाके अनुग्रहसे अन्तमें वह भीष्मभुक्त हो गया ।

इधर वे दोनों माता-पुत्र (कामिनी और व्याधकर्मों) पूर्वपरिचित निषादके पास चले गये और वहीं निवास करने लगे । वहीं भी वे दोनों अपने निन्दित आचरणको छोड़ न सके और इन्हीं बुरे कर्मोंसे धन-संग्रह करने लगे । व्याधकर्मों धीरे-धीरे कर्ममें प्रवृत्त हो गया । ऐसे ही धमन करते हुए दैवयोगसे एक दिन वह व्याधकर्मों देवीके मन्दिरमें पहुँचा । वहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीदुर्गासप्तशतीका पाठ कर रहे थे । दुर्गापाठके आदिचरित (प्रथम चरित्र) के किंचित् पाठमात्रके श्रवणसे उसकी दुष्टबुद्धि धर्ममय हो गयी, फलतः धर्मबुद्धि-सम्पन्न उस

व्याधकर्मोंने उस श्रेष्ठ विप्रका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया और अपना सारा धन उन्हें दे दिया । गुरुकी आज्ञासे उसने देवीके मन्त्रका जप किया । शीघ्रमन्त्रके प्रभावसे उसके शरीरसे पापसमूह कृमिके रूपमें निकल गये । तीन वर्षतक इस प्रकार जप करते हुए वह निष्पाप श्रेष्ठ द्विज हो गया । इसी प्रकार मन्त्र-जप और आदि चरित्रका पाठ करते हुए उसे बारह वर्ष व्यतीत हो गये । तदनन्तर वह द्विज कशमीमें चला आया । मुनि एवं देवोंसे पूजित महादेवी अन्नपूर्णाका उसने रोचनादि उपचारोंके द्वारा पूजन किया और उसकी इस प्रकार स्तुति की—

विद्वानन्दकरी पराभयकरी सौन्दर्यलोककरी

निर्घृताखिलपापपावनकरी काशीपुराधीश्वरी ।

नामालोककरी महाभयहरी विप्रभरी सुन्दरी

विद्यां देहि कृपावलम्बनकरी माताप्रपूर्णेश्वरी<sup>१</sup> ॥

(परीतार्णव २।३३।२९)

इस स्तुतिको एक सौ अठार बार जपकर ध्यानमें नेत्रोंको बंदकर वह वहीं सो गया । स्वप्नमें उसके सम्मुख अन्नपूर्णा शिवा उपस्थित हुई और उसे ऋग्वेदका ज्ञान प्रदान कर अर्त्तहीन हो गयीं । बादमें वह बुद्धिमान् ब्राह्मण श्रेष्ठ विद्या प्राप्त कर राजा विक्रमादित्यके यज्ञका आचार्य हुआ । यज्ञके बाद योग धारण कर हिमालय चला गया ।

हे विप्रों ! मैंने आपलोगोंको देवीके पुण्यमय आदि-चरित्रके माहात्म्यकी बतलाया, जिसके प्रभावसे उस व्याधकर्मोंने ब्राह्मीभाव प्राप्तकर परमोत्तम सिद्धिको प्राप्त कर लिया था ।

(अध्याय ३३)

## श्रीदुर्गासप्तशतीके मध्यमचरित्रका माहात्म्य (कात्यायन तथा मगधके राजा महानन्दकी कथा)

**सूतजी बोले—**शौनक ! ठाकुरिनी नगरमें एक था । वह अतिशय हिंस्र एवं अधर्माचरणके कारण भयंकर हिसापरायण मद्य-मांस-भक्षी भीमवर्मा नामका क्षत्रिय रहता था । व्याधियोंसे ग्रस्त हो गया और युवावस्थामें ही उसकी मृत्यु हो

१- 'हे कशमीपुरीकी जयीश्वरी अन्नपूर्णेश्वरी ! आप नियम अनन्दरूपिनी हैं । शत्रुओंके अभय प्रदान करनेवाली हैं तथा आप सौन्दर्यलोककी निधान और समस्त पापोंको नष्ट कर पवित्र कर देनेवाली हैं । हे सुन्दरी ! आप सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करनेवाली, महान्-महान् भयोंको दूर करनेवाली, विश्वका धरण-पोषण करनेवाली तथा सबके ऊपर अनुग्रह करनेवाली हैं । हे मातः ! आप मुझे विद्या प्रदान करें ।

गयी। संयोगवश उसने कभी चण्डीपाठ भी कराया था। जिसके पुण्यके प्रभावसे इतना निकृष्ट पापी भी नरकमें नहीं गया। दूसरे जन्ममें वही राजनीतिपरायण मगधका विश्वात राजा महानन्द हुआ और उसे अपने पूर्वजन्मकी पूरी स्मृति थी। अतिशय समर्थ बुद्धिमान् कात्यायन (वरहचि) का वह शिष्य हुआ। देवी महालक्ष्मीके बीचसहित मध्यम चरित्रका राजा महानन्दको उपदेश देकर कात्यायन स्वयं विन्ध्यपर्वतपर शक्ति-उपासनाके लिये चले गये। इधर राजा भी प्रतिदिन महालक्ष्मीकी कस्तूरी, चन्दन आदिसे पूजा कर श्रीदुर्गासप्तशतीके मध्यम

चरित्रका पाठ करने लगा। बारह वर्ष व्यतीत होनेपर शक्तिकी उपासना करनेवाले कात्यायन पुनः अपने शिष्य महानन्दके पास आये और उन्होंने राजासे विधिपूर्वक लक्षचण्डीपाठ कराया। फलस्वरूप सनातनी भगवती महालक्ष्मी प्रकट हुई और राजाको धर्म, अर्थ, कामसहित मोक्ष भी दे दिया। इस प्रकार महाभाग महानन्दने देवोंके समान अभीष्ट फलोंका उपभोग कर अन्तमें देवताओंसे नमस्कृत हो परम लोकको प्राप्त किया।

(अध्याय ३४)

## श्रीदुर्गासप्तशतीके उत्तरचरित्रकी महिमाके प्रसंगमें

### योगाचार्य महर्षि पतञ्जलिका चरित्र

**सूतजी बोले—**अनेक धातुओंके द्वारा चित्रित स्मरणीय चित्रकूट पर्वतपर महाविद्वान् उपाध्याय पतञ्जलिमुनि रहते थे। वे वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञ एवं गीता-शास्त्र-परायण थे। वे विष्णुके भक्त, सत्यव्रता एवं व्याकरण-महाभाष्यके रचयिता भी माने गये हैं। एक समय वे शुद्धात्मा अन्य तीर्थोंमें गये। काशीमें उनका देवीभक्त कात्यायनके साथ शस्त्रार्थ हुआ। एक वर्षतक शस्त्रार्थ चलता रहा, अन्तमें पतञ्जलि पराजित हो गये। इससे लजित होकर उन्होंने सरस्वतीकी इस प्रकार आराधना की—

नमो देव्यै महामूर्त्यै सर्वमूर्त्यै नमो नमः।

शिवायै सर्वभाङ्गल्यै विष्णुभाये च ते नमः॥

त्वमेव ब्रह्मा बुद्धिस्त्वं मेधा विद्या शिवेकरी।

शान्तिर्वाणी त्वमेवासि नारायणि नमो नमः॥

(प्रतिसर्गपर्व २।३५।५-६)

'महामूर्ति' देवीको नमस्कार है। सर्वमूर्तिस्वरूपिणीको नमस्कार है। सर्वमङ्गलस्वरूपा शिवदेवीको नमस्कार है। हे विष्णुभाये! तुम्हें नमस्कार है। हे नारायणि! तुम्हीं ब्रह्मा, बुद्धि, मेधा, विद्या तथा कल्याणकारिणी हो। तुम्हीं शान्ति हो,

तुम्हीं वाणी हो, तुम्हें बार-बार नमस्कार है।'

इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवती सरस्वतीने आकाश-खाणीमें कहा—'विप्रश्रेष्ठ! तुम एकप्रचित होकर मेरे उत्तर चरित्रका जप करो। इसके प्रभावसे तुम निश्चय ही ज्ञानको प्राप्त करोगे। पातञ्जले! कात्यायन तुमसे परास्त हो जायेंगे।' देवीकी इस वाणीको सुनकर पतञ्जलिने विन्ध्यवासिनीदेवीके मन्दिरमें जाकर सरस्वतीकी आराधना की और वे प्रसन्न हो गयीं। इससे उन्होंने पुनः शस्त्रार्थमें कात्यायनको पराजित कर दिया, बादमें उन्होंने कृष्ण-मन्त्र और भक्तिके प्रचारमें तुलसीमाला आदिका भी महत्व बढ़ाया। भगवती विष्णुमन्त्रकी कृपासे वे योगाचार्य अत्यन्त चिरजीवी हो गये।

मुनियो। इस प्रकार दुर्गासप्तशतीके उत्तर चरित्रकी महिमा निरूपित हुई। अब आगे आपलोग क्या सुनना चाहते हैं, वह बतायें। सभीका कल्याण हो, कोई भी दुःख प्राप्त न करे। गरुडध्वज, पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु मङ्गलमय हैं। भगवान् विष्णु मङ्गलमूर्ति हैं। जो व्यक्ति पवित्र होकर इस इतिहास-समुच्चयको प्रतिदिन सुनता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। (अध्याय ३५)

॥ प्रतिसर्गपर्व द्वितीय खण्ड सम्पूर्ण ॥

## प्रतिसर्गपर्व (तृतीय खण्ड)

[ भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वका तीसरा खण्ड रामांश और कृष्णांश अर्थात् आल्हा और ऊदल (उदयसिंह) के चरित्र तथा जयचन्द्र एवं पृथ्वीराज चौहानकी वीर-गाथाओंसे परिपूर्ण है। इसका भारतमें जगनिक भाटरचित आल्हाका वीरकाव्य बहुत प्रचलित है। इसके कुंदेलखण्डो, भोजपुरी आदि कई संस्करण हैं, जिनमें भाषाओंका थोड़ा-थोड़ा भेद है। इन कथाओंका मूल यह प्रतिसर्गपर्व ही प्रतीत होता है। इसीके आधारपर ये रचनाएँ प्रचलित हैं। प्रायः ये कथाएँ लोकजनके अनुसार अतिशयोक्तिपूर्ण-सी प्रतीत होती हैं, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्वकी भी हैं। यहाँ इनका सारमात्र प्रस्तुत किया गया है।—सम्पादक ]

### आल्हा-खण्ड (आल्हा-ऊदलकी कथा) का उपक्रम

**प्राचिनोनि पूछा—**सूतजी महाराज ! अपने महाराज विक्रमादित्यके इतिहासका वर्णन किया। आप युगके समान उनका शासन, धर्म एवं न्यायपूर्ण वा और लम्बे समयतक इस पृथ्वीपर रहा। महाभाग ! उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अनेक लीलाएँ की थीं। आप उन लीलाओंका हमलोगोंसे वर्णन कीजिये, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।

**श्रीसूतजीने मङ्गल-स्मरणपूर्वक कहा—**

नारायणं नमस्कृत्य नरं वैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

(प्रतिसर्गपर्व ३।१।३)

‘भगवान् नर-नारायणके अवतारस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके सखा नरश्रेष्ठ अर्जुन, उनकी लीलाओंको प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उनके चरित्रोंका वर्णन करनेवाले वेदव्यासको नमस्कार कर अष्टादश पुराण, रामायण और महाभारत आदि जय नामसे व्यपदिष्ट ग्रन्थोंका वाचन करना चाहिये।’

मुनिगणों ! भविष्य नामक महाकल्पके वैवस्वत मन्वन्तरके अठ्ठाईसवें आपर युगके अन्तमें कुरुक्षेत्रका प्रसिद्ध महायुद्ध हुआ। उसमें युद्ध कर दुरिष्मानी सभी कौरवोंपर पाण्डवोंने अठारहवें दिन पूर्ण विजय प्राप्त की। अन्तिम दिन भगवान् श्रीकृष्णने कालकी दुर्गतिकी जानकर योगरूपी सनातन शिवजीकी मनसे इस प्रकार स्तुति की—

शान्तस्वरूपी, सब भूतोंके स्वामी, कर्पटी, कालकर्ता, जगद्धर्ता, पाप-विनाशक रुद्र ! मैं आपको बार-बार प्रणाम

करता हूँ। भगवन् ! आप मेरे भक्त पाण्डवोंकी रक्षा कीजिये।

इस स्तुतिको सुनकर भगवान् शंकर नन्दीपर आरुढ़ हो हाथमें त्रिशूल लिये पाण्डवोंके शिबिरकी रक्षाके लिये आ गये। उस समय महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये थे और पाण्डव सरस्वतीके किनारे रहते थे।

मध्यरात्रिमें अश्वत्थामा, भोज (कृतवर्मा) और कृपाचार्य—ये तीनों पाण्डव-शिबिरके पास आये और उन्होंने मनसे भगवान् रुद्रकी स्तुति कर उन्हें प्रसन्न कर लिया। इसपर भगवान् शंकरने उन्हें पाण्डव-शिबिरमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दे दी। कालवान् अश्वत्थामाने भगवान् शंकरद्वारा प्राप्त तलवारसे धुल्लुधुल आदि चीरोंकी इलाक कर दी, फिर वह कृपाचार्य और कृतवर्माके साथ वापस चला गया। वहाँ एकमात्र पार्थद सुत ही खड़ा रहा, उसने इस जनसेनारकी सूचना पाण्डवोंको दी। भीम आदि पाण्डवोंने इसे शिवजीका ही कृत्य समझा; वे क्रोधसे तिलमिल गये और अपने आयुधोंसे देवाधिदेव पिताजीसे युद्ध करने लगे। भीम आदिद्वारा प्रयुक्त अस्त्र-शस्त्र शिवजीके शरीरमें समाहित हो गये। इसपर भगवान् शिवने कहा कि तुम श्रीकृष्णके उपासक हो अतः हमारे द्वारा तुमलोग रक्षित हो, अन्यथा तुमलोग वधके योग्य थे। इस अपराधका फल तुम्हें कतिपयमें जप लेकर भोगना पड़ेगा। ऐसा कहकर वे अदृश्य हो गये और पाण्डव बहुत दुःखी हुए। वे अपराधसे मुक्त होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये। निःशस्त्र पाण्डवोंने श्रीकृष्णके साथ एकत्र मनसे शंकरजीकी स्तुति की। इसपर



भगवान् शंकरने प्रत्यक्ष प्रकट होकर उनसे वर माँगनेको कहा ।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**देव ! पाण्डवोंके जो शस्त्रास्त्र आपके शरीरमें लीन हो गये हैं, उन्हें पाण्डवोंको वापस कर दीजिये और इन्हें शापसे भी मुक्त कर दीजिये ।

**श्रीशिवजीने कहा—**श्रीकृष्णचन्द्र ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ । उस समय मैं आपकी मायासे मोहित हो गया था । उस मायाके अधीन होकर मैंने यह शाप दे दिया । यद्यपि मेरा वचन तो मिथ्या नहीं होगा तथापि ये पाण्डव तथा कौरव अपने अंशोंसे कलियुगमें उत्पन्न होकर अंशतः अपने पापोंका फल भोगकर मुक्त हो जायेंगे ।

युधिष्ठिर कत्तराजका पुत्र होगा, उसका नाम बलरान (मलखान) होगा, वह शिरीष नगका अधिपति होगा । भीमका नाम वीरण होगा और वह कनरसका राजा होगा । अर्जुनके अंशसे जो जन्म लेगा, वह महान् बुद्धिमान् और मेरा भक्त होगा । उसका जन्म परिमलके पहाँ होगा और नाम होगा ब्रह्मानन्द । महाबलशाली नकुलका जन्म कान्यकुब्जमें राजभानुके पुत्रके रूपमें होगा और नाम होगा लक्षण । सहदेव

भीमसिंहका पुत्र होगा और उसका नाम होगा देवसिंह । धृतराष्ट्रके अंशसे अजमेरमें पुष्पीराज जन्म लेगा और द्रौपदी पुष्पीराजकी कन्याके रूपमें वेंला नामसे प्रसिद्ध होगी । महादानी कर्ण तारक नामसे जन्म लेगा । उस समय रत्नबीजके रूपमें पुष्कोपर मेरा भी अवतार होगा । कौरव माया-युद्धमें निष्णात होंगे और पाण्डु-पक्षके योद्धा धार्मिक और बलशाली होंगे ।

**सूतजी बोले—**ऋषियो ! यह सब बातें सुनकर श्रीकृष्ण मुक्तराये और उन्होंने कहा 'मैं भी अपनी शक्ति-विशेषसे अवतार लेकर पाण्डवोंकी सहायता करूँगा । पाण्डवदेवीद्वारा निर्मित महाकवी नामकी पुरीमें देशराजके पुत्र-रूपमें मेरा अंश उत्पन्न होगा, जो उदयसिंह (उदल) कहलायेगा, वह देवकीके गर्भसे उत्पन्न होगा । मेरे वैकुण्ठ-धामका अंश आह्लाद नामसे जन्म लेगा, वह मेरा गुरु होगा । अतिशयसे उत्पन्न राजाओंका विनाश कर मैं (श्रीकृष्ण—उदयसिंह) धर्मकी स्थापना करूँगा ।' श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर शिवजी अन्तर्हित हो गये ।

### राजा शालिवाहन तथा ईशामसीहकी कथा

**सूतजीने कहा—**ऋषियो ! प्रातःकालमें पुत्रशोकसे पीड़ित सभी पाण्डव प्रेतकार्य कर पितामह भीमके पास आये । उनसे उन्होंने राजधर्म, मोक्षधर्म और धनधर्मके स्वरूपको अलग-अलग रूपसे भलीभाँति समझा । तदनन्तर उन्होंने उत्तम आचरणोंसे तीन अक्षय-यज्ञ किये । पाण्डवोंने छत्तीस वर्षतक राज्य किया और अन्तमें वे स्वर्ग चले गये । कलिधर्मकी वृद्धि होनेपर ये भी अपने अंशसे उत्पन्न होंगे ।

अब आप सब मुनिगण अपने-अपने स्थानको पधारें । मैं योगनिद्राके वशीभूत हो रहा हूँ, अब मैं समाधिस्थ होकर गुणातीत परब्राह्मणका ध्यान करूँगा । यह सुनकर वैष्णवधर्मकी मुनिगण यौगिक सिद्धिका अवलम्बन कर आत्मसाम्यव्यवस्था स्थित हो गये । दीर्घकाल व्यतीत होनेपर शौनकादिमुनि ध्यानसे उठकर पुनः सूतजीके पास पहुँचे ।

**मुनियोंने पूछा—**सूतजी महाराज ! विक्रमादित्यनका तथा द्वापरमें शिवकी आज्ञासे होनेवाले राजाओंका आप वर्णन कीजिये ।

**सूतजी बोले—**मुनियो ! विक्रमादित्यके स्वर्गलोक चले जानेके बाद बहुतसे राजा हुए । पूर्वमें कपिल स्थानसे पहिलेमें सिन्धु नदीतक, उत्तरमें बद्रोक्षेत्रसे दक्षिणमें संतुबन्धतककी सीमावाले भारतवर्षमें उस समय अठारह राज्य या प्रदेश थे । उनके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्रप्रस्थ, पाञ्चाल, कुरुक्षेत्र, कम्पिल, अन्तर्बेदी, वज्र, अजमेर, मरुधन्व (मारवाड़), गुर्जर (गुजरात), महाराष्ट्र, द्रविड़ (तमिलनाडु), कलिंग (उड़ीसा), अवन्ती (उज्जैन), उडुप (आन्ध्र), बंग, गौड़, मागध तथा कौशल्या । इन राज्योंपर अलग-अलग राजाओंने शासन किया । वहाँकी भाषाएँ भिन्न-भिन्न रहीं और समय-समयपर विभिन्न धर्म-प्रचारक भी हुए । एक सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर धर्मका विनाश सुनकर शक आदि विदेशी राजा अनेक लोगोंके साथ सिन्धु नदीको पारकर आपदिशमें आये और कुछ लोग हिमालयके हिममार्गसे यहाँ आये । उन्होंने आर्योंको जीतकर उनका धन लूट लिया और अपने देशमें लौट गये । इसी समय विक्रमादित्यका पौत्र राजा

शालिवाहन पिताके सिंहासनपर आसीन हुआ। उसने शक, चीन आदि देशोंकी सेनापर विजय पायी। बाह्यिक, कामरूप, रोम तथा खुर देशमें उत्पन्न हुए दुष्टोंको पकड़कर उन्हें कठोर दण्ड दिया और उनका सारा बोध छीन लिया। उसने म्लेच्छों तथा आर्योंकी अलग-अलग देश-मर्यादा स्थापित की। सिन्धु- प्रदेशको आर्योंका उत्तम स्थान निर्धारित किया और म्लेच्छोंके लिये सिन्धुके उस पारका प्रदेश नियत किया।

एक समयकी बात है, वह शकाधीश शालिवाहन हिमशिखरपर गया। उसने हूण देशके मध्य स्थित पर्वतपर एक सुन्दर पुरुषको देखा। उसका शरीर गोरा था और वह धैर्य वस्त्र धारण किये था। उस व्यक्तिको देखकर शकाजने प्रसन्नतासे पूछा—‘आप कौन हैं?’ उसने कहा—‘मैं ईशपुत्र हूँ और कुमारीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ। मैं म्लेच्छ-धर्मका प्रचारक और सत्य-व्रतमें स्थित हूँ।’ राजाने पूछा—‘आपका कौन-सा धर्म है?’

ईशपुत्रने कहा—महाराज। सत्यका विनाश हो जानेपर मर्यादाहीन म्लेच्छ-प्रदेशमें मैं मसीह बनकर आया और

दस्युओंके मध्य भयंकर ईशामसी नामसे एक कन्या उत्पन्न हुई। उसको म्लेच्छोंसे प्राप्त कर मैंने मसीहत्व प्राप्त किया। मैंने म्लेच्छोंमें जिस धर्मकी स्थापना की है, उसे सुनिये—

‘सबसे पहले मानस और दैहिक मलको निकालकर शरीरको पूर्णतः निर्मल कर लेना चाहिये। फिर इष्ट देवताका जप करना चाहिये। सत्य वाणी बोलनी चाहिये, न्यायसे चलना चाहिये और मनको एकत्र कर सूर्यमण्डलमें स्थित परमात्माकी पूजा करनी चाहिये, क्योंकि ईश्वर और सूर्यमें समानता है। परमात्मा भी अचल है और सूर्य भी अचल है। सूर्य अनित्य भूतोंके सारका चारों ओरसे आकर्षण करते हैं। हे भूपाल! ऐसे कृप्यसे वह मस्तेहा घिलीन हो गयी। पर मेरे हृदयमें नित्य विशुद्ध कल्याणकारिणी ईश-मूर्ति प्राप्त हुई है। इसीलिये मेरा नाम ईशामसीह प्रतिष्ठित हुआ।’

यह सुनकर राजा शालिवाहनने उस म्लेच्छ-पुण्यको प्रणम्य किया और उसे दारुण म्लेच्छ-स्थानमें प्रतिष्ठित किया तथा अपने राज्यमें आकर उस राजाने अन्धमेध यज्ञ किया और साठ वर्षतक राज्य करके स्वर्गलोक चला गया।

### राजा भोज और महामदकी कथा

सूतजीने कहा—श्रुतियो! शालिवाहनके वंशमें दस राजा हुए। उन्होंने पाँच सौ वर्षतक शासन किया और स्वर्गवासी हुए। तदनन्तर भूमण्डलपर धर्म-मर्यादा लुप्त होने लगी। शालिवाहनके वंशमें अन्तिम दसवें राजा भोजराज हुए। उन्होंने देशकी मर्यादा क्षीण होखे देश दिम्बिजपर्वके लिये प्रस्थान किया। उनकी सेना दस हजार थी और उनके साथ कालिदास एवं अन्य विद्वान् ब्राह्मण भी थे। उन्होंने सिन्धु नदीको पार करके गान्धार, म्लेच्छ और काश्मीरके राट राजाओंको परास्त किया तथा उनका कोश छीनकर उन्हें दण्डित किया। उसी प्रसंगमें आचार्य एवं शिष्यमण्डलके साथ म्लेच्छ महामद नामका व्यक्ति तपस्थित हुआ। राजा भोजने मरुस्थलमें विद्यमान महादेवजीका दर्शन किया। महादेवजीको पञ्चगव्यमिश्रित गङ्गाजलसे स्नान करकर चन्दन आदिसे भक्तिभावपूर्वक उनका पूजन किया और उनकी स्तुति की।

भोजराजने कहा—हे मरुस्थलमें निवास करनेवाले

तथा म्लेच्छोंमें गुप्त शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूपवाले गिरिजापते! आप त्रिपुरासुरके विनाशक तथा नानाविध मायाशक्तिके प्रधातक हैं। मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप मुझे अपना दास समझें। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। इस स्तुतिको सुनकर भगवान् शिवने राजासे कहा—

‘हे भोजराज। तुम्हें महाकालेश्वर-तीर्थमें जाना चाहिये। यह ब्राह्मिक नामकी भूमि है, पर अब म्लेच्छोंसे दूषित हो गयी है। इस दारुण प्रदेशमें आर्य-धर्म है ही नहीं। महामायावी त्रिपुरासुर यहाँ दैत्यराज बलिद्वारा प्रेषित किया गया है। मेरे द्वारा वरदान प्राप्त कर वह दैत्य-समुदायको बढ़ा रहा है। वह अशोचिब है। उसका नाम महामद है। राजन्! तुम्हें इस अन्धवं देशमें नहीं आना चाहिये। मेरी कृपासे तुम विशुद्ध हो।’ भगवान् शिवके इन वचनोंको सुनकर राजा भोज सेनाके साथ अपने देशमें वापस चला आया।

राजा भोजने द्विजवर्गके लिये संस्कृत वाणीका प्रचार किया और शूद्रोंके लिये प्राकृत भाषा बलायी। उन्होंने पचास

वर्षतक राज्य किया और अन्तमें स्वर्गलोक प्राप्त किया। हिमालयके मध्यमें आर्यवर्तकी पुण्यभूमि है, वहाँ आर्यलोक उन्हींने देश-मर्यादाका स्थापन किया। विन्ध्यगिरि और रहते हैं।

## देशराज एवं वत्सराज आदि राजाओंका आविर्भाव

**सुतजीने कहा—**भोजराजके स्वर्गरोहणके पश्चात् उनके वंशमें सात राजा हुए, पर वे सभी अल्पायु, मन्द-बुद्धि और अल्पतेजस्वी हुए तथा तीन सौ वर्षके भीतर ही मर गये। उनके राज्यकालमें पृथ्वीपर छोटे-छोटे अनेक राजा हुए। वीरसिंह नामके सातवें राजाके वंशमें तीन राजा हुए, जो दो सौ वर्षके भीतर ही मर गये। दसवाँ जो गंगासिंह नामका राजा हुआ, उसने कल्पशेखरमें धर्मपूर्वक अपना राज्य चलाया। अन्तर्वेदीमें कान्यकुब्जपर राजा जयचन्द्रका शासन था। तोमरावंशमें उत्पन्न अनङ्गपाल इन्द्रप्रस्थका राजा था। इस तरहसे गँव और राहमें (जनपदों) में बहुतसे राजा हुए। अग्निवंशका विस्तार बहुत हुआ और उसमें बहुतसे बलवान् राजा हुए। पूर्वमें कपिलस्थान (गङ्गासागर), पश्चिममें बाह्यहि, उत्तरमें चीन देश और दक्षिणमें सेतुबन्ध—इनके बीचमें साठ लाख भूपाल ग्रामपालक थे, जो महान् बलवान् थे। इनके राज्यमें—प्रजाएँ, अग्निहोत्र करनेवाली, गौ-ब्राह्मणका शिष्ट चाहनेवाली तथा द्वार युगके सम्मान धर्म-कर्म करनेमें निपुण थीं। सर्वत्र द्वार युग ही मालूम पड़ता था। घर-घरमें प्रचुर धन तथा जन-जनमें धर्म विद्यमान था। प्रत्येक गाँवमें देवताओंके मन्दिर थे। देश-देशमें यज्ञ होते थे। स्लेच्छ भी आर्य-धर्मका सभी तरहसे पालन करते थे। द्वारके सम्मान ऐसा धर्माचरण देखकर कलिने भयभीत होकर स्लेच्छाके साथ नीलाचल पर्वतपर जाकर हरिकी शरण ली। वहाँ उसने बारह वर्षतक तपश्चर्या की। इस ध्यानयोगात्मक तपश्चर्यासे उसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन हुआ। रथाके साथ भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन पाकर उसने मनसे उनकी स्तुति की।

**कलिने कहा—**हे भगवन् ! आप मेरे साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणामको स्वीकार करें। मेरी रक्षा कीजिये। हे कृपानिधे ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप सभी पापोंका विनाश करते हैं। सभी कालोंका निर्माण करनेवाले आप ही हैं। सत्ययुगमें आप गौतमर्षिके थे, त्रेतामें रत्नवर्ण, द्वारमें पौतवर्णिके थे। मेरे समय (कलियुग)में आप कृष्ण-रूपके हैं। मेरे पुत्रोंने स्लेच्छ होनेपर भी अब आर्य-धर्म स्वीकार किया है। मेरे राज्यमें प्रत्येक घरमें दूत, मद्य, स्वर्ण, स्त्री-हास्य आदि होना चाहिये। परन्तु अग्निवंशमें पैदा हुए क्षत्रियोंने उनका विनाश कर दिया है। हे जनार्दन ! मैं आपके चरण-कमलोंकी शरण हूँ। कलियुगकी यह स्तुति सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराकर कहने लगे—

‘कलिराज ! मैं तुम्हारी रक्षाके लिये अंशरूपमें महाकलमें अवतीर्ण होऊँगा, वह मेरा अंश भूमिमें आकर उन महाकली अग्निवंशीय प्रजाओंका विनाश करेगा और स्लेच्छवंशीय राजाओंकी प्रतिष्ठा करेगा।’ यह कहकर भगवान् अदृश्य हो गये और स्लेच्छाके साथ वह कलि अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

आगे चलकर इसी प्रकार सम्पूर्ण घटनाएँ घटित हुईं। कौत्सीरोंकी पराजय और पाण्डवोंकी विजय हुई। अन्तमें पुण्डरीज चौहानने वीरगति प्राप्त की तथा सहोद्रीन (मोहम्मदगोरी) अपने दास कुतुबुद्दीनको यहाँका शासन सौंपकर यहाँसे बहुत-सा धन लूटकर अपने देश चला गया\*।

॥ प्रतिसर्गपर्व, तृतीय खण्ड सम्पूर्ण ॥

\* प्रतिसर्गपर्वका चतुर्थ खण्ड परिशिष्टाङ्कमें दिया गया है।

## उत्तरपर्व

महाराज युधिष्ठिरके पास व्यासादि महर्षियोंका आगमन एवं उनसे  
उपदेश करनेके लिये युधिष्ठिरकी प्रार्थना

कल्याणानि ददातु वो गणपतिर्यस्मिन्प्रतुष्टे सति  
क्षोदीयस्यपि कर्मणि प्रभवितुं ब्रह्मापि जिह्मायते ।  
भजे यच्चरणारविन्दमसकृत्सौभाग्यभाग्योदये-  
स्तेनैवा जगति प्रसिद्धिपगमद्वेदेन्द्रलक्ष्मीरपि ॥  
शश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसनासिंहासनाध्यासिनी  
सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि च ।  
यत्पादादमलकोमलाङ्गुलिनखज्योत्स्नाभिरुद्धैस्ततः  
शब्दब्रह्मसुधांश्चुधिरुंधमनस्युच्छृङ्खलं खोलति ॥  
(उत्तरपर्व १।१-३)

‘जिनकी प्रसन्नताके बिना ब्रह्मा भी एक सुदुर्लभका  
सम्पादन नहीं कर सकते और जिनके चरणोंके एक बार  
आश्रय लेनेसे देवैन्द्रका भाग्य चमक उठा तथा उन्हें अक्षय्य  
राजलक्ष्मीकी प्राप्ति हो गयी, वे भगवान् गणपतिदेव आप-  
लोगोंका कल्याण करें। जो ब्रह्मके जिह्वा-भागपर निरपार  
सिंहासनासीन रहती है और जिनके चरणनखको बौद्धिकतासे  
प्रवर्जित होकर शब्दब्रह्मका समुद्र विद्वानोंके हृदयपर  
नृत्य करता है, वे भगवती सरस्वती आप सम्पन्न अनन्त  
कल्याण करें।’

भगवान् शंकरका ध्यान कर, भगवान् (विष्णु) कृष्णकी  
स्तुति कर और ब्रह्माजीको नमस्कार कर तथा सूर्यदेव एवं  
अग्निदेवको प्रणाम कर इस ग्रन्थका वाचन करने चाहिये ।

एक बार धर्मके पुत्र धर्मवेत्ता महाराज युधिष्ठिरको  
देखनेके लिये व्यास, मार्कण्डेय, माण्डव्य, शम्भिल्य, गौतम,  
शाततप, पराशर, भरद्वाज, शौनक, पुलस्त्य, पुलह तथा देवर्षि  
नारद आदि श्रेष्ठ ऋषिगण पधारे ।

उन महान् तपस्वी एवं वेदवेदाङ्गपारंगत ऋषियोंको  
देखकर भक्तिमान् राजा युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके साथ  
प्रसन्नचित्त हो सिंहासनसे उठकर भगवान् श्रीकृष्ण तथा  
पुरोहित भीष्मको आगे कर उनका अभिवादन किया और  
आचमन एवं पाद्यादिसे उनकी पूजाकर आसन प्रदान किया ।  
उन तपस्वियोंके बैठनेपर जिनपसे अचानक हो महाराज

युधिष्ठिरने श्रीवेदव्यासजीसे कहा—

‘भगवन् ! आपके प्रसादसे मैंने यह महान् राज्य प्राप्त  
किया तथा दुर्योधनदिको परास्त किया । किंतु जैसे रोगीको  
सुख प्राप्त होनेपर भी वह सुख उसके लिये सुखकर नहीं होता,  
वैसे ही अपने बन्धु-बान्धवोंको मारकर यह राज्य-सुख मुझे  
प्रिय नहीं लग रहा है । जो आनन्द वनमें निवास करते हुए  
कन्द-मूल तथा फलोंके भक्षणसे प्राप्त होता है, वह सुख  
शत्रुओंको जीतकर सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य प्राप्त करनेपर भी नहीं  
होता । जो भीष्मपितामह हमारे गुरु, बन्धु, रक्षक, कल्याण  
और कवचसवरूप थे, उन्हें भी मुझ-जैसे पापीने राज्यके  
लोभसे मार डाला । मैंने बहुत विवेकशून्य कार्य किया है । मेरा  
मन पाप-पङ्कमें लिप्त हो गया है । भगवन् ! आप कृपाकर  
अपने ज्ञानरूपी जलसे मेरे अज्ञान तथा पाप-पङ्कको धोकर  
सर्वथा निर्मल बना दीजिये और अपने प्रज्ञारूपी दीपकसे मेरा  
धर्मरूपी मार्ग प्रशस्त कीजिये । धर्मके संरक्षक ये मुनिगण  
कृपाकर यहाँ आये हुए हैं । गङ्गापुत्र महाराज भीष्मपितामहसे  
मैंने अर्घ्यशस्त्र, धर्मशस्त्र और मोक्षशस्त्रका विस्तारसे श्रवण  
किया है । उन शतचतुष्टय भीष्मके स्वर्गलोक चले जानेपर  
अब श्रीकृष्ण और आप ही मेरी एवं बन्धुताके कारण मेरे  
मार्गदर्शक हैं ।’

व्यासजी बोले—राजन् ! आपके करने योग्य सभी  
काते मैंने, पितामह भीष्मने, महर्षि मार्कण्डेय, भीष्म और  
महामुनि लेमशने बता दी हैं । आप धर्मज्ञ, गुणी, मेधावी तथा  
धीमान् पुरुषोंके सम्पन्न हैं, धर्म और अधर्मके निश्चयमें कोई भी  
कात आपको अज्ञात नहीं है । हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णके  
यहाँ उपस्थित रहते हुए धर्मका उपदेश करनेका साहस कौन  
कर सकता है ? क्योंकि ये ही संसारकी सृष्टि, स्थिति तथा  
पालन करते हैं एवं प्रत्यक्षदर्शी हैं । अतः ये ही आपको उपदेश  
करेंगे । इतना कहकर तथा पाण्डवोंकी पूजा ग्रहणकर  
खादरायण व्यासजी तपोवन चले गये ।

(अध्याय १)



## भुवनकोशका संक्षिप्त वर्णन

**महाराज युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! यह जगत् किसमें प्रतिष्ठित है ? कहाँसे उत्पन्न होता है ? इसका किसमें लय होता है ? इस विश्वका हेतु क्या है ? पृथ्वीपर कितने द्वीप, समुद्र तथा कुलचल हैं ? पृथिवीका कितना प्रमाण है ? कितने भुवन हैं ? इन सबका आप वर्णन करें ।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! आपने जो पूछा है, वह सब पुराणका विषय है, किन्तु संसारमें भूलते हुए मैंने जैसा सुना और जो अनुभव किया है, उसका संक्षेपमें मैं वर्णन करता हूँ । सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुवर्तिन—इन पाँच लक्षणोंसे समन्वित पुराण कहा जाता है<sup>१</sup> ।

अन्य ! आपका प्रश्न इन पाँच लक्षणोंमेंसे सर्ग (सृष्टि) - के प्रति ही विशेषरूपसे सम्बद्ध है, इसलिये इसका मैं संक्षेपमें वर्णन करता हूँ ।

अव्यक्त-प्रकृतिसे महत्तत्त्व-बुद्धि उत्पन्न हुई । महत्तत्त्वसे त्रिगुणात्मक अहंकार उत्पन्न हुआ, अहंकारसे पञ्चतन्मात्र, पञ्चतन्मात्राओंसे पाँच महाभूत और इन भूतोंसे चराचर-जगत् उत्पन्न हुआ है । स्थवर-जङ्गमात्मक अर्थात् चराचर जगत्के नष्ट होनेपर जलभूर्तिमय विष्णु रह जाते हैं अर्थात् सर्वत्र जल परिव्याप्त रहता है, उससे पृथात्मक अण्ड उत्पन्न हुआ । कुछ समयके बाद उस अण्डके दो भाग हो गये । उसमें एक सख्य पृथिवी और दूसरा भाग आकाश हुआ । उसमें जलगुसे मेरु आदि पर्वत हुए । नाडियोंसे नदी आदि हुई । मेरु पर्वत सोलह हजार योजन भूमिके अंदर प्रविष्ट है और चौगुनी हजार योजन भूमिके ऊपर है, बत्तीस हजार योजन मेरुके शिखरका विस्तार है । कमलस्वरूप भूमिकी कर्णिका मेरु है । उस अण्डसे आदिदेवता आदित्य उत्पन्न हुए, जो प्रातःकालमें ब्रह्म, मध्याह्नमें विष्णु और सायंकालमें रुद्ररूपसे अवस्थित रहते हैं । एक आदित्य ही तीन रूपोंको धारण करते हैं । ब्रह्मसे मरिचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और नारद—ये नौ मानस-पुत्र उत्पन्न हुए । पुराणोंमें इन्हें ब्रह्मपुत्र कहा गया है । ब्रह्मके दक्षिण अँगूठेसे दश उत्पन्न हुए और

बायें अँगूठेसे प्रसूति उत्पन्न हुई । दोनों दम्पति अँगूठेसे ही उत्पन्न हुए । उन दोनोंसे उत्पन्न हव्यश्वा आदि पुत्रोंको देवर्षि काटने सृष्टिके लिये उद्यत होनेपर भी सृष्टिसे विरत कर दिया । प्रजापति दक्षने अपने पुत्र हव्यश्वाको सृष्टिसे विमुख देखकर सत्य आदि नामवाले साठ कन्याओंको उत्पन्न किया और उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, दो बाहुपुत्रको, दो कुशश्वाको, चार अरिष्टनेमिको, एक भृगुको और एक कन्या शंकरको प्रदान किया । फिर इनसे चराचर-जगत् उत्पन्न हुआ । मेरु पर्वतके तीन भूद्वीप ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी क्रमशः वैराज, वैकुण्ठ तथा कैलास नामक तीन पुरियाँ हैं । पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र आदि दिक्पालोंकी नगरी है । हिमवान्, हेमकुण्ड, निषध, मेरु, नील, श्वेत और भृङ्गवान्—ये सात जम्बूद्वीपमें कुल-पर्वत हैं । जम्बूद्वीप लक्ष योजन प्रमाणवाला है । इसमें नौ चर्व हैं । जम्बू, शङ्ख, कुश, ब्रौह्म, शङ्खभरिल, गोमेद\* तथा पुष्कर—ये सात द्वीप हैं । ये सातों द्वीप सात समुद्रोंसे परिवेष्टित हैं । क्षर, दुग्ध, इक्षुरस, सुर्य, दधि, घृत और स्वादिष्ट जलके सात समुद्र हैं । सातों समुद्र और सातों द्वीप एककी अपेक्षा एक द्विगुण हैं । भूतलैक, भुवतलैक, स्वर्गतैक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—ये देवताओंके निवास-स्थान हैं । सात पाताललोक हैं—अतल, महातल, भूमितल, सुतल, वितल, रसातल तथा तलातल । इनमें हिरण्यक्ष आदि दानव और वासुकि आदि नाग निवास करते हैं । हे युधिष्ठिर ! सिद्ध और ऋषिगण भी इनमें निवास करते हैं । स्वायम्भुव, स्वरोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष—ये छः मनु व्यतीत हो गये हैं, इस समय वैवस्वत मनु वर्तमान हैं । उन्हींके पुत्र और पौत्रोंसे यह पृथिवी परिव्याप्त है । बारह आदित्य, आठ वसु, प्यारह रुद्र और दो अश्विनीकुमार—ये तैंतीस देवता वैवस्वत-मन्वन्तरमें कहे गये हैं । विप्रचित्तोसे दैत्यगण और हिरण्यक्षसे दानवगण उत्पन्न हुए हैं ।

द्वीप और समुद्रोंसे समन्वित भूमिका प्रमाण पचास कोटि

१-सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तरश्चि च। वंशानुवर्तिनो चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ (उत्तरपर्व २।१२)

\* अन्य मत्स्य आदि सभी पुराणोंके अनुसार गोमेद अर्थात् है, यहाँ ब्रह्म नामक द्वीप छूट गया है ।

योजन है। नौकाकी तरह यह भूमि जलपर तैर रही है। इसके चारों ओर लोकालोक-पर्वत हैं। नैमित्तिक, प्राकृत, आत्यन्तिक और नित्य—ये चार प्रकारके प्रलय हैं। जिससे इस संसारको उत्पत्ति होती है। प्रलयके समय उसीमें इसका लय हो जाता है। जिस प्रकार ऋतुके अनुकूल वृक्षोंके पुष्प, फल और फूल उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार संसार भी अपने समयसे उत्पन्न होता है और अपने समयसे लीन होता है। सम्पूर्ण विश्वके लीन होनेके बाद महेश्वर वेद-शब्दोंके द्वारा पुनः इसका निर्माण करते हैं। हिंस्र, अहिंस्र, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य आदि कर्मोंसे जीव अनेक योनिषोंको इस संसारमें प्राप्त करते

हैं। भूमि जलसे, जल तेजसे, तेज वायुसे, वायु आकाशसे वंशित है। आकाश अहंकारसे, अहंकार महत्तत्त्वसे, महत्तत्त्व प्रकृतिसे और प्रकृति उस अधिनाशो पुरुषसे परिव्याप्त है। इस प्रकारके हवाते अण्ड उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। सुर, नर, किन्नर, नाग, यक्ष तथा सिद्ध आदिसे समन्वित चराचर-जगत् नारायणकी कृपिके अवस्थित है। निर्मल-बुद्धि तथा शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनिगण इसके बाह्य और आभ्यन्तर-स्वरूपको देखते हैं अथवा परमात्माकी माया ही उन्हें जानती है।

(अध्याय २)

### नारदजीको विष्णु-मायाका दर्शन

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन्! यह विष्णु-भगवान्की माया किस प्रकारकी है? जो इस चराचर-जगत्को व्याप्तोहित करती है।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज! किसी समय नारदमुनि श्वेतद्वीपमें नारायणका दर्शन करनेके लिये गये। वहाँ श्रीनारायणका दर्शन कर और उन्हें प्रसन्न-मुद्रामें देखकर उनसे निश्चास करे। भगवन्! आपकी माया कैसी है? कहाँ रहती है? कृपणकर उसका रूप मुझे दिखायें।

**भगवान्ने हँसकर कहा—**नारद! मायाको देखकर क्या करोगे? इसके अतिरिक्त जो कुछ चाहते हो वह माँगो।

**नारदजीने कहा—**भगवन्! आप अपनी मायाको ही दिखायें, अन्य किसी वस्ती अधिलक्ष्य नहीं है। नारदजीने बार-बार आग्रह किया।

**नारायणने कहा—**अच्छ, आप हमारी माया देखें। यह कहकर नारदकी आँगुली फट्टड़कर श्वेतद्वीपमें चले। मार्गमें आकर भगवान्ने एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया। शिखा, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, मृगचर्मको धारण कर कुशकी पवित्री हाथोंमें पहनकर वेद-पाठ करने लगे और अपना नाम उन्होंने यज्ञशर्मा रख लिया। इस प्रकारका रूप धारणकर नारदके साथ जम्बूद्वीपमें आये। वे दोनों वेङ्गवती नदीके तटपर स्थित विदिशा नामक नगरीमें गये। उस विदिशा नगरीमें धन-धान्यसे समृद्ध उद्यमी, गाय, भैंस, बकरी आदि पशु-पालनमें तत्पर, कृषिकर्मको भलीभाँति करनेवाला सौरभद्र

नामका एक वैश्य निवास करता था। वे दोनों सर्वप्रथम उसीके घर गये। उसने इन विशुद्ध ब्राह्मणोंका आसन, अर्घ्य आदिसे आदर-सत्कार किया। फिर पूछा—‘यदि आप उचित माद्यो हो अपनी रथिके अनुसार मेरे यहाँ अन्नका भोजन करें।’ यह सुनकर वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी भगवान्ने हँसकर कहा—‘तुम्हारे अनेक पुत्र-पौत्र हों और सभी व्यापार एवं खेलोंमें उत्तर रहे। तुम्हारी खेती और पशु-धनकी नित्य वृद्धि हो’—यह मेरा आशीर्वाद है। इतना कहकर वे दोनों वहाँसे आगे गये। मार्गमें गङ्गाके तटपर वैशिका नामके गाँवमें गेल्हाम्बी नामका एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था, वे दोनों उसके पास पहुँचे। वह अपनी खेतीकी चिन्तामें लगा था। भगवान्ने उससे कहा—‘हम बहुत दूरसे आये हैं, अब हम तुम्हारे अतिथि हैं, हम भूखे हैं, हमें भोजन कराओ।’ उन दोनोंको साथमें लेकर वह ब्राह्मण अपने घरपर आया। उसने दोनोंकी स्नान-भोजन आदि कराया, अनन्तर सुखपूर्वक उत्तम शय्यापर शयन आदिकी व्यवस्था की। प्रातः उठकर भगवान्ने ब्राह्मणसे कहा—‘हम तुम्हारे घरमें सुखपूर्वक रहे, अब जा रहे हैं। परमेश्वर करे कि तुम्हारी खेती निष्फल हो, तुम्हारी संततिकी वृद्धि न हो’—इतना कहकर वे वहाँसे चले गये।

**मार्गमें नारदजीने पूछा—**भगवन्! वैश्यने आपकी कुछ भी सेवा नहीं की, किन्तु उसके आपने उत्तम घर दिया। इस ब्राह्मणने श्रद्धासे आपकी बहुत सेवा की, किन्तु उसके आपने आशीर्वादके रूपमें शपथ ही दिया—ऐसा आपने

क्यों किया ?

**भगवान्से कहा—**नारद ! वर्षभर मल्लयी पकड़नेसे जितना पाप होता है, उतना ही एक दिन हल जोतनेसे होता है। वह सीरपद्म वैश्य अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ इसी कृषि-कार्यमें लगा हुआ है, वह नरकमें जायगा, अतः हमने न तो उसके घरमें विश्राम किया और न भोजन ही किया। इस ब्राह्मणके घरमें भोजन और विश्राम किया। इस ब्राह्मणको ऐसा आशीर्वाद दिया है कि जिससे यह जगज्जालमें न फँसकर मुक्तिको प्राप्त करे।

इस प्रकार मार्गमें बातचीत करते हुए वे दोनों बान्धुकुलज देशके समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक अतिशय रम्य सरोवर देखा। उस सरोवरकी शोभा देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए।

**भगवान्ने कहा—**नारद ! यह उत्तम तीर्थस्थान है। इसमें स्नान करना चाहिये, फिर काशीज नामके नगरमें चलेगे इतना कहकर भगवान् उस सरोवरमें स्नान कर शीघ्र ही बाहर आ गये।

तदनन्तर नारदजी भी स्नान करनेके लिये सरोवरमें प्रविष्ट हुए। स्नान सम्पन्न कर जब वे बाहर निकले, तब उन्होंने अपनेको दिव्य कन्याके रूपमें देखा। उस कन्याके विद्याल नेत्र थे। चन्द्रमाके समान मुख था, वह सर्वाङ्ग-सुन्दरी कन्या दिव्य शुभलक्षणोंसे सम्पन्न थी। अपनी सुन्दरतासे संसारको व्यामोहित कर रही थी। जिस प्रकार समुद्रसे सम्पूर्ण रूपकी निधान लक्ष्मी निकली थी, उसी प्रकार सरोवरसे स्नानके बाद नारदजी स्त्रीके रूपमें निकले। भगवान् अन्तर्धान हो गये। वह स्त्री भी अपने झुंडसे भ्रष्ट अकेली हरिणीकी तरह भयभीत होकर इधर-उधर देखने लगी। इसी समय अपनी सेनाओंके साथ राजा तालध्वज वहाँ आया और उस सुन्दरीको देखकर सोचने लगा कि यह कोई देवसी है या अप्सरा ? फिर बोले—‘बाले ! तुम कौन हो, कहाँसे आयी हो ?’ उस कन्याने कहा—‘मैं माता-पितासे रहित और निराश्रय हूँ। मेरा विवाह भी नहीं हुआ है, अब आपकी ही शरणमें हूँ।’ इतना सुनते ही प्रसन्नचित्त हो राजा उसे छोड़ेपर बैठाकर राजधानी

पहुँचा और विधिपूर्वक उससे विवाह कर लिया। तेरहवें वर्षमें वह गर्भवती हुई। समय पूर्ण होनेपर उससे एक पुत्री (लौक्य) उत्पन्न हुई, जिसमें पचास छोटे-छोटे दिव्य शरीरवाले युद्धमें कुशल बलशाली बालक थे, उसने उनको धृतकुण्डमें छोड़ दिया, कुछ दिन बाद पुत्र और पौत्रोंकी खूब वृद्धि हो गयी। वे महान् अहंकारी, परस्पर-विरोधी और राज्यकी कामना करनेवाले थे। अनन्तर राज्यके लोभसे कौरव और पाण्डवोंकी तरह परस्पर युद्ध करके समुद्रकी लहरोंकी भाँति लड़ते हुए वे सभी नष्ट हो गये। वह स्त्री अपने वंशका इस प्रकार संसार देखकर छाती पीटकर कलणपूर्वक विरग्न करती हुई मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी। राजा भी शोकसे पीड़ित हो रोने लगा।

इसी समय ब्राह्मणका रूप धारणकर भगवान् विष्णु द्विजोंके साथ वहाँ आये और राजा तथा रानीको उपदेश देने लगे—‘यह विष्णुकी माया है। तुमलोग व्यर्थ ही रो रहे हो। सम्पूर्ण प्राणियोंकी अन्तमें यही स्थिति होती है। विष्णुमाया ही ऐसी है कि उसके द्वारा सैकड़ों चक्रवर्ती और हजारों इन्द्र उसी तरह नष्ट कर दिये गये हैं जैसे दीपकको प्रचण्ड वायु विनष्ट कर देती है। समुद्रको सुखानेके लिये भूमिको पीसकर चूर्ण बन डालनेकी तथा पर्वतको पीठपर उठानेकी सामर्थ्य रखनेवाले पुरुष भी कालके कठाल मुखमें चले गये हैं। शिकुट पर्वत जिसका दुर्ग था, समुद्र जिसकी खाई थी, ऐसी लंका जिसकी राजधानी थी, राक्षसगण जिसके योद्धा थे, सभी शस्त्री और वेदोंकी जाननेवाले गुरुाचार्य जिसके लिये मन्त्रणा करते थे, कुम्भेरके घनको भी जिसने जीत लिया था, ऐसा रावण भी दैववश नष्ट हो गया। युद्धमें, घरमें, पर्वतपर, अग्निमें, गुफामें अथवा समुद्रमें कहीं भी कोई जाय, वह कालके कोपसे नहीं बच सकता। भावी होकर ही रहती है। पातालमें जाय, इन्द्रलोकमें जाय, मेरु पर्वतपर चढ़ जाय, मन्त्र, औषध, शस्त्र आदिसे भी कितनी भी अपनी रक्षा करे, किंतु जो होना होता है, वह होता ही है—इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है। मनुष्योंके भ्राम्यानुसार जो भी शुभ और अशुभ होना है, वह अवश्य ही होता है। हजारों उपाय करनेपर भी

भावी किसी भी प्रकार नहीं टल सकती<sup>१</sup>। कोई शोक-विह्वल होकर आसू टपकता है, कोई रोता है, कोई बड़ी प्रसन्नतासे नाचता है, कोई मनोहर गीत गाता है, कोई धनके लिये अनेक उपाय करता है, इस तरह अनेक प्रकारके जालवी रचना करता रहता है, अतः यह संसार एक नाटक है और सभी प्राणिजगत् उस नाटकके पात्र हैं।<sup>२</sup>

इतना उपदेश देकर भगवान्ने रानीका हाथ पकड़कर कहा—‘नारदजी ! तुमने विष्णुकी माया देख ली। उठो ! अब स्नानकर अपने पुत्र-पौत्रोको अर्घ्य देकर और्ध्वैहिक कृत्य करो। यह माया विष्णुने स्वयं निर्मित की है।’ इतना कहकर उसी पुण्यतीर्थमें नारदको स्नान करवाया। स्नान करते ही स्त्री-रूपको छोड़कर नारदमुनिने अपना रूप धारण कर लिया। राजासे भी अपने मन्त्री और पुरोहितोंके साथ देखा कि

### संसारके दोषोंका वर्णन

**महाराज युधिष्ठिरने पूछा**—भगवन् ! यह जीव किस कर्मसे देवता, मनुष्य और पशु आदि योनियोंमें उत्पन्न होता है ? बालभ्रष्टमें कैसे पुष्ट होता है और किस कर्मसे युवा होता है ? किस कर्मके फलस्वरूप अतिशय भयंकर टाकन गर्भवासका कष्ट सहन करता है ? गर्भमें क्या करता है ? किस कर्मसे रूपवान्, धनवान्, पण्डित, पुत्रवान्, त्यागी और कुलीन होता है ? किस कर्मसे रोगरहित जीवन व्यतीत करता है ? कैसे सुखपूर्वक मरता है ? शुभ और अशुभ फलका भोग कैसे करता है ? हे विमलमते ! ये सभी विषय मुझे बहुत ही गहन मालूम होते हैं ?

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा**—महाराज ! उत्तम कर्मोंसे देवयोनि, मिश्रकर्मसे मनुष्ययोनि और पाप-कर्मोंसे पशु आदि योनियोंमें जन्म होता है। धर्म और अधर्मके मिश्रणमें भ्रुति हो प्रमाण है। पापसे पापयोनि और पुण्यसे पुण्ययोनि प्राप्त होती है।<sup>३</sup>

अतुक्कालके समय दोषरहित शुक्ल वायुसे प्रेरित स्त्रोके रक्तके साथ मिलकर एक हो जाता है। शुक्लके साथ ही कर्मोंके

जटाधारी, यज्ञोपवीतधारी, दण्ड-कमण्डलु लिये, वीणा धारण किये हुए, सङ्गठनोंके ऊपर स्थित एक तेजस्वी मुनि हैं, यह मेरी रानी नहीं है। उसी समय भगवान् नारदका हाथ पकड़कर आकाश-मार्गसे क्षणमात्रमें श्वेतद्वीप आ गये।

**भगवान्ने नारदसे कहा**—देवर्षि नारदजी ! आपने मेरी माया देखा ली। नारदके देखते-देखते ऐसा कष्टकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये। देवर्षि नारदजीने भी हैसकर उन्हें प्रणाम किया और भगवान्की आज्ञा प्राप्त कर तीनों लोकोंमें घूमने लगे। महाराज ! इस विष्णुमायाका हमने संशोधनमें वर्णन किया। इस मायाके प्रभावसे संसारके जीव, पुत्र, स्त्री, भन आदिमें आसक्त हो रोते-गाते हुए अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करते हैं।

(अध्याय ३)

अनुसार प्रेरित जैवज्योतिर्मे प्रविष्ट होता है। एक दिनमें शुक्ल और शोणित मिलकर कलल बनता है। पाँच रातमें वह कलल सुष्ट हो जाता है। सात रातमें सुष्ट मांसपेशी बन जाता है। चौदह दिनोंमें वह मांसपेशी मांस और रुधिरसे व्याप्त होकर दृढ़ हो जाता है। पचीस दिनोंमें उसमें अङ्गुर निकलते हैं। एक महीनमें उन अङ्गुरोंके पाँच-पाँच भाग— घीवा, सिर, कंधे, पृष्ठवंश तथा उदर हो जाते हैं। चार मासमें वही अङ्गुरोंका भाग अंगुली बन जाता है। पाँच महीनेमें मुख, नासिका और कान बनते हैं। छः महीनेमें दन्तप्राक्तियाँ, नख और कानके छिद्र बनते हैं। सातवें महीनेमें गुदा, लिङ्ग अथवा योनि और नाभि बनते हैं, संधियाँ उत्पन्न होती हैं और अङ्गोंमें संबोध भी होता है। आठवें महीनेमें अङ्ग-प्रत्यङ्ग सब पूर्ण हो जाते हैं और सिरमें केश भी आ जाते हैं। माताके भोजनका रस नाभिके द्वार बालकके शरीरमें पहुँचता रहता है, उसीसे उसका पोषण होता है। तब गर्भमें स्थित जीव सब सुख-दुःख समझता है और यह विचार करता है कि ‘मैंने अनेक योनियोंमें जन्म लिया और बारंबार मृत्युके अधीन हुआ और अब जन्म

१-वाक्यलमाविशानु यातु स्रोत्रलोकागमोऽनु सतिधर्माधिपति सुपेक्षम्।

मन्वीधधिप्रहरणैश्च करोतु रक्षां यदापि तद्वयति नाथ विमलवितेऽग्रिम ॥ (उत्तरपर्व ४।१५)

२-शुभेदेवलययोनि मित्रैर्मानुषतां जन्वेत्। अशुभैः कर्मैर्धर्मैर्भुतिर्येयोनिषु जायते ॥

प्रमाणं भ्रुतिरिव च धर्माधर्मोन्निजये। पापं योनेन प्राप्ति पुण्यं पुण्येन कर्मणः ॥ (उत्तरपर्व ४।६-७)



होते ही फिर संसारके बन्धनको प्राप्त करेगा।' इस प्रकार गर्भमें विचारता और मोक्षका उपाय सोचता हुआ जीव अतिशय दुःखी रहता है। पर्वतके नीचे दब जानेसे कितना क्लेश जीवको होता है, उतना ही जरायुसे वेष्टित अर्थात् गर्भमें होता है। समुद्रमें डूबनेसे जो दुःख होता है, वही दुःख गर्भके जलमें भी होता है, तब लोहेके खम्भेसे बाँधनेमें जीवको जो क्लेश होता है वही गर्भमें जटराग्रिके तापसे होता है। तपायी हुई मृदुबोसे बेधनेपर जो व्यथा होती है, उससे आठ गुना अधिक गर्भमें जीवको कष्ट होता है। जीवोंके लिये गर्भवाससे अधिक कोई दुःख नहीं है। उससे भी कष्टि गुना दुःख जन्म लेते समय होता है, उस दुःखसे मूर्च्छा भी आ जाती है। प्रबल प्रसव-वायुकी प्रेरणासे जीव गर्भके बाहर निकलता है। जिस प्रकार कोलहृमे पीड़न करनेसे तिल निस्सार हो जाते हैं, उसी प्रकार शरीर भी योनिमन्त्रके पीड़नसे निस्सार हो जाता है। मुखरूप जिसका द्वार है, दोनों ओष्ठ कपाट हैं, सभी इन्द्रियों गवक्ष अर्थात् झरोखे हैं, दाँत, जिह्वा, गला, नास, पित्त, कफ, जरा, शोक, काम, क्रोध, लुब्धा, राग, द्वेष आदि जिसमें उपकरण हैं, ऐसे इस देह-रूप अनित्य गृहमें नित्य आत्माका निवास-स्थान है। शुक-शोणितके संयोगसे शरीर उत्पन्न होता है और नित्य ही मूत्र, विष्टा आदिसे भरा रहता है। इसलिये यह अल्पज अपवित्र है। जिस प्रकार विष्टासे भरा हुआ घट बाहर धोनेसे शुद्ध नहीं होता, इसी प्रकार यह देह भी स्नान आदिके द्वारा पवित्र नहीं हो सकता। पञ्चगव्य आदि पवित्र पदार्थ भी इसके संसर्गसे अपवित्र हो जाते हैं। इससे अधिक और कौन अपवित्र पदार्थ होगा। उत्तम भोजन, पान आदि देहके संसर्गसे मलरूप हो जाते हैं, फिर देहकी अपवित्रताका क्या वर्णन करें। देहको बाहरसे कितना भी शुद्ध करें, भीतर जो कफ, मूत्र, विष्टा आदि भरे ही रहेंगे। सुगन्धित तेल देहमें मल्ले रहे, परंतु कभी इस देहकी मलिनता कम नहीं होती। यह आश्चर्य है कि मनुष्य अपने देहका दुर्गन्ध सूँघकर, नित्य अपना मल-मूत्र देखकर और नासिकाका मल निकालकर भी इस देहसे विरक्त नहीं

होता और उसे देहसे घृणा उत्पन्न नहीं होती। यह मोहका ही प्रभाव है कि शरीरके दोष और दुर्गन्ध देख-सूँघकर भी इससे गमन नहीं होती। यह शरीर स्वभावतः अपवित्र है। यह केलेके वृक्षकी भाँति केवल त्वक् आदिसे आवृत और निस्सार है। जन्म होते ही बाहरकी वायुके स्पर्शसे पूर्वजन्मोंका ज्ञान नष्ट हो जाता है और पुनः संसारके व्यवहारमें आसक्त हो अनेक दुष्कर्ममें रत हो जाता है और अपनेको तथा परमेश्वरको भूल जाता है। आँख रहते हुए भी नहीं देख पाता, बुद्धि रहते हुए भी भले-बुरेका निर्णय नहीं कर पाता। राग तथा लोभ आदिके वशीभूत होकर वह संसारमें दुःख प्राप्त करता रहता है। सूँघे सारंगमें भी पैर फिसलते हैं, यह सब मोहकी ही महिमा है। दिव्यदर्शी महर्षियोंने इस गर्भका वृत्तान्त विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। इसे सुनकर भी मनुष्यको वैराग्य उत्पन्न नहीं होता और अपने कल्याणका मार्ग नहीं सोचता—यह बड़ा ही आश्चर्य है।

बाल्यावस्थामें भी केवल दुःख ही है। बालक अपना अभिप्राय भी नहीं कह सकता और जो चाहता है, वह नहीं कर पाता, वह असमर्थ रहता है। इससे नित्य व्याकुल रहता है। दाँत आनेके समय बालक बहुत क्लेश भोगता है और भाँति-भाँतिके रोग तथा बालग्रह उसे सताते रहते हैं। वह लुब्ध-लुब्धसे पीड़ित होता रहता है, मोहमें विष्टा आदिका भी भक्षण करने लगता है। कुमारारम्भमें कर्ण-वेधके समय दुःख होता है। अक्षरारम्भके समय गुरूमें भी बड़ा ही भय होता है। मल-पित्त ताडन करते हैं।

युवकवस्थामें भी सुख नहीं है। अनेक प्रकारकी ईर्ष्या मनमें उपजती है। मनुष्य मोहमें लीन हो जाता है। राग आदिमें आसक्त होनेके कारण दुःख होता है, राखिको नौद नहीं आती और धनकी चिन्तासे दिनमें भी चैन नहीं पड़ता। स्त्री-संसर्गमें भी कोई सुख नहीं। कुछी व्यक्तिके कोढ़में कीड़े पड़ जानेपर जो कुजलहट होती है, उसे कुजलजनेमें कितना आनन्द होता है, उसमें अधिक कामी व्यक्तिके स्त्रीसे सुख नहीं मिलता।<sup>१</sup>

१-अव्यक्तेन्द्रियवृत्तिवद् बालो दुःखं महत्तमम् । इच्छाक्री न जन्मोति कर्तुं ननु यः संश्रियम् ॥

दशोक्ताने महदुःखं मौलेन व्यथितं तथा । कालमेवैतं विविधैः पेषा कलज्जरेण ॥

किमिषिमुद्यमानस्य कुडिन्ः कामिनस्य च । कण्ठस्थजिह्वेन यदप्येत स्त्रीयु तद्धि तत् ॥

इस तरह विचार करनेपर मालूम होता है कि स्त्रीमें कोई सुख नहीं है।

व्यक्ति मान-अपमानके द्वारा, सुखावस्था-वृद्धावस्थाके द्वारा और संयोग-वियोगके द्वारा प्रसन्न है, तो फिर निर्विवाद सुख कहाँ ? जो जीवनके कारण स्त्री-पुरुषोंके शरीर परस्पर प्रिय लगते हैं, वही वार्धक्यके कारण घृणित प्रतीत होते हैं। वृद्ध हो जाने, शरीरके कर्षण और सभी अङ्गोंके जर्जर एवं शिथिल हो जानेपर वह सभीको अप्रिय लगता है। जो युवावस्थाके बाद वार्धक्यमें अपनेमें भारी परिवर्तन और अपनी शक्तिहीनताको देखकर विरक्त नहीं होता—धर्म और भगवान्की ओर प्रवृत्त नहीं होता, उसमें बढ़कर मूल बौद्ध हो सकता है ?

बुढ़ापेमें जब पुत्र-पौत्र, बान्धव, दुराचारी नौकर आदि अवज्ञा—उपेक्षा करते हैं, तब अत्यन्त दुःख होता है। बुढ़ापेमें वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-सम्बन्धी कार्योंको सम्पन्न करनेमें असमर्थ रहता है। इसमें बाल, पितृ आदिकी विषमतासे अर्थात् न्यूनता-अधिकता होनेसे अनेक प्रकारके रोग होते रहते हैं। इसीलिये यह शरीर रोगोक्त घर है। ये दुःख प्रायः सभीको समय-समयपर अनुभूत होते ही हैं, फिर उसमें विशेष कहनेकी आवश्यकता ही क्या ?

वास्तवमें शरीरमें सैकड़ों मूल्युके स्थान हैं, जिनमें एक तो साक्षात् मूल्यु या काल है, दूसरे अन्य अने-जानेवाली भयंकर आधि-व्याधियाँ हैं, जो आधी मूल्युके समान हैं। अने-जानेवाली आधि-व्याधियाँ तो ज्वर-तप एवं औषध आदिसे टल भी जाती हैं, परन्तु काल—मूल्युका कोई उपाय नहीं है। रोग, सर्प, शस्त्र, विष तथा अन्य घात करनेवाले बाण, सिंह, दस्यु आदि प्राणिवर्ग ये सब भी मूल्युके द्वार ही हैं। किन्तु जब रोग आदिके रूपमें साक्षात् मूल्यु पहुँच जाती है तो देव-वैद्य धन्वन्तरि भी कुछ नहीं कर पाते। औषध, तन्त्र, मन्त्र, तप, दान, रसायन, योग आदि भी कालसे प्रसन्न व्यक्तिकी रक्षा नहीं कर सकते। सभी प्राणियोंके लिये मूल्युके समान न कोई रोग है, न भय, न दुःख है और न कोई शंखका स्थान अर्थात् केवल एकमात्र मूल्युसे ही सारे भय आदि आशंकनीय हैं। मूल्यु पुत्र, स्त्री, मित्र, राज्य, ऐश्वर्य, धन आदि सबसे विपुल कर देती है और बद्धमूल केर भी मूल्युसे निवृत्त हो जाते हैं।

पुरुषकी आयु सौ वर्षोंकी कही गयी है, परन्तु कोई अस्सी वर्ष जोता है कोई सत्तर वर्ष। अन्य लोग अधिक-से-अधिक साठ वर्षतक ही जीते हैं और बहुत-से तो इससे पहले ही मर जाते हैं। पूर्वकर्मनुसार मनुष्यकी जितनी आयु निश्चित है, उसका आधा समय तो रात्रि ही सोनेमें हर लेती है। बीस वर्ष बाल्य और बुढ़ापेमें व्यर्थ चले जाते हैं। युवा-अवस्थामें अनेक प्रकारकी चिन्ता और कामकी व्यथा रहती है। इसीलिये वह समय भी निरर्थक ही चल जाता है। इस प्रकार यह आयु समाप्त हो जाती है और मृत्यु आ पहुँचती है। मरणके समय जो दुःख होता है, उसकी कोई उपमा नहीं। हे मातः ! हे पितः ! हे वयन्त ! आदि चिल्लाते व्यक्तिको भी मृत्यु वैसे ही पकड़ ले जाती है, जैसे मेढकको सर्प पकड़ लेता है। व्याधिसे पीड़ित व्यक्ति खाटपर पड़ा इधर-उधर हाथ-पैर पटकता रहता है और खाँस लेता रहता है। कभी खाटसे भूमिपर और कभी भूमिसे खाटपर जाता है, परन्तु कहीं धैन नहीं मिलता। कण्ठमें धर-धर शब्द होने लगता है। मुख सूख जाता है। शरीर मूत्र, विष्टा आदिसे लिप्त हो जाता है। प्यास लगनेपर जब वह पानी माँगता है, तो दिया हुआ पानी भी कण्ठतक ही रह जाता है। वाणी बंद हो जाती है, पड़ा-पड़ा चिन्ता करता रहता है कि मेरे धनको कौन भोगेगा ? मेरे कुटुम्बकी रक्षा कौन करेगा ? इस तरह अनेक प्रकारकी यातना भोगता हुआ मनुष्य मरता है और जोष इस देहसे निकलते ही जोषकी तरह दूसरे शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है।

मूल्युमें भी अधिक दुःख विवेकी पुरुषोंको याचना अर्थात् माँगनेमें होता है। मूल्युमें तो क्षणिक दुःख होता है, किन्तु याचनामें तो निरन्तर ही दुःख होता है। देखिये, भगवान् विष्णु भी बलिसे माँगते ही कामन (अत्यन्त छोटे) हो गये। फिर और दूरसा है ही कौन जिसकी प्रतिष्ठा याचनासे न घटे। आदि, मध्य और अन्तमें दुःखको ही परम्परा है। अज्ञानवश मनुष्य दुःखोंको झेलता हुआ कभी आनन्द नहीं प्राप्त करता। बहुत खाये तो दुःख, थोड़ा खाये तो दुःख, किसी समय भी सुख नहीं है। क्षुधा सब रोगोंमें प्रबल है और वह अप्ररूपी औषधिके सेषनसे थोड़ी देरके लिये शान्त हो जाती है, परन्तु अन्न भी परम सुखका साधन नहीं है। प्रातः उठते ही मूत्र, विष्टा आदिकी बाधा, मध्याह्नमें क्षुधा-तृषाकी पीड़ा और पेट

भरनेपर कामकी व्यथा होती है। रात्रिको निद्रा दुःख देती है। धनके सम्पादनमें दुःख, सम्पादित धनकी रक्षा करनेमें दुःख, फिर उसके व्यय करनेमें अतिशय दुःख होता है। इससे धन भी सुखदायक नहीं है। चोर, जल, अग्नि, राजा और स्वजनोंसे भी धनवालोंको अधिक भय रहता है। मांसको आकाशमें फेंकनेपर पक्षी, भूमिपर कुत्ते आदि जीव और जलमें मछली आदि खा जाते हैं, इसी प्रकार धनवान्की भी सर्वत्र यही स्थिति होती है। सम्पत्तिके अर्जन करनेमें दुःख, सम्पत्तिकी प्राप्तिके बाद मोहरूपी दुःख और नाश हो जानेपर तो अत्यन्त दुःख होता ही है, इसलिये किसी भी कालमें धन सुखका साधन नहीं है। धन आदिकी कामनाएँ ही दुःखका परम कारण हैं, इसके विपरीत कामनाओंसे निःस्पृह रहना परम सुखका मूल है<sup>१</sup>।

हेमन्त ऋतुमें शीतका दुःख, ग्रीष्ममें दारुण तापका दुःख और वर्षा ऋतुमें झंझावात तथा वर्षाका दुःख होता है। इसलिये काल भी सुखदायक नहीं है। विवाहमें दुःख और पतिके विदेश-गमनमें दुःख, स्त्री गर्भवती हो तब दुःख, प्रसवके समय दुःख, संतानके दन्त, नेत्र आदिकी पीड़ासे दुःख। इस प्रकार स्त्री भी सदा व्याकुल रहती है। कुटुम्बिकोंको यह चिन्ता रहती है कि गौ नष्ट हो गयी, खेती सूख गयी, नौकर

चला गया, घरमें मेहमान आया है, स्त्रीके अभी संतान हुई है, इसके लिये रसोई कौन बनायेगा, कन्याके विवाह आदिकी चिन्ता—इस प्रकार हजारों चिन्ताएँ कुटुम्बिकोंके कारण लगी रहती हैं, जिनसे उनके शील, शुद्ध बुद्धि और सम्पूर्ण गुण नष्ट हो जाते हैं, जिस तरह कसे घड़ेमें जल डालते ही घटके साथ जल नष्ट हो जाता है, उसी तरह गुणोंसहित कुटुम्बी मनुष्यका देह नष्ट हो जाता है।

राज्य भी सुखका साधन नहीं है। जहाँ नित्य सन्धि-विग्रहकी चिन्ता लगी रहती है और पुत्रसे भी राज्यके ग्रहणका भय बना रहता है, वहाँ सुखका लेश भी नहीं है। अपनी जातिसे भी सबको भय होता है। जिस प्रकार एक मांस-सम्पन्नके अभिलषी कुत्तोंके परस्पर भय रहता है, वैसे ही संसारमें कोई सुखी नहीं है। ऐसा कोई राजा नहीं जो सबको जीतकर सुखपूर्वक राज्य करे, प्रत्येकको दूसरेसे भय रहता है। इतना कहकर श्रीकृष्णभगवान्ने पुनः कहा कि 'महाराज ! यह कर्ममय शरीर जन्मसे लेकर अन्ततक दुःखी ही है। जो पुरुष जिह्मिन्द्रिय हैं और अत, दान तथा उपवास आदिमें तत्पर रहते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं।'

(अध्याय ४)

### विविध प्रकारके पापों एवं पुण्य-कर्मोंका फल

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! अधम कर्म करनेसे जीव घोर नरकमें गिरते हैं और अनेक प्रकारकी यातनाएँ भोगते हैं। उस अधम कर्मको ही पाप और अधर्म कहते हैं। चित्तवृत्तिके भेदसे अधर्मका भेद जानना चाहिये। स्थूल, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म आदि भेदोंके द्वारा करोड़ों प्रकारके पाप हैं। परंतु यहाँ मैं केवल बड़े-बड़े पापोंका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ—परस्त्रीका चिन्तन, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन और अकार्य (कुकर्मा) में अभिनिवेश—ये तीन प्रकारके मानस पाप हैं। अनियन्त्रित प्रलम्प, अग्रिय, असत्य, परनिन्दा और

पितृसता अर्थात् चुगल—ये पाँच कायिक पाप हैं। अपक्षय-पक्षय, हिंस, मिथ्या कामसेवन (असंयमित जीवन व्यतीत करना) और परधन-हरण—ये चार वाचिक पाप हैं। इन बारह कर्मोंके करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। इन कर्मोंके भी अनेक भेद होते हैं। जो पुरुष संसाररूपी सागरसे उद्धार करनेवाले महादेव अथवा भगवान् विष्णुसे द्वेष रखते हैं, वे घोर नरकमें पड़ते हैं। ब्राह्महत्या, सुराशन, सुवर्णकी चोरी और गुरु-पजीगमन—ये चार महापातक हैं। इन पातकोंको करने-वालोंके सम्पर्कमें रहनेवाला मनुष्य पाँचवाँ महापातकी गिना

१-अर्थसंशोधनम् । दुःखार्थितकल्पम् । रात्रौ । जगते दुःखं जगते दुःखमर्थेणैव कुलः सुखम् ॥

चौधः सलिलजलमे । स्वकालं पार्थिवदम् । भवमर्थकं नित्यं मूलोः प्राणभूतमिव ॥

ये यत् पक्षिभिरासं भक्षयते क्षान्तेर्भुज । जले च पश्यते मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वितकन् ॥

विमोहयन्ति सम्पत्सु तापयन्ति विवर्तिषु । संदयन्त्यर्जुनकले कदा ह्यन्यः सुखयतः ॥

यथाधर्मोपनिषदो यथा सर्वार्थसिन्धुः । यथाधर्मोपनिषदुःखी सुखी सर्वार्थसिन्धुः ॥

जाता है। ये सभी नरकमें जाते हैं।

अब मैं उपपातकोंका वर्णन करता हूँ। ब्राह्मणको कोई पदार्थ देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर नहीं देना, ब्राह्मणका धन हरण करना, अत्यन्त अहंकार, अतिज्ञेय, दाम्पिकत्व, कृतघ्नता, कृपणता, विषयोंमें अतिद्वेष आसक्ति, अच्छे पुरुषोंसे द्वेष, परस्त्रीहरण, कुमारीगमन, स्त्री, पुत्र आदिको बेचना, स्त्री-धनसे निर्वाह करना, स्त्रीकी रक्षा न करना, ऋण लेकर न चुकाना, देवता, अग्नि, साधु, गौ, ब्राह्मण, राजा और पतिव्रताकी निन्दा करना आदि उपपातक हैं। इन पापोंको करनेवाले पुरुषोंका जो संसर्ग करते हैं वे भी पातकी होते हैं। इस प्रकार पाप करनेवाले मनुष्योंको मृत्युके बाद यमराज नरकमें ले जाते हैं। जो भूलसे पाप करते हैं, उनको गुरुजनोंकी आज्ञाके अनुसार प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो मन, वचन, कर्ममें पाप करते हैं एवं दूसरोंसे कराते हैं अथवा पाप करते हुए पुरुषोंका अनुमोदन करते हैं, वे सभी नरकमें जाते हैं और जो उत्तम कर्म करते हैं, वे स्वर्गमें सुखसे आनन्द भोगते हैं। अशुभ कर्मोंका अशुभ फल और शुभ कर्मोंका शुभ फल होता है।

महाराज ! यमराजकी सभामें सबके शुभ-अशुभ कर्मोंका विचार चित्रगुप्त अर्द्ध करते हैं। जोको अपने कर्मनुसार फल भोगना पड़ता है। इसीलिये शुभ कर्म ही करना चाहिये। किये गये कर्मका फल बिना भोगे किसी प्रकार नष्ट नहीं होता। धर्म करनेवाले सुखपूर्वक परलोक जाते हैं और पापी अनेक प्रकारके दुःखका भोग करते हुए यमलोक जाते हैं। इसीलिये सदा धर्म ही करना चाहिये। जीव जिन्यासी हजार योजना चलकर वैवस्वतपुरमें पहुँचता है। पुण्यात्मियोंको इतना बड़ा मार्ग निकट ही जान पड़ता है और पापियोंके लिये बहुत लम्बा हो जाता है। पापी जिस मार्गसे चलते हैं, उसमें तीखे कटि, खंकाड़, पत्थर, कीचड़, गड्ढे और तलवारकी धारके समान तीक्ष्ण पत्थर पड़े रहते हैं और लोहेकी सुइयाँ बिखरी रहती हैं। उस मार्गमें कहीं अग्नि, कहीं सिंह, कहीं व्याघ्र और कहीं-कहीं मक्षिका, सर्प, वृक्षिक आदि दुष्ट जन्तु घूमते रहते हैं। कहींपर डाकिनী, जाकिनী, रोग और बड़े क्रूर राक्षस दुःख देते रहते हैं। उस मार्गमें न कहीं छाया है और न जल। इस प्रकारके भयंकर मार्गसे यमदूत पापियोंको लोहेकी शृङ्खलासे बाँधकर घसीटते हुए ले जाते हैं। उस समय अपने बन्धु

आदिसे रहित वे प्राणी अपने कर्मोंको सोचते हुए रोते रहते हैं। भूख और प्यासके मारे उनके कण्ठ, तालु और ओष्ठ सूख जाते हैं। भयंकर यमदूत उन्हें बार-बार ताड़ित करते हैं और पैरोंमें अथवा चोटोंमें साँकलसे बाँधकर खींचते हुए ले जाते हैं। इस प्रकार दुःख भोगते-भोगते वे यमलोकमें पहुँचते हैं और वहाँ अनेक यातनाएँ भोगते हैं।

पुण्य करनेवाले उत्तम मार्गसे सुखपूर्वक पहुँचकर सौम्य-स्वरूप धर्मराजका दर्शन करते हैं और वे उनका बहुत आदर करते हैं, वे कहते हैं कि महाशयो ! आपलोग धन्य हैं, दूसरोंका उपकार करनेवाले हैं। अपने दिव्य सुखकी प्राप्तिके लिये बहुत पुण्य किया है। इसीलिये इस उत्तम विमानपर चढ़कर स्वर्गको जायें। पुण्यात्मा यमराजको प्रसन्नचित्त अपने पिताकी भाँति देखते हैं, परन्तु पापी लोग उन्हें भयानक रूपमें देखते हैं। यमराजके समीप ही कालाग्निके समान क्रूर कृष्ण-वर्ण मृत्युदेव विराजमान रहते हैं और कालकी भयंकर शक्तियाँ तथा अनेक प्रकारके रूप धारण किये सम्पूर्ण रोग वहाँ बैठे दिखायी देते हैं। कृष्णवर्णिके असंख्य यमदूत अपने हाथोंमें शक्ति, शूल, अङ्गुश, पाश, खड्ग, खड्ग, वक्र, दण्ड आदि उत्तम धारण किये वहाँ स्थित रहते हैं। पापी जीव यमराजको इस रूपमें स्थित देखते हैं और यमराजके समीप बैठे हुए चित्रगुप्त उनकी धर्मा करके कहते हैं कि पापियो ! तुमने ऐसे बुरे कर्म क्यों किये ? तुमने पराया धन अपहरण किया है, रूपके गर्वसे पर-स्त्रियोंका सम्पर्क किया है, और भी अनेक प्रकारके पातक-उपपातक तुमने किये हैं। अब उन कर्मोंका फल भोगो। अब कोई तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। इस प्रकार पापी राजाओंका तर्जनीकर चित्रगुप्त यमदूतको आज्ञा देते हैं कि इनको ले जाकर नरकोंकी आगमें डाल दो।

सातवें पातालमें घोर अन्धकारके बीच अति दारुण अड्डाईस करोड़ नरक हैं, जिनमें पापी जीव यातना भोगते हैं। यमदूत वहाँ उनके ऊँचे वृक्षोंकी शाखाओंमें टाँग देते हैं और सैकड़ों मन लोहा उनके पैरोंमें बाँध देते हैं। उस बोझसे उनका शरीर टूटने लगता है और वे अपने अशुभ कर्मोंको यादकर रोते और विल्लते हैं। तपाये हुए कँटीसे युक्त लौह-दण्डसे और चाकुओंसे यमदूत उन्हें बार-बार ताड़ित करते हैं और साँसेसे कटकाते हैं। जब उनके देहोंमें घाव हो जाता है तब



उनमें नमक लगाते हैं। कभी उनको उतारकर खीलते हुए तेलमें डालते हैं, वहाँसे निकालकर विष्टाके कुप्पमें उनको डुबोते हैं, जिनमें कोई कट-काटकर खाते हैं, फिर मेट, रुधिर, पूय आदिके कुण्डोंमें उनको डकेल देते हैं। जहाँ लोहेकी खोचवाले कक और खान आदि जीव उनका मांस नोच-नोच कर खाते हैं। कभी उनको तीक्ष्ण शूलोंमें पिरोते हैं।

अभक्ष्य-भक्षण और मिथ्या भक्षण करनेवाली जिह्वाको बहुत दण्ड मिलता है। जो पुरुष माता, पिता और गुरुको कठोर वचन बोलते हैं, उनके मुँहमें जलते हुए अंगारे भर दिये जाते हैं और पाषाणोंमें नमक भरकर खीलता हुआ तेल डाल दिया जाता है। जो अतिथिोंको अन्न-जल दिये बिना उसके सम्मुख ही स्वयं भोजन करते हैं, वे इसकी त्रास कोल्टूमों में घरे जाते हैं तथा वे अस्तिताल वन नामक नरकमें जाते हैं। इस प्रकार अनेक क्रोध भोगते रहनेपर भी उनके प्राण नहीं निकलते। जिसने पत्नारीके साथ संग किया हो, समदूत उसे तप्त लोहेकी नारीसे आलिङ्गन कराते हैं और पर-पुरुषार्थिनी स्त्रीको तप्त लौह पुरुषसे लिपटाते हैं और कहते हैं कि 'दुष्टे ! जिस प्रकार तुमने अपने पतिका परित्याग कर पर-पुरुषका आलिङ्गन किया, उसी प्रकारसे इस लौह-पुरुषका भी आलिङ्गन करो।' जो पुरुष देवालय, बाग, चापी, कुप, मठ आदिको नष्ट करते हैं और वहाँ रहकर मैथुन आदि अनेक प्रकारके पाप करते हैं, समदूत उनको अनेक प्रकारके यन्त्रोंसे पीडित करते हैं और वे जबतक चन्द्र-सूर्य हैं, तबतक नरककी अग्निमें पड़े जलते रहते हैं। जो गुरुकी निन्दा प्रवण करते हैं, उनके कानोंको दण्ड मिलता है। इस प्रकार दिन-दिन इन्द्रियोंसे मनुष्य पाप करते हैं, वे इन्द्रियों कष्ट पाते हैं। इस प्रकारकी अनेक घोर यातना पापी पुरुष सभी नरकोंमें भोगते हैं। इनका सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं हो सकता। जीव नरकोंमें अनेक प्रकारकी दारुण व्यथा भोगते रहते हैं, परंतु उनके प्राण नहीं निकलते।

इससे भी अधिक दारुण यातनाएँ हैं, मृदुकिंत पुरुष उनको सुनकर ही दहलने लगते हैं। पुत्र, मित्र, स्त्री आदिके लिये प्राणी अनेक प्रकारका पाप करता है, परंतु उस समय

कोई सहायता नहीं करता। केवल एककी ही वह दुःख भोगता है और प्रलयपर्यन्त नरकमें पड़ा रहता है। यह धृत सिद्धान्त है कि अपना किया पाप स्वयं भोगना पड़ता है। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य शरीरको नष्ट जानकर लेशमात्र भी पाप न करे, पापसे अवश्य ही नरक भोगना पड़ता है। पापका फल दुःख है और नरकसे बढ़कर अधिक दुःख कहीं नहीं है। पापी मनुष्य नरकवासके अनन्तर फिर पृथ्वीपर जन्म लेते हैं। वृक्ष आदि अनेक प्रकारकी स्थावर योनियोंमें वे जन्म ग्रहण करते हैं और अनेक कष्ट भोगते हैं। अनन्तर कीट, पतंग, पक्षी, पशु आदि अनेक योनियोंमें जन्म लेते हुए अति दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाते हैं। स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाले मनुष्य-जन्मको पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे नरक न देखना पड़े। यह मनुष्य-योनि देवताओं तथा असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। धर्मसे ही मनुष्यका जन्म मिलता है। मनुष्य-जन्म पाकर उसे धर्मको वृद्धि करनी चाहिये। जो अपने कल्याणके लिये धर्मका पालन नहीं करता है, उसके समान मूर्ख कौन होगा ?

यह देश सब देशोंमें उत्तम है। बहुत पुण्यसे प्राणीका जन्म भारतवर्षमें होता है। इस देशमें जन्म पाकर जो अपने कल्याणके लिये पुण्य करता है, वही बुद्धिमान् है। जिसने ऐसा नहीं किया, उसने अपने आत्माके साथ बहना की जगह तक यह शरीर सम्यक् है, तबतक जो कुछ पुण्य बन सके वह कर लेना चाहिये। जटमे कुछ भी नहीं हो सकता। दिन-रातके बहाने नित्य अधपुके ही अंश खण्डित हो रहे हैं। फिर भी मनुष्योंको बोध नहीं होता कि एक दिन मृत्यु आ पहुँचेगी। यह तो किसीको भी निश्चय नहीं है कि किसकी मृत्यु किस समयमें होगी, फिर मनुष्यको क्योंकि धैर्य और सुख मिलता है ? यह जानते हुए कि एक दिन इन सभी सामर्थ्योंको छोड़कर अकेले चले जायँगे, फिर अपने हाथसे ही अपनी सम्पत्ति सत्पात्रोंको क्यों नहीं बाँट देते ? मनुष्यके लिये दान ही पाथेय अर्थात् रास्तेके लिये भोजन है। जो दान करते हैं, वे सुखपूर्वक जाते हैं। दानहीन मार्गमें अनेक दुःख पाते हैं, भूख मरते जाते हैं। इन सब बातोंको विचारकर पुण्य ही करना

चाहिये, पापसे सदा बचना चाहिये। पुण्य कर्मोंसे देवत्व प्राप्त होता है और पाप करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। जो सत्पुरुष सर्वात्मभावसे श्रीसदाशिवकी शरणमें जाते हैं, वे पद्मपत्रपर

स्थित जलकी तरह पापोंसे लिप्त नहीं होते। इसलिये इन्द्रसे छूटकर भक्तिपूर्वक ईश्वरकी आराधना करनी चाहिये तथा सभी प्रकारके पापोंसे निरन्तर बचना चाहिये। (अध्याय ५-६)

### व्रतोपवासकी महिमामें शकटव्रतकी कथा

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज। मैंने जो भीषण नरकोंका विस्तारसे वर्णन किया है, उन्हें व्रत-उपवासरूपी नौकासे मनुष्य पार कर सकता है। प्राणीको अति दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे पश्चात्ताप न करना पड़े और यह जन्म भी व्यर्थ न जाय और फिर जन्म भी न लेना पड़े। जिस मनुष्यकी योग्यता, दान, व्रत, उपवास आदिकी परम्परा बनी है, वह परलोकमें उन्हीं कर्मोंके द्वारा सुख भोगता है। व्रत तथा स्वाध्याय न करनेवालेकी कर्तों भी गति नहीं है। इसके विपरीत व्रत, स्वाध्याय करनेवाले पुरुष सदा सुखी होते हैं। इसलिये व्रत-स्वाध्याय अवश्य करने चाहिये।

राजन्। यहाँ एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ—  
योगी सिद्ध किया हुआ एक सिद्ध अति भयंकर विकृत रूप धारण कर पृथ्वीपर विचरण करता था। उसके लंबे अंग, टूटे दाँत, पिङ्गल नेत्र, चपटे कान, फटा मुख, लंबा पैर, टेढ़े पैर और सम्पूर्ण अङ्ग कुरूप थे। उसे मूलजालिक नामके एक ब्राह्मणने देखा और उससे पूछा कि आप स्वर्गमें क्या आये और किस प्रयोजनसे यहाँ आपका आगमन हुआ? क्या आपने देवताओंके चित्तको मोहित करनेवाली और स्वर्गकी अलंकार-स्वरूपिणी रम्भाको देखा है? अब आप स्वर्गमें जायें तो रम्भासे कहें कि अवन्तिपुरीका निवासी ब्राह्मण तुम्हारा कुशल पूछता था। ब्राह्मणका वचन सुनकर सिद्धने चकित हो पूछा कि 'ब्राह्मण! तुमने मुझे कैसे पहचाना?' तब ब्राह्मणने कहा कि 'महाराज! कुरूप पुरुषोंके एक-दो अङ्ग विकृत होते हैं, पर आपके सभी अङ्ग टेढ़े और विकृत हैं।' इसीसे मैंने अनुमान किया कि इतना रूप गुप्त किये कोई स्वर्गके निवासी सिद्ध ही है। ब्राह्मणका वचन सुनते ही वह

सिद्ध वहाँसे अन्तर्धान हो गया और कई दिनोंके बाद पुनः ब्राह्मणके समीप आया और कहने लगा—'ब्राह्मण! हम स्वर्गमें गये और इन्द्रकी सभामें जब नृत्य हो चुका, उसके बाद मैंने एकान्तमें रम्भासे तुम्हारा संदेश कहा, परंतु रम्भाने यह कहा कि मैं उस ब्राह्मणको नहीं जानती। यहाँ तो उसीका नाम जानते हैं जो निर्मल विद्या, पौरुष, दान, तप, यज्ञ अथवा व्रत आदिसे युक्त होता है। उसका नाम स्वर्गधरमें चिरकालतक स्थिर रहता है।' रम्भाका सिद्धके मुखसे यह वचन सुनकर ब्राह्मणने कहा कि हम शकटव्रतको नियमसे करते हैं, आप रम्भसे कह दीजिये। यह सुनते ही सिद्ध फिर अन्तर्धान हो गया और स्वर्गमें जाकर उसने रम्भासे ब्राह्मणका संदेश कहा और जब उसने उसके गुण वर्णन किये तब रम्भा प्रसन्न होकर कहने लगी—'सिद्ध महाबल। मैं बसके निवासी उस शकट ब्राह्मणकीसे जानती हूँ। दर्शनसे, सम्भाषणसे, एकत्र निवाससे और उपकार करनेसे मनुष्योंका परस्पर स्नेह होता है, परंतु मुझे उस ब्राह्मणका दर्शन-सम्भाषण आदि कुछ भी नहीं हुआ। केवल नाम-श्रवणसे इतना स्नेह हो गया है।' सिद्धसे इतना कहकर रम्भा इन्द्रके समीप गयी और ब्राह्मणके व्रत आदि करने तथा अपने ऊपर अनुरक्त होनेका वर्णन किया। इन्द्रने भी प्रसन्न हो रम्भासे पूछकर उस उत्तम ब्राह्मणको यस्त्राभूषण आदिसे अलंकृत कर दिव्य विमानमें बैठाकर स्वर्गमें बुलवाया और वहाँ सत्कारपूर्वक स्वर्गके दिव्य भोगोंको उसे प्रदान किया। ब्राह्मण चिरकालतक वहाँ दिव्य भोग भोगता रहा। यह शकट-व्रतका माहात्म्य हमने संक्षेपमें वर्णन किया है। दुर्द्वारती पुरुषके लिये राजलक्ष्मी, वैकुण्ठलोक, मनोवाञ्छित फल आदि दुर्लभ पदार्थ भी जगत्में सुलभ हैं। इसलिये सदा सत्परायण पुरुषको व्रतमें संलग्न रहना चाहिये। (अध्याय ७)



## तिलकव्रतके माहात्म्यमें चित्रलेखाका चरित्र

[ संवत्सर-प्रतिपदाका कृत्य ]

**राजा युधिष्ठिरने पूजा—**भगवन् ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गौरी, गणपति, दुर्गा, सोम, अग्नि तथा सूर्य आदि देवताओंके व्रत शास्त्रोंमें निर्दिष्ट हैं, उन व्रतोंका वर्णन आप प्रतिपदादि क्रमसे करें। जिस देवताको जो तिथि है तथा जिस तिथिमें जो कर्तव्य है, उसे आप पूरी तरह बतलायें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी जो प्रतिपदा होती है, उस दिन सौ अथवा फुल नदी, तालाब या धरपर स्नान कर देवता और पितरोंका तर्पण करें। फिर घर आकर आटेकी फुलवाकार संवत्सरकी मूर्ति बनाकर चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपहारोंसे उसकी पूजा करें। व्रतु तथा मासोक्त उच्चारण करते हुए पूजन तथा प्रणाम कर संवत्सरकी प्रार्थना करें और—‘संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीदुत्सरोऽसि वत्सरोऽसि। उपससे कल्पन्तामहोरात्रासे कल्पन्तामर्धमासासे कल्पन्ता मासासे कल्पन्तामृतवसे कल्पन्ता, संवत्सरसे कल्पन्ताम्। प्रेया एवै से खाद्य प्र च सारथ। सुपर्णविदसि तथा देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ॥’ (यजु- २७।४५) यह मन्त्र पढ़कर वस्त्रसे प्रतिमाको वेष्टित करें। तदनन्तर फल, पुष्प, मोदक आदि नैवेद्य चढ़ाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करें—‘भगवन् ! आपके अनुग्रहसे मेरा वर्ष सुखपूर्वक व्यतीत हो’। यह कहकर यथाशक्ति ब्राह्मणको दक्षिण दे और उसी दिनसे आरम्भ कर ललाटको तिल चन्दनसे अलंकृत करें। इस प्रकार स्त्री या पुरुष इस व्रतके प्रभावसे

उत्तम फल प्राप्त करते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह, डाकिनी और शत्रु उसके मस्तकमें तिलक देखते ही भाग सड़े होते हैं।

इस सम्बन्धमें मैं एक इतिहास कहता हूँ—पूर्व कालमें शत्रुजय नामके एक राजा थे और चित्रलेखा नामकी अत्यन्त सदाचारिणी उनकी पत्नी थी। उसीने सर्वप्रथम ब्राह्मणोंसे संकल्पपूर्वक इस व्रतको ग्रहण किया था। इसके प्रभावसे बहुत अवस्था बीतनेपर उनके एक पुत्र हुआ। उसके जन्मसे उनको बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। वह रानी सदा संवत्सरव्रत किया करती और नित्य ही मस्तकमें तिलक लगाती। जो उसको तिरस्कृत करनेकी इच्छासे उसके पास आता, वह उसके तिलकको देखकर पराभूत-सह हो जाता। कुछ समयके बाद राजाको उन्मत्त हाथीने मार डाला और उनका बालक भी मिरकी घोड़ेसे मर गया। तब रानी अति शोककुल हुई। धर्मराजके किन्नर (यमदूत) उन्हें लेनेके लिये आये। उन्होंने देखा कि तिलक लगाये चित्रलेखा रानी समीपमें बैठी है। उसको देखते ही वे डल्ले छोट गये। यमदूतोंके चले जानेपर राजा अपने पुत्रके साथ स्वयं हो गया और पूर्वकर्मनुसार शुभ भोगोंका उपभोग करने लगा। महाराज ! इस परम उत्तम व्रतका पूर्वकालमें भगवान् शंकरने मुझे उपदेश किया था और हमने आपके सुनाना। यह तिलकव्रत समस्त दुःखोंको हरनेवाला है। इस व्रतको जो भक्तिपूर्वक करता है, वह चिरकालपर्यन्त संसारका सुख भोगकर अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। (अध्याय ८)

## अशोकव्रत तथा करवीरव्रतका माहात्म्य

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! आश्विन-मासकी शुक्ल प्रतिपदाको गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, साधान्यसे तथा फल, नारिकेल, अनार, लड्डू आदि अनेक प्रकारके नैवेद्यसे मनोरम पल्लवोंसे युक्त अशोक वृक्षका पूजन करनेसे कभी शोक नहीं होता। अशोक वृक्षकी निम्नलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करें और उसे अर्घ्य प्रदान करें—

पितृभ्रातृपतिभ्यश्चक्षुराणां तथैव च ।

अशोक शोकशमनो धव सर्वत्र नः कुले ॥

(उत्तरपर्व ९।४)

‘अशोकवृक्ष ! आप घेर कुलमें पिता, भाई, पति, सास तथा ससुर आदि सभीका शोक शमन करें।’

वस्त्रसे अशोक-वृक्षको लपेट कर पताकाओंसे अलंकृत करें। इस व्रतको यदि स्त्री भक्तिपूर्वक करे तो वह दमयन्ती, सहा, वेदवती और सतीकी भाँति अपने पतिकी अति प्रिय हो

जाती है। वनगमनके समय सीताने भी मार्गमें अशोक वृक्षका भक्तिपूर्वक गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तिल, अक्षत आदिसे पूजन किया और प्रदक्षिणा कर खनको गयीं। जो स्त्री तिल, अक्षत, गेहूँ, सरसप आदिसे अशोकका पूजन कर मनसे वन्दना और प्रदक्षिणा कर ब्राह्मणको दक्षिणा देती है, वह शोकमुक्त होकर विरकालतक अपने पतिसहित संसारके सुखोका उपभोगकर अन्तमें गौरी-लोकमें निवास करती है। यह अशोकव्रत सब प्रकारके शोक और रोगको हारनेवाला है।

महाराज। इसी प्रकार ज्येष्ठ मासकी शुद्ध प्रतिपदाके सूर्योदयके समय अत्यन्त मनोहर देवताके उद्यानमें लगे हुए करवीर-वृक्षका पूजन करें। लाल सूत्रसे वृक्षको घेरित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, सप्तधान्य, नारिकेल, नारंगी और भीति-भीतिके फलोंसे पूजन कर इस मन्त्रसे उसकी प्रार्थना करें—

करवीर विषावास नमस्ते धानुकल्लभ।

मौलिमण्डनसदृश नमस्ते केशवेशयोः ॥

(उत्तरपर्व १०।४)

‘भगवान् विष्णु और शंकरके मुकुटपर रखेके रूपमें सुशोभित, भगवान् सूर्यके अत्यन्त प्रिय तथा त्रिपके आवास करवीर (जहर करने) ! आपको बार-बार नमस्कार है।’

इसी तरह ‘आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ (यजुः ३३।४३)’ इस मन्त्रसे प्रार्थना कर ब्राह्मणको दक्षिणा दे एवं वृक्षकी प्रदक्षिणा कर धरको जाय। मूर्खोंकी प्रसन्नताके लिये इस व्रतको अरुन्धती, सावित्री, सरस्वती, गायत्री, गङ्गा, दमयन्ती, अनसुया और सत्यभामा आदि पतिव्रता स्त्रियों तथा अन्य स्त्रियों भी किया है। इस करवीरव्रतको जो भक्तिपूर्वक करता है, वह अनेक प्रकारके सुख भोग कर अन्तमें सूर्यलोकको जाता है।

(अध्याय ९-१०)

### कोकिलाव्रतका विधान और माहात्म्य

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवान्। जिस व्रतके करनेसे कुलीन स्त्रियोंका अपने पतिके साथ परस्पर विशुद्ध प्रेम बन रहे, उसे आप बतलाइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज। यमुनाके तटपर मथुरा नामक एक सुन्दर नगरी है। वहाँ श्रीरामचन्द्रजीने अपने भाई शत्रुघ्नकी राजाके पदपर प्रतिष्ठित किया था। उनकी रानीका नाम कीर्तिमाला<sup>१</sup> था। वह बड़ी पतिव्रता थी। एक दिन कीर्तिमाला ने अपने कुलगुरु, वसिष्ठमुनिये प्रणामकर पूछा—‘मुनिश्रेष्ठ! आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतायें, जिससे मेरे अखण्ड सौभाग्यकी वृद्धि हो।’

वसिष्ठजीने कहा—कीर्तिमाले। कल्पान-कर्मिणी श्री आपाङ्ग मासकी पूर्णिमाको सार्यकाल यह संकल्प करे कि ‘श्रावण मासभर नित्य-स्नान, रात्रि-भोजन और भूमि-शयन करूँगी तथा ब्रह्मचर्यसे रहूँगी और प्राणियोंपर दया करूँगी।’ प्रातः उठकर सब सामग्री लेकर नदी, तालाब आदिपर जाय। वहाँ दन्तधावन कर सुगन्धित द्रव्य, तिल और अँधिलेका उबटन लगाये और विधिसे स्नान करे। इस प्रकार आठ

दिनतक स्नान करे। अनन्तर सबीर्षियोंका उबटन लगाकर आठ दिनतक स्नान करे। शेष दिनोंमें वचका उबटन मलकर स्नान करे। तदनन्तर सूर्यभगवान्का ध्यान करे। इसके बाद तिल पीस करके उससे कोकिल पक्षीकी मूर्ति बनाये। रक्तचन्दन, चम्पके पुष्प, पत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, तिल, चावल, दूर्वा आदिसे उसका पूजनकर इस मन्त्रसे प्रार्थना करे—

तिलमहो तिलसौख्ये तिलवर्णे तिलप्रिये।

सौभाग्यदम्बपुत्रोऽहं देहि मे कोकिले नमः ॥

(उत्तरपर्व ११।१४)

‘तिलमहो कोकिल देवि! आप तिलके समान कृष्णवर्णवाली हैं। आपको तिलसे सुख प्राप्त होता है तथा आपको तिल अत्यन्त प्रिय है। आप मुझे सौभाग्य, सम्पत्ति तथा पुत्र प्रदान करें। आपको नमस्कार है।’

—इस प्रकार पूजन कर घरमें आकर भोजन ग्रहण करे। इस विधिसे एक मास व्रतकर अन्तमें तिलपिष्टकी कोकिल बनाकर उसमें रत्नके नेत्र और सुवर्णके पंख लगाकर ताम्रपत्रमें स्थापित करे। दक्षिणासहित वस्त्र, धान्य और गुड़ समुर,

१-सभी रामायणोंमें शत्रुघ्न-पक्षीका नाम कुलकीर्ति ज्ञात होता है। इसे उसका पक्षी मानना चाहिये। पात्र प्रायः समान है।



देवज्ञ, पुणेहित अथवा किसी ब्राह्मणको दान करे।

इस विधिसे जो नारी कोकिलव्रत करती है, वह सप्त जन्मतक सौभाग्यवती रहती है और अन्तमें उत्तम विधानमें बैठकर गौरीलोकको जाती है। वसिष्ठजीसे व्रतका विधान सुनकर कीर्तिमालाने उसी प्रकार कोकिलव्रतका अनुष्ठान

किया। उससे उन्हें अखण्ड सौभाग्य, पुत्र, सुख-समृद्धि और शत्रुघ्नजीकी कृपा एवं प्रीति प्राप्त हुई। अन्य भी जो स्त्रियाँ इस व्रतको भक्तिपूर्वक करती हैं उन्हें भी सुख, सौभाग्य आदिकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय ११)

### बृहत्पुस्तक विधान और फल

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज। अब मैं सभी पापोंका नाशक तथा सुर, असुर और मुनियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ बृहत्पुस्तक विधान बतलाता हूँ, आप सुनें—आश्विन मासकी पूर्णिमाके दिन आषाढपूर्वक उपवासकर रातमें भूतमिश्रित पायसका भोजन करना चाहिये। दूसरे दिन प्रातः उठकर पवित्र हो आचमनकर बिल्वके काष्ठसे दन्तधावन करे। अनन्तर इस मन्त्रसे महादेवजीकी प्रार्थना करनी चाहिये—

अहं देवव्रतमिदं कर्तुमिच्छामि शश्वतम् ।

तवाज्ञया महादेव यथा निर्वहते कुरु ॥

(उत्तरपर्व १३।४)

'महादेव। मैं आपकी आज्ञासे निरन्तर बृहत्पुस्तक करना चाहता हूँ। जिस प्रकार मेरा यह व्रत निर्विघ्न पूर्ण हो जाय, आप वैसी कृपा करें।'।

नियमपूर्वक सोलह वर्षपर्यन्त प्रतिपदाका व्रत करना चाहिये। फिर मार्गशीर्ष मासकी प्रतिपदाको उपवास कर गुरुजनोंसे आदेश प्राप्त करके महादेवका स्मरण करते हुए भक्तिपूर्वक शिवका पूजन करना चाहिये और रातमें दीपक जलाकर शिवको निवेदित करना चाहिये। शिवभक्त सप्तश्रीक सोलह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित कर वस्त्र, आभूषण आदिसे पूजन कर भोजन कराये या आठ दम्पतिको भोजन कराये। यदि शक्ति न हो तो एक ही दम्पतिक पूजन करे। निष्ठान्न व्रत करके रातमें भूमिपर शयन करना चाहिये। सुषोदय होनेपर स्नान करके सभी सामग्रियोंको लेकर शिवजीका उद्घाटन एवं पञ्चगव्यसे स्नान करना चाहिये। अनन्तर पञ्चामृत, तिलमिश्रित जल और गर्म जलसे स्नान करना चाहिये। स्नानके अनन्तर कर्पूर, चन्दन आदिक लेपकर कमल आदि उत्तम पुष्प चढ़ाने चाहिये। वस्त्र, पताका, चितान, धूप, दीप, घण्टा एवं भक्ति-भक्तिके नैवेद्य महादेवजीको समर्पित कर

अग्नि प्रज्वलित कर एवं उसकी पूजाकर विधिपूर्वक हवन करना चाहिये। घर आकर पञ्चगव्य-प्राशन कर आचार्य आदिको भोजन कराकर अपने सभी बन्धुओंके साथ मीन होकर भोजन करना चाहिये। फिर स्वर्ण, वस्त्र आदि देकर ब्राह्मणोंसे क्षमा माँगे। धनवान् व्यक्ति ब्रह्मापूर्वक साङ्गोपाङ्ग निर्दिष्ट विधिसे पूजन करे एवं यदि कोई व्यक्ति निर्धन हो तो वह ब्रह्मापूर्वक जल, पुष्प आदिसे पूजा करे। इससे व्रतके सम्पत् फलकी प्राप्ति होती है। ब्रह्मके साथ कार्तिककी प्रतिपदासे लेकर प्रतिमास इस विधिसे व्रत करना चाहिये। अनन्तर पारणा करनी चाहिये। सोलहवें वर्षमें पारणाके दिन शिवजीकी पूजा कर सोनेकी मोंग, चाँदीके सुर और घण्टा, कम्बिके दोहन-पात्रके साथ उत्तम गाय महादेवजीके निमित्त शिवभक्त ब्राह्मणोंको देनी चाहिये। अनन्तर सोलह ब्राह्मणोंका विधि-विधानसे पूजनकर यथाशक्ति वस्त्र, आभूषण आदिसे पूजनकर उत्तम पदार्थोंका भोजन करना चाहिये। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराकर दक्षिणा दे। दोनो, अन्धों, अनाथों आदिको भी भोजन कराकर कुछ दान देना चाहिये। यह बृहत्पुस्तक ब्रह्महत्या-जैसे पापोंका हरण और तीनों लोकोंमें अनेक प्रकारके उत्तम भोगोंको प्रदान करनेवाला है। चारों वर्णोंके लिये यह स्वर्गकी सीढ़ी है। धन पाकर भी जो इस व्रतको नहीं करता, वह मूढ़-बुद्धि है। सधवा स्त्री यदि इसे करती है तो उसका पतिसे वियोग नहीं होता और विधवा स्त्रीको भी भविष्यमें वैधव्य न प्राप्त हो, इसलिये उसे यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतके अनुष्ठानसे धन, आयु, रूप, सौभाग्य आदिकी प्राप्ति होती है। सभी स्त्री-पुरुष इस व्रतको कर सकते हैं। सोलह वर्षोंतक इस बृहत्पुस्तक भक्तिपूर्वक अनुष्ठान कर व्रती सूर्यमण्डलका भेदनकर शिवजीके चरणोंको प्राप्त करता है।

(अध्याय १२)

जातिस्मर<sup>१</sup>-भद्रव्रतका फल और विधान तथा

## स्वर्णद्वीवीकी कथा

**महाराज युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! अपने पूर्व-जन्मोंका ज्ञान होना बहुत कठिन है। आप यह बतायें कि प्रथिवीके वरदान, देवताओंकी आराधना का तीर्थ, स्नान, होम, जप, तप, व्रत आदिके करनेसे पूर्वजन्मका ज्ञान प्राप्त हो सकता है या नहीं ? यदि ऐसा कोई व्रत हो, जिसके करनेसे पूर्वजन्मका स्मरण हो सकता है तो आप उसका वर्णन करें।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**राजन् ! एक ही वर्णमें 'मार्गशीर्ष, फाल्गुन, ज्येष्ठ एवं भाद्रपद' क्रमशः इन चार मासोंमें भद्रव्रतका व्रतपूर्वक उपवास करनेसे मनुष्यको अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो जाता है। इस विषयमें एक आख्यान है, उसे आप सुने—

प्राचीन कालमें यमुनाके किनारे शुभोदय नामका एक वैश्य रहता था। वह इस व्रतको करता था। कालक्रमसे वह मृत्युको प्राप्त हुआ और उसके प्रभावसे वह दूसरे जन्ममें राजा संजयके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुआ, उसका नाम था स्वर्णद्वीवी। उसे पूर्वजन्मका स्मरण था। कुछ दिनों बाद चोरोंने उसे मार डाला और नारदजीके प्रभावसे वह जीवित हो गया। इस व्रतके प्रभावसे अपने इस विगत कृतान्तोको वह भलीभाँति जानता था।

**राजाने पूछा—**उसका स्वर्णद्वीवी नाम कैसे पड़ा ? और चोरोंने उसे क्यों मार डाला ? तथा किस उपायसे वह जीवित हुआ, इसका विस्तारपूर्वक वर्णन करें ?

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! कुशावती नामकी नगरीमें संजय नामका एक राजा रहता था। एक दिन नारद और पर्वत नामके दो मुनि राजाके पास आये। वे दोनों राजाके मित्र थे। राजाने अर्घ्य-पाद्य, आसनादि उपचारोंसे उनका पूजन तथा सत्कार किया। उसी समय राजाकी अत्यन्त सुन्दरी राजकन्या वहाँ आयी। पर्वतमुनिने उसे देखकर मोहित हो राजासे पूछा—'राजन् ! यह सुकती कौन है ?' राजाने

कहा—'मुने ! यह मेरी कन्या है।' नारदजीने कहा—'राजन् ! आप अपनी इस कन्याको मुझे दे दें और आप जे दुर्लभ कर भाँगना चाहते हो, वह मुझसे माँग लें।' राजाने प्रसन्न होकर कहा—'देवर्षे ! आप मुझे एक ऐसा पुत्र दें जो जिस स्थानमें मूत्र-पुरीष और निष्टीवन (धूक, खखार) का लक्षण करे, वह सब उत्तम सुवर्ण बन जाय।' नारदजी बोले—'ऐसा ही होगा।'।

राजाने अभीष्ट कर प्राप्त कर अपनी कन्याको वस्त्र-आभूषणसे अलंकृतकर नारदजीसे उसका विवाह कर दिया। नारदकी इस त्रिलोक्यके देखकर पर्वतमुनिके ओठ जोधसे फटकरने लगे, औरोंमें लयल हो गयीं। वे नारदजीसे बोले—'नारद ! तुमने इसके साथ विवाह कर लिया, अतः तुम मेरे साथ स्वर्ग आदि लोकोंमें नहीं जा सकोगे और जो तुमने इस राजाको पुत्र-प्राप्तिके वरदान दिया है, वह पुत्र भी चोरोंद्वारा मारा जायगा।' यह सुनकर नारदजीने कहा—'पर्वत ! तुम धर्मको जाने बिना मुझे शाप दे रहे हो। यह कन्या है, इसपर किसीका भी अधिकार नहीं। धर्मपूर्वक माता-पिता जिसे दे दें, वही उसका स्वामी होता है। तुमने मूढतावश मुझे शाप दिया है, इसलिए तुम भी स्वर्गमें नहीं जा सकोगे। राजा संजयके पुत्रको चोरोंद्वारा मार डाले जानेपर भी मैं उसे यमलोकमें ले आऊँगा।'।

इस प्रकार परस्पर शाप देकर और राजा संजयके द्वारा सत्कृत होकर दोनों मुनि अपने-अपने आश्रमकी ओर चले गये। तदनन्तर सातवें माहीनेमें राजाको पुत्र उत्पन्न हुआ। वह कामदेवके समान अतिशय रूपवान् और पूर्वजन्मोंका ज्ञाता था। नारदजीके वरदानसे जिस स्थानपर वह मूत्र-पुरीष आदिका परित्याग करता, वहाँ वह सुवर्ण हो जाता, इसलिये राजाने उसका नाम स्वर्णद्वीवी रखा। वह राजपुत्र सभी प्राणियोंकी बातोंको समझता था। राजा संजयने पुत्रके प्रभावसे

१-जातिस्मर शब्दका अर्थ है पूर्वजन्मोंको स्मरण करनेवाला व्यक्ति। यह योगदर्शनके अनुसार त्याग, अहिंसा और मन-बुद्धि एवं प्रवृत्तिके अनुशीलनसे प्राप्त होता है—'संस्कारसंश्लाकरणम् पूर्वजन्मिज्ञानम्'। (योगदर्शन ३।१८) जिस प्रकार अश्वत्थ, सट्ठाव, सरला आदिके जातिस्मरता (आध्यात्मिकता, कुण्डलिनी-जागरणदि) में सहायक माने हैं, उसी प्रकार अश्वत्थ, कौटिल्य-द्रव्य-द्रोहदिके आध्यात्मिकतामें बाधक भी माना चाहिये और कल्याणकारीको उससे सदा बचते रहनेकी भी चेष्टा करनी चाहिये।

बहुत धन प्राप्तकर राजसूय आदि यज्ञोक्त विधिपूर्वक सम्पादन किया। उसने अनेक कूप, सरोवर, देवालयाँ आदिक निर्माण कराया। पुत्रकी रक्षाके लिये विशाल सेना भी नियुक्त कर दी।

सर्गछोवीके प्रभावसे राजा संजयके यहाँ सर्गकी डेर सारी राशियाँ एकत्र हो गयीं। कुछ समयके बाद राजपुत्री अत्यन्त ख्याति सुनकर लोभवश मटोदत चोरोंने सर्गछोवीका हरण कर लिया, परंतु जब उसके शरीरमें कहीं भी सोना नहीं देखा, तब चोरोंने उसे मारकर जंगलमें फेंक दिया। चोरोंद्वारा पुत्रके मारे जानेपर राजा बहुत दुःखी हो विलाप करने लग्य। उस समय नारदजी वहाँ पुनः पधारे। नारदजीने अनेक प्राचीन राजाओंकी गाथाएँ सुनाकर राजाके शोकको दूर किया और यमलोकमें जाकर वे राजपुत्रीको ले आये। पुत्रको प्राप्तकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने नारदजीसे पूछा—‘महाराज ! किस कर्मके प्रभावसे यह मेरा पुत्र सर्गछोवी हुआ और किस कर्मके प्रभावसे इसको पूर्वजन्मका स्मरण है ?’ नारदजीने कहा—‘राजन् ! इसने ‘भद्र’ नामक व्रतको विधिपूर्वक चार बार किया है। यह उसीका प्रताप है।’ इतना कहकर नारदजी अपने आश्रमको चले गये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! इस व्रतके करनेसे व्रतीका उत्तम कुलमें जन्म होता है और वह स्वयंभू तथा पूर्वजन्मका ज्ञाता एवं दीर्घायु होता है। अब आप इस व्रतका विधान सुने—इस व्रतके चार भद्र चार पादके रूपमें हैं। मार्गशीर्षमें पहला, फाल्गुनमें दूसरा, ज्येष्ठमें तीसरा और भाद्रपदमें चौथा पाद होता है। मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टि तैल मास ‘विष्णुपद’ नामक भद्र सभी धर्मोंका साधक है। फाल्गुन शुक्ल अष्टि तैल मास ‘विष्णुपद’ नामक भद्र सभी धर्मोंका साधक है। ज्येष्ठ शुक्ल अष्टि तैल मास ‘विराट’ नामक भद्र है। यह सत्य और शौर्य प्रदान करता है। भाद्र शुक्ल अष्टि तैल मास ‘विराट’ नामक भद्र है, यह बहुत विद्या देनेवाला है। सभी स्त्री-पुरुषोंको इस भद्र-व्रतको करना चाहिये।

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**जगत्पते ! इन भद्रोंका विधान आप विस्तारपूर्वक कहें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! इस अतिशय गुप्त विधानको मैं किसीसे नहीं कहा है, आपको मैं सुनाता

हूँ, आप राजधान होकर सुने—

मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी प्रारम्भिक चार तिथियाँ अत्यन्त श्रेष्ठ मानी गयी हैं। ये तिथियाँ हैं—द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी। व्रतीको प्रतिपदाके दिन जितेन्द्रिय होकर एकमुक्त रहना चाहिये। प्रातःकालमें द्वितीया तिथिके निर्विक्रियोंको सम्पन्न कर मध्याह्नमें मन्त्रपूर्वक गोमय तथा मिट्टी आदि लगाकर स्नान करना चाहिये। इन मन्त्रोंके अधिकारी चारों वर्ण हैं, किंतु वर्णसंकरोंको इनका अधिकार नहीं है। विधवा स्त्री यदि सदाचारसम्पन्न हो तो वह भी इस व्रतकी अधिकारिणी है। सपत्नी स्त्री अपने पतिकी आज्ञासे यह व्रत ग्रहण करे। शरीरमें मिट्टी-लेपन करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

स्वं भूतने वन्दिता देवैः समलैर्देव्यातिभिः ॥

मयापि वन्दिता भक्त्या मामतो विमलं कुल ॥

(उत्तरपर्व १३।४५-४६)

‘भुक्तिके ! दुष्ट दैवोंका विनाश करनेवाले देवताओंके द्वारा आप वन्दित हैं, मैं भी भक्तिपूर्वक आपकी वन्दना करता हूँ, मुझे भी आप पवित्र बना दें।’

अनन्तर जलके समुक्त जाकर सपेद सरसों, कृष्ण तिल, वष और सबौषधिका उबटन लगाकर जलमें मण्डल अङ्कित कर वे मन्त्र पढ़ने चाहिये—

जगद्धिः सर्वविधानो जगतां च जगन्मये ।

भूतानां वीर्यायै वैव रसातां पतये नमः ॥

गङ्गासागरजे तोषं पौष्करं नार्मदे तथा ।

यामुने संनिहत्यै च मनिधानमिहास्तु मे ॥

(उत्तरपर्व १३।४८-४९)

ये मन्त्र पढ़कर स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहन, संभ्या और तर्पण करे। फिर घर आकर नियमपूर्वक रहे और चन्द्रोदय-पर्यन्त किसीसे सम्बोधन न करे।

इसी प्रकार द्वितीया आदि तिथियोंमें कृष्ण, अच्युत, अनन्त और इषिकेश—इन नामोंसे भक्तिपूर्वक भगवान्का पूजन करे। पहले दिन भगवान्के चरणारविन्दोंका, दूसरे दिन नमिका, तीसरे दिन वक्षःस्थलका और चौथे दिन नाभयणके मलकाका विधिपूर्वक उत्तम पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे पूजन करे और रात्रिमें जब चन्द्रोदय हो, तब शशि, चन्द्र,

शशङ्क तथा इन्दु—इन नामोंसे क्रमशः चन्दन, अगल, कर्पूर, दधि, दुर्वा, अक्षत तथा अनेक रत्नों, पुष्पों एवं फलों आदिसे चन्द्रमाको अर्घ्य दे। प्रत्येक दिन जैसे-जैसे चन्द्रमाकी वृद्धि हो वैसे-वैसे अर्घ्यमें भी वृद्धि करनी चाहिये। अर्घ्य इस मन्त्रसे देना चाहिये—

नवो नवोऽसि मासान्ते जापमानः पुनः पुनः ।

त्रिरासिमाखेतान् वै देवानाप्यापसे हविः ॥

गगनाङ्गणसहीय दुग्धाक्षिमन्त्रोद्भव ।

आभासितदिगाभोग रमानुज नवोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व ११।८९-८७)

‘हे रमानुज ! आप प्रत्येक मासके अन्तमें नवौन-नवौन रूपमें आविर्भूत होते रहते हैं। तीन अग्निषोमे सम्मिश्रित देवताओंको आप ही हविष्यके द्वारा आप्यापित करते हैं। आपकी उत्पत्ति क्षीरसागरके मन्थनसे हुई है। आपकी आभासे ही दिशा-विदिशाएँ आधारित होती हैं। गगनरूपी आँसुके आप सप्तस्वरूपी देदीप्यमान दीपक हैं। आपके नमस्कार है ।’

चन्द्रमाको अर्घ्य निवेदित कर वह अर्घ्य ब्राह्मणको दे दे। अनन्तर मौन होकर भूमिपर पक्षपत्र बिछाकर भोजन करे। पलाश या अशोकके पत्रोंद्वारा पवित्र भूमि या शिखरतलका शोधन कर इस मन्त्रसे भूमिकी प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वत्तले भोक्तुवतामोऽहं देवि सर्वरसोद्भवे ॥

मदनुग्रहाय सुखाय कुर्वन्ममूलोपमम् ।

(उत्तरपर्व १३।१०-११)

‘सम्पूर्ण रसोंको उत्पन्न करनेवाली हे पृथ्वी देवि ! आपके आश्रयमें मैं भोजन करना चाहता हूँ। मुझपर अनुग्रह करनेके

लिये आप इस अन्नको अमृतके समान उत्तम स्वादयुक्त बना दें ।’

अनन्तर शक तथा पक्षात्रक भोजन करे। भोजनके बाद आचमन करे और अङ्गुलीका स्पर्श कर चन्द्रमाका ध्यान करते हुए भूमिपर ही शयन करे। द्वितीयाके दिन क्षार एवं लवणरहित हविष्यका भोजन करना चाहिये। तृतीयाको नीवार (तिन्नी) तथा चतुर्थीको गायकें दूधसे बने उत्तम पदार्थोंको ग्रहण करना चाहिये। पञ्चमीको घृतयुक्त कृशरात्र (खिचड़ी) ग्रहण करना चाहिये। इस भद्रव्रतमें साध्वी, चावल, गायका घृत तथा अन्य गन्ध पदार्थ एवं अर्थाचित प्राप्त वन्य फल प्रशस्त खाने गये हैं। अनन्तर प्रातःकाल स्नानकर पितरोंका तर्पणकर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दान-दक्षिणा आदि देकर विदा करना चाहिये। बादमें भृत्य एवं बन्धुजनोंके साथ खड़े भी भोजन करे।

इस प्रकार तीन-तीन महीनोंतक चार भद्र-व्रतोंका जो वर्षपर्वत भक्तिमूर्त्यक प्रमादरहित होकर आचरण करता है, उसे चन्द्रदेव प्रसन्न होकर श्री, विजय आदि प्रदान करते हैं। जो कन्ध इस भद्रव्रतका अनुष्ठान करती है, वह शुभ पतिको प्राप्त करती है। दुर्भग स्त्री सुभग एवं साध्वी हो जाती है तथा नित्य सौभाग्यको प्राप्त करती है। राज्याधी राज्य, धनार्थी धन और पुत्रार्थी पुत्र प्राप्त करता है। इस भद्रव्रतके करनेसे स्त्रीका उत्तम कुलमें विवाह होता है तथा वह उत्तम शय्या, अन्न, यान, आसन आदि शुभ पदार्थोंको प्राप्त करती है तथा गुरु धन, पुत्र, स्त्रीके साथ ही पूर्वजन्मके शानकी भी प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १३)

### यमद्वितीया तथा अशुन्यशयन-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! कार्तिक मासके दशक पक्षकी द्वितीया तिथिको यमुनाने अपने घर अपने भाई यमको भोजन कराया और यमलोकमें बड़ा उत्सव हुआ, इसलिये इस तिथिका नाम यमद्वितीया है। अतः इस दिन भाईको अपने घर भोजन न कर बहिनके घर जाकर प्रेमपूर्वक उसके हाथका बना हुआ भोजन करना चाहिये। उससे बल और पुष्टिकी वृद्धि होती है। इसके बदले बहिनको स्वर्णालंकार, वस्त्र तथा द्रव्य आदिसे संतुष्ट करना चाहिये।

यदि अपनी सगी बहिन न हो तो पिताके भाईकी कन्या, मामाकी पुत्री, मौसी अथवा बुआकी बेटी—ये भी बहिनके समान हैं, इनके हाथका बना भोजन करे। जो पुरुष यमद्वितीयाको बहिनके हाथका भोजन करता है, उसे धन, वस्त्र, आयुष्य, धर्म, अर्थ और अपरिमित सुखकी प्राप्ति होती है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आपने बताया कि सब धर्मोंका साधन गृहस्थाश्रम है, वह गृहस्थाश्रम स्त्री और



पुरुषसे ही प्रतिष्ठित होता है। पत्नीहीन पुरुष और पुरुषहीन नारी धर्म आदि साधन सम्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होते, इसलिये आप कोई ऐसा व्रत बतायें जिसके अनुष्ठानसे दाम्पत्यक वियोग न हो।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीयाका अशुन्यशयन नामक व्रत होता है। इसके करनेसे स्त्री विधवा नहीं होती और पुरुष पत्नीसे हीन नहीं होता। इस तिथिको लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकुल शय्यापर अनेक उपचारोंद्वारा पूजन करना चाहिये। इस दिन उपवास, नक्तव्रत अथवा अगाधित-व्रत करना चाहिये। प्रातः दिन दही, अक्षत, कन्द-मूल, फल, पुष्प, जल आदि सुवर्णक पात्रमें रखाकर निम्नमन्त्रको पढ़ते हुए चन्द्रमाको आर्घ्य

### मधुकृतीया एवं मेघपाली तृतीया-व्रत

**बुधधिरने पूछा—**भगवन् ! मधुक-वृक्षका आश्रय ग्रहण करनेवाली भगवान् शंकरकी भार्या भगवती गौरीकी लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियोंने किस कारणसे अर्वन्त की, इसे आप बतायें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**प्राचीन कालमें समुद्र-मन्थनसे मधुक-वृक्ष विनिर्गत हुआ। विषोंको अलग्ग सौभाग्य प्राप्त करनेवाले तथा सभी आधि-व्याधियोंको दूर करनेवाले उस वृक्षको भूलोकवासियोंने पृथिवीपर स्थापित किया। जया-विजया आदि सखियोंसहित भगवती गौरीको उस प्रफुल्लित सुन्दर वृक्षका आश्रय ग्रहण किये देखकर देवताओंने अपनी अभीष्ट इच्छाओंकी पूर्तिहेतु उसको अनेक उपचारोंसे पूजा की। स्वयं लक्ष्मी, सरस्वती, सखित्री, गङ्गा, रोहिणी, रम्भा तथा अरुन्धती आदिने भी गिनवृत्तक पूजा की। भगवती गौरीने प्रसन्न होकर उन्हें अधिमत्त फल प्रदान किया। फलानु मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको इनकी उपासना हुई थी। इसलिये फाल्गुनके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको उपवासकर मधुवनमें जाकर मधुक वृक्षके नीचे ब्रह्मचर्यमें स्थित, जटामुकुटसे सुशोभित, तपस्विरत तथा गोधाके रथपर आरुढ़, रुद्र-ध्यानपरायण भगवती पार्वतीको प्रतिमाका ध्यान करते हुए गन्ध, पुष्प, दीप, लाल चन्दन, केसर, मधुर द्रव्य, स्वर्ण, माणिक्य आदिसे पूजाकर देवीसे इस प्रकार अस्त्र

देना चाहिये—

गगनाङ्गणसम्भूत

दुष्पाश्विमघनोद्भव ।

भाषासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १५।१८)

इस विधानके साथ जो व्यक्ति चार मासतक व्रत करता है, उसको कभी भी स्त्री-वियोग प्राप्त नहीं होता एवं उसे सभी प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। जो स्त्री भक्तिपूर्वक इस व्रतको करती है, वह तीन जन्मतक विधवा और दुर्भगा-नहीं होती। यह अशुन्य-द्वितीयाका व्रत सभी कामनाओं और उत्तम भोगोंको देनेवाला है, अतः इसे अवश्य करना चाहिये।

(अध्याय १४-१५)

सौभाग्यके लिये प्रार्थना करे—

ॐ भुविता देवभूषा च भुषिका ललिता उमा ।

तपोवनरता गौरी सौभाग्यं मे प्रयच्छतु ॥

दौर्भाग्यं मे शयन्तु सुप्रसन्नमनाः सदा ।

अतीक्ष्णं कुले जम्भ ददात्यपराजम्भनि ॥

(उत्तरपर्व १६।३-४)

‘तपोवनरता है गौरी देवि ! आपका नाम ललिता तथा उमा है। आप देवताओंकी आभूषणसरूपा एवं सभीको आभूषित करनेवाली हैं और स्वयं आभूषित हैं। आप मुझे सौभाग्य प्रदान करें। आप मेरे दौर्भाग्यका शयन करें। दूसरे जन्ममें भी मेरा सौभाग्य अक्षण्डित रहे। आप सर्वदा मुझपर प्रसन्न रहें।’

अनन्तर फूल, खीरक, लवण, गुह, घी, पुष्पमालाओं, कुंकुम, गन्ध, अमर, चन्दन एवं सिंदूर आदि तथा वस्त्रोंसे और अनेक देशोत्पन्न अंजनोसे, पुआ, तिल और तण्डुल, वृत्तफुरित मोटक इत्यादि नैवेद्योंसे मधुक-वृक्षकी पूजा करे। उसकी प्रदक्षिणा कर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। जो कन्या इस उत्तम तृतीयाव्रतको करती है वह तीनों लोकमें दुष्पाण्य भगवान् विष्णुके समान पति प्राप्त करती है। राजन् ! मेरे द्वारा कथित यह व्रत चिरकालतक प्रसिद्ध रहेगा। इस व्रतको रुक्मिणीके सम्मुख प्रथम महर्षि कश्यपने कहा था। जो स्त्री

इस व्रतका आचरण करेगी, वह नीरोग, सुन्दर, दुष्टिसम्पन्न तथा अङ्ग-प्रत्यङ्गोसे शोभायुक्त होकर सौ वर्षोंतक जीवित रहेगी। अनन्तर किङ्किणीके शब्दोंसे समन्वित हंसयानसे रुद्रलोकको प्राप्त करेगी। वहाँ अनेक वर्षोंतक अपने पतिके साथ दिव्य भोगोंको प्राप्त कर आठों सिद्धियोंसे समन्वित होगी।

**युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! मेघपाली-व्रत कब और कैसे अनुष्ठित होता है, इसका क्या फल है तथा मेघपाली लता कैसी होती है ? इसे बतलानेकी कृपा करे।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**आधिन मासके कृष्ण-पक्षकी तृतीया तिथिसे भक्तिपूर्वक किसी अथवा पुरुषोंको सदर्भकी प्राप्तिके लिये मेघपालीको समुधान्य (घब, गोधूम, धान, तिल, कंगु, इयामाक (माखी) तथा चना) और अंकुरित गोधूमके साथ अथवा तिल-तण्डुलके पिण्डोंद्वारा अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। मेघपाली ताम्बूलके समान पत्तों-वाली, मंजरीयुक्त एक लाल लता है, वह खाटिकाओंमें, यम-मार्गमें होती है तथा पर्वतीयपर प्राप्य होती है। व्यापारसे जीवन चितानेवाले वैदयगण धान्य, तेल, गुड़, कुंकुम, स्वर्ण, तथा

पद (जूता, लता, कपड़ा, औगूटी, कम्पण्डलु, आसन, बर्तन और धोत्र्य वस्तु) आदिसे इसकी पूजा करते हैं। मेघपालीके अर्घ्यदानसे जाने-अनजाने जो भी पाप होते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। श्रेष्ठ स्त्रियोंको शुभ देश या स्थानमें उत्तम मेघपालीकी फल, गन्ध, पुष्प, अक्षत, चरिकेल, खजूर, अनार, कनेर, धूप, दीप, दही और नये अंकुरवाले धान्य-समूहसे पूजा करनी चाहिये तथा लाल बस्त्रोंसे उसे आच्छादित कर और अक्षरोंसे विभूषित कर अर्घ्य देना चाहिये। वह अर्घ्य विद्वान् ब्राह्मणको समर्पण कर देना चाहिये। इस प्रकार मेघपालीकी पूजा करनेवाली नारी या पुरुष परम ऐश्वर्यको प्राप्त करते हैं तथा सुख-सौभाग्यसे समन्वित हो सौ वर्षोंतक मर्त्यलोकमें जीवित रहते हैं। अन्तमें विमानपर आरुढ़ हो विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं और अपने सात कुलोंको निःसंदेह नरकसे स्वर्ग पहुँचा देते हैं। जो नरकके भयसे फलत्रिसे समन्वित अर्घ्य मेघपालीको प्रदान करता है, उसके सभी पाप जैसे ही नष्ट हो जाते हैं<sup>१</sup> जैसे सूर्यके द्वारा अन्धकार नष्ट हो जाता है।

(अध्याय १६-१७)

## पञ्चाग्निसाधन नामक रम्भा-तृतीया तथा

### गोष्यद-तृतीयाव्रत

**युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! इस मृत्युलोकमें जिस व्रतके द्वारा शिवोक्त गृहस्थाश्रम सुख-रूपसे चले और उन्हीं पतिकी भी प्रीति प्राप्त हो, उसे बताइये।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**एक समय अनेक लताओंसे आच्छन्न, विविध पुष्पोंसे सुशोभित, मुनि और किन्नरोंसे सेवित तथा गान और नृत्यसे परिपूर्ण रमणीय कैलास-शिखरपर मुनियों और देवताओंसे आवृत सौ पार्वती और भगवान् शिव बैठे हुए थे। उस समय भगवान् शंकरने पार्वतीसे पूछा—‘सुन्दर ! तुमने कौन-सा ऐसा उत्तम व्रत किया था, जिससे आज तुम मेरी ब्राम्हणीके रूपमें आवृत प्रिय बन गयी हो ?’

**पार्वतीजी बोलीं—**नाथ ! मैं बाल्य-कालमें रम्भाव्रत किया था, उसीके फलस्वरूप आप मुझे पतिरूपमें प्राप्त हुए हैं।

एवं मैं सभी स्त्रियोंकी स्वामिनी तथा आपकी अर्धाङ्गिनी भी बन गयी हूँ।

**भगवान् शंकरने पूछा—**भटे ! सभीको सौख्य प्रदान करनेवाला वह रम्भाव्रत कैसे किया जाता है ? पिताके यहाँ इसे तुमने किन प्रकार अनुष्ठित किया था ? उसे बताओ।

**पार्वतीजी बोलीं—**देव ! एक समय मैं बाल्यकालमें अपने पिताके घर सखियोंके साथ बैठी थी, उस समय मेरे पिता हिमवान् तथा माता मेनने नृपसे कहा—‘पुत्र ! तुम सुन्दर तथा सौभाग्यवर्धक रम्भाव्रतका अनुष्ठान करो, उसके आरम्भ करते हो तुम्हें सौभाग्य, ऐश्वर्य तथा महादेवी-पदकी प्राप्ति हो जायगी। पुत्र ! स्पष्ट मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको स्नान कर उस व्रतका नियम ग्रहण करो और अपने चारों ओर पञ्चाग्नि प्रज्वलित करो अर्थात् गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि, आहवनीय तथा

१-इसमें वनस्पतिको देवता मानकर उसकी पूजाके विशेष महत्व प्रदान किया गया है। विशेषकर अश्वत्थी तथा उसके सूर्यमें ऐसे कई प्रकारण आये हैं। ओषधीय देवता हो है, जिनसे रोग, दुःख, पाप-शून्यताके साथ-साथ धर्मोपकी सिद्धि भी होती है।

सम्प्राप्ति और पाँचवें तेजःस्वरूप सूर्याग्निका सेवन करो। इसके बीचमें पूर्वकी दिशकी ओर मुखकर बैठ जाओ और मुगधर्म, जटा, बल्कल आदि धारण कर चार भुजाओंवाली एवं सभी अलंकारोंसे सुशोभित तथा कमलके ऊपर विराजमान भगवती महासतीका ध्यान करो। पुत्रि ! महालक्ष्मी, महाकाली, महामाया, महामति, गङ्गा, यमुना, सिन्धु, शतद्रु, नर्मदा, महो, सरस्वती तथा वैतरणीके रूपमें वे ही महासती सर्वत्र व्याप्त हैं। अतः तुम उन्हींकी आराधना करो।

प्रभो ! मैंने माताके द्वारा बतलायी गयी विधिसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक रम्भा- (गौरी) व्रतका अनुष्ठान किया और उसी व्रतके प्रभावसे मैंने अतपको प्राप्त कर लिया।

**भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—**कौन्तेय ! लोचमुद्राने भी इस रम्भाव्रतके आचरणसे महामुनि अगस्त्यको प्राप्त किया और वे संसारमें पूजित हुई। जो कोई स्त्री-पुरुष इस रम्भाव्रतको करेगा, उसके कुलकी वृद्धि होगी। उसे उत्तम संतति तथा सम्पत्ति प्राप्त होगी। स्त्रियोंकी अखण्ड सौभाग्यकी तथा सम्पूर्ण कर्मनाओंको सिद्ध करनेवाले श्रेष्ठ गार्हस्थ्य-सुखकी प्राप्ति होगी और जीवनके अन्तमें उन्हें इच्छानुसार विष्णु एवं शिवलोककी प्राप्ति होगी।

इस व्रतका संक्षिप्त विधान इस प्रकार है—व्रतीको एक सुन्दर मण्डप बनाकर उसे गन्ध-पुष्पादिये सुशोभित तथा अलंकृत करना चाहिये। तदनन्तर मण्डपमें महादेवी रुद्राणीकी यथाशक्ति स्वर्णादिये निर्मित प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। देवीके सम्मुख सौभाग्याहक—जीरा, कडुहूँद, अपूप, फूल, पवित्र निषाव (सेम), नमक, चीनी तथा गुड़ निवेदित करना चाहिये। पञ्चमन लगाकर सूर्यास्ततक देवीके सम्मुख बैठा रहे। अनन्तर रुद्राणीको प्रणाम कर यह मन्त्र कहे—

वेदेषु सर्वशास्त्रेषु द्विषि भूयै धरातले ।  
दृष्टः श्रुतश्च बहुशो न शक्या रहितः शिवः ॥  
त्वं शक्तिस्त्वं स्वाहा स्वाहा त्वं सावित्री सरस्वती ।  
पति देहि गृहं देहि वसु देहि नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १८। २३-२४)

'सम्पूर्ण वेदादि शास्त्रोंमें, स्वर्गमें तथा पृथ्वी आदिमें कहीं

भी यह कभी नहीं सुना गया है और न ऐसा देखा हो गया है कि शिव शक्तिसे रहित है। हे पार्वती ! आप ही शक्ति हैं, आप ही स्वाहा, स्वाहा, सावित्री और सरस्वती हैं। आप मुझे पति, श्रेष्ठ गृह तथा धन प्रदान करें, आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार पुनः-पुनः उन्हें प्रणाम करके देवीसे क्षमा-प्रार्थना करें। अनन्तर सप्ताहिक यशस्वी ब्राह्मणकी सभी उपकरणोंसे पूजा करके दान देना चाहिये। सुवासिनी स्त्रियोंको नैवेद्य आदि प्रदान करना चाहिये। इस विधानसे सभी कार्य सम्पन्न कर पाप-नाशके लिये क्षमा-प्रार्थना करें। अगले दिन चतुर्थीको ब्राह्मण-दम्पतियोंको मधुर रसोंसे समन्वित भोजन कराकर व्रत पूर्ण करना चाहिये।

पार्थ ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तथा चतुर्थी तिथिमें प्रतिवर्ष गोप्यद-नामक व्रत करना चाहिये। स्त्री अथवा पुरुष प्रथम स्नानसे निवृत्त होकर अक्षत और पुष्पमाला, धूप, बन्दन, गिहक (पीटी) आदिसे गौरी पूजा करें। उसके मृग आदि सभी अङ्गोंको अलंकृत करें। उन्हें भोजन कराकर तृप्त कर दें। स्वयं तेल और लवण आदि क्षार वस्तुओंसे रहित जो अन्निके द्वारा सिद्ध न किया गया हो उसका भोजन करें। वनकी ओर जाती तथा लैटरी गौओंको उनकी तुष्टिके लिये घास दें और उन्हें निम्न मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करें—

माता खट्वाणां दुहिता वसुनी स्वसादित्यानाममृतस्य नाधिः ।  
ब्र नु वोधं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदिति वधिष्ट ॥  
(श्रु ८। १०१। १५)

तदनन्तर निम्न मन्त्रसे गौकी प्रार्थना करें—

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।  
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

(उत्तरपर्व १९। ७)

पञ्चमीकी ओरधरित होकर गायके दूध, दही, चावलका पीठा, फल तथा शक्करा भोजन करें। रात्रिमें संयत होकर विश्राम करें। प्रातःकाल यथाशक्ति स्वर्णादिये निर्मित गोप्यद (गहयका सूर) तथा गुड़से निर्मित गोवर्धन पर्वतकी पूजा कर ब्राह्मणको 'गोविन्दः प्रीयताम्' ऐसा कहकर दान करें। अनन्तर अच्युतको प्रणाम करें।

इस व्रतकी भक्तिपूर्वक करनेवाला व्रती सौभाग्य,

लवण्य, धन, धान्य, वश, उत्तम सेतान आदि सभी पदार्थोंको प्राप्त करता है। उसका घर, गौ और बछड़ोंसे परिपूर्ण रहता है। मृत्युके बाद वह दिव्य स्वरूप धारणकर दिव्यालोकलोकसे विभूषित हो विमानमें बैठकर स्वर्गलोक जाता है एवं स्वर्गमें

दिव्य सौ वर्षोंतक निवासकर फिर विष्णुलोकमें जाता है। इस गोष्पद विराज्रतत्वा कर्ता गौ तथा गोविन्दकी पूजा करनेवाला और गौरस आदिका भोजन करते हुए जीवनयापन करनेवाला उत्तम गोलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १८-१९)

### हरकालीव्रत-कथा

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—** भगवान् ! भगवती हरकाली-देवी कौन है ? इनका पूजन करनेसे शिष्योंको क्या फल प्राप्त होता है ? इसका आप वर्णन करें ?

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—** महाराज ! दक्ष प्रजापतिकी एक कन्याका नाम था काली। उनका कर्ण भी नीलकमलके समान काला था। उनका विवाह भगवान् शंकरके साथ हुआ। विवाहके बाद भगवान् शंकर भगवती कालीके साथ आनन्द-पूर्वक रहने लगे। एक समय भगवान् शंकर भगवान् विष्णुके साथ अपने सुरम्य मण्डपमें विराजमान थे। उस समय हीमालय शिखरीने भगवती कालीको बुलाया और कहा—‘प्रिये ! गौर ! यहाँ आओ !’ शिखरीका यह वज्रवाक्य सुनकर भगवतीको बहुत क्रोध आया और वे यह कहकर रुदन करने लगीं कि ‘शिखरीने मेरा कृष्णवर्ण देखकर पाँचहास किया है और मुझे गौरी कहा है, अतः अब मैं अपनी इस देहको अग्निमें प्रज्वालित कर दूँगी।’ भगवान् शंकरने उन्हें अग्निमें प्रवेश करनेसे रोकनेका प्रयत्न किया, परंतु देवीने अपनी देहकी हरितवर्णकी कंचि हरी दूवी आदि घासमें त्यागकर अपनी देहको अग्निमें हवन कर दिया और उन्होंने पुनः हिमालयकी पुत्री-रूपमें गौरी नामसे प्रादुर्भूत होकर शिखरीके वाचाङ्गमें निवास किया। इसी दिनसे जगन्मुखा श्रीभगवतीका नाम ‘हरकाली’ हुआ।

महाराज ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिके सब प्रकारके नये धान्य एकत्रकर उनपर अंकुरित हरी घासमें निर्मित भगवती हरकालीकी मूर्ति स्थापित करें और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, मोदक आदि नैवेद्य तथा भक्ति-भक्ति उपचारोंसे देवीका पूजन करें। रात्रिमें गीत-नृत्य आदि इसका जगत्पूजा करें और देवी हरकालीको इस मन्त्रमें प्रणाम करें—

हरकर्मसमुत्पन्ने हरकाये हरप्रिये ।  
मो जहोशम्य मूर्तित्वे प्रणतोऽस्मि नमो नमः ॥

(उत्तरपर्व २०।२०)

‘भगवान् शंकरके कृत्यसे उत्पन्न है शंकरप्रिये ! आप भगवान् शंकरके शरीरमें निवास करनेवाली हैं, भगवान् शंकरकी मूर्तिमें स्थित रहनेवाली हैं, मैं आपकी शरण हूँ, आप मेरी रक्षा करें। आपको बार-बार प्रणाम है।’

इस प्रकार देवीका पूजनकर प्रातःकाल मुवांसिनी शिखा बद्धे इसप्रकार गीत-नृत्यादि करते हुए प्रतिमाको पवित्र जलशय्याके समीप ले जायें और इस मन्त्रको पढ़ते हुए विमर्शित करें—

अर्जितासि मया भक्त्या गच्छ देवि सुरालयम् ।  
हरकाले शिवे गौरी पुररागमनाथ च ॥

(उत्तरपर्व २०।२२)

‘हे हरकाली देवि ! मैं भक्तिपूर्वक आपकी पूजा की है, हे गौरी ! आप पुनः आगमनके लिये इस समय देवलोकको प्रस्थान करें।’

इस विधिसे प्रतिवर्ष, जो स्त्री अथवा पुरुष व्रत करता है, वह आरोग्य, दीर्घायु, सौभाग्य, पुत्र, पौत्र, धन, बल, ऐश्वर्य आदि प्राप्त करता है और सौ वर्षतक संसारका सुख भोगकर दिव्यलोक प्राप्त करता है। महादेवके अनुग्रहसे वहाँ वीरभद्र, महाकाल, नन्दीश्वर, विनायक आदि शिवजीके गण उसकी आज्ञायें रहते हैं। जो भी स्त्री भक्तिपूर्वक यह हरकाली-व्रत करता है और रात्रिके समय गीत-वाद्य-नृत्यसे जागरण कर उत्सव मनाती है, वह अपने पतिकी अति प्रिय होती है।

(अध्याय २०)





## ललितातृतीया-व्रतकी विधि

**राजा युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् ! अब आप द्वादश मासोंमें किये जानेवाले व्रतोंका वर्णन करें, जिनके करनेसे सभी उत्तम फल प्राप्त होते हैं, साथ ही प्रत्येक मास-व्रतका विधान भी बतानेकी कृपा करें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! इस विषयमें मैं एक प्राचीन वृत्तान्त सुनाता हूँ, आप सुने—

एक समय देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, सिद्ध, तपस्वी, नाग आदिसे पूजित भगवन् श्रीसदाशिव कैलाशपर्वतपर विराजमान थे। उस समय भगवती उमाने किन्नरपूर्वक भगवन् सदाशिवसे प्रार्थना की कि महाराज ! आप मुझे उत्तम तृतीया-व्रतके विषयमें बतानेकी कृपा करें, जिसके करनेसे नारीकी सौभाग्य, धन, सुख, पुत्र, रूप, लक्ष्मी, दीर्घायु तथा आरोग्य प्राप्त होता है और स्वर्गकी भी प्राप्ति होती है। उसकी यह बात सुनकर भगवान् शिवने हँसते हुए कहा—‘शिवे ! तूने लोकोमें ऐसा कौन-सा पदार्थ है जो तुझे दुर्लभ है तथा जिसकी प्राप्तिके लिये व्रतकी विज्ञप्ति कर रही हो।’

**पार्वतीजी बोली—**महाराज ! आपका कथन सत्य ही है। आपकी कृपासे तीनों लोकोंके सभी उत्तम पदार्थ मुझे सुलभ हैं, किन्तु संसारमें अनेक अन्याय विविध कामनाओंके प्राप्तिके लिये तथा अमङ्गलालोंकी निवृत्तिके लिये भक्तिपूर्वक मेरी आराधना करती है तथा मेरी शरण आती है। अतः ऐसा कोई व्रत बताइये, जिससे वे अनायास अपना अभीष्ट प्राप्त कर सकें।

**भगवान् शिवने कहा—**उमै ! व्रतकी इच्छावाली स्त्री संयमपूर्वक माघशुक्ल तृतीयाको प्रातः उठकर नित्यकर्म सम्पन्नकर व्रतके नियमको ग्रहण करे। मध्याह्नके समय नित्य और अशमल्लक्ष्मिश्रित पवित्र जलसे स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण करे तथा गन्ध, पुष्प, दीप, कणूर, कुंकुम एवं विविध नैवेद्योंसे भक्तिपूर्वक भक्तोंपर वात्सल्यभाव रखनेवाली तुम्हारी (पार्वतीकी) भक्तिभावसे पूजा करे। अनन्तर ईशाने नामसे तुम्हारा ध्यान करते हुए तबिके घड़ेमें जल, अक्षत तथा सुवर्ण रखकर सौभाग्यादिकी कामनासे संकल्पपूर्वक वह घट

ब्राह्मणको दान दे दे। ब्राह्मण उस घटस्थ जलसे व्रतकर्त्रीका अभिषेक करे। अनन्तर वह कुशोदकका आचमन कर रात्रिके समय भगवती उमादेवीका ध्यान करते हुए भूमिपर कुशकी शय्या बिछाकर सोये। दूसरे दिन प्रातः उठकर स्नानसे निवृत्त हो, विधिपूर्वक भगवतीका पूजन करे और यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। इस प्रकार भगवतीका प्रथम मासमें ईशानी नामसे, द्वितीय मासमें पार्वती नामसे, तृतीय मासमें शंकराग्रिया नामसे, चतुर्थ मासमें भवानी नामसे, पौर्णमासीमें स्कन्दमाता नामसे, छठे मासमें दशदुहिता नामसे, सातवें मासमें मैनाकी नामसे, आठवें मासमें बडवायनी नामसे, नवें मासमें हिमाद्रिजा नामसे, दसवें मासमें सौभाग्यादायनी नामसे, ग्यारहवें मासमें उमा नामसे तथा अन्तिम बारहवें मासमें गौरी नामसे पूजन करे। बारहों मासोंमें क्रमशः कुशोदक, दुग्ध, घृत, गोभूज, गोमय, फल, निम्ब-पत्र, कटकपत्ती, गोशृंगोदक, दही, पञ्चगव्य और शङ्खका प्राशन करे।

इस प्रकार बारह मासतक व्रतकर ब्रह्मापूर्वक भगवतीकी पूजा करे और प्रत्येक मासमें ब्राह्मणोंको दान दे। व्रतकी समाप्तिपर घेदपाठी ब्राह्मणको पत्नीके साथ बुलाकर दोनोंमें शिव-पार्वतीकी बुद्धि रखकर गन्ध-पुष्पादिसे उनकी पूजा करे और उन्हें भक्तिपूर्वक भोजन कराये तथा आभूषण, अन्न, दक्षिणा आदि देकर उन्हें संतुष्ट करे। ब्राह्मणकी दो शृङ्ख वस्त्र तथा ब्राह्मणीको दो रक्त वस्त्र प्रदान करे। जो स्त्री इस व्रतकी भक्तिपूर्वक करती है, वह अपने पतिके साथ दिव्यलोकमें जाकर दस हजार वर्षोंतक उत्तम भोगोंका भोग करती है। पुनः मनुष्य-लोकमें आनेके बाद वे दोनों दम्पति ही होते हैं और आरोग्य, धन, सेतान आदि सभी उत्तम पदार्थ उन्हें प्राप्त होते हैं। इस व्रतका पालन करनेवाली स्त्रीका पति सदा उसके अधीन रहता है और उसे अपने प्राणोंसे भी अधिक मानता है। जन्मान्तरे व्रतकर्त्री स्त्री राजपत्नी होकर राज्य-सुखका उपभोग करती है।

(अध्याय २१)

### अवियोगतृतीया-व्रत

**राजा युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् ! जिस व्रतके करनेसे पत्नी पतिसे वियुक्त न हो और अन्तमें शिवलोकमें निवास करे तथा जन्मान्तरमें भी विधवा न हो ऐसे व्रतका आप वर्णन करें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! इसी विषयको भगवती पार्वतीजीने भगवान् शिवसे और अश्वत्थामे महर्षि वसिष्ठजीसे पूछा था। उन लोगोंने जो कहा, वही आपको सुनाता हूँ।

मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको पवित्र चरित्रवाली स्त्री रात्रिमें पायस भक्षण कर शिव और पार्वतीको दण्डवत् प्रणाम करे। तृतीया तिथिमें प्रातः गूलरकी दातौनसे दन्ताधावन कर स्नान करे। शालि चावलको चूर्णसे शिव और पार्वतीकी प्रतिमा बनावे। उन्हें एक उत्तम पात्रमें स्थापित कर विधिपूर्वक उनका पूजन करे। रात्रिमें जागरण कर शिव-पार्वतीका कीर्तन करती हुई भूमिपर शयन करे। चतुर्थीको प्रातः उठकर दक्षिणाके साथ उस प्रतिमाको आचार्यको समर्पित कर शिवभक्त ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन करानेकर संतुष्ट करे। ब्राह्मण दम्पतिको भी यथाशक्ति पूजा करे।

इस प्रकार प्रतिमास व्रत एवं पूजन करना चाहिये। बारह महीनोंमें क्रमशः शिव-पार्वतीकी इन नामोंसे पूजा करनी चाहिये—मार्गशीर्षमें शिव-पार्वतीके नामसे, पौषमें गिरिश और पार्वती नामसे, माघमें भव और भवानी नामसे, फाल्गुनमें महादेव और उमा नामसे, चैत्रमें शंकर और ललिता नामसे, वैशाखमें स्थानु और लोलनेत्र नामसे, ज्येष्ठमें वीरेश्वर और एकवीर नामसे, आषाढ़में त्रिलोचन वसुपति और शक्ति

नामसे, श्रावणमें श्रीकण्ठ और सुता नामसे, भाद्रपदमें भीम और कालरात्रि नामसे, आश्विनमें शिव और दुर्गा नामसे तथा कार्तिकमें ईशान और शिवा नामसे पूजा करनी चाहिये।

बारह महीनोंमें भगवान् शिव एवं पार्वतीकी प्रसव्रतोंके लिये क्रमशः—नील कमल, कनेर, विल्वपत्र, पलाश, कुब्ज, मल्लिकार्जुन, पादर, श्वेत कमल, कदम्ब, तगर, द्रोण तथा मालती—इन पुष्पोंसे पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार मार्गशीर्षसे व्रत प्रारम्भकर कार्तिकमें व्रतका उद्घाटन करना चाहिये। उद्घाटनमें सुवर्ण, कमल, दो वस्त्र, ध्वजा, दीपक और विविध नैवेद्य शिवको अर्पित कर आरती करनी चाहिये और बारह ब्राह्मणपुंगवका यथाशक्ति पूजनकर सुवर्णमय शिव-पार्वतीकी मूर्ति बनाकर उन्हें ताम्रपात्रमें स्थापित कर उसमें पात्रमें चौंसठ मोती, चौंसठ मूँग, चौंसठ पुष्करज रत्नकर उस पात्रको वस्त्रसे ढककर आचार्यको समर्पित करना चाहिये। अङ्गुलार्जुन जलपूर्ण कलश, छाता, जूता और सुवर्ण ब्राह्मणोंको दानमें देना चाहिये। दीन, अन्ध और कृपणको अन्न बाँटना चाहिये। किसीको भी उस दिन निराश नहीं जाने देना चाहिये। यदि इतनी शक्ति न हो तो कुछ कम करे, किन्तु चित्तशुद्ध न करे। इस व्रतके करनेसे रूप, सौभाग्य, धन, आयु, पुत्र और शिवलोककी प्राप्ति होती है तथा इष्टजनोंसे कभी वियोग नहीं होता। इस व्रतके करनेवा प्रव्रजता स्त्री कभी भी पति-पुत्र, सौभाग्य और धनसे वियुक्त नहीं होती और शिवलोकमें निवास करती है।

(अध्याय २२)

### उमामहेश्वर-व्रतकी विधि

**महाराज युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् ! जिस व्रतके करनेसे स्त्रियोंको अनेक गुणवन् पुत्र-पौत्र, सुवर्ण, वस्त्र और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है तथा पति-पत्नीका परस्पर वियोग नहीं होता, उस व्रतका आप वर्णन करें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ एक व्रत है, जो उमामहेश्वर-व्रत कहलाता है, इस व्रतके करनेसे स्त्रियोंको अनेक संतान, दास, दासी, आभूषण, वस्त्र और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। इस व्रतको अमरा, विद्यापरी,

किन्नरी, श्रृङ्गिण्या, सीता, अहल्या, रोहिणी, दमयन्ती, तारा तथा अनसूया आदि सभीने किया था और अन्य सभी उत्तम स्त्रियाँ भी इस व्रतको करती हैं। भगवती पार्वतीने सौभाग्य तथा आरोग्य प्रदान करनेवाले और दरिद्रता तथा व्याधिका नाश करनेवाले इस व्रतका दुर्भगा और कुरूपा तथा निर्धन स्त्रियोंके हितकी दृष्टिसे मनुष्यलोकमें प्रचार किया।

धर्मपरायणा स्त्री इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको नियमपूर्वक उपवास करे। प्रातः उठकर पवित्र

गङ्गा आदि नदियोंमें स्नान कर शिव-पार्वतीका ध्यान करती हुई यह मन्त्र पढ़े और भगवान् शंकरकी अर्धाङ्गिनी भगवती श्रीललिताकी पूजा करे—

नमो नमस्ते देवेश उभयदेहाधरधारक ।

महादेवि नमस्तेऽस्तु हरकापार्धवासिनि ॥

(उत्तरपर्व २३।१२)

‘भगवती उमाको अपने आधे भागमें धारण करनेवाले हैं देवदेवेश्वर भगवान् शंकर ! आपको बार-बार नमस्कार है । महादेवि ! भगवती पार्वती ! आप भगवान् शंकरके अधे शरीरमें निवास करनेवाली हैं, आपको नमस्कार है ।’

पुनः पर आकर शरीरकी शुद्धिके लिये पश्चिम-पक्ष करे और प्रतिष्ठाके दक्षिण भागमें भगवान् शंकर और वाम भागमें भगवती पार्वतीकी भावना कर गन्ध, पुष्प, गुण्डल, धूप, दीप और धोमे पकाये गये मैथिलीसे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करे । इसी प्रकार बाराह महीनेतक पूजनकर प्रसन्नचित्त हो व्रतका उच्चापन करे । भगवान् शंकरकी चौटीकी तथा भगवती पार्वतीकी सुवर्णकी मूर्ति बनवाकर दोनोंको चौटीके कुपधर स्थापित कर यज्ञाभूषणोंसे अलंकृत करे । अनन्तर चन्दन, श्वेत

पुष्प, श्वेत वस्त्र आदिसे भगवान् शंकरकी और कुंकुम, रक्त वस्त्र, रक्त पुष्प आदिसे भगवती पार्वतीकी पूजा करनी चाहिये । फिर शिवभक्त वेदपात्री, शान्तचित्त ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये । सभीको दक्षिणा देकर उनकी प्रदक्षिणा करावे । यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

उमामहेश्वरी देवी सर्वलोकपितामही ।

व्रतेनानेन सुप्रीती भवेतां मम सर्वदा ॥

(उत्तरपर्व २३।२६)

‘सभी लोकोंके पितामह भगवान् शिव एवं पार्वती मेरे इस व्रतके अनुष्ठानसे मुझपर सदा प्रसन्न रहें ।’

इस प्रकार प्रार्थना करके ब्रोधरहित ब्राह्मणकी सभी सम्पत्तियाँ देकर व्रतकी समाप्ति करे । इस व्रतकी जो स्त्री भक्तिपूर्वक करती है, वह शिवजीके समीप एक कल्पतक निवास करती है । तदनन्तर मनुष्य-लोकमें उत्तम कुलमें जन्म ग्रहणकर रूप, यौवन, पुत्र आदि सभी पदार्थोंको प्राप्त कर बहुत दिनोंतक अपने पतिके साथ सांसारिक सुखोंको भोगती है, उसका अपने पतिसे कभी वियोग नहीं होता और अन्तमें वह शिव-सायुज्य प्राप्त करती है । (अध्याय २३)

## राम्यातृतीया-व्रतका माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! अब मैं सभी पार्ष्णीक नाशक, पुष्य एवं सौभाग्यप्रद सभी व्यधिकोंके उपशामक, पुष्य तथा सौम्य प्रदान करनेवाले राम्यातृतीया-व्रतका वर्णन करता हूँ । यह व्रत सपत्नियोंसे उत्पन्न ब्रह्मका शम्भक तथा ऐश्वर्यको प्रदान करनेवाला है । भगवान् शंकरने देवी पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये इस व्रतकी जो विधि बतलायी थी, उसे ही मैं कहता हूँ ।

श्रद्धालु स्त्री मार्गशीर्ष मासके शुद्ध पक्षकी तृतीया तिथिको प्रातः उठकर दत्तधावन आदिसे निवृत्त हो भक्तिपूर्वक उपवासका नियम ग्रहण करे । वह सर्वप्रथम व्रत-ग्रहण करनेके लिये देवीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

देवि संवत्सरं यावत्तृतीयायामुपोषिता ।

प्रतिमासं करिष्यामि पारणं चापरेऽह्नि ।

तद्विधेन मे यातु प्रसदात् तव पार्वति ॥

(उत्तरपर्व २४।५)

‘देवि ! मैं पूरे एक वर्षतक इस तृतीया-व्रतका आचरण और दूसरे दिन पारण करूँगी । आप ऐसी कृपा करें, जिससे इसमें कोई विघ्न न उत्पन्न हो ।’

इस प्रकार स्त्री या पुरुष व्रतका संकल्प करे और मनमें व्रतका निश्चय कर सावधानी बर्तते हुए नदी, तालाब अथवा घरमें स्नान करे । तदनन्तर देवी पार्वतीका पूजन कर रात्रिमें कुण्डेदकका प्राशन करे । दूसरे दिन प्रातःकाल विद्वान् शिवभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराये और दक्षिणाके रूपमें सुवर्ण एवं लवण प्रदान करे । यथाशक्ति गौरीश्वर भगवान् शिवको प्रयातपूर्वक भोग निवेदित करे ।

राजन् ! पौष मासकी तृतीयामें इसी विधिसे उपवास एवं पूजनकर रात्रिमें गोमूत्रका प्राशन कर प्रभातकालमें ब्राह्मणोंको भोजन कराये और दक्षिणाके रूपमें उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार सोना तथा जीरक दे । इससे वाजपेय तथा अतिरघ्र यज्ञका फल प्राप्त होता है और वह कल्पपर्यन्त इन्द्रलोकमें

निवासकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है।

माघ मासकी शुक्ल तृतीयाको 'सुदेवी' नामसे भगवती पार्वतीका पूजन कर रात्रिमें गोमयका प्राशन कर अकेले हो सोये। प्रातः अपनी शक्तिके अनुसार केसर तथा सोन ब्राह्मणोंको दानमें दे। इससे व्रतीको चिरकालतक विष्णुलोकमें निवास करनेके पश्चात् भगवान् शंकरके सायुज्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको 'गौरी' नामसे देवी पार्वतीका पूजन कर रात्रिमें गायका दूध पीये। प्रातः विद्वान् शिवभक्ती तथा सुवर्त्मिणी स्त्रियोंको भोजन कराकर सोनेके साथ कटुहृद देकर बिदा करे। इससे वाजपेय तथा अतिरात्र यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयामें भक्तिपूर्वक भगवती पार्वतीका विशालाक्षी नामसे पूजन कर रात्रिमें दहीका प्राशन करे और प्रातः कुंकुमके साथ ब्राह्मणोंको सोना प्रदान करे। विशालाक्षीके प्रसादसे व्रतकारीको महान् सौभाग्य प्राप्त होता है।

वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको भगवती पार्वतीका 'श्रीमुखी' नामसे पूजन करे। रात्रिमें घृतका प्राशन करे और एकाकी ही शयन करे। प्रातः शिवभक्त ब्राह्मणोंको यद्यपि भोजन कराकर ताम्बूल तथा लवण प्रदान कर अणमपूर्वक बिदा करे। इस विधिसे पूजन करनेपर सुन्दर पुत्रोंकी प्राप्ति होती है।

आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको गौरी-पार्वतीकी 'माधवी' नामसे पूजा करे। तिलोदकका प्राशन करे। प्रातःकाल स्त्रियोंको भोजन कराये और दक्षिणमें गुड़ तथा सोना दे। इससे उसे शुभ लोककी प्राप्ति होती है।

श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको देवी पार्वतीका 'श्रीदेवी' नामसे पूजनकर गायके सांगका स्पर्श किया जल पीये। शिवभक्तोंको भोजन कराकर सोना और फल दक्षिणके रूपमें दे। इससे व्रती सर्वलोकेश्वर होकर सभी कामनाओंको प्राप्त करता है।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको भगवती पार्वतीका 'हरताली' नामसे पूजन करे। महिलाका दूध पीये। इससे अतुल सौभाग्य प्राप्त होता है और इस लोकमें वह सुख भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है।

आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको देवी पार्वतीका 'गिरिपुत्री' नामसे पूजनकर तण्डुल-मिश्रित जलका प्राशन करे और दूसरे दिन प्रातः ब्राह्मणोंका पूजन कर चन्दनयुक्त सुवर्ण दक्षिणमें दे। इससे सभी यज्ञोंका फल प्राप्त होता है और वह गौरीलोकमें प्रवेशित होता है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको देवी पार्वतीका 'पद्मोद्भव' नामसे पूजन करके पद्मगन्धका प्राशन करे तथा रात्रिमें जगरण करे। प्रभातकालमें सपत्नीक सदाचारी ब्राह्मणोंको भोजन कराये और माल्य, वस्त्र तथा अलंकारोंसे उन शिवभक्त ब्राह्मणोंका पूजन करे। कुमारियोंको भी भोजन कराये।

इस प्रकार वर्षभर व्रत करनेके पश्चात् उद्यापन करना चाहिये। यथाशक्ति सोनेकी उम्ह-महेश्वरकी प्रतिमा बनाकर उसे एक सुन्दर, अलंकृत विधानयुक्त मण्डपमें स्थापित कर सुगन्धित द्रव्य, पत्र, पुष्प, फल, घृत-पक्क-नैवेद्य, दीपमाला, शर्करा, नारियल, दाहिम, बीजपुरक, जीरक, लवण, कुसुम, कुंकुम तथा मोदकयुक्त ताम्रपात्रसे देवदेवेशकी विधिपूर्वक पूजाकर अन्तमें जप्ता-प्रार्थना एवं शिव आदि वाद्योंकी ध्वनि करनी चाहिये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**राजन्। इस विधिसे देवी पार्वतीका पूजन करनेपर जो फल प्राप्त होता है, उसका फल वर्णन करनेमें मैं भी समर्थ नहीं हूँ। वह पूर्वोक्त सभी फलोंको प्राप्त करता है, सभी देवताओंके द्वारा पूजित होता है तथा सौ करोड़ कल्पोंतक सभी कामनाओंका उपभोग करता हुआ अन्तमें शिव-सायुज्य प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं। यह व्रत पहले रम्भाके द्वारा किया गया था, इसलिये यह रम्भाव्रत कहल्यता है।

(अध्याय २४)





## सौभाग्यशयन-व्रतकी विधि

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज । अब मैं सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले सौभाग्यशयन-व्रतका वर्णन करता हूँ । जब प्रलयके पूर्वकालमें—'भूर्भुवः स्वः' आदि सभी लोक दग्ध हो गये, तब सभी प्राणियोंका सौभाग्य एकत्र होकर वैकुण्ठमें भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें स्थित हो गया । पुनः जब सृष्टि हुई, तब आधा सौभाग्य ब्रह्माजीके पुत्र दक्ष प्रजापतिने पान कर लिया, जिससे उनका रूप-लक्षण, बल और तेज सबसे अधिक हो गया । शेष आधे सौभाग्यसे इक्षु, सागरज, निम्बाव (रोम), राजिष्वाय (शालि या अगहनो), गोक्षीर तथा उसका विकार, कुसुंभ-पुष्प (केसर), कुंकुम तथा लज्जण—ये आठ पदार्थ उत्पन्न हुए । इनका नाम सौभाग्याष्टक है<sup>१</sup> ।

दक्ष प्रजापतिने पूर्वकालमें जिस सौभाग्यका पान किया, उससे सती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई । सती लोकमें उस कन्याका सौन्दर्य अधिक था, इसीसे उसका नाम सती एवं रूपमें अतिशय ललित्य होनेके कारण ललित्य पड़ा । त्रैलोक्य-सुन्दरी इस कन्याका विवाह भगवान् शंकरके साथ हुआ । जगन्माता ललितादेवीकी आराधनासे भुक्ति, मुक्ति और स्वर्गका राज्य आदि सब प्राप्त होते हैं ।

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् । जगद्माता उन भगवतीकी आराधनाका क्या विधान है ? उसे आप बतलाने ।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज । चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको ललितादेवीका भगवान् शंकरके साथ विवाह हुआ । इस दिन पूर्वाह्णमें तिलमिश्रित जलसे स्नान करे । पञ्चगव्य तथा चन्दनमिश्रित जलके द्वारा गौरी और भगवान् चन्द्रशेखरकी प्रतिमाको स्नान कराकर धूप, दीप, नैवेद्य तथा नाना प्रकारके फलोंद्वारा उन दोनोंकी पूजा करे । इसके बाद इस प्रकार अङ्ग-पूजा करे—

'ॐ पाटलायै नमः, ॐ शम्भवे नमः' ऐसा कहकर पार्वती और शम्भुके चरणोंकी, 'त्रिधुगायै नमः, ॐ शिवाय नमः' से दोनोंके गुल्फोंकी, 'विजयायै नमः, ॐ भद्रेश्वराय नमः' से दोनोंके जानुओंकी, 'ॐ ईशान्यै नमः, ॐ

हरिकेशाय नमः' से कटि-प्रदेशकी, 'ॐ कोट्यै नमः, ॐ शुक्तिने नमः' से कुक्षियोंकी, 'ॐ मङ्गलायै नमः, ॐ शर्वाय नमः' से उदरकी, 'ॐ उमायै नमः, ॐ रुद्राय नमः' से कुचद्वयकी, 'ॐ अनन्तायै नमः, ॐ त्रिपुराराय नमः' से दोनोंके हाथोंकी पूजा करे । 'ॐ भवान्यै नमः, ॐ भवाय नमः' से दोनोंके कण्ठकी, 'ॐ गौर्यै नमः, ॐ हराय नमः' से दोनोंके मुसकी तथा 'ॐ ललितायै नमः, ॐ सर्वात्मने नमः' से दोनोंके मस्तककी पूजा करे ।

इस प्रकार विधिवत् पूजनकर शिव-पार्वतीके सम्मुख सौभाग्याष्टक स्थापित कर 'उमापद्मेक्षरी प्रीयेताम्' कहकर उनकी स्तुतिके लिये निवेदन करे । उस शत्रिमें गोशृगोदकका घ्राशनकर भूमिपर ही शयन करना चाहिये । प्रातः द्विज-दम्पतिकी वस्त्र-माला तथा अलंकारोंसे पूजाकर सुवर्णनिर्मित गौरी तथा भगवान् शंकरकी प्रतिमाके साथ वह सौभाग्याष्टक 'ललिता प्रीयेताम्' ऐसा कहकर ब्राह्मणोंको दे दे ।

इस प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक मासकी तृतीयाको पूजा करनी चाहिये । चैत्र आदि बारहों मासोंमें क्रमशः गौरी सौंगका जल, रोमर, मन्दार-पुष्प, विलम्बर, दही, कुशदेवक, दूध, फूल, गोमूत्र, कृष्ण तिल और पञ्चगव्यका प्राशन करना चाहिये । ललित्य, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला, सती तथा उमा—इन बारह नामोंका क्रमशः बारह महीनोंमें दानके समय 'प्रीयेताम्' कहकर उच्चारण करे । ललित्यका, अशोक, कमल, कदम्ब, झरल, मालती, कुङ्कुमल, करवीर, बाण (कचनार या कज्जल), खिलवा हुआ पुष्प, कुंकुम और सिंदूर—ये बारह महीनोंकी पूजाके लिये क्रमशः पुष्प कहे गये हैं । जपाकुसुम, कुसुंभ, खलती तथा कुन्दके पुष्प प्रशस्त माने गये हैं । करवीरका पुष्प भगवतीको सदा ही प्रिय है ।

इस प्रकार एक वर्षतक व्रत करके सभी सामग्रियोंसे युक्त उत्तम शय्यापर सुवर्णकी उमा-पद्मेश्वरकी तथा सुवर्णनिर्मित गौ तथा वृषभकी प्रतिमा स्थापित कर उनकी

पूजाकर ब्राह्मणको दे।

इस व्रतके करनेसे सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं और निष्कामभावसे करनेपर नित्यपद प्राप्त होता है। स्त्री, पुरुष अथवा कुमारी जो कोई भी इस सौभाग्यशायन नामक व्रतको भक्तिपूर्वक करते हैं वे देवीके अनुग्रहसे अपनी कामनाओंको

प्राप्त कर लेते हैं। जो इस व्रतका माहात्म्य श्रवण करते हैं, वे दिव्य शरीर प्राप्त कर स्वर्गमें जाते हैं। इस व्रतको कामदेव, चन्द्रमा, कुबेर तथा और भी अन्य देवताओंने किया है। अतः सबको यह व्रत करना चाहिये।

(अध्याय २५)

### अनन्त-तृतीया तथा रसकल्याणिनी तृतीया-व्रत

**राजा युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् ! अब आप सौभाग्य एवं आरोग्य-प्रदायक, शत्रुविनाशक तथा भुक्ति-मुक्ति-प्रदायक कोई व्रत बतलाइये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! बहुत पहलेकी बात है, असुर-संहारक भगवान् इंद्रने अनेक कथाओंके प्रसंगमें पार्वतीजीसे भगवती ललिताकी अराधनाकी जो विधि बतलायी थी, उसी व्रतका मैं वर्णन कर रहा हूँ, यह व्रत सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला तथा नारियोंके लिये अत्यन्त उत्तम है, इसे आप सावधान होकर सुनें—

वैशाख, भाद्रपद अथवा मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको श्वेत सरसोंका ठबटन लगाकर स्नान करे। गौरेचन, मोथा, गोमूत्र, दही, गोमय और चन्दन—इन सबको मिलकर मस्तकमें तिलक करे, क्योंकि यह तिलक सौभाग्य तथा आरोग्यको देनेवाला है तथा भगवती ललिताको बहुत प्रिय है। प्रत्येक मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको सौभाग्यवती स्त्री रक्तवस्त्र, विधवा गेहूँ आदिसे रंगा वस्त्र और कुमारी शुद्ध वस्त्र धारणकर पूजा करे। भगवती ललिताको पङ्कजव्य अपवा केवल दुग्धसे स्नान कराकर मधु और चन्दन-पुष्पमिश्रित जलसे स्नान कराना चाहिये। स्नानके अनन्तर श्वेत पुष्प, अनेक प्रकारके फल, धनिया, श्वेत जीरा, नमक, गुड़, दूध तथा खीर नैवेद्य अर्पणकर श्वेत अक्षत तथा तिलसे ललितादेवीकी अर्चना करे। प्रत्येक शुक्ल पक्षमें तृतीया तिथिको देवीकी अर्चना करे।

प्रत्येक शुक्ल पक्षमें तृतीया तिथिको देवीकी मूर्तिक चरणसे लेकर मस्तकपर्यन्त पूजन करनेका विधान इस प्रकार है—‘वरादायै नमः’ कहकर दोनों चरणोंकी, ‘शिव्यै नमः’ कहकर दोनों टखनोंकी, ‘अशोकायै नमः’ कहकर दोनों पिंडलियोंकी, ‘भवान्यै नमः’ कहकर धुटेनोकी, ‘मङ्गलकारिण्यै नमः’ कहकर ऊँओंकी, ‘कामदेव्यै नमः’

कहकर बटिकी, ‘पद्मेद्वयायै नमः’ कहकर पेटकी, ‘कापश्वयै नमः’ कहकर वक्षःस्थलकी, ‘सौभाग्यवासिन्यै नमः’ कहकर हाथोंकी, ‘शशिमुखश्वयै नमः’ कहकर कानोंकी, ‘कन्दर्पवासिन्यै नमः’ कहकर मुखकी, ‘पार्वत्यै नमः’ कहकर मुसकानकी, ‘गौर्यै नमः’ कहकर नासिकाकी, ‘सुनेत्रायै नमः’ कहकर नेत्रोंकी, ‘तृण्यै नमः’ कहकर ललाटकी, ‘कात्यायन्यै नमः’ कहकर उनके मस्तककी पूजा करे। तदनन्तर ‘गौर्यै नमः’, ‘सृष्ट्यै नमः’, ‘कान्यै नमः’, ‘श्रियै नमः’, ‘रम्भायै नमः’, ‘ललितायै नमः’ तथा ‘वासुदेव्यै नमः’ कहकर देवीके चरणोंमें बार-बार नमस्कार करे। इसी प्रकार विधिपूर्वक पूजाकर मूर्तिक आगे कुंकुमसे कर्णिकामहित द्वादश-दलयुक्त कमल बनाये। उसके पूर्वभागमें गौरी, अग्रकोणमें अर्पणा, दक्षिणमें भवानी, वैश्वदेव्यै रुद्राणी, पश्चिममें सौम्या, वायव्यमें मदनवासिनी, उत्तरमें पाटला तथा ईशानकोणमें उमाकी स्थापना करे। मध्यमें लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा, तुष्टि, मङ्गला, कुमुदा, सती तथा रुद्राणीकी स्थापना कर कर्णिकामहित ऊपर भगवती ललिताकी स्थापना करे। तत्पश्चात् गौत और माङ्गलिक वाद्योंका आयोजन कर श्वेत पुष्प एवं अक्षतसे अर्चना कर उन्हें नमस्कार करे। फिर लाल वस्त्र, रक्त पुष्पोंकी माला और लाल अङ्गुगसे मुक्तिसिनी श्रियोंका पूजन करे तथा उनके सिर (मौंग) में सिंदूर और केसर लगाये, क्योंकि सिंदूर और केसर सतीदेवीको सदा अप्रीष्ट हैं।

भाद्रपद मासमें ठरपल (नीलकमल) से, आश्विनमें बन्धुजीव (गुल्दुपहरिया) से, कार्तिकमें कमलसे, मार्गशीर्षमें कुन्द-पुष्पसे, पौषमें कुंकुमसे, माघमें सिंदूर (निगुंडी) से, फाल्गुनमें मालतीसे, चैत्रमें मल्लिका तथा अशोकसे, वैशाखमें गन्धपाटल (गुलाब) से, ज्येष्ठमें कमल और मन्दारसे, आषाढ़में चम्पक और कमलसे तथा श्रावणमें कदम्ब

और मालतीके पुष्पोसे उमादेवीकी पूजा करनी चाहिये। भाद्रपदसे लेकर श्रावण आदि बारह महीनोंमें क्रमशः गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशोदक, बिल्वपत्र, भटार-पुष्प, गोशुद्धोदक, पञ्चगव्य और बेलका नैवेद्य अर्पण करे।

प्रत्येक पक्षकी तृतीयामें ब्राह्मण-दम्पतिको निमन्त्रित कर उनमें शिव-पार्वतीकी भावना कर भोजन कराये तथा वस्त्र, माला, चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे। पुरुषको दो पीतम्बर तथा स्त्रीको पीली साड़ियाँ प्रदान करे। फिर ब्राह्मणी स्त्रीको सौभाग्याष्टक-पदार्थ तथा ब्राह्मणको फल और सुवर्णनिर्मित कमल देकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

यथा न देवि देवेशस्त्वा परित्यज्य गच्छति ।

तथा मां सम्परित्यज्य पतिर्नान्यत्र गच्छतु ॥

(उत्तरपर्व २४ (३०))

‘देवि ! जिस प्रकार देवाधिदेव भगवान् महादेव आपको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाते, उसी प्रकार मैं भी पतिदेव मुझे छोड़कर कहीं न जायँ।’

पुनः कुमुदा, विमला, अनन्ता, भवानी, सुधा, शिवा, ललिता, कमला, गौरी, सती, रम्भा और पार्वती—इन नामोंका उच्चारण करके प्रार्थना करे कि आप क्रमशः भाद्रपद आदि मासोंमें प्रसन्न हों।

व्रतकी समाप्तिमें सुवर्णनिर्मित कमलसहित शम्भु-दान करे और चौबीस अथवा बारह द्विज-दम्पतियोंकी पूजा करे। प्रत्येक मासमें ब्राह्मण-दम्पतियोंकी पूजा विधिपूर्वक करे। अपने पूज्य गुरुदेवकी भी पूजा करे।

जो इस अनन्त तृतीया-व्रतका विधिपूर्वक पालन करता है, वह सौ कल्पोंसे भी अधिक समस्तक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। निर्धन पुरुष भी यदि तीन वर्षोंतक उपवास कर पुण्य और मन्त्र आदिके द्वारा इस व्रतका अनुष्ठान करता है तो उसे भी यही फल प्राप्त होता है। सधवा स्त्री, विधवा अथवा कुमारी जो कोई भी इस व्रतका पालन करती है, वह भी गौरीकी कृपासे उस फलको प्राप्त कर लेती है। जो इस व्रतके माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह भी उत्तम लोकोंको प्राप्त करता है।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! अब एक व्रत और बता रहा हूँ, उसका नाम है—रसकल्याणिनी तृतीया।

यह पाण्डेका नाश करनेवाला है। यह व्रत माघ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको किया जाता है। उस दिन प्रातःकाल गो-दुग्ध और तिल-मिश्रित जलसे स्नान करे। फिर देवीकी मूर्तिको मधु और मक्खेके रससे स्नान कराये तथा जाती-पुष्पो एवं कुंकुमसे अर्चना करे। अनन्तर पहले दक्षिणाङ्गकी पूजा करे तब वामाङ्गकी। अङ्ग-पूजा इस प्रकार करे—‘ललितायै नमः’ कहकर दोनों चरणों तथा दोनों टखनोंकी, ‘सत्यै नमः’ कहकर पिछलियों और घुटनोंकी, ‘क्षिप्यै नमः’ कहकर ऊरुओंकी, ‘महालक्ष्मायै नमः’ कहकर कटि-प्रदेशकी, ‘चन्दनायै नमः’ कहकर उदरकी, ‘मदकवासिन्यै नमः’ कहकर दोनों स्तनोंकी, ‘कुमुदायै नमः’ कहकर गरदनकी, ‘माघव्यै नमः’ कहकर भुजाओंकी तथा भुजाके अग्रभागकी, ‘कमलायै नमः’ कहकर उपस्थकी, ‘रम्भायै नमः’ कहकर भू और ललाटकी, ‘शंकरायै नमः’ कहकर पलङ्गकी, ‘विश्ववासिन्यै नमः’ कहकर मुकुटकी, ‘कान्त्यै नमः’ कहकर केशपाशकी, ‘काङ्गावधारिण्यै नमः’ कहकर नेत्रोंकी, ‘पुरुष्यै नमः’ कहकर गुलाबी, ‘द्रव्यपिठ्यै नमः’ कहकर काण्ठीकी ‘अनन्तायै नमः’ कहकर दोनों कंधोंकी, ‘रम्भायै नमः’ कहकर वामबाहुकी, ‘विशोक्त्यै नमः’ कहकर दक्षिण बाहुकी, ‘मन्मथादित्यै नमः’ कहकर हृदयकी पूजा करे, फिर ‘पाटलायै नमः’ कहकर उन्हें बार-बार नमस्कार करे।

इस प्रकार प्रार्थना कर ब्राह्मण-दम्पतिकी गन्ध-माल्यादिसे पूजा कर स्वर्णकमलसहित जलपूर्ण घट प्रदान करे। इसी विधिसे प्रत्येक मासमें पूजन करे और माघ आदि महीनोंमें क्रमशः लवण, गुड़, तेल, राई, मधु, पानक (एक प्रकारका पेय पदार्थ या ताम्बूल), जीरा, दूध, दही, घी, शाक, धनिया और शर्कराका त्याग करे। पूर्वकथित पदार्थोंको उन-उन मासोंमें नहीं खाना चाहिये। प्रत्येक मासमें व्रतकी समाप्तिपर करकेके ऊपर सफेद चावल, गोक्षिया, मधु, पूरी, पेकर (सेवई), मण्डक (पिष्टक), दूध, शाक, दही, छः प्रकारका अन्न, भिंटी तथा शक्करातक रसकर ब्राह्मणको दान करना चाहिये। माघ मासमें पूजाके अन्तमें ‘कुमुदा प्रीयताम्’ यह कहना चाहिये। इसी प्रकार फाल्गुन आदि महीनोंमें ‘माघव्यै, गौरी, रम्भा, भद्रा, जया, शिवा, उमा, शची, सती, मङ्गला तथा रतिलालसा’ का नाम लेकर ‘प्रीयताम्’ ऐसा

कहे। सभी मासोंके व्रतमें पञ्चगव्यका प्राशन करे और उपवास करे। तदनन्तर माघ मास आनेपर करकपात्रके ऊपर पञ्चजनसे युक्त अङ्गुष्ठमात्रकी पार्वतीकी स्वर्णनिर्मित मूर्तिकी स्थापना करे। वस्त्र, आभूषण और अलंकारसे उसे सुशोभित कर एक बैल और एक गाय 'भवानी प्रीयताम्' यह कहकर ब्राह्मणको प्रदान करे। इस विधिके अनुसार व्रत करनेवाला सम्पूर्ण पापोंसे उसी क्षण मुक्त हो जाता है और हजार वर्षोंतक दुःखी

नहीं होता। इस व्रतके करनेसे हजारों अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है। कुमारी, सधवा, विधवा या दुर्भगा जो भी हो, वह इस व्रतके करनेपर गौरीलोकमें पूजित होती है। इस विधानको सुनने या इस व्रतको करनेके लिये औरोंको उपदेश देनेसे भी सभी पापोंसे छुटकारा मिलता है और वह पार्वतीके लोकमें निवास करता है।

(अध्याय २६)

### आर्द्रानन्दकरी तृतीयाव्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध, आनन्द प्रदान करनेवाले, पापोंका नाश करनेवाले आर्द्रानन्दकरी तृतीयाव्रतका वर्णन करता हूँ। जब किसी भी महीनेमें शुक्ल पक्षकी तृतीयाको पूर्वार्ध, उत्तरार्ध अथवा रोहिणी या मृगशिरा नक्षत्र हो तो उस दिन यह व्रत करना चाहिये। उस दिन कुश और गन्धोदकसे स्नानकर श्वेत चन्दन, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारणकर उत्तम सिद्धामन्त्र शिव-पार्वतीकी प्रतिमा स्थापित करे। सुगन्धित श्वेत पुष्प, चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे। 'वासुदेव्यै नमः-शंकराय नमः' से गौरी-शंकरके दोनों चरणोंकी, 'श्लोकविनाशिन्यै नमः-आनन्दाय नमः' से पिंडालियोंकी, 'रम्भायै नमः-शिवाय नमः' से ऊरुकी, 'आदित्यै नमः-शुक्लायै नमः' से कटिकी, 'वाधव्यै नमः-पद्माय नमः' से नाभिकी, 'आनन्दकारिण्यै नमः-इन्द्रधारिणे नमः' से दोनों सनोकी, 'उत्कण्ठिन्यै नमः-नीलकण्ठाय नमः' से कण्ठकी, 'उत्पलधारिण्यै नमः-रुद्राय नमः' से दोनों हाथोंकी, 'परिविधिन्यै नमः-नृत्यशीलाय नमः' से दोनों भुजाओंकी, 'विलासिन्यै नमः-वृषेशाय नमः' से मुक्तकी, 'सम्भारशीलायै नमः-विश्ववक्त्राय नमः' से मुस्तकानकी, 'मदनवासिन्यै नमः-विश्वधात्रे नमः' से नेत्रोंकी, 'रतिप्रियायै नमः-ताण्डवेशाय नमः' से भुवोंकी, 'इन्द्रायै नमः-हृष्यवाहाय नमः' से ललाटकी तथा 'स्वाहायै नमः-पद्मशाय नमः' कहकर मुकुटकी पूजा करे। तदनन्तर नीचे लिखे मन्त्रसे पार्वती-परमेश्वरकी प्रार्थना करे—

विश्वकायौ विश्वमुखौ विश्वपादकौ शिवौ ।  
प्रसन्नवदनी वन्दे पार्वतीपरमेश्वरी ॥

(उत्तरार्ध २७। १३)

विश्व जिनका शरीर है, जो विश्वके मुख, पाद और हस्तस्वरूप तथा मङ्गलकारक है, जिनके मुखपर प्रसन्नता झलकाती रहती है, उन पार्वती और परमेश्वरकी मैं वन्दना करता हूँ।

इस प्रकार पूजनकर मूर्तियोंके आगे अनेक प्रकारके कमल, शङ्ख, खड्ग, चक्र आदिका विराजण करे। गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशोदक, गोमृगोदक, बिल्वपत्र, मधेका जल, सससका जल, यक्षपूर्यक जल तथा तिलोदकका क्रमशः मार्गशीर्ष आदि महीनेमें प्राशन करे, अनन्तर शयन करे। यह प्राशन प्रत्येक पक्षकी द्वितीयाको करना चाहिये। भगवान् उमा-मोक्षरक्षी पूजाके लिये सर्वत्र श्वेत पुष्पको श्रेष्ठ मान गया है। उनके समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

गौरी मे प्रीयतां नित्यमघनाशाय मङ्गला ।

सौभाग्यापासु ललिता भवानी सर्वसिद्धये ॥

(उत्तरार्ध २७। १९)

'गौरी नित्य मुझपर प्रसन्न रहें, मङ्गला में पापोंका विनाश करे। ललिता मुझे सौभाग्य प्रदान करे और भवानी मुझे सब सिद्धियाँ प्रदान करे।'

वर्षके अन्तमें लवण तथा गुड़से परिपूर्ण घट, नेत्रघट, चन्दन, दो श्वेत वस्त्र, ईश और विभिन्न फलोंके साथ सुवर्णकी शिव-पार्वतीकी प्रतिमा सपत्नीक ब्राह्मणको दे और 'गौरी मे प्रीयताम्' ऐसा कहे। शय्यादान भी करे।

इस आर्द्रानन्दकरी तृतीयाका व्रत करनेसे पुरुष शिवलोकमें निवास करता है और इस लोकमें भी धन, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और सुखको प्राप्त करता है। इस व्रतको करनेवालोंको कभी शोक नहीं होता। दोनों पक्षोंमें विधिवत् पूजनसहित इस व्रतको करना चाहिये। ऐसा करनेसे रुद्राणीके



लोककी प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति इस विधानको सुनता और सुनाता है, वह गन्धर्वोंसे पूजित होता हुआ इन्द्रलोकमें निवास करता है। जो कोई स्त्री इस व्रतको करती है, वह संसारके

सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें अपने पतिके साथ गौरीके लोकमें निवास करती है।

(अध्याय २७)

## वैत्र, भाद्रपद और माघ शुक्ल तृतीया-व्रतका विधान और फल

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! अब आप वैत्र, भाद्रपद तथा माघके शुक्ल तृतीया-व्रतोंके विषयमें सुनें। इन व्रतोंसे रूप, सौभाग्य तथा उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें आप एक वृत्तान्त सुनें—

भगवती पार्वतीकी जया और विजया नामकी दो सखियाँ थीं। किसी समय मुनि-कन्याओंने उन दोनोंमें पूछा कि आप दोनों तो भगवती पार्वतीके साथ सदा निवास करती हैं। आप सब यह बतायें कि किस दिन, किन उपचारों और गन्धोंसे पूजा करनेसे भगवती पार्वती प्रसन्न होती है।

इसपर जया बोली—मैं सभी कामनाओंको सिद्ध करने-वाले व्रतका वर्णन करती हूँ। वैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको प्रातःकाल उठकर द्वापरावन आदि क्रियाओंसे निवृत्त होकर इस व्रतके नियमको ग्रहण करे। कुंकुम, सिंदूर, रक्त वस्त्र, ताम्बूल आदि सौभाग्यके चिह्नोंको धारणकर भक्तिपूर्वक देवीकी पूजा करे। प्रथम अतिशय सुन्दर एक मण्डप बनवाकर उसके मध्यमें एक मनोहर मणिजटित केटीकी रचना करे। एक हस्त प्रमाणका कुण्ड बनाये, तदनन्तर स्नान कर उत्तम वस्त्र धारणकर देवताओं और पितरोंकी पूजा कर देवीके मण्डपमें जाय और पार्वती, लल्लटा, गौरी, गन्धरी, शङ्करी, शिवा, उमा और सती—इन आठ नामोंसे भगवतीकी पूजा करे। कुंकुम, कपूर, अगक, चन्दन आदिका लेपन करे। अनेक प्रकारके सुगन्धित पुष्प चढ़ाकर धूप, दीप आदि उपचार अर्पण करे। लड्डू, अनेक प्रकारके अन्न तथा विभिन्न प्रकारके घृतपक नैवेद्य, जीरक, कुंकुम, नमक, ईश और ईशका रस, हल्दी, नारिकेल, आमलक, अनार, कृष्णाष्ट, कर्कटी, नारंगी, कटहल, विजय नौबू आदि ऋतुकुल भगवतीको निवेदित करे। गृहस्थोंके उपकरण—ओखली, सिल, सूप, टोकरी आदि तथा शरीरको अलंकृत करनेकी सामग्रियाँ भी निवेदित करे। शङ्ख, तुर्य, मृदङ्ग आदिके शब्द और उत्तम गीतोंके साथ महोत्सव करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक

अपनी शक्तिके अनुसार पार्वतीजीकी पूजा करके कुमारी कन्हाई सौभाग्यकी अभिलाषासे प्रदोषके समय नये कलशोंमें जल लगाकर उससे स्नान करे। पुनः पूर्वोक्त विधिसे भगवतीकी पूजा करे। प्रत्येक प्रहरमें पूजा और घृतसमन्वित तिलोंसे हवन करे। भगवतीके सम्मुख पद्यासन लगाकर रात्रि-जागरण करे। नृत्यसे भगवान् शंकर, गीतसे भगवती पार्वती और भक्तिसे सभी देवता प्रसन्न होते हैं। ताम्बूल, कुंकुम और उत्तम-उत्तम पुष्प सुवासिनी स्त्रीको अर्पित करे।

प्रातःस्नानके अनन्तर पार्वतीजीकी पूजाकर गुड़, लवण, कुंकुम, कपूर, अगक, चन्दन आदि द्रव्योंसे यथाशक्ति तुल्यदान करे और देवीसे क्षमा-प्रार्थना करे। ब्राह्मणों तथा सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराये। नैवेद्यका वितरण करे। इससे उसका कर्म सफल हो जाता है।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको भी वैत्र-तृतीयाकी भाँति व्रत एवं पूजन करना चाहिये। इसमें सप्तधन्योंमें एक सूयमें उमाकी मूर्ति बनाकर पूजा करनी चाहिये तथा गोमूत्र-प्राशन करना चाहिये। यह व्रत उत्तम सौन्दर्य-प्रदायक है।

इस प्रकार माघ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको वैत्र-तृतीयाकी भाँति पूर्वोक्त क्रियाओंको करनेके पश्चात् कुन्द-पुष्पोंसे तुल्यदान करे तथा चतुर्थीको गणेशजीका भी पूजन करे।

इस विधिसे जो स्त्री व्रत और तुल्यदान करती है, वह अपने पतिके साथ इन्द्रलोकमें निवास कर ब्रह्मलोकमें और वहाँसे शिवलोकमें जाती है। इस लोकमें भी वह रूप, सौभाग्य, संतान, धन आदि प्राप्त करती है। उसके वंशमें दुर्भगा कन्या और दुर्विघ्न पुत्र कभी भी उत्पन्न नहीं होता। घरमें दारिद्र्य, रोग, शोक आदि नहीं होते। जो कन्या इस व्रतको करती है तथा ब्राह्मणकी पूजा करती है, वह अभीष्ट वर प्राप्त कर संसारका सुख भोगती है। (अध्याय २८)

### आनन्तर्य-तृतीयाव्रत

**महाराज युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् । आपने शुक्ल पक्षके अनेक तृतीया-व्रतोंको बतलाया । अब आप आनन्तर्य-व्रतका स्वरूप बतलायें ।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! ब्रह्मा, विष्णु और महेशने देवताओंको बतलाया है कि यह आनन्तर्यव्रत अत्यन्त गुह्य है, फिर भी मैं आपसे इस व्रतका वर्णन करता हूँ । इस व्रतका आरम्भ मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयासे करना चाहिये । द्वितीयाके दिन रातमें व्रतकर तृतीयाको उपवास करे । गन्ध, पुष्प आदिसे उमादेवीका पूजनकर शर्करा और पूरीका नैवेद्य समर्पित करे । खर्च दहीका प्राशन कर रात्रिमें शयन करे । प्रातःकाल उठकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन करावे । इस विधिसे जो स्त्री व्रत करती है, वह सम्पूर्ण अश्वमेध-यज्ञके फलको प्राप्त करती है ।

मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी तृतीयाको भगवती काल्यायनीके पूजनमें नारिकेल समर्पित कर दुग्धका प्राशन करे । काम-जोधनका त्यागकर रात्रिमें शयन करे एवं प्रातः उठकर ब्राह्मण-दम्पतिको पूजन करे । ऐसा करनेसे अनेक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है ।

पौष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको उपवासकर गौरीका पूजन करे, लड्डूका नैवेद्य निवेदित करे और धूलका प्राशनकर शयन करे । प्रातः उठकर सपत्नीक ब्राह्मणका पूजन करे । इससे महान् यज्ञका फल मिलता है । इसी प्रकार चैत्रकी कृष्ण-तृतीयाको भगवती पार्वतीकी पूजा करे और नैवेद्य अर्पण करे, रातमें पूरी और गोमयका प्राशन करना चाहिये । प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिको पूजन करे । इससे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है ।

माघ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको भगवती पार्वतीका 'सुरनायिका' नामसे पूजनकर खड़ि और शिल्पका नैवेद्य समर्पित करे । कुशोदकका प्राशन कर जितेन्द्रिय रहे, धूमिपर शयन करे । प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन करावे । इससे सुवर्णदानका फल मिलता है । इसी प्रकार मघ-कृष्ण-तृतीयाको पवित्र होकर 'आर्या' नामसे पार्वतीका पूजनकर भक्ष्य पदार्थोंका नैवेद्य समर्पित कर मधुका प्राशन करे । देवीके आगे शयन करे, दूसरे दिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिको

पूजन करे । इससे काजपेय-यज्ञका फल मिलता है ।

फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको पवित्र होकर उपवास करे और देवी पार्वतीका 'भद्रा' नामसे पूजनकर कासका नैवेद्य निवेदित करे । शर्कराका प्राशन कर रात्रिमें शयन करे । प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन करावे । इससे सौभाग्य-यागका फल प्राप्त होता है । इसी प्रकार कृष्ण पक्षकी तृतीयाके 'विशालाक्षी' नामसे भगवती पार्वतीका पूजन कर पूरिका भोग लगावे । जल तथा चावल निवेदित कर धूमिपर शयन करे । प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन करावे । इससे अग्निहोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है ।

चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको जितेन्द्रिय और पवित्र होकर भगवती पार्वतीका 'श्री' नामसे पूजन करे । घटका (दहीघड़ा) का नैवेद्य निवेदित करे, शिल्पपत्रका प्राशन करे एवं देवीका ध्यान करता करता हुआ विश्राम करे । प्रातःकाल भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिको पूजा करे, इससे राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त होता है । इसी प्रकार कृष्ण-तृतीयाको देवीकी 'काली' नामसे पूजा करे । अपूपका नैवेद्य निवेदित करे, पीठिका प्राशन करे और रात्रिमें विश्राम करे । प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन करावे । इससे अतिरात्र-यज्ञका फल प्राप्त होता है ।

वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको जितेन्द्रिय होकर उपवास करे । भगवती पार्वतीकी 'चण्डिका' नामसे पूजा कर मधुका निवेदित करे । श्रीखण्ड-चन्दनसे लिप्त कर देवीके सम्मुख विश्राम करे । प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करे । इससे चान्द्राणव्रतका फल मिलता है । ऐसे ही कृष्ण पक्षकी तृतीयाको विषासकर होकर उपवास करे । देवीकी 'काल्यायि' नामसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदिसे पूजा करे । पी तथा जीके आटेसे बना नैवेद्य निवेदित करे । तिलका प्राशन कर रात्रिमें शयन करे । प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन करावे । इससे अतिकृच्छ्रव्रतका फल प्राप्त होता है ।

ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको उपवासकर पार्वतीकी पूजा 'शुभा' नामसे करे तथा आम-फलका नैवेद्य निवेदित करे एवं औँलेका प्राशन कर गौरीका ध्यान करते हुए सुप्तपूर्वक सोये । प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन

कराये। इससे तीर्थयात्राका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार ज्येष्ठ कृष्ण तृतीयाको सुवासिनी स्त्री उपवास करे। 'स्कन्दमाता' की पूजा कर भोग लगाये। पञ्चगव्यका प्राशन कर देवीके सामने शयन करे। प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। इससे कन्यादानका फल प्राप्त होता है।

आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको सतीका पूजन कर दहीका नैवेद्य समर्पित करे। गोमूत्र-जलका प्राशन कर शयन करे। प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे, इससे कन्यादानका फल प्राप्त होता है। पुनः आषाढ़ मासके कृष्ण पक्षकी तृतीयाके कृष्णपण्डिका पूजन कर गुड़ और घृतके साथ ससूका नैवेद्य अर्पित करे। कुशोदकका प्राशन कर शयन करे। प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। इससे गोसहस्र-दानका फल प्राप्त होता है।

श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको उपवासकर चन्द्र-धष्टाका पूजन करे। कुल्माष (कुलशे) को नैवेद्य-रूपमें समर्पित कर पुष्पोदकका प्राशन कर शयन करे, प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। ऐसा करनेसे अभयदानका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्रावणकी कृष्ण-तृतीयाको 'सद्गन्त्री' नामसे पार्वतीका पूजन कर सिद्ध पिण्ड आदि नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे। तिलकुटका प्राशन करे। प्रातः सपत्नीक ब्राह्मणका पूजन करे, इससे इष्टपूर्ति-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाके 'हिमाद्रिजा' नामसे पार्वतीका पूजन कर गोधूमका नैवेद्य समर्पित करे। श्वेत चन्दन तथा गन्धोदकका प्राशन कर शयन करे। प्रातः सपत्नीक ब्राह्मणका पूजन करे, इससे सैकड़ों उद्यान लगानेका फल प्राप्त होता है। भाद्रपद कृष्ण-तृतीयाको दुर्गाकी पूजा करे। गुड़पुल पिष्ट और फलका नैवेद्य समर्पित करे, गोमूत्रका प्राशन कर शयन करे। प्रातः सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करे। इससे सदावर्तका फल प्राप्त होता है।

आश्विनमें उपवासकर 'नारायणी' नामसे पार्वतीका पूजनकर पञ्चाङ्गका नैवेद्य समर्पित करे। रक्त चन्दनका प्राशन कर रात्रिमें शयन करे। प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। इससे अग्निहोत्र-यज्ञका फल प्राप्त होता है। आश्विन कृष्ण-तृतीयाको 'स्वस्ति' नामसे पार्वतीकी पूजा करे। गुड़के

साथ शाल्वोदन समर्पित करे। कुसुमके बीजोंका प्राशन कर रात्रिमें विश्राम करे। प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे गवह्निक (अन्न, घास आदिसे दिनभर गो-सेवा करने) का फल प्राप्त होता है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको 'सखी' नामसे पार्वतीका पूजनकर घृत, खीर और खीरका नैवेद्य समर्पित करे। कुसुम, केसरका प्राशन कर शयन करे और प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। इससे एकभुक्त-व्रतका फल प्राप्त होता है। कार्तिककी कृष्ण-तृतीयाको 'स्रग्धा' नामसे पार्वतीका पूजनकर मूँगकी शिबड़ीका नैवेद्य समर्पित करे और धीका प्राशनकर रात्रिमें शयन करे। प्रातः सपत्नीक ब्राह्मणका पूजन करे। इससे नक्तव्रतका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार वर्षभर प्रत्येक मास एवं पक्षकी तृतीयाको व्रतादि करनेसे व्रती सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त और पवित्र हो जाता है। व्रत पूर्ण कर उद्यापन इस प्रकार करना चाहिये—

मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको उपवासकर शस्त्र-देहिसे एक मण्डप बनाकर सुवर्णकी शिव-पार्वतीकी प्रतिमा बनवाये। उन प्रतिमाओंके नेत्रोंमें मोती और नीलम लगाये। ओष्ठोंमें मूँग और कानोंमें रत्नकुण्डल पहनाये। भगवान् शंकरको यज्ञोपवीत और पार्वतीजीको हारसे अलङ्कृत कर क्रमशः श्वेत और रक्त वस्त्र पहनाये। चतुःसम (एक गन्ध-द्रव्य जो कस्तूरी, चन्दन, कुसुम और कपूरके स्फुटन-योगसे बनता है) से सुशोभित करे। तदनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप आदि उपचारोंसे मण्डलमें पूजनकर अगस्त्यका हवन करे। इसमें अपराजिता भगवतीकी अर्चना करे। मूर्तिकाका प्राशन कर रात्रिमें जागरण करे। गीत, नृत्य आदि उत्सव करे। सुवैद्यपर्वत जप करे। प्रातः उत्तम मण्डल बनाकर मण्डलमें शय्यापर शिव-पार्वतीकी प्रतिमा स्थापित करे। वितान, ध्वज, माला, किक्किणी, दर्पण आदिसे मण्डपको सुशोभित करे, अनन्तर शिव-पार्वतीकी पूजा करे। सपत्नीक ब्राह्मणको भोजनआदिसे संतुष्ट करे। पान निवेदित कर प्रार्थना करे कि 'हे भगवान् शिव-पार्वती ! आप दोनों मुझपर प्रसन्न होवें।' इसके बाद उच्छिष्ट स्थानको पवित्र कर ले। तत्पश्चात् सुवर्णसे मण्डित सींग तथा चाँदीसे मण्डित खुरवाली, कांस्य-दोहनपात्रसे युक्त, लाल वस्त्रसे आच्छादित, घण्टा आदि

आभरणोंसे युक्त पर्यास्विनी लाल रंगकी गौरी प्रदक्षिणा कर दक्षिणाके साथ जूता, खड़ाऊँ, छाता एवं अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ गुरुको समर्पित करे। पुनः शिव-पार्वतीको प्रणाम कर गुरुके चरणोंमें भी प्रणाम कर क्षमा माँगे। इस प्रकार इस आनन्तर्य-व्रतकी समाप्ति करे। जो स्त्री या पुरुष इस व्रतको करता है, वह दिव्य विमानमें बैठकर गन्धर्वलोक, यक्षलोक, देवलोक तथा विष्णुलोकमें जाता है। वहाँ बहुत समयतक उत्तम भोगोंको भोगकर शिवलोकको प्राप्त करता है और फिर

भूमिपर जन्म लेकर प्रतापी चक्रवर्ती राजा होता है। व्रत करनेवाली उसकी स्त्री उसकी पटरानी होती है। जिस प्रकार शिवजीके साथ पार्वती, इन्द्रके साथ शची, वसिष्ठके साथ अरुन्धती, विष्णुके साथ लक्ष्मी, ब्रह्माके साथ सावित्री सदा विराजमान रहती है, उसी प्रकार वह नारी भी जन्म-जन्ममें अपने पतिके साथ सुख भोगती है। इस व्रतको करनेवाली नारी पतिसे विद्वक्त नहीं होती तथा पुत्र, पौत्र आदि सभी वस्तुओंको प्राप्त करती है। (अध्याय २९)

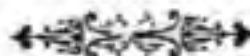
### अक्षय-तृतीयाव्रतके प्रसंगमें धर्म वणिक्का चरित्र

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! अब आप वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी अक्षय-तृतीयाकी कथा सुनें। इस दिन ज्ञान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, तर्पण आदि जो भी कर्म किये जाते हैं, वे सब अक्षय हो जाते हैं<sup>१</sup>। सत्ययुगका आरम्भ भी इसी तिथिमें हुआ था, इसलिये इसे कृतपुण्यदि तृतीया भी कहते हैं। यह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली एवं सभी सुखोंको प्रदान करनेवाली है। इस सम्बन्धमें एक आख्यान प्रसिद्ध है, आप उसे सुनें—

ज्ञातकाल नगर्में प्रिय और सत्यवादी, देवता और ब्राह्मणोंका पूजक धर्म नामक एक धर्मीय वणिक् रहता था। उसने एक दिन कथाप्रसंगमें सुना कि यदि वैशाख शुक्लकी तृतीया रोजिणी नक्षत्र एवं बुधवारमें युक्त हो तो उस दिनका दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है। यह सुनकर उसने अक्षय तृतीयाके दिन गङ्गामें अपने पितरोंका तर्पण किया और घर आकर जल और अन्नसे पूर्ण घट, सनु, दहो, चन्दा, गेहूँ, गुड़, ईस, खाँड़ और सुवर्ण ब्रह्मापूर्वक ब्राह्मणोंको दान दिया। कुटुम्बमें आसक्त रहनेवाली उसकी स्त्री उसे बार-बार रोकती

थी, किन्तु वह अक्षय तृतीयाको अवश्य ही दान करता था। कुछ समयके बाद उसका देहान्त हो गया। अगले जन्ममें उसका जन्म कुशलवती (द्वारका) नगरमें हुआ और वह वहाँका राजा बना। दानके प्रभावसे उसके ऐश्वर्य और भनकें कोई सोमा न थी। उसने पुनः बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ किये। वह ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, सुवर्ण आदि देता रहता और दान-दुश्चिन्तोंको भी संतुष्ट करता, किन्तु उसके धनका कभी ह्रास नहीं होता। यह उसके पूर्वजन्ममें अक्षय तृतीयाके दिन दान देनेका फल था। महाराज ! इस तृतीयाका फल अक्षय है। अब इस व्रतका विधान सुनें—सभी रस, अन्न, दहद, जलमें भरे घड़े, तरह-तरहके फल, जूता आदि तथा भीष्म ऋतुमें उपयुक्त सामग्री, अन्न, गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र जो पदार्थ अपनेको प्रिय और उत्तम लगे, उन्हें ब्राह्मणोंको देना चाहिये। यह अतिशय रहस्यकी बात मैं आपको बतलायी। इस तिथिमें किये गये कर्मका क्षय नहीं होता, इसीलिये मुनिर्धन इसका नाम अक्षय-तृतीया रखा है।

(अध्याय ३०—३३)



१-यत्सपुराणके अध्याय ५५ में इसके विषयमें एक दूसरी कथा आती है, जिसमें कहा गया है कि 'इस दिन अक्षयमें पापवान् विष्णुकी पूजा करनेसे वे विदोष प्रसन्न होते हैं और उसकी मति भी अक्षय बनी रहती है—

अक्षयः सर्वविभक्त्यः तस्यै सुकृष्णस्यम् । अक्षयः पुनर्ये विष्णुलेन साक्षया स्यम् ॥

अक्षयैव नरा स्वता विष्णोर्देवैः तथासजन् ॥

(मत्स्यपुराण ६५/४)

(सम्मान्यतया अक्षयके द्वारा विष्णुपूजन निश्चित है, पर केवल इस दिन अक्षयमें उसकी पूजा की जाती है। अन्यत्र अक्षयके स्थानपर सफेद तिलका विधान है।)



## शान्तिव्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं पञ्चमी-कल्पमें शान्तिव्रतका वर्णन करता हूँ। इसके करनेमें गृहस्थोंको सब प्रकारकी शान्ति प्राप्त होती है। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीसे लेकर एक वर्षपर्यन्त खट्टे पदार्थोंका भोजन न करे। नक्तव्रत कर शेषमासके ऊपर स्थित भगवान् विष्णुका पूजन करे और निम्नलिखित मन्त्रोंसे उनके अङ्गोंकी पूजा करे—

‘ॐ अनन्ताय नमः पादौ पूजयामि’से भगवान् विष्णुके दोनों पैरोंकी, ‘ॐ धृतराष्ट्राय नमः कटि पूजयामि’से कटि-प्रदेशकी, ‘ॐ तक्षकाय नमः उदर पूजयामि’से उदरदेशकी, ‘ॐ कर्कोटकाय नमः उरः पूजयामि’से हृदयकी, ‘ॐ पद्माय नमः कर्णौ पूजयामि’से दोनों कानोंकी,

‘ॐ महापद्माय नमः दोषुगं पूजयामि’से दोनों भुजाओंकी, ‘ॐ शङ्खपालाय नमः वक्षः पूजयामि’से वक्षःस्थलकी तथा ‘ॐ कुलिकाय नमः शिरः पूजयामि’ से उनके मस्तककी पूजा करे। तदनन्तर मौन हो भगवान् विष्णुको दूधसे स्नान कराये, फिर दुग्ध और तिलोंमें हवन करे। वर्ष पूरा होनेपर नारायण तथा शेषनागकी सुवर्णप्रतिमा बनवाकर उनका पूजन कर ब्राह्मणको दान दे, साथ ही उसे सबत्सा गौ, पायसमें पूर्ण कोंटपात्र, दो वस्त्र और यथाशक्ति सुवर्ण भी प्रदान करे। तपश्छात्र ब्राह्मण-भोजन कराकर व्रत समाप्त करे। जो व्यक्ति इस व्रतको भक्तिपूर्वक करता है, वह निश्चय शान्ति प्राप्त करता है और उसे नागोंका कभी भी कोई भय नहीं रहता।

(अध्याय ३४)

## सरस्वतीव्रतका विधान और फल

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! किस व्रतके करनेसे प्राणी मधुर होती है ? प्राणीको सौमन्य प्राप्त होता है ? विद्यामें अतिबौद्ध्य प्राप्त होता है ?, पति-पत्नीका और बन्धुजनोंका कभी वियोग नहीं होता तथा दीर्घ आयु प्राप्त होता है ? उसे आप बतलाये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! आपने बहुत उत्तम बात पूछी है। इन फलोंको देनेवाले सरस्वतीव्रतका विधान आप सुनें। इस व्रतके कीर्तनमात्रसे भी भगवती सरस्वती प्रसन्न हो जाती है। इस व्रतको वत्सरात्रमें वैश्व मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको आदित्यवारसे प्रारम्भ करना चाहिये। इस दिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मणके द्वारा स्वस्तिपाठन कराकर गन्ध, श्वेत माता, शुक्ल अक्षत और श्वेत वस्त्रादि उपचारोंसे, वीणा, अक्षमाला, कमण्डलु तथा पुस्तक धारण की हुई एवं सभी अलंकारोंसे अलंकृत भगवती गायत्रीका पूजन करे। फिर हाथ जोड़कर इन मन्त्रोंमें प्रार्थना करे—

यथा तु देवि भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।  
त्वां परित्यज्य नो तिहेत् तथा भव वरप्रद ॥  
वेदशास्त्राणि सर्वाणि नृत्यगीतादिकं च यत् ।  
वाहितं यत् स्वयां देवि तथा मे सन्तु सिद्धयः ॥  
लक्ष्मीमेधा वरा रिष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा मतिः ।

एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वति ॥

(उत्तरपर्व ३५।७—९)

देवि ! जिस प्रकार लोकपितामह ब्रह्मा आपका परित्यागकर कभी अलग नहीं रहते, उसी प्रकार आप हमें भी वर दीजिये कि हमारा भी कभी अपने परिवारके लोगोंसे वियोग न हो। हे देवि ! वेदादि सम्पूर्ण शास्त्र तथा नृत्य-गीतादि जो भी विद्यार्थी हैं, वे सभी आपके अधिष्ठानमें ही रहती हैं, वे सभी मुझे प्राप्त हों। हे भगवती सरस्वती देवि ! आप अपनी—लक्ष्मी, मेधा, वरा, रिष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा तथा मति—इन आठ मूर्तियोंके द्वारा मेरी रक्षा करें।

इस विधिसे प्रार्थनकर मौन होकर भोजन करे। प्रत्येक मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको सुवासिनी स्त्रियोंका भी पूजन करे और उन्हें तिल तथा चावल, घृतपात्र, दुग्ध तथा सुवर्ण प्रदान करे और देते समय ‘गायत्री प्रीयताम्’ ऐसा उच्चारण करे। सार्यकाल मौन रहे। इस तरह वर्षभर व्रत करे। व्रतकी समाप्तिपर ब्राह्मणको भोजनके लिये पूर्णपात्रमें चावल भरकर प्रदान करे। साथ ही दो श्वेत वस्त्र, सबत्सा गौ, चन्दन आदि भी दे। देवीको निवेदित किये गये वितान, घण्टा, अन्न आदि पदार्थ भी ब्राह्मणको दान कर दे। पूज्य गुरुका भी वस्त्र, माल्य तथा धन-धान्यसे पूजन करे। इस विधिसे जो पुरुष सरस्वत

व्रत करता है, वह विद्वान्, धनवान् और मधुर कण्ठवाला होता है। भगवती सखतीकी कृपासे वह वेदव्यासके समान कवि

हो जाता है। नती भी यदि इस व्रतका पालन करे तो उसे भी पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है। (अध्याय ३५-३६)

### श्रीपञ्चमीव्रत-कथा

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! तीनों लोकोंमें लक्ष्मी दुर्लभ है; पर व्रत, होम, तप, जप, नमस्कार आदि किस कर्मके करनेसे स्थिर लक्ष्मी प्राप्त होती है? आप सब कुछ जानेवाले हैं, कृपाकर उसका वर्णन करें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! सुना जाता है कि प्राचीन कालमें भृगुमुनिकी 'खताति' सप्तकी खोसे लक्ष्मीका आविर्भाव हुआ। भृगुने विष्णुभगवान्‌के साथ लक्ष्मीका विवाह कर दिया। लक्ष्मी भी संसारके पति भगवान् विष्णुको वरके रूपमें प्राप्तकर अपनेको कृतार्थ मानकर अपने कृपाकटाक्षसे सम्पूर्ण जगत्‌की आनन्दित करने लगी। उन्होंने प्रजाओंमें श्रेम और सुमिश्र होने लगा। सभी उपद्रव शान्त हो गये। ब्राह्मण हवन करने लगे, देवगण हविष्य-भोजन ग्रहण करने लगे और राजा प्रसन्नतापूर्वक घासें कर्णोंकी रक्षा करने लगे। इस प्रकार देवगणोंको अतीव आनन्दमें निमग्न देखकर विरोचन आदि दैत्यगण लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये तपस्या एवं यज्ञ-यागादि करने लगे। वे सब भी सदाचारी और धार्मिक हो गये। फिर दैत्योंकी पराक्रमसे सारा संसार अज्ञान हो गया।

कुछ समय बाद देवताओंको लक्ष्मीका मर हो गया, उन लोगोंके शोक, पवित्रता, सत्यता और सभी उत्तम आचार नष्ट होने लगे। देवताओंको सत्य आदि शील तथा पवित्रतासे रहित देखकर लक्ष्मी दैत्योंकी पास चली गयी और देवगण श्रीविहीन हो गये। दैत्योंको भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होते ही बहुत गर्व हो गया और दैत्यगण परस्पर कटने लगे कि 'मैं ही देवता हूँ, मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही ब्राह्मण हूँ, सम्पूर्ण जगत् मेरा ही स्वरूप है, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र आदि सब मैं ही हूँ।' इस प्रकार अतिशय अहंकारयुक्त हो वे अनेक प्रकारका अनर्थ करने लगे। अहंकारमति दैत्योंकी भी यह दशा देखकर व्यकुल हो वह भृगुकन्या भगवती लक्ष्मी क्षीरसागरमें प्रविष्ट हो गयी। क्षीरसागरमें लक्ष्मीके प्रवेश करनेसे तीनों लोक श्रीविहीन होकर अत्यन्त निस्तोज-से हो गये।

**देवराज इन्द्रने अपने गुरु बृहस्पतिसे पूछा—**

महाराज ! कोई ऐसा व्रत बताये, जिसका अनुष्ठान करनेसे पुनः स्थिर लक्ष्मीको प्राप्ति हो जाय।

**देवगुरु बृहस्पति बोले—**देवेन्द्र ! मैं इस सम्बन्धमें आपको अत्यन्त गोपनीय श्रीपञ्चमी-व्रतका विधान बतलाता हूँ। इसके करनेसे आपका अभीष्ट सिद्ध होगा। ऐसा कहकर देवगुरु बृहस्पतिने देवराज इन्द्रको श्रीपञ्चमी-व्रतकी साक्षोपाङ्ग विधि बतलायी। तदनुसार इन्द्रने उसका विधिपूर्व आचरण किया। इन्द्रको व्रत करते देखकर विष्णु आदि सभी देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, विद्याधर, नाग, ब्राह्मण, ऋषिगण तथा राजागण भी यह व्रत करने लगे। कुछ कालके अनन्तर व्रत समाप्तकर उत्तम बल और तेज पाकर सबने विचार किया कि समुद्रको मयकर लक्ष्मी और अमृतको ग्रहण करना चाहिये। यह विचारकर देवता और असुर मन्दराक्षसोंको मयानी और ताम्रकिनागोंको रस्सी बनाकर समुद्र-मन्थन करने लगे। फलस्वरूप सर्वप्रथम शीतल किरणोंवाले अति उष्णकल चन्द्रमा प्रकट हुए, फिर देवी लक्ष्मीका प्रादुर्भाव हुआ। लक्ष्मीके कृपाकटाक्षोंकी पाकर सभी देवता और दैत्य परम आनन्दित हो गये। भगवती लक्ष्मीने भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलका आश्रय ग्रहण किया, भगवान् विष्णुने इस व्रतको किया था, फलस्वरूप लक्ष्मीने इनका वरण किया। इन्द्रने राजस-भावसे व्रत किया था, इसलिये उन्होंने विभुधनकर राज्य प्राप्त किया। दैत्योंने ताम्रस-भावसे व्रत किया था, इसलिये ऐश्वर्य पाकर भी वे ऐश्वर्यहीन हो गये। महाराज ! इस प्रकार इस व्रतके प्रभावसे श्रीविहीन सम्पूर्ण जगत् फिरसे औपुक्त हो गया।

**महाराज युधिष्ठिरने पूछा—**यदूतम ! यह श्रीपञ्चमी-व्रत किस विधिसे किया जाता है, कबसे यह प्रारम्भ होता है और इसकी पारण कब होती है? आप इसे बतानेकी कृपा करें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! यह व्रत मार्ग-शीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको करना चाहिये। व्रतः

उठकर शौच, दन्तधावन आदिसे निवृत्त हो व्रतके नियमको धारण करे। फिर नदीमें अथवा घरपर ही स्नान करे। दो वस्त्र धारण कर देवता और पितरोंका पूजन-गर्जन कर घर आकर लक्ष्मीका पूजन करे। सुवर्ण, चाँदी, ताँबे, आरकूट, काष्ठकी अथवा चित्रपटमें भगवती लक्ष्मीकी ऐसी प्रतिमा बनाये जो कमलपर विराजमान हो, हाथमें कमल-पुष्प धारण किये हो, सभी आपूषणोंसे अलंकृत हो, उनके लोचन कमलके समान हों और जिन्हें चार श्वेत हाथों सुवर्णके कलशोंके जलसे स्नान करा रहे हों। इस प्रकारकी भगवती लक्ष्मीकी प्रतिमाकी निम्नलिखित नाम-मन्त्रोंसे अतुल्यतत्वेद्भुत पुण्योद्धार अङ्गपूजा करे—

‘ॐ वपलायै नमः, पादौ पूजयामि’, ‘ॐ ब्रह्मलायै नमः, जानुनी पूजयामि’, ‘ॐ कथलवासिन्यै नमः, कटि पूजयामि’, ‘ॐ खड्गलायै नमः, नाभिं पूजयामि’, ‘ॐ मन्धववासिन्यै नमः, सनौ पूजयामि’, ‘ॐ ललितायै नमः, भुजद्वये पूजयामि’, ‘ॐ उक्कण्ठितायै नमः, कण्ठ पूजयामि’, ‘ॐ माघन्यै नमः, मुखमण्डलं पूजयामि’ तथा ‘ॐ शिष्यै नमः, शिरः पूजयामि’ आदि नाममन्त्रोंसे पैरसे लेकर सिरतक पूजा करे। इस प्रकार प्रत्येक अङ्गोंकी भक्तिपूर्वक पूजाकर अङ्कुरित विविध धान्य और अनेक प्रकारके फल नैवेद्यमें देवीको निवेदित करे। तदनन्तर पुष्प और कुंकुम आदिसे सुवासिनी स्निग्धका पूजन कर उन्हें मधुर भोजन कराये और प्रणाम कर बिदा करे। एक प्रस्य (रोरघर) धावल और धूसरे धरा पात्र ब्राह्मणको देकर ‘श्रीशः सम्प्रीयताम्’ इस प्रकार कहकर प्रार्थना करे। इस तरह पूजन

कर मौन हो भोजन करे। प्रतिमास यह व्रत करे और श्री, लक्ष्मी, कमला, सम्पत्, रमा, नारायणी, पद्मा, धृति, स्थिति, पुष्टि, श्रद्धि तथा सिद्धि—इन बारह नामोंसे क्रमशः बारह महीनोंमें भगवती लक्ष्मीकी पूजा करे और पूजनके अन्तमें ‘प्रीयताम्’ ऐसा उच्चारण करे। बारहवें महीनेकी पञ्चमीको उससे उत्तम मण्डप बनाकर गन्ध-पुष्पादिसे उसे अलंकृतकर उसके माध्य शय्यापर उपकरणोंसहित भगवती लक्ष्मीकी मूर्ति स्थापित करे। आठ मोती, नेत्रपट्ट, सप्त-धान्य, खड़ाई, जुता, छाता, अनेक प्रकारके पात्र और आसन वहाँ उपस्थापित करे। तदनन्तर लक्ष्मीका पूजन कर वेदवेत्ता और सदाचारसम्पन्न ब्राह्मणको सवत्स गौसहित यह सब सामग्री प्रदान करे। यद्यार्ति ब्राह्मणको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। अन्तमें भगवती लक्ष्मीसे श्रद्धिकी कामनासे इस प्रकार प्रार्थना करे—

क्षीराब्धिमघनोद्भूते विष्णोर्वक्षःस्थलालये ।

सर्वकामप्रदे देवि श्रद्धिं यच्छ नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व ३७। ५४)

‘हे देवि। आप क्षीरसागरके मन्थनसे उद्भूत हैं, भगवान् विष्णुका वक्षःस्थल आपका अधिष्ठान है, आप सभी कामनाओंको प्रदान करनेवाली हैं, अतः मुझे भी आप श्रद्धि प्रदान करें, आपके नमस्कार हैं।’

जो इस विधिसे श्रीपञ्चमीका व्रत करता है, वह अपने इक्कीस कुलोंके सब लक्ष्मीलोकमें निवास करता है। जो सौभाग्यवती स्त्री इस व्रतको करती है, वह सौभाग्य, रूप, संतान और धनसे सम्पन्न हो जाती है तथा पतिको अत्यन्त प्रिय होती है। (अध्याय ३७)

### विशोक-घड़ी-व्रत

राजा युधिष्ठिरने कहा—ज-वर्द्धन ! आपके औमुखसे पञ्चमी-व्रतोंका विधान सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। अब आप घड़ीव्रतोंका विधान बतलायें। मैंने सुना है कि घड़ीको भगवान् सूर्यकी पूजा करनेसे सभी व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं और सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! सर्वप्रथम मैं विशोक-घड़ी-व्रतका विधान बतलाता हूँ। इस तिथिको उपवास करनेसे मनुष्यको कभी शोक नहीं होता। माघ मासके

शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको प्रभातकालमें उठकर दन्तधावन करे, कृष्ण तिलोंसे स्नान आदिद्वारा पवित्र हो कृशर- (खिचड़ी) का भोजन करे, रात्रिमें ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे। दूसरे दिन घड़ीको प्रभातकालमें उठकर स्नान आदिसे पवित्र हो जाय। सुवर्णका एक कमल बनाये, उसे सूर्यनारायणका स्वरूप मानकर रक्तचन्दन, रक्तकरवीर-पुष्प और रक्तवर्णिके दो वस्त्र, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनका पूजन करे। तदनन्तर हाथ जोड़कर इस मन्त्रसे प्रार्थना करे—

यथा विशोकं भवनं त्वयैवादित्य सर्वदा ।

तथा विशोकता मे स्वात् त्वद्धक्तिर्जन्मजन्मनि ॥

(उत्तरपर्व ३८।७)

‘हे आदित्यदेव ! जैसे आपने अपना स्थान शोकसे रहित बनाया है, वैसे ही मेरा भी भवन सदा शोकरहित हो तथा जन्म-जन्ममें मेरी आपमें भक्ति बनी रहे ।’

इस विधिसे पूजनकर षष्ठीको ब्राह्मण-भोजन कराये । गोमूत्रका प्राशन करे । फिर गुड़, अन्न, उत्तम दो वस्त्र और सुवर्ण ब्राह्मणको प्रदान करे । सप्तमीको घौन होकर तेल और लवणरहित भोजन करे और पुराण भी श्रवण करे । इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त दोनों षष्ठीकी षष्ठीका व्रतकर अन्तमें शुक्ल

सप्तमीको सुवर्ण-कमलयुक्त कलश, श्रेष्ठ सामग्रियोंसे युक्त उत्तम राख्य और पर्यासिनी कपिला रौ ब्राह्मणको दान करे । इस विधिसे कृपणता छोड़कर जो इस व्रतको करता है, वह करोड़ों वर्षोंसे भी अधिक समयतक शोक, रोग, दुर्गति आदिसे मुक्त रहता है । यदि किसी कामनासे यह व्रत किया जाय तो उसको वह कामना अवश्य पूर्ण होती है और यदि निष्काम होकर व्रत करे तो उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है । जो इस शोक-विनाशिनी विशोक-षष्ठीका एक बार भी उपवास करता है, वह कभी दुःखों नहीं होता और इन्द्रलोकमें निवास करता है ।

(अध्याय ३८)

### कमलषष्ठी-(फलषष्ठी-) व्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! अब मैं कमल-षष्ठी नामक व्रतको बतलाता हूँ, जिसमें उपवास करनेसे व्यक्त पापमुक्त होकर स्वर्गको प्राप्त करता है । मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठीकी नियतव्रत होकर षष्ठीको उपवास करे । कृष्ण सप्तमीको सुवर्णकमल, सुवर्णफल तथा शर्कराके साथ कलश ब्राह्मणको प्रदान करे । इसी विधिसे एक वर्षपर्यन्त दोनों षष्ठीमें प्रत्येक षष्ठीको उपवास करे । धनु, अर्क, रवि, ज्ञान, सूर्य, शुक्र, हरि, शिव, श्रीमान्, विभावसु, तारा तथा वरुण—इन बारह नामोंसे क्रमशः बारह महीनोंमें पूजन करे और ‘धनुर्मे प्रीयताम्’, ‘अर्कं मे प्रीयताम्’ इस प्रकार प्रतिमास सप्तम्योको दान और षष्ठी-पूजन आदिके समय उच्चारण करे । व्रतके अन्तमें ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजाकर वस्त्र-आभूषण, शर्करापूर्ण कलश और सुवर्ण-कमल तथा स्वर्णफल ब्राह्मणको देकर

निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर व्रत पूर्ण करे—

यथा फलकरो मासस्त्वद्भक्तानां सदा रवे ।

तद्यानन्तफलदायाधिरसु जन्मनि जन्मनि ॥

(उत्तरपर्व ३९।११)

‘हे सूर्यदेव ! जिस प्रकार आपके भक्तोंके लिये यह मास-व्रत फलदायी होता है, उसी प्रकार मुझे भी जन्म-जन्ममें अनन्त फलोंकी प्राप्ति होती रहे ।’

इस अनन्त फल देनेवाली फल-षष्ठी-व्रतको जो करता है, वह सुरणानादि सभी पापोंसे मुक्त हो सूर्यलोकमें सम्मानित होता है और अपने आगे-पीछेकी इच्छास पीढ़ियोंका उद्धार करता है । जो इसका माहात्म्य श्रवण करता है, वह भी कल्याणका भागी होता है ।

(अध्याय ३९)

### मन्दारषष्ठी-व्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! अब मैं सभी पापोंको दूर करनेवाले तथा समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले मन्दारषष्ठी नामक व्रतका विधान बतलाता हूँ । व्रती माघ मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठीको स्वल्प भोजन कर नियमपूर्वक रहे और षष्ठीको उपवास करे । ब्राह्मणोंका पूजन

करे तथा मन्दारका पुष्प भक्षण कर रश्मिमें शयन करे । षष्ठीको ज्ञातः उठकर स्नानादि करे तथा ताम्रपात्रमें काले तिलोंसे एक अष्टदल कमल बनाये । उसपर हाथमें कमल लिये भगवान् सूर्यकी सुवर्णकी प्रतिमा स्थापित करे । आठ सोनेके अर्कपुष्पोंसे तथा गन्धादि उपचारोंसे अष्टदल-कमलके दलोंमें



पूर्वादि क्रमसे भगवान् सूर्यके नाम-मन्त्रोद्घारा इस प्रकार पूजा करे—‘ॐ भास्कराय नमः’ से पूर्व दिशामें, ‘ॐ सूर्याय नमः’ से अश्विक्वणमें, ‘ॐ अर्काय नमः’ से दक्षिणमें, ‘ॐ अर्यमणे नमः’ से नैऋत्यमें, ‘ॐ वसुधात्रे नमः’ से पश्चिममें, ‘ॐ चण्डभानवे नमः’ से वायव्यमें, ‘ॐ पूषे नमः’ से उत्तरमें, ‘ॐ आनन्दाय नमः’ से ईशानक्वणमें तथा उस कमलकी मध्यवर्ती कर्णिकामें ‘ॐ सर्वात्मने पुत्राय नमः’ यह कहकर शुक्ल वस्त्र, नैवेद्य तथा माल्य एवं फलजड़ि सभी उपचारोंसे भगवान् सूर्यका पूजन करे। सप्तमीको पूर्वाभिमुख मौन होकर तेल तथा लवण भक्षण करे। इस प्रकार प्रत्येक मासकी शुक्ल-पक्षीको व्रतकर सप्तमीको पारण करे। वर्षके अन्तमें वही मूर्ति कलशके ऊपर स्थापित कर यथाशक्ति वस्त्र, गौ,

सुवर्ण आदि ब्राह्मणको प्रदान करे और दान करते समय यह मन्त्र पढ़े—

नमो मन्दारनाथाय मन्दारध्वनाय च ।

त्वं च वै तारयस्वास्मानस्मात् संसारकर्मणात् ॥

(उत्तरपर्व ४ ११)

हे मन्दारध्वन, मन्दारनाथ भगवान् सूर्य ! आप हमलोगोंका इस संसाररूपी पङ्कसे उद्धार कर दें, आपको नमस्कार है ।

इस विधिसे जो मन्दार-पक्षीका व्रत करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर एक कल्पतक सुखपूर्वक स्वर्गमें निवास करता है और जो इस विधानको पढ़ता है अथवा सुनता है, वह भी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है । (अध्याय ४०)



### ललितापद्मी-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! भद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी पक्षीको यह व्रत होता है। उस दिन उत्तम रूप, सौभाग्य और संतानकी इच्छावाली स्त्रीको चाहिये कि वह नदीमें स्नान करे और एक नये बरतके पात्रमें कालू लेकर घर आवे। फिर वस्त्रका मण्डप बनाकर उसमें दीप प्रज्वालित करे। मण्डपमें वह बरतका बालुकामय पात्र स्थापित कर उसमें बालुकामयी, तपोवन-निवासिनी भगवती ललितागौरीका ध्यानकर पूजन करे और उस दिन उपवास रहे, तदनन्तर चम्पक, करवीर, अशोक, मालती, नीलैतल, केतकी तथा तगर-पुष्प—इनमेंसे प्रत्येककी १०८ या २८ पुष्पाञ्जलि अथवा कि साय निम्नलिखित मन्त्रसे दे—

ललिते ललिते देवि सौख्यसौभाग्यदायिनि ।

या सौभाग्यसमुत्पन्ना तस्यै देव्यै नमो नमः ॥

(उत्तरपर्व ४१।८)

इस प्रकारसे पूजन करनेके पश्चात् तरह-तरहके सोहल,

### कुमारपद्मी-व्रतकी कथा

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—भरतस्तम महाराज कल्याणकारिणी है। उसी दिन कार्तिकेयने तारकासुरका वध युधिष्ठिर ! मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी पक्षी तिथि समस्त किया था, इसलिए यह पक्षी तिथि स्वामिकार्तिकेयकी बहुत प्रिय है। इस दिन किया हुआ स्नान-दान आदि कर्म अक्षय

सोदक आदि पक्वान्न, कुम्भाण्ड, ककड़ी, शिल्व, कोला, बैंगन, करंज आदि फल भगवती ललिताको निवेदित करे और धूप, दीप, वस्त्राभूषण आदि भी समर्पित करे। इस विधिसे पूजनकर रात्रिको जागरण करे तथा गीत-नृत्यादि उत्सव करे। दुसरे दिन प्रातः गीत-वाद्य-सहित मूर्तिको नदीके समीप ले जाय। वहाँ पूजनकर पूजन-सामग्री ब्राह्मणको निवेदित कर दे और भगवती ललिताकी बालुकामयी मूर्तिको नदीमें विसर्जित कर दे। घर आकर हवन करे और देवता, पितर, मनुष्य तथा मुन्हासिनी किम्योंका पूजन करे। पंद्रह कुमारी कन्याओंकी और उतने ही ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके स्वादिष्ट भोजनोपेत संतुष्ट कर दक्षिण प्रदान करे और ‘ललिता प्रीतिवृत्ता अस्तु’ यह कहकर उन्हें बिदा करे। जो पुरुष अथवा स्त्री इस ललितापद्मी-व्रतको करते हैं, उन्हे संसारमें कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं रहता। व्रत करनेवाली स्त्री बहुत कालपर्यन्त सुख-सौभाग्यसे सम्पन्न रहकर अन्तमें गौरीलोकमें निवास करती है। (अध्याय ४१)

१-मत्स्यपुराणके अध्याय ७५ में मन्दारमन्त्री नामसे इसी व्रतका वर्णन हुआ है।

सं० भ० पु० अं० ११—

होता है। दक्षिण देशमें स्थित कार्तिकेयका जो इस तिथिमें दर्शन करता है, वह निःसंदेह ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसलिये इस तिथिमें कुमारस्वामीकी सोने, चाँदी अथवा मिट्टीकी मूर्ति बनवाकर पूजा करनी चाहिये। अपराङ्गमें स्नान तथा आचमनकर, वस्त्रासन लगाकर बैठ जाय और स्वामी कुमारका एकाग्रचित्तसे ध्यान करे। इस दिन उपवासपूर्वक निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए इनके मस्तकपर कालशसे अभिषेक करे—

वन्द्यमण्डलभूतानां भवभूतिपतिप्रिता ।

गङ्गाकुमार धारये पतिता तव मस्तके ॥

(उत्तरार्ध ४२।३)

इस प्रकार अभिषेक कर भगवान् सूर्यका पूजन करे, तदनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि उपचारोंद्वारा कृत्तिकास्तुत्र कार्तिकेयको निम्न मन्त्रसे पूजा करे—

देव सेनापते स्कन्द कार्तिकेय भवोद्भव ।

कुमार गुह्य गङ्गोदय शक्तिवहात नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरार्ध ४२।४)

दक्षिण-देशोत्पन्न अन्न, फल और मलय स्कन्दन भी चढ़ाये। इसके बाद स्वामिकार्तिकेयके परमप्रिय छाग, कुङ्कुट, कलत्रयुक्त मधूर तथा उनकी माता भगवती पार्वती— इनका प्रत्यक्ष पूजन करे अथवा इनकी सुवर्णकी प्रतिमा बनाकर पूजन करे। पूजनके अनन्तर पूर्वोक्त देवसेनापति तथा स्कन्द आदि नाम-मन्त्रोंसे आज्ञायुक्त तिलोंसे हवन करे, अनन्तर फल भक्षण कर भूमिपर कुशाकी शय्यापर शयन करे। क्रमशः बारह महीनोंमें नारियल, माहुलुंग (बिजौरा नींबू), नारंगी, पनस (कटहल), जम्बीर (एक प्रकारका नींबू), दाड़िम, द्राक्षा, आम, बिल्व, आमलक, ककड़ी तथा केला—इन फलोंका

भक्षण करे। ये फल उपलब्ध न हों तो उस कालमें उपलब्ध फलोंका सेवन करे। प्रातःकाल सोनेके बने छाग अथवा कुङ्कुटको 'सेनानी प्रीयताम्' ऐसा कहकर ब्राह्मणको दे। बारह महीनोंमें क्रमसे सेनानी, सम्भूत, त्रौचारि, षण्मुख, गुह्य, गङ्गोदय, कार्तिकेय, स्वामी, बालब्रह्मप्रणी, छागप्रिय, शक्तिधर तथा इन्द्र—इन नामोंसे कार्तिकेयका पूजन करे और नामोंके अन्त्यमें 'प्रीयताम्' यह पद योजित करे। यथा—'सेनानी प्रीयताम्' इत्यादि। इसके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। वर्ष समाप्त होनेपर कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठीको वस्त्र, आभूषण आदिसे कार्तिकेयका पूजन एवं हवन करे और सब सामग्री ब्राह्मणको निवेदित कर दे।

इस तिथिमें जो पुरुष अथवा स्त्री इस व्रतको करते हैं, वे उत्तम फलोंको प्राप्त कर इन्द्रलोकमें निवास करते हैं, अतः राजन्! शंकरात्मज कार्तिकेयका सदा प्रयागपूर्वक पूजन करना चाहिये। राजाओंके लिये तो कार्तिकेयकी पूजाका विशेष महत्त्व है। जो राजा स्वामी कुमारका इस प्रकार पूजनकर मुद्दके लिये जाता है, वह अवश्य ही विजय प्राप्त करता है। विधिपूर्वक पूजा करनेपर भगवान् कार्तिकेय पूर्ण प्रसन्न हो जाते हैं। जो षष्ठीको नतव्रत करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर कार्तिकेयके लोकमें निवास करता है। दक्षिण दिशामें जाकर जो मत्तपूर्वक कार्तिकेयका दर्शन और पूजन करता है वह शिवलोकको प्राप्त करता है। जो सदा शरवणोद्भव आदिदेव कार्तिकेयकी अराधना करता है, वह बहुत कालतक सर्वज्ञ सुख भोगकर पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करता तथा चक्रवर्ती राजाका सेनापति होता है।

(अध्याय ४२)

### विजयासप्तमी-व्रत

युधिष्ठिरने पूछा—देव! विजय-सप्तमी-व्रतमें किसकी पूजा की जाती है, उसका क्या विधान है और क्या फल है? इसे आप बतलानेकी कृपा करे।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिमें यदि आदित्यवार हो तो उसे विजया सप्तमी कहते हैं। वह सभी पातकोंका विनाश करनेवाली है। उस दिन

किया हुआ स्नान, दान, जप, होम तथा उपवास आदि कर्म अनन्त फलदायक होता है। जो उस दिन फल, पुष्प आदि लेकर भगवान् सूर्यकी प्रदक्षिणा करता है, वह सर्वगुणसम्पन्न उत्तम पुत्रको प्राप्त करता है। पहली प्रदक्षिणा नारियल-फलसे, दूसरी रक्तनागरसे, तीसरी बिजौरा नींबूसे, चौथी कटलीफलसे, पाँचवीं श्रेष्ठ कृष्णान्दसे, छठी पके हुए

तैदूके फलोंसे और सातवीं वृत्तक-फलोंसे करे अथवा अष्टोत्तरशत प्रदक्षिणा करे। मोती, पद्मराग, नीलम, पद्म, गोमेद, हीरा और वैदूर्य आदिसे भी प्रदक्षिणा करे तथा अखरोट, बेर, बिल्व, करौटा, आष, आषाढक (आमड़ा), जामुन आदि जो भी उस कालमें फल-फूल मिले उससे प्रदक्षिणा करे। प्रदक्षिणा करते समय बीचमें बैठे नहीं, न किसीको स्पर्श करे और न किसीसे बात करे। एकाग्रचित्तसे प्रदक्षिणा करनेसे सूर्यभगवान् प्रसन्न होते हैं। गौके भूतसे वसोर्धारा भी दे। किञ्चिणीयुक्त ध्वजा तथा श्वेत स्त्रव चढ़ाये और फिर कुंकुम, गन्ध, पुष्प, धूप तथा नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन कर इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यसे क्षमा-प्रार्थना करे—

भानो भास्कर मार्तण्ड चण्डरश्मि दिवाकर ।

आरोग्यमायुर्विजयं पुत्रं देहि नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व ४३।१४)

इस व्रतमें उपवास, नक्तव्रत अथवा अमाचित-व्रत करे। इस विजय-सप्तमीका नियमपूर्वक व्रत करनेसे रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है, दमिड लक्ष्मी प्राप्त करता है, पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है तथा विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है। शुक्ल पक्षकी आदित्यवारसुक्त सात सप्तमिर्धर्मि नक्तव्रत कर मृगका

भोजन करना चाहिये। भूमिपर पत्ताशके पत्तोंपर शयन करना चाहिये। इस प्रकार व्रतकी समाप्तिपर सूर्यभगवान्का पूजनकर षडक्षर-मन्त्र (सखोल्लाख्य मन्त्रः) से अष्टोत्तरशत हवन करे। सुवर्णपात्रमें सूर्यप्रतिमा स्थापित कर रक्तचक्र, गौ और दक्षिण इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए ब्राह्मणको प्रदान करे—

ॐ भास्कराय सुदेवाय नमस्तुभ्यं यशस्कर ॥

यमाद्य समीहितार्थप्रदो भव नमो नमः ।

(उत्तरपर्व ४३।२३-२४)

तदनन्तर सप्या-दान, श्राद्ध, पितृतर्पण आदि कर्म करे। इस व्रतके करनेसे यात्रियोंको यात्रा प्रशस्त हो जाती है, विजयकी इच्छावाले राजाको युद्धमें विजय अवश्य प्राप्त होती है, इत्यादि लोकमें यह विजयसप्तमीके नामसे विश्रुत है। इस व्रतको करनेवाला पुरुष संसारके समस्त सुखोंको भोगकर सूर्यलोकमें निवास करता है और फिर पृथ्वीपर जन्म ग्रहणकर राज्य, भोगी, विद्वान्, दीर्घायु, वीरग, सुखी और हाथी, घोड़े तथा राजाके सम्पन्न बड़ा प्रतापी राजा होता है। यदि स्त्री इस व्रतको करे तो वह पुण्यभागिनी होकर उत्तम फलोंको प्राप्त करती है। राजन्। इसमें आपको किंचित् भी संदेह नहीं करना चाहिये। (अध्याय ४३)

## आदित्य-मण्डलदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं समस्त अशुभोंके निवारण करनेवाले श्रेयस्कर आदित्य-मण्डलके दानका वर्णन करता हूँ। जो अथवा गोधूमके चूर्णमें गुड़ मिलाकर उसे गौके घृतमें भलीभाँति पकड़कर सूर्यमण्डलके समान एक अति सुन्दर अपूप बनाये और फिर सूर्यभगवान्का पूजनकर उनके आगे रक्तचन्दनका मण्डप अंकितकर उसके ऊपर वह सूर्यमण्डलात्मक मण्डक (एक प्रकारका पिण्ड) रखे। ब्राह्मणको सादर आमन्त्रित कर रक्त चक्र तथा दक्षिणासहित वह मण्डक इस मन्त्रको पढ़ते हुए ब्राह्मणको प्रदान करे—

आदित्यतेजसोत्पन्नं राजन् विधिनिर्मितम् ।

श्रेयसे यम विप्र त्वं प्रतिगृह्णेतपुतमम् ॥

(उत्तरपर्व ४४।५)

ब्राह्मण भी उसे ग्रहणकर निम्नलिखित मन्त्र बोले—

कामदं धनदं धर्म्यं पुष्टं सुखदं तव ।

आदित्यप्रीत्ये दत्तं प्रतिगृह्णामि मण्डलम् ॥

(उत्तरपर्व ४४।६)

इस प्रकार विजय-सप्तमीको मण्डकका दान करे और सामर्थ्य होनेपर सूर्यभगवान्की प्रीतिके लिये शुद्धभावसे नित्य ही मण्डक प्रदान करे। इस विधिसे जो मण्डकका दान करता है, वह भगवान् सूर्यके अनुग्रहसे राजा होता है और स्वर्गलोकमें भगवान् सूर्यकी तरह सुशोभित होता है।

(अध्याय ४४)

### वर्ज्यसप्तमी-व्रत

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! धन, सौख्य तथा समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको प्रदान करनेवाली किसी सप्तमीव्रतका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! उत्तराषाढके व्यतीत हो जानेपर शुक्ल पक्षमें पुरुषवाची नक्षत्रमें अष्टमिपक्षको सप्तमी-तिथि-व्रत ग्रहण करें। धान, तिल, जौ, उड़द, मूँग, गेहूँ, मधु, निम्ब भोजन, मैथुन, कांस्यपात्रमें भोजन, तैलभण्ड, भोजन

और शिलापर पीसी हुई वस्तु—इन सबका षष्ठी तिथिको प्रयोग न करें। इन पदार्थोंका षष्ठीके दिन परित्याग कर केवल चनाका भोग करें और देवता, मुनि तथा पितर—इन सबका तर्पणकर भगवान् सूर्यका पूजन करें। घृतयुक्त तिल और जौका हवन कर भगवान् सूर्यका ध्यान करता हुआ भूमिपर शयन करें। इस विधिसे जो एक वर्षतक व्रत करता है, वह अपने सभी मनोवाञ्छित फलको प्राप्ति कर लेता है। (अध्याय ४५)

### कुक्कुट-मर्कटी-व्रतकथा (मुक्ताभरण सप्तमीव्रत-कथा)

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज युधिष्ठिर ! एक बार महर्षि लोमश मधुर आवाज और वहाँ से माता-पिता—देवकी-वसुदेवने उनकी बड़ी ब्रह्मासे आवभगत की। फिर वे प्रेमसे बैठकर अनेक प्रश्नकी कथाएँ कहने लगे। उन्होंने उसी प्रसंगमें मेरी मातासे कहा—‘देवकी ! कैसेने तुम्हारे बहुतसे पुत्रोंको मार डाला है, अतः तुम मृतकाय एवं दुःखभागिनी बन गयी हो। इसी प्रकारसे प्राचीन कालमें चन्द्रमुखी नामकी एक मूलशाला रानी भी मृतकाय एवं दुःखी हो गयी थी। परंतु उसने एक ऐसे व्रतका अनुष्ठान किया, जिसके प्रभावसे वह जीवत्युक्त हो गयी। इसलिये देवकी ! तुम भी उस व्रतके अनुष्ठानके प्रभावसे वैसी हो जाओगी, इसमें संशय नहीं।’

माता देवकीने उनसे पूछा—महाराज ! वह चन्द्रमुखी रानी कौन थी ? उसने सौभाग्य और अशोभकी वृद्धि करनेवाला कौन-सा व्रत किया था ? जिसके कारण उसकी संतान जीवित हो गयी। आप मुझे भी वह व्रत बतलानेकी कृपा करें।

लोमशमुनि बोले—प्राचीन कालमें अयोध्यामें नहुष नामके एक प्रसिद्ध राजा थे, उनकी महारानीका नाम चन्द्रमुखी था। राजाके पुरोहितकी पत्नी मानमानिकासे रानी चन्द्रमुखीकी बहुत प्रीति थी। एक दिन वे दोनों सखियाँ स्नान करनेके लिये सरयू-तटपर गयीं। उस समय नगरी और भी बहुत-सी स्त्रियाँ वहाँ स्नान करने आयी हुई थीं। उन सब स्त्रियोंने स्नानकर एक मण्डल बनाया और उसमें शिव-पार्वतीकी प्रतिमा चित्रितकर गन्ध, पुष्प, अक्षत आदिसे

प्रतिमूर्तक यथाविधि उनकी पूजा की। अनन्तर उन्हें प्रणामकर जब वे सभी अपने घर जानेकी उद्यत हुईं, तब महारानी चन्द्रमुखी तथा पुरोहितकी स्त्री मानमानिकासे उनसे पूछा—‘देवियो ! तुमलोगोंने यह किसकी और किस उद्देश्यसे पूजा की है ?’ इसपर वे कहने लगीं—‘हमलोगोंने भगवान् शिव एवं भगवती पार्वतीकी पूजा की है और उनके प्रति आत्म-समर्पण कर वह सुवर्णसूत्रमय धागा भी हाथमें धारण किया है। हाथ सब जगत्का प्राण रहेंगे, ताबतक इसे धारण किये रहेंगी और शिव-पार्वतीका पूजन भी किया करेंगी।’ यह सुनकर उन दोनोंने भी यह व्रत करनेका निश्चय किया और वे अपने घर आ गयीं तथा नियमसे व्रत करने लगीं। परंतु कुछ समय बाद रानी चन्द्रमुखी प्रसूतवश व्रत करना भूल गयीं और सूत्र भी न बाँध सकीं। इस कारण मरनेके अनन्तर वह यानी हुई, पुरोहितकी स्त्रीका भी व्रत-भङ्ग हो गया, इसलिये मरकर वह कुक्कुटी हुई। उन योनियोंमें भी उनकी मित्रता और पूर्वजन्मकी स्मृतियाँ बनी रहीं।

कुछ कालके अनन्तर दोनोंकी मृत्यु हो गयी। फिर रानी चन्द्रमुखी तो मालव देशके पृथ्वीनाथ नामक राजाकी मुख्य रानी और पुरोहित अग्निमिलकी स्त्री मानमानिका उसी राजाके पुरोहितकी पत्नी हुई। रानीका नाम ईश्वरी और पुरोहितकी स्त्रीका नाम भूषणा था। भूषणाको अपने पूर्वजन्मके ज्ञान था। उसके आठ उत्तम पुत्र हुए। परंतु रानी ईश्वरीको बहुत समयके बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह रोगग्रस्त रहता था। इस कारण थोड़े ही समय बाद (नवें वर्ष) उसकी मृत्यु हो गयी। तब दुःखी हो भूषणा अपनी सखी रानी ईश्वरीको आश्वासन देने



उनके पास आयी। भूषणाके बहुतसे पुत्रोंको देखकर ईश्वरीके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी, फलस्वरूप रानी ईश्वरीने धीरे-धीरे भूषणाके सभी पुत्र मरवा डाले, परंतु भगवान् शंकरके अनुग्रहसे वे मरकर भी पुनः जीवित हो उठे। तब ईश्वरीने भूषणाको अपने यहाँ बुलवाया और उससे पूछा—“सखि ! तुमने ऐसा कौन-सा पुण्यकर्म किया है, जिसके कारण तुम्हारे मरे हुए भी पुत्र जीवित हो जाते हैं और तुम्हारे बहुतसे धिरेजीवी पुत्र उत्पन्न हुए हैं, मुत्ता आदि आपूषणोंसे रक्षित होनेपर भी कैसे तुम सदा सुशोभित रहती हो ?”

**भूषणाने कहा—**सखि ! मुत्ताभरण सप्तमी-व्रतका विलक्षण माहात्म्य है। भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको किये जानेवाले इस व्रतमें खनकर एक मण्डल बनाकर उसमें शिव-पार्वतीका पूजन करे और शिवको आत्म-निवेदित सूत्र (दोरक) को हाथमें धारण कर अपना चाँदी, सोनेकी अँगूठी बनाकर अँगुलीमें पहने। उस दिन उपवास करे। बादमें व्रतका उद्घाटन करे। उद्घाटनके दिन शिव-पार्वतीका मण्डलमें पूजन कर वह अँगूठी ताँबेके पात्रमें रखकर ब्राह्मणको दे दे तथा यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी कराये। इस व्रतके करनेसे सभी पदार्थ प्राप्त होते हैं।

सखी ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिसे तुमने और मैंने साथ ही इस व्रतका नियम ग्रहण किया था,

परंतु प्रमादवश तुमने इसे छोड़ दिया, इसीसे तुम्हारा पुत्र नष्ट हो गया और राज्य पाकर भी तुम दुःखी ही रहती हो। मैंने व्रतका भक्तिपूर्वक पालन किया, इससे मैं सब प्रकारसे सुखी हूँ, परंतु मेरा व्रत अन्तमें भङ्ग हो गया था, इसलिए एक जन्ममें मुझे कुकुटी बनना पड़ा। सखि ! मैं तुम्हें अपने द्वारा किये गये व्रतका आधा पुण्यफल देती हूँ, इससे तुम्हारे सभी दुःख दूर हो जायेंगे। इतना कहकर भूषणाने अपने व्रतका आधा पुण्यफल ईश्वरीको दे दिया। उसके प्रभावसे ईश्वरीके दीर्घ आयुवाले बहुत पुत्र उत्पन्न हुए और उसे सब प्रकारका सुख प्राप्त हुआ तथा अन्तमें मोक्ष भी प्राप्त हुआ।

**लोमश मुनि बोले—**देवकी ! तुम भी इस व्रतको करो, इससे तुम्हारी संतान स्थिर हो जायगी और तुम्हारा पुत्र लोभे लोकोका स्वामी होगा। यह कहकर लोमश मुनि अपने अश्रमको चले गये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! (मेरी माताको इसी व्रतके प्रभावसे मैं-जैसा पुत्र पैदा हुआ और मेरी इतनी आयु बढ़ी तथा कंस आदि दुष्टोंमें बच भी गया।) यह प्रसंगवशा मैंने इस व्रतका माहात्म्य बतलाया है, अन्य जो भी कोई स्त्री इस व्रतका आचरण करेगी, उसे कभी संतानका विषेण नहीं होगा और अन्तमें वह शिवलोकको प्राप्त करेगी<sup>१</sup>। (अध्याय ४६)

## उभय-सप्तमीव्रत

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! अब मैं सप्तमी-कल्पका वर्णन करता हूँ। आप इसे प्रीतिपूर्वक सुने। माघ महीनेकी शुक्ला सप्तमीको सेकल्पकर भगवान् सूर्यका वरुणदेव-नामसे पूजन करे। अष्टमीके दिन तिल, पिष्ट, गुड़ और ओदन ब्राह्मणोंको भोजन कराये, ऐसा करनेसे अग्निहोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। फाल्गुन शुक्ला सप्तमीको भगवान् सूर्यका पूजन करनेसे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है। चैत्र शुक्ला सप्तमीमें वेदांशु-नामसे सूर्य-पूजन करनेसे

उक्थ नामक यज्ञके समान पवित्र फल प्राप्त होता है। वैशाखके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको घाता नामसे पूजा करनेसे परशुमन्-यागके पुण्यके समान फल प्राप्त होता है। ज्येष्ठ मासकी सप्तमीको इन्द्र नामसे सूर्यकी पूजा करनेसे वाजपेय यज्ञका दुर्लभ फल प्राप्त होता है। आषाढ़ मासकी सप्तमीको द्यावाकरकी पूजा करनेसे बहुत सुवर्णकी दक्षिणावाले यज्ञका फल प्राप्त होता है। श्रावणकी सप्तमीको मातापि (लोलार्क) को पूजनेसे सौत्रमीणि यागका फल प्राप्त होता है। भाद्रपद

१-इसी व्रतका टीका इहाँ रत्नोदयमें हैमात्रि, चर्चविरह-कल्पद्रुम तथा व्रतारण्य आदि विग्रन्थ-ग्रन्थोंमें मुत्ताभरण-सप्तमीके नामसे उल्लेख किया गया है और उसके रत्नोदय भविष्यपुराणके नामसे सुविष्ट किये गये हैं, किन्तु अन्तर्गत् है कि यहाँ इसे कुकुट-मर्कटी-सप्तमी नहीं कहा गया है। सम्भव है कि भविष्यपुराणके अन्य किसी हस्तलिखित प्रतिलिपिमें पुष्पिण्यमें इसे मुत्ताभरण-सप्तमीके नामसे निर्दिष्ट किया गया हो। सेनियर विरियम नामक संस्कृत अंग्रेजीके विद्यवात फोंगमें कैलासनाम नामसे कुकुट-मर्कटी-सप्तमीके उक्थका ही उल्लेख किया गया है।

मासमें शुचि नामसे सूर्यका पूजन करे तो तुलापुरुष-दानका फल प्राप्त होता है। अधिन शुक्ल सप्तमीको संधितकी पूजा करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। कार्तिक शुक्ल सप्तमीमें सप्तवाहन दिनेशकी पूजा करनेसे पुण्डरीक-यागका फल प्राप्त होता है। मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीमें भानुकी पूजा करनेसे दस राजसूय-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। पौष मासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको भास्करकी पूजा करनेसे अनेक यज्ञोंका फल मिलता है। इसी प्रकार प्रत्येक मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको भी उन-उन नामोंसे पूजा करनी चाहिये।

महाराज ! इस प्रकार एक वर्षतक व्रत और पूजन कर उद्यापन करे। पवित्र भूमिपर एक हाथ, दो हाथ अथवा चार हाथ रक्तचन्दनका मण्डल बनाकर उसमें सिंदूर और गेरूका सूर्यमण्डल बनाये। कमल आदि रक्तपुष्पों, शल्लकी वृक्षके

गोद आदिसे निर्मित धूप तथा अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे भगवान् सूर्यका पूजन करे। अन्न तथा स्वर्णसे भरे कलशोंको उनके सामने स्थापित करे। फिर अग्निसंस्कार कर तिल, घृत, गुड़ और आककी समिधाओंसे 'आ कुण्ठेन' (यजु-३३।४३) इस मन्त्रसे एक हजार आहुति दे। अनन्तर द्वादश ब्राह्मणोंको रक्तवस्त्र, एक-एक सबत्सा गौ, छतरी, जूता, दक्षिणा और भोजन देकर क्षमा-प्रार्थना करे। बादमें स्वयं भी मौन होकर भोजन करे।

इस विधिसे जो सप्तमीका व्रत करता है, वह नीरेग, कुशल वक्ता, रूपवान् और दीर्घायु होता है। जो पुरुष सप्तमीके दिन उपवास कर भगवान् सूर्यका दर्शन करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है। यह उभय-सप्तमीव्रत सम्पूर्ण अशुभोंको दूर कर आरोग्य और सूर्यलोक प्राप्त करनेवाला है, ऐसा देवर्षि नारदका कहना है।

(अध्याय ४७)

### कल्याणसप्तमी-व्रतकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! यदि इस संसार-सागरसे पार उतारनेवाला तथा स्वर्ग, आरोग्य एवं सुखप्रदायक कोई व्रत हो तो उसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! जिस शुक्ल सप्तमीको आदित्यवार हो, उसे विजया-सप्तमी या कल्याण-सप्तमी कहते हैं। यह तिथि महारूपमयी है। इस दिन प्रातःकाल गोदुग्धयुक्त जलसे स्नानकर शुक्ल वस्त्र धारण कर अक्षतोंसे अति सुन्दर एक कर्णिकायुक्त अष्टदलकमल बनाये तथा पूर्वादि आठों दलोंमें क्रमशः पूर्व दिशामें 'ॐ तथनाथ नमः', अग्निकोणमें 'ॐ भार्गव्याय नमः', दक्षिण दिशामें 'ॐ विष्णवाय नमः', नैऋत्यकोणमें 'ॐ विद्याय नमः', पश्चिम दिशामें 'ॐ वसुधाय नमः', वायव्यकोणमें 'ॐ भास्कराय नमः', उत्तर दिशामें 'ॐ विकर्तनाथ नमः' तथा

ईशानकोणमें 'ॐ त्रय्ये नमः'—इस प्रकारसे नाम-मन्त्रोंद्वारा कर्णिकजलोंमें सभी उपचारोंसे पूजन करे। शुक्ल वस्त्र, फल, पक्ष्य पदार्थ, धूप, पुष्पमाला, गुड़ और लवणसे नमस्कारान्त इन नाम-मन्त्रोंसे वेदीके ऊपर पूजा करे। इसके बाद व्याहृति-होमकर यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराये। गुरुको सुवर्णसहित तिलपात्र-दान करे। दूसरे दिन प्रातः उठकर नित्य-क्रियासे निवृत्त हो ब्राह्मणोंके साथ धृत एवं पायससे बने पदार्थोंका भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक भगवान् सूर्यका पूजन एवं व्रतकर उद्यापन करे। जल, कलश, धृतपात्र, सुवर्ण, वस्त्र, आभूषण और सबत्सा गौ ब्राह्मणोंसे दे। इतनी शक्ति न हो तो गोदान करे। जो इस कल्याणसप्तमी-व्रतको करता है अथवा महाशय्यको पड़ता या सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है। (अध्याय ४८)

### शर्करासप्तमी-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—धर्मराज ! अब मैं सभी पापोंको नष्ट करनेवाले तथा आयु, आरोग्य और अनन्त ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले शर्करासप्तमी-व्रतका वर्णन करता हूँ।

वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको श्वेत तिलोंसे युक्त जलसे स्नानकर शुक्ल वस्त्रोंको धारण करे तथा वेदीके ऊपर कुंकुमसे कर्णिकसहित अष्टदल-कमलकी रचना करे और

'सवित्रे नमः' इस नाम-मन्त्रसे गन्ध-पुष्प आदिसे सूर्यकी पूजा करे। जलपूर्ण कलशके ऊपर शकरसे भरा पूर्णपात्र स्थापित करे। उस कलशको रक्त वस्त्र, श्वेत माला आदिसे अलंकृत करे, साथ ही वहाँ एक सुवर्ण-निर्मित अश्व भी स्थापित करे। तदनन्तर भगवान् सूर्यका आवाहनकर इस मन्त्रसे उनका पूजन करे—

विश्वेदेवमयो यस्माद् वेदवादीति पठधमे ॥

त्वमेवामृतसर्वस्वमतः पाहि सन्तानम् ।

(उत्तरपर्व ४९।५-६)

'हे भगवान् सूर्यदेव । यह सात विश्व एवं सभी देवता आपके ही स्वरूप हैं, इस कारण आपका ही वेदोक्त तत्त्व एवं अमृतसर्वस्व कहा गया है। हे सन्तानदेव । आप मेरी रक्षा करें।'।

तदनन्तर सौरसूक्तका<sup>१</sup> जप करे अथवा सौरपुराणका<sup>२</sup> श्रवण करे। अष्टमीको प्रातः उठकर स्नान आदि निर्यक्तिया सम्पन्नकर भगवान् सूर्यका पूजन करे। तत्पश्चात् सारी सामग्री

वेदवेत्त ब्राह्मणको देकर शर्करा, घृत और प्रायससे यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये। स्वयं भी मौन होकर तेल और लवणरहित भोजन करे। इस विधिसे प्रतिमास व्रत करके वर्ष पूरा होनेपर यथाशक्ति उत्तम शय्या, दूध देनेवाली गाय, शर्करापूर्ण घट, गृहस्थके उपकरणोंसे युक्त मकान तथा अपनी सामर्थ्यके अनुकूल एक हजार अथवा एक सौ अथवा पाँच निष्क सोनेका बना हुआ एक अश्व ब्राह्मणको दान करे। भगवान् सूर्यके मुखसे अमृतपान करते समय जो अमृत-बिन्दु गिरे, उनसे शालि (अगहनी धान), मूँग और इक्षु उत्पन्न हुए, शर्करा इक्षुका सार है, इसलिये हव्य-कव्यमें इस शर्कराका उपयोग करना भगवान् सूर्यको अति प्रिय है एवं यह शर्करा अमृतकल्प है। यह शर्करासप्तमी-व्रत अश्वमेध यज्ञका फल देनेवाला है। इस व्रतके करनेसे संतानकी वृद्धि होती है तथा समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं। इस व्रतका करनेवाला व्यक्ति एक कल्प स्वर्गमें निवासकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है<sup>३</sup>।

(अध्याय ४९)

### कमलसप्तमी-व्रत<sup>४</sup>

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं कमलसप्तमी-व्रतका वर्णन करता हूँ, जिसके नाम लेनेमन्त्रसे ही भगवान् सूर्य प्रसन्न हो जाते हैं। वसन्त ऋतुमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको प्रातःकाल पौर्णमासी मारसोयुक्त जलसे स्नान करे। एक पात्रमें तिल रखकर उसमें सुवर्णका कमल बनाकर स्थापित करे और उसमें भगवान् सूर्यकी भावना कर दो वस्त्रोंसे आवृत करे तथा गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे पूजाकर निम्नलिखित श्लोकसे प्रार्थना करे—

नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे ॥

दिवाकर नमस्तुभ्य प्रधाकर नमोऽस्तु ते ।

(उत्तरपर्व ५०।३-४)

तदनन्तर वस्त्र, माला तथा अलंकारोंसे सुसज्जित उस

उदककुम्भको प्रतिमासहित ब्राह्मणकी पूजाकर प्रदान कर दे। दूसरे दिन अष्टमीको यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराये और स्वयं भी तेल आदिसे रहित विरुद्ध भोजन करे। इसी प्रकार वर्षवर्षन्त प्रत्येक माराकी शुक्ल सप्तमीको भक्तिपूर्वक व्रत करे। व्रतकी समाप्तिपर वह भक्तिपूर्वक सुवर्ण-कमल, सुवर्णकी पर्यन्तिका गौ, अनेक पात्र, आसन, दीप तथा अन्य सामर्थ्य ब्राह्मणको दानमें दे। इस विधिसे जो कमल-सप्तमीका व्रत करता है, वह अनन्त लक्ष्मीको प्राप्त करता है और सूर्यलोकमें प्रसन्न होकर निवास करता है। कल्प-कल्प भर सात लोकमें निवास करता हुआ अन्तमें परमात्मिको प्राप्त करता है ।

(अध्याय ५०)

१-ऋग्वेदके प्रथम मण्डलका ५०वाँ सूक्त सूर्यसूक्त या सौरसूक्त कहलाता है।

२-सौरपुराणसे मुख्य उत्तरपर्व है भक्तिपुराण और मन्त्रपुराण। आजकल सौरपुराणके नामसे प्रचलित जो सूर्यपुराण है, वास्तवमें ये सौरपुराण ही सौर नहीं।

३-भक्तिपुराणका यह अध्याय भी मन्त्रपुराणके अ० ७३ में प्रायः इसी रूपमें प्राप्त होता है।

४-कई व्रत-निबन्धों एवं पुराणोंमें इसे ही कमल-व्रती भी कहा गया है।

## शुभसप्तमी-व्रतकी विधि

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**राजन् ! अब मैं एक दूसरी सप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, वह शुभसप्तमी कहलाती है। इसमें उपवासकर व्यक्ति रोग, शोक तथा दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। इस पुण्यप्रद व्रतमें अश्विन मासमें (शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिके) स्नान करके पवित्र हो ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराये। तदनन्तर गन्ध, माल्य तथा अनुलेपन<sup>१</sup>दिसे भक्तिपूर्वक कपिला गौका निम्नलिखित मन्त्रसे पूजन करे—

नमामि सूर्यसम्भूतामशेषभुवनलयाय ॥

त्वामहं शुभकल्याणशरीरा सर्वसिद्धये ।

(उपराख ५१।३-४)

'देवि ! आप सूर्यसे उत्पन्न हुई हैं और सम्पूर्ण लोकोकी आश्रयदात्री हैं, अतःका शरीर सुशोभन भङ्गलोसे युक्त है, आपके मैं समस्त सिद्धियोंकी प्राप्तिके निमित्त नमस्कार करता हूँ।'

तत्पश्चात् ताम्रपात्रमें एक सेर तिल रखकर उसपर वृषभकी स्वर्ण-प्रतिमा स्थापित करें और उसकी वस्त्र, माल्य, गुड़ आदिसे पूजा करें। सायंकालमें 'अर्चमा प्रीयताम्' यह

कहकर सब सामग्री भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको निवेदित करें। रात्रिमें पञ्चगव्यका प्रारान करें तथा भूमिपर ही मात्सर्यरहित होकर शयन करें। प्रातः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको पूजा आदिसे संतुष्ट करें। प्रत्येक मासमें दो वस्त्र, स्वर्णमय वृषभ और गौ आदिका पूजनपूर्वक दान करें। संवत्सरके अन्तमें ईश्व, गुड़, वस्त्र, पात्र, आसन, गद्दा, तकिया आदिसे समन्वित शय्या, एक सेर तिलसे पूर्ण ताम्र-पात्र, सौवर्ण वृषभ 'विश्वात्मा प्रीयताम्' कहकर वेदज्ञ ब्राह्मणको दान करें। इस विधिसे शुभसप्तमी-व्रत करनेवाला व्यक्ति जन्म-जन्ममें विमल कीर्ति एवं श्री प्राप्त करता है और देवलोकमें पृथित तथा प्रलयपर्यन्त गुणधिय होता है। एक कल्पके अनन्तर वह पृथ्वीपर जन्म लेकर सत्तों द्वीपोंका राजवर्ती तत्प्राद होता है। यह पुण्यदायिनी शुभ-सप्तमी सहस्रों ब्राह्मणों और सैकड़ों भूणहत्या आदि पापोंका नाश करती है। इस शुभ-सप्तमीके माहात्म्यको जो पढ़ता है अथवा श्रावण भी सुनता है, वह शरीर छूटनेपर विद्याधरोंका अधिपति होता है<sup>२</sup>।

(अध्याय ५१)

## सप्तमी-स्नपनव्रत और उसकी विधि

**महाराज युधिष्ठिरने पूछा—**प्रभो ! मनुष्यको अपने मनमें अद्भुत उद्वेग तथा खेद-खिन्नता और अपनी दरिद्रताकी निवृत्तिके लिये अद्भुत-शान्तिके निमित्त कौन-सा धर्म-कृत्य करना चाहिये ? मृतवत्सा स्त्रीको (जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हैं) अपनी संततिकी रक्षा और दुःखप्रादिकी शान्तिके लिये क्या करना चाहिये ?

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**राजन् ! पूर्वजन्मके पाप इस जन्ममें रोग, दुर्गति तथा इष्टजनकी मृत्युके रूपमें फलित होते हैं। उनके विनाशके लिये मैं कल्याणकारी सप्तमी-स्नपन नामक व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, यह लोकोकी पीड़का विनाश करनेवाला है। जहाँ दुधमुँहे शिशुओं, बुढ़ों, आतुरों और नवयुवकोंकी आकस्मिक मृत्यु होती देखी जाती है, वहाँ उसकी शान्तिके लिये इस 'मृतवत्साभिषेक' को बतला रहा हूँ।

यह समस्त अद्भुत उत्पाती, उद्वेगों और चित्त-भ्रमोंका भी विनाशक है।

बराह-कल्पके वैवस्वत मन्वन्तरमें सत्ययुगमें हैहयवंशीय क्षत्रियोंके कुलकों शोभा बढ़ानेवाला कृतवीर्य नामक एक राजा हुआ था। उसने सतहत्तर हजार वर्षतक धर्म और नीतिपूर्वक समस्त ब्रजाओंका पालन किया। उसके सौ पुत्र थे, जो व्यवन्धुनिके शापसे दम्भ हो गये। फिर राजाने भगवान् सूर्यकी विधिपूर्वक उपासना प्रारम्भ की। कृतवीर्यके उपवास-व्रत, पूजा और स्तोत्रोंसे संतुष्ट होकर भगवान् सूर्यने उसे अपना दर्शन दिया और कहा—'कृतवीर्य ! तुम्हें (कार्तवीर्य नामक) एक सुन्दर एवं चिरायु पुत्र उत्पन्न होगा, किन्तु तुम्हें अपने पूर्वकृत पापोंको विनाश करनेके लिये स्नपन-सप्तमी नामक व्रत करना पड़ेगा। तुम्हारी मृतवत्सा पत्नीके जब पुत्र उत्पन्न हो जाय तो

१-भविष्यपुराणका यह अध्याय मत्स्यपुराण (अध्याय ८०) में इसी रूपमें प्राप्त होता है।

२-सामवेदीय 'अद्भुतब्राह्मण' (तण्ड्य २६) तथा अग्निकीरिष्ट (३२) में अद्भुत-शान्तिका विनाशसे उल्लेख है।



सात महीनेपर बालकके जन्म-नक्षत्रकी तिथिको छोड़कर शुभ दिनमें ग्रह एवं तारावलको देखकर ब्राह्मणोंद्वारा स्नान-वाचन करना चाहिये। इसी प्रकार वृद्ध, रोगी अथवा अन्य लोगोंके लिये किये जानेवाले इस व्रतमें जन्म-नक्षत्रका परित्याग कर देना चाहिये। गोदुग्धके साथ लाल अगहनोके चावलसे हज्यात्र पकाकर मातृकाओं, भगवान् सूर्य एवं रुद्रकी तुष्टिके लिये अर्पण करना चाहिये और फिर भगवान् सूर्यके नामसे अग्रिमें खींची सात आहुतिर्वा प्रदान करनी चाहिये। फिर बादमें रुद्रसूक्तसे भी आहुतिर्वा देनी चाहिये। इस आहुतिमें अन्न एवं पल्लवाकी समिधाएँ प्रयुक्त करनी चाहिये तथा हवन-कार्यमें काले तिल, जौ एवं धोखे एक सौ आठ आहुतिर्वा प्रदान करनी चाहिये। हवनके बाद शीतल गङ्गाजलसे स्नान करना चाहिये। तदनन्तर हाथमें कुश लिये हुए वेदज्ञ ब्राह्मणद्वारा चारों खेणोमें चार सुन्दर कलश स्थापित कराये। पुनः उसके बीचमें छिद्ररहित पाँचवाँ कलश स्थापित करे। उसे दही-अक्षतसे विभूषित करके सूर्यसम्बन्धी सात प्रचाओंसे अधिमन्त्रित कर दे। फिर उसे तीर्थ-जलसे भरकर उसमें रत्न या सुवर्ण डाल दे। इसी प्रकार सभी कलशोंमें सर्वाविधि, पञ्चगव्य, पञ्चरत्न, फल और पुष्प डालकर उन्हें वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दे। फिर हाथोंसह, मुहुराल, विष्टैट, नदीके संगम, तालाब, गोराला और राजद्वार—इन सात जगहोंसे शुद्ध मृत्तिका लाकर उन सभी कलशोंमें डाल दे।

तदनन्तर ब्राह्मण रत्नार्भित चारों कलशोंके मध्यमें स्थित पाँचवें कलशको हाथमें लेकर सूर्य-मन्त्रोक्त पाठ करे तथा सात सुलक्षणा स्त्रियोंद्वारा जो पुष्प-माला और वस्त्राभूषणोंद्वारा पूजित हो, ब्राह्मणके साथ-साथ उस घड़ेके जलसे मृत्युञ्जय स्त्रीका अभिषेक कराये। (अभिषेकके समय इस प्रकार कहे—) 'यह बालक दीर्घायु और यह स्त्री जीवपुत्र (जीवित पुत्रवाली) हो। सूर्य, ग्रहों और नक्षत्र-समूहोंसहित चन्द्रमा, इन्द्रसहित लोकपालगण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इनके अतिरिक्त

अन्यान्य देव-समूह इस कुमारकी सदा रक्षा करें। सूर्य, शनि, अग्नि अथवा अन्यान्य जो कोई बालग्रह हो, वे सभी इस बालकको तथा इसके माता-पिताको कहीं भी कष्ट न पहुँचायें।' अभिषेकके पश्चात् वह स्त्री श्वेत वस्त्र धारण करके अपने बच्चे और पतिके साथ उन सातों स्त्रियोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। पुनः गुरुकी पूजा करके धर्मराजकी स्पर्णमयी प्रतिमा तत्पश्चात्के ऊपर स्थापित करके गुरुको निवेदित कर दे। उसी प्रकार कृष्णाल छोड़कर अन्य ब्राह्मणोंका भी वस्त्र, सुवर्ण, रत्नसमूह आदिसे पूजन करके उन्हें धी और खीरसहित भक्ष्य पदार्थोंका भोजन कराये। भोजनोपरान्त गुरुदेवको बालककी रक्षाके लिये इन मन्त्रोक्त उच्चारण करना चाहिये—'यह बालक दीर्घायु हो और सौ वर्षोंतक सुखका उपभोग करे। इसका जो कुछ पाप था, उसे बहव्रतनलमें डाल दिया गया। ब्रह्मा, रुद्र, वसुगण, स्कन्द, विष्णु, इन्द्र और अग्नि—ये सभी दुष्ट ग्रहोंसे इसकी रक्षा करें और सदा इसके लिये वरदायक हों।' इस प्रकारके वाक्योंका उच्चारण करनेवाले गुरुदेवका यज्ञहवन पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें एक कपिला गौ प्रदान करे और फिर प्रणाम करके विदा करे। तत्पश्चात् मृत्युञ्जय स्त्री पुत्रको गोदमें लेकर सूर्यदेव और भगवान् शंकरको नमस्कार करे और हवनसे बचे हुए हज्यात्रको 'सूर्यदेवको नमस्कार है'—यह कहकर खा जाय। यह व्रत उद्दिष्टता और दुःखप्राप्तिमें भी प्रशस्त माना गया है।

इस प्रकार कर्तव्य जन्मदिनके नक्षत्रको छोड़कर शान्ति-प्राप्तिके हेतु शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिमें सदा (सूर्य और शंकरका) पूजन करना चाहिये, क्योंकि इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाला कभी कष्टमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य इस विधानके अनुसार इस व्रतका सदा अनुष्ठान करता है, वह दीर्घायु होता है। (इसी व्रतके प्रभावसे) कर्तव्यजीने दस हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीपर शासन किया था। राजन्! इस प्रकार सूर्यदेव इस पुण्यप्रेत, परम पावन और आयुवर्धक सप्तमीसपन-व्रतका

१-दीर्घायुस्तु बालोऽयं जीवपुत्रः स भविषी। अदित्यचन्द्रग्रहस्यै प्रवृत्तसपनप्रसक्तम् ॥

शक्रः सलोकाकालो वै ब्रह्मा निष्कपुटिश्च ॥ एते कन्ये स वै देवाः सदा यन्तु कुम्भकम् ॥

मा शनिर्मा स हुतभुङ्क्ता मा स बालप्रदाः कर्वाणः ॥ पीडां कुर्वन्तु बालस्य मा मृत्युञ्जयस्य वै ॥ (उत्तरपर्व ५२।२६—२८)

२-दीर्घायुस्तु बालोऽयं यावद्वर्षात् सुखी ॥ पीकश्चिदस्य दुःखं लीक्यते पञ्चामुखे ॥

ब्रह्मा रुद्रो विष्णुः स्कन्दो यक्षः शक्रो हुतात्मनः ॥ रक्षन् सर्वं दुःखेभ्यो कदा यन्तु सर्वदा ॥ (उत्तरपर्व ५२।३२-३३)

विधान बतलाकर वहीं अन्तर्हित हो गये। मनुष्यको सूर्यसे नीरोगता, अग्निसे धन, ईश्वर (शिवजी) से ज्ञान और भगवान् जनार्दनसे मोक्षकी अभिलाषा करनी चाहिये<sup>१</sup>। यह व्रत

बड़े-बड़े पापोंका विनाशक, बाल-वृद्धिकारक तथा परम हितकारी है। जो मनुष्य अनन्यचित होकर इस व्रत-विधानको सुनता है, उसे भी सिद्धि प्राप्त होती है<sup>२</sup>। (अध्याय ५२)

### अचलासप्तमी<sup>३</sup>-व्रत-कथा तथा व्रत-विधि

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! आपने सभी उत्तम फलोक्तों के देनेवाले मायस्नानक<sup>४</sup> विधान बतलाया था, परंतु जो प्रातःकाल स्नान करनेमें समर्थ न हो तो वह क्या करे ? क्षियाँ अति सुकुमारी होती हैं, वे किस प्रकार मायस्नानक कष्ट सहन कर सकती हैं ? इसलिये आप कोई ऐसा उपाय बताये कि थोड़ेसे परिश्रमसे भी नारियोंको रूप, सौभाग्य, संतान और अनन्त पुण्य प्राप्त हो जाय।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! मैं अचला-सप्तमीका अत्यन्त गोपनीय विधान आपको बतलाता हूँ, जिसके करनेसे सब उत्तम फल प्राप्त हो जाते हैं। इस सम्बन्धमें आप एक कथा सुनें—

मगध देशमें अति रूपवती इन्दुमती नामकी एक वेश्या रहती थी। एक दिन वह वेश्या प्रातःकाल बैठी-बैठी संसारकी अनवस्थिति (नश्वरता)का इस प्रकार चिन्तन करने लगी—देखो ! यह विषयरूपी संसार-सागर कैसा भयंकर है, जिसमें डूबते हुए जीव जन्म-मृत्यु-जरा आदिसे तथा जल-जन्तुओंसे पीड़ित होते हुए भी किसी प्रकार पार उठर नहीं पाते। ब्रह्मजीके द्वारा निर्मित यह प्राणिसमुदाय अपने किये गये कर्मरूपी ईधनसे एवं कलरूपी अग्निसे दग्ध कर दिया जाता है। प्राणियोंके जो धर्म, अर्थ, कामसे रूढ़ित दिन व्यतीत होते हैं, फिर वे कहाँ वापस आते हैं ? जिस दिन खन, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण आदि सत्कर्म नहीं किया जाय, वह दिन व्यर्थ है। पुत्र, स्त्री, धन, श्रेय तथा धन आदिकी चिन्तामें सारी आयु बीत जाती है और मृत्यु आकर धर दबोचती है।

इस प्रकार कुछ निर्विण्ण—उद्धिग होकर सोचती-विचारती हुई वह इन्दुमती वेश्या महर्षि वसिष्ठके आश्रममें गयी और उन्हें प्रणामकर हाथ जोड़कर कहने लगी— 'महाराज ! मैंने न तो कभी कोई दान दिया, न जप, तप, व्रत, उपवास आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान किया और न शिव, विष्णु आदि किसी देवताओंकी आराधना की, अब मैं इस भयंकर संसारसे भयभीत होकर आपकी शरण आयी हूँ, आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतलायें, जिससे मेरा उद्धार हो जाय।'

**वसिष्ठजी बोले—**'वरदाने ! तुम माघ मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको स्नान करो, जिससे रूप, सौभाग्य और सद्गति आदि सभी फल प्राप्त होते हैं। यही दिन एक बार भोजनकर सप्तमीको प्रातःकाल ही ऐसे नदीतट अथवा जलाशयपर जाकर दीपदान और स्नान करो, जिसके जलको किसीने स्नानकर हिलाया न हो, क्योंकि जल भलको प्रक्षालित कर देता है। बादमें यथाशक्ति दान भी करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।' वसिष्ठजीका ऐसा वचन सुनकर इन्दुमती अपने घर वापस लौट आयी और उसके द्वारा बताया गयी विधिके अनुसार उसने स्नान-ध्यान आदि कर्मोंको सम्पन्न किया। सप्तमीके स्नानके प्रभावसे बहुत दिनोंतक सांसारिक सुखोंका उपभोग करती हुई वह देह-त्यागके पश्चात् देवराज इन्द्रकी सभी अप्सराओंमें प्रधान नयिकके पदपर अधिष्ठित हुई। यह अचलासप्तमी सम्पूर्ण पापोंका प्रशमन करनेवाली तथा सुख-सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाली है।

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! अचलासप्तमीका महत्त्व तो आपने बतलाया, कृपाकर अब स्नानका विधान

१-उक्तोक्तं भास्करादिचोदनीयचोदुत्तरानाम् । शंकराचार्यनिचोदु न्नीतिनिचोदजनार्दनम् ॥ (उत्तरपर्व ५२।३९)

२-भविष्यपुराणका यह अध्याय मत्स्यपुराण (अ-५८) से प्रायः मिलता है।

३-यह सप्तमी पुराणोंमें रथ, सूर्य, धनु, अर्क, मारुती, पुरुषन्दर्य आदि अनेक नामोंसे विख्यात है और अनेक पुराणोंमें उन-उन नामोंसे अलग-अलग विधियाँ निर्दिष्ट हैं, जिनसे सभी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं।

४-पुराणोंका परस्पर अनिष्ट सम्बन्ध है। मायस्नानकी विस्तृत विधि ऋष्यपुत्रके उत्तरखण्ड एवं वायुपुराणमें प्राप्त होती है। इनमें बड़ी सुन्दर एवं श्रेष्ठ कथाएँ हैं।

भी बतलाये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! यहीके दिन एकभुक्त होकर सूर्यनारायणका पूजन करे। यथासम्भव सप्तमीको प्रातःकाल ही उठकर नदी या सरोवरपर जाकर अरुणोदय आदि वेलामें बहुत सबैरे हो स्नान करनेकी चेष्टा करे। सुवर्ण, चाँदी अथवा ताँबेके पात्रमें कुसुम्भकी रंगी हुई बत्ती और तिलका तेल डालकर दीपक प्रज्वलित करे। उस दीपकको सिरपर रखकर हृदयमें भगवान् सूर्यका इस प्रकार ध्यान करे—

नमस्तो स्वरूपाय रसानाम्नाय नमः ।  
वरुणाय नमस्तोऽस्तु हरिषाम नमोऽस्तु ते ॥  
यावज्जन्म कृतं पापं मया जप्यसु सप्तसु ।  
तथे रोगं च शोकं च माकरी हनु सप्तामी ॥  
जननी सर्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके ।  
सर्वव्याधिहरे देवि नमस्तो रविपञ्चमे ॥

(उत्तरपर्व ५३। ३३—३५)

तदनन्तर दीपकको जलके ऊपर तैरा दे फिर स्नानकर देवता और पितरोंका तर्पण करे और चन्दनसे कर्णिकारहित अष्टदल-कमल बनाये। उस कमलके मध्यमें शिव-पार्वतीको स्थापनाकर प्रणव-मन्त्रसे पूजा करे और पूर्वादि अष्ट दलोंमें

### बुधाष्टमीव्रत-कथा तथा माहात्म्य

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! अब मैं बुधाष्टमीव्रतका विधान बतलाता हूँ, जिसे करनेवाला कभी नरकका मुख नहीं देखता। इस विषयमें आप एक आच्छादन सुनें। सत्ययुगके प्रारम्भमें मनुके पुत्र राजा इल<sup>१</sup> हुए। वे अनेक मित्रों तथा भूलोसे घिरे रहते थे। एक दिन वे मृगयके प्रसंगसे एक हिरणका पीछा करते हुए हिमालय पर्वतके समीप एक जंगलमें पहुँच गये। उस वनमें प्रवेश करते ही वे राहस्य स्त्री-रूपमें परिणत हो गये। वह वन शिवजी और माता पार्वतीजीका विहार-क्षेत्र था। यहाँ शिवजीकी यह आज्ञा थी कि 'जो पुरुष इस वनमें प्रवेश करेगा, वह उत्पन्न हो स्त्री हो जायगा।' इस कारण राजा इल भी स्त्री हो गये। अब वे स्त्री-

क्रमसे भानु, रवि, विवस्वान्, भास्कर, सविता, अर्क, सहस्रकिरण तथा सर्वात्मका पूजन करे। इन नामोंके आदिमें 'ॐ'कार तथा अन्तमें 'नमः' पद लगाये। यथा—'ॐ भानवे नमः', 'ॐ रवे नमः' इत्यादि।

इस प्रकार पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा वस्त्र आदि उपचारोंसे विधिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजाकर 'स्वस्थान् गम्यताम्' यह कहकर विस्मृति कर दे। बादमें ताम्र अथवा मिट्टीके पात्रमें गुड़ और घृतसहित तिलचूर्ण तथा सुवर्णका ताल-पत्राकर एक वजनका आभूषण बनाकर पात्रमें रख दे। अनन्तर रत्नवस्त्रसे उसे ढँककर पुष्प-धुपादिके पूजन करे और वह पात्र दौर्भाग्य तथा दुःखोंके विनाशकी कामनासे ब्राह्मणको दे दे। अनन्तर 'सपुत्रपशुभृत्याय भेऽर्कोऽयं प्रीयताम्' पुत्र, पशु, भृत्य-समन्वित मेरे ऊपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हो जायें—ऐसी प्रार्थना करे। फिर गुड़को वस्त्र, तिल, गौ और दक्षिण देकर तथा वज्राशक्ति अन्य ब्राह्मणोंको भोजन कराकर व्रत समाप्त करे।

जो पुरुष इस विधिसे अचलासप्तमीको स्नान करता है उसे सम्पूर्ण माघ-स्नानका फल प्राप्त होता है। जो इस माहात्म्यको शक्तिसे कहेंगा या सुनेगा तथा लोगोंको इसका उपदेश करेगा, वह उत्तम लोकको अवश्य प्राप्त करेगा।

(अध्याय ५३)

रूपसे वनमें विचरण करने लगे। वे यह नहीं समझ सके कि मैं कहाँ आ गया हूँ। उसी समय चन्द्रमाके पुत्र कुमार बुधकी दृष्टि उनपर पड़ी। उसके उत्तम रूपपर आकृष्ट हो बुधने उसे अपनी स्त्री बना लिया। इलासे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम पुनरुवा था। पुरुषासे ही चन्द्रवंशका प्रारम्भ हुआ। जिस दिन बुधने इलासे विवाह किया, उस दिन अष्टमी तिथि थी, इसलिये यह बुधाष्टमी जगत्में पूज्य हुई। यह बुधाष्टमी सम्पूर्ण पापोंका प्रशमन तथा उपद्रवोंका नाश करनेवाली है।

राजन् ! अब मैं आपको एक दूसरी कथा सुना रहा हूँ—विदेह राजाओंकी नगरी मिथिलामें निमि नामके एक राजा थे।

१-इनका मुख्य नाम सुवसु था, किन्तु जन्मके समय पृथ्वीरूपमें उत्पन्न होनेके कारण 'इल' और बादमें पुरुष-रूपमें परिवर्तित हो जानेपर 'इल' नाम हुआ। इसकी कथा प्रायः सभी पुराणों तथा महाभारत आदिमें भी आती है।

ये शत्रुओंद्वारा लड़ाईके मैदानमें मार डाले गये। उनकी स्त्रीका नाम था उर्मिला। उर्मिला जब राज्य-च्युत एवं निर्गन्धित हो इधर-उधर घूमने लगीं, तब अपने बालक और कन्याको लेकर वह अवन्ति देश चली गयी और वहाँ एक ब्राह्मणके घरमें कार्यकर अपना निर्वाह करने लगी। वह विपत्तिसे पीड़ित थी, गेहूँ पोसते समय वह थोड़ेसे गेहूँ चुराकर रख लेती और उसीसे क्षुधसे पीड़ित अपने बच्चोंका पालन करती। कुछ समय बाद उर्मिलाका देहान्त हो गया। उर्मिलाका पुत्र बड़ा हो गया, वह अवन्तिसे मिथिला आया और पिताके राज्यको पुनः प्राप्तकर शासन करने लगा। उसकी बहन श्यामला विक्रम-योग्य हो गयी थी। वह अत्यन्त सुन्दरी थी। अवन्तिदेशके राजा धर्मराजने उसके उतम रूपकी ख्याती सुनकर उसे अपनी रानी बना लिया।

एक दिन धर्मराजने अपनी प्रिया श्यामलासे कहा— 'वैदेहिनिन्दिनि ! तुम और सभी कामोंको तो करना, परंतु ये सात स्थान जिनमें ताले बंद हैं, इनमें तुम कभी मत जाना।' श्यामलाने 'बहुत अच्छा' कहकर पतिकी बात मान ली, परंतु उसके मनमें कुतूहल बना रहा।

एक दिन जब धर्मराज अपने किसी कार्यमें व्यस्त थे, तब श्यामलाने एक मकानका ताला खोलकर वहाँ देखा कि उसकी माता उर्मिलाको अति भयंकर यमदूत बाँधकर तप्त तेलके कड़ाहमें बार-बार डाल रहे हैं। लजित होकर श्यामलाने वह कमरा बंद कर दिया, फिर दूसरा ताला खोला तो देखा कि वहाँ भी उसकी माताको यमदूत शिलाके ऊपर रखकर पीस रहे हैं और माता धिल्ला रही है। इसी प्रकार उसने तीसरे कमरेको खोलकर देखा कि यमदूत उसकी माताके मस्तकमें लोहेकी कील ठोक रहे हैं, इसी तरह चौथेमें अति भयंकर खान उसका भक्षण कर रहे हैं, पाँचवेंमें लोहेके संदेशसे उसे पीड़ित कर रहे हैं। छठेमें कोल्हूके बीच ईश्वरके समान पेरी जा रही है और सातवें स्थानपर ताला खोलकर देखा तो वहाँ भी उसकी माताको हजारों कृमि भक्षण कर रहे हैं और वह रुधिर आदिसे लथपथ हो रही है।

यह देखकर श्यामलाने विचार किया कि मेरी माताने ऐसा कौन-सा पाप किया, जिससे वह इस दुर्गतिको प्राप्त हुई। वह

सोचकर उसने सारा वृत्तान्त अपने पति धर्मराजको बतलाया।

**धर्मराज बोले—** 'प्रिये ! मैंने इसीलिये कहा था कि ये सात ताले कभी न खोलना, नहीं तो तुम्हें वहाँ पक्षाघात होगा। तुम्हारी माताने संतानके स्नेहसे ब्राह्मणके गेहूँ चुराये थे, क्या तुम इस बातको नहीं जानती हो जो तुम मुझसे पूछ रही हो ? यह सब उसी कर्मका फल है। ब्राह्मणका धन स्नेहसे भी भक्षण करे तो भी सात कुल अधोगतिको प्राप्त होते हैं और चुराकर खाये तो ज्वरतक चन्द्रमा और तारे हैं, तबतक नरकसे उद्धार नहीं होता। जो गेहूँ इसने चुराये थे, वे ही कृमि बनकर इसका भक्षण कर रहे हैं।'

**श्यामलाने कहा—** महाराज ! मेरी माताने जो कुछ भी पहले किया, वह सब मैं जानती ही हूँ, फिर भी अब आप कोई ऐसा उपाय बतलायें, जिससे मेरी माताका नरकासे उद्धार हो जाय। इसपर धर्मराजने कुछ समय विचार किया और कहने लगे— 'प्रिये ! आजसे सात वर्ष पूर्व तुम ब्राह्मणी थी। उस समय तुमने अपनी सखियोंके साथ जो बुधाष्टमीका व्रत किया था, यदि उसका फल तुम संकल्पपूर्वक अपनी माताको दे दो तो इस संकटसे उसकी मुक्ति हो जायगी।' यह सुनते ही श्यामलाने स्नानकर अपने जतन पुण्यफल संकल्पपूर्वक माताके लिये दान कर दिया। व्रतके फलके प्रभावसे उसकी माता भी उसी क्षण दिव्य देह धारणकर विमानमें बैठकर अपने पतिमण्डित स्वर्गलोकको चली गयी और बुध ग्रहके समीप स्थित हो गयी।

**राजन् !** अब इस व्रतके विधानको भी आप सावधान होकर सुने—जब-जब शुक्ल पक्षकी अष्टमीको बुधवार पड़े तो उस दिन एकधुक-व्रत करना चाहिये। पूर्वार्द्धमें नदी आदिमें स्नान करे और वहाँसे जलसे भरा नवीन कलश लाकर घरमें स्थापित कर दे, उसमें सेना छोड़ दे और बाँसके पात्रमें पक्वान्न भी रखे। आठ बुधाष्टमियोंका व्रत करे और आठवें क्रमसे ये आठ पक्वान्न—मोदक, फेनी, घीका अपूप, कटक, श्वेत कम्पारसे बने पदार्थ, सोहालक (खांडयुक्त अशोकवार्तिका) और फल, पुष्प तथा फेनी आदि अनेक पदार्थ बुधको निवेदित कर बादमें स्वयं भी अपने इष्ट-मित्रोंके साथ भोजन करे। साथ ही बुधाष्टमीकी कथा भी सुने। बिना कथा सुने भोजन न करे। बुधको एक माशे (८ रत्ती-एक माश) या



आधे माशेकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर गन्ध, पुष्प, नैवेद्य, पीत वस्त्र तथा दक्षिणा आदिसे उसका पूजन करे। पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—

‘ॐ बुधाय नमः, ॐ सोमाश्रयाय नमः, ॐ दुर्बुद्धिनाशनाय नमः, ॐ सुबुद्धिप्रदाय नमः, ॐ ताराजाताय नमः, ॐ सौम्यप्रदाय नमः तथा ॐ सर्वसौख्यप्रदाय नमः।’

तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर मूर्तिक साथ-साथ वह भोज्य-सामग्री तथा अन्य पदार्थ ब्राह्मणको दान कर दे—

ॐ बुधोऽयं प्रतिगृह्णातु द्रव्यस्त्वोऽयं बुधः स्वयम् ।

दीपते बुधराजाय तुभ्यतां न बुधो मम ॥

(उत्तरपर्व ५४ (५२))

ब्राह्मण भी मूर्ति आदि ग्रहणकर यह मन्त्र पढ़े—

(अध्याय ५४)



### श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीव्रतकी कथा एवं विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—अभ्युत । अज्य विश्वमेंसे (अपने जन्म-दिन) जन्माष्टमीव्रतका विधान बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् । जब मधुरामें कंस मारा गया, उस समय माता देवकी भुझे अपनी गेदमें लेकर रेंने लगीं। पिता वसुदेवजी भी भुझे तथा बलदेवजीको आलिङ्गित कर गद्गदवाणीसे कहने लगे—‘आज मेरा जन्म सफल हुआ, जो मैं अपने दोनों पुत्रोंको कुशलसे देख रहा हूँ। सौभाग्यसे आज हम सभी एकत्र मिल रहे हैं।’ हमारे माता-पिताको अति हर्षित देखकर बहुतसे लोग वहाँ एकत्र हुए और भुझसे कहने लगे—‘भगवन् ! आपने बहुत बड़ा काम किया, जो इस दुष्ट कंसको मारा। हम सभी इससे बहुत

बुधः सौम्यस्तारकेयो राजपुत्र इलापतिः ।

कुमारो द्विजराजस्य यः पुरुरावसः पिता ॥

दुर्बुद्धिबोधदुरितं नाशयित्वावबोधुधः ।

सौख्यं च सौमनस्यं च करोतु शशिनन्दनः ॥

(उत्तरपर्व ५४ (५२-५३))

इस विधिसे जो बुधाष्टमीका व्रत करता है, वह सात जन्मतक जातिस्मर होता है। धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, दीर्घ आयुष्य और ऐश्वर्य आदि संसारके सभी पदार्थोंको प्राप्त कर अन्त समयमें नारायणका स्मरण करता हुआ तीर्थ-स्थानमें प्राण त्याग करता है और प्रत्यपपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है। जो इस विधानको सुनता है, वह भी ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो जाता है।

पंडित ये। आप कृपाकर यह बतलायें कि आप माता देवकीके गर्भसे कब अविर्भूत हुए थे ? हम सब उस दिन महोत्सव मनाया करेंगे। आपको बार-बार नमस्कार है, हम सब आपको शरण हैं। आप हम सभीपर प्रसन्न होइये। उस समय पिता वसुदेवजीने भी भुझसे कहा था कि अपना जन्मदिन इनके बता दो।’

तब मैंने मधुरानिवासी जनकोंके जन्माष्टमीव्रतका रहस्य बतलाया और कहा—‘पुरावसियो ! आपलोग मेरे जन्म-दिनको विश्वमें जन्माष्टमीके नामसे प्रसारित करें। प्रत्येक धार्मिक व्यक्तिको जन्माष्टमीका व्रत अवश्य करना चाहिये। जिस समय सिंह राशिपर सूर्य और वृषराशिपर चन्द्रमा था, उस भाद्रपद मासकी कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथिमें

१-मत्स्यपुराणमें बुधका स्वल्प इस प्रकार बतलाया गया है—

पौतम्यस्याम्बरारः कर्णिकारसमाधुतिः खड्गचर्मगतपञ्चभिः सिंहव्यो कारो बुधः ॥ (१४।४)

बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। उनकी शरीरवाली कानेकी पुष्प-संरक्षी है। वे चारों हाथोंमें क्रमशः तलवार, बाल गदा और वरदमुद्रा धारण किये रहते हैं तथा सिंहपद स्पर्श करते हैं।

२-हेमचन्द्र, व्रतरत्न तथा वर्षसिंहकृतचतुस्र आदि निबन्धग्रन्थोंमें भी खड्गचर्मगतपञ्चभिः बुधाष्टमीव्रत दिखाया गया है, पर फल-भेद अधिक है। व्रतरत्नमें बुधके पूजनकी तथा व्रतके उद्घाटनकी विधि भी खड्गचर्मगतपञ्चभिः नामसे दी गयी है। इस कथनमें बुद्धि, युक्ति और विमर्श-शक्तिका भी पर्याप्त सम्मिश्रण दीखता है।

रोहिणी नक्षत्रमें मेरा जन्म हुआ<sup>१</sup>। वसुदेवजीके द्वारा माता देवकीके गर्भसे मैंने जन्म लिया। यह दिन संसारमें जन्माष्टमी नामसे विख्यात होगा। प्रथम यह व्रत मथुरामें प्रसिद्ध हुआ और बादमें सभी लोकोंमें इसकी प्रसिद्धि हो गयी। इस व्रतके करनेसे संसारमें शान्ति होगी, सुख प्राप्त होगा और प्रणिबर्ण रोगरहित होगा।

**महाराज युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् ! अब आप इस व्रतका विधान बतलावें, जिसके करनेसे आप प्रसन्न होते हैं।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! इस एक ही व्रतके कर लेनेसे सात जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। व्रतके पहले दिन दन्ताश्विन आदि करके व्रतका नियम ग्रहण करें। व्रतके दिन मध्याह्नमें स्नानकर माता भगवती देवकीका एक मूर्तिका-गृह बनाये। उसे पदरागमणि और कमलाल<sup>२</sup> आदिसे सुशोभित करें। गोकुलकी भाँति गोप, गोपी, धन्व, मृदङ्ग, शङ्ख और माङ्गल्य-कलश आदिसे समन्वित तथा अलंकृत मूर्तिका-गृहके द्वारपर रक्षाके लिये खड्ग, कुण्ड, छत्र, मुद्गर आदि रखें। दीवालौपर सन्तिक आदि माङ्गरिक चिह्न बना दें। चट्टीदेवीकी भी वैष्णव आदिके साथ स्थापना करें। इस प्रकार यथाशक्ति उस मूर्तिकागृहको विभूषितकर बीचमें पर्यङ्कके ऊपर मुहसहित अर्धमुखावस्थावाली, तपस्विनी माता देवकीकी प्रतिमा स्थापित करें। प्रतिमाई आठ प्रकारकी होती है—स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, पीतल, मृत्तिका, काष्ठकी, मणिमयी तथा चित्रमयी। इनमेंसे किसी भी वस्तुकी सर्वलक्षणसम्पन्न प्रतिमा बनाकर स्थापित करें। माता देवकीका स्तनपान करती हुई बालस्वरूप मेरी प्रतिमा उनके समीप पलंगके ऊपर स्थापित करें। एक कन्याके साथ माता यशोदाकी प्रतिमा भी वहाँ स्थापित की जाय। मूर्तिका-गण्डपके ऊपरकी प्थितियोंमें देवता, ग्रह, नाग तथा विशाखर आदिकी मूर्तियाँ हाथोंसे पुष्प-वर्षा करते हुए बनाये। वसुदेवजीको भी मूर्तिकागृहके बाहर खड्ग और ढाल धारण किये चित्रित करना चाहिये। वसुदेवजी महर्षि करण्यके अवतार हैं और देवकी माता

अदितिकी। बलदेवजी शेषनागके अवतार हैं, नन्दबाबा दक्षप्रजापतिके, यशोदा दितिकी और गर्गमुनि ब्रह्माजीके अवतार हैं। कंस कालनेमिक अवतार है। कंसके पहरेदारोंको मूर्तिकागृहके आस-पास निद्रावस्थामें चित्रित करना चाहिये। गौ, हाथी आदि तथा नाचती-गाती हुई अप्सराओं और गन्धर्वोंकी प्रतिमा भी बनाये। एक ओर कालिय नागको यमुनाके इदमें स्थापित करें।

इस प्रकार अत्यन्त रमणीय नवमूर्तिका-गृहमें देवी देवकीका स्थापनकर भक्तिसे गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, नरियल, दाढ़िम, ककड़ी, बीजपूर, सुघरी, नारंगी तथा पनस आदि जो फल उस देशमें उस समय प्राप्त हों, उन सबसे पूजनकर माता देवकीकी इस प्रकार प्रार्थना करें—

**गार्ग्यः कित्राद्यैः सततपरिवृता वेणुवीजानिनन्दै-**

**भृङ्गतरादार्ककुम्भप्रभकृतकरैः सेव्यमाना मुनीन्द्रैः ।**

**पर्यङ्गे स्वास्तौ वा मुदिततराम्नाः पुत्रिणीं सण्णगासे**

**सा देवी देवमाता जयति सुखदना देवकी कान्तरूपा ॥**

(उत्तरार्ध ५५।४२)

जिनके चारों ओर किन्नर आदि अपने हाथोंमें वेणु तथा वीणा-वाद्योंके द्वारा सुति-गान कर रहे हैं और जो अधिक-पात्र, आदर्श, मङ्गलमय कलश तथा खैर हाथोंमें लिये श्रेष्ठ मुनिगणोंद्वारा सेवित हैं तथा जो कुण्ड-जननी भलीभाँति बिछे हुए फलैगपर विराजमान हैं, उन कमनीय स्वरूपवाली सुखदना देवमाता अदिति-स्वरूपा देवी देवकीकी जय हो।

उस समय यह ध्यान करें कि कमलासन लक्ष्मी देवकीके चरण दबा रही हों। उन देवी लक्ष्मीकी—'तमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।' इस मन्त्रसे पूजा करें। इसके बाद 'ॐ देवकी नमः, ॐ वसुदेवाय नमः, ॐ बलभद्राय नमः, ॐ श्रीकृष्णाय नमः, ॐ सुभद्रायै नमः, ॐ नन्दाय नमः तथा ॐ यशोदायै नमः'—इन नाम-मन्त्रोंसे सबका अलग-अलग पूजन करें।

१-सिंहशिशिले सूर्ये गगने जलदनुते। मयि धारयेद्वन्द्वं कृष्णक्षेत्र्यकमे।

कुमारिणिकले चन्द्रे नखे सोहिलेयुते ॥

(उत्तरार्ध ५५।१४)

२-आञ्जनुलम्बिनी कानु-पुष्पोंकी माला और पदराग, मुद्गर आदि पञ्चलौकिकोंकी माला तथा तुलसीपत्रमिश्रित विविध पुष्पोंकी मालाकी भी कननाल, जयमाला और वैकुण्ठी माला कहा गया है।

कुछ लोग चन्द्रमाके उदय हो जानेपर चन्द्रमाके अर्घ्य प्रदान कर हरिकः ध्यान करते हैं, उन्हें निम्नलिखित मन्त्रोंसे हरिकः ध्यान करना चाहिये—

अनघं वामनं शौरि वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ।  
वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् ॥  
वाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं ब्राह्मणप्रियम् ।  
दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडवज्रम् ॥  
गोविन्दमधुतं कृष्णमनन्तमपराजितम् ।  
अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्तकारणम् ॥  
अनादिनिधनं विष्णुं त्रेलोक्येशं त्रिविक्रमम् ।  
नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥  
पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम् ।  
श्रीवत्साङ्गं जगत्सेतुं श्रीधरं श्रीपतिं हरिम् ॥

(उत्तरपर्व ५५। ४९—५०)

—इन मन्त्रोंसे भगवान् श्रीहरिकः ध्यान करके 'योगेश्वराय योगसम्पन्नाय योगपतये गोविन्दाय नमो नमः'— इस मन्त्रसे प्रतिमाको स्नान करना चाहिये। अनन्तर 'योगेश्वराय यज्ञसम्पन्नाय यज्ञपतये गोविन्दाय नमो नमः'— इस मन्त्रसे अनुलेपन, अर्घ्य, धूप, दीप आदि अर्पण करे। तदनन्तर 'विष्णाय विष्णेश्वराय विष्णुसम्पन्नाय विष्णुपतये गोविन्दाय नमो नमः।' इस मन्त्रसे नैवेद्य निवेदित करे। दीप अर्पण करनेका मन्त्र इस प्रकार है—'धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्पन्नाय गोविन्दाय नमो नमः।'।

इस प्रकार वेदीके ऊपर रोहिणी-सहित चन्द्रमा, वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा और कल्योदेवकी पूजन करे, इससे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। चन्द्रोदयके समय इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे—

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव ।  
गृह्णाणार्घ्यं शशाङ्केन्द्रे रोहिण्या सहितो मम ॥

(उत्तरपर्व ५५। ५४)

आधी रातको गुड़ और घीसे बसोर्धाराकी आहुति देकर यज्ञोदेवीकी पूजा करे। उसी क्षण नामकरण आदि संस्कार भी करने चाहिये। नवमीके दिन प्रातःकाल में ही समान भगवतीका भी उत्सव करना चाहिये। इसके अनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर 'कृष्णे मे प्रीयताम्' कहकर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये और यह मन्त्र भी पढ़ना चाहिये—

यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् ।  
भौमस्य ब्रह्मणो गुणै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

(उत्तरपर्व ५५। ६०)

इसके बाद ब्राह्मणोंको बिदा करे और ब्राह्मण कहे—'शान्तिस्तु शिवं वास्तु।'।

धर्मनन्दन । इस प्रकार जो मेघ भक्त पुरुष अथवा नारी देवी देवकीके इस महोत्सवको प्रतिवर्ष करता है, वह पुत्र, संतान, आरोग्य, धन-धान्य, सद्गुह, दीर्घ आयुष्य और राज्य तथा सभी मनोरथोंको प्राप्त करता है। जिस देशमें यह उत्सव किया जाता है, वहाँ जन्म-मरण, आवागमनकी व्याधि, अवृष्टि तथा द्द्वि-भेद आदिक कभी भय नहीं रहता। मेघ समयपर वर्षा करते हैं। पाण्डुपुत्र ! जिस घरमें यह देवकी-व्रत किया जाता है, वहाँ अकालमृत्यु नहीं होती और न गर्भपात होता है तथा वैधव्य, दीर्घाव्य एवं कलह नहीं होता। जो एक बार भी इस व्रतको करता है, वह विष्णुलोकमें प्राप्त होता है। इस व्रतके करनेवाले संसारके सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें विष्णुलोकमें निवास करते हैं।

(अध्याय ५५)

## दूर्वाकी उत्पत्ति एवं दूर्वाष्टमीव्रतका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिके अत्यन्त पवित्र दूर्वाष्टमीव्रत होता है। जो पुरुष इस पुण्य दूर्वाष्टमीका श्रद्धापूर्वक व्रत करता है, उसके वंशका क्षय नहीं होता। दूर्वाके अङ्कुरोंकी तरह उसके कुलकी वृद्धि होती रहती है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—लोकनाथ ! यह दूर्वा

कहाँसे उत्पन्न हुई ? कैसे विराधु हुई तथा यह क्यों पवित्र मानी गयी और लोकमें वन्द्य तथा पूज्य कैसे हुई ? इसे भी बतानेकी कृपा करे।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—देवताओंके द्वारा अमृतकी प्राप्तिके लिये क्षीर-सागरके मध्ये जानेपर भगवान् विष्णुने अपनी जेबपर हाथसे पकड़कर मन्दराचलको धारण किया

था । मन्दराचलके वेगसे भ्रमण करनेके कारण रगड़से विष्णु भगवान्‌के जो रोम उखड़कर समुद्रमें गिरे थे, पुनः समुद्रकी लहरोंद्वारा उछाले गये वे ही रोम हरित वर्णके सुन्दर एवं शुभ दूर्वाके रूपमें उत्पन्न हुए । उसी दूर्वाग्र देवताओंने मन्थनसे उत्पन्न अमृतका कुम्भ रखा, उससे जो अमृतके बिन्दु गिरे, उनके स्पर्शसे वह दूर्वा अजर-अमर हो गयी । यह देवताओंके लिये पवित्र तथा वन्द्य हुई । देवताओंने भद्रपदको शुक्ल अष्टमीको गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, खजूर, नारिकेल, द्राक्षा, कपित्थ, नारंग, आम्र, बीजपूर, दाहिम आदि फलों तथा दही, अक्षत, माला आदिसे निम्न मन्त्रोद्घात उसका पूजन किया—

त्वं दूर्वैः प्रभुतज्जपासि वन्दिता च सुरासुरैः ।

सौभाग्यं संततिं कृत्वा सर्वकार्यकरे भव ॥

यथा शास्त्रप्रशस्ताभिर्विस्तृतासि महीतले ।

तथा ममापि संतानं देहि त्वमजरापरे ॥

(अरण्यपर्व ५६।१२-१३)

देवताओंके साथ ही उनकी पत्नियाँ तथा अप्सराओंने भी उसका पूजन किया । मलयलोकमें वेदवती, सीता, दमयन्ती आदि स्त्रियोंके द्वारा भी सौभाग्यदायिनी यह दूर्वा पूजित (वन्दित) हुई और सभीने अपना-अपना अभीष्ट प्राप्त किया । जो भी सारे खानकर शुद्ध वस्त्र धारणकर दूर्वाका पूजन कर तिलपिष्ट, गोधूम और सप्तधान्य आदिक दानकर ब्राह्मणको भोजन कराती है और ब्रह्मसे इस पुण्य तथा संतानकरक दूर्वाष्टमी-व्रतको कराती है वह पुत्र, सौभाग्य—धन आदि सभी पदार्थोंको प्राप्तकर बहुत कालतक संसारमें सुख भोगकर अन्तमें अपने पतिसहित स्वर्गमें जाती है और प्रलयपर्यन्त वहाँ निवास करती है तथा देवताओंके द्वारा आनन्दित होती है ।

(अध्याय ५६)

### मासिक कृष्णाष्टमी<sup>१</sup>-व्रतोंकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्थ । अथ आप समयतः पापों तथा भयोंके नाशक, धर्मप्रद और भगवान् शंकरके प्रीतिकारक मासिक कृष्णाष्टमी-व्रतोंके विधानका श्रवण करें । मार्गशीर्ष मासकी कृष्णाष्टमीको उपवासके नियम ग्रहणकर जितेन्द्रिय और क्रोधरहित हो गुस्सकी अवज्ञानुसार उपवास करें । मध्याह्नके अनन्तर नदी आदिमें स्नानकर गन्ध, उत्तम पुष्प, गुग्गुलु धूप, दीप अनेक प्रकारके नैवेद्य तथा ताम्बूल आदि उपचारोंसे शिवलिंगका पूजनकर काले तिलोंसे हवन करें । इस मासमें शंकरजीका पूजन करें और गोमूत्र-पानकर रात्रिमें भूमिपर शयन करें, इससे अतिरात्र-यज्ञका फल प्राप्त होता है । पौष मासकी कृष्णाष्टमीको शम्भु नामसे महेश्वरका पूजनकर भूत प्राशन करनेसे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है । माघ मासकी कृष्णाष्टमीको महेश्वर नामसे भगवान् शंकरका पूजनकर गोदुग्ध प्राशन करनेसे अनेक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है । फाल्गुन मासकी कृष्णाष्टमीमें महादेव नामसे उनका पूजनकर तिल भक्षण करनेसे आठ राजसूय यज्ञोंका फल प्राप्त

होता है । चैत्र मासकी कृष्णाष्टमीमें स्थाणु नामसे शिवका पूजनकर यक्का भोजन करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है । वैशाख मासकी कृष्णाष्टमीमें शिव नामसे इनका पूजनकर रात्रिमें कुसुमोदक-पान करनेसे दस पुरुषमेध यज्ञोंका फल मिलता है । ज्येष्ठ मासकी कृष्णाष्टमीमें पशुपति नामसे भगवान् शंकरका पूजनकर गोभृंगजलका पान करनेसे लाख गोदानका फल मिलता है । आषाढ़ मासकी कृष्णाष्टमीमें उग्र नामसे शंकरका पूजनकर गोमय प्राशन करनेवाला दस लाख वर्षोंसे भी अधिक समयतक रुद्रलोकमें निवास करता है । श्रावण मासकी कृष्णाष्टमीमें शर्व नामसे भगवान् शंकरकी पूजाकर रात्रिमें अर्क प्राशन करनेसे बहुत-सा सुवर्ण-दान किये जानेवाले यज्ञका फल मिलता है । भाद्रपद मासके कृष्णाष्टमीमें त्र्यम्बक नामसे इनकी पूजाकर एवं बिल्वपत्रका भक्षण करनेसे अन्न-दानका फल मिलता है । आश्विन मासकी कृष्णाष्टमीमें भव नामसे भगवान् शंकरका व्रजनकर तण्डुलोदकका पान करनेसे सौ पुण्डरीक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है । इसी प्रकार

१-यह श्रीकृष्णजन्माष्टमीसे निम्न तिथिवास्तवका एक मुख्य अङ्गभूत व्रत है । इसकी महिमा तथा अनुष्ठान-विधि का वर्णन मत्स्यपुराण, अध्याय ५६, नारदपुराण, सौरपुराण १४।१-३६, कत-कल्पद्रुम आदिमें बहुत विस्तारसे है । विशेष जनकोंके लिये उन्हीं भी देखना चाहिये । ज्योतिषग्रन्थों और पुराणोंके अनुसार अष्टमी तिथि के सभी शिव ही हैं । अतः अष्टमी तथा चतुर्दशीको उनकी उपासना विशेष कल्याणकारिणी होती है ।



कार्तिक मासकी कृष्णाष्टमीमें रुद्र नामसे भगवान् शंकरकी भक्तिसे पूजाकर रात्रिमें दहीका प्राशन करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार बारह महीने शिवजीका पूजन कर अन्तमें शिवभक्त ब्राह्मणोंको घृत, शर्करायुक्त पायस भोजन कराये तथा यथाशक्ति सुवर्ण, वस्त्र आदि उनके देकर प्रसन्न करे। करते तिलसे पूर्ण बारह कलश, छाता, जूता तथा वस्त्र आदि ब्राह्मणोंको देकर दूध देनेवाली सवत्सा एक कृष्ण वर्णकी गौ भी महादेवजीको निवेदित करे। इस मासिक कृष्णाष्टमी-व्रतको जो एक वर्षतक निरन्तर करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर

उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करता है और सौ वर्षपर्यन्त संसारके आनन्दोंका उपभोग करता है। इसी व्रतका अनुष्ठान कर इन्द्र, वन्द, ब्रह्मा तथा विष्णु आदि देवताओंने उत्तम-उत्तम पदोंको प्राप्त किया है। जो स्त्री-पुरुष इस व्रतको भक्तिपूर्वक करते हैं वे उत्तम विमानमें बैठकर देवताओंद्वारा स्तुत होते हुए शिवलोकमें जाते हैं और भगवान् शंकरके ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो जाते हैं। यहाँ आठ कल्पपर्यन्त निवास करते हैं और जो इस व्रतके माहात्म्यको सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

(अध्याय ५७)

### अनघाष्टमी-व्रतकी कथा एवं विधि

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज। प्राचीन कालमें ब्रह्मजीके महातेजस्वी अत्रि पुरुरूपमें उत्पन्न हुए। अत्रिकी भार्याका नाम था अनसूया, वह महान् भाष्यशास्त्रिणी एवं पतिव्रता थी। कुछ कालके बाद उनके महातेजस्वी पुत्र दत्त हुए। दत्त महान् योगी थे। वे विष्णुके अंशमें उत्पन्न हुए थे। इनका दूसरा नाम था अनघ। इनकी भार्याका नाम था नदी। ब्राह्मणोंके सभी गुणोंसे सम्पन्न इनके आठ पुत्र थे। 'दत्त' विष्णु-रूपमें थे तथा 'नदी' लक्ष्मीकी रूप थीं। दत्त अपनी भार्या नदीके साथ योगाभ्यासमें लीन थे, उसी समय 'अंघ' नामक दैत्यसे पीड़ित तथा पराजित देवता विन्ध्यगिरिमें स्थित इनके आश्रममें आये और उन्होंने इनकी शरण ग्रहण की। दत्तात्रेयजीने इन्द्रके साथ उन सभी देवताओंको अपने योगबलसे अपने आश्रममें रख लिया और कहा—'आपलोग निर्भय तथा निश्चिन्त होकर यहाँ रहें।' देवगण अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वे वहीं रहने लगे।

दैत्य-समुदाय भी देवताओंको खोजते-खोजते इसी आश्रमपर आ पहुँचा। वे क्रोधपूर्वक ललकारकर कहने लगे—'इस मुनिकी पत्नीको पकड़ लो और यह सारा आश्रम उजाड़ डालो।' यह कहते हुए दैत्यगण आश्रममें घुस गये और उनकी पत्नीको उठाकर अपने सिरपर रखकर चले पड़े। लक्ष्मीको सिरपर उठाते ही सभी दैत्य श्रद्धहीन हो गये और

दत्तकी दृष्टि पहलेसे वे सभी दैत्य भागने और नष्ट होने लगे। देवताओंने भी उन्हें मारता प्रारम्भ कर दिया। निश्चेष्ट होकर दैत्यगण हताकर करने लगे। दत्तमुनिके प्रभावसे वहाँ प्रलय मग्न गया। इन्द्रादि देवताओंने सभी असुरोंको पराजित कर दिया और फिर वे सभी अपने-अपने लोक चले गये तथा पूर्ववत् आनन्दसे रहने लगे। देवताओंने उन भगवान् दत्तात्रेयकी महिमा और प्रभावको ही इसमें कारण माना।

दत्तात्रेयजी भी संसारके कल्याणके लिये ऊर्ध्वबाहु होकर कईठन तपस्या करने लगे। वे योगमार्गका आश्रय लेकर ध्यान-समाधिमें स्थित हो गये। इसी प्रकार समाधिमें उन्हें तीन हजार वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन माहिष्मतीके राजा हैहयधिपति कर्तवीर्यार्जुन उनके पास आया और रात-दिन उनकी सेवा करने लगा। दत्त उनकी सेवासे अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसकी याचनापर उसे बार बार प्रदान किये—'पहला वर था हजार हाथ हो जायँ, दूसरे वरसे सारी पृथ्वीको अधर्मसे बचाते हुए धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करना। तीसरे वरसे लड़ाईके मैदानमें किसीसे पराजित न होना तथा चौथे वरसे भगवान् विष्णुके हाथों मृत्यु होना।

कौत्सेय। योगाभ्यासमें लीन उन दत्तमुनिने कर्तवीर्यार्जुनको अष्टसिद्धियोंसे समन्वित चक्रवर्ती-पदवाले राज्यको प्रदान किया। कर्तवीर्यार्जुनने भी सप्तद्वीपा

१-यह अनेक राजाओंका नाम है। इसका वर्णन श्रीमद्भागवत ६।१८।१२, ब्रह्मवैवर्त ३।६।१०, वायु १७।१०३, मत्स्य ४७।७२ और विष्णु ४।६।१४ आदि पुराणोंमें आया है। इसे इन्द्रने मारा था, अतः इन्द्रका एक नाम अंघभेदी भी है।

वसुमतीको धर्मपूर्वक अपने अधीन कर लिया। यह सब उसके हजार बाहुओंका प्रभाव था। वह अपनी मण्डपार यज्ञोंके माध्यमसे ध्वजावाला रथ उत्पन्न कर लेता था। उसके प्रभावसे सभी द्वीपोंमें दस हजार यज्ञ निरन्तर होते रहते थे। उन यज्ञोंकी वेदियाँ, यूप तथा मण्डप आदि सभी सोनेके रहते थे। उनमें प्रचुर दक्षिणाएँ दी जाती थीं। विमानमें बैठकर सभी देवता, गन्धर्व तथा अप्सराएँ पृथ्वीपर आकर यज्ञकी शोभा बढ़ाते रहते थे। नारद नामक गन्धर्व उसके यज्ञकी गथा इस प्रकार गथा करता था—“कार्तवीर्यकि पराक्रमकी बात सुननेसे यह पता चलता है कि संसारका कोई भी राजा उसके समान यज्ञ, दान तथा तप नहीं कर सकता। सारों द्वीपोंमें केवल वही ढाल, तलवार तथा धनुष-बाणवाला है। जैसे बाज पक्षीको अन्य पक्षी डरसे अपने समीप ही समझते हैं, वैसे ही अन्य राजा लोग दूरसे ही इससे भय खाते हैं। इसकी सम्पत्ति कभी नष्ट नहीं होती, इसके राज्यमें न कहीं शोक दिखायी पड़ता है न कोई क्लृप्ता ही। यह अपने प्रभावसे पृथ्वीपर धर्मपूर्वक प्रजाओंका पालन करता है।”

**भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—**नराधिप ! कार्तवीर्य इस पृथ्वीपर पचासी हजार वर्षतक अखण्ड शासन करता रहा। वह अपने योगबलसे पशुओंका पालक तथा खेतीका रक्षक भी था। समयानुसार मेष बनकर वृष्टि भी करता था। धनुषकी प्रत्यक्षाके आघातसे कठोर तवायुक्त अपनी सहस्रों भुजाओंद्वारा वह सूर्यके समान उद्भासित होता था। उसने अपनी हजार भुजाओंके बलसे समुद्रको मथ डाला और नागलोकमें कर्कोटक आदि नागोंको जीतकर वहाँ भी अपनी नगरी बसा ली। उसकी भुजाओंद्वारा समुद्रके उद्भेदित होनेसे पातालवासी महान् अमुर भी निक्षेप्त हो जाते थे। बड़े-बड़े नाग उसके पराक्रमको देखकर सिर नीचा कर लेते थे। सभी धनुर्धरोंको उसने जीत लिया। अपने पराक्रमसे राज्यको भी

उसने अपनी माहिष्मती नगरीमें लाकर बंदी बना रखा था, जिसे फूलस्य ऋषिने छुड़वाया। एक बार भूखे-प्यासे चित्रभानु (अग्निदेव) को राजा कार्तवीर्यार्जुनने समस्त सप्तद्वीप वसुधराको दानमें दे दिया। इस प्रकार वह कार्तवीर्यार्जुन बड़े पराक्रमी एवं गुणवान् राजा हुआ था।

योगाचार्य भगवान् अनघ (दत्तात्रेय) से वर प्राप्तकर कार्तवीर्यार्जुनने पृथ्वीलोकमें इस अनघाष्टमी-व्रतको प्रवर्तित किया। अफ़सो पाप कहा जाता है यह तीन प्रकारका होता है—कार्यिक, वाचिक और मानसिक। यह अनघाष्टमी त्रिविध पापोंको नष्ट करनेवाली है, इसलिये इसे अनघ कहते हैं। इस व्रतके प्रभावसे अष्टविध ऐश्वर्य (अणिमा, महिमा, प्राप्ति, प्रबल्य, लभिमा, हौशिव, वशिव तथा सर्वकामावसायिता) प्राप्त कर लेना माने विनोद ही है।

**महाराज युधिष्ठिरने पूछा—**पुण्डरीकाक्ष ! राजा कार्तवीर्यार्जुनके द्वारा प्रवर्तित यह अनघाष्टमी-व्रत किन वस्तुओं द्वारा, कब और कैसे किया जाता है ? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**राजन् ! इस व्रतकी विधि इस प्रकार है—पारशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमीको कुन्तेसे खी-पुरुषकी प्रतिमा बनाकर भूमिपर स्थापित करनी चाहिये। उनमें एकमें सौम्य एवं शान्तिसवरूपयुक्त अनघ (दत्तात्रेय) की तथा दूसरेमें अनघा (लक्ष्मी) की भावना करनी चाहिये और ऋग्वेदके विष्णुसूक्तमें पूजा करनी चाहिये। पूजामें फल, कन्द, मृगारकी सामग्री, बेर, विविध धान्य, विविध पुष्पका उपयोग करना चाहिये। दीपक जलाना चाहिये तथा ब्राह्मणों एवं बन्धु-बान्धवोंको भोजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजा करनेवाला सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है, लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा भगवान् विष्णु उसपर प्रसन्न हो जाते हैं। (अध्याय ५८)

१-अतो देशा अवनु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पूर्विकाः  
इदं विष्णुर्वि चक्रमे रेधा नि दधे पदम्। समूहवत्स  
वीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गौतम अदायः। अतो  
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पश्यते। इन्द्रस्य  
तद् विष्णोः परमे पदे सदा परयन्ति सूतः। दिवीव  
तद् विष्णोः विपन्यको जागृहंसः समिप्यते। विष्णोर्वन्दे

सप्त धाम्निः ॥  
चतस्रे ॥  
धर्मोऽयं धारयन् ॥  
युज्यः सखः ॥  
चक्षुःशतम् ॥  
परमे पदम् ॥ (अमर १।२२।१६—२१)

## सोमाष्टमी-व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं एक दूसरा व्रत बतला रहा हूँ, जो सर्वसम्मत, कल्याणप्रद एवं शिवलोक-प्राप्तक है। शुक्ल पक्षकी अष्टमीके दिन यदि सोमवार हो तो उस दिन उमासहित भगवान् चन्द्रचूडका पूजन करें। इसके लिये एक ऐसी प्रतिमाकी स्थापना करनी चाहिये, जिसका दक्षिण भाग शिवस्वरूप और वामभाग उमा-स्वरूप हो। अनन्तर विधिपूर्वक उसे पञ्चमृतसे स्नान कराकर उसके दक्षिणभागमें कर्पूरयुक्त चन्दनका उपलेपन करें। श्वेत तथा रक्त पुष्प चढ़ाये और मुठमें फकाये गये नैवेद्यका भोग लगाये। रात्रीस प्रज्वलित दीपकोंसे उमासहित भगवान् चन्द्रचूडकी आरती करें। उस दिन निराहार रहकर दूसरे दिन प्रातः इसी प्रकार पूजन सम्पन्न कर लिल तथा चौसे हवन कर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। यथाशक्ति सप्तलोक ब्राह्मणकी पूजा करें और पितरोंका भी अर्चन करें। एक वर्षतक इस प्रकार व्रत करनेके एक विमोच तथा दूसरा चतुष्कोण (चौकोर) मण्डल बनाये। विमोचमें भगवती पार्वती तथा चौकोर मण्डलमें भगवान् शंकरकी स्थापित करें। तदनन्तर पूर्वोक्त विधिके अनुसार पार्वती एवं संकल्पकी पूजा करके श्वेत एवं पीत वस्त्रोंके दो वितान, फलका, घण्टा, धूपदानी, दीपमाला आदि पूजनके उपकरण ब्राह्मणको समर्पित

करें और यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी कराये। ब्राह्मण-दम्पतिका वस्त्र, आभूषण, भोजन आदिसे पूजनकर पचीस प्रज्वलित दीपकोंसे धीरे-धीरे नीराजन करें। इस प्रकार भक्तिपूर्वक पाँच वर्षोंतक या एक वर्ष ही व्रत करनेसे व्रती उमासहित शिवलोकमें निवास कर अनामय पद प्राप्त करता है। जो पुरुष आजोवन इस व्रतको करता है, वह तो साक्षात् विष्णुरूप ही हो जाता है। उसके समीप आपत्ति, शोक, ज्वर आदि कभी नहीं आते। इतना विधान कहकर भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महाराज ! इसी प्रकार रविवार-युक्त अष्टमीका भी व्रत होता है। उस दिन एक प्रतिमाके दक्षिण भागमें शिव और वाम भागमें पार्वतीकी पूजा करें। दिव्य पद्मरागसे भगवान् शंकरको और सुवर्णसे पार्वतीको अलंकृत करें। यदि रात्रीकी सुविधा न हो सके तो सुवर्ण ही चढ़ाये। चन्दनसे भगवान् शिवको और कुंकुमसे देवी पार्वतीकी अनुलिपि करें। भगवती पार्वतीको लाल वस्त्र और लाल माला तथा भगवान् शंकरको सफ़ेद निवेदित कर नैवेद्यमें घृतपक्व पदार्थ निवेदित करें। शेष सारा विधान पूर्ववत् कर पारण गन्ध-पदार्थोंमें करें। उद्यापन पूर्णतया करना चाहिये। इस व्रतको एक वर्ष अथवा लगातार पाँच वर्ष करनेवाला सूर्य आदि लोकोंमें उत्तम भोगको प्राप्तकर अन्तमें परमपदको प्राप्त करता है। (अध्याय ५९)



## श्रीवृक्षनवमी-व्रत-कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! देवता और दैत्योंने जब समुद्र-मंथन किया था, तब उस समय समुद्रमें निकली हुई लक्ष्मीको देखकर सभीकी यह इच्छा हुई कि मैं ही लक्ष्मीको प्राप्त कर लूँ। लक्ष्मीकी प्राप्तिको लेकर देवता और दैत्योंमें परस्पर युद्ध होने लगा। उस समय लक्ष्मीने कुछ देरके लिये विल्ववृक्षका आश्रय ग्रहण कर लिया। भगवान् विष्णुने सभीको जीतकर लक्ष्मीका वरण किया। लक्ष्मीने विल्ववृक्षका आश्रय ग्रहण किया था, इसलिए उसे श्रीवृक्ष भी कहते हैं। अतः भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथिको श्रीवृक्ष-नवमीव्रत करना चाहिये। सूर्योदयके समय भक्तिपूर्वक अनेक पुष्पों, गन्ध, वस्त्र, फल, तिलपिष्ट, अन्न, गोधूम,

धूप तथा माला आदिसे निम्नलिखित मन्त्रसे विल्ववृक्षकी पूजा करें—

श्रीनिवास नमस्तेऽस्तु श्रीवृक्ष शिववल्लभ ।

ममाभिलषितं कृत्वा सर्वविघ्नहरो भव ॥

इस विधिसे पूजा कर श्रीवृक्षकी सप्त प्रदक्षिणा कर उसे प्रणाम करें। अनन्तर ब्राह्मणभोजन कराकर 'श्रीदेवी प्रीयताम्' ऐसा कहकर प्रार्थना करें। तदनन्तर स्वयं भी तेल और नमकसे रहित बिना अन्नके संयोगसे तैयार किया गया भोजन, दही, पुष्प, फल आदिको मिट्टीके पात्रमें रखकर मौन हो ग्रहण करें। इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो पुरुष या स्त्री श्रीवृक्षका पूजन करते हैं, वे अवश्य ही सभी सम्पत्तियोंको प्राप्त करते हैं।

(अध्याय ६०)

### ध्वजनवमी-व्रत-कथा

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! भगवती दुर्गाद्वारा महिषासुरके वध किये जानेपर दैत्योंने पूर्व-वैष्णव स्मरण कर देवताओंके साथ अनेक संग्राम किये । भगवतीने भी धर्मकी रक्षाके लिये अनेक रूप धारण कर दैत्योंका संहार किया । महिषासुरके पुत्र रत्नसुरने बहुत लम्बे समयतक घोर तपस्या कर ब्रह्माजीको प्रसन्न किया और ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उसे तीनों लोकोंका राज्य दे दिया । उसने वह प्राप्तकर दैत्योंको एकत्रित किया तथा इन्द्रके साथ युद्ध करनेके लिये अमरावतीपर आक्रमण कर दिया । देवताओंने देखा कि दैत्य-सेना युद्धके लिये आ रही है, तब वे भी एकत्रित होकर देवराज इन्द्रकी अध्यक्षतामें युद्धके लिये आ डटे । घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया । दानवोंने इतना भयंकर युद्ध किया कि देवगण रण छोड़कर भाग गये । दैत्य रत्नसुर अमरावतीको अपने अधीन कर राज्य करने लगा । देवगण वहाँसे भागकर करक्षत्रापुरीमें गये, वहाँ भववत्सभा दुर्गा निवास करती है । वामुण्डा भी नवदुर्गाके साथ वहाँ विराजमान रहती है । वहाँ देवताओंनि महालक्ष्मी, नन्दा, क्षेमकरी, शिवदूती, महारुग्धा, धामरी, चन्द्रमङ्गला, रेवती और हरिसिद्ध—इन नौ दुर्गाओंकी भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए कहा—‘भगवती ! इस घोर संकटसे आप हमारी रक्षा करें, हमारे लिये अब दूसरा कोई भी अवलम्ब नहीं है ।’

देवताओंकी यह आर्त वाणी सुनकर खीस भुजाओंमें विभिन्न आयुध धारण किये सिंहारुखा नवदुर्गाके साथ कुम्भी-स्वरूपा भगवती प्रकट हो गयीं । तदनन्तर परम पराक्रमी और ब्रह्माजीके वरदानसे अभिमानों अधम अजहान्य प्रचण्ड दैत्यगण भी वहाँ आये, जिनमें इन्द्रगर्ग, गुरुकेरी, प्रलम्ब, नरक, कुष्ठ, पुलोमा, शरभ, शम्बर, दुन्दुभि, इत्थल, नमुचि, भीम, वातापि, त्रिभुक्त, कलि, मायावृत्त, बलबन्धु, कैटभ, कार्तिकेय, राहु, पौण्ड्र आदि दैत्य मुख्य थे । ये प्रचण्ड दैत्य अग्निके समान तेजस्वी, विविध बाह-नेत्र आकृष्ट अनेक प्रकारके शस्त्र, अस्र और ध्वजाओंको धारण किये हुए थे । उनके आगे पणव, भेरी, गोमुख, शङ्ख, डमरू, बिण्डीम आदि

बाजे बज रहे थे । दैत्योंने युद्ध आरम्भ कर दिया और भगवतीपर शर, शूल, परिष, पट्टिश, शक्ति, तोमर, कुन्त, राताष्ट्री, गदा, मुद्गर आदि अनेक आयुधोंकी वृष्टि करने लगे । भगवती भी क्रोधसे प्रचण्डित हो दैत्योंका संहार करने लगीं । उनके ध्वज आदि चिह्नोंको बलपूर्वक छीनकर देवगणोंको सौंप दिया । क्षणभरमें ही उन्होंने अनन्त दैत्योंका नाश कर दिया । रत्नसुरके कण्ठको पकड़कर पृथ्वीपर पटककर विशूलसे उसका हृदय विटोर्ण कर दिया । वधे हुए दैत्यगण वहाँसे जान बचाकर भाग निकले । इस प्रकार दैत्योंको कृपासे देवताओंने विजय प्राप्तकर करक्षत्रपुरमें आकर भगवतीका विशेष उत्सव मनाया । नगर तोरणों और ध्वजाओंसे अलंकृत किया गया । राजन् ! जो नवमी तिथिको उपवासकर भगवतीका उत्सव करता है तथा उन्हें ध्वज अर्पण करता है, वह अवश्य ही विजयी होता है ।

महाराज ! अब इस व्रतकी विधि सुनिये । पीप मासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथिको स्नानकर पूजाके लिये पुष्प अपने हाथसे बुने और उनसे सिंहवाहिनी कुमारी भगवतीका पूजन करे साथ ही विविध ध्वजाओंको भगवतीके सम्मुख स्थापित करे और मालती-पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, राग्य, चन्दन, विविध फल, माला, वस्त्र, दाँधि एवं बिना अग्निमें सिद्ध विविध भक्ष्य भगवतीको निर्बोद्ध करे एवं इस मन्त्रको पढ़े—

स्वां भगवतीं कृष्णां ग्रहं नक्षत्रमालिनीम् ।

प्रपञ्चोऽहं शिवां रात्रिं सर्वशशुक्षयं करीम् ॥

—फिर कुमारियों और देवीभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराये, सम्म-प्रार्थन करे, उपवास करे या भक्तिपूर्वक एकभुक्त रहे । इस प्रकारसे जो पुरुष नवमीको उपवास करता है और ध्वजाओंसे भगवतीको अलंकृत कर उनकी पूजा करता है, उसे घोर, अग्नि, जल, राजा, शत्रु आदिको भय नहीं रहता । इस नवमी तिथिको भगवतीने विजय प्राप्त की थी, अतः यह नवमी इन्हे बहुत प्रिय है । जो नवमीको भक्तिपूर्वक भगवतीकी पूजा कर इन्हे ध्वजारोपण करता है, वह सभी प्रकारके सुखोंको भोगकर अन्तमें वीरलोकको प्राप्त होता है । (अध्याय ६१)





### उल्का-नवमी-व्रतका विधान और फल

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! अब आप उल्का-नवमी-व्रतके विषयमें सुनें। आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी नवमीको नदीमें स्नानकर पितृदेवीकी विधिपूर्वक अर्चना करें। अनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य आदिसे भैरव-प्रिया चामुण्डादेवीकी पूजा करें, तदनन्तर इस मन्त्रसे हाथ जोड़कर स्तुति करें—

महिषासि महाभाये चामुण्डे मुण्डभारिणि ।

द्रव्यमारोप्यविजयी देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरार्णव ६२ (५))

इसके बाद यन्त्राशक्ति सात, पाँच या एक कुम्भीको भोजन कराकर उन्हें नीला कंकुब, अभूषण, वस्त्र एवं दक्षिणा आदि देकर संतुष्ट करें। श्राद्धसे भगवती प्रसन्न होती हैं। अनन्तर भूमिका अभ्युक्षण करें। तदनन्तर गोबरका चौका लगाकर आसनपर बैठ जाय। सामने पात्र रखकर, जो भी

भोजन बना हो सारा परोस ले, फिर एक मुट्ठी तृण और सूखे पत्तोंको अग्निसे प्रज्वलित कर जितने समयतक प्रकाश रहे उतने समयमें ही भोजन सम्पन्न कर ले। अग्निके शान्त होते ही भोजन करना बंद कर आचमन करें। चामुण्डाका हृदयमें ध्यानकर प्रसन्नतापूर्वक धरका कार्य करें। इस प्रकार प्रतिमास व्रतकर वर्षिक सम्पन्न होनेपर कुमारी-पूजा करें तथा उन्हें वस्त्र, अभूषण, भोजन आदि देकर उनसे क्षमा-याचना करें। ब्राह्मणको सुवर्ण एवं गौका दान करें। हे पार्थ ! इस प्रकार जो पुरुष उल्का-नवमीका व्रत करता है, उसे शत्रु, अग्नि, राजा, चोर, भूत, प्रेत, पिशाच आदिका भय नहीं होता एवं युद्ध आदिमें उसपर शत्रुको प्रहार नहीं लगता, देवी चामुण्डा उसकी सर्वत्र रक्षा करती है। इस उल्का-नवमी-व्रतको करनेवाले पुरुष और स्त्री उल्काकी तरह तेजस्वी हो जाते हैं।

(अध्याय ६२)

### दशावतार-व्रत-कथा, विधान और फल

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**राजन् ! सत्ययुगके प्रारम्भमें भृगु नामके एक ऋषि हुए थे। उनकी भार्या दिव्यतः अत्यन्त पतिव्रता थीं। वे अश्वत्थकी शोभा थीं और निरन्तर गृहकार्यमें सेलप्त रहती थीं। वे महर्षि भृगुकी आज्ञाका पालन करती थीं। भृगुजी भी उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे।

किसी समय देवासुर-संग्राममें भगवान् विष्णुके द्वारा असुरोंको महान् भय उपस्थित हुआ। तब वे सभी असुर महर्षि भृगुकी शरणमें आये। महर्षि भृगु अपना अग्निहोत्र आदि कार्य अपनी भार्याको सौंपकर स्वयं संजीवनी-विद्याको प्राप्ति करनेके लिये हिमालयके उत्तर भागमें जाकर तपस्या करने लगे। वे भगवान् शंकरकी आराधना कर संजीवनी-विद्याको प्राप्ति कर दैत्यराज बलिको सदा विजयी करना चाहते थे। इसी समय गरुड़पर चढ़कर भगवान् विष्णु वहाँ आये और दैत्योंका वध करने लगे। क्षणभरमें ही उन्होंने दैत्योंका संहार कर दिया। भृगुकी पत्नी दिव्या भगवान्को शाप देनेके लिये उद्यत हो गयीं। उनके मुखसे शाप निकलना ही चाहता था कि भगवान् विष्णुने चक्रसे उनका सिर काट दिया। इतनेमें भृगुमुनि भी

संजीवनी-विद्याको प्राप्तिकर वहाँ आ गये। उन्होंने देखा कि सभी दैत्य मरे गये हैं और ब्राह्मणी भी मार दी गयी है। क्रोधान्न हो भृगुने भगवान् विष्णुको शाप दे दिया कि 'तुम दस बार मनुष्यलोकमें जन्म लोगे।'

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! भृगुके शापसे जगत्की रक्षाके लिये मैं बार-बार अवतार ग्रहण करता हूँ। जो लोग भक्तिपूर्वक मेरी अर्चना करते हैं, वे अवश्य स्वर्गगामी होते हैं।

**महाराज युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् ! आप अपने दशावतार-व्रतका विधान कहिये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! भाद्रपद मासके गुरु पक्षकी दशमीको संयतेन्द्रिय हो नदी आदिमें स्नान कर तर्पण सम्पन्न करें तथा घर आकर तीन अर्जुल खान्दका चूर्ण लेकर धृतमें पकायें। इस प्रकार दस वर्षोंतक प्रतिवर्ष करें। प्रतिवर्ष क्रमशः पूरी, घेवर, कसार, मोदक, सोझालक, खण्डवेष्टक, कोकरस, अपूप, कर्णवेष्ट तथा खण्डक—ये पक्काव उस चूर्णसे बनाये और उसे भगवान्को

नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे । प्रत्येक दशहराको दस गौएँ दस ब्राह्मणोंको दे । नैवेद्यका आधा भाग भगवान्‌के सामने रख दे, चौथाई ब्राह्मणको दे और चौथाई भाग पवित्र जलाशयपर जाकर बादमें स्वयं भी ग्रहण करे । गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे मन्त्रपूर्वक दशावतारोंका पूजन करे । भगवान्‌के दस अवतारोंके नाम इस प्रकार हैं—(१) मत्स्य, (२) कूर्म, (३) वराह, (४) नृसिंह, (५) विष्णुकर्म (वामन), (६) परशुराम, (७) श्रीराम, (८) श्रीकृष्ण, (९) बुद्ध तथा (१०) कल्कि ।

अनन्तर प्रार्थना करे—

गतोऽस्मि शरणं देवं हरि नारायणं प्रभुम् ।

प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥

### आशादशमी-व्रत-कथा एवं व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्य ! अब मैं अपनेसे आशादशमी-व्रत-कथा एवं उसके विधानका वर्णन कर रहा हूँ । प्राचीन कालमें निषध देशमें नल नामके एक राजा थे । उनके भाई पुष्करने हलमें जब उन्हें पराजित कर दिया, तब नल अपनी भार्या दमयन्तीके साथ राज्यसे बाहर चले गये । वे प्रतिदिन एक वनसे दूसरे वनमें भ्रमण करते रहते थे, केवल जलमात्रसे अपना जीवन-निर्वाह करते थे और जनशून्य भयंकर वनोंमें घूमते रहते थे । एक बार राजाने कनमें स्वर्ण-सी कान्तिवाले कुछ पक्षियोंको देखा । उन्हें फकड़नेकी इच्छासे राजाने उनके ऊपर वस्त्र फैलाया, परंतु वे सभी उस वस्त्रको लेकर आकाशमें उड़ गये । इससे राजा बड़े दुःखी हो गये । वे दमयन्तीको गाढ़ निद्रामें देखकर उसे उसी स्थितिमें छोड़कर चले गये ।

दमयन्तीने निद्रामें उठकर देखा तो नलको न पाकर वह उस घोर वनमें हाड़ाकर करते हुए रोने लगी । माता-दुःख और शोकसे संतप्त होकर वह नलके दर्शनकी इच्छासे इधर-उधर भटकने लगी । इसी प्रकार कई दिन बीत गये और भटकते हुए वह चेदिदेशमें पहुँची । वहाँ वह उष्ण-सी रहने लगी । छोटे-छोटे शिशु उसे कौतुकवश घेरे रहते थे । किसी दिन मनुष्योंसे घिरी हुई उसे चेदिदेशके राजाकी माताने देखा । उस

छिनतु वैष्णवीं मायां भक्त्या प्रीतो जनार्दनः ।

श्वेतद्वीपे नयत्वसान्ध्यात्मा चिनिवेदितः ॥

(उत्तरार्ध ६३। २४-२५)

‘दस अवतारोंको धारण करनेवाले सर्वव्यापी, सम्पूर्ण संसारके स्वामी हे नारायण हरि ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ । हे देव ! आप मुझपर प्रसन्न हो । जनार्दन ! आप भक्तिद्वारा प्रसन्न होते हैं । आप अपनी वैष्णवी मायाको निवारित करें, मुझे आप अपने धाममें ले चलें । मैंने अपनेको आपके लिये सौंप दिया है ।’

इस प्रकार जो इस व्रतको करता है, वह भगवान्‌के अनुग्रहसे जन्म-मरणसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है और सदा विष्णुलोकमें निवास करता है । (अध्याय ६३)

समय दमयन्ती चन्द्रमाकी रेखाके समान भूमिपर पड़ी हुई थी । उसका मुखगण्डल प्रकाशित था । राजमाताने उसे अपने भयनमें बुलाकर पूछा—‘वरुने ! तुम क्यों हो ?’ इसपर दमयन्तीने लजित होते हुए कहा—‘मैं सैरस्त्री हूँ । मैं न किसीके चरण धोती हूँ और न किसीका उच्छिष्ट भक्षण करती हूँ । यहाँ रहते हुए कोई मुझे प्राप्त करेगा तो वह आपके द्वारा दण्डनीय होगा । देवि ! इस प्रतिज्ञाके साथ मैं यहाँ रह सकती हूँ ।’ राजमाताने कहा—‘ठीक है ऐसा ही होगा ।’ तब दमयन्तीने वहाँ रहना स्वीकार किया और इसी प्रकार कुछ समय व्यतीत हुआ और फिर एक ब्राह्मण दमयन्तीको उसके माता-पिताके घर ले आया । पर माता-पिता तथा भाइयोंका खेह पानेपर भी पतिके बिना वह अत्यन्त दुःखी रहती थी ।

एक बार दमयन्तीने एक श्रेष्ठ ब्राह्मणको बुलाकर उससे पूछा—‘हे ब्राह्मणदेवता ! आप कोई ऐसा दान एवं व्रत बतावाये, जिससे मेरी पति मुझे प्राप्त हो जायँ ।’ इसपर उस बुद्धिमान् ब्राह्मणने कहा—‘भद्रे ! तुम मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त करनेवाले आशादशमी-व्रतको करो ।’ तब दमयन्तीने पुराणवेत्ता उस दमन नामक पुरोहित ब्राह्मणके द्वारा ऐसा कहे जानेपर आशादशमी-व्रतका अनुष्ठान किया । उस व्रतके प्रभावसे दमयन्तीने अपने पतिको पुनः प्राप्त किया ।

१-दशवतारोंमें दो पक्ष प्राप्त होते हैं, एकमें भगवान् कुलको पूर्णतम भगवान् मानकर केन्द्रमें रखा गया है और अन्य उन दस अवतारोंके भोक्तृ ही रख लिया है । दोनों मत मान्य हैं, अतः संदेह नहीं करना चाहिये ।

**युधिष्ठिरने पूछा—**हे गोविन्द ! यह आशादशमी-व्रत किस प्रकार और कैसे किया जाता है, आप सर्वज्ञ हैं, आप इसे बतलायें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**हे राजन् ! इस व्रतके प्रभावसे राजपुत्र अपना राज्य, कृषक खेती, बर्षिक व्यापारमें लाभ, पुत्रार्थी पुत्र तथा मानव धर्म, अर्थ एवं कामकी सिद्धि प्राप्त करते हैं। कन्या श्रेष्ठ वर प्राप्त करती है, ब्राह्मण निर्धन यज्ञ सम्पन्न कर लेता है, रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और पतित धि-प्रवास हो जानेपर श्री उसे शीघ्र ही प्राप्त कर लेती है। शिशुके दन्तजनित पीड़ामें भी इस व्रतसे पीड़ा दूर हो जाती है और कष्ट नहीं होता। इसी प्रकार अन्य कार्योंकी सिद्धिके लिये इस आशादशमी-व्रतको करना चाहिये। जब भी जिस किसीको कोई कष्ट पड़े, उसकी निवृत्तिके लिये इस व्रतको करना चाहिये।

यह आशादशमी-व्रत किसी भी मासके शुक्ल पक्षकी दशमीको किया जाता है। इस दिन प्रातःकाल स्नान करके देवताओंकी पूजा कर रात्रिमें पुष्प, अलक्त तथा चन्दन आदिसे दस आशादेवियोंकी पूजा करनी चाहिये। चरके आँगनमें जोसे अथवा पिष्टातकसे पूर्वदि दसों दिशाओंके अधिपतियोंकी प्रतिमाओंको उनके वाहन तथा अश्व-शस्त्रोंसे सुसज्जित कर उन्हें ही ऐन्द्री आदि दिशा-देवियोंके रूपमें मानकर पूजन करना चाहिये। सबको घृतपूर्ण नैवेद्य, पृथक्-पृथक् दीपक तथा ऋतुफल आदि समर्पित करना चाहिये। इसके अनन्तर अपने कार्यकी सिद्धिके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

आशाक्षाशाः सदा सन्तु सिद्धयन्तां मे मनोरथाः ।

भक्तियों प्रसादेन सदा कल्याणमस्त्विति ॥

(उत्तरपर्व ६४।२५)

हे आशादेवियो ! मेरी आशाएँ सदा सफल हों, मेरे मनोरथ पूर्ण हों, आपलोगोंके अनुग्रहसे मेरा सदा कल्याण हो।

इस प्रकार विधिवत् पूजा कर ब्राह्मणको दक्षिणा प्रदानकर प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। इसी क्रमसे प्रत्येक मासमें इस व्रतको करना चाहिये। जबतक अपना मनोरथ पूर्ण न हो जाय, तबतक इस व्रतको करना चाहिये। अनन्तर उद्यापन करना चाहिये। उद्यापनमें आशादेवियोंकी सोने, चाँदी अथवा पिष्टातकसे प्रतिमा बनाकर घरके आँगनमें उनकी पूजा करके ऐन्द्री, अग्रेयी, चाम्पा, नैऋति, वारुणि, वायव्या, सौम्या, ऐश्वरी, अधः तथा ब्राह्मी—इन दस आशादेवियों (दिशा-देवियों) से अभीष्ट कामनाओंकी सिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये, साथ ही नक्षत्रों, ग्रहों, ताराग्रहों, नक्षत्र-मातृकाओं, भूत-प्रेत-विनायकोंसे भी अभीष्ट-सिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। पुष्प, फल, धूप, गन्ध, वस्त्र आदिसे उनकी पूजा करनी चाहिये। सुहृद्गिनी शिवोंकी नृत्य-गीत आदिके द्वारा रात्रि-जागरण करना चाहिये। प्रातःकाल विद्यान् ब्राह्मणको सब कुछ पूजित पदार्थ निवेदित कर देना चाहिये और उन्हें प्रणाम कर क्षमा-वाचना करनी चाहिये। अनन्तर जम्बू-जायन्तों एवं मित्रोंके साथ प्रसन्न-मनसे भोजन करना चाहिये। हे पार्थ ! जो इस आशादशमी-व्रतको श्रद्धापूर्वक करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। यह व्रत शिवोंके लिये विशेष श्रेयस्कর है। (अध्याय ६४)

### तारकहृदशीके प्रसंगमें राजा कुशध्वजकी कथा तथा व्रत-विधान

**महाराज युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् ! मैं बहुत बड़ा पातकी हूँ। भीष्म, द्रोण आदि महात्माओंका मैंने वध किया। आप कृपाकर कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे मैं इस वधरूपी पापसमूहसे छुटकारा पा सकूँ।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! प्राचीन कल्पमें विदर्भ देशमें एक बड़ा प्रतापी कुशध्वज नामका राजा रहता था। किसी दिन वह मृगयाके लिये वनमें गया। वहाँ उसने मृगके धोखेमें एक तपस्वी ब्राह्मणको वाणसे मार दिया।

मारनेके बाद उस पापसे उसे भयंकर रौरव नरककी प्राप्ति हुई। फिर वह बहुत दिनोंतक नरककी यातनाको भोगकर भयंकर सर्प-योनिमें गया। सर्प-योनिमें भी उसने पाप किया। इस कारण उसे सिंह-योनि प्राप्त हुई। इस प्रकार उसने कई निन्द्य योनियोंमें जन्म लिया और उस-उस योनिमें पाप-कर्म करता रहा। इस कर्मविकाससे उसे कष्ट भोगना पड़ता था। चूँकि उसने पूर्वजन्ममें तारकहृदशीका व्रत किया था, अतः उस व्रतके प्रभावसे इन पाप-योनियोंसे वह जल्दी-जल्दी मुक्त होता

गया। अन्तमें पुनः वह विदर्भ देशका धर्माला राजा हुआ। वह भक्तिपूर्वक तारकद्वादशीको व्रत किया करता था। उसके प्रभावसे बहुत समयतक निष्कण्टक राज्यकर, मरनेपर उसने विष्णुलोकको प्राप्त किया।

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**कृष्णचन्द्र ! इस व्रतको किस प्रकार करना चाहिये ?

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**राजन् ! मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षके द्वादशीको तारकद्वादशी-व्रत करना चाहिये। प्रातःकाल नदी आदिमें स्नानकर तर्पण, पूजन आदि सम्पन्न कर सूर्यास्ततक हवन करता रहे। सूर्यास्त होनेपर पवित्र भूमिके ऊपर गोमयसे तारुओंसहित एक सूर्य-मण्डलका निर्माण करे। उस आकाशमें चन्दनसे ध्रुवको भी अङ्कित करे। अनन्तर ताम्रके अर्घ्यपात्रमें पुष्प, फल, अन्नत, गन्ध, सुवर्ण तथा जल रखकर मस्तकतक उस अर्घ्यपात्रको उठाकर देनों जानुओंको भूमिपर टेककर पूर्वाभिमुख होकर 'सहस्रशीर्षा' इस मन्त्रसे

उस मण्डलको अर्घ्य प्रदान करे। अनन्तर ब्राह्मण-भोजन करना चाहिये। मार्गशीर्ष आदि बारह महीनोंमें क्रमशः खण्ड-खाद्य, सोहालक, तिल-तण्डुल, गुडके अपूप, मोदक, खण्डवेष्टक, सत्तु, गुह्ययुक्त पुरी, मधुरशीर्ष, पायस, धृतपण (करंज) और कसारका भोजन ब्राह्मणको कराये। तदनन्तर सप्त-प्रार्थना कर मौन-धारणपूर्वक स्वयं भी भोजन करे। उद्यापनमें चाँदीका तारकमण्डल बनाकर उसकी पूजा करे। मोदकके साथ बारह घड़े तथा दक्षिणाके साथ वह मण्डल ब्राह्मणको निवेदित कर दे। इस विधिसे जो पुरुष और स्त्री इस तारकद्वादशी-व्रतको करते हैं, वे सूर्यके समान देदीप्यमान विमानोंमें बैठकर नक्षत्र-लोकको जाते हैं। वहाँ अयुत वर्षोंतक निवास कर विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं। इस व्रतको सती, कर्पूरी, सीता, राजी, दमयन्ती, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि श्रेष्ठ नरियोंने किया था। इस व्रतको करनेसे अनेक जन्मोंमें किये गये पातक नष्ट हो जाते हैं। (अध्याय ६५)

### अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान और फल

**महाराज युधिष्ठिरने कहा—**श्रीकृष्णचन्द्र ! आप अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान बतलायें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**कीर्त्तय ! प्राचीन कलमें जिस व्रतको रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वनमें सौताजीने किया था और अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य आदिसे मुनिपरिवारोंको संतुष्ट किया था, उस अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान मैं बतलाता हूँ, आप श्रुतिपूर्वक सुनें। इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासकी शुक्ल एकदशीको प्रातः स्नानकर भगवान् जनार्दनकी भक्तिपूर्वक गन्ध, पुष्पादि उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये और उपवास रखना चाहिये। रात्रिमें जागरण करना चाहिये। दूसरे दिन स्नान आदि करके वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे उपवनमें ले जाकर प्रायः फल आदि भोजन करना चाहिये। अनन्तर पञ्चगव्यका प्राशन कर स्वयं भी भोजन करना चाहिये।

इस विधिसे एक वर्षतक व्रत करे। श्रावण, कार्तिक, माघ तथा चैत्र मासमें वृक्षादिसे सुशोभित किसी सुन्दर वनमें अरण्यवासियों, मुनियों तथा ब्राह्मणोंको पूर्व या उत्तरमुख आसनपर बैठाकर मण्डक, धृतपूर, खण्डवेष्टक, शाक,

व्यञ्जन, अपूप, मोदक तथा सोहालक आदि अनेक प्रकारके पकवात्र, फल तथा विभिन्न भोज्य पदार्थोंसे संतुष्ट करे और दक्षिणा प्रदान करे। कर्पूर, इलायची, कस्तूरी आदिसे सुगन्धित पानक पिलाना चाहिये। वनमें रहनेवाले मुनिगण एवं उनकी पत्नियों, एक दण्डी अथवा त्रिदण्डी और गृहस्थ आदि अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन करना चाहिये। वासुदेव, जनार्दन, दामोदर, मधुसूदन, पद्मनाभ, विष्णु, गोवर्धन, त्रिविक्रम शंभर, हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष तथा बरह—इन बारह नामोंसे नमस्कारपूर्वक एक-एक ब्राह्मणको भोजन कराकर वस्त्र और दक्षिणा देकर 'विष्णुर्मे प्रीयताम्' यह वाक्य कहकर अपने मित्र, सम्बन्धी और बान्धवोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकारसे जो अरण्यद्वादशी-व्रत करता है, वह अपने परिवारके साथ दिव्य विमानमें बैठकर भगवान्के धाम श्वेतद्वीपमें निवास करता है। वह वहाँ प्रलम्पपर्यन्त निवासकर मुक्ति प्राप्त करता है। यदि कोई स्त्री भी इस व्रतका आचरण करती है तो वह भी संसारके सभी सुखोंका उपभोग कर भगवान्की कृपासे पतिलोकको प्राप्त करती है। (अध्याय ६६)



## रोहिणीचन्द्र-व्रत तथा अवियोग-व्रतका विधान

**महाराज युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! वर्षाकालमें आकाश नीले मेघसे आच्छादित हो जाता है। मोर चारों ओर मीठी-मीठी बोली बोलने लगते हैं। मेढकोंकी ध्वनि भी बड़ी सुहावनी लगती है, इस समय कुलीन स्त्रियाँ किसको अर्घ्य दे तथा कौन-सा सत्कर्म करें और वे किस तिथिमें कौन-सा व्रत करें ? आप इसका वर्णन करें।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! श्रेष्ठ स्त्रियोंको इस समय रोहिणीचन्द्र-व्रतका पालन करना चाहिये। ब्राह्मण मासके कृष्ण पक्षकी एकदशीको पवित्र होकर सर्वोपधिभिन्नित जलसे स्नान करे, अनन्तर उड़दके आटेकी एक सौ इन्दुरिका और पाँच घृत-मोदक बनाये। सभी सामग्रियोंको लेकर उत्तम जलाशयपर जाय और उसके तटपर गोबरसे मण्डलकी रचना करे, उसमें रोहिणीके साथ चन्द्रमाकी अङ्कित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्य आदिसे उनकी अर्चना करे और इस प्रकार उनकी प्रार्थना करे—

सोमराज नमस्तुभ्यं रोहिण्यै ते नमो नमः।

महासति माहादेवि सम्पादय ममेधितम् ॥

(उत्तरपर्व ६७/८)

अनन्तर 'सोमो मे प्रीयताम्' तथा 'देवी रोहिणी मे प्रीयताम्' ऐसा कहते हुए पूजन-द्रव्य ब्राह्मणके लिये निवेदित कर दे। अनन्तर कमरतक जलमें उतरकर मनमें रोहिणीसहित चन्द्रमाका ध्यान करते हुए उन इन्दुरिकाओंका भक्षण कर ले। अनन्तर जलसे बाहर आकर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा दे। प्रतिवर्ष इस विधिसे जो स्त्री अथवा पुरुष भक्तिपूर्वक व्रत करता है, वह धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादिसे

पतिपूर्ण होकर बहुत दिनोंतक सुख भोगकर तीर्थ-स्थानमें मृत्युको प्राप्त करता है और ब्रह्मलोकको जाता है, अनन्तर विष्णुलोक, तदनन्तर शिवलोकमें जाता है।

**महाराज युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! आप यह बतायें कि अवियोगव्रत किस विधिसे किया जाता है ?

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! अवियोगव्रत सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ है, मैं उसका विधान बतलाता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें।

श्राद्धपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको प्रातः उठकर जलाशयपर जाकर स्नान करे, शुद्ध शुक्ल वस्त्र धारणकर सुन्दर लिये-पुते स्थानपर गोबरसे एक मण्डलका निर्माण कर, उसमें लक्ष्मीसहित विष्णु, गौरीसहित शिव, सावित्रीसहित ब्रह्मा, रुद्रसहित सूर्यनारायणकी प्रतिमा स्थापितकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे इन चारों देवदम्पतियोंकी पृथक्-पृथक् नाम-मन्त्रोंसे आदिमें 'ॐ'कार तथा अन्तमें 'नमः' पदकी योजनाकर पूजा एवं प्रार्थना करे। अनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। फिर विविध दान देकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये। इस अवियोगव्रतको जो करता है, उसका कभी भी दुःखजनों (मित्र, पुत्र, पत्नी आदि)से वियोग नहीं होता और बहुत समयतक वह सांसारिक सुखोंका भोगकर क्रमशः विष्णु, शिव, ब्रह्मा और सूर्यलोकमें निवास कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है। जो स्त्री इस व्रतको करती है, वह भी अपने सभी अभीष्ट फलोंको प्राप्त कर विष्णुलोकको प्राप्त करती है।

(अध्याय ६७—६८)

## गोवत्सद्वादशीका विधान, गौओंका माहात्म्य, मुनियों और राजा उत्तानपादकी कथा

**महाराज युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् ! मेरे राज्यकी प्राप्तिके लिये अष्टारह अक्षौहिणी सेनाएँ नष्ट हुई हैं, इस पापसे मेरे चित्तमें बहुत घृणा उत्पन्न हो गयी है। उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि सभी मारे गये हैं। भीष्म, द्रोण, कर्लिंगराज, कर्ण, शल्य, दुर्योधन आदिके मरनेसे मेरे हृदयमें महान् क्लेश है। हे जगत्पते ! इन पापोंसे छुटकारा पानेके लिये किसी धर्मका आप वर्णन करें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**हे पार्थ ! गोवत्सद्वादशी नामका व्रत अतीव पुण्य प्रदान करनेवाला है।

**युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! यह गोवत्सद्वादशी कौन-सा व्रत है ? इसके करनेका क्या विधान है ? इसकी कब और कैसे उत्पत्ति हुई है ? मैं नरकर्णव्रतमें डूब रहा हूँ, प्रभो ! आप मेरी रक्षा कीजिये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**पार्थ ! सत्ययुगमें

पुण्यशाली जम्बूमार्ग (भड़ौच) में नामवतधरा नामक पर्वतके टेटाधि नामक रमणीय शिखरपर भगवान् शंकरके दर्शन करनेकी इच्छासे करोड़ों मुनिगण तपस्या कर रहे थे। वह तपोवन अतुलनीय दिव्य काननोसे मण्डित था। वह महर्षि भृगुका आश्रममण्डल था। विविध मृगगण और बंदरोंसे समन्वित था। सिंह आदि सभी जंगली पशु, अमनन्दपूर्वक निर्भय होकर वहाँ साथ-साथ ही निवास करते थे। उन तपस्यारत मुनिपौको दर्शन देनेके व्याजसे भगवान् शंकरने एक वृद्ध ब्राह्मणका वेश बना लिया। जर्जर-देहवाले वे वृद्ध ब्राह्मण हाथमें डंडा लिये कपिते हुए उस स्थानपर आये। जगन्माता पार्वती भी सुन्दर सवस्त्रा गौका रूप धारणकर वहाँ उपस्थित हुई।

पार्थ ! गौका जो स्वरूप है, उसे आप सुनें—प्राचीन कालमें क्षीरसागरके मन्थनके समय अमृतके साथ पाँच गौएँ उत्पन्न हुई—नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुरशीला तथा बहुला। इन्हें लोकमाता कहा गया है। इनका आविर्भाव लोकेश्वर तथा देवताओंकी कृप्तिके लिये हुआ है। देवताओंने अभीष्ट कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली इन पाँच गौओंको महर्षि जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, असित तथा गौतममुनिसे प्रदान किया और इन महाभागोंने इन्हें ग्रहण किया। गौओंके छः अङ्ग—गोमय, रोचना, मूत्र, दुग्ध, दधि और घृत—ये अत्यन्त पवित्र और संशुद्धिके साधन भी हैं। गोमयसे शिवप्रिय श्रीमान् बिल्ववृक्ष उत्पन्न हुआ, उसमें पट्टहस्ता श्रीलक्ष्मी विद्यमान है, इसीलिये इसे श्रीवृक्ष कहा जाता है।

गोमयसे ही कमलके बीज उत्पन्न हुए हैं। गोरोचन अतिशय मङ्गलमय है, यह पवित्र और सर्वार्थसाधक है। गोमूत्रसे गुग्गुलुकी उत्पत्ति हुई है, जो देखनेमें प्रिय और सुगन्धियुक्त है। यह गुग्गुलु सभी देवोंका आहार है। विशेषरूपसे शिवका आहार है। संसारमें जो कुछ भी मूलभूत बीज है, वे सभी गोदुग्धसे उत्पन्न हैं। प्रयोजनकी सिद्धिके लिये सभी माङ्गलिक पदार्थ दधिसे उत्पन्न हैं। घृतसे अमृत उत्पन्न होता है, जो देवोंकी कृत्तिका साधन है। ब्राह्मण और गौ एक ही कुलके दो भाग हैं। ब्राह्मणोंके हृदयमें तो वेदमन्त्र निवास करते हैं और गौओंके हृदयमें हवि रहती है। गायमें ही यज्ञ प्रकृत होता है और गौमें ही सभी देवगण प्रतिष्ठित हैं। गायमें ही छः अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद समाहित हैं<sup>१</sup>।

गौओंके सींगकी जड़में सदा ब्रह्मा और विष्णु प्रतिष्ठित हैं। शृङ्गके अग्रभागमें सभी चराचर एवं समस्त तीर्थ प्रतिष्ठित हैं। सभी चराचरोंके चरणस्वरूप महादेव शिव मध्यमें प्रतिष्ठित हैं। गौके ललाटमें गौरी, नासिकामें वार्तिकिय और नासिकाके दोनों पुटोंमें कम्बल तथा अक्षतर ये दो नाग प्रतिष्ठित हैं। दोनों कानोंमें अधिनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्र और सूर्य, दाँतोंमें आठों वसुगण, जिह्वामें करुण, कुहरामें सरस्वती, गण्डस्थलोंमें यम और यक्ष, ओष्ठोंमें दोनों संध्याएँ, ग्रीवामें इन्द्र, कवच (मोर) में राक्षस, पार्श्व-भागमें दक्ष और जंघाओंमें चारों चरणोंसे धर्म सदा विराजमान रहता है। खुरोंके मध्यमें गन्धर्व, अग्रभागमें सर्व एवं पश्चिम-भागमें राक्षसगण प्रतिष्ठित हैं। गौके पृष्ठदेशमें एकदरा रुद्र, सभी संधियोंमें वरुण, श्रोणिगट (कमर) में

१-क्षीरेदगोपसम्भूतः यः पुनस्तमन्वते। पञ्च गवो दुग्धः पार्थ पञ्चवेकस्य गवतः ॥

नन्दा सुभद्रा सुरभिः सुरशीला बहुला इति। एता लोकेश्वरकाय देवानां वर्तमायः च ॥

जमदग्निभद्राजवसिष्ठसितव्रीहयः । जगन्मूत्रममृतः पञ्च गवो दधः सूरिमतः ॥

गोमये रोचने मूत्रे क्षीरे दधि घृतं गवाम्। घटङ्गुनि पवित्रं संशुद्धिकरवति च ॥

गोमयमुनिनाः श्रीमान् बिल्ववृक्षः शिवप्रियः। तस्मै पट्टहस्ता श्री लक्ष्मसेन स मृतः।

क्षीर-गुग्गुलुस्थानी पुनर्कोटिनि गोमयम् ॥

गोरोचना च गङ्गान्या पवित्रा सर्वसंधिषु च ॥

गोमूत्रम् गुग्गुलुबीजः सुरभिः विषदरशनः। अक्षतः तर्कटिकानां शिवस्य च विशेषतः ॥

यद्येवं वपतः किंचित् तन्मेघं क्षीरगन्धम् ॥

दधिजलानि सखीनि मङ्गलान्यर्थसिद्धये। घृतदुग्धमूत्रयुग्मं देवानां कृत्तिकाशान् ॥

ब्राह्मणशैव गायका कुलमेकं द्विष कुतम्। एवम् सर्वकिल्बिषि हरित्यत्र तिष्ठति ॥

गोषु यज्ञः प्रकर्त्तसे गोषु देवः प्रतिष्ठितः। गोषु वेदाः समुत्पन्नाः सर्वदङ्गवदङ्गमाः ॥ (उत्तरपर्व ६९।२६—२४)

पितर, कपोलोंने मानव तथा अपानमें स्वाहा-रूप अलंकारको आश्रित कर श्री अवस्थित हैं। आदित्यशिर्या केरा-समूहोंमें पिण्डीभूत हो अवस्थित हैं। गोधूममें साक्षात् गङ्गा और गोमयमें यमुना स्थित हैं। रोमसमूहमें तैलिस करोड़ देवगण प्रतिष्ठित हैं। उदरमें पर्वत और जंगलोंके साथ पृथ्वी अवस्थित है। चारों पयोधरोंमें चारों महासमुद्र स्थित हैं। क्षीरधारओंमें मेघ, वृष्टि एवं जलविन्दु हैं, जठरमें गार्हपत्याग्नि, हृदयमें दक्षिणाग्नि, कण्ठमें आहवनीयाग्नि और तालुमें सप्याग्नि स्थित है। गौओंकी अस्थियोंमें पर्वत और मन्जाओंमें पद्म स्थित हैं। सभी वेद भी गौओंमें प्रतिष्ठित हैं।

हे युधिष्ठिर ! भगवती उमा ने उन सूर्यभयोंके रूपका स्मरणकर अपना भी रूप वैसा ही बना लिया। छः स्थानोंसे उन्नत, पाँच स्थानोंसे निम्न, भण्डूकनेत्र, सुन्दर पृष्ठवाली, ताम्रके समान रक्त सनवाली, चौटीके समान उज्ज्वल कटि-भागवाली, सुन्दर खुर एवं सुन्दर मुखवाली, श्वेतकर्ण, सुशीला, पुत्रश्रेष्ठवाली, माधुर दूधवाली, शोभन पयोधरवाली— इस प्रकार सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न सबत्सा गोरूपधारिणी उस उमाको वृद्ध विप्ररूपधारी भगवान् शंकर प्रसन्नचित होकर चरा रहे थे। हे पार्ष ! धीरे-धीरे वे उस आश्रममें गये और कुलपति भृगुके पास जाकर उन्होंने उस गायको व्यासरूपमें दो दिनतक उसकी सुरक्षा करनेके लिये उन्हें दे दिया और कहा—‘मुने ! मैं यहाँ स्नानकर जम्बूद्वीपमें जाऊँगा और दो दिन बाद लौटूँगा, तबतक आप इस गायकी रक्षा करें।’ मुनियोंने भी उस गौकी सभी प्रकारसे रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा

की। भगवान् शिव वहीं अन्तर्हित हो गये और फिर थोड़ी देर बाद वे एक व्याघ्र-रूपमें प्रकट हो गये और बछड़ेसहित गौको डराने लगे। ऋषिगण भी व्याघ्रके भयसे आक्रान्त हो आर्तनाद करने लगे और यथासम्भव व्याघ्रको हटानेके उपाय करने लगे। व्याघ्रके भयसे सबत्सा वह गौ भी कूट-कूटकर रँभाने लगी। युधिष्ठिर ! व्याघ्रके भयसे डरी हुई गौके भागनेपर चारों सूर्योक विह्व शिला-मध्यमें पड़ गया। अकारणमें देवताओं एवं किन्नरोंने व्याघ्र (भगवान् शंकर) और सबत्सा गौ (माता पार्वती) की वन्दना की। शिलाका वह चिह्न आज भी सुस्पष्ट दीखता है। वह नर्मदाजीक उत्तम तीर्थ है। यहाँ शम्भुतीर्थके शिवलिङ्गका जो स्पर्श करता है, वह गोहत्यासे मुक्त हो जाता है। राजन् ! जम्बूद्वीपमें स्थित उस महातीर्थमें स्नान कर ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्ति मिल जाती है।

जब व्याघ्रसे सबत्सा गौ भयभीत हो रही थी तब मुनियोंने हुन्ड होकर ब्रह्मसे प्राप्त भयंकर शब्द करनेवाले घंटेको बजाना प्रारम्भ किया। उस शब्दसे व्याघ्र भी सबत्सा गौको छोड़कर चला गया। ब्राह्मणोंने उसका नाम रखा दुण्डागिरि हे पार्ष ! जो मानव उसका दर्शन करते हैं, वे रुद्रस्वरूप ही हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। कुछ ही क्षणोंमें भगवान् शंकर व्याघ्ररूपको छोड़कर वहाँ साक्षात् प्रकट हो गये। वे वृषभार आकाङ्क्ष थे, भगवती उमा उनके बायं भागमें विराजमान थीं तथा विनायक कर्त्तिके साथ नन्दी, महाकाल, शङ्खी, वीरभद्र, चामुण्डा, भण्टाकर्णा आदिसे परिकृत और मातृकर, भूतसमूह, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, देव,

१-भृगुभूते गवो नित्यं ब्रह्मा विष्णुश्च शक्तिरथैः। भृगुश्च भवेदेष्टीनं नक्षत्राणि पार्षणि यः।

शिवो मध्ये महादेवः सर्वकारणजनान्। तल्लटे रक्षितः तैर्न तस्मात्ते च कण्मुक्तः।

कम्प्यस्तबहारी यगौ कन्यापुत्रसप्तभिर्हैः। कल्पेनार्धने ह्येवै यधुध्या रक्षितपारकरी॥

दन्तेषु वसतः सर्वे जिह्वायां कणः स्थितः। सरसकौ य कुले यमपथौ य गण्डयोः॥

संध्योऽथ तयोश्चाभ्यां प्रोक्ष्यं य पूनरः। रात्रिं कर्जुं ह्येत रक्षितकान् व्यासिपतः॥

चतुष्पादसकले धर्मो नित्यं ब्रह्मसु तिष्ठति। सुरभ्योऽप्यु यन्मर्कः सुरासेषु य पशवः॥

सुराणां पक्षिणो भान् पशवः सपत्तिर्दिशतः। सद्यः तस्मिन् पुनै कस्य सर्वशक्तिर्यु॥

श्रीगीतारुहः पितरः कपोलेषु य भागाः। क्षीरघने यवो नित्यं स्वाहासकस्यप्रतिष्ठितः॥

आदित्या रश्मयो बालाः पिण्डीभूत व्यसिपतः। साक्षात्पद्मा य रोमेषु रोमेषु यमुना स्थिता॥

प्रवीरशार् देवकीतोऽथ रोमकुले व्यसिपतः। उदरे युधिष्ठे सर्वे सरीलपनखदन्तः॥

यक्षकः सागरः प्रोत्था गवो ये तु पयोधराः। कर्षेयः क्षीरधारसु मेघ विन्दुयवसिपतः॥

जठरे गार्हपत्योऽग्निर्दक्षिणाग्निर्दिक्षिः स्थितः। कण्ठे आहवनीयेऽग्निः सप्योऽग्निस्तालुनि स्थितः॥

अस्थिव्यवस्थिताः शिला यजन्तु यक्षकः स्थितः। कल्पेऽर्धनेऽर्धनेऽर्धने यजन्तुः॥

(उत्तरपर्व ६९। २५—३७)

दानव, गन्धर्व, मुनि, विद्याधर एवं नाग तथा उनकी पत्नियोंसे वे पूजित थे। सनकादि भी उनकी पूजा कर रहे थे।

राजन् ! कार्तिक मासके शुक्ल पक्ष (मतान्तरसे कृष्ण पक्ष) की द्वादशी तिथिमें ब्रह्मावर्दी ऋषियोंने सफला गोरूपधारिणी उमादेवीको नन्दिनी नामसे भक्तिपूर्वक पूजा की थी। इसीलिये इस दिन गोवत्सद्वादशीव्रत किया जाता है। तभीसे उस व्रतका पृथ्वीतलपर प्रचार हुआ। राजा उत्तनपादने जिस प्रकार इस व्रतको पृथ्वीपर प्रचारित किया उसे आप सुनें—

उत्तनपाद नामक एक क्षत्रिय राजा थे। जिनकी सुरुचि और शुष्नी (सुनीति) नामकी दो रानियाँ थीं। सुनीतिसे धुप नामका पुत्र हुआ। सुनीतिने अपने उस पुत्रको सुरुचिको सौंप दिया और कहा—‘हे सखि ! तুম इसकी रक्षा करो। मैं सदा स्वयं सेवामें तत्पर रहूँगी।’ सुरुचि सदा गृहकार्य सँभालती और पतिव्रता सुनीति सारा पतिव्रती सेवा करती थी। सत्यजी-द्वेषके कारण किसी समय क्रोध और मालस्यसे सुरुचिने सुनीतिके शिशुको मार डाला, किन्तु वह तत्क्षण ही जीवित होकर हँसता हुआ माँकी गोदमें स्थित हो गया। इन्हीं प्रकार सुरुचिने कई बार यह कुकृत्य किया, किन्तु वह बालक बार-बार जीवित हो उठता। उसको जीवित देखकर आश्चर्य-चकित हो सुरुचिने सुनीतिसे पूछा—‘देवि ! यह कैसी विचित्र घटना है और यह किस व्रतका फल है, तुमने किस इष्टन या व्रतका अनुष्ठान किया है ? जिससे तुम्हारा पुत्र बार-बार जीवित हो जाता है। क्या तुम्हें मृतसंजीवनी विद्या सिद्ध है ? राज, महाराज या कौन-सी विशिष्ट विद्या तुम्हारे पास है—यह सत्य-सत्य बताओ।’

सुनीतिने कहा—बहन ! मैं कार्तिक मासकी द्वादशीके दिन गोवत्सव्रत किया है, उसीके प्रभावसे मेरा पुत्र पुनः-पुनः जीवित हो जाता है। जब-जब मैं उसका स्मरण करती हूँ, वह मेरे पास ही आ जाता है। प्रवासमें रहनेपर भी इस व्रतके प्रभावसे पुत्र प्राप्त हो जाता है। इस गोवत्सद्वादशी-

व्रतके करनेमें हे सुरुचि ! तुम्हें भी सब कुछ प्राप्त हो जायगा और तुम्हारा कल्याण होगा। सुनीतिके कहनेपर सुरुचिने भी इस व्रतका पालन किया, जिससे उसे पुत्र, धन तथा सुख प्राप्त हुआ। सृष्टिकर्ता ब्रह्माने सुरुचिको उसके पति उत्तनपादके साथ प्रार्थित कर दिया और आज भी वह आर्तनित हो रही है। दस नक्षत्रोंसे युक्त धुप आज भी आकाशमें दिखायी देते हैं। धुप नक्षत्रको देखनेसे सभी पापोंसे विमुक्ति हो जाती है।

युधिष्ठिरने कहा—हे भगवन् ! इस व्रतकी विधि भी बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे कुरुश्रेष्ठ ! कार्तिक मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीको संकल्पपूर्वक श्रेष्ठ जलाशयमें स्नान कर पुरुष या स्त्री एक समय ही भोजन करें। अनन्तर मध्याह्नके समय कलसार्जनित गौको गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुंकुम, अलतक, टीप, उड़दके बड़े, पुष्पी तथा पुष्पमालाओंद्वारा इस मन्त्रसे पूजा करे—

ॐ माता स्नायतां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानामभूतस्य नाभिः । प्र नु वोचं विद्विषुषे जनाय मा गामनागामदिनिं वधिष्ट नमो नमः स्वाहा ॥ (अ० ८।१०१।१५)

इस प्रकार पूजाकर गौको घास प्रदान करे और निम्नलिखित मन्त्रसे गौका स्पर्श करते हुए प्रार्थना एवं क्षमा-याचना करे—

ॐ सर्वदेवमये देवि लोकानां शुभनन्दिनि ।

मातृवर्माभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि ॥

(उत्तरपर्व ६९।८५)

इस प्रकार गौको पूजाकर जलसे उसका पर्युक्षण करके भक्तिपूर्वक गौको प्रणाम करे। उस दिन तथापर पक्षया हुआ भोजन न करे और ब्रह्मचर्यपूर्वक पृथ्वीपर शयन करे। इस व्रतके प्रभावसे व्रती सभी सुखोंको भोगते हुए अन्तमें गौके जितने रोये हैं, उतने वर्षोंतक गोलोकमें वास करता है, इसमें संदेह नहीं है।

(अध्याय ६९)

### देवशयनी एवं देवोत्थानी द्वादशीव्रतोंका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! अब मैं गोविन्द-शयन नामक व्रतका वर्णन कर रहा हूँ और कटिदान, समुद्रमंथन

एवं चातुर्भास्वव्रतका भी वर्णन करता हूँ, उसे आप सुनें।  
युधिष्ठिरने पूछा—महाराज ! यह देव-शयन क्या है ?



जब देवता भी सो जाते हैं तब संसार कैसे चलता है ? देव क्यों सोते हैं ? और इस व्रतका क्या विधान है—इसे कहें।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**भगवान् सूर्यके मिथुन राशिमें आनेपर भगवान् मधुसूदनकी मूर्तिको शयन करा दे और तुलाराशिमें सूर्यके जानेपर पुनः भगवान् जनार्दनको शयनसे उठाये। अधिमास आनेपर भी यही विधि है। अन्य प्रकरसे न तो हरिको शयन कराये और न उठे निद्रासे उठाये। अषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी देवशयनी एकादशीको उपवास करें। भक्तिमान् पुरुष शुक्ल वस्त्रसे आच्छादित तनिकेसे युक्त उत्तम शय्यापर पीताम्बरधारी, सौम्य, शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णुको शयन कराये। इतिहास और पुराणके तत्त्वविष्णुभक्त पुरुष दही, दूध, राहद, घी और जलसे भगवान्की प्रतिमाको स्नान कराकर गन्ध, धूप, कुंकुम तथा वस्त्रोंसे अलंकृत कर निम्नलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करें—

सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत् सुखं भवेद्विदम् ।

विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत् सर्वं वराधरम् ॥

(उत्तरपर्व ३० (१४))

‘हे जगन्नाथ ! आपके सो जानेपर यह सारा जगत् सुख हो जाता है और आपके जग जानेपर सम्पूर्ण वराधर जगत् प्रबुद्ध हो जाता है।’

**महाराज ।** इस प्रकार भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको शय्यापर स्थापित कर ठीकी सम्मुख खानेपर नियोजन रखनेका और अन्य नियमोंका व्रत ग्रहण करें। वर्षके चार मासतक देवाधिदेवके शयन और उसके बाद उदयापनकी विधि कही गयी है।

**राजन् !** इस व्रतके त्यागने एवं ग्रहण करने योग्य पदार्थोंके अलग-अलग नियमोंको अब सुनें। गुह्यका परित्याग करनेसे व्रती अगले जन्ममें मधुर खण्डीवाला राजा होता है। इसी प्रकार चार मासतक तेलका परित्याग करनेवाला सुन्दर शरीरवाला होता है। कटु तैलका त्याग करनेसे उसके शत्रुओंका नाश होता है। महारके तैलका त्याग करनेसे अतुल सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। पुष्प आदिके भोगका परित्याग करनेसे स्वर्गमें विद्याधर होता है। इन चार मासोंमें जो योगका अभ्यास करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त करता है। कड़ुवा,

खट्टा, तीता, मधुर, क्षार, कषाय आदि रसोंका जो त्याग करता है, वह वैराग्य और दुर्गीतिको कभी भी प्राप्त नहीं होता। ताम्बूलके त्यागसे श्रेष्ठ भोगोंको प्राप्त करता है और मधुर कण्डवाला होता है। मृतके त्यागसे रमणीय लावण्य और सभी प्रकारकी सिद्धिको प्राप्त करता है। फलका त्याग करनेसे बुद्धिमान् होता है और अनेक पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। पत्थरका साग खानेसे रोगी, अपक्व अन्न खानेसे निर्मल शरीरसे युक्त होता है। तैल-मर्दनके परित्यागसे व्रती दीप्तिमान्, दीप्तकरण, रत्नाधिराज घनाध्यक्ष कुबेरके सायुज्यको प्राप्त करता है। दही, दूध, तक्र (मट्ठा) के त्यागका नियम लेनेसे मनुष्य गोलोकको प्राप्त करता है। स्थलीपक्षका परित्याग करनेपर इन्द्रका अतिथि होता है। तापपक्व वस्तुके भक्षणका नियम लेनेपर दीर्घायु संतानकी प्राप्ति होती है। पृथ्वीपर शयनका नियम लेनेसे विष्णुका भक्त होता है।

हे धर्मनन्दन । इन वस्तुओंके परित्यागसे धर्म होता है। नख और केरोंके धारण करनेपर, प्रतिदिन गङ्गा-स्नान करनेपर एवं मौनव्रती होनेपर उसकी आज्ञाका कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता। जो सदा पृथ्वीपर भोजन करता है, वह पृथ्वीपति होता है। ‘ॐ नमो नारायणाय’ इस अष्टाक्षर मन्त्रका निराहार रहकर जन करने एवं भगवान् विष्णुके चरणोंकी वन्दना करनेसे मोक्षनञ्चन फल प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुके चरणोंद्वारे संस्पर्शसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। चातुर्मासमें भगवान् विष्णुके मन्दिरमें उपलेपन और अर्चना करनेसे मनुष्य कल्पपर्यन्त स्वाधी राजा होता है, इसमें संशय नहीं है। स्तुतिपाठ करता हुआ जो सौ बार भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा करता है एवं पुष्प, माला आदिसे पूजा करता है, वह हंसयुक्त विमानके द्वारा विष्णुलोकको जाता है। विष्णु-सम्बन्धी गान और वाद्य करनेवाला गन्धर्वलोकको प्राप्त होता है। प्रतिदिन रात्रि-चर्चामें जो लोगोंको ज्ञान प्रदान करता है, वह व्यासरूपी भगवान्के रूपमें मान्य होता है और अन्तमें विष्णुलोकको जाता है। नित्य स्नान करनेवाला मनुष्य कभी नरकमें नहीं जाता। भोजनका संयम करनेवाला मनुष्य पुष्कर-क्षेत्रमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। भगवत्सम्बन्धी लीला-नाटक आदिका आयोजन करनेवाला अप्सराओंका राज्य प्राप्त करता

१-सावनमें मट्ठा, भाद्रपदे दही और अश्विनी दूधका परित्याग करना चाहिए।

है। अर्थात् भोजन करनेवाला श्रेष्ठ यावत् और कुँआ बनानेका फल प्राप्त करता है। दिनके छठे (अन्तिम) भागमें अन्नके भक्षण करनेसे मनुष्य स्थायीरूपसे स्वर्ग प्राप्त करता है। पतलमें भोजन करनेवाला मनुष्य कुरुक्षेत्रमें वास करनेका फल प्राप्त करता है। शिलापर निवृत्त भोजन करनेसे प्रयागमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। दो ग्रहरतक जलका त्याग करनेसे कभी रोगी नहीं होता।

हे पार्थ ! चातुर्मासमें इस प्रकारके व्रत एवं नियमोंके पालनसे साधक पूर्ण संतोषको प्राप्त करता है। अर्थात् सभी प्रकार सुखी एवं संतुष्ट हो जाता है। गृहहृष्यक जगन्नाथके शयन करनेपर चारों वर्णोंकी विवाह, यज्ञ आदि सभी क्रियाएँ सम्पादित नहीं होतीं। विवाह, यज्ञोपवीतादि संस्कार, दीक्षा-ग्रहण, यज्ञ, गृहप्रवेशादि, गोदान, प्रतिष्ठा एवं जितने भी शुभ कर्म हैं, वे सभी चातुर्मासमें लब्ध्व्य हैं। संस्कृतिरहित मासमें अर्थात् मलमासमें देवता एवं पितरोंसे सम्बन्धित कोई भी क्रिया सम्पादित नहीं की जानी चाहिये। भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको भगवान् विष्णुका कटिदान होता है अर्थात् करबट बदलनेकी क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। इस दिन महापूजा करनी चाहिये।

राजन् ! अब इस विष्णु-शयनका कारण सुनिये। किसी समय तपस्याके प्रभावसे हरिको संतुष्टकर योगनिद्रामें प्रवृत्त की कि भगवान्। आप मुझे भी अपने अङ्गोंमें स्थान दीजिये। तब मैंने देखा कि मेरा सम्पूर्ण शरीर तो लक्ष्मी आदिके द्वारा अधिष्ठित है। लक्ष्मीके द्वारा उरःस्थल, शङ्ख, चक्र, शार्ङ्गधनुष तथा असिके द्वारा बाहु, वैनतेयके द्वारा नाभिके नीचेके अङ्ग, मुकुटसे सिर, कुण्डलोसे कान अलङ्कृत हैं। इसलिये मैंने संतुष्ट होकर नेत्रोंमें अङ्गदरसे योगनिद्राको स्थान दिया और कहा कि तुम वर्षमें चार मास मेरे आश्रित रहोगे। यह सुनकर प्रसन्न होकर योगनिद्रामें मेरे नेत्रोंमें वास किया। मैं उस धनस्त्रिकेको आदर देता हूँ। योगनिद्रामें जब मैं क्षीरसागरमें इस महानिद्रारूपी शेषशय्यापर शयन करता हूँ, उस समय ब्रह्मके सान्निध्यमें भगवती लक्ष्मी अपने करकमलोंसे मेरे दोनों चरणोंका मर्दन करती हैं और क्षीरसागरकी लहरें मेरे चरणोंको धोती हैं। हे पाण्डवश्रेष्ठ ! जो मनुष्य इस चातुर्मासके समय

अनेक व्रत-नियमपूर्वक रहता है, वह कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास करता है, इसमें संशय नहीं। शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णु कीर्तिक मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीमें जागते हैं, उसकी व्रत-विधि आप सुनिये। भगवान्को इस मनसे जगाना चाहिये—‘इदं विष्णुर्वि चक्ष्मे त्रेधा नि दधे कदम्। सम्पूज्यमस्य पा’ सुरे स्वाहा ॥ (यजुः ५।१५) अपने आसनपर विष्णुके जागेपर संसारकी सभी धार्मिक क्रियाएँ प्रवृत्त हो जाती हैं। शङ्ख, मृदंग आदि वाद्योंकी ध्वनि एवं जयघोषके साथ भगवान्को रात्रिमें रथपर बैठाकर घुमाना चाहिये। देवदेवशके उदनेपर नगरको दीपादिसे दीदीप्यमान कर नृत्य-गीत-वाद्य आदिसे मङ्गलोल्लास करना चाहिये। धरणीधर दामोदर भगवान् विष्णु उठकर जिस-जिसको देखते हैं, उस समय उन्हें प्रदत्त सभी वस्तुएँ मानवको स्वर्गमें प्राप्त होती हैं। एकादशीके दिन रात्रिमें मन्दिरमें जागरण करे। द्वादशीमें प्रतःकाल स्रच्छ जलसे स्नानकर विष्णुको पूजा करे। अत्रिमें घृत आदि द्रव्य द्रव्योंसे हवन करे, अनन्तर स्नानकर ब्राह्मणको विशिष्ट अन्नोक्त भोजन कराये। घी, दही, मधु, गुह आदिके द्वारा निर्मित मोदकको भोजनके लिये समर्पित करे। यजमान भी प्रसन्नपूर्वक संयमित होकर ग्यारह, दस, आठ, पाँच या दो विघ्रोंकी पुष्प, गन्ध आदिके विधिपूर्वक पूजा करे। श्रेष्ठ सैन्यसैन्योंको भी भोजन कराये और संकल्पमें त्यक्त पदार्थ तथा अर्घ्य पत्र-पुष्प आदि दक्षिणाके साथ देकर उन्हें विदा करे। अनन्तर स्वयं भोजन करना चाहिये। जिस वस्तुको चार मासतक छोड़ा है, उसे भी खाना चाहिये। ऐसा करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है। अन्तमें व्रतों विष्णुपुरी (वैकुण्ठ) को प्राप्त करता है। जिस व्यक्तिक चातुर्मासव्रत निर्विघ्न सम्पन्न होता है, वह कृतकृत्य हो जाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। हे पार्थ ! जो देवशयन-व्रतको विधिपूर्वक सम्पन्न करता हुआ अन्तमें भगवान् विष्णुको जगाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। इस माहात्म्यको जो मनुष्य ध्यानसे सुनता है, स्तुति करता एवं कहता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। क्षीरसागरमें भगवान् अनन्त जिस दिन सोते हैं और जागते हैं, उस दिन अनन्यथितसे उपवास करनेवाला पुरुष सद्गतिको प्राप्त करता है। (अध्याय ७०)

## नीराजनद्वादशीव्रत-कथा एवं व्रत-विधान

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**राजन् ! प्राचीन कालमें अजपाल नामके एक राजर्षि थे। एक बार प्रजाने अपने दुःखोंको दूर करनेकी उनसे प्रार्थना की, तब उन्होंने इसपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और फिर नीराजन-शान्तिष्ठा अनुष्ठान किया। राजन् ! आपको उस व्रतकी विधि बतलाता हूँ। हे पाण्डवश्रेष्ठ ! राजाको पुरोहितके द्वारा इसे सर्वविधि सम्पन्न करना चाहिये।

जब अजपाल राजा था, उस समय राक्षसोंका सङ्घी रावण लंकाका राजा था। देवताओंको उसने अपने सेवामें नियुक्त कर लिया था। रावणने चन्द्रमाको छत्र, इन्द्रको सेनापति, वायुको धूल साफ करनेवाला, वरुणको जलसेवक, कुबेरको धनरक्षक, यमको शत्रुको संपात करनेवाला तथा राजेन्द्र मनुको मन्त्रणाके लिये नियुक्त किया। मेघ उसकी इच्छानुसार शीतल मन्द वृष्टि करते थे। ब्रह्मके साथ सप्तर्षिगण मिल्य उसकी शान्तिकी कामना करते रहते थे। रावणने गन्धर्वोंको गानके लिये, अप्सराओंको नृत्य-गीतके लिये, विद्याधरोंको वाद्य-कार्यके लिये, गङ्गादि नदियोंको जलपान करानेके लिये, अग्निको गार्हपत्य-कार्यके लिये, विश्वकर्माको अन्न-संस्कारके लिये तथा यमको शिल्प आदि कार्यके लिये नियुक्त किया और दूसरे राजागण नगरकी सेवाके विधानमें तत्पर रहते थे। रावणने ऐसा अपना प्रभाव देखकर अपने प्रसस्ति नामक प्रतिहारसे कहा—'यहाँ मेरी सेवाके लिये कौन आया है ?' प्रणाम कर निराचरने कहा—'प्रभो ! ककुत्स्थ, मानसता, धुन्धुमार, नल, अर्जुन, यषाति, नहुष, भीम, राघव, विदूरथ—ये सभी तथा अन्य बहुतसे राजा आपकी सेवाके लिये यहाँ आये हैं, किन्तु राजा अजपाल आपकी सेवामें नहीं आया है।' रावणने क्रुद्ध होकर शीघ्र ही धूम्राक्ष नामक राक्षससे कहा—'धूम्राक्ष ! जाओ और अजपालको मेरी आज्ञाके अनुसार यह सूचना दो कि तुम आकर मेरी सेवा करो, अन्यथा तलवारसे तुम्हारे मैं मार डालूँगा।' रावणके द्वारा ऐसा कहनेपर धूम्राक्ष गरुड़के समान तेज गतिसे उसकी रमणीय नगरीमें गया और राजकुलमें पहुँचा। धूम्राक्षने रावणके द्वारा कही गयी बातें उसे सुनायीं, किन्तु अजपालने धूम्राक्षके आक्षेपपूर्वक अन्य कारणोंको कहते हुए

लौटा दिया। तदनन्तर ज्वरको बुलाकर राजाने कहा—'तुम लंकेदार रावणके पास जाओ और वहाँ यथोचित कार्य सम्पन्न करो।' अजपालके द्वारा नियुक्त मूर्तिमान् ज्वर वहाँ गया और उसने सभी गणोंके साथ बैठे हुए राक्षसपतिको प्रकम्पित कर दिया। रावणने उस परम भयंकर ज्वरको आया जानकर कहा कि अजपाल राजा वहीं रहे, मुझे उसकी जरूरत नहीं है। उसी बुद्धिमत् राजर्षि अजपालके द्वारा यह शान्ति प्रवर्तित हुई है, यह शान्ति सभी उपद्रवोंको दूर करनेवाली है। सभी रोगोंको नष्ट करनेवाली है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिमें सायंकाल भगवान् विष्णुके जग जानेके बाद ब्राह्मणोंके द्वारा विष्णुका हवन करे। वर्धमान (एरण्ड) वृक्षोंसे प्राप्त तेलयुक्त टीपिकाओंसे भगवान् विष्णुका धीरे-धीरे नीराजन करे। पुष्प, चन्दन, अलंकार, वस्त्र एवं राज आदिसे उनकी पूजा करे। साथ ही लक्ष्मी, चाण्डिक, ब्रह्मा, आदित्य, शंकर, गौरी, यक्ष, गणपति, ग्राह, माता-पिता तथा नाग सभीका नीराजन (आरती) करे। गौ, गहिण आदिका भी नीराजन करे। घंटा आदि वाद्योंको बजाये। गौओंका सिन्दूर आदिसे तथा चित्र-चिह्न वस्त्रोंमें मङ्गल करे और बह्मद्वोंके साथ उनको ले चले और उनके पीछे गोपाल भी ध्वनि करते चले। मङ्गलार्चनसे युक्त गौओंके नीराजन-उत्सवमें घोड़ों आदिको भी ले चले। अपने घरके आँगनको राजचिह्नोंसे सुरोपित कर पुरोहितोंके साथ मन्त्री, नौकर आदिकों लेकर राजा शङ्ख, तुरही आदिके द्वारा एवं गन्ध, पुष्प, वस्त्र, दीप आदिसे पूजा करे। पुरोहित 'शान्तिरक्षु', 'सम्पदिरक्षु' ऐसा कहते रहें। यह महाशान्ति नामसे प्रसिद्ध नीराजन जिस राष्ट्र, नगर और गाँवमें सम्पन्न होता है, वहलिके सभी रोग एवं दुःख नष्ट हो जाते हैं और सुधिस हो जाता है। राजा अजपालने इसी नीराजन-शान्तिसे अपने राष्ट्रकी वृद्धि की थी और सम्पूर्ण प्राणियोंको रोगसे मुक्त बना दिया था। इसलिये रोगादिकी निवृत्ति और अपना हित चाहनेवाले व्यक्तिको नीराजनव्रतका अनुष्ठान प्रतिवर्ष करना चाहिये। भगवान् विष्णुका जो नीराजन करता है, वह गौ, ब्राह्मण, रथ, घोड़े आदिसे युक्त एवं नीरोग हो सुखसे जीवन-यापन करता है। (अध्याय ७१)

## भीष्मपञ्चक-व्रतकी विधि एवं महिमा

**युधिष्ठिरने कहा—**हे यदुश्रेष्ठ कृष्ण ! कर्त्तिक मासमें श्रीभीष्मपञ्चक नामका जो श्रेष्ठ व्रत होता है, अब कृपया उसका विधान बताइये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! मैं आपसे व्रतोंमें सर्वोत्तम भीष्मपञ्चक-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ। मैंने पहले इस व्रतका उपदेश भृगुजीको किया था, फिर भृगुने शुक्राचार्यको और शुक्राचार्यने ब्रह्मादि आदि दैत्यों एवं असने शिव्य ब्राह्मणोंको बताया। जैसे तेजस्विषोमि अग्नि, शौचगामिषोमि पवन, पूजनीयोमि ब्राह्मण एवं दानोमि सुवर्ण-दान श्रेष्ठ है, वैसे ही व्रतोंमें भीष्मपञ्चक-व्रत श्रेष्ठ है। लोकोंमें भूलोक, तैत्तिरीय गङ्गा, यज्ञोंमें अश्वमेध, शास्त्रोंमें वेद तथा देवताओंमें अच्युतका जैसा स्थान है, ठीक उसी प्रकारसे व्रतोंमें भीष्मपञ्चक सर्वोत्तम है। जो इस दुष्कर भीष्मपञ्चक-व्रतका अनुष्ठान कर लेता है, उसके द्वारा सभी धर्म सम्पन्न हो जाते हैं। पहले सत्ययुगमें वसिष्ठ, भृगु, गरुड आदि मुनियोंने, फिर त्रेतामें नाभग, अम्बरौष आदि राजाओंने और द्वापरमें सैरध्वज आदि वैश्योंने तथा कलियुगमें उत्तम आचरणवाले शूद्रोंने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया। ब्राह्मणोंने ब्रह्मचर्य-पालन, जप तथा हवन-कर्मोंके द्वारा और क्षत्रियों एवं वैश्योंने सत्य-ज्ञैव आदिके पालनपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान किया है। सत्यहीन मूढ़ मनुष्योंके लिये इस व्रतका अनुष्ठान असम्भव है। यह भीष्मपञ्चक-व्रत पाँच दिनतक होता है। इस भीष्मपञ्चक-व्रतमें असत्यभाषण, शिंकार खेलने आदि अनुचित कर्मोंका त्याग करना चाहिये। पाँच दिन विष्णु भगवान्का पूजन करते हुए शाकमात्रका ही आहार करना चाहिये। पतिके आश्रमे स्त्री भी सुख-प्राप्तिहेतु इस व्रतका आचरण कर सकती है। विधवा नारी भी पुत्र-पौत्रोंकी समृद्धि अथवा मोक्षार्थ इस व्रतको कर सकती है। इसमें कर्त्तिक मासपर्यन्त मित्य भ्रातृ-स्नान, दान, मध्याह्न-स्नान और भगवान् विष्णुके पूजनका विधान है। नदी, झरना, देवखात या किसी पवित्र जलाशयमें शरीरमें गोमय लगाकर स्नान कर औ, चावल तथा तिलोंमें देवता, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। भगवान् विष्णुको भी मधु, दुग्ध, घी तथा चन्दनमिश्रित जलसे भक्तिपूर्वक स्नान करना चाहिये। कर्पूर, पञ्चगव्य, कुंकुम (केसर), चन्दन तथा

सुगन्धित पटाखोंके द्वारा भगवान् गरुडध्वज विष्णुका उपलेपन करना चाहिये। उनके सामने एक दीपक पाँच दिनोंतक अनवरत दिन-रात प्रज्वलित रखना चाहिये। भगवान्को नैवेद्य निवेदित कर 'ॐ नमो वासुदेवाय' का अष्टोत्तरशत-जप, तदनन्तर षडक्षर-मन्त्रसे हवन करना चाहिये तथा विधिपूर्वक सङ्घकालीन संध्या करनी चाहिये। जमीनपर सोना चाहिये। ये सभी कार्य पाँच दिनोंतक किये जाने चाहिये। इस व्रतमें पहले दिन भगवान् विष्णुके चरणोंको कमल-पुष्पोंके द्वारा पूजा करनी चाहिये। दूसरे दिन बिल्वपत्रोंके द्वारा उनके धुनोंकी, तीसरे दिन नाभि-स्थलपर केवड़ेके पुष्पद्वारा पूजा करनी चाहिये। चौथे दिन कित्तव एवं जप-पुष्पोंमें भगवान्के सक्त-प्रदेशकी पूजा करनी चाहिये और पाँचवें दिन मालती-पुष्पोंसे भगवान्के शिराभागीकी पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार हरीकेशका पूजन करते हुए व्रतोंको एकादशीके दिन व्रत कर अधिमन्वित गोमय तथा द्वादशीकी गोमूत्रका प्रारण करना चाहिये। त्रयोदशीको दूध तथा चतुर्दशीको दहीका प्रारण करना चाहिये। कायशुद्धिके लिये चारों दिन इनका प्रारण करना चाहिये। पाँचवें दिन स्नानकर केशवकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। इसी प्रकार पुराण-वाक्योंको भी वस्त्रभूषण प्रदान करना चाहिये। रात्रिमें पहले पञ्चगव्य-पान करके पीछे अन्न भोजन करे। इस प्रकारसे भीष्मपञ्चक-व्रतका समापन करना चाहिये। यह भीष्मपञ्चक-व्रत परम पवित्र और सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। राजन् ! इसी भीष्मपञ्चक-व्रतका वर्णन शरशय्यापर पड़े हुए महात्मा भीष्मने स्वयं किया था। इसे मैंने आपको बता दिया। जो मानव भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करता है, उसे भगवान् अच्युत मुक्ति प्रदान करते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी जो कोई भी इस व्रतको करते हैं, उन्हें वैष्णव-स्थान प्राप्त होता है। कर्त्तिक शुक्ल एकादशीसे व्रत प्रारम्भ करके पौर्णमासीको व्रत पूर्ण करना चाहिये। जो इस व्रतको सम्पन्न करता है, वह ब्रह्महत्या, गोहत्या आदि बड़े-बड़े पापोंसे भी मुक्त हो जाता है और शुद्ध सद्गतिके प्राप्त होता है। ऐसा भीष्मका वचन है। (अध्याय ७२)



## मल्लद्वादशी एवं भीमद्वादशी-व्रतका विधान

युधिष्ठिरके द्वारा मल्लद्वादशीके विषयमें पूछे जानेपर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—महाराज ! जब मेरी अवस्था आठ वर्षकी थी, उस समय यमुना-तटपर भाण्डीर-वनमें बट-वृक्षके नीचे एक सिंहासनपर मुझे बैठाकर सूरभद्र, मण्डलीक, योगवर्धन तथा यशोदभद्र आदि बड़े-बड़े मल्लों और गोपाली, धन्या, विशाखा, ध्यानविक्रिका, अनुगन्ध, सुभगा आदि गोपियोंने दही, दूध और फल-फूल आदिसे मेरा पूजन किया। तत्पश्चात् तीन सौ साठ मल्लोंने भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करते हुए मल्लयुद्धको सम्पन्न किया तथा हमारी प्रसन्नताके लिये बड़ा भारी उत्सव मनाया। उस महोत्सवमें भक्ति-भौतिके भक्ष्य-भोग्य, गोदान, गोहो तथा पूजन आदि कार्य सम्पन्न किये गये थे। ब्रह्मपूर्वक ब्राह्मणोंका पूजन भी हुआ था। उसी दिनसे यह मल्लद्वादशी प्रचलित हुई। इस व्रतको मार्गशीर्ष-मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीसे आरम्भ कर कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीतक करना चाहिये और प्रतिमास क्रमसे केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिक्रिय, रामन, श्रीधर, हरीकेश, पद्मनाभ तथा दामोदर—इन नामोंसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, गीत-वाद्य, नृत्य-सहित पूजन करे और 'कृष्णो मे प्रियताम्' इस प्रकार उच्चारण करे। यह द्वादशीव्रत मुझे बहुत प्रिय है। वैदिक मल्लोंने इस व्रतको प्रारम्भ किया था, अतः इसका नाम मल्लद्वादशी है। जिन गोपोंके द्वारा इस व्रतको सम्पन्न किया गया उन्हें गाय, गहिरौ, कुषि आदि प्रचुर मात्रामें प्राप्त हुआ। जो कोई पुरुष इस व्रतको सम्पन्न करेगा, मेरे अनुग्रहसे वह आरोग्य, बल, ऐश्वर्य और शाश्वत विष्णुलोकको प्राप्त करेगा।

**भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—**महाराज ! प्राचीन कालमें विदर्भ देशमें भीम नामक एक प्रतापी राजा थे। वे दमयन्तीके पिता एवं राजा नलके समुर थे। राजा भीम बड़े पराक्रमी, सत्यव्रत और प्रजापालक थे। वे शास्त्रोक्त-विधिसे राज्य-व्यवहारी करते थे। एक दिन तीर्थयात्रा करते हुए ब्रह्मजीके पुत्र पुलस्त्यमुनि उनके यहाँ पधारे। राजाने अर्घ्य-पात्रादिद्वारा उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। पुलस्त्यमुनिने प्रसन्न होकर राजासे कुशल-क्षेम पूछा, तब राजाने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'महाराज ! जहाँ आप-जैसे महानुभावका आगमन

हो, वहाँ सब कुशल ही होता है। आपके यहाँ पधारनेसे मैं पवित्र हो गया।' इस तरहसे अनेक प्रकारकी खेहकी बातें राजा तथा पुलस्त्यमुनिके बीच होती रहीं। कुछ समयके पश्चात् विदर्भीचरित भीमने पुलस्त्यमुनिसे पूछा—'प्रभो ! संसारके जीव अनेक प्रकारके दुःखोंसे सदा पीड़ित रहते हैं और उसमें गर्भवास सबसे बड़ा दुःख है, प्राणी अनेक प्रकारके रोगसे ग्रस्त है। जीवोंकी ऐसी दशाको देखकर मुझे अत्यन्त कष्ट होता है। अतः ऐसा कौन-सा उपाय है, जिसके द्वारा थोड़ा परिश्रम करके ही जीव संसारके दुःखोंसे छुटकारा पानेमें समर्थ हो जाय। यदि कोई व्रत-दानादि हो तो आप मुझे बतलायें।

**पुलस्त्यमुनिने कहा—**राजन् ! यदि मानव माध मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास करे तो उसे कोई कष्ट नहीं हो सकता। यह तिथि परम पवित्र करनेवाली है। यह व्रत अति गुप्त है, किन्तु आपके खेहने मुझे कहनेके लिये विवश कर दिया है। अदोक्षितसे इस व्रतको कभी नहीं कहना चाहिये, जितेन्द्रिय, धर्मानुष्ठ और विष्णुभक्त पुरुष ही इस व्रतके अधिकारी हैं। ब्राह्मणी, गुरुधारी, स्त्रीधारी, कृतप्र, मित्रदोही आदि बड़े-बड़े पातकी भी इस व्रतके करनेसे फायमुक्त हो जाते हैं। इसके लिये शुद्ध तिथिमें और अच्छे मुहूर्तमें दस हाथ लम्बा-चौड़ा मण्डप तैयार करना चाहिये तथा उसके मध्यमें पाँच हाथकी एक केटी बनानी चाहिये। केटीके ऊपर एक मण्डल बनायें, जो पाँच रंगोंसे युक्त हो। मण्डपमें आठ अथवा चार कुण्ड बनायें। कुण्डोंमें ब्राह्मणोंको उपस्थापित करें। मण्डलके मध्यमें कर्णिकके ऊपर पश्चिमभिमुख चतुर्भुज भगवान् जनार्दनकी प्रतिमा स्थापित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि भक्ति-भौतिके उपचारों तथा नैवेद्योंसे शास्त्रोक्त-विधिसे ब्राह्मणोंद्वारा उनकी पूजा करानी चाहिये। नारायणके सम्मुख दो स्तम्भ गाड़कर उनके ऊपर एक आड़ा काष्ठ रख उसमें एक दृढ़ छीका बाँधना चाहिये। उसपर सुवर्ण, चाँदी, ताम्र अथवा मृत्तिकाकर सहस्र, शत अथवा एक छिद्रसमन्वित उतम कलश जल, दूध अथवा घीसे पूर्ण कर रखना चाहिये। पलाशकी समिधा, तिल, धृत, खीर और शर्मा-पत्रोंसे ग्रहोंके लिये आहुति देनी चाहिये। ईशान-कोणमें ग्रहोक्त पीठ-स्थापन कर ग्रह-यज्ञविधानसे ग्रहोंकी पूजा करनी

चाहिये। पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र, यम, वरुण और कुबेरका पूजन कर शुक्ल वस्त्र तथा चन्दनसे धूँवित, हाथमें कुश लेकर यजमानको एक पीढ़ेके ऊपर भगवान्‌के सामने बैठना चाहिये। यजमानको एकप्रचित्त हो कलशसे गिरती जलधारा (वसोर्धारा) को निम्नमन्त्रका पाठ करते हुए भगवान्‌को प्रणामपूर्वक अपने सिरपर धारण करना चाहिये—

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भुवनेश्वर ।

व्रतेनानेन मां धाहि परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व ७४।४२)

उस समय ब्राह्मणोंको चारों दिशाओंके कुण्डोंमें हवन करना चाहिये। साथ ही शक्तिप्रशस्ति और विष्णुसूक्तका पाठ किया जाना चाहिये। शङ्ख-ध्वनि करनी चाहिये। भौति-भौतिके वाद्योंको बजाना चाहिये। पुण्य-जपघोष करना चाहिये। माङ्गलिक स्तुति-पाठ करना चाहिये। इस तरहके माङ्गलिक कार्य करते हुए यजमानको हरिवेश, सौपर्णिक (सुपर्णसूक्त) आख्यान और महाभारत आदिका श्रवण करते हुए जागरण-पूर्वक रात्रि व्यतीत करनी चाहिये। भगवान्‌के ऊपर गिरती हुई वसोर्धारा समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली है। दूसरे दिन प्रातः यजमान ब्राह्मणोंके साथ किसी पुण्य जलशय अथवा नदी आदिमें स्नानकर शुक्ल वस्त्र पहनकर प्रसन्नचित्तसे भगवान्‌ भास्करको अर्घ्य दे। पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे भगवान्‌ पुरुषोत्तमकी पूजा करे। हवन करके भक्तिपूर्वक

पूर्णाहुति दे। यज्ञमें उपस्थित सभी ब्राह्मणोंका शय्या, भोजन, गेहान, वस्त्र, आभूषण आदिद्वारा पूजन करे और आचार्यकी विशेषरूपसे पूजा करे। जैसे ब्राह्मण एवं आचार्य संतुष्ट हों वैसा यत्न करे, क्योंकि आचार्य साक्षात् देवतुल्य गुरु है। दीने, अनाथों तथा अभागियोंको भी संतुष्ट करे। अनन्तर स्वयं भी हविष्यका भोजन करे।

राजन्! इस प्रकार मैंने इस भीमद्वादशीव्रतका विधान बतलाया, इससे परिष्ठ व्यक्ति भी पापमुक्त हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। यह विष्णुयाग सैकड़ों काजपेय एवं अतिरात्र यागोंसे विशेष फलदायी है। इस भीमद्वादशीका व्रत करनेवाले स्त्री-पुरुष सात जन्मोंतक अखण्ड सौभाग्य, आयु, आरोग्य तथा सभी सम्पदाओंको प्राप्त करते हैं। अनन्तर मृत्युके बाद क्रमशः विष्णुपुर, रुद्रलोक तथा ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। इस पृथ्वीलोकमें अक्षर पुनः वह सम्पूर्ण पृथ्वीका अधिपति एवं चक्रवर्ती धार्मिक राजा होता है।

इस व्रतको प्राचीन कालमें महात्मा सगर, अज, धुंधुमार, दिलीप, यथाति तथा अन्य महान् क्षेत्र राजाओंने किया था और स्त्री, वैश्य एवं शूद्रोंने भी धर्मकी कामनासे इस व्रतको किया था। भृगु आदि मुनियों और सभी वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा भी इसका अनुष्ठान हुआ था। हे राजन्! आपके पूछनेपर मैंने इसे बतलाया है, अतः आजसे यह द्वादशी आपके (भीमद्वादशी) नामसे पृथ्वीपर ख्याति प्राप्त करेगी। (अध्याय ७३-७४)

### श्रवणद्वादशी-व्रतके प्रसंगमें एक वणिक्की कथा

**युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन्! जो व्यक्ति दीर्घ उपवास करनेमें असमर्थ हो उसके लिये कौन-सा व्रत है? इसे आप बतलायें।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**राजन्! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथि यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो इसमें व्रत करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह परम पवित्र एवं महान् फल देनेवाली द्वादशी है। इस व्रतमें प्रातःकाल नदी-संगममें जाकर स्नान करके द्वादशीमें उपवास करना चाहिये। एकमात्र इस श्रवणद्वादशीके व्रत कर लेनेसे द्वादश द्वादशी-व्रतोंका फल प्राप्त हो जाता है। यदि इस तिथिमें बुधवारका भी योग हो जाय तो इसमें किये गये समस्त

कर्म अक्षय्य हो जाते हैं। इस व्रतसे गङ्गास्नानका लाभ होता है। इस व्रतमें एक सुन्दर कलशकी विधिपूर्वक स्थापना कर उसमें भगवान्‌ विष्णुकी प्रतिमा यथाविधि स्थापित करनी चाहिये। अनन्तर भगवान्‌की अङ्गपूजा करनी चाहिये। रात्रिमें जागरण करे। प्रभातकालमें स्नानकर गरुडध्वजकी पूजा करे और पुष्पजल देकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक ।

अघोषसंज्ञाय कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥

(उत्तरपर्व ७५।१५)

अनन्तर वेदज्ञ एवं पुराणज्ञ ब्राह्मणोंकी पूजा करे और प्रतिमा आदि सब पदार्थ 'प्रीयतां मे जनार्दनः' कहकर

ब्राह्मणको निवेदित कर दे।

**श्रीकृष्णने पुनः कहा—**महाराज ! इस व्रतके प्रसंगमें एक प्राचीन आख्यान है, उसे आप सुनें—दशार्ग देशके पश्चिम भागमें सम्पूर्ण प्राणियोंको भय देनेवाला एक मरुदेश है। वहकि भूमिकी बालू निरन्तर तपती रहती है, यत्र-तत्र भयेकर साँप घूमते रहते हैं। वहाँ छाया बहुत कम है। वृक्षोंमें पत्ते कम रहते हैं। प्राणी प्रायः मरे-जैसे ही रहते हैं। रानी, खैर, पलाश, करील, पीतु आदि कँटीले वृक्ष वहाँ हैं। वहाँ अन्न और जल बहुत कम मिलता है। वृक्षोंके कोटरोंमें छोटे-छोटे पक्षी प्यासे ही मर जाते हैं। वहाँकि प्यासे हरिण मर-भूमिमें जलकी इच्छासे दीड़ लगाते रहते हैं और जल न मिलनेसे मर जाते हैं।

उस मरुस्थलमें दैवदश एक वणिक् पहुँच गया। वह अपने साथियोंसे थिठुड़ गया था। उसने इधर-उधर घूमते हुए भयेकर पिशाचोंको वहाँ देखा। वह वणिक् भूख-प्याससे व्याकुल होकर इधर-उधर घूमने लगा। कहने लगा—क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कहाँमें मुझे अन्न-जल प्राप्त हो। तदनन्तर उसने एक प्रेतके स्कन्धादेशपर बैठे एक प्रेतको देखा। जिसे चारों ओरसे अन्य प्रेत घेर हुए थे। कन्धेश चढ़ा हुआ वह प्रेत वणिक्को देखकर उसके पास आया और कहने लगा—‘तुम इस निर्जल प्रदेशमें कैसे आ गये?’ उसने बताया—‘मैं साथी छूट गये हैं, मैं अपने किसी पूर्व-कुतूहलके फलसे या संयोगसे यहाँ पहुँच गया हूँ। भूख और प्याससे मैं प्राण निकल रहे हैं। मैं अपने जीनेका कोई उपाय नहीं देख रहा हूँ।’ इसपर वह प्रेत बोला—‘तुम इस पुत्राग वृक्षाके पास लगभग प्रतीक्षा करो। यहाँ तुम्हें अभीष्ट-साध होगा, इसके बाद तुम यथेच्छ चले जाना।’ वणिक् वहीं ठहर गया। दोपहरके समय कोई व्यक्ति पुत्राग वृक्षसे एक कसीरमें जल तथा दूसरे कसीरमें दही और भात लेकर प्रकट हुआ और उसने वह वणिक्को प्रदान किया। वणिक् उसे ग्रहणकर संतुष्ट हुआ। उसी व्यक्तिने प्रेत-समुदायको भी जल और दही-भात दिया, इससे वे सभी संतुष्ट हो गये। शेष भागकी उस व्यक्तिने स्वयं भी ग्रहण किया। इसपर आश्चर्यचकित होकर वणिक्ने उस प्रेताधिपसे पूछा—‘ऐसे दुर्गम स्थानमें अन्न-जलकी प्राप्ति आपको कहाँसे होती है? थोड़ेसे ही अन्न-जलसे बहुतसे लोग

कैसे तृप्त हो जाते हैं। मुझे सहारा देनेवाले इस स्थानमें आप कैसे मिल गये? हे शुभव्रत ! आप यह बतलाये कि प्राप्तमात्रसे ही आपको संतुष्ट कैसे हो गयी? इस घोर अटवीमें आपने अपना स्थान कहाँ बनाया है? मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है, मेरा संशय आप दूर करें।’

**प्रेताधिपने कहा—**हे भद्र ! मैंने पहले बहुत दुष्कृत किया था। दुष्ट बुद्धिवाला मैं पहले रमणीय शाकल नगरमें रहता था। व्यापारमें ही मैंने अपना अधिकशेष जीवन बिता दिया। प्रमादवश मैंने धनके लोभसे कभी भी भूखको न अन्न दिया और न प्यासेसे प्यास ही बुझायी। मेरे ही घरके पास एक गुणवान् ब्राह्मण रहता था। वह भद्रपद मासकी श्रवण नक्षत्रसे मुक्त द्वारशीके योगमें कभी मेरे साथ तोषा नामकी नदीमें गया। तोषा नदीका संगम चन्द्रभागासे हुआ है। चन्द्रभागा चन्द्रमाकी तथा तोषा सूर्यकी कन्या हैं। उन दोनोंका सौतेला जल बहुत मनोहर है। उस तीर्थमें जाकर हमलोगोंने स्नान किया और उपवास किया। हमने वहाँ दध्योदन, छत्र, वस्त्र आदि उपचारोंसे भगवान् विष्णुकी प्रतिमाकी पूजा की। इसके अनन्तर हमलोग घर आ गये। मरनेके अनन्तर नास्तिक होनेसे मैं प्रेतत्वको प्राप्त हुआ। इस घोर अटवीमें जो हो रहा है, वह तो आप देख ही रहे हैं। ये जो अन्य प्रेतगण आप देख रहे हैं, इनमें कुछ ब्राह्मणोंके धनका अपहरण करनेवाले, कोई परदारुण है, कोई अपने स्वामीसे द्रोह करनेवाले तथा कोई मित्रद्रोही है। मेरा अन्न-पान करनेसे ये सब मैं सेवक बन गये हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अक्षय, सनातन परमात्मा हैं। उनके उद्देश्यसे जो कुछ भी दान किया जाता है वह अक्षय होता है। हे महाभाग ! आप हिमालयमें जाकर धन प्राप्त करेंगे, अनन्तर मुझपर कृपाकर आप इन प्रेतोंकी मुक्तिके लिये गयामें जाकर श्राद्ध करें। इत्यादि कहकर वह प्रेताधिप मुक्त होकर विमानमें बैठकर स्वर्गलोक चला गया।

प्रेताधिपके चले जानेपर वह वणिक् हिमालयमें गया और वहाँ धन प्राप्त कर अपने घर आ गया और उस धनसे उसने गया तीर्थमें अक्षयवटके समीप उन प्रेतोंके उद्देश्यसे श्राद्ध किया। वह वणिक् जिस-जिस प्रेतकी मुक्तिके निमित्त श्राद्ध करता था, वह प्रेत वणिक्को स्वप्नमें दर्शन देकर कहता था कि ‘हे महाभाग ! आपकी कृपासे मैं प्रेतत्वसे मुक्त हो गया

और मुझे परमगति प्राप्त हुई।' इस प्रकार वे सभी प्रेत मुक्त हो गये। राजन् ! वह वर्षाण् पुनः पर लौट आया और उसने भाद्रपद मासके श्रवण द्वादशीके योगमें भगवान् जनार्दनको

पूजा की, ब्राह्मणोंको गो-दान किया। जितेन्द्रिय होकर प्रतिवर्ष नदीके संगमोपर यह सब कर्ष किया और अन्तमें उसने मानवोंके लिये दुर्लभ स्थानको प्राप्त किया। (अध्याय ७५)

### विजय-श्रवण-द्वादशीव्रतमें वामनावतारकी कथा तथा व्रत-विधि

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—युधिष्ठिर ! भाद्रपद मासकी एकादशी तिथि यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो उसे विजया तिथि कहते हैं, वह भक्तोंको विजय प्रदान करनेवाली है। एक बार दैत्यराज बलिसे पराजित होकर सभी देवता भगवान् विष्णुकी शरणमें पहुँचे और कहने लगे—'प्रभो ! सभी देवताओंके एकमात्र आश्रय आप ही हैं। आप महान् कष्टसे हमारा उद्धार कीजिये। इस दैत्य बलिको आप विनाश कीजिये।' इसपर भगवान्ने कहा—'देवगणो ! मैं यह जानता हूँ कि विरोचन-पुत्र बलि तीनों लोकोंका कष्टकण्ड कण्ड हुआ है, पर उसने तपस्याद्वारा अपनी आत्मशक्ति अपनेमें भक्षित कर ली है, वह शक्त है, जितेन्द्रिय है और मेघ भरत है, उसके प्राण मुझमें ही लगे हैं, वह सत्यप्रतिज्ञ है। बहुत दिनोंके बाद उसकी तपस्याका अन्त होगा। जब मैं इसे अविनयसम्पन्न समझूँगा, तब उसका अभीष्ट हरण कर लूँगा और आपको दे दूँगा। पुत्रकी इच्छासे देवमाता अदिति भी मेरे पास आयी थीं। देवताओं ! मैं उनका भी कल्याण करूँगा, अवतार लेकर देवताओंका संरक्षण और असुरोंका विनाश करूँगा। इसलिये आपलोग निश्चित होकर जायें और समयकी प्रतीक्षा करें।' देवगण भगवान् विष्णुको स्मरण करते हुए वापस आ गये। इधर अदिति भी भगवान् विष्णुका ध्यान करती थीं। कुछ कालमें उसने गर्भमें भगवान्को धारण किया। नवें मासमें वामन भगवान् अदितिके गर्भसे प्रादुर्भूत हुए। उनके पैर छोटे, शरीर छोटा, सिर बड़ा और छोटे बच्चेके समान हाथ-पैर, उदर आदि थे। वामनरूपमें जब अदितिने पुत्रको देखा और जब वह कुछ कहनेको उद्यत हुई तो देवमायासे उनकी वाणी अवरोध हो गयी।

हे नरोत्तम ! भाद्रपद मासके श्रवण नक्षत्रसे युक्त एकादशी तिथिमें जब प्रविक्रम वामन भगवान्का पृथ्वीपर अवतार हुआ तब पृथ्वी डगमगाने लगी। दैत्योंमें भय छा गया और देवगण प्रसन्न हो गये। महामुनि कश्यपने शिशुके

जातकम्बोद संस्कार स्वयं ही किये। वामन भगवान् दण्ड, मेखला, यज्ञोपवीत, कमण्डलु तथा छत्र धारणकर राजा बलिके यज्ञस्थलमें गये। उन्होंने बलिसे कहा—'यज्ञपते ! मुझे तीन पग भूमि प्रदान करो।' बलिने कहा—'मैंने दे दिया।' उसी समय भगवान् वामनने अपना शरीर बढ़ाना प्रारम्भ किया। भगवान्ने अपना शरीर इतना विशाल बना दिया कि एक पगसे सम्पूर्ण पृथ्वीलोकको नाप लिया तथा द्वितीय पगसे ब्रह्मलोक नाप लिया। तीसरा पग रखनेके लिये जब कोई स्थान न मिला तो देवगण, सिद्ध, ऋषि-मुनि इस कृत्तक देखकर साधु-साधु कहने लगे और भगवान्की स्तुति करने लगे। तदनन्तर सभी दैत्यगणोंको जीतकर उन्होंने दैत्यराज बलिसे कहा—'तुम अपने परिजनोंके साथ सुतललोकमें चले जाओ। मैं द्वारा सुरक्षित रहकर तुम वहाँ अभीष्टत भोगोंका उपभोग करोगे। वर्तमानमें जो इन्द्र हैं, उनके बाद तुम इन्द्रत्वको प्राप्त करोगे।' बलि भगवान्को प्रणामकर प्रसन्न हो सुतललोकको चला गया। भगवान्ने देवताओंसे कहा—'अपराधों अपने-अपने स्थानपर निश्चित होकर रहें।' भगवान् भी संसारका कल्याण करके वहीं अन्तर्धान हो गये।

राजन् ! ये सभी कर्म एकादशी तिथिको हुए थे। अतः यह तिथि देवताओंकी विजयतिथि मानी गयी है। यही एकादशी तिथि फाल्गुन मासमें पुष्य नक्षत्रसे युक्त होनेपर विजया तिथि कही गयी है। एकादशीके दिन उपवासकर रात्रिमें भगवान् वामनकी प्रतिमा बनाकर पूजा करनी चाहिये। प्रतिमाके समीप ही कुण्डिका, छत्र, चरणपादुका, यष्टि, यज्ञोपवीत, कमण्डलु तथा मृगवर्म आदि स्थापित करना चाहिये। अनन्तर विधिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। निम्न मन्त्रोंसे उन्हें नमस्कार करे और प्रार्थना करे—

अनेककर्मनिर्बन्धध्वंसिनं

जलशायिनम् ।

नतोऽस्मि मधुरावासं

माधवं मधुसूदनम् ॥



नमो वामनरूपाय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम ।

नमस्ते मणिवन्द्याय वामदेव नमोऽस्तु ते ॥

नमो नमस्ते गोविन्द वामनेश त्रिविक्रम ॥

अधोघसंक्षयं कृत्वा सर्वकामप्रदो भव ॥

(उत्तरपर्व ७६ । ४८—५१)

इसके अनन्तर भगवान्को शयन कराये । गौत-वाद्य,

स्तुति आदिके द्वारा जागरण करे । प्रातःकाल उस प्रतिमाकी

पूजाकर मन्त्रपूर्वक उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे । ब्राह्मणोंको

भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे । इस व्रतके

करनेसे व्रतीका एक मन्वन्तरपर्यन्त विष्णुलोकमें वास होता है ।

तदनन्तर वह इस लोकमें आकर चक्रवर्ती दानी राजा होता है ।

वह नीरोग, दीर्घायु एवं पुत्रवान् होता है । (अध्याय ७६)

### सम्प्राप्ति-द्वादशी एवं गोविन्द-द्वादशीव्रत

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पौष मासके कृष्ण पक्षके द्वादशीसे ज्येष्ठ मासकी द्वादशीतक प्रत्येक मासकी कृष्ण द्वादशीको षाण्मासिक सम्प्राप्ति-द्वादशीव्रत किया जाता है । प्रत्येक मासमें क्रमशः पुण्यऐक्यवत्, पापवत्, विघ्नरूप, पुरुषोत्तम, अभ्युत तथा जय—इन नामोंसे उपवासपूर्वक भगवान्की पूजा करनी चाहिये । पुनः अथाह कृष्ण द्वादशीसे व्रत ग्रहणकर मार्गशीर्षतक व्रतका नियम लेना चाहिये । पूर्वविधानसे उपवासपूर्वक उन्हीं नामोंसे क्रमशः भगवान्की पूजन करना चाहिये । प्रतिमास ब्राह्मणको भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये । तेल एवं क्षार पदार्थ नहीं ग्रहण करने चाहिये । इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतके करनेसे सभी कामन्तर्प पूर्ण हो जाती है और अन्तमें वह भगवान्के अनुग्रहसे उनके लोकमें प्राप्त कर लेता है ।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज । इसी प्रकार गोविन्द-द्वादशी नामका एक अन्य व्रत है, जिसके करनेसे सभी अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं । पौष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास कर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे

कमलनयन भगवान् गोविन्दका पूजनकर अन्तर्गमन भी इसी नामका उच्चारण करते रहना चाहिये । इस दिन पाखण्डियोंसे बात नहीं करनी चाहिये । ब्राह्मणोंको यथार्थक दक्षिणा देनी चाहिये । व्रतीको गोमूत्र, गोमय, दधि अथवा गोदुग्धका प्राशन करना चाहिये । दूसरे दिन खानकर उसी विधिसे गोविन्दका पूजन कर ब्राह्मणको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये । इसके साथ ही इस दिन गौको तृप्तिपूर्वक भोजन करना चाहिये । इसी प्रकार प्रतिमास व्रत करते हुए वर्ष सम्पन्न होनेपर भगवती लक्ष्मीके साथ सुवर्णकी भगवान् गोविन्दकी प्रतिमा बनवाकर पुष्प, धूप, दीप, माला, नैवेद्य आदिसे उनका पूजनकर सबतः गौसहित ब्राह्मणोंको देना चाहिये । प्रतिमास गौओंकी पूजा तथा उन्हें प्रासादितसे तृप्ता करना चाहिये । पारण्तके दिन विशेषरूपसे उनकी सेवा-भक्ति करनी चाहिये । इस व्रतको करनेसे वही फल प्राप्त होता है जो सुवर्णमूर्त्ति सौ गौओंके साथ एक उत्तम वृषका दान देनेसे होता है । इस व्रतको सम्यक् रूपसे करनेकाला सब सुख भोगकर अन्तमें गौलोकमें प्राप्त होता है । (अध्याय ७७-७८)

### अखण्ड-द्वादशी, मनोरथ-द्वादशी एवं तिल-द्वादशी-व्रतोंका विधान

राजा युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्ण ! व्रतोपवास, दान, धर्म आदिमें जो कुछ वैकल्प अर्थात् किसी बातकी न्यूनता रह जाय तो क्या फल होता है ? इसे आप बतलावें ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! राज्य पाकर भी जो निर्धन, उत्तम रूप पाकर भी काने, अंधे, लंगड़े हो जाते हैं, वे सब धर्म-वैकल्पके प्रभावसे ही होते हैं । धर्म-वैकल्पसे ही स्त्री-पुरुषोंमें वियोग एवं दुर्भाग्य होता है, उत्तम कुलमें जन्म पाकर भी लोग दुःशील हो जाते हैं, धनाढ्य होकर भी धनका भोग तथा दान नहीं कर सकते तथा वस्त्र-आभूषणोंसे

हीन रहते हैं । वे सुख प्राप्त नहीं कर पाते । अतः यज्ञमें, व्रतमें और भी अन्य धर्म-कृत्योंमें कभी कोई त्रुटि नहीं होने देने चाहिये ।

युधिष्ठिरने पुनः कहा—भगवन् ! यदि कदाचित् उपवास आदिमें कोई त्रुटि हो ही जाय तो उसके निवारणार्थ क्या करना चाहिये ?

श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अखण्ड द्वादशी-व्रत करनेसे सभी प्रकारकी धार्मिक त्रुटियाँ दूर हो जाती हैं । अब आप उसका भी विधान सुनें । मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी

द्वादशीको स्नानकर जनार्दन भगवान्का भक्तिपूर्वक पूजन कर उपवास रखना चाहिये और नारायणका सतत स्मरण करते रहना चाहिये। जितेन्द्रिय पुरुष पञ्चाग्न्यभिषिक्त जलसे स्नान करके जौ और त्रीहि (धान) से भर पात्र ब्राह्मणको दान करे और फिर भगवान्से यह प्रार्थना करे—

सप्तजन्मनि यत्किंचिन्पया खण्डव्रतं कृतम् ।

भगवन् त्वत्पसादेन तदखण्डमिहाम्नु मे ॥

यथाखण्डं जगत् सर्वं त्वयैव पुरुषोत्तम ।

तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै ॥

(उत्तरार्ध ७५ । १४-१५)

‘भगवन् ! मुझसे सात जन्मोंमें जो भी व्रत करनेमें न्यूनता हुई हो, वह सब आपके अनुग्रहसे परिपूर्ण हो जाय। पुरुषोत्तम ! जिस प्रकार आपसे यह साग जगत् परिपूर्ण है, उसी प्रकार मेरे खण्डित सभी व्रत पूर्ण हो जायें।’

इस व्रतमें चार महीनेमें व्रतकी कारणा करनी चाहिये। वैशादि चार मासके अनन्तर दूसरी पारणा कर सप्त-पात्र ब्राह्मणको देनेका विधान है। श्रावणादि चार मासके अनन्तर तीसरा पारण कर नारायणका पूजन करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण, चाँदी, मृत्तिका अथवा पल्लव-पत्रोंके पात्रमें धृत-दान करना चाहिये। संवत्सर पूर्ण होनेपर जितेन्द्रिय ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराकर वस्त्राभूषण देकर बुटियोंके लिये श्रमा माँगनी चाहिये। इसमें आचार्यका विधिपूर्वक पूजन करनेका भी विधान है। इस तरहसे जो अखण्ड-द्वादशीका व्रत करता है, उसके सात जन्मतक किये हुए व्रत सम्पूर्ण फलदायक हो जाते हैं। अतः स्त्री-पुरुषोंको व्रतोंका कैवल्य दूर करनेके लिये अवश्य ही इस व्रतको सम्पादित करना चाहिये।

**भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—**महाराज ! स्त्री अथवा पुरुष दोनोंको फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास कर जगत्पति भगवान्का पूजन-भजन और उठते-बैठते नित्य हरिकार स्मरण करते रहना चाहिये। द्वादशीके दिन प्रभातमें ही स्नान-पूजन तथा घृतसे हवनके बाद ब्राह्मणको दक्षिणा देनेका विधान है। तदनन्तर भगवान्से अपने अभीष्ट मनोरथोंकी संसिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। तत्पश्चात् हविष्य-भोजन ग्रहण करना चाहिये। इस व्रतमें फाल्गुनसे ज्येष्ठतक प्रथम चार महीनेमें रत्नपुष्प,

गुग्गुल-धूप और हविष्यान्न-नैवेद्यसे भगवान्की पूजा-अर्चनाके बाद गोमूत्रछलित जल तथा हविष्यान्न ग्रहण करनेका विधान है। फिर आषाढ़से आश्विनतक चार महीनेमें चमेलीके पुष्प, धूप और शल्यन्न (साठी धान) आदिके नैवेद्योंद्वारा भगवान्की पूजा-स्तुति करनेके बाद कुशोदकका प्राशन तथा निवेदित नैवेद्य भक्षण करना चाहिये। कार्तिकसे माघ मासतक तीसरी पारणमें जपापुष्प (अङ्गुल), उत्तम धूप और कसारके नैवेद्यसे नारायणके पूजनेपराप्त गोमूत्र-प्राशन तथा कसार-भक्षण करनेका विधान है। प्रतिमास ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। वर्षके अन्तमें एक वर्ष (मासा) सुवर्णकी भगवान् नारायणकी प्रतिमाका पूजन कर, दो बख और दक्षिणासहित ब्राह्मणको निवेदित करना चाहिये। इसीके साथ बारह ब्राह्मणोंको भी भोजन कराकर प्रत्येककी अन्न, जलका घट, छतरी, जूत, बख और दक्षिणा देनी चाहिये। इस द्वादशी-व्रतके करनेसे सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। इसीसे इसका नाम मनोरथ-द्वादशी है। इन्द्रको त्रैलोक्यका राज्य भी इसी व्रतके परीणाम-स्वरूप प्राप्त हुआ है। शूद्राचार्यने धन तथा महर्षि धौन्यने निर्बिघ्न विद्या प्राप्त की है। अन्य श्रेष्ठ पुरुषोंने तथा भिर्योंने भी इस व्रतके प्रभावसे अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त किया है। जो कोई भी जिस-किसी अभिलषासे इस व्रतको करता है, उसे यह अवश्य प्राप्त होती है। जो पुरुष भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन नहीं करते, गौ, ब्राह्मण आदिकी सेवा नहीं करते और मनोरथ-द्वादशीका व्रत नहीं रखते, वे किसी भी प्रकारसे अपना अभीष्ट-फल प्राप्त नहीं कर सकते।

**राजा युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् ! जोड़ेसे परिश्रमसे अथवा सत्पदानसे सभी पाप कट जायें ऐसा कोई उपाय आप बतलायें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! तिल-द्वादशी नामक एक व्रत है, जो परम पवित्र है और सभी पापोंका नाश करनेवाला है। माघ मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशीको जब मूल अथवा पूर्वाषाढ नक्षत्र प्राप्त हो, तब उसके एक दिन पूर्व अर्थात् एकादशीको उपवास रखकर व्रत ग्रहण करना चाहिये। द्वादशीको भगवान् श्रीकृष्णका पूजन कर ब्राह्मणको कृष्ण तिलोंका दान करना चाहिये। व्रतीको भी स्नानकर काले तिलका ही भोजन करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षतक

प्रत्येक कृष्ण द्वादशीमें व्रतकर अन्तमें तिलोसे पूर्ण कृष्णवर्णकी कुम्भ, पक्वान, छत्र, जूता, वस्त्र और दक्षिणा करह ब्राह्मणोंको देना चाहिये। उन तिलोंके बीनेसे जितने तिल उत्पन्न होते हैं, उतने वर्षपर्यन्त इस व्रतको करनेवाला स्वर्गमें पूजित होता है और किसी जन्ममें अंध, बधिर, कुष्ठो आदि नहीं होता,

सदा नीरोग रहता है। इस तिल-दानसे बड़े-बड़े पाप कट जाते हैं। इस व्रतमें न बहुत परिश्रम है और न ही बहुत अधिक व्यय। इसमें तिलोसे ही स्नान, तिल-दान और तिल ही भोजन करनेपर अवश्य सद्गति मिलती है।

(अध्याय ७९—८१)

### सुकृत-द्वादशीके प्रसंगमें सीरभद्र वैश्यकी कथा

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—** श्रीकृष्णचन्द्र ! ऐसा कौन-सा कर्म है, जिसके करनेसे सभी कष्ट दूर हो जायें तथा कोई संताप भी न हो।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—** महाराज ! आपने जो पूछा है, उस विषयमें एक आख्यानका वर्णन करता हूँ। पूर्ववत्सलमें विदिशा (भेलसा) नगरीमें सीरभद्र नामक एक वैश्य रहता था। वह पुत्र-पौत्र, कन्या, स्त्री आदिके भरण-पोषणमें ही लग्न रहता था, फलस्वरूप स्वयं भी उसे परलोककी चिन्ता नहीं होती थी। वह न्याय-अन्याय हर तरहसे धनका ही उपार्जन करता, कभी दान, हवन, देवपूजन आदि कर्मका नाम भी नहीं लेता था। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका लोभ उसने स्वयं कर लिया था। कुछ कालके अनन्तर वह वैश्य मृत्युको प्राप्त हुआ और विन्ध्यारण्यमें यातना-देहमें प्रेतस्वरूपसे रहने लगा। एक दिन प्रीत्य ऋतुमें विपीत नामके वेदवेत्ता ब्राह्मणने उस प्रेतको देखा कि वह सूर्य-किरणोंसे संताप नदीके बालूमें लोट रहा है, उसके सब अङ्गोंमें छाले पड़ गये हैं। प्याससे कण्ठ सूख रहा है और जिह्वा लटक गयी है। वह लम्बी-लम्बी साँस ले रहा है। उसकी यह दशा देखकर ब्राह्मणको बड़ी दया आयी और उसने उसका वृत्तान्त पूछा।

**प्रेत कहने लगा—** ब्रह्मन् ! मैं पूर्व-जन्ममें परलोकके लिये किसी प्रकारके कर्म न करनेके कारण ही दम्भ हो रहा हूँ। मैं निरन्तर धन, घर, खेत, पुत्र, स्त्री आदिकी चिन्तामें ही आसक्त रहता था और मैंने अपने वास्तविक हितका चिन्तन कभी नहीं किया। इसीसे यह कष्ट भोग रहा हूँ। 'यह काम कर लिया और यह काम करना है'—इसी उधेड़बुनमें सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करनेका ही यह फल है। लोभवश मैं शीत-उष्ण सभी प्रकारके कष्टोंको झेल रहा हूँ। मैंने धर्मके लिये

किंचित् भी कष्ट नहीं झेला, उससे अब पछताता हूँ। देवता, पितर, अतिथि आदिका मैं कभी पूजन नहीं किया और यही कारण है कि अब मुझे अन्न-जलतक नहीं मिल रहा है। अन्यायके द्वारा एकत्र किये गये धनका उपभोग दूसरे लोग कर रहे होंगे, यह सोच-सोचकर मुझे चैन नहीं मिलता। मैंने कभी ब्राह्मणोंका पूजन नहीं किया और न ही कभी देवार्चन ही किया। फलस्वरूप मेरी ऐसी दशा हुई है। चूँकि मैंने पापोंका ही संवय किया, अतः मैं उसके फलको अकेले ही भोग रहा हूँ। मैं अपने किये दुष्कर्मोंका ही फल भोग रहा हूँ। अतः हे मुनीश्वर ! यदि ऐसा कोई उपाय हो तो आप उसे बतायें, जिससे इस दुर्गतिसे मैं उद्धार हो।

**विपीतमुनि बोले—** सीरभद्र ! दस जन्म पहले तुमने भगवान् अश्वत्थकी आराधनाकी इच्छासे सुकृत-द्वादशीका उपवास किया था, उसके प्रभावसे इस पापके बहुत बड़े भागका क्षय हो गया है, अब तुम्हें अल्पकालमें ही उत्तम गति प्राप्त होगी। यह द्वादशी-व्रत पापोंका क्षय तथा पुण्यका संवय करनेवाला है, इसी कारण इसका नाम सुकृत-द्वादशी है। इस तरह सीरभद्रको आश्वासन कर विपीतमुनि अपने आश्रमकी चले गये और सीरभद्र भी द्वादशीव्रतके फलस्वरूप थोड़े कालके अनन्तर मोक्षको प्राप्त हो गया।

**इतना कहकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—** हे महाराज ! यह उपवासका प्रभाव है कि इतना पाप थोड़े ही कालमें क्षय हुआ, इसलिये मनुष्यको पुण्यके लिये सदा यत्न करना चाहिये और अपने कल्याणके लिये उपवासदि करते रहना चाहिये।

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—** श्रीकृष्णचन्द्र ! पापोंसे अति दारुण नरककी यातना भोगनी पड़ती है। ऐसा कौन-सा व्रत है, जिससे सब पाप नष्ट हो जायें और मोक्ष प्राप्त हो।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास कर काम, ज्येष्ठ, लोभ, मोह, दम्भ आदिका त्यागकर संसारकी अस्मरताको भगवन् करता हुआ 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये। और इसी भाँति द्वादशीको भी भगवान् मधुसूदनकी पूजा आदि करनी चाहिये। प्रथम चार (फाल्गुनसे ज्येष्ठ) मासके पारणमें चाँदी, तबि अथवा मृत्तिकाके पात्रोंमें यव भरकर ब्राह्मणोंको देना चाहिये। आषाढ़दि द्वितीय पारणमें घृतपात्र देना चाहिये और कार्तिकदि चार मासमें तिलपात्र ब्राह्मणोंको अर्पण करना चाहिये। भगवान्की पूजाके अनन्तर उनके अनुग्रहकी प्राप्तिके लिये

प्रार्थना करनी चाहिये। तदनन्तर भोजन करना चाहिये। वर्ष पूरा होनेपर सुवर्णकी विष्णु-प्रतिमा बनवाकर उसे पूजित कर वस्त्र, सुवर्ण, दक्षिणा-सहित सवत्साधेन ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इस विधिसे जो पुरुष अथवा स्त्री इस सुकृतद्वादशीका व्रत करता है, वह कभी नरकको नहीं प्राप्त होता। नारायणके भक्तको कभी नरककी बाधा नहीं होती। विष्णुका नाम उच्चारण करते ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, फिर नरकके भयका तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसी प्रकार वासुदेव नारायणके नामोंका उच्चारण करनेवाला कभी भी यमका मुख नहीं देखता। अतः भगवान्के पवित्र नामोंका उच्चारण करना चाहिये। (अध्याय ८२)

### धरणी-व्रत (अर्चावतार-व्रत)

**राजा युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् ! वेदोंमें यह कहा गया है कि विधिपूर्वक यज्ञ करने, बड़े-बड़े दान देने और कठिन परिश्रम करनेसे परमेश्वरकी प्राप्ति होती है, किन्तु कलियुगके प्राणी, जो न दान दे सकते हैं और न ही यज्ञ करनेमें समर्थ हैं, उनकी मुक्ति किस प्रकार हो सकती है, यदि कोई उपाय हो तो आप उसे बतायें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**राजन् ! मैं आपके एक रहस्यपूर्ण बात बतलाता हूँ। प्रलयके समय जब धरणी (पृथ्वी) जलमें निमग्न होकर रसातल वाली गयी, तब उस समय धरणीदेवीने अपने उद्धारके लिये व्रत किया था। व्रतके प्रभावसे प्रसन्न होकर भगवान् नारायणने वराहरूप धारणकर उसे पुनः अपने स्थानपर लाकर स्थापित कर दिया। उस व्रतका विधान इस प्रकार है—

व्रतीको मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी दशम्येको प्रातःकाल नित्य-स्नानादि क्रियाओंको सम्पन्न कर दैर्घ्यर्चन एवं हवनदि कर्म विधिपूर्वक करने चाहिये। उस दिन पवित्र, अत्यल्प हविष्यान्न-भोजन करना चाहिये। अनन्तर पुनः पाँच पग चलकर हाथ-पाँव धोकर पवित्र हो क्षीर-वृक्षके अष्ट अंगुलके दातूनसे दन्तधावन कर आचमन करना चाहिये। जलसे अङ्गोंका स्पर्शकर भगवान् जनार्दनका ध्यान करते हुए वह दिन व्यतीत करना चाहिये। एकादशीको निराहार रहकर भगवान्के नामोंका जप करना चाहिये। द्वादशीको प्रातः नदी

आदिके पवित्र जलमें स्नान करना चाहिये। स्नानसे पूर्व नदी, तालाब अथवा झूड़ एवं पवित्र स्थानकी मृत्तिका ग्रहण करनी चाहिये, मृत्तिका ग्रहण करते समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—

धारणे पोषणे स्वप्ते भूतानां देवि सर्वदा ।

तेन सत्त्वेन मां पाहि पापाप्मोक्षय मुक्ते ॥

(कार्तिक ८३।१७)

'देवि मुक्ते ! जिस शक्तिके द्वारा आप समस्त स्थावर-जंगमात्मक प्राणियोंका धारण-पोषण करती हैं, उसी शक्तिके द्वारा मुझे पापोंसे मुक्त कीजिये तथा सदा मेरा पालन कीजिये।'

पुनः उस मिट्टीको सूर्यको दिशाकर शरीरमें लगाकर स्नान करे। तदनन्तर आचमनकर देवमन्दिरमें जाकर भगवान् नारायणके अङ्गोंकी पूजा करे। नारायणके आगे चार जलपूर्ण घटोंमें चार समुद्रोंकी परिकल्पनाकर स्थापना करे। उन घटोंपर तिलपूर्ण पूर्णपात्र स्थापित करे। घटोंके मध्य एक पीठके ऊपर जलपात्रमें सुवर्ण, चाँदी अथवा काष्ठकी मत्स्यभगवान्की प्रतिमा बनाकर स्थापित करे। यथाविधि उपचारोंसे उनका पूजनकर प्रार्थना करे। रात्रिमें वहीं जागरण करे। प्रभातमें चारों घटोंको ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी तथा अथर्ववेदी चार ब्राह्मणोंकी पूजाकर उन्हें निवेदित करे। जलपात्रमें स्थापित भगवान् मत्स्यकी प्रतिमा ब्राह्मण-दम्पतिको प्रदान करे।



ब्राह्मणोंको पायसाप्रसे संतुष्ट कर पश्चात् स्वयं भी भोजन करे। राजन् ! इस विधिसे जो मार्गशीर्ष कृष्ण द्वादशीका व्रत करता है, उसे दीर्घ आयुकी प्राप्ति होती है। जन्मान्तरमें किये गये ब्राह्महत्या आदि महापातकोंसे उसकी मुक्ति हो जाती है। यदि निष्कर्मभावसे व्रत करता है तो उसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

इसी प्रकार छानादि कर पौष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास कर भगवान् जनार्दनकी कूर्मरूपमें पूजा करनी चाहिये। माघ मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास-पूर्वक भगवान् वराहकी प्रतिमाका पूजनकर ब्राह्मणको दान करना चाहिये। इसी प्रकार फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षको द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् नरसिंहकी प्रतिमाका, चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको भगवान् वामनकी प्रतिमाका, वैशाख शुक्ल द्वादशीको परशुरामजीकी प्रतिमाका, ज्येष्ठ मासकी शुक्ल द्वादशीको भगवान् राम-लक्ष्मणकी प्रतिमाका, आषाढ़ शुक्ल द्वादशीको भगवान् वासुदेव (कृष्ण) की प्रतिमाका, आश्विन मासकी शुक्ल द्वादशीको बुद्ध भगवान्की तथा भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् कलिककी प्रतिमाका यथाविधि अङ्ग-पूजन आदि कर घटोंकी स्थापना करके पुजित प्रतिमा आदि ब्राह्मणोंको निवेदित कर देनी चाहिये।

इस प्रकार दस मासमें भगवान्के दशवतारोंका पूजनकर पूर्व-विधानसे आश्विन शुक्ल द्वादशीको उपवास-पूर्वक भगवान् पद्मनाभकी तथा कार्तिक द्वादशीको वासुदेवकी पूजा करनी चाहिये। अन्तमें प्रतिमा तथा घटोंको ब्राह्मणको निवेदित कर दे। उन्हें भोजन कराकर, दक्षिणा प्रदान करे तथा दीनों, अनाथोंको भी भोजन-वस्त्र आदिसे संतुष्ट करना चाहिये और फिर स्वयं भी भोजन करना चाहिये।

राजन् ! इस प्रकार द्वादश मासोंमें जो इस व्रतको करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-सायुज्यको प्राप्त करता है। धरणीदेवीने इस व्रतको किया था। इसीलिये यह धरणी-व्रतके नामसे प्रसिद्ध हुआ। प्राचीन कालमें दक्षप्रजापतिने इस व्रतका अनुष्ठानकर प्रज्जओंका अधिपतित्व प्राप्त किया था। राजा युक्ताक्षने इस व्रतके अनुष्ठानसे मान्दता नामक श्रेष्ठ पुत्रको प्राप्तकर अन्तमें शाश्वत ब्राह्मपद प्राप्त किया था। इसी प्रकार हैहयधिपति कृतवीर्यने इस व्रतके प्रभावसे महान् पराक्रमी चक्रवर्ती राजा सहजार्जुनको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। शकुन्तलने भी इस व्रतके प्रभावसे राजर्षि दुष्यन्तको पति-रूपमें तथा श्रेष्ठ भरतको पुत्र-रूपमें प्राप्त किया था। इसी प्रकार अन्य कई श्रेष्ठ चक्रवर्ती राजाओं तथा श्रेष्ठ पुरुषोंने इस व्रतके प्रभावसे उत्तम फल प्राप्त किया था। जो भी इसे करता है, भगवान् नारायण उसका उद्धार कर देते हैं<sup>१</sup>। (अध्याय ८३)

## विशोकद्वादशी-व्रत और गुडधेनु<sup>२</sup> आदि दस धेनुओंके दानकी विधि तथा उसकी महिमा

**युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! इस भूतलपर कौन ऐसा उपवास या व्रत है, जो मनुष्यके अभीष्ट वस्तुओंके विधोगसे उत्पन्न शोकसमूहसे उद्धार करनेमें समर्थ, धन-सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला और संसार-भयका नाशक है।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! आपने जिस व्रतके विषयमें प्रश्न किया है, वह समस्त जगत्को प्रिय तथा इतना महत्त्वशाली है कि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यद्यपि इन्द्र, असुर और मानव भी उसे नहीं जानते तथापि आप-जैसे भक्तिमान्के प्रति मैं अवश्य इसका वर्णन करूँगा।

उस पुण्यप्रद व्रतका नाम विशोकद्वादशी-व्रत है। विद्वान् वतोंकी, आश्विन मासमें दशमी तिथिके दिन अल्प अवहार करके नियमपूर्वक इस व्रतका आरम्भ करना चाहिये। पुनः एकादशके दिन व्रती उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर टाटून करे, फिर (स्नान आदिसे निवृत्त होकर) निराहार रहकर भगवान् केशव और लक्ष्मीकी विधिपूर्वक भलीभाँति पूजा करे और 'दूसरे दिन भोजन करूँगा'—ऐसा नियम लेकर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर सर्वाभिधि और पञ्चगव्यमिले जलसे स्नान करे तथा श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण

१-वाराहपुराणके ३९वें अध्यायसे ५०वें तक ठीक इसी प्रकार इन द्वादश द्वादशी-व्रतोंकी कथा एवं व्रत-विधिका विस्तारसे वर्णन हुआ है।  
२-यह विषय मत्स्यपुराण ८२, पञ्च- १।२१, व्यासपुराण १०२, कृष्णकण्ठसंहिता ५, दानकाण्ड ५-१४१ तथा दानमयूख, दानसागरादिमें विशेष शृङ्खलसे उद्धृत है। तदनुसार इसे भी शुद्ध किया गया है।

करके भगवान् विष्णुकी कमल-पुष्पीद्वारा पूजा करे। पूजन करनेके पश्चात् एक मण्डल बनाकर मिट्टीसे चैत्राङ्क निर्माण कराये। वह वेदी बीस अंगुल लम्बी-चौड़ी, चारों ओरसे चौकोर, उत्तरकी ओर ढालू, चिकनी और सुन्दर हो। तत्पश्चात् बुद्धिमान् व्रती सूपमें नदीकी बालुकासे लक्ष्मीकी मूर्ति अंकित करे और उस सूपको वेदीपर रखकर 'देव्यै नमः', 'ज्ञान्यै नमः', 'लक्ष्म्यै नमः', 'श्रियै नमः', 'पुष्ट्यै नमः', 'तृष्ट्यै नमः', 'वृष्ट्यै नमः', 'हृष्ट्यै नमः' के उच्चारणपूर्वक लक्ष्मीकी अर्चना करे और यों प्रार्थना करे—'विशोका (लक्ष्मीदेवी) मेरे दुःखोंका नाश करे, विशोका मेरे लिये वरदायिनी हो, विशोका मुझे संतति दे और विशोका मुझे सम्पूर्ण सिद्धिार्थ प्रदान करे।' तदनन्तर श्वेत वस्त्रोंसे सूपको परिवेष्टित कर नाना प्रकारके फलों, वस्त्रों और स्वर्णमय कमलोंसे लक्ष्मीकी पूजा करे। चतुर व्रती सभी रात्रियोंमें कुशोदक-दान करे और सारी रात नृत्य-गीत आदिका आयोजन कराये। तीन पहर रात व्यतीत होनेपर व्रती मनुष्य स्वयं नींद त्यागकर जग जाय और अपनी शक्तिके अनुसार शय्यापर सोते हुए तीन या एक द्विज-दम्पतिके पास जाकर वस्त्र, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे 'जलशायिने नमोऽस्तु' जलशायी भगवान्को नमस्कार है—यों कहकर उनकी पूजा करे। इस प्रकार रातमें गीत-वाद्य आदि कराकर जागरण करे तथा प्रातःकाल स्नान कर पुनः द्विज-दम्पतिका पूजन करे और कृपणता छोड़कर अपनी सामर्थ्यके अनुकूल उन्हें भोजन कराये। फिर स्वयं भोजन करके पुराणोंकी कथाएँ सुनते हुए वह दिन व्यतीत करे। प्रत्येक मासमें इसी विधिसे सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये।

इस प्रकार व्रतकी समाप्तिके अवसरपर गन्ध, चन्दन, तर्किया आदि उपकरणोंसे युक्त एक सुन्दर शय्या गुड-धेनुके साथ दान करके इस प्रकार प्रार्थना करे—'देवेश ! जिस प्रकार लक्ष्मी आपका परित्याग करके अन्यत्र नहीं जाती, उसी प्रकार सौन्दर्य, नीरोगता और निःशोकता सदा मुझे निरवच्छिन्नरूपसे प्राप्त हो—मेरा परित्याग न करे और भगवान् केशवके प्रति उत्तम भक्ति प्राप्त हो।' वैष्णवकी अभिलाषा रखनेवाले व्रतीको समन्त्र गुड-धेनुसहित शय्या और लक्ष्मीसहित सूप-दान

करना चाहिये। इस व्रतमें कमल, करवीर (कनेर), बाण (चौलकुसुम या अगस्त्य-वृक्षका पुष्प), ताज (बिना कुम्हलपत्र हुआ) कुकुम, केसर, सिन्दुवार, मल्लिका, गन्धपाटल, कदम्ब, कुम्भक और जाती—ये पुष्प सदा प्रशस्त माने गये हैं।

**बुधिष्ठिरने पुनः पूजा**—जगत्पते ! अब आप मुझे (विशोकद्वारदशके प्रसङ्गमें निर्दिष्ट) गुड-धेनुका विधान बतलाइये। साथ ही यह भी बतलानेकी कृपा कीजिये कि गुड-धेनुका रूप कैसा होता है और उसे किस मन्त्रका पाठ करके दान करना चाहिये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले**—महाएज ! इस लोकमें गुड-धेनुके विधानका जो रूप है और उसका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसे मैं बतला रहा हूँ। गुड-धेनुका दान समस्त पापोंका विनाशक है। गुड-धेनुका दान करनेके दिन गोबरसे धूम्रको लीप-पोतकर सब ओरसे कुश बिछाकर उसपर चार हाथ लम्बा काला मृगचर्म स्थापित कर दे, जिसका अधभाग पूर्व दिशाकी ओर हो। तदनन्तर एक छोटे मृगचर्ममें बछड़ेकी कल्पना करके उसीके निकट रख दे। फिर उसमें पूर्वमुख और उत्तर पैरवाली सफ़रता गौकी कल्पना करे। चार भाग गुडसे बनी हुई गुड-धेनु सदा उत्तम मानी गयी है। उसका बलका एक भार गुडका बनाना चाहिये। अपने गृहकी सम्पत्तिके अनुसार इस (गौ)का निर्माण करना चाहिये। इस प्रकार गौ और बछड़ेकी कल्पना करके उन्हें श्वेत एवं महीन वस्त्रोंसे आच्छादित कर दे। फिर धीमे उनके मुखकी, सीपसे कन्ठकी, गालसे पैरोंकी, श्वेत मोतीसे नेत्रोंकी, श्वेत सूतसे नङ्गियोंकी, श्वेत कमलसे गल-कम्बलकी, लाल रंगके चिह्नसे पीठकी, श्वेत रंगके मृगचुच्छके बालोंसे रोएँकी, मूँगेसे दोनों धोलेकी, मक्खनसे दोनों स्तनोंकी, देशमकं घागेसे पूँछकी, कौंससे दोहनकी, इन्द्रनीलमणिसे आँखोंकी तारिकाओंकी, सुवर्णसे सींगके आभूषणोंकी, चाँदीसे खुरोंकी और नाना प्रकारके फलोंसे नासापुटोंकी रचना कर धूप, दीप आदिद्वारा उनकी अर्चना करनेके पश्चात् यों प्रार्थना करे—

'जो समस्त प्राणियों तथा देवताओंमें निवास करनेवाली

१-विशोका दुःखनाशक विशोका वरदायिनी ये। विशोका कस्तुरी माली विशोका सर्वसौख्यदा । (उत्तरपर्व ८४।१६)

२-ये हावर फल अर्थात् तीन मन्त्रों के व्रतको 'ध्रुव' कहते हैं।

लक्ष्मी है, धेनुरूपसे वही देवी में पापोक्ता विनाश करें। जो लक्ष्मी विष्णुके वक्षःस्थलपर विराजमान है, जो स्वाहारूपसे अग्निकी पत्नी हैं तथा जो चन्द्र, सूर्य और इन्द्रकी शक्तिरूपा हैं, वे ही धेनुरूपसे में लिये सम्पत्तिदायिनी हों। जो ब्रह्माकी, कुबेरकी तथा लोकपालकी लक्ष्मी है, वे धेनुरूपसे में लिये वरदायिनी हों। जो लक्ष्मी प्रधान पितरोंके लिये स्वाधारूपा, यज्ञभोजी अग्नियोंके लिये स्वाहारूपा तथा सम्पत्त पापोंको हरनेवाली धेनुरूपा है, वे मुझे ऐश्वर्य प्रदान करें।' इस प्रकार उस गुड-धेनुको आमन्त्रित कर उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे। यही विधान घृत-तिल आदि सम्पूर्ण धेनुओंके दानके लिये कहा गया है।

नरेश्वर ! अब जो दस पापविनाशिनी गौएँ बतलवायी गयी हैं, उनका नाम और स्वरूप बतला रहा हूँ। पहली गुड-धेनु, दूसरी घृत-धेनु, तीसरी तिल-धेनु, चौथी मधु-धेनु, पाँचवीं जल-धेनु, छठी क्षीर-धेनु, सातवीं शर्करा-धेनु, आठवीं

दधि-धेनु, नवीं रस-धेनु और दसवीं स्वरूपतः प्रत्यक्ष धेनु है। सदा पर्व-पर्वपर अपनी ब्रह्माके अनुसार मनोच्चारणपूर्वक आवाहनसहित इन गौओंका दान करना चाहिये, क्योंकि ये सभी भोग और मोक्षरूप फलको प्रदान करनेवाली हैं। ये सभी सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाली, कल्याणकारिणी और पापहरिणी हैं। चूँकि इस लोकमें विशोकद्वादशी-व्रत सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ माना गया है, इसलिये उसका अङ्ग होनेके कारण गुड-धेनु भी प्रशस्त मानी गयी है। उत्तरायण और दक्षिणायनके दिन, पुण्यप्रद विषुवयोग, व्यतीपातयोग अथवा सूर्य-चन्द्रके ग्रहण आदि पर्वोंपर इन गुड-धेनु आदि गौओंका दान करना चाहिये। यह विशोकद्वादशी पुण्यदायिनी, पापहरिणी और मङ्गलकारिणी है। इसका व्रत करके मनुष्य विष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें सौभाग्य, गौरीगल और दीर्घायु प्राप्तकर अन्तमें श्रीहरिका स्मरण करता हुआ विष्णुलोक प्राप्त करता है। (अध्याय ८४)

### विभूतिद्वादशी'-व्रतमें राजा पुण्यवाहनकी कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! अब मैं भगवान् विष्णुके विभूतिद्वादशी नामक सर्वोत्तम व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो सम्पूर्ण देवगणोंद्वारा अभिषन्धित है। बुद्धिमान् मनुष्य कर्त्तिक, वैशाख, मार्गशीर्ष, फाल्गुन अथवा अश्वि मासमें शुक्ल पक्षकी दशमी तिथिके स्वल्पहार कर सायंकालिक संध्योपासनासे निवृत्त हो इस प्रकारका नियम ग्रहण करे—'प्रभो ! मैं एकादशीको निराहार रहकर भगवान् जनार्दनकी भलीभाँति अर्चना करूँगा और द्वादशके दिन ब्राह्मणके साथ बैठकर भोजन करूँगा। केशव ! मेरा यह नियम निर्विघ्नत्वपूर्वक पूर्ण हो जाय और फलदायक हो।' फिर रातमें 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्रका जप करते हुए सो जाय। प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि करके पवित्र हो श्वेत पुष्पोंकी माला एवं चन्दन आदिसे भगवान् पुण्डरीकाक्षका पूजन करे।

एक वर्षतक प्रतिमास क्रमशः भगवान्के दस अवतारों तथा दत्तात्रेय और व्यासकी स्वर्णमयी प्रतिमाका स्वर्णनिर्मित

कमलके साथ दान करना चाहिये। उस समय छल, कपट, पाशण्ड आदिसे दूर रहना चाहिये। राजन् ! इस प्रकार पञ्चदशिक बारहो द्वादशी-व्रतोंको समाप्त कर वर्षिक अन्तमें गुरुको लवणपर्वतके साथ-साथ गौसहित शय्या-दान करना चाहिये। व्रती यदि सम्पत्तिशाली हो तो उसे वस्त्र, गृहार-सामग्री और आभूषण आदिसे गुरुकी विधिपूर्वक पूजा कर घाम अथवा गृहके साथ-साथ भूमिक दान करना चाहिये। साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराकर उन्हें वस्त्र, गोदान, रत्नसमूह और धनराशियों-द्वारा सेतुष्ट करना चाहिये। स्वल्प धनवाला व्रती अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान करे तथा जो व्रती परम निर्धन हो, किन्तु भगवान् माधवके प्रति उसकी प्रगाढ़ निष्ठा हो तो उसे तीन वर्षतक पुष्पार्चनकी विधिसे इस व्रतका पालन करना चाहिये। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह स्वयं पापसे मुक्त होकर अपने सौ पीढ़ियोंतकके पितरोंको तार देता है। उसे एक लाख जन्मोतक

न तो श्रेष्ठरूप फलका भागी होना पड़ता है, न व्याधि और दरिद्रता ही घेरती है तथा न बन्धनमें ही पड़ना पड़ता है। वह प्रत्येक जन्ममें विष्णु अथवा शिवका भक्त होता है। राजन् ! जबतक एक सौ अष्ट सहस्र युग नहीं बीत जाते, तबतक वह स्वर्गलोकमें निवास करता है और पुण्य-क्षीण होनेपर पुनः भूतलपर राजा होता है।

**भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—**महाराज ! बहुत पहले रघुनन्दनकल्पमें पुष्पवाहन नामका एक राजा हुआ था, जो सम्पूर्ण लोकमें विख्यात तथा तेजमें सूर्यके समान था। उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर ब्रह्मने उसे एक सोनेका कमल (रूप विमान) प्रदान किया था, जिससे वह इच्छानुसार जहाँ-कहाँ भी आ-जा सकता था। उसे पाकर उस समय राजा पुष्पवाहन अपने नगर एवं जनपदवासियोंके साथ उसपर अस्त्रशूद्र होकर खेचनानुसार देवलोकमें तथा सातों द्वीपोंमें विचरण किया करता था। कल्पके आदिमें पुष्करनिवासि उस पुष्पवाहनका सत्त्व द्वीपपर अधिकार था, इसीलिये लोकमें उसकी प्रतिष्ठा थी और आगे चलकर वह द्वीप पुष्करद्वीपके नामसे कहा जाने लगा। चूँकि देवेष्वर ब्रह्मने इसे कमलरूप विमान प्रदान किया था, इसीलिये देवता एवं दानव उसे पुष्पवाहन कहा करते थे। तपस्याके प्रभावसे ब्रह्माद्वारा प्रदत्त कमलरूप विमानपर अस्त्रशूद्र होनेपर उसके लिये तिलोत्तमोंमें कोई भी स्थान अगम्य न था। योन्द्र ! उसकी पत्नीका नाम लावण्यवती था। वह अनुपम सुन्दरी थी तथा हजारों नरिवोंद्वारा चारों ओरसे सम्पदित होती रहती थी। वह राजाको उसी प्रकार अत्यन्त प्यारी थी, जैसे श्रेष्ठजीवों पर्याप्तजी परम प्रिय है। उसके दस हजार पुत्र थे, जो परम धार्मिक और धनुर्धारियोंमें अग्रगण्य थे। अपनी इन सारी विभूतियोंपर बारंबार विचारकर राजा पुष्पवाहन विस्मय-विमुग्ध हो जाता था। एक बार (प्रचेतके पुत्र) मुनिकर वाल्मीकि<sup>१</sup> राजाके यहाँ पधारे। उन्हें आया देखकर राजाने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया—

**राजा पुष्पवाहनने पूछा—**मुनीन्द्र ! किस कारणसे मुझे

यह देवी तथा मानवोंद्वारा पूजनीय निर्मल विभूति तथा अपने सौन्दर्यसे समस्त देवगणोंको पराजित कर देनेवाली सुन्दरी भार्या प्राप्त हुई है ? मेरे छोड़े-से तपसे संतुष्ट होकर ब्रह्मने मुझे ऐसा कमल-गृह क्यों प्रदान किया, जिसमें अमाल्य, हाथी, रत्नसमूह और जनपदवासियोंसहित यदि सौ करोड़ राजा बैठ जायें तो भी वे जान नहीं पड़ते कि कहाँ चले गये। वह विमान तारागणों, लोकपालों तथा देवताओंके लिये भी अलक्षित-सा रहता है। प्रचेत ! मैंने, मेरी पुत्रोंने अथवा मेरी भार्याने पूर्वजन्मोंमें कौन-सा ऐसा कर्म किया है, जिसका प्रभाव आज दिखल्यो पड़ रहा है, इसे आप बतलायें।

तदनन्तर सर्वार्थ चाल्मीकि राजाके इस आकांक्षिक एवं अद्भुत प्रभावपूर्ण वृत्तान्तको जन्मान्तरसे सम्बन्धित जानकर इस प्रकार कहने लगे—‘राजन् ! तुम्हारा पूर्वजन्म अत्यन्त भीषण व्याधके कुलमें हुआ था। एक तो तुम उस कुलमें पैदा हुए, फिर दिन-रात पापकर्ममें भी निरत रहते थे। तुम्हारा शरीर भी कपटो अङ्ग संश्लिष्ट तथा खेड़ील था। तुम्हारी लम्बा दुर्गन्धपुल थी और नख बहुत बड़े हुए थे। उससे दुर्गन्ध निकलती थी और तुम बड़े कुम्प्य थे। उस जन्ममें न तो तुम्हारा कोई हितैषी मित्र था, न पुत्र और न भाई-बन्धु ही थे, न मित्र-माता और बहिन ही थी। भूपाल ! केवल तुम्हारी यह परम विपत्तिका पत्नी ही तुम्हारी अभीष्ट परमानुकूल संगिनी थी। एक बार कभी भयंकर अनावृष्टि हुई, जिसके कारण अकाल पड़ गया। उस समय भूखसे पीड़ित होकर तुम आहारकी खोजमें निकले, परंतु तुम्हें कुछ भी जंगली (कन्द-मूल) फल आदि कोई खाद्य वस्तु प्राप्त न हुई। इतनेमें ही तुम्हारी दृष्टि एक सरोवरपर पड़ी, जो कमलसमूहसे मण्डित था। उसमें बड़े-बड़े कमल खिले हुए थे। तब तुम उसमें प्रविष्ट होकर अहुरोक्षक कमल-पुष्पोंको लेकर वीदिश<sup>२</sup> नामक नगर- (विदिश नगरी-) में चले गये। वहाँ तुमने उन कमल-पुष्पोंको बेचकर मूल्य-प्राप्तिके हेतु पूरे नगरमें चकर लगाया। सारा दिन बीत गया, पर उन कमल-पुष्पोंका कोई खरीददार न मिला। उस समय

१-वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड १३।१७, १६।१७, १११।११ तथा अध्यात्मशतक ७।७।३१, कालकल्याण, उत्तररामचरित आदिके अनुसार ‘प्रचेतस’ उन्मत्त महर्षि वाल्मीकिका ही व्यक्त है।

२-यह इतिहास-पुराणदिमें अति प्रसिद्ध विदिश जन्मकी कहीके तटपर बसा मध्यप्रदेशके मध्यकालीन इतिहासका बेसमर, आजकालका भेलसा नगर है। इसपर कनिष्कका ‘भेलसा टीका’ ग्रन्थ प्रसिद्ध है।



तुम भूखसे अत्यन्त व्याकुल और थकावटसे अतिशय ज्ञान होकर पत्नीसहित एक महलके प्राङ्गणमें बैठ गये। वहाँ रात्रिमें तुम्हें महान् मङ्गल शब्द सुनायी पड़ा। उसे सुनकर तुम पत्नीसहित उस स्थानपर गये, जहाँ वह मङ्गलशब्द हो रहा था। वहाँ मण्डपके मध्यभागमें भगवान् विष्णुकी पूजा हो रही थी। तुमने उसका अवलोकन किया। वहाँ अनङ्गवती नामकी वेदया माध मासकी विभूतिदादशी-व्रतकी स्मृति कर अपने गुरुको भगवान् हृषीकेशका विधिवत् श्रृङ्गार कर स्वर्णमय कल्पवृक्ष, श्रेष्ठ लवणाचल और समस्त उपकरणोंसहित शय्याका दान कर रही थीं। इस प्रकार पूजा करती हुई अनङ्गवतीको देखकर तुम दोनोंके मनमें यह विचार जाग्रत हुआ कि इन कमलपुष्पोंसे क्या लेना है। अच्छा तो यह होता कि इनसे भगवान् विष्णुका श्रृङ्गार किया जाता। नरेन्द्र ! उस समय तुम दोनों पति-पत्नीके मनमें ऐसी भक्ति उत्पन्न हुई और इसी अर्थात् प्रसङ्गमें तुम्हारे इन पुण्योंसे भगवान् केराव और लवणाचलकी अर्चना सम्पन्न हुई तथा श्रेष्ठ पुण्य-समूहोंसे तुम दोनों शय्याको भी सब ओरसे सुसज्जित किया।

तुम्हारी इस क्रियासे अनङ्गवती बहुत प्रसन्न हुई। उस समय उसने तुम दोनोंको इसके बदले तीन सौ अश्विर्घा देनेका आदेश दिया, पर तुम दोनोंने कहीं दुइतासे उस धन-राशिको अस्वीकार कर दिया। भूपते ! तब अनङ्गवतीने तुम्हें (भक्ष्य, भोज्य, लेहा, चोथ) बार प्रकारका अन्न लवकर दिया और कहा—‘भोजन कीजिये’, किन्तु तुम दोनोंने उसका भी परित्याग कर दिया और कहा—‘वरुन्ने ! हमलोग कल भोजन कर लेंगे। दुइव्रते ! हम दोनों जगत्से ही क्षयपरगण और कुकर्म करनेवाले हैं, पर इस समय तुम्हारे उपवासक प्रसङ्गसे हमें विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा है।’ उसी प्रसङ्गमें तुम दोनोंको धर्मका लेशांश प्राप्त हुआ और तुम दोनोंने रतभर जागरण भी किया था। (दूसरे दिन) प्रातःकाल अनङ्गवतीने भक्तिपूर्वक अपने गुरुकी लवणाचलसहित शय्या और अनेकों गवि प्रदान किये। उसी प्रकार उसने अन्य बारह ब्राह्मणोंको भी सुवर्ण, वस्त्र, अलंकारादिसहित बारह गौएँ प्रदान कीं।

तदनन्तर सुहृद्, मित्र, दोन, अंधे और दृष्टिहीनके साथ तुम लुब्धक-दम्पतिके भोजन कराया और विशेष आदर-सत्कारके साथ तुम्हें बिदा किया।

राजेन्द्र ! वह सपत्निक लुब्धक तुम्हीं थे, जो इस समय राजराजेश्वरके रूपमें उत्पन्न हुए हो। उस कमल-समूहसे भगवान् केरावका पूजन होनेके कारण तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो गये तथा दुइ त्याग, तप एवं निर्लोभिताके कारण तुम्हें इस कमलमन्दिरकी भी प्राप्ति हुई है। राजन् ! तुम्हारी ठसी सात्विक भावनाके महात्म्यसे, तुम्हारे थोड़े-से ही तपसे ब्रह्मरूपी भगवान् जनार्दन तथा लोकेश्वर ब्रह्मा भी संतुष्ट हुए हैं। इसीसे तुम्हारा पुष्कर-मन्दिर स्वच्छानुसार जहाँ-कहीं भी जानेकी शक्तिसे युक्त है। वह अनङ्गवती वेदया भी इस समय कामदेवकी पत्नी रीतिके सौतरूपमें उत्पन्न हुई है। वह इस समय प्रीति नभसे विख्यात है और समस्त लोकमें सबको आनन्द प्रदान करती तथा सम्पूर्ण देवताओंद्वारा सत्कृत है। इसीलिये राजराजेश्वर ! तुम उस पुष्कर-गृहको भूतलपर छोड़ दो और गङ्गाकटक आश्रय लेकर विभूतिदादशी-व्रतका अनुष्ठान करो। उससे तुम्हें निश्चय ही मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी।

**श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! ऐसा कहकर प्रचेतामुनि वहाँ अन्तर्हित हो गये। तब राजा पुण्यवाहनने मुनिके कथनानुसार सारा कार्य सम्पन्न किया। राजन् ! इस विभूतिदादशी-व्रतका अनुष्ठान करते समय अश्वि-व्रतका पालन करना आवश्यक है। जिस किसी भी प्रकारसे हो सके, बारहों द्वादशियोंका व्रत कमल-पुष्पोंद्वारा सम्पन्न करना चाहिये। अनन्ध ! अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देनेका विधान है। इसमें कृपणता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि भक्तिके ही भगवान् केराव प्रसन्न होते हैं। जो मनुष्य पापोंको क्षीर्ण करनेवाले इस व्रतको पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेके लिये सम्पत्ति प्रदान करता है, वह भी सौ करोड़ वर्षोंतक देवलोकमें निवास करता है।

(अध्याय ८५)

१-हरिवंश एवं अन्य पुराणों तथा कथासरित्सागरमें ये रीति और प्रीति—ये दो कमलदेवकी पवित्र कथा गयी हैं। किन्तु उसकी दूसरी पत्नी प्रीतिकी उत्पत्तिकी पूरी कथा यहाँ है।

### मदनद्वादशी-व्रतमें मरुदणोंका आख्यान

**युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् ! दिति (दैत्योंकी जननी) ने जिस व्रतके करनेसे उनकास मरुदणोंको पुत्र-रूपमें प्राप्त किया था, अब मैं आपसे उस मदनद्वादशी-व्रतके विषयमें सुनना चाहता हूँ।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! पूर्वकालमें वसिष्ठ आदि महर्षियोंने दितिसे जिस उत्तम मदनद्वादशी-व्रतका वर्णन किया था, उसीको आप मुझसे विस्तारपूर्वक सुनिये। व्रतधारीको चाहिये कि वह चैत्र मासके शुक्ल पक्षाकी द्वादशी तिथिमें श्वेत चावलसे परिपूर्ण एवं छिद्ररहित एक घट स्थापित करे। उसपर श्वेत चन्दनका अनुलेप लगा हो तथा वह श्वेत वस्त्रके दो टुकड़ोंसे आच्छादित हो। उसके निकट विविध प्रकारके ऋतुफल और गन्धके टुकड़े रखे जायें। वह विविध प्रकारकी खाद्य-सामग्रियोंसे युक्त हो तथा उसमें यथाशक्ति सुवर्ण-खण्ड भी डाला जाय। तत्पश्चात् उसके ऊपर गुड़से भर हुआ तबिका पात्र स्थापित करे। उसके ऊपर कैलेके पत्तेश्वर काय तथा उसके वाम-भागमें शङ्करसमन्वित शैलकी स्थापना करे। फिर गन्ध, धूप आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे और गीत, वाद्य तथा भगवान् विष्णुकी कथाका आयोजन करे। प्रातःकाल वह घट ब्राह्मणोंको दान कर दे। पुनः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन करकर स्वयं भी नमस्कृत भोजन करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर इस प्रकार उच्चारण करे—‘जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित रहकर आनन्द नामसे कहे जाते हैं, वे कामरूपी भगवान् जनार्दन मैं इस अनुष्ठानसे प्रसन्न हों।’

इसी विधिसे प्रत्येक मासमें मदनद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि वह द्वादशोंके दिन आमलक-फल खाकर धूलतलपर शयन करे और व्योदशीके दिन अविनाशी भगवान् विष्णुका पूजन करे। तेरहवाँ महीना आनेपर धृतधेनु-सहित एवं समस्त सामग्रियोंसे सम्पन्न शय्या, कपटदेवकी स्वर्णनिर्मित प्रतिमा और श्वेत रंगकी दुधस गौ ब्राह्मणको समर्पित करे। उस समय शक्तिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण आदिद्वारा सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करके उन्हें शय्या और सुगन्ध आदि प्रदान करते हुए ऐसा कहना चाहिये—‘आप प्रसन्न हों।’ तत्पश्चात् उस धर्मज्ञ व्रतीको कामदेवके

नामोंका कीर्तन करते हुए गोंदुग्धसे बनी हुई हवि और श्वेत तिलोंसे हवन करना चाहिये। पुनः कृपणता छोड़कर ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये और उन्हें यथाशक्ति गरम और पुष्कलान्न प्रदानकर संतुष्ट करना चाहिये। जो इस विधिके अनुसार इस मदनद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुकी समताको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्तकर सौभाग्य-फलका उपभोग करता है।

दितिके इस व्रतानुष्ठानके प्रभावसे प्रभावित होकर महर्षि कश्यप उसके निकट पधारे और परम प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने उसे पुनः रूप-वैचनसे सम्पन्न तक्षण बना दिया तथा घर महीनेके लिये कहा। दितिने कहा—‘पतिदेव ! मैं आपसे एक ऐसे पुत्रका कर्तन चाहती हूँ, जो इन्द्रका वध करनेमें समर्थ, अमृत पराक्रमी और महान् आत्मबलसे सम्पन्न हो।’ यह सुनकर महर्षि कश्यपने उससे कहा ‘ऐसा ही होगा।’

**कश्यपने पुनः उससे कहा—**‘वराने ! एक सौ वर्षोंतक तुम्हें इसी तपोवनमें रहना है और अपने गर्भकी रक्षाके लिये प्रयास करना है। करधर्णिनि ! गर्भिणी स्त्रीको संध्या-कालमें भोजन नहीं करना चाहिये। उसे न तो कभी वृद्धके मूलपर बैठना चाहिये, न उसके निकट ही जाना चाहिये। वह घरकी सामग्री—मूसल, ओखली आदिपर न बैटे, जलमें घुसकर स्नान न करे, सुनसान घरमें न जाय, लोगोंके साथ वाद-विवाद न करे और शरीरको तोड़े-मरोड़े नहीं। वह बाल खोलकर न बैटे, कभी अपवित्र न रहे, उत्तर दिशामें सिराज्जल करके एवं कहीं भी नीचे सिर करके न सोये, न नंगी होकर रहे न उद्भिर्जित रहे, न कभी भोग चरणोंसे शयन करे, अमङ्गलसूचक वाणी न बोले, अधिक जोरसे हँसे नहीं, नित्य माङ्गलिक कार्योंमें तत्पर रहकर गुरुजनोंकी सेवा करे और (आधुनिकद्वारा गर्भिणीके स्वास्थ्यके लिये उपयुक्त वस्तुओं गन्धी) सम्पूर्ण ओषधीयोंसे युक्त गुनगुने गरम जलमें स्नान करे। बुरी स्त्रियोंसे बातचीत न करे, कपड़ेमें हवा न ले। मृतकस्य स्त्रीके साथ न बैटे, दूसरोंके घरमें न जाय, जल्दी-जल्दी न चले, महानदियोंको पार न करे। भयंकर और खीपस दृश्य न देखे। अजीर्ण भोजन न करे। कठिन

व्यायामादि न करे। ओषधियोंद्वारा गर्भकी रक्षा करती रहे, हृदयमें मात्सर्य-भाव न रखे। जो गर्भिणी स्त्री विशेषरूपसे इन नियमोंका पालन करती है, उसका उस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह शीलवान् एवं दीर्घायु होता है। इन नियमोंका पालन न करनेपर निस्संदेह गर्भघातकी आशङ्का बनो रहती है। प्रिये। इसलिये तुम इन नियमोंका पालन करके अपने गर्भकी रक्षाका प्रयत्न करो। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जा रहा हूँ।'

दितिके द्वारा पतिकी आज्ञा स्वीकार कर लेनेपर महर्षि कश्यप वहाँ अन्तर्धान हो गये। तब दिति नियमोंका पालन करती हुई समय व्यतीत करने लगी। कालान्तरमें दितिको उनकास पुत्र (मस्त्रण) प्राप्त हुए।

राजन् ! इस प्रकारसे जो भी नारी इस मदनदादशी-व्रतका अनुष्ठान करेगी, वह पुत्र प्राप्त कर पतिके सुखको प्राप्त करेगी। (अध्याय ८६)

### अबाधक-व्रत एवं दौर्भाग्य-दौर्गन्धनाशक व्रतका माहात्म्य

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! जनशून्य घोर वनमें, समुद्रतरणमें, संप्राममें, घोर आदिके भयमें व्याकुल मनुष्य किस देवताका स्मरण करे, जिससे उस संकटके समय उसकी रक्षा हो सके, यह अक्षय बतायें।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! सर्वमङ्गल भगवती श्रीदुर्गादेवीका स्मरण करनेपर पुरुष कभी भी दुःख और भयको प्राप्त नहीं होता। पारत ! जब मैं और बलदेवजी अपने गुरु संदीपनि मुनिके यहाँ सब विद्या पढ़ चुके तो उस समय हमने गुरुदक्षिणाके लिये गुरुजीसे प्रार्थना की। तब गुरुजीने हमारा दिव्य प्रभाव जानकर यही कहा—'ब्रम्हो ! मेरा पुत्र प्रभासक्षेत्रमें गया था, वहाँ उसे समुद्रमें किससे डूबने में मार दिया, उसी पुत्रको गुरुदक्षिणाके रूपमें मुझे प्राप्त कराओ।' तब हम यमलोकमें गये और वहाँसे गुरुपुत्रको लेकर गुरुजीके समीप आये और गुरुदक्षिणाके रूपमें उनका पुत्र उन्हें समर्पित कर दिया। तदनन्तर गुरुको प्रणामकर जब हम चलने लगे, तब गुरुजीने कहा—'पुत्रो ! इस स्थानमें तुम अपने चरणोंका चिह्न बना दो', हमने भी गुरुकी आज्ञाके अनुसार वैसा ही किया, फिर हम वापस घर आ गये। उसी दिनसे बलराजजीके दक्षिण पादका, मध्यमें सर्वमङ्गलदायक और मेरे काम चरण-चिह्नका पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे अथवा अपनी इच्छाओंकी

पूर्विके लिये सभी वहाँ पूजन करते हैं। प्रत्येक मासको शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको एकभुक्त, नक्तव्रत अथवा उपवास रहकर भूतिकर अथवा सुवर्णकी इनकी प्रतिमा बना करके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, मधु आदिसे जो स्त्री अथवा पुरुष पूजन करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो स्वर्गमें निवास करता है।

**राजा युधिष्ठिरने पुनः पूछा—**यदुशार्दूल ! ऐसा कौन व्रत है, जिसके आचरणसे शरीरका दुर्गन्ध नष्ट हो जाय और दौर्भाग्य भी दूर हो जाय।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! इसी प्रश्नको राने विष्णुर्भक्तने जातूकर्ण्यमुनिसे पूछा था, तब उन्होंने उनसे कहा—'देवि ! ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीमें पवित्र जलशायमें स्नान करे और शुद्ध स्थानमें उत्पन्न श्वेत आक, रक्त कारवीर तथा निम्ब वृक्षकी पूजा करे। ये तीनों वृक्ष भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय हैं। प्रातःकाल सूर्योदय हो जानेपर भगवान् सूर्यका दर्शनकर उनका अपने हृदयमें ध्यान करे अनन्तर पुष्प, नैवेद्य, धूप आदि उपचारोंसे उन वृक्षोंकी पूजा करे और पूजनके अनन्तर उन्हें नमस्कार करे।

राजन् ! इस विधिसे जो स्त्री-पुरुष इस व्रतको करते हैं, उनके शरीरकी दुर्गन्धि तथा उनका दौर्भाग्य दोनों दूर हो जाते हैं और वे सौभाग्यशाली हो जाते हैं। (अध्याय ८७-८८)

### धर्मराजका समाराधन-व्रत\*

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! ऐसा कौन-सा व्रत है जिसके करनेसे यमराज प्रसन्न हो जायें और नरकका दर्शन न हो।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! एक बार जब मैं द्वारका-स्थित समुद्रमें स्नान करके बाहर निकला, तब देखा कि मुद्रलमुनि चले आ रहे हैं। उनका तेज सूर्यके समान था

\* यह कथा स्कन्दपुराणके नामसे अनेक ज्ञान-निबन्धनों में संजोती है।

और उनके मुखके तपस्तेजसे दिशारै उद्भासित हो रही थीं । तब मैंने उनका अर्घ्य, पाद्य आदिसे सत्कार कर आदरपूर्वक उनसे पूछा—‘महाराज ! प्राणियोंके लिये अत्यन्त भयदायक नरक तथा यमदूतों आदिको जिससे दर्शन न हो ऐसा कोई व्रत आप मुझसे बतलायें ।’ यह सुनकर मुद्गलमुनि भी कुछ विस्मित-से हुए । किंतु बादमें शान्त-मन होकर वे बोले—‘प्रभो ! एक बार ऐसा हुआ कि मुझे अकस्मात् मूर्च्छा आ गयी और मैं पृथ्वीपर गिर पड़ा, उस स्थितिमें मैंने देखा कि हाथमें लथठी लिये कुछ लोग आगसे जलते हुए-से मेरे शरीरसे निकलकर बाहर खाड़े हुए थे और मेरे हृदयसे एक अंगूठेके बराबर व्यक्तिको बलपूर्वक खींचकर तथा रसियोंसे बाँधकर यमपुरीकी ओर ले जा रहे हैं । फिर मैं तत्काल क्या देखता हूँ कि यमराजकी सभा लगी है और ताल-पीले नेत्रोंवाले यमराज सभामें विराजमान हैं तथा कफ, वात, पित्त, ज्वर, मंस, शोथ, फोड़े, कुंसी, भगंदर, अधिरोग, विषूचिक, गलपह आदि अनेकों प्रकारके रोग और मृत्यु उन्हें घेरे हुए हैं और वे सभी मूर्तिमान् होकर यमदेवकी उपासना कर रहे हैं । यमदूत भयंकर राक्ष धारण किये हैं । कुछ राक्षस, दानव आदि भी वहाँ बैठे हैं । सिंह, व्याघ्र, बिच्छू, दंश, सिंघार, सर्प, उल्लू, कछिड़े-मक्खड़े आदि भयंकर जीव-जन्तु वहाँ उपस्थित हैं । यमराजने अपने किंजलोंसे पूछा—‘दूतों ! तुमलोग वहाँ इन मुद्गलमुनिको क्यों ले आये ? मैंने तो मुद्गल क्षत्रियको लगनेके लिये कहा था, वह कौंडिन्यनगरका निवासी भीष्मकाका पुत्र है, उसकी आयु समाप्त हो चुकी है, इन मुनिको तत्काल छोड़ दो और उसे ही ले आओ ।’ यह सुनकर वे दूत कौंडिन्यनगर गये, किंतु वहाँ राजा मुद्गलमें मृत्युके कोई लक्षण न देखकर भ्रान्त होकर पुनः यमलोकमें वापस आये और उन्होंने साधु वृत्तान्त यमराजको बतला दिया । इसपर यमराजने उनसे कहा—‘दूतों ! जिन पुरुषोंने नरकार्ति-विनाशिनी त्रयोदशैक व्रत किया है, उन्हें यमकिंकर नहीं देख पाते, इसीलिये तुमलोगोंने राजा मुद्गलको पहचाना नहीं ।’ पुनः यमदूतोंद्वारा व्रतके विधानको

पूछे जानेपर यमराजने उनसे कहा—‘मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको जब रविवार एवं मंगलवार न हो तब उस दिन तेरह विद्वान् और पवित्र ब्राह्मणों तथा एक पुराणवाचकका वरण करके पूर्वाह्नकालमें इन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख पवित्र आसनपर बैठाये । तिल-तैलसे उनका अभ्यंग करके गन्धकावय तथा हलके गरम जलसे उन्हें पृथक्-पृथक् स्नान करावे और उनकी सेवा-शुश्रूषा करे । अनन्तर पूर्वाभिमुख बैठकर उन्हें शालपत्र, मुद्रापत्र, गुड़के अपूप तथा सुपक्व व्यञ्जन आदरपूर्वक खिलाये ।

पुनः व्रती पवित्र होकर आचमन करे और उन ब्राह्मणोंकी अर्चना करे । ताम्रपात्रमें प्रस्थमात्र (एक पसर या एक सेर) तिल-तण्डुल, दक्षिणा, छत्र, जलपूर्ण कलश आदि उन्हें आलग-आलग प्रदान कर विसर्जित करे ।

इसी प्रकार वर्षभरतक व्रत करे । कोई मानव यदि आदरपूर्वक एक बार भी इस व्रतको कर ले तो वह मेरे यमलोकका दर्शन नहीं करता । वह मेरी मायासे अदृष्ट रहता है, अन्तमें विधानद्वारा अर्कमण्डलमें प्रवेश कर वह विष्णुपुर और दिक्पुरको प्राप्त करता है । यमदूतों ! उस राजा मुद्गलने इस त्रयोदशी-व्रतको पहले किया था, इसीलिये तुम सब उस क्षत्रिय-प्रेक्षक दर्शन नहीं कर पाये ।’

श्रीकृष्ण ! उसी क्षण मेरी मूर्च्छा दूर हो गयी और मैं स्वस्थ हो गया । भगवन् ! मैं आपके दर्शनकी इच्छासे यहाँ आया था, जैसा पहले वृत्तांत हुआ, वह सब मैंने आपको बतलाया ।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—‘राजन् ! वे मुनि मुझसे इतना कहकर अपने स्थानकी चले गये । कौन्तेय ! आप भी इस व्रतको करें । इससे आपको यमलोक नहीं जाना पड़ेगा । इसी प्रकार जो कोई स्त्री-पुरुष इस त्रयोदशी-व्रतका ब्रह्मपूर्वक आचरण करेगा, वे सभी पापीसे मुक्त होकर अपने पुण्य-कर्मिक प्रभावसे स्वर्गमें पुजित होंगे और उन्हें कभी यमराजना नहीं सहनी पड़ेगी । (अध्याय ८९)

### अनङ्ग-त्रयोदशी-व्रत

युधिष्ठिरने पूछा—संसारमें उद्धार करनेवाले स्वामिन् ! आप रूप एवं सौभाग्य प्रदान करनेवाला कोई व्रत बतायें ।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! शरीरको क्लेश देनेवाले बहुत-से व्रतोंके करनेसे क्या लाभ ? अकेले



अनङ्गत्रयोदशी ही सब दोषोंका शमन एवं समस्त मङ्गलोककी वृद्धि करनेवाली है। आप इसकी विधि सुनें।

पहले जब भगवान् शंकरने कामदेवको दग्ध कर दिया, तब वह बिना अङ्गुके ही सबके शरीरमें निवास करने लगा। कामदेवने इस व्रतको किया था, इसीसे इसका नाम अनङ्ग-त्रयोदशी पड़ा। इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको नदी, तडाग आदिमें स्नान कर, जितेन्द्रिय हो, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और कालोद्भूत फलसे भगवान् शंकरका 'शशिशेखर' नामसे पूजन करे और तिलमण्डित अक्षतोंसे हवन करे। रात्रिको मधु-प्राशन कर रहे जाय। इससे व्रती कामदेवके समान ही सुन्दर हो जाता है और दस अक्षय-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार पौष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीमें भगवान् शंकरका 'योगेश्वर' नामसे पूजन कर चन्दनका प्राशन करे तो शरीरमें चन्दनके समान गन्ध हो जाती है और व्रती राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त करता है। माघ मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको भगवान् शंकरका 'महेश्वर' नामसे पूजन कर मोतीका चूर्ण भक्षण करे तो उत्तम सौभाग्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार फाल्गुनमें 'हरेश्वर' नामसे पूजन कर कंकणलका प्राशन करनेसे अतुल सौन्दर्य प्राप्त होता है। वैश्वमें 'सुरूपक' नामसे पूजन करने और कर्पूर-प्राशन करनेसे व्रती चन्द्रके तुल्य मनोहर हो जाता है और महान् सौभाग्य प्राप्त करता है। वैशाखमें 'महारूप' नामसे पूजन कर जालीफल (जायफल)का प्राशन करे, इससे उत्तम कुलकी प्राप्ति होती है और उसके सब काम सफल हो जाते हैं तथा वह सहस्र गोदानका फल प्राप्त कर ब्रह्मलोकमें निवास करता है। ज्येष्ठमें 'प्रद्युम्न' नामसे पूजन करे और लवंगका प्राशन करे, इससे उत्तम स्थान, अष्ट लक्ष्मी और

सभी सुख-सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं तथा वह एक सौ आठ लाखेय-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। आषाढ़में 'उमाधर्ती' नामसे पूजन कर तिलोदकका प्राशन करे। इससे उत्तम रूप प्राप्त होता है तथा वह सौ वर्षतक सुखी जीवन व्यतीत करता है। श्रावणमें 'उमाधर्ती' नामसे पूजन कर तिलोका प्राशन करे, इससे पौष्करिक-यज्ञका फल प्राप्त होता है। भाद्रपद मासमें 'सद्योजात' नामसे पूजन कर अण्डका प्राशन करे, इससे वह भूमिपर सबका गुरु बनता है और पुत्र-पौत्र, धन आदि प्राप्त कर बहुत दिन संसारमें सुख भोगकर अन्तमें विष्णुलोकमें पुजित होता है। आश्विन मासमें 'त्रिदशधर्षित' नामसे पूजन कर स्रग्हेदकका प्राशन करे तो व्रती उत्तम रूप, सौभाग्य, प्रगल्भता और करोड़ों निष्कन्दानका फल प्राप्त करता है। कार्तिकमें 'विश्वेश्वर' नामसे पूजन कर दमन (दौना) फलका प्राशन करे तो व्रती अपने आत्मकालसे समस्त संसारका स्वामी होता है और अन्तमें शिवलोकमें निवास करता है।

इस प्रकार वर्षभर इस उत्तम व्रतका पालन कर परणा करने चाहिये। फिर कलश स्थापित कर उसके ऊपर ताम्रपात्र और उसके ऊपर शिवकी प्रतिमा स्थापित कर श्वेत वाकसे आच्छादित करे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसका पूजन कर उसे शिवभक्त ब्राह्मणको प्रदान कर दे। साथ ही पर्यङ्गनी सवत्स गौ, छात और यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार जो इस अनङ्गत्रयोदशी-व्रतको करता है और व्रत-पालनके समय महान् उत्सव करता है वह निष्कण्टक राज्य, आयुष्य, बल, यश तथा सौभाग्य प्राप्त करता है और अन्तमें शिवलोकमें निवास करता है।

(अध्याय ९०)

### पाली-व्रत एवं रम्भा-(कदली-) व्रत

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! श्रेष्ठ चिराय जलपूर्ण तडागों और सरोवरोंमें किस निमित्त स्नान-दान आदि कर्म करती हैं ? इसे आप बतायें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको खजली, कुर्र, पुष्करिणी तथा

बड़े-बड़े जलशयों आदिके पास पवित्र होकर भगवान् वसुदेवको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि तडागके तटपर जाकर फल, पुष्प, वस्त्र, दीप, चन्दन, महाघर, सप्तधान्य, बिना अङ्गिके स्पर्शसे पका हुआ अन्न, तिल, चावल, सब्ज, नारिकेल, बिजौरा नौब, नारंगी, अंगूर, दाढ़िम,

१-पाली शब्द जलिल है, यह सोरोमें राफ नहीं मिलता। इसका अर्थ कुप, तडाग आदि जलशयोंके रखके लिखे जाने से है। उसीपर बैठकर चिराय इस व्रतको सम्पन्न करती हैं। वसुदेव जहाँ सभी जलमें रहते हैं, अतः इसे वहीं बैठकर करना चाहिये।

सुपारी आदि उपचारोंसे वारुणीसहित करुणदेवकी एवं जलशयकी विधिपूर्वक पूजा करे और उन्हें अर्घ्य प्रदान कर इस प्रकार उनकी प्रार्थना करे—

वरुणाय नमस्तुभ्यं नमस्ते यादसाम्पले ।

अपाम्पले नमस्तेऽस्तु रसानाम्पले नमः ॥

मा ज्ञेदं मा च दौर्गन्ध्यं विरस्यं मा मुलेऽस्तु मे ।

वरुणो वारुणीभर्ता वरुणेऽस्तु सदा मय ॥

(उत्तरपर्व ११।७-८)

‘जलधर जीवोंके स्वामी वरुणदेव ! आपको नमस्कार है। सभी जल एवं जलसे उत्पन्न रस-द्रव्योंके स्वामी वरुणदेव ! आपको नमस्कार है। मेरे शरीरमें पसीना, दुर्गन्ध या विरसता<sup>१</sup> आदि मेरे मुखमें न हों। वारुणदेवोंके स्वामी वरुणदेव ! आप मेरे लिये सदा प्रसन्न एवं करदायक बने रहें।’

व्रतीको चाहिये कि इस दिन बिना अङ्गिके पके हुए भोजन अर्थात् फल आदिका भोजन करे। इस विधिसे जो पाली-व्रतको करता है, वह तत्क्षण सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। आयु, यश और सौभाग्य प्राप्त करता है तथा समुद्रके जलकी भाँति उसके धनका कभी अन्त नहीं होता।

**भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—**राजन् ! अब मैं ब्रह्माजीकी सभामें देवर्षियोंके द्वारा पूछे जानेपर देवलमुनिश्रेष्ठ रम्भा-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ। यह भी भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशीको ही होता है। सभी देवताओं, गन्धर्वों तथा अप्सराओंने भी इस व्रतका अनुष्ठान कर कदली-वृक्षको स्मर कर अर्घ्य प्रदान किया था। व्रतीको चाहिये कि इस चतुर्दशीको

कनक प्रकारके फल, अंकुरित अन्न, सप्तधान्य, दीप, चन्दन, दही, दूर्वा, अक्षत, वस्त्र, पक्वान्न, जायफल, इलायची तथा लवंग आदि उपचारोंसे कदली-वृक्षका पूजनकर उसे निम्नलिखित मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे—

चित्वा त्वं कन्दलदलैः कदली कामदायिनि ।

शरीतरोम्यालाकण्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १२।७)

‘कदली देवि ! आप अपने पत्तोंसे वायुके व्याजसे ज्ञान एवं वचनाका संचार करती हुई सभी व्रतमन्त्रओंको देती हैं। आप मेरे शरीरमें रूप, लावण्य, अश्वमेध प्रदान करनेकी कृपा करें। आपको नमस्कार है।’

इसके अनन्तर स्वयं पके हुए फल आदिका भोजन ग्रहण करें। जो भी पुरुष अथवा स्त्री भक्तिसे इस व्रतको करती है, उसके वेशमें दुर्भेद, दरिद्रता, लज्जा, पापिनी, व्यभिचारिणी, कुलटा, पुनर्भू, दुष्ट और पतिकी विरोधिनी कोई कान्या नहीं उत्पन्न होती। इस व्रतको करनेपर नारी सौभाग्य, पुत्र-पौत्र, धन, अश्वपुत्र तथा कीर्ति आदि प्राप्त कर सौ वर्षपर्यन्त अपने पतिके साथ आनन्दपूर्वक रहती है। इस रम्भा-व्रतको गायत्रीने सर्गमें किया था। इसी प्रकार गौरीने कैलासमें, इन्द्राणीने नन्दनवनमें, लक्ष्मीने श्वेतद्वीपमें, राक्षीने रविमण्डलमें, अरुन्धतीने दारुवनमें, स्वाहने मेरुपर्वतपर, सीतादेवीने अयोध्यामें, वेदवतीने हिमाचलपर और धानुमतीने नागपुरमें इस व्रतको किया था।

(अध्याय ११-१२)

### आग्नेयी शिवचतुर्दशी-व्रतके प्रसंगमें महर्षि अङ्गिराका आख्यान

**युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! प्राचीन कालमें जब अग्निदेव अदृश्य हो गये, उस समय अङ्गिरा कर्षं किसने किया और कैसे अग्निने पुनः अपना स्वरूप प्राप्त किया ? इसे आप बतायें।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! एक बार उतथ्यमुनि और अङ्गिरामुनिका विद्यामें और तपमें परस्पर

श्रेष्ठताके विषयमें बहुत विवाद हुआ। इसका निश्चय करनेके लिये दोनों ब्रह्मलोक गये और उन्होंने ब्रह्माजीको सारा वृत्तान्त बतलाया। ब्रह्माजीने उनसे कहा कि ‘तुम दोनों जाकर सभी देवताओं और लोकपालोंको यहाँ बुला लओ, तब सभीके समक्ष इसका निर्णय किया जायगा।’ ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर दोनों जाकर सभी देवता, ऋषि, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, राक्षस,

१-ज्वर आदिसे मुक्तता साध विषय होता है, उसे विरसता कहते हैं।

२-कदलीके व्याजसे सर्वदाकिमयी दुर्गाकी ‘विदिकयोग वा कुरन्मनेन्दु व्याजं निश्चयं जगत् । नमस्तस्मै’-को ही स्मरण करते हुए प्रार्थना की गयी है।

दैत्य, दानव आदिको बुला लाये। किंतु भगवान् सूर्य नहीं आये। ब्रह्माजीके पुनः कहनेपर उतथ्यमुनि सूर्यनारायणके समीप जाकर बोले—‘भगवान् ! आप शीघ्र ही हमारे साथ ब्रह्मलोक चले।’ भगवान् सूर्यने कहा—‘मुने ! हमारे चले जानेपर जगत्में अन्धकार छा जायगा, इसलिये हमारा चलना किस प्रकार हो सकता है, हम नहीं चल सकेंगे।’ यह सुनकर उतथ्यमुनि वहाँसे चले आये और ब्रह्माजीको सब वृत्तान्त सुना दिया। तब ब्रह्माजीने अङ्गिरामुनिसे सूर्यभगवान्को बुलानेके लिये कहा। अङ्गिरामुनि ब्रह्माजीको आज्ञा पाकर सूर्यनारायणके समीप गये और उनसे ब्रह्मलोक चलनेको कहा। सूर्यनारायणने वही उत्तर इनको भी दिया। तब अङ्गिराने कहा—‘प्रभो ! आप ब्रह्मलोक जायें, मैं आपके स्थानपर यहाँ रहकर प्रकाश करूँगा।’ यह सुनकर सूर्यनारायण तो ब्रह्माजीके पास चले गये और अङ्गिरा प्रचण्ड तेजसे तपने लगे। इधर भगवान् सूर्यने ब्रह्माजीसे पूछा—‘ब्रह्मन् ! आपने किस निमित्तसे मुझे यहाँ बुलाया है?’ ब्रह्माजीने कहा—‘देव ! आप शीघ्र ही अपने स्थानपर जायें, नहीं तो अङ्गिरामुनि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दग्ध कर डालेंगे। देखिये उनके तापसे सभी लोग दग्ध हो रहे हैं। जबतक वे सब कुछ भस्म न कर डालें उससे पूर्व ही आप प्रतिष्ठित हो जायें।’ यह सुनते ही सूर्यभगवान् पुनः अपने स्थानपर लौट आये और उन्होंने अङ्गिरामुनिकी स्तुति कर उन्हें बिदा किया। अङ्गिरा पुनः देवताओंके समीप आये। देवताओंने अङ्गिरामुनिकी स्तुति की और कहा—‘भगवान् ! जबतक हम अग्निको दूँदें, जबतक अन्न अग्निके सभी कर्म कीजिये।’ देवताओंका ऐसा वचन सुनकर महर्षि अङ्गिरा आग्निरूपमें देवकार्यादिको सम्पन्न करने लगे। जब अग्निदेव आये तो उन्होंने देखा कि अङ्गिरामुनि अग्नि बनकर स्थित है। इसपर वे बोले—‘मुने ! आप मेरा स्थान छोड़ दें। मैं आपकी शुभा नामकी स्त्रीसे ज्येष्ठ एवं प्रिय पुत्रके रूपमें उत्पन्न होऊँगा और तब मेरा नाम होगा बृहस्पति। आपके और भी बहुत-से

पुत्र-पौत्र होंगे।’ यह कर् पाकर प्रसन्न हो महर्षि अङ्गिराने अग्निका स्थान छोड़ दिया।

रजन् ! अग्निदेवको चतुर्दशी तिथिको ही अपना स्थान प्राप्त हुआ था, इसलिये यह तिथि अग्निको अति प्रिय है और आग्नेयी चतुर्दशी तथा वैशी चतुर्दशीके नामसे प्रसिद्ध है। स्वर्गमें देवता और भूमिपर मान्वाता, मनु, नहुष आदि बड़े-बड़े राजाओंने इस तिथिको माना है। जो पुरुष युद्धमें मारे जायें, सर्व आदिके कष्टनेसे मरे हों और जिसने आत्मघात किया हो, उनका इस चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करना चाहिये, जिससे वे सद्गतिको प्राप्त हो जायें। इस तिथिके व्रतका विधान इस प्रकार है—चतुर्दशीको उपवास करे और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे त्रिलोचन श्रीसदाशिवका पूजन करे, रात्रिमें जागरण करे। रात्रिमें पञ्चागव्यका प्राशन कर भूमिपर ही शयन करे। तैल-क्षारसे रक्षित इयामाक (साँब)का भोजन करे। अग्निके नाम-मन्त्रोंद्वारा काले तिलोंसे १०८ आहुतियाँ प्रदान करे। दूसरे दिन प्रातः स्नान कर पञ्चामृतसे शिवजीको स्नान कराकर भक्तिपूर्वक उनका पूजन करे और पूर्वोक्त रीतिसे हवनकर उनकी प्रार्थना करे। पीछे आरती कर ब्राह्मणको भोजन कराये। उनकी दक्षिणा दे और घौन हो स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार एक वर्ष व्रत कर सुवर्णकी त्रिलोचन भगवान् शंकरकी प्रतिमा बनाये। प्रतिमाको बाँदीके वृषभपर स्थितकर दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित कर ताम्रपात्रमें स्थापित करे। तदनन्तर गन्ध, श्वेत पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको दे दे। जो एक वर्षतक इस व्रतको करता है, वह लम्बी आयु प्राप्त कर अन्तमें तीर्थमें प्राण परित्याग कर शिवलोकमें देवताओंके साथ विहार करता है। वहाँ बहुत कालतक रहकर वह पृथ्वीमें आकर ऐश्वर्य-सम्पन्न धार्मिक राजा होता है। पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न होता है और चिरकारुण्यक अमरान्धित रहता है तथा अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त करता है<sup>१</sup>। (अध्याय १३)



१-प्रायः अन्य ज्योतिष ग्रन्थों तथा पुराणोंके अनुसार अग्निदेवकी तिथि प्रतिपदा ही है। चतुर्दशी शिवजीकी तिथि है। यहाँ भी शिवजीकी ही पूजा है, अतः कल्पान्तर-व्यवस्था मान लेनी चाहिये।

### अनन्तचतुर्दशी-व्रत-विधान

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**राजन् ! सम्पूर्ण पाण्डव नाशक, कल्याणकारक तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला अनन्तचतुर्दशी नामक एक व्रत है, जिसे भाद्रपद मासके शुद्ध पक्षकी चतुर्दशीको सम्पन्न किया जाता है।

**युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! आपने जो अनन्त नाम लिया है, क्या ये अनन्त शेषनाग हैं या कोई अन्य नाग है या परमात्मा है या ब्रह्म है ? अनन्त संज्ञा किसकी है ? इसे आप बताइये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**राजन् ! अनन्त मेरा ही नाम है। कला, काशा, मूर्त्ति, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अपन, सेवसर, युग तथा कल्प आदि काल-विभागोंके रूपमें मैं ही अवस्थित हूँ। संसारका भार उठाने तथा दान्योंका विनाश करनेके लिये वसुदेवके कुलमें मैं ही उत्पन्न हुआ हूँ। 'अर्थ ! आप मुझे ही विष्णु, जिष्णु, हर, शिव, ब्रह्मा, भस्कर, शेष, सर्वव्यापी ईश्वर समझिये और अनन्त भी मैं ही हूँ। मैं आपकी विश्वास डलाज करनेके लिये ऐसा कहा है।

**युधिष्ठिरने पुनः पूछा—**भगवन् ! मुझे आप अनन्त-व्रतके माहात्म्य और विधिके तथा इसे किससे पहले किया था और इस व्रतका क्या पुण्य है, इसे बताइये।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**युधिष्ठिर ! इस सम्बन्धमें एक प्राचीन आख्यान है, उसे आप सुनें। कृतयुगमें वसिष्ठगोत्री सुमन्तु नामके एक ब्राह्मण थे। उनका महर्षि भृगुकी कन्या दीक्षासे वैदिक-विधिसे विवाह हुआ था। उन्हें सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम शील रख दिया गया। कुछ समय बाद उसकी मृता दीक्षाका ज्वरसे देहान्त हो गया और उस पवित्रताको सर्गलोक प्राप्त हुआ। सुमन्तुने पुनः एक कर्कशा नामकी कन्यासे विवाह कर लिया। वह अपने कर्कशा नामके समान ही दुःशील, कर्कश तथा नित्य कलहकारिणी एवं चण्डीरूपा थी। शील अपने पिताके घरमें रहती हुई दीक्षाल, देहली तथा क्षाम्भ आदिमें मातृत्विक स्वस्तिक, पद्म, शङ्ख आदि विष्णुचिह्नोंको अङ्कित कर उनकी अर्चना करती रहती। सुमन्तुको शीलके विवाहकी चिन्ता होने लगी। उन्होंने शीलका विवाह कौण्डिन्यमुनिसे साथ कर दिया। विवाहके अनन्तर सुमन्तुने अपनी पत्नीसे कहा— 'देवि !

दाम्पादके लिये पारितोषिक रूपमें कुछ दहेज द्रव्य देना चाहिये।' यह सुनकर कर्कशा क्रुद्ध हो उठी और उसने घरमें घने मण्डपकी उखाड़ डाला तथा भोजनसे बचे हुए कुछ पदार्थोंको पाचकेके रूपमें प्रदान कर कहा—'चले जाओ, फिर उसने कषाट बंद कर लिया।

कौण्डिन्य भी शीलको साथ लेकर बैलगाड़ीसे धीरे-धीरे वहाँसे चल पड़े। दोपहरका समय हो गया। वे एक नदीके किनारे पहुँचे। शीलाने देखा कि शुभ वस्त्रोंको पहने हुए कुछ शिष्य चतुर्दशीके दिन भक्तिपूर्वक जनार्दनकी अलग-अलग पूजा कर रही हैं। शीलाने उन शिष्योंके पास जाकर पूछा— 'देवियो ! आपलोग यहाँ किसकी पूजा कर रही हैं, इस व्रतका क्या नाम है।' इसपर वे शिष्य बोलीं—'यह व्रत अनन्त-चतुर्दशी नामसे प्रसिद्ध है।' शील बोली—'मैं भी इस व्रतको करूँगी, इस व्रतका क्या विधान है, किस देवताकी इसमें पूजा की जाती है और दानमें क्या दिया जाता है, इसे आपलोग बतावे।' इसपर शिष्योंने कहा—'शीले ! प्रमथभर पक्षवक्त्र नैवेद्य बनाकर नदीतटपर जाय, वहाँ खान कर एक मण्डलमें अनन्तस्वरूप भगवान् विष्णुकी गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे पूजा करे और कथा सुने। उन्हीं नैवेद्य अर्पित करे। नैवेद्यका आधा भाग ब्राह्मणको निवेदित कर आधा भाग प्रसाद-रूपमें ग्रहण करनेके लिये रखे। भगवान् अनन्तके सामने चौदह बन्धियुक्त एक दोरक (डोरा) स्थापित कर उसे कुकुम्भादिसे चर्चित करे। भगवान्को वह दोरक निवेदित करके पुनः दाहिने हाथमें और स्त्री बायें हाथमें बाँध ले। दोरक-बन्धनका मन्त्र इस प्रकार है—

अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव ।  
अनन्तरूपे विविधोज्जिततया ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते ॥

(उत्तरपर्व २४।३३)

'हे वासुदेव ! अनन्त संसाररूपी महासमुद्रमें मैं डूब रही हूँ, आप मेरा उद्धार करें, साथ ही अपने अनन्तस्वरूपमें मुझे भी आप विनियुक्त कर लें। हे अनन्तस्वरूप ! आपको मेरा बार-बार प्रणाम है।'

दोरक बाँधनेके अनन्तर नैवेद्य ग्रहण करना चाहिये। अन्तमें विश्वरूपी अनन्तदेव भगवान् नारायणका ध्यान कर



अपने घर जाय। शीले ! हमने इस अनन्तव्रतका वर्णन किया। तदनन्तर शीलाने भी विधिसे इस व्रतका अनुष्ठान किया। पाथेय निवेदित कर उसका आधा भाग ब्राह्मणको प्रदान कर आधा स्वयं ग्रहण किया और दोरक भी बाँचा। उसी समय शीलाले पति कौंडिन्य भी वहाँ आये। फिर वे दोनों बैलगाड़ीसे अपने घरकी ओर चल पड़े। घर पहुँचते ही व्रतके प्रभावसे उनका घर प्रचुर धन-धान्य एवं गोधनसे सम्पन्न हो गया। वह शील भी मणि-मुक्ता तथा स्वर्णादिके द्वारा और वस्त्रोंसे सुशोभित हो गयी। वह साक्षात् सावित्रीके समान दिखलानी देने लगी। कुछ समय बाद एक दिन शीलाले हाथमें बंधे अनन्त-दोरकको उसके पतिने क्रुद्ध हो तोड़ दिया। उस विपरीत कर्मविपाकसे उनकी सारी लक्ष्मी नष्ट हो गयी, गोधन आदि चोरोंने चुरा लिया। सभी कुछ नष्ट हो गया। आपसमें कलह होने लगा। मित्रोंने सम्पन्न तोड़ लिया। अनन्त-भगवान्‌के तिरस्कार करनेसे उनके घरमें दरिद्रताका साक्ष्य लभ्य हो गया। दुःखी होकर कौंडिन्य एक गहन वनमें चले गये और विचार करने लगे कि मुझे कब अनन्तभगवान्‌के दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होगा। उन्होंने पुनः निराहार रहकर तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक भगवान्‌ अनन्तका व्रत एवं उनके नामोंका जप किया और उनके दर्शनोंकी तालसासे विह्वल होकर वे पुनः दूसरे निकल वनमें गये। वहाँ उन्होंने एक फले-फूले आम-वृक्षको देखा और उससे पूछा कि क्या तुमने अनन्त-भगवान्‌को देखा है ? तब उसने कहा—'ब्राह्मण देवता ! मैं अनन्तको नहीं जानता।' इस प्रकार वृक्षों आदिसे अनन्त-भगवान्‌के विषयमें पूछते-पूछते घास चरती हुई एक सक्का गौको देखा। कौंडिन्यने गौसे पूछा—'धेनुके ! क्या तुमने अनन्तको देखा है ?' गौने कहा—'विभो ! मैं अनन्तको नहीं जानती।' इसके पश्चात् कौंडिन्य फिर आगे बढ़े। वहाँ उन्होंने देखा कि एक वृषभ घासपर बैठा है। पूछनेपर वृषभने भी बताया कि मैंने अनन्तको नहीं देखा है। फिर आगे जानेपर कौंडिन्यको दो रमणीय तालाब दिखलानी पड़े। कौंडिन्यने उनसे भी अनन्तभगवान्‌के विषयमें पूछा, किन्तु उन्होंने भी अनभिज्ञता प्रकट की। इसी प्रकार कौंडिन्यने अनन्तके विषयमें गर्दभ तथा हाथीसे पूछा, उन्होंने भी नकारात्मक उत्तर दिया। इसपर वे कौंडिन्य अत्यन्त निराश हो पृथ्वीपर गिर पड़े। उसी

समय कौंडिन्यमुनिके सामने कृपा करके भगवान्‌ अनन्त वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें प्रकट हो गये और पुनः उन्हें अपने दिव्य वतुर्भुज विश्वरूपका दर्शन कराया। भगवान्‌का दर्शनकर कौंडिन्य अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उनकी प्रार्थना करने लगे तथा अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगने लगे—

पापेऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः ।

पाहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव ॥

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ।

(उत्तरपर्व १४। ६०-६१)

कौंडिन्यने भगवान्‌से पुनः पूछा—भगवन् ! घोर वनमें मुझे जो आमवृक्ष, वृषभ, गौ, पुष्करिणी, गर्दभ तथा हाथी मिले, वे कौन थे ? आप तत्त्वतः इसे बतलायें।

भगवान्‌ बोले—'द्विजदेव ! वह आमवृक्ष पूर्वजन्ममें एक वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण था, किन्तु उसे अपनी विद्याका बड़ा गर्व था। उसने शिष्योंको विद्या-दान नहीं किया, इसलिये वह वृक्ष-योनिको प्राप्त हुआ। जिस गौको तुमने देखा, वह उपजाऊ शक्तिरहित वसुन्धरा थी, वह धूमि सर्वथा निष्कल थी, अतः वह गौ बनी। वृषभ सत्य धर्मका आश्रय ग्रहणकर धर्मस्वरूप ही था। वे पुष्करिणियाँ धर्म और अधर्मकी व्यवस्था करनेवाली दो ब्राह्मणियाँ थीं। वे परस्पर बहिर्ने थीं, किन्तु धर्म-अधर्मिक विषयमें उनमें परस्पर अनुचित विवाद होता रहता था। उन्होंने किसी ब्राह्मण, आदिधि अथवा भूतोंकी दान भी नहीं किया। इसी कारण वे दोनों बहिर्ने पुष्करिणी हो गयीं, वहाँ भी लहरोँके रूपमें आपसमें उनमें संघर्ष होता रहता है। जिस गर्दभको तुमने देखा, वह पूर्वजन्ममें महान् क्रोधी व्यक्ति था और हाथी पूर्वजन्ममें धर्मदूषक था। हे विप्र ! मैंने तुम्हें सारी बातें बतला दीं। अब तुम अपने घर जाकर अनन्त-व्रत करो, तब मैं तुम्हें उतम नक्षत्रका पद प्रदान करूँगा। तुम स्वयं संसारमें पुत्र-पौत्र एवं सुखको प्राप्तकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करोगे। ऐसा कर देकर भगवान्‌ अन्तर्धान हो गये।

कौंडिन्यने भी घर आकर धर्तृपूर्वक अनन्तव्रतका पालन किया और अपनी पत्नी शीलाले साथ वे धर्मात्मा उतम सुख प्राप्तकर अन्तमें स्वर्गमें पुनर्वसु नामक नक्षत्रके रूपमें प्रतिष्ठित हुए। जो व्यक्ति इस व्रतको करता है या इस कथाको सुनता है, वह भी भगवान्‌के स्वरूपमें मिल जाता है। (अध्याय १४)

### श्रवणिकाव्रत-कथा एवं व्रत-विधि

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! संसारमें श्रावणी नामकी जिन देवियोंका नाम सुना जाता है, वे कौन हैं और उनका क्या धर्म है तथा वे क्या करती हैं ? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**पाण्डवश्रेष्ठ ! ब्रह्मने इन श्रावणी देवियोंकी रचना की है। संसारमें मानव जो कुछ भी शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है, वे श्रावणी देवियाँ उस विषयकी सूचना शीघ्र ही ब्रह्माको श्रवण करती हैं, इसीलिये ये श्रावणी कही गयी हैं<sup>१</sup>। संसारके प्राणियोंका नियमन करनेके कारण ये पूज्य हैं। ये दूरसे ही जान-सुन-देख लेती हैं। कोई भी ऐसा कर्म नहीं है जो इनसे अदृश्य हो। इनमें ऐसी विलक्षण शक्ति है जो तर्क, हेतु आदिसे अगम्य है। जिस प्रकार देवता, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, किम्बदन्त आदि पूज्य एवं पुण्यप्रद हैं, उसी प्रकार ये श्रावणी देवियाँ भी चन्दनीय एवं पुण्यमयी हैं। स्त्री-पुरुषोंको इनकी प्रसन्नताके लिये व्रत करना चाहिये तथा जल, चन्दन, पुष्प, धूप, पकवान आदिसे इनकी पूजा करनी चाहिये और स्त्रियों तथा पुरुषोंको भोजन कराकर व्रतकी पूरणा करनी चाहिये।

इनका व्रत न करनेसे मृत्यु-कष्ट होता है और यम-यातना सहन करनी पड़ती है। राजन् ! इस विषयमें आपके एक आश्वान सुनाता है—

प्राचीन कालमें नहुष नामके एक राजा थे। उनकी रानीका नाम 'जयश्री' था। वह अत्यन्त सुन्दर, शीलवती एवं पतिव्रता थी। एक बार गङ्गामें स्नान करके वह महर्षि वसिष्ठके समीपवर्ती आश्रममें गयी, वहाँ उसने देखा कि मातृ अरुन्धती मुनिपत्नियोंको विविध प्रकारका भोजन करा रही है। जयश्रीने उन्हें प्रणाम कर पूछा—'भगवति ! आप यह कौन-सा व्रत कर रही हैं।' अरुन्धती बोली—'देवि ! मैं श्रवणिकाव्रत कर रही हूँ। इस व्रतको मुझे महर्षि वसिष्ठने बताया है। यह व्रत अत्यन्त गुप्त और ब्राह्मणियोंका सर्वस्व है तथा कन्याओंके लिये श्रेष्ठ एवं उत्तम पति प्रदान करनेवाला है। तुम यहाँ ठहरो, मैं तुम्हारा आतिथ्य करूँगी।' और उन्होंने वैसा ही किया।

उदनन्तर जयश्री अपने नगरमें चली आयी। कुछ समय बाद वह उस व्रतको तथा अरुन्धतीके भोजनको भूल गयी। समय आनेपर जब वह महासती भरणसत्र हुई तो उसके गलेमें घर्षणहट होने लगी, कण्ठ अवरुद्ध हो गया, मुखसे फेन एवं लार टपकने लगा। इस प्रकार दारुण कष्ट भोगते हुए उसे पंद्रह दिन व्यतीत हो गये। उसका मुख देखनेसे भय लगता था। सोलहवें दिन अरुन्धती जयश्रीके घर आयी और उन्होंने वैसा कष्टप्रद स्थितिमें उसे देखा। तब अरुन्धतीने राजा नहुषसे श्रवणिकाव्रतके विषयमें बतलाया। राजा नहुषने भी देवी अरुन्धतीके निर्देशानुसार जयश्रीके निमित्त तत्काल श्रवणिका-व्रतका आयोजन किया। उस व्रतके प्रभावसे जयश्रीने सुख-पूर्वक मृत्युका वरण किया और इन्द्रलोकको प्राप्त किया।

**श्रीकृष्णने पुनः कहा—**राजन् ! मार्गशीर्षमें कर्त्तिकतक द्वादश घांसेकी चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथियोंमें भक्तिपूर्वक यह व्रत करना चाहिये। प्रातःकाल नदी आदिमें स्नानकर पवित्र हो, श्रेष्ठ बारह ब्राह्मण-दम्पतियों अथवा अपने शीर्षमें उत्पन्न बारह दम्पतियोंको बुलाकर गन्ध, पुष्प, रोचना, वस्त्र, अलङ्कार, सिद्ध आदिसे उनका भक्तिपूर्वक पूजन करे। सुन्दर, सुदौल, अचिद्ध, जलसे भरे हुए, सूत्रसे आर्षेहित तथा पुष्पमाला आदिसे विभूषित स्वर्णयुक्त बारह वर्षीयों (जालपूर्ण कलश)को ब्राह्मणियोंके सामने पृथक्-पृथक् रखे। उनमेंसे मध्यकी एक वर्षी उठाकर अपने सिरपर रखे तथा उन ब्राह्मणियोंसे वाल्मीक्याख्या, कुमाराख्या तथा बृद्धावस्थामें किये गये पापोंके विनाश, सुखपूर्वक मृत्यु-प्राप्ति तथा संसार-सागरसे पार होने और भगवान्के परमपदको पानेके लिये प्रार्थना करे। वे ब्राह्मणियाँ भी कहें—'ऐसा ही हो।' ब्राह्मणोंसे पापोंके विनाशके लिये प्रार्थना करे। ब्राह्मण उस वर्षीकी उसमें सिरसे उतार ले और उसे आशीर्वाद प्रदान करे। उन सभी वर्षीयोंको ब्राह्मण-पत्नियोंको दे दे।

हे पार्थ ! इस प्रकार इस श्रवणिकाव्रतकी भक्तिपूर्वक करनेवाला सभी भोगोंका उपभोग कर सुखपूर्वक मृत्युका वरण करता है और उत्तम लोकको प्राप्त करता है। (अध्याय ९५)

१-गरुडपुराण, उत्तराष्ट्र, अध्याय ७ में भी यह विषय विस्तारसे प्रीतिवर्तित है। वहाँ इन्हें देवी न कहकर अथवा नामका पुष्प देवता कहा गया है।

## नक्त एवं शिवचतुर्दशी-व्रतकी विधि

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! अब आप नक्तव्रतका विधान सुनिये, जिसके करनेसे मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। किसी भी मासको शुक्ल चतुर्दशीको ब्राह्मणको भोजन कराकर नक्तव्रत प्रारम्भ करना चाहिये। प्रत्येक मासमें दो अष्टमियाँ और दो चतुर्दशियाँ होती हैं। उस दिन भक्तिपूर्वक शिवजीका पूजन करे और उनके ध्यानमें तत्पर रहे। रात्रिके समय पृथ्वीको पात्र बनाकर उसीमें भोजन करे<sup>१</sup>। उपचारसे उत्तम पिशा, पिशासे उत्तम अर्थाचित-व्रत और अर्थाचित-व्रतसे भी उत्तम है नक्त-भोजन। इसीलिये नक्तव्रत करना चाहिये। पूर्वाह्णमें देवता, मध्याह्णमें मुनिगण, अपराह्णमें पितर और सायंकालमें गृहजक आदि भोजन करते हैं। इसीलिये सबके बाद नक्त-भोजन करना चाहिये। नक्तव्रत करनेवाला पुरुष नित्य ज्ञान, स्वल्प हविष्यज्ञ-भोजन, सत्य-भाषण, नित्य-हवन और भूमिशयन करे। इस प्रकार एक वर्षतक व्रत करके अन्तमें धृतपूर्ण कालरत्ने ऊपर भगवान् शिवकी मूर्तिकासे कनी प्रतिमा स्थापित करे। अर्पित गौके पञ्चगव्यसे प्रतिमाको स्नान कराकर फल, पुष्प, यज्ञ, क्षीर, दधि, दुग्ध, तिल तथा चावल जलमें छोड़कर अष्टाङ्ग-अर्घ्य प्रदान करे। दोनों घुटनोंको पृथ्वीपर रखकर पात्रको सिरतक उठाकर महादेवजीको अर्घ्य दे। अनन्तर अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य नैवेद्य निवेदित करे। एक उत्तम सखसा गौ और वृषभ केदेवेला ब्राह्मणको दक्षिणासहित दे। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति दिव्य देह धारण कर उत्तम विमानमें बैठकर रुद्रलोकमें जाता है। वहाँ तीन सौ कोटि वर्षपर्यन्त सुख भोगकर इस लोकमें महान् राजा होता है। एक बार भी जो इस विधानसे नक्तव्रत कर श्रीसदाशिवका पूजन करता है, वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है।

**भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—**महाराज ! अब मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध शिवचतुर्दशीकी विधि बता रहा हूँ। यह माहेश्वरव्रत शिवचतुर्दशी नामसे प्रसिद्ध है<sup>२</sup>। इस व्रतमें

मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको एक बार भोजन करे और चतुर्दशीको निराहार रहकर पार्वतीसहित भगवान् शंकरकी गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे पूजा करे। स्वर्णका वृषभ बनाकर उसकी भी पूजा करे। अनन्तर वह वृषभ तथा स्थापित जलपूर्ण कलश ब्राह्मणको प्रदान कर दे, विविध प्रकारके भक्ष्य पदार्थ भी दे और कहे—'प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः पिनाकपृक्'। अनन्तर उत्तराभिमुख हो धृतका प्रदान कर भूमिपर शयन करे। प्रतिमासकी शुक्ल चतुर्दशीको यही विधान करे और मार्गशीर्ष आदि महीनोंमें शयनके समय इस प्रकार प्रार्थना करे—

शंकराय नमस्तुभ्य नमस्ते कारवीरय ।  
 प्रबन्धनाय नमस्तुभ्य महेश्वरमतः परम् ॥  
 नमस्तेऽस्तु महादेव स्थानवे च ततः परम् ।  
 नमः पशुपते नाथ नमस्ते शम्भवे नमः ॥  
 नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्धधारिणे ।  
 नमो भीमाय क्षोभाय त्वामहं शरणं गतः ॥

(उत्तरपर्व १७। १५—१७)

बारह महीनोंमें क्रमसे गोमूत्र, गोमय, दुग्ध, दधि, घृत, कुशोदक, पञ्चगव्य, बिल्व, सवागू (यवकी काँजी), कमल तथा जड़ले तिलका प्राशन करे और मन्दार, मालती, धतूर, सिन्दुर, अशोक, मल्लिका, कुन्जक, पाटल, अर्क-पुष्प, कदम्ब, रक्त एवं नीलकमल तथा कनेर—इन बारह पुष्पोंसे क्रमशः बारहो चतुर्दशियोंमें उमापहेश्वरका पूजन करे। अनेक प्रकारके भोजन, वस्त्र, आभूषण, दक्षिणा आदि देकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट कर नीले (कृष्ण) रंगका वृष छोड़े और एक गौ तथा एक वृष सुवर्णका बना करके आठ मोतियोंसे युक्त उत्तम शय्यामें स्थापित करे। जल-कुम्भ, शालि-चावल, घृत, दक्षिणासहित सब सामग्री वेद-व्रत-परायण, शान्तिचित्त सपत्नीक ब्राह्मणोंको प्रदान कर दे। इस व्रतको जो पुरुष भक्तिपूर्वक करता है, उसके माता-पिताके भी सभी पाप नष्ट

१-गन्ध आदि तीर्थोंमें पृथ्वीपर ही भोजनपत्रको रखने चाहिये कहे हुए हैं। पहले जैन, बौद्ध, सिद्ध, सन्यासी उन्होंने यह विधि की बनी थीलियोंमें भोजन करते थे और कुल लोग हाथमें लेकर भोजन करते थे। उन्हें कन्याजी कहते थे। इसमें ताम्र, कर्त, लहसुन और सलियुक्त सब मिश्रित थी।

२- इस व्रतका वर्णन मातृ आदि पुराणोंमें भी प्राप्त होता है।

हो जाते हैं और वह स्वयं हजार अभ्येक्ष-यज्ञका फल प्राप्त करता है तथा दीर्घायु, ऐश्वर्य, आरोग्य, संतान एवं विद्या प्राप्त करता है।

आदि प्राप्त करता है। बहुत दिनोंतक संसारका सुख भोगकर

(अध्याय ९६-९७)

### सर्वफलत्याग-चतुर्दशीव्रत

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**भारत! अब आप सर्वफलत्याग-चतुर्दशीव्रतका माहात्म्य सुनें। यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। इस व्रतका नियम मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको अथवा अन्य मासको अष्टमीको ग्रहण करना चाहिये। उस दिन ब्राह्मणोंको पायस-भोजन कराकर दक्षिणा दे। इस व्रतका आरम्भ कर वर्षभर कोई निन्द्य फल-मूल तथा अठारह प्रकारके धान्य<sup>१</sup> भक्षण न करे। वर्षके अन्तमें चतुर्दशी अथवा अष्टमीके दिन सुवर्णके रुद्र एवं धर्मराजकी प्रतिमा बनाकर दो कलशोंके ऊपर स्थापित कर उनका पूजन करे। सोनेके सोलह कुम्भाच और मातुलुङ्ग, बैंगन, कटहल, आम, आमड़ा, कैश, करिंग (तरबूज), ककड़ी, शीफल, बट, अन्नाच, जम्बोरी नीबू, केला, बेर तथा दाड़िम (अनार)—ये फल बनवाये। मूले, आवला, जामुन, कमलगट्टा, करीदा, मूला, मरियल, अंगूर, दो बनभंटा, कंकोल, ककमाची, खीर, करील, कुटज तथा शमी—ये सोलह फल चाँदीके बनवाये और ताल, अगस्त्य, पिंडार, खजूर, सुरण, कंदक, कटहल, लकुच, खैरसा,

इमली, चित्रवल्ली, कूटशाल्मलिक, महुआ, कडवेला, बल्ले तथा गुदपटोलक—ये सोलह फल तबिके बनवाये। इन फलोंका व्रतपर्यन्त भक्षण न करे अर्थात् इन फलोंके त्यागका व्रतमें संकल्प करे। व्रतकी पूर्णतापर धर्मराज एवं रुद्रकी प्रतिमा तथा स्वर्ण, रौप्य एवं ताम्रसे बनाये गये इन फलोंको वेदज्ञ, शान्त, सपत्नीक ब्राह्मणको भगवान्की प्रसन्नताके लिये प्रार्थनापूर्वक दान कर दे। सभी उपकरणोंसहित उत्तम दाया, भूषण, दक्षिणा भी ब्राह्मणको देकर यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये। स्वयं भी तैल-क्षारवर्जित भोजन करे। यदि सभी फलोंको न त्याग सके तो एक ही फलका त्याग करे और सुवर्ण आदिका बनवाकर इसी विधानसे ब्राह्मणको दे। उन फलोंमें जितने परमाणु होते हैं, उतने हजार युग वर्षतक इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति रुद्रलोकमें पुजित होता है। स्त्रियोंको भी यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतके करनेवालोंको किसी जन्ममें इष्टका वियोग नहीं होता और अन्तमें वह स्वर्गमें निवास करता है।

(अध्याय ९८)

### पौर्णमासी-व्रत-विधान एवं अमावास्यामें ब्राह्म-तर्पणकी महिमा

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**एतन्। पूर्णिमा चन्द्रमाकी प्रिय तिथि है। क्योंकि इसी दिन चन्द्रमा<sup>२</sup> सोलह कलाओंसे परिपूर्ण होते हैं। इसीलिये यह पौर्णमासी कही जाती है। इसी तिथिको चन्द्रमा तारासे बुध नामक पुत्रको प्राप्तकर अस्यन्त प्रसन्न हुए थे। यह पौर्णमासी तिथि सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है। चन्द्रमाने स्वयं कहा है कि 'जो इस

पूर्णिमा-तिथिमें भक्तिपूर्वक विधिवत् मेरी पूजा करेगा, मैं प्रसन्न होकर उसको सभी कामनाएँ पूर्ण कर दूँगा।' व्रतीको चाहिये कि पूर्णिमाके दिन प्रातः नदी आदिमें स्नान कर देवता और पितरोंका तर्पण करे। तदनन्तर घर आकर एक मण्डल बनाये और उसमें नक्षत्रोंसहित चन्द्रमाको अंकित कर श्वेत गन्ध, अक्षत, श्वेत पुष्प, धूप, दीप, घृतपक्क नैवेद्य और श्वेत वस्त्र

१-ये अठारह धान्य—पाण्डुराण्य-सु० १।२०८ की अष्टाईक व्याख्या, महाकरणमहाध्याय ५।२।४, वाजसने० संहिता १८।१२, दानमनुष तथा विधानपारिजात आदिके अनुसार इस प्रकार हैं—चावल, धान, जौ, मूंग, तिल, जनु (कान्नी), उड़द, गेहूँ, कोटी, कुलथी, रसीन (छोटी मटर), सेम, आड़की (अरहर) या महुए (उजली मटर), चन्दा, कलाय, मटर, विष्णु (साली), राई या टाँगुन और मसूर। अन्य मतसे महुएकी जगह अतसी और नीवार आता है।

२-मास शब्दका अर्थ चन्द्रमा होता है, हिन्दुओंके माहमें अमावास्याको पूर्ण होते हैं



आदि उपचारोंसे चन्द्रमाका पूजन कर उनसे क्षमा-प्रार्थना करे और सायंकाल इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे—

वसन्तधान्यव विभो शीतांशो त्वलि नः कुरु ।

गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दक्षपणीयते ॥

(उत्तरपर्व १९।५४)

अनन्तर रात्रिमें मौन होकर शक एवं तिथीके चावलका भोजन करे। प्रत्येक मासकी पौर्णमासीको इसी प्रकार उपवासपूर्वक चन्द्रमाकी पूजा करनी चाहिये। यदि कृष्ण पक्षकी अमावास्यामें कोई श्रद्धावान् व्यक्ति चन्द्रमाकी पूजा करना चाहे तो उसके लिये भी यही विधि बतलायी गयी है। इससे सभी अभीष्ट सुख प्राप्त होते हैं। अमावास्या तिथि पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। इस दिन दान एवं तर्पण आदि करनेसे पितरोंको तृप्ति प्राप्त होती है। जो अमावास्याको उपवास करता है, उसे अक्षय-वटके नीचे श्राद्ध करनेका फल प्राप्त

होता है। यह अक्षय-वट पितरोंके लिये उत्तम तीर्थ है। जो अमावास्याको अक्षय-वटमें पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्धादि क्रिया करता है, वह पुण्यात्मा अपने इष्टीस कुल्लोका उद्धार कर देता है। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त पूर्णिमा-व्रत करके नक्षत्रसहित चन्द्रमाकी सुवर्णकी प्रतिमा बना करके वस्त्राभूषण आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको दान कर दे। व्रती यदि इस व्रतको निरन्तर न कर सके तो एक पक्षके व्रतको ही करके उद्घापन कर ले। पार्थ। पौर्णमासी-व्रत करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो चन्द्रमाकी तरह सुशोभित होता है और पुत्र-पौत्र, धन, आरोग्य आदि प्राप्तकर बहुत कालतक सुख भोग कर अन्त-समयमें प्रयागमें प्राण त्यागकर विष्णुलोकको जाता है। जो कृष्ण पूर्णिमाको चन्द्रमाका पूजन और अमावास्याको पितृ-तर्पण, पिण्डदान आदि करते हैं, वे कभी धन-धान्य-संहन आदिसे भ्रूत नहीं होते। (अध्याय १९)

### वैशाखी, कार्तिकी और माघी पूर्णिमाकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! संवत्सरमें कौन-कौन तिथियाँ स्नान-दान आदिमें अधिक पुण्यदायक हैं। उनका आप वर्णन करे।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज। वैशाख, कार्तिक और माघ—इन तीन महौनोंकी पूर्णिमाएँ स्नान-दान आदिके लिये अति श्रेष्ठ हैं। इन तिथियोंमें स्नान, दान आदि अवश्य करने चाहिये। इन तिथियोंमें तीर्थोंमें स्नान करे और यथाशक्ति दान दे। वैशाखीको उज्जयिनी (शिवा) में, कार्तिकीको पुष्करमें और माघीको वाराणसी (गङ्गा) में स्नान करना चाहिये। इस दिन जो पितरोंका तर्पण करता है, वह अनन्त फल पाता है और पितरोंका उद्धार करता है। वैशाख-पूर्णिमाको अन्न, सुवर्ण और वस्त्रसहित जलपूर्ण कलश ब्राह्मणको दान करनेसे व्रती सर्वथा शोकमुक्त हो जाता है। इस व्रतमें सुन्दर मधुर भोजनसे परिपूर्ण पात्र, गौ, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्र आदिका दान करना चाहिये। माघ-पूर्णिमाको देवता और पितरोंका तर्पण कर सुवर्णसहित तिलपात्र, कम्बल, रुईके वस्त्र, कापास, रत्न आदि ब्राह्मणोंको दे। कार्तिक-पूर्णिमाको वृधोत्सर्ग करे। भगवान् विष्णुका नीराजन करे। हाथी, घोड़े, रथ और भूत-धेनु आदि दस धेनुओंका दान

करे और केल, खजूर, नारियल, अनार, संतरा, ककड़ी, केला, कोर, कुंदरु, कूष्माण्ड आदि फलोंका दान करे। इन पुण्य तिथियोंमें जो स्नान, दान आदि नहीं करते, वे जन्मान्तरमें रोषी और दरिद्री होते हैं। ब्राह्मणोंको दान देनेका तो फल है ही, परंतु बहन, भानजे, बुआ आदिके तथा दरिद्र बन्धुओंको भी दान देनेसे बड़ा पुण्य होता है। मित्र, कुलीन व्यक्ति, विधवासे पीड़ित व्यक्ति, दरिद्री और आश्रमसे आये अतिथिको दान देनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। राजन्। सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्र जब वन चले गये थे, उस समय भरतजी अपने ननिहालमें थे। इधर लोगोंने माता कीसल्याको उनके विषयमें सर्वांकित कर दिया कि श्रीरामके वनगमनमें भरत ही मुख्य हेतु हैं। फिर जब ये ननिहालसे वापस आये और उन्हें सारी बातें ज्ञात हुईं तो उन्होंने माताको अनेक प्रकारसे समझाया और शपथ भी ली, पर माताको विश्वास न हुआ, किंतु जब भरतने कहा कि 'माँ! भगवान् श्रीरामके वन-गमनमें यदि मेरी सम्मति रही हो तो देवताओंद्वारा पूजित तथा अनेक पुण्योंके प्रदान करनेवाली वैशाख, कार्तिक तथा माघकी पूर्णिमाएँ मेरे बिना स्नान-दानके ही व्यतीत हों और मुझे निरा गति प्राप्त हो।' इस महान् शपथको सुनते ही माताको

विश्वास हो गया और उन्होंने भरतको अपने अङ्गुमें ले लिया तथा अनेक प्रकारसे आश्वस्त किया। महाराज ! इन तीनों तिथियोंके सम्पूर्ण माहात्म्य कौन वर्णन कर सकता है। मैं संक्षेपमें कहता हूँ। इन तीनों तिथियोंके जल, अन्न, वस्त्र, स्वर्णपात्र, छत्र आदि दान करनेवाले पुरुष इन्द्रलोकके प्राप्त करते हैं। (अध्याय १००)

### युगादि तिथियोंकी विधि

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! आप उन तिथियोंका वर्णन करें, जिनमें स्वल्प भी किया गया खान, दान, जप आदि पुण्यकर्म अक्षय्य हो जाते हैं और महान् धर्म तथा शुभ फल प्राप्त होता है।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! मैं आपको अत्यन्त रहस्यकी बात बताता हूँ, जिसे आज तक मैंने किसीसे नहीं कहा था। वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया, कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी नवमी, भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी और माघकी पूर्णिमा—ये चारों युगादि तिथियाँ हैं। अर्थात् इन तिथियोंमें क्रमशः सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग—चारों युगोंका प्रारम्भ हुआ है। इन तिथियोंके उपवास, तप, दान, जप, होम आदि करनेसे कोई गुप्त पुण्य प्राप्त होता है। वैशाख शुक्ल तृतीयाको गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्राभूषण आदिसे लक्ष्मीसहित नारायणका पूजन कर सबसत्ता लवण-धेनुका दान करना चाहिये। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी नवमीको नदी, तटाराग आदिमें स्नान कर पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे उमाके साथ नीलकण्ठ भगवान् शंकरकी पूजा कर तिल-धेनुका दान करना चाहिये। भाद्रपद

कृष्ण त्रयोदशीको पितृ-तर्पण कर शहर और घृतयुक्त अनेक प्रकारके पक्वान्नोंसे ब्राह्मण-भोजन कराये तथा दूध देनेवाली सुन्दर सुपुष्ट सबसत्ता प्रत्यक्ष गौ ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। माघ-पूर्णिमाको गायत्रीसहित ब्रह्माजीका पूजन कर सुवर्ण, वस्त्र अनेक प्रकारके फलोंसहित नवनील-धेनुका दान करना चाहिये।

**राजन् !** इस प्रकार दान करनेवालोंको तीनों लोकोंमें किसी वस्तुका अभाव नहीं होता। इन युगादि तिथियोंमें जो दान दिया जाता है वह अक्षय्य होता है। निर्धन हो तो थोड़ा-थोड़ा ही दान करे, उसका भी अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। बित्तके अनुसार शय्या, आसन, छतरी, जूता, वस्त्र, सुवर्ण, भोजन आदि ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इन तिथियोंमें यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन भी कराये। अनन्तर प्रसन्न-मनसे कन्यु-बाण्डियोंके साथ मौन हो स्वयं भी भोजन करे। युगादि तिथियोंमें दान-पूजन आदि करनेसे कायिक, वायिक और मानसिक सभी प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं और दाता अक्षय्य स्वर्ग प्राप्त करता है।

(अध्याय १०१)

### सावित्री-व्रतकथा एवं व्रत-विधि

**राजा युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् ! अब आप सावित्री-व्रतके विधानका वर्णन करें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! सावित्री नामकी एक राजकन्याने वनमें जिस प्रकार यह व्रत किया था, स्त्रियोंके कल्याणार्थ मैं उस व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, उसे आप सुनें। प्राचीन कालमें मद्रदेश (पंजाब)में एक बड़ा पराक्रमी, सत्यवादी, क्षमाशील, जितेन्द्रिय और प्रजापालनमें तत्पर अश्वपति नामका राजा राज्य करता था, उसे कोई संतान न थी। इसलिये उसने सपत्नीक व्रतद्वारा सावित्रीकी आराधना की। कुछ कालके अनन्तर व्रतके प्रभावसे ब्रह्माजीकी पत्नी सावित्रीने प्रसन्न हो राजाको वर दिया कि 'राजन् ! तुम्हें (मैंने

ही अंशसे) एक कन्या उत्पन्न होगी।' इतना कहकर सावित्री देवी अन्तर्धान हो गयीं और कुछ दिन बाद राजाको एक दिव्य कन्या उत्पन्न हुई। वह सावित्रीदेवीके वरसे प्राप्त हुई थी, इसलिये राजा ने उसका नाम सावित्री ही रखा। धीरे-धीरे वह विवाहके योग्य हो गयी। सावित्रीने भी भृगुके उपदेशसे सावित्री-व्रत किया।

एक दिन वह व्रतके अनन्तर अपने पित्तके पास गयीं और प्रणाम कर वहाँ बैठ गयीं। पित्तने सावित्रीको विवाहयोग्य जानकर अमात्योंसे उसके विवाहके विषयमें मन्त्रणा की; पर उसके योग्य किसी श्रेष्ठ वरको न देखकर पिता अश्वपतिने सावित्रीसे कहा—'पुत्रि ! तुम वृद्धजनों तथा अमात्योंके साथ

जाकर स्वयं ही अपने अनुरूप कोई कर लूँ ले। सावित्री भी पिताकी आज्ञा स्वीकार कर मन्त्रियोंके साथ चल पड़ी। स्वल्प कालमें ही राजपिंथोंके आश्रमों, सभी तीर्थों और तपोवनोंमें घूमती हुई तथा वृद्ध ऋषियोंका अभिनन्दन करती हुई वह मन्त्रियोंसहित पुनः अपने पिताके पास लौट आयी। सावित्रीने देखा कि राजसभामें देवर्षि नारद बैठे हुए हैं। सावित्रीने देवर्षि नारद और पिताको प्रणामकर अपना वृत्तान्त इस प्रकार बताया—‘महाराज ! शाल्वदेवामें द्युमत्सेन नामके एक धर्मात्मा राजा है। उनके सत्यवान् नामक पुत्रका मैंने वरण किया है।’ सावित्रीकी बात सुनकर देवर्षि नारद कहने लगे—‘राजन् ! इसने बाल्य-सम्भावकश उचित निर्णय नहीं लिया। यद्यपि द्युमत्सेनका पुत्र सभी गुणोंसे सम्पन्न है, परंतु उसमें एक बड़ा भारी दोष है कि आजके ही दिन ठीक एक वर्षके बाद उसकी मृत्यु हो जायगी।’ देवर्षि नारदकी वाणी सुनकर राजाने सावित्रीसे किसी अन्य कसबे लूँकुनेके लिये कहा।

**सावित्री बोली—**‘राजाओंकी आज्ञा एक ही बार होती है। पण्डितजन एक ही बार बोलते हैं और कन्या भी एक ही बार दी जाती है—ये तीनों बातें बार-बार नहीं होतीं। सत्यवान् दीर्घायु हो अथवा अल्पायु, निर्गुण हो या गुणवान्, मैंने तो उसका वरण कर ही लिया; अब मैं दूसरे पतिको कभी नहीं चुनूंगी। जो कहा जाता है, उसका पहले विचारपूर्वक मनमें निश्चय कर लिया जाता है और जो वचन कहा दिया जाय, वही करना चाहिये। इसलिये मैंने जो मनमें निश्चय कर कहा है, मैं वही करूँगी।’ सावित्रीका ऐसा निश्चययुक्त वचन सुनकर नारदजीने कहा—‘राजन् ! आपकी कन्याको यहाँ अभीष्ट है तो इस कार्यमें शीघ्रता करना चाहिये। आपका यह दान-कर्म निर्विघ्न सम्पन्न हो।’ इस तरह कहकर नारदमुनि स्वर्ग चले गये और राजाने भी शीघ्र मुहूर्तमें सावित्रीका सत्यवान्से विवाह कर दिया। सावित्री भी मनोवाञ्छित पति प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। दोनों अपने आश्रममें सुखपूर्वक रहने लगे। परंतु नारदमुनिकी वाणी सावित्रीके हृदयमें सटकती रहती थी। जब वर्ष पूरा होनेको आया, तब सावित्रीने विचार

किया कि अब मेरे पतिकी मृत्युका समय समीप आ गया है। यह सोचकर सावित्रीने माद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीसे तीन रात्रिका व्रत<sup>१</sup> ग्रहण कर लिया और वह भगवती सावित्रीका जप, ध्यान, पूजन करती रही। उसे यह निश्चय था कि आजसे चौथे दिन सत्यवान्की मृत्यु होगी। सावित्रीने तीन दिन-रात नियमसे व्यतीत किये। चौथे दिन देवता-पितरोंको संतुष्ट कर उसने अपने ससुर और सासके घरणोंमें प्रणाम किया।

सत्यवान् वनसे काष्ठ लया करता था। उस दिन भी वह काष्ठ लेनेके लिये जाने लगा। सावित्री भी उसके साथ जानेकी उद्यत हो गयी। इसपर सत्यवान्ने सावित्रीसे कहा—‘वनमें जानेके लिये अपने सास-ससुरसे पूछ लो।’ वह पूछने गयी। पहले तो सास-ससुरने मना किया, किंतु सावित्रीके बार-बार आग्रह करनेपर उन्होंने जानेकी आज्ञा दे दी। दोनों साथ-साथ वनमें गये। सत्यवान्ने वहाँ काष्ठ काटकर बोझ बाँधा, परंतु उसी समय उसके मस्तकमें महान् वेदना उत्पन्न हुई। उसने सावित्रीसे कहा—‘प्रिये ! मेरे सिरमें बहुत व्यथा है, इसलिये थोड़ी देर विश्राम करना चाहता हूँ।’ सावित्री अपने पतिके सिरको अपनी गोदमें लेकर बैठ गयी। इतनेमें ही यमराज वहाँ आ गये। सावित्रीने उन्हें देखकर प्रणाम किया और कहा—‘प्रभो ! अहं देवता, दैत्य, गन्धर्व आदिमेंसे कौन है ? मेरे पास क्यों आये हैं ?’

**धर्मराजने कहा—**सावित्री ! मैं सम्पूर्ण लोकोंका नियन्त्रण करनेवाला हूँ। मेरा नाम यम है। तुम्हारे पतिकी आयु सम्पन्न हो गयी है, परंतु तुम पतिव्रता हो, इसलिये मेरे दूर इसको न ले जा सके। अतः मैं स्वयं ही यहाँ आया हूँ। इतना कहकर यमराजने सत्यवान्के शरीरसे अङ्गुष्ठमात्रके पुरुषको खींच लिया और उसे लेकर अपने लोकको चल पड़े। सावित्री भी उनके पीछे चल पड़ी। बहुत दूर जाकर यमराजने सावित्रीसे कहा—‘पतिव्रते ! अब तुम लौट जाओ। इस मार्गमें इतनी दूर कोई नहीं आ सकता।’

**सावित्रीने कहा—**महाराज ! पतिके साथ आते हुए मुझे न तो रत्ननि हो रही है और न कुछ श्रम ही हो रहा है।

१-सकृजाल्पन्ति राजानः सकृजाल्पन्ति पण्डिताः। सकृत् प्रदीप्यते कन्या क्रियेन्दवनि सकृत्सकृत्॥ (उत्तरपर्व १०२।२९)

२-यह बात अन्य कथनोंके अनुरूप न होकर कृष्ण तथा बुद्ध इत्यादीमें पूर्वजन्मक कर्मेकी सम्पत्ति भी लोकमें प्रसिद्ध है।

मैं सुखपूर्वक चली आ रही हूँ। जिस प्रकार सज्जनोंकी गति संत है, वर्णाश्रमोंका आधार वेद है, शिष्योंका आधार गुरु और सभी प्राणियोंका आश्रय-स्थान पृथ्वी है, उसी प्रकार शिष्योंका एकमात्र आश्रय-स्थान उसका पति ही है अन्य कोई नहीं।

इस प्रकार सावित्रीके धर्म और अर्धयुक्त बचनोंको सुनकर यमराज प्रसन्न होकर कहने लगे—‘भामिनि ! मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ, तुम्हें जो वर अभीष्ट हो वह माँग लो।’ तब सावित्रीने विनयपूर्वक पाँच वर माँगे—(१) मेरे ससुराके नेत्र अच्छे हो जायें और उन्हें राज्य मिल जाय। (२) मेरे पिताके सौ पुत्र हो जायें। (३) मेरे भी सौ पुत्र हों। (४) मेरा पति दीर्घायु प्राप्त करे तथा (५) हमारी सदा धर्ममें दृढ़ बद्धा बनी रहे। धर्मराजने सावित्रीको ये सब वर दे दिये और सत्यवान्को भी दे दिया। सावित्री प्रसन्नतापूर्वक अपने पतिको साथ लेकर आश्रममें आ गयी। बादपदकी पूर्णिमाको जो उसने सावित्री-व्रत किया था, यह सब उसीका फल है।

**युधिष्ठिरने पुनः कहा—**भगवन् ! अब आप सावित्री-व्रतकी विधि विस्तारपूर्वक बतलावें।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! सौभाग्यकी इच्छावाली स्त्रीको बादपद मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको पवित्र होकर तीन दिनके लिये सावित्री-व्रतका नियम ग्रहण करना चाहिये। यदि तीन दिन उपवास रहनेकी शक्ति न हो तो त्रयोदशीको नक्तव्रत, चतुर्दशीको अमाचित्त-व्रत और पूर्णिमाको उपवास करे। सौभाग्यकी कामनावाली नारी नदी, तड़ाग आदिमें नित्य-स्नान करे और पूर्णिमाको सरसोंका उबटन लगाकर स्नान करे।

यथाशक्ति मिट्टी, सोने या चाँदीकी ब्रह्मासहित सावित्रीकी

प्रतिमा बनाकर बाँसके एक पात्रमें स्थापित करे और दो रक्त वर्णकी वस्त्रोंसे उसे आच्छादित करे। फिर गन्ध, पुष्प, धूप, रोप, नैवेद्यसे पूजन करे। कुम्भाण्ड, नारियल, ककड़ी, तुरई, खजूर, कैय, अनार, जामुन, जम्बीर, नारंगी, अखरोट, कटहल, गुड़, लवण, जीत, अंकुरित अन्न, सप्तधान्य तथा गलेका डोरा (सावित्री-मूत्र) आदि सब पदार्थ बाँसके पात्रमें रखकर सावित्रीदेवीको अर्पण कर दे। रात्रिके समय जागरण करे। गेह, जहदा, नृत्य आदिका उत्सव करे। ब्राह्मण सावित्रीकी कथा कहे। इस प्रकार सारी रात्रि उत्सवपूर्वक व्यतीत कर प्रातः व्रती नारी सब सामग्रीसहित सावित्रीकी प्रतिमा ब्रह्म विद्वान् ब्राह्मणको दान कर दे। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराकर स्वयं भी हविष्यान्न-भोजन करे।

राजन् ! इसी प्रकार ज्येष्ठ मासकी अमावास्याको वटवृक्षके नीचे कश्मभारसहित सत्यवान् और महासती सावित्रीकी प्रतिमा स्थापित कर उनका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। रात्रिके जागरण आदि कर प्रातः वह प्रतिमा ब्राह्मणको दान कर दे। इस विधानसे जो स्त्रियाँ यह सावित्री-व्रत करती हैं, वे पुत्र-पौत्र-धन आदि पदार्थोंको प्राप्त कर बिर-कार्यरत पृथ्वीपर सब सुख भोग कर पतिके साथ ब्रह्मलोकमें प्राप्त करती हैं। यह व्रत स्त्रियोंके लिये पुण्यवर्धक, पापहारक, दुःखप्रणाशक और धन प्रदान करनेवाला है। जो नारी भक्तिसे इस व्रतकी करती है, वह सावित्रीकी भाँति दोनों कुल्लोक उद्धार कर पतिमहित चिरकारुणिक सुख भोगती है। जो इस महात्म्यको पढ़ते अथवा सुनते हैं, वे भी मनोवाञ्छित फल प्राप्त करते हैं। (अध्याय १०२)

### महाकार्तिकी-व्रतके प्रसंगमें रानी कलिगभद्राका आख्यान

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**महाराज ! पूर्वकालमें मध्य देशके वृषस्थल नामक स्थानमें महाराज दिलीपकी कलिगभद्रा नामकी एक सर्वगुणसम्पन्न महारानी थी। वह सदा ब्राह्मणोंको दान देती तथा देवार्चन करती रहती। एक समय उसने कार्तिक मासमें छः माहोंकेका कृत्तिका-व्रतका

संकल्प लिया। वह प्रत्येक पारणामे नित्य पूजन, दान, ब्राह्मण-भोजन, हवन आदिमें तत्पर रहती। एक बार व्रतमें जब किञ्चित् कालावशेष था, तब वह रात्रिमें अपने पतिके साथ निशाम कर रही थी। उसी समय अचानक एक भयंकर सर्पने उसे दँस लिया। फलस्वरूप उसके प्राण निकल गये और वह

१-सती सन्तो गतिर्वया स्त्रीणां भर्ता सदा गतिः । केदे कर्मश्रवणं च शिष्याणां च गतिर्गुरुः ॥

स्वर्गायाम् जन्तूनां सान्त्वयति महीतलम् ॥ भर्ता एव मनुजस्त्रीणां तान्त्र्यं वसुश्रवः ॥ (दशमस्क १०२। ५५-५६)



जन्मान्तरमें बकरी बनी, परंतु व्रतके प्रभावसे उसे अपने पूर्वजन्मकी स्मृति बनाई हुई थी। उसने अपना कृतिकार-व्रत फिर ग्रहण किया। वह अपने यूपसे अलग होकर उपवास करने लगी।

एक बार कार्तिक मासमें किसी दूसरेके खेतमें जब वह खर रही थी, तब उस खेतका स्वामी उसे पकड़कर अपने घर ले आया। जातिस्मर अत्रिऋषिने उस बकरीको देखा और यह जान लिया कि यह रानी कलिंगभद्रा है। दयाकर उन्होंने उसे बन्धनसे मुक्त करा दिया। वहाँसे छूटकर उसने बेरके पत्ते खाकर शीतल जल पिया और कृतिकार-व्रतका पारण किया। ऋषि अत्रि उसे योगज्ञानका उपदेश देकर अपने अश्वमत्से चले गये और वह योगेश्वरी अपने व्रतमें पुनः तत्पर हो गयी तथा कुछ कालके अनन्तर उसने योगबलसे अपने प्राण त्याग दिये। तदनन्तर वह गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याके गर्भसे उत्पन्न हुई। उस समय उसका नाम योगलक्ष्मी हुआ। गौतममुनिने महर्षि शाण्डिल्यमुनिसे योगलक्ष्मीका विवाह कर दिया। वह भी शाण्डिल्यके घरमें सरस्वती, स्वाहा, शयी, अरुन्धती, गौरी, राजी, गायत्री, महालक्ष्मी तथा महासतीकी भाँति सुशोभित हुई। वह देवता, पितर और अतिथियोंके सत्कारमें नित्य लगी रहती। ब्राह्मणोंको भोजन कराती।

एक दिन महर्षि वहाँ आये और उन्होंने योगबलसे सारा वृत्तान्त जान लिया और पूछा—‘महाभागो योगलक्ष्मि ! कृतिकार कितनी हैं ?’ यह सुनकर महासती योगलक्ष्मीकी भी पूर्ववृत्त स्मरण हो आया और उसने कहा—‘महायोगिन् ! कृतिकार छः हैं।’ यह सुनकर दयालु अत्रिमुनिने पुनः उसे मन्त्र और कृतिकार-व्रतका उपदेश दिया, जिसके करनेसे उसने चिरकालतक संसारका सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! कृतिकार-व्रतकी क्या विधि है ? इसे आप बताये।

**भगवान् कहने लगे—**महागज ! कार्तिककी पूर्णिमाको कृतिका नक्षत्रमें बृहस्पति या सोमवार होनेपर

महाकार्तिकीका योग होता है। महाकार्तिकी तो बहुत वर्षोंमें और बड़े पुण्यसे प्राप्त होती है। इसलिये साधारण कार्तिकी पूर्णिमाको भी उपवास करे। कार्तिकी पूर्णिमाको प्रातः ही दत्तधावन आदि कर नक्षत्रतक अथवा उपवासका नियम ग्रहण करे। पुष्कर, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नैमिष, शालग्राम, कुशवर्त, मूलस्थान, शकन्तुल, गोकर्ण, अर्बुद, अमरकण्ठक आदि किसी पवित्र तीर्थमें अथवा अपने घरमें ही स्नान करे। फिर देवता, ऋषि, पितर और अतिथिका पूजन कर हवन करे। सायंकालके समय घृत और दुग्धसे पूर्ण छः पात्रोंमें सुवर्ण, चाँदी, राज, नवनीत, अन्नकण तथा पित्तसे छः कृतिकाओंकी मूर्ति बनाकर स्थापित करे। फिर उन्हें रत्नमुद्रासे आवेष्टित कर सिंदूर, कुंकुम, गन्धन, चमेलीके पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनका पूजन कर कृतिकाओंकी मूर्तियोंको ब्राह्मणको दान कर दे। दान करते समय यह मन्त्र पढ़े—

ॐ सप्तर्षिद्वारा ह्यनन्तरं बल्लभा

या ब्रह्मणा रक्षितयेति मुक्ताः ।

तुष्टाः कुमारस्य यथाधर्मातरौ

मयापि सुप्रीततरा भवन्तु ॥

(उत्तरपर्व १०३।३७)

ब्राह्मण भी मूर्ति ग्रहण करते समय इस प्रकार मन्त्रोच्चारण करे—

धर्मदाः कामदाः सन्तु इमा महाप्रभातराः ।

कृतिका दुर्गासंसारान् तारयन्वाययोः कुलम् ॥

(उत्तरपर्व १०३।३९)

तदनन्तर ब्राह्मण सब सामग्री लेकर घर जाय और छः कदमतक यज्ञमान उसके पीछे चले। इस प्रकार जो पुरुष कृतिकार-व्रत करता है, वह सूर्यके समान प्रकाशमान विमानमें बैठकर नक्षत्रलोकमें जाता है। जो स्त्री इस व्रतको करती है, वह भी अपने पतिसहित नक्षत्रलोकमें जाकर बहुत कालतक दिव्य भोगोंका उपभोग करती है।

(अध्याय १०३)



### मनोरथपूर्णिमा तथा अशोकपूर्णिमाव्रत-विधि

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**राजन् ! फल्गुनकी मनोरथपूर्णिमाके नामसे विख्यात है। इस व्रतके करनेसे पूर्णिमासे संवत्सरपर्यन्त किया जानेवाला एक व्रत है, जो व्रतके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। व्रतको चाहिये कि वर

फाल्गुन मासकी पूर्णिमाको स्नान आदि कर लक्ष्मीसहित भगवान् जनार्दनका पूजन करे और चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय जनार्दनका स्मरण करता रहे और पाखण्ड, पतित, नास्तिक, चाण्डाल आदिसे सम्भाषण न करे, जितेन्द्रिय रहे। रात्रिके समय चन्द्रमामें नारायण और लक्ष्मीको भावना कर अर्घ्य प्रदान करे। बादमें तैल एवं लवणरहित भोजन करे। इसी प्रकार चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ—इन तीन महीनोंमें भी पूजन एवं अर्घ्य प्रदान कर व्रती प्रथम पारण करे। आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन—इन चार महीनोंकी पूर्णिमाको श्रौंसहित भगवान् श्रीधरका पूजन कर चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे और पूर्ववत् दूसरी पारण करे। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ—इन चार महीनोंमें भूतिसहित भगवान् केशवका पूजन कर चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे और तीसरी पारण सम्पन्न करे। प्रत्येक पारणाके अन्तमें ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। प्रथम पारणाके चार महीनोंमें पञ्चगव्य, दूसरी पारणाके चार महीनोंमें कुशेदक और तीसरी पारणामें सुवीरजणोंसे तप्त जलका प्रदान करे। रात्रिके समय गीत-वाद्यद्वारा भगवान्का कीर्तन करे। प्रतिमास जलकुम्भ, जूता, छतरी, सुवर्ण, वस्त्र, भोजन और दक्षिणा ब्राह्मणको दान करे। देवताओंके स्थायी भगवान्की मार्गशीर्ष आदि बारह महीनोंमें क्रमशः केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिक्रम, यामन, श्रीधर तथा हरीकेश, राम, पद्मनाभ और दामोदर—इन नाणोंका कीर्तन करनेवाला व्यक्ति दुर्गतिसे उद्धार पा जाता है। यदि प्रतिमास दान देनेमें समर्थ न हो तो वर्षिक अन्तमें यथाशक्ति सुवर्णका चन्द्रबिम्ब बनाकर फल, वस्त्र आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको निवेदित कर दे। इस प्रकार व्रत करनेवाले पुरुषको अनेक जन्मपर्यन्त इष्टका विषोग नहीं होता। उसके सभी

मन्त्रेष पूर्ण हो जाते हैं और वह पुरुष नारायणका स्मरण करता हुआ दिव्यलोक प्राप्त करता है।

**भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—**महाराज ! अब मैं अश्लोकपूर्णमा-व्रतका वर्णन करता हूँ। इस व्रतको करनेसे मनुष्यको कभी शोक नहीं होता। फाल्गुनकी पूर्णिमाको अङ्गोमें मृतिका लगाकर नदी आदिमें स्नान करे। मृतिकाको एक खेदी बनाकर उसपर भगवान् भूधर और अश्लोक नामसे धरणीदेवीका पुष्प, नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन करे। पूजनके अनन्तर हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करे—‘धरणीदेवि ! आप सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड जगत्को धारण करनेवाली हैं। आपको जिस प्रकार भगवान् जनार्दनने रसातलमें लाकर प्रतिष्ठित करके श्लोकहित किया है, उसी प्रकार आप मुझे भी सभी श्लोकोंसे मुक्त कर दें और मेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करें। इस प्रकार प्रार्थना कर रात्रिके चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे। उस दिन उपवास रखे अथवा रात्रिके समय तैल-हाररहित भोजन करे। फाल्गुन आदि चार-चार मासमें एक-एक पारणा करे और प्रत्येक पारणाके अन्तमें विशेष पूजा और जागरण करे। प्रथम पारणामें धरणी, द्वितीयमें मेदिनी और तृतीयमें वसुधरा नामसे पूजन करे। वर्षिक अन्तमें सबत्वा गौ, भूमि, वस्त्र, आभूषण आदि ब्राह्मणोंको दान करे। यह व्रत पातालमें स्थित धरणीदेवीने किया था, तब भगवान्ने बाराह रूप धारण कर उनका उद्धार किया और प्रसन्न होकर कहा कि ‘धरणी-देवि ! तुम्हारे इस व्रतसे मैं परम संतुष्ट हूँ, जो कोई भी पुरुष-स्त्री भक्तिसे इस व्रतको करते हुए मेरा पूजन करेंगे और यथाविधि पारण करेंगे, वे जन्म-जन्ममें सब प्रकारके क्लेशोंसे मुक्त हो जायेंगे और तुम्हारे समान ही कल्याणके भाजन हो जायेंगे।’ (अध्याय १०४-१०५)



### अनन्तव्रत-माहात्म्यमें कार्तवीर्यके आविर्भावका वृत्तान्त

**राजा युधिष्ठिरने कहा—**भगवन् ! भक्तिपूर्वक नारायणकी आराधना करनेसे सभी मनोवाञ्छित फल प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु स्त्री-पुरुषोंके लिये संतानहीन होनेसे अधिक कोई दुःख और शोक नहीं है, परन्तु कुमुदता तो और भी महान् दुःखका कारण है। योग्य संतान सब सुखोंका हेतु है। जगद्में वे धन्य हैं, जो सर्वगुणसम्पन्न, आरोग्य, बलवान्, धर्मज्ञ,

शक्तवैद्य, दीन-अनाथोंके आश्रय, भाग्यवान्, हृदयको आनन्द देनेवाले और दीर्घायु पुत्र प्राप्त करते हैं। प्रभो ! मैं ऐसा व्रत सुनना चाहता हूँ कि जिसके करनेसे ऐसे शुभ लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न हो।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! इस सम्बन्धमें एक प्रार्थन इतिहास प्रसिद्ध है। हैहयवंशमें माहिष्मती

(महेश्वर) नगरीमें कृतवीर्य नामका एक महान् राजा हुआ। उसकी एक हजार रानियोंमें प्रधान तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न शीलधना नामकी एक रानी थी। उसने एक दिन पुत्र-प्राप्तिके लिये ब्राह्मणादिनी मैत्रेयीसे पूजा। मैत्रेयीने उसके श्रेष्ठ अनन्तव्रतका उपदेश दिया और कहा— 'शीलधने ! स्त्री या पुरुष जो कोई भी भगवान् जनार्दनकी आराधना करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। मार्गशीर्ष मासमें जिस दिन मृगशीरा नक्षत्र हो उस दिन स्नान कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदिसे अनन्त भगवान्‌के वाम चरणका पूजन करे और प्रार्थना कर एकग्रचित्त हो बारम्बार प्रणम कर ब्राह्मणको दक्षिणा दे। रात्रिके समय तैल-क्षारवर्जित भोजन करे। इसी विधिसे पौष मासमें पुष्प नक्षत्रमें भगवान्‌के बायें कटिप्रदेशका पूजन करे। माघ मासमें मघा नक्षत्रमें भगवान्‌की बायीं भुजाका पूजन करे। फाल्गुनमें फाल्गुनी नक्षत्रमें बायें स्कन्धका पूजन करे। इन चार महीनोंमें गोमूत्रका प्राशन करे और सुवर्णसहित तिल ब्राह्मणको दान दे।

चैत्रमें चित्र नक्षत्रमें भगवान्‌के दाहिने कन्धेका पूजन करे, वैशाखमें विशाखा नक्षत्रमें दाहिनी भुजाका पूजन करे, ज्येष्ठमें ज्येष्ठा नक्षत्रमें दाहिने कटिप्रदेशका पूजन करे। इसी प्रकार आषाढ़ मासमें आषाढ़ा नक्षत्रमें दाहिने पैरका पूजन करे। इन चार महीनोंमें पञ्चगव्यका प्राशन करे। ब्राह्मणको सुवर्ण-दान दे और रात्रिके भोजन करे।

श्रावण मासमें श्रवण नक्षत्रमें भगवान् विष्णुके दोनों चरणोंका पूजन करे। भाद्रपद मासमें उत्तराषाढपद नक्षत्रमें गुह्य-स्थानका पूजन करे। आश्विनमें अश्विनी नक्षत्रमें हृदयका पूजन करे और कार्तिक मासमें कृत्तिका नक्षत्रमें अनन्त-भगवान्‌के सिरका पूजन करे। इन चार महीनोंमें धृतका प्राशन करे और धृत ही ब्राह्मणको दान दे।

मार्गशीर्ष आदि प्रथम चार मासोंमें धृतसे, द्वितीय चैत्र आदि चार मासोंमें शीलधन्यसे और तृतीय श्रावण आदि चार मासोंमें अनन्तभगवान्‌की प्रीतिके लिये दुग्धसे हवन करे। हविष्यान्नका भोजन करना सभी मासोंमें प्रशस्त मान्य गया है। इस प्रकार बारह महीनोंमें तीन पारणा कर वर्षिक अन्तमें सुवर्णकी अनन्तभगवान्‌की मूर्ति और चाँदीके हल-मूसल बन्धये। बादमें मूर्तिको ताम्रपीठपर स्थापित कर दोनों ओर

हल, मूसल रखकर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन करे। नक्षत्र, देवता, मास, संवत्सर और नक्षत्रोंके अधिपति चन्द्रमाका भी विधिपूर्वक पूजन करे। अनन्तर पुण्यवेला, धर्मत्र, शान्तप्रिय ब्राह्मणका वस्त्र-आभूषण आदिसे पूजन कर यह सब सामग्री उसे अर्पण कर दे और 'अनन्तः प्रीयताम्' यह वाक्य कहे। पीछे अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन, दक्षिणा आदि देकर संतुष्ट करे। इस विधिसे जो इस अनन्त-व्रतको सम्पन्न करता है, वह सभी अभीष्ट फलेंको प्राप्त करता है। शीलधने ! यदि तुम उत्तम पुत्रकी इच्छा रखती हो तो विधिपूर्वक ब्रह्मसे इस अनन्तव्रतको करो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! इस प्रकार मैत्रेयीसे उपदेश प्राप्त कर शीलधना भक्तिपूर्वक व्रत करने लगी। व्रतके प्रभावसे भगवान् अनन्त संतुष्ट हुए और उन्होंने उसे एक श्रेष्ठ पुत्र प्रदान किया। पुत्रके जन्म होते ही आकाश निर्मल हो गया। आनन्ददायक वायु प्रवाहित होने लगी। देवगण दुन्दुभि बजाने लगे। पुष्पवृष्टि होने लगी, सारे जगत्में मङ्गल होने लगा। गन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। सभी लोगोका मन धर्ममें आसक्त हो गया। राजा कृतवीर्यने अपने पुत्रका नाम अर्जुन रखा। कृतवीर्यका पुत्र होनेसे वही अर्जुन कर्तवीर्य कहलया। कर्तवीर्यार्जुनने कठिन तप किया और विष्णुभगवान्‌के अवतार श्रीदत्तात्रेयजीकी आराधना की। भगवान् दत्तात्रेयने यह वर दिया कि 'अर्जुन ! तुम चक्रवर्ती सम्राट् होओगे। जो व्यक्ति सायंकाल और प्रातः 'नमोऽस्तु कर्तवीर्याय' यह वाक्य उच्चारण करेगा, उसे प्रसवपर तिल-दानका पुण्य प्राप्त होगा और जो तुम्हारा स्मरण करेगा, उन पुरुषोंका द्वय कभी नष्ट नहीं होगा।' भगवान्‌से वर प्राप्त कर राजा कर्तवीर्य धर्मपूर्वक सप्तशीपा वसुमतीका पालन करने लगे। उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ सम्पन्न किये और शत्रुओंपर विजय प्राप्त की। इस तरह रानी शीलधनाने अनन्तव्रतके प्रभावसे अति उत्तम पुत्र प्राप्त किया, पिताको पुत्रजनित कोई भी दुःख नहीं हुआ। जो पुरुष अथवा स्त्री इस कर्तवीर्यके जन्मको श्रवण करते हैं, वे सात जन्मपर्यन्त संतानका दुःख प्राप्त नहीं करते। जो इस अनन्त-व्रतको भक्तिसे करता है, वह उत्तम संतान और ऐश्वर्यको प्राप्त करता है।

### मास-नक्षत्र-व्रतके माहात्म्यमें साम्भरायणीकी कथा

राजा युधिष्ठिरने कहा—प्रभो ! ऐश्वर्य आदिके प्राप्त न होनेसे इतना कष्ट नहीं होता, जितना प्राप्त होकर नष्ट हो जानेसे होता है। इसलिये आप ऐसा कोई व्रत बतायें, जिसके करनेसे ऐश्वर्य-भ्रंश और इष्ट-वियोग न हो।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! यह बड़ा भारी दुःख है कि प्राप्त हुए सुखका फिर नाश हो जाता है। इसके लिये श्रेष्ठ पुरुषोंको चाहिये कि वे बारह मासोंके बारह नक्षत्रोंमें भगवान् अच्युतकी विविध उपचारोंसे पूजा करें। इस नक्षत्र-व्रतको प्रथम कार्तिक मासकी कृतिकामें करना चाहिये। इसी प्रकार मार्गशीर्ष मासके मृगशिरा नक्षत्रमें, पौष मासके पुष्य नक्षत्रमें तथा माघ मासके मघा नक्षत्रमें करना चाहिये। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ—इन चार महीनोंमें शिवजीका भोग लगाये और वही ब्राह्मणको भोजन भी कराये। फाल्गुन आदि चार महीनोंके नक्षत्रोंमें संवाय (गोमिया) या नैवेद्य लगाये और आपाङ्ग आदि चार महीनोंके नक्षत्रोंमें पायसका नैवेद्य लगाये। पञ्चगव्यका प्राशन करें और भक्तियोंसे नारायणका अर्चन कर इस प्रकार प्रार्थना करें—

नमो नमस्तेऽच्युत ये ह्य्योऽस्तु पापस्य वृद्धिं समुपैतु पुण्यम् ।  
ऐश्वर्यविनाति तथाऽक्षयं मे ह्यं यं मा संततिरभ्युपैतु ॥  
यथाच्युतस्त्वं परतः परमात् स ब्रह्मभूतः परतः परात्मा ।  
तथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं त्वं हरस्य पापं यं तवाग्रमेव ॥

अच्युतानन गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम् ।

तदक्षयममेयात्मन् कुरुष्व पुण्योत्तम ॥

(उत्तरार्ध १०७। १२—१४)

‘अच्युत ! आपके बार-बार नमस्कार है। मेरे पापोंका नाश हो जाय, पुण्यकी वृद्धि हो, मेरे ऐश्वर्य, वित्त आदि अक्षय हों तथा मेरी संतति कभी नष्ट न हो। जिस प्रकारसे आप परसे परे ब्रह्मभूत और उससे भी परे अच्युत परमात्मा हैं, उसी प्रकार आप मुझे अच्युत कर दें। अग्रमेव ! आप मेरे पापोंको नष्ट कर दें। पुरुषोत्तम ! अच्युत, अनन्त, गोविन्द अमेयात्मन् ! मेरी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करें, मेरे ऊपर आप प्रसन्न हों।’

अनन्तर रात्रिके समय भगवान्का प्रसन्न ग्रहण करें। वर्ष पूरा होनेपर जब भगवान् अच्युत जग जायें, तब घृतपूर्ण

ताम्रपात्र और दक्षिणा ब्राह्मणको देकर ‘अच्युतः प्रीयताम्’ यह वाक्य कहे। इस प्रकार सात वर्षतक नक्षत्रव्रत करके सुवर्णकी अच्युतकी प्रतिमा बनाकर स्थापित करें और उसके सामने भगवान्की परम भक्त और पतिव्रता साम्भरायणी ब्राह्मणीकी चर्दिके मूर्ति बनाकर स्थापित करें। फिर उन दोनोंकी गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे पूजाकर क्षमा-प्रार्थना करें और सब सामग्री ब्राह्मणको दान कर दें। इस विधिसे जो ब्रह्मपूर्वक व्रत करता है और भगवान् अच्युतका पूजन करता है, उसके धन, संतति, ऐश्वर्य आदिका कभी क्षय नहीं होता। उसकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। अतः मनुष्यको चाहिये कि सर्वथा अक्षय होनेके लिये इस मास-नक्षत्र-व्रतका पालन करे।

**युधिष्ठिरने पूछा—**भगवान् ! आपने साम्भरायणीकी प्रतिमा बनाकर पूजन करनेको कहा है, ये साम्भरायणी देवी कौन हैं ? आप इसे बतलायें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! ऐसा सुना जाता है कि स्वर्गमें साम्भरायणी नामकी एक तपोधना कठिन व्रतोंका आचरण करनेवाली प्रख्यात सिद्धा नरी थी, जो देवताओंकी भी ईश्वरोंका समुपासन कर देती थी। एक समय देवराज इन्द्रने देवगुरु बृहस्पतिसे पूछा—‘भगवान् ! हमारे पहले जितने इन्द्र हो गये हैं, उनका क्या आचरण और चरित्र था, आप कृपाकर इसका वर्णन कीजिये।’

**देवगुरु बृहस्पति बोले—**‘देवेन्द्र ! सब इन्द्रोंका वृत्तान्त तो मुझे नहीं मालूम, केवल अपने समयमें हुए इन्द्रोंके विषयमें मुझे जानकारी है।’ इन्द्रने कहा—‘गुरु ! आपके बिना हम यह वृत्तान्त किससे पूछें।’ बृहस्पति कुछ काल विचारकर कहने लगे—‘पुरन्दर ! इस विषयको तपस्विनी धर्मज्ञा साम्भरायणी देवीसे ही पूछो।’ यह सुनकर बृहस्पतिने साथ लेकर देवराज इन्द्र साम्भरायणीके पास गये। साम्भरायणीने बड़े सत्कारसे उनको बैठाया और अर्घ्यादिसे पूजन कर विनम्रपूर्वक आगमनका प्रयोजन पूछा। इसपर बृहस्पतिजी बोले—‘साम्भरायणी ! देवराज इन्द्रको प्राचीन वृत्तान्त सुननेका बड़ा कौतूहल है। यदि आप विगत इन्द्रोंका चरित्र जानती हो तो उसे बतायें।’



**साम्भरायणी बोली—**‘देवगुरे ! जितने इन्द्र हो चुके हैं, सबका वृत्तान्त मैं अच्छी तरह जानती हूँ। मैंने बहुत-से मनुओं, देवसृष्टियों और सप्तर्षियोंको देखा है। मनुष्योंको भी जानती हूँ और सब मन्वन्तरोंका चरित्र मुझे ज्ञात है। जो आप पूछें, वही मैं बताऊँगी। साम्भरायणीका यह वचन सुनकर देवराज इन्द्र और देवगुरु बृहस्पतिने स्वायम्भुव, स्वरोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष आदि मनुओं, मन्वन्तरों और व्यतीत इन्द्रोंका वृत्तान्त उससे पूछा। साम्भरायणीने सम्पूर्ण वृत्तान्तोंका यथावत् वर्णन किया। राजन् ! उसने एक अत्यन्त आश्चर्यकी बात यह बतलायी कि पूर्वकलमें शंभुकर्ण नामका एक बड़ा प्रतापी दैत्य हुआ। वह लोकपालोंको जीतकर स्वर्गमें इन्द्रको जीतने आया और निर्भय हो इन्द्रके भवनमें प्रविष्ट हो गया। शंभुकर्णको देखकर इन्द्र भयभीत होकर छिप गये और वह इन्द्रके आसनपर बैठ गया। उसी समय देवताओंके साथ विष्णु भी वहाँ आये। भगवान्को देखकर शंभुकर्ण अत्यन्त प्रसन्न हो गया और उसने बड़े खेहसे भगवान्का आलिङ्गन किया। भगवान् उसकी निवृत्तसे समझ रहे थे, अतः उन्होंने भी उसका आलिङ्गन कर ऐसा निर्वीहान किया कि उसके सब अस्थिपंजर चूर-चूर हो गये और वह घोर शब्द करता हुआ मृत्युको प्राप्त हो गया। दैत्यको मरा जानकर इन्द्र भी उपस्थित

हो गये और विष्णुभगवान्की स्तुति करने लगे।

**साम्भरायणीने पुनः कहा—**देवराज ! यह वृत्तान्त मैंने अपने नेत्रोंसे देखा था।

**इन्द्रने साम्भरायणीसे पूछा—**देवि ! इतने प्राचीन वृत्तान्तको आप कैसे जानती हैं ?

**साम्भरायणीने कहा—**देवेन्द्र ! स्वर्गका कोई ऐसा वृत्तान्त नहीं है, जो मैं न जानती होऊँ।

**इन्द्रने पूछा—**धर्मज्ञ ! आपने ऐसा कौन-सा सत्कर्म किया है, जिसके प्रभावसे आपको अक्षय स्वर्ग प्राप्त हुआ ?

**साम्भरायणी बोली—**मैंने प्रतिमास मास-नक्षत्रोंमें सप्त वर्षपूर्वक भगवान् अभ्युतका विधिवात् पूजन और उपवास किया है। यह सब उसी पुण्य-कर्मका फल है। जो पुरुष अक्षय स्वर्गवास, इन्द्रपद, ऐश्वर्य, संतति आदिकी इच्छा करे, उसे अवश्य ही भगवान् विष्णुकी आराधना करनी चाहिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पदार्थ भगवान् विष्णुकी आराधनासे प्राप्त होते हैं। इतना सुनकर देवगुरु बृहस्पति और देवराज इन्द्र साम्भरायणीपर बहुत प्रसन्न हुए और दोनों भक्तिपूर्वक उसके द्वारा बताये गये मास-नक्षत्र-व्रतका पालन करने लगे।

(अध्याय १०७)



### वैष्णव एवं शैव नक्षत्रपुरुष-व्रतोंका विधान

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**यदुराज ! पुरुष और स्त्रियोंको उत्तम रूप किस कर्मके करनेसे प्राप्त होता है ? आप सर्वाङ्गसुन्दर श्रेष्ठ रूपकी प्राप्तिका उपाय बताइये।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! यही बात अरुन्धतीने वसिष्ठजीसे पूछी थी और महर्षि वसिष्ठने उनसे कहा था— ‘प्रिये ! विष्णु भगवान्की बिना आराधना और पूजन किये उत्तम रूप प्राप्त नहीं हो सकता। जो पुरुष अथवा स्त्री उत्तम रूप, ऐश्वर्य और संतानकी अभिलषा करे, उसे नक्षत्रपुरुषरूप भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये।’ इसपर अरुन्धतीने नक्षत्रपुरुषव्रतका विधान पूछा। वसिष्ठजीने कहा— ‘प्रिये ! चैत्र माससे लेकर भगवान्के पद आदि अङ्गोंका उपवासपूर्वक पूजन करे। सान्निधसे पवित्र होकर नक्षत्रपुरुषरूपी भगवान् विष्णुकी प्रतिमा बनाकर उनके पदसे सं० भ० पु० अं० १३—

घिरतकके अङ्गोंका इस विधिसे पूजन करे। मूल नक्षत्रमें दोनों पैर, रोहिणी नक्षत्रमें दोनों जंघा, अश्विनीमें दोनों घुटनों, आषाढ़में दोनों ऊरुओं, दोनों फाल्गुनीमें गुहास्थान, कृतिकामें कटिप्रदेश, दोनों भाद्रपदाओंमें पार्श्वभाग और टखना, रेवतीमें दोनों कुक्षि, अनुराधामें वक्षःस्थल, धनिष्ठामें पीठ, विशाखामें दोनों भुजाएँ, हस्तमें दोनों हाथ, पुनर्वसुमें अंगुली, आश्लेषामें नख, ज्येष्ठामें प्रोक्ता, श्रवणमें कर्ण, पुष्यमें मुख, स्वातीमें दाँत, शतभिषामें मुक, मघामें नासिका, मृगशिरामें नेत्र, चित्रामें ललाट, भरणीमें सिर और आर्द्रामें केशोंका पूजन करे। उपवासके दिन तैलाभ्यङ्ग न करे। नक्षत्रके देवताओं और नक्षत्रराज चन्द्रमाका भी प्रति नक्षत्रमें पूजन करे और विद्वान् ब्राह्मणको भोजन कराये। यदि व्रतमें अशुचि आदि हो जाय तो दूसरे नक्षत्रमें उपवास कर पूजन करे। इस प्रकार माघ

मासमें व्रत पूरा हो जानेपर उद्घाटन करे। अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णका नक्षत्रपुरुष बनाकर उसे अलंकृत करे, एक उत्तम शय्यापर प्रतिमा स्थापित करे और ब्राह्मण-दम्पतिको शय्यापर बैठाकर वस्त्राभूषण आदिसे उनका पूजन कर सप्तधान्य, सप्तत्वा गौ, छतरी, जूत, घृतपात्र और दक्षिणासहित वह नक्षत्रपुरुषकी प्रतिमा उन्हें दान कर दे। श्रद्धापूर्वक इस व्रतके करनेसे सर्वज्ञसुन्दर रूप, मन्की प्रसन्नता, आरोग्य, उत्तम संतान, मधुर कण्ठी और जन्म-जन्मान्तरतक अक्षय्य ऐश्वर्य प्राप्त होता है और सभी पाप निवृत्त हो जाते हैं। इतनी कथा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—‘महाराज। इस प्रकार नक्षत्रपुरुष-व्रतका विधान ऋषिष्ठजीने अरुन्धतीको बतलाया। वही मैं आपको सुनाया। जो इस विधिसे नक्षत्ररूप भगवान्का पूजन करते हैं, वे अवश्य ही उत्तम रूप पाते हैं।’

**राजा युधिष्ठिरने पुनः पूछा—**भगवन्! शिवभक्तोंके कल्याणके लिये आप शैवनक्षत्रपुरुष-व्रतका विधान बताये।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज। शैवनक्षत्र-पुरुष-व्रतके दिन भगवान् शंकरके अङ्गोष्ठा पूजन और उपवास अथवा नक्तव्रत करना चाहिये। फलानुग मासके शुक्ल पक्षमें जब हस्त नक्षत्र हो, उस दिनसे शैवनक्षत्रपुरुष-व्रतका नियम ग्रहण करना चाहिये और रातमें भगवान् शिवका पूजन करना

चाहिये। हस्त आदि सत्ताईस नक्षत्रोंमें भगवान् शंकरके सत्ताईस नामोंसे उनके चरणसे लेकर सिरतककी क्रमशः अङ्ग-पूजा करने चाहिये। रात्रिके समय तैल-क्षारहित भोजन करे। प्रतिनक्षत्रमें सेरभर शालि-चावल और घृतपात्र ब्राह्मणको प्रदान करे। दो नक्षत्र एक दिन हो जायें तो दो अङ्गोष्ठा दो नामोंसे एक ही दिन पूजन करे। इस प्रकार व्रतकर चरणोंमें ब्राह्मणोंको भोजन, दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। सुवर्णकी शिव-पार्वतीकी प्रतिमा बनाकर उसे उत्तम शय्यापर स्थापित करे। बादमें सभी उपचारोंसे पूजनकर कपिल गौ, बर्तन, छत्र, चामर, दर्पण, जूत, वस्त्र, आभूषण, अनुलेपन आदिंसहित वह प्रतिमा ब्राह्मणको निवेदित कर दे। बादमें प्रदक्षिणा कर विसर्जन करे और शय्या, गौ आदि सब सम्पत्ति ब्राह्मणके घर पहुँचा दे। महाराज। दुःशूल, दाम्भिक, कुलाहिक, निन्दक, लोभी आदिको यह व्रत नहीं बताना चाहिये। शक्त-सम्पन्न, सद्गुणी, शिवभक्त इस व्रतके अधिकारी हैं। इस व्रतके करनेसे महापातक भी निवृत्त हो जाते हैं। जो स्त्री पतिकी आज्ञा प्राप्त कर इस व्रतको सम्पन्न करती है, उसे कभी इष्ट-वियोग नहीं होता। जो इस व्रतके माहात्म्यको पढ़ता है अथवा श्रवण करता है उसके भी पितरोंका नरकसे उद्धार हो जाता है।

(अध्याय १०८-१०९)

### भग्नव्रतकी प्रायश्चित्त-विधि तथा पण्यस्त्री-व्रत

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन्। यदि मनुष्य नक्षत्रपुरुष-व्रतको ग्रहण कर उसे न पूरा सके तो किस कर्मके द्वारा वह क्षीर्ण (कृत) माना जाता है, इसे बतलाये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**राजन्। यह अत्यन्त रहस्यपूर्ण बात है। आपके आग्रहसे मैं इसे बतला रहा हूँ। अनेक प्रकारके उपद्रव, मद, मोह या अस्वस्थानी आदिमें यदि व्रत-भग्न हो जायें तो उनकी पूर्णताके लिये यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतके करनेसे क्षीणित-व्रत पूर्ण फल देनेवाले हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। जिस देवी-देवताका व्रत भग्न हो जाय, उसकी सुवर्ण अथवा चाँदीकी प्रतिमा बनाकर उस व्रतके दिन ब्राह्मणको बुलाकर प्रतिमाको पञ्चामृतसे स्नान कराये, बादमें जलपूर्ण कलशके ऊपर प्रतिमाको प्रतिष्ठितकर गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, वस्त्र, आभूषण तथा नैवेद्य

आदिसे उनका पूजन करे। अनन्तर देवताके उद्देश्यसे नममन्त्र (ॐ अमुक देवाय नमः) द्वारा अर्घ्य प्रदान करे तथा फिर व्रतकी पूर्णता एवं व्रतभङ्ग-दोषकी निवृत्तिके लिये इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे और भगवान्की शरण ग्रहण करे—

तपसव्रतस्य दीनस्य प्रायश्चित्तकृताङ्गुलेः ।

शरणं च प्रपन्नस्य कुरुष्वाद्य दयां प्रभो ॥

परम धर्मधीतस्य भग्नखण्डव्रतस्य च ।

कुरु प्रसादं सम्पूर्णं व्रतं सम्पूर्णवत्सु मे ॥

तपश्छिद्रं व्रतच्छिद्रं यच्छिद्रं भग्नके व्रते ।

तव प्रसादादेवेश सर्वपश्छिन्नमस्तु नः ॥

(उत्तरपर्व ११०।१३-१५)

तात्पर्य यह है कि ‘प्रभो! मैं आपकी शरण हूँ, मुझपर

आप दया करें। किसी भी प्रकारसे मेरे द्वारा किये गये व्रत, तप इत्यादि कर्ममें जो कोई भी त्रुटि, अपराध एवं व्युत्ति हो गयी हो, हे देवदेवेश ! आपके अनुग्रहसे वह सब दोष दूर हो जायें और मेरा व्रत पूर्ण हो जाय। आपको नमस्कार है।'

तदनन्तर दिक्पालोंको अर्घ्य प्रदान कर मुख्य देवताकी अङ्ग-पूजा करें और अन्तमें फिर प्रार्थना करें। ब्राह्मणका पूजन करें और ब्राह्मण भी व्रतकी पूर्णताके लिये इस प्रकार आशीर्वाद प्रदान करें—

वाक्शमपूर्ण मनः पूर्ण पूर्ण कायव्रतेन ते ।  
सम्पूर्णस्य प्रसादेन भव पूर्णमनोरथः ॥  
ब्राह्मणा यत्प्रभाषन्ते ह्यनुमोदन्ति देवताः ।  
सर्वदेवमया विप्रा नैतद्वचनमन्यथा ॥  
जलधिः क्षारता नीतः पावकः सर्वभक्षताम् ।  
सहस्रनेत्रः शक्रोऽपि कृतो विप्रैर्महाप्रथिभिः ॥  
ब्राह्मणानां तु वचनान् ब्रह्महत्या प्रणश्यति ।  
अश्वमेधफले साधे प्राप्यते नात्र संशयः ॥  
व्यासबालमीकिलचनान् ब्राह्मणवचनान् गर्गनीलम-  
पराशरधौम्याङ्गिरसवसिष्ठानादादिभुन्विचनान् सम्पूर्णं भवतु  
ते व्रतम् ॥

(उत्तरपर्व ११०।२३—२७)



### वृत्ताक-त्याग एवं ग्रह-नक्षत्रव्रतकी विधि

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! अब मैं वृत्ताक (वैगन) के त्यागकी विधि बता रहा हूँ। व्रतीको चाहिये कि एक वर्ष, छः मास अथवा तीन मास वृत्ताकका त्याग कर उद्यापन करें। उसके बाद संकल्पपूर्वक भरणी अर्धया मघा नक्षत्रमें उपवासकर एक स्थण्डिल बनाकर उसपर अक्षत-पुष्पोंसे यमराजका तथा उनके परिकरोंका आवाहनकर गन्ध, पुष्प, नैवेद्य आदि उपचारोंसे यम, काल, नील, चित्रगुप्त, वैवस्वत, मृत्यु तथा परमेश्वरी—इन पूषक्-पूषक् नामोंसे विधिपूर्वक पूजन करें। तदनन्तर अग्निस्थापन कर तिल और घीसे इन्हीं नाम-मन्त्रोंके द्वारा हवन करें। तदनन्तर स्निष्टकृत् एवं प्रायश्चित्त होम करें। आभूषण, वस्त्र, छाता, जूता, काला कम्बल, काला बैल, काली गाय और दक्षिणाके साथ सोनेका बना हुआ वृत्ताक ब्राह्मणको दान कर दें और अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मण-भोजन कराये। ऐसा करनेसे पौण्डरीक-यज्ञका

यजमान भी ब्राह्मणको किटा कर सब सामग्री उसके घर भेज दें। पीछे पञ्चयज्ञकर भोजन करें। इस सम्पूर्ण व्रतको जो एक बार भी भक्तिसे करता है, वह खण्डित-व्रतका सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है और व्रतभंगके पापसे मुक्त हो जाता है। इस व्रतको जो करता है, वह धन, रूप, आरोग्य, कीर्ति आदि प्राप्त कर सौ वर्षपर्यन्त भूमिपर सुख भोगकर स्वर्ग प्राप्त करता है और अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है। महाराज ! प्रायश्चित्तरूप इस सम्पूर्ण व्रतको प्रसन्न हो महर्षि गर्गजीने मुझे बताया था और बाल्यावस्थामें मैंने भी इसे किया था। इसीलिये राजन् ! अब भी इस व्रतको करें, जिससे जन्मान्तरोंमें भी किये खण्डित व्रत पूर्ण हो जायें।

राजन् ! इसी प्रकार एक अन्य पाण्यस्त्री-व्रत है, जो रविवारको हस्त, पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र आनेपर प्रारम्भ किया जाता है तथा उसमें विधिपूर्वक विष्णुस्वरूप कामदेवका पूजन किया जाता है, अन्तमें सभी उपकरणोंसे युक्त शय्या तथा विष्णुप्रतिमा ब्राह्मणको दान कर दी जाती है। व्रती स्त्रीको चाहिये कि वह सदाचारके नियमोंका पालन करती रहे। इस व्रतके करनेसे पाण्डित्यों-जैसी अधम स्त्रियोंका भी उद्धार हो जाता है। (अध्याय ११०-१११)

फल प्राप्त होता है। साथ ही व्रतीको सात जन्मतक यमका दर्शन नहीं करना पड़ता और वह दीर्घ समयतक स्वर्गमें सम्मग्न होकर निवास करता है।

**भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—**महाराज ! अब मैं ग्रह-नक्षत्र-व्रतकी विधि बतलाता हूँ, जिसके करनेसे सभी क्रूर ग्रह शान्त हो जाते हैं और लक्ष्मी, धृति, तुष्टि तथा पुष्टिकी प्राप्ति होती है। जिस रविवारको हस्त नक्षत्र हो उस दिन भगवान् सूर्यका पूजन कर नक्तव्रत करना चाहिये। इस नक्तव्रतको सात रविवारतक भक्तिपूर्वक करके अन्तमें भगवान् सूर्यकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर ताम्रपत्रमें स्थापित करें। फिर उसे घीसे स्नान कराकर रक्त चन्दन, रक्त पुष्प, रक्त वस्त्र, धूप, दीप आदिसे पूजनकर लड्डूका भोग लगाये। जूता, छाता, दी लाल वस्त्र और दक्षिणाके साथ वह प्रतिमा ब्राह्मणको दें। इस व्रतको करनेसे आरोग्य, सम्पत्ति और संतानकी प्राप्ति होती है।

विश्व नक्षत्रसे युक्त सोमवारसे आरम्भ कर सात सोमवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें चन्द्रमाकी चाँदीकी प्रतिमा बनाकर, चाँदी अथवा कसिके पात्रमें स्थापित कर श्वेत पुष्प, श्वेत वस्त्र आदिसे उनका पूजन करे। दध्योदनका भोग लगाकर जूता, छाता तथा दक्षिणासहित वह मूर्ति ब्राह्मणको प्रदान करे। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये, इससे चन्द्रमा प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसन्न होनेसे दूसरे सभी ग्रह प्रसन्न हो जाते हैं।

स्वाती नक्षत्रसे युक्त भौमवारसे आरम्भ कर सात भौमवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी भौमकी प्रतिमा बनाकर ताम्रपात्रमें स्थापित कर रक्त चन्दन, रक्त वस्त्र आदिसे पूजनकर धीयुक्त करारका भोग लगाकर सब सामग्री ब्राह्मणको दे। इसी प्रकार विशाखायुक्त बुधवारको बुधका पूजन कर उद्यानमें स्वर्णमयी बुधकी प्रतिमा ब्राह्मणको प्रदान कर दे। अनुराधा नक्षत्रसे युक्त बृहस्पतिवारके दिनसे सात बृहस्पतिवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी देवगुरु बृहस्पतिकी मूर्ति बनाकर सुवर्णपात्रमें स्थापित करे लदन-तार गन्ध, पीत पुष्प, पीत वस्त्र, यज्ञोपवीत आदिसे उनकी पूजा

करके खाँड़का भोग लगाकर सब सामग्री एवं मूर्ति ब्राह्मणको प्रदान कर दे। इसी प्रकार ज्येष्ठायुक्त शुक्रवारको व्रतका आरम्भ कर सात शुक्रवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी शुक्रकी प्रतिमा बनाकर चाँदी अथवा बौंसके पात्रमें स्थापित कर श्वेत चन्दन, श्वेत वस्त्र आदिसे पूजन कर धी और पायसका भोग लगाये। सब पदार्थ एवं प्रतिमा ब्राह्मणको प्रदान करे।

इसी विधिसे मूल नक्षत्रयुक्त शनिवारसे आरम्भ कर सात शनिवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें शनि, राहु और केतुका पूजन करना चाहिये और तिल तथा घीसे ग्रहोंके नाम-मन्त्रोंसे हवन करके नवग्रहोंकी समिधाओंसे प्रत्येक ग्रहको क्रमसे एक सौ अष्ट अथवा अष्टाईस बार आहुति दे। शनैश्चर आदिकी प्रतिमा लौह अथवा सुवर्णकी बनाये। कृशरात्रका भोग लगाकर सब सामग्रीसहित वे प्रतिमाएँ ब्राह्मणको प्रदान कर दे। इससे सभी ग्रहोंकी पीड़ा शान्त हो जाती है। इस व्रतको विधिपूर्वक करनेसे कूर ग्रह भी सौम्य एवं अनुकूल हो जाते हैं और उसे शान्ति प्रदान करते हैं।

(अध्याय ११२-११३)



### शनैश्चर-व्रतके प्रसंगमें महामुनि पिप्पलादका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—एक बार त्रेतायुगमें अनावृष्टिके कारण भयंकर दुर्भिक्ष पड़ गया। उस घोर अकालमें कौशिकमुनि अपनी स्त्री तथा पुत्रोंके साथ अपना निवास-स्थान छोड़कर दूसरे प्रदेशमें निवास करने निकल पड़े। कुटुम्बका भरण-पोषण दुभर हो जानेके कारण बड़े कष्टसे उन्होंने अपने एक बालकको मार्गमें ही छोड़ दिया। वह बालक अकेला भूख-प्याससे तड़पता हुआ रोने लगा। उसे अकस्मात् एक पीपलका वृक्ष दिखायी पड़ा। उसके समीप ही एक बावड़ी भी थी। बालकने पीपलके फलोंको खाकर ठंडा जल पी लिया और अपनेको स्वस्थ पाकर वह वहाँ कठिन तपस्या करने लगा तथा नित्यप्रति पीपलके फलोंको खाकर समय व्यतीत करने लगा। अचानक वहाँ एक दिन देवर्षि नारद पधारे, उन्हें देखकर बालकने प्रणाम किया और आदरपूर्वक बैठाया। दयालु नारदजी उसकी अवस्था, विनय और नम्रताको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने बालकका मौखिकव्रत आदि सब संस्कार कर पद-क्रम-

रहस्यसहित वेदका अध्ययन कराया तथा साथ ही द्वादशाक्षर वैष्णवमन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का उपदेश दिया।

अब वह प्रतिदिन विष्णुभगवान्का ध्यान और मन्त्रका जप करने लगा। नारदजी भी वहाँ रहे। थोड़े समयमें ही बालकके तपसे संतुष्ट होकर भगवान् विष्णु गङ्गापर सवार हो वहाँ पहुँचे। देवर्षि नारदके वचनसे बालकने उन्हें पहचान लिया, तब उसने भगवान्में दृढ़ भक्तिकी माँग की। भगवान्ने प्रसन्न होकर ज्ञान और योगका उपदेश प्रदान किया और अपनेमें भक्तिकय आशीर्वाद देकर वे अन्तर्धान हो गये। भगवान्के उपदेशसे वह बालक महाज्ञानी महर्षि हो गया।

एक दिन बालकने नारदजीसे पूछा—‘महाराज! यह किस कर्मका फल है जो मुझे इतना कष्ट उठाना पड़ा। इतनी छोटी अवस्थामें भी मैं क्यों ग्रहोद्धार पीड़ित हो रहा हूँ। मेरे माता-पिताका कुछ भी पता नहीं, ये कहाँ हैं। फिर भी मैं अत्यन्त कष्टसे जी रहा हूँ। द्विजोत्तम! सौभाग्यवश आपने



दया करके मेरा संस्कार किया और मुझे ब्राह्मणत्व प्रदान किया।' नारदजी यह वचन सुनकर बोले—'बालक ! शनैश्चरग्रहने तुम्हें बहुत पीड़ा पहुँचायी और अब यह सम्पूर्ण देश उसके मन्दगतिसे चलनेके कारण उत्पीड़ित है। देखो, वह अभिमानी शनैश्चर ग्रह आकाशमें प्रज्वलित दिखायी पड़ रहा है।'

यह सुनकर बालक क्रोधसे अधिक समान उदीत हो उठा। उसने उग्र दृष्टिसे देखकर शनैश्चरको आकाशमें भूमिपर गिरा दिया। शनैश्चर एक पर्वतपर गिरे और उनका पैर टूट गया, जिससे वे पंगु हो गये। देवर्षि नारद भूमिपर गिरे हुए शनैश्चरको देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे नाच उठे। उन्होंने सभी देवताओंको बुलाया। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, अग्नि आदि देवता वहाँ आये और नारदजीने शनैश्चरकी दुर्गति सबको दिखायी।

**ब्रह्माजीने बालकसे कहा—**महाभाग ! तुमने पीपलके फल भक्षण कर कठिन तप किया है। अतः नारदजीने तुम्हारा पिप्पलाद<sup>१</sup> नाम उचित ही रखा है। तुम अबसे इसी नामसे संसारमें विख्यात होओगे। जो कोई भी शनिवारको तुम्हारा भक्तिभावसे पूजन करेगा, अथवा 'पिप्पलाद' इस नामका स्मरण करेगा, उन्हें सात वर्षतक शनिकी पीड़ा नहीं सहन करनी पड़ेगी और वे पुत्र-पौत्रसे युक्त होंगे। अब तुम शनैश्चरको पूर्ववत् आकाशमें स्थापित कर दो। क्योंकि इनका वस्तुतः कोई अपराध नहीं है। यहीकी पीड़ासे दुष्टकर्म करनेके लिये नैषेध निषेदन, हवन, नमस्कार आदि करना चाहिये। ग्रहोंका अन्याय नहीं करना चाहिये। पूजित होनेपर ये शक्ति प्रदान करते हैं<sup>२</sup>।

शनिकी ग्रहजन्य पीड़ाकी निवृत्तिके लिये शनिवारको स्वयं तैलअभ्यङ्ग करने ब्राह्मणोंको भी अभ्यङ्गके लिये तैल देना चाहिये। शनिकी सौह-प्रतिमा बनाकर तैलयुक्त सौह-प्राचमें

रखकर एक वर्षतक प्रति शनिवारको पूजन करनेके बाद कृष्ण पुष्प, दो कृष्ण वस्त्र, कसारा, तिल, भात आदिसे उनका पूजन कर कसरी गाय, काल कम्बल, तिलका तेल और दक्षिणासहित सब पदार्थ ब्राह्मणको प्रदान करना चाहिये। पूजन आदिमें शनिके इस मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये—

**ॐ नो देवीरधिष्ठय आपो भवन्तु पीतये । ॐ योरभि**

**खयन्तु नः ॥** (पञ्च ३६।१२)

रज्य यह हुए राजा नलको शनिदेवने स्वप्नमें अपने एक अर्धत-मन्त्रका उपदेश दिया था। उसी नाम-स्तुतिसे उन्हें पुनः राज्य उपलब्ध हुआ था। उस स्तुतिसे शनिकी प्रार्थना करनी चाहिये। सर्वकामप्रद वह स्तुति इस प्रकार है—

**कोई नीलाञ्जनप्रस्थ नीलवर्णसमस्तवम् ।**

**छायाभातर्षभसम्भृतं नमस्यामि शनैश्चरम् ॥**

**नमोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय**

**नीलारजोऽनुनमैधकाय ।**

**कुत्वा रहस्यं भवकायदृष्ट**

**फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र ॥**

**नमोऽस्तु प्रेतराजाय कृष्णदेहाय च नमः ।**

**शनैश्चराय कुराय शुद्धबुद्धिप्रदायिने ॥**

**य एभिर्नामभिः स्तौति तस्य तुष्टो भवाम्यहम् ।**

**यदीयं तु धर्मं तस्य स्वप्नोऽपि न भविष्यति ॥**

(उत्तरपर्व ११४।२९—४२)

जो भी व्यक्ति प्रत्येक शनिवारको एक वर्षतक इस व्रतको करता है और इस विधिसे उद्यापन करता है, उसे कभी शनिकी पीड़ा नहीं भोगनी पड़ेगी। यह कहकर ब्रह्माजी सभी देवताओंके साथ अपने परमशामको चले गये और पिप्पलादमुनिने भी ब्रह्मजीके आज्ञानुसार शनैश्चरको उनके स्थानपर प्रतिष्ठित कर दिया। महामुनि पिप्पलादने शनिग्रहकी

१-यहाँ यह कथा बड़ी सुन्दर है। इसके पढ़नेसे शनिकी पीड़ा भी उलट हो जाती है। ये यहाँ अथर्वण पिप्पलादसंहिताके द्रष्टा हैं। इनकी कथा प्रायः अनेक ज्ञात-माहात्म्य एवं स्कन्द आदि पुराणोंमें मिलती है। पर अन्तर यह है कि अन्यत्र सर्वत्र इनमें दधीचिब्रह्मिका पुत्र बताया गया है। बालके नाममें भी थोड़ा अन्तर है, कहीं प्रतिवेदीक और कहीं सुवर्दीक कम मिलता है, जो पौषके साथ सती हो गयी थीं। तब ये पीपलके छाय पालित हुए। सभी कथारें बड़ी पुष्पप्रद एवं शनि-पीड़ाको उलट करनेवाली हैं। अन्तर कल्पभेदका है, अतः संदेह नहीं करना चाहिये।

२-यन्मुक्षं शनैश्च शुक्लशुभफलप्रदः। हस्तशय्या प्रकृष्टो न भवति कदाचन ॥

बलिहोमनमस्करैः शनैश्च यच्छति पूजितः। अतोऽर्कमस्त दिवसे क्षानमभ्यङ्गपूर्वकम् ॥ (उत्तरपर्व ११४।२९-३०)

इसी भावके इलोक याज्ञवल्क्य आदि स्तुतिमें भी आये हैं।

इस प्रकार प्रार्थना की—

कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रेऽन्तको यमः ।

सौरिः शनैश्चरो मन्दः प्रीयतां मे प्रहोतमः ॥

(उत्तरार्क ११४।४७)

जो व्यक्ति शनैश्चरोपाख्यानको भक्तिपूर्वक सुनता है तथा उनकी लौह-प्रतिमा बनाकर तेलसे भरे हुए लौह-कलशमें रखकर ब्राह्मणको दक्षिणासहित दान देता है, उसको कभी भी उनकी पीड़ा नहीं होती। (अध्याय ११४)



### आदित्यवार नक्त-व्रत तथा संक्रान्ति-व्रतके उद्यापनकी विधि

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवान् गोविन्द ! आप कोई ऐसा व्रत बतलाइये, जो सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला, आरोग्यदायक और अनन्त फलप्रद हो।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**राजन् ! परब्रह्म विशालता जो परम सनातन धाम है, वह संसारमें सूर्य, अग्नि तथा चन्द्र—इन तीनोंमें विभक्त होकर स्थित है। बुद्धिचन्दन ! उस परमात्माकी आराधना कर मनुष्य क्या नहीं प्राप्त कर सकता ? इसलिये रविवारके दिन नक्तव्रत करना चाहिये। भगवान् सूर्यमें अनन्य भक्ति रखकर आदित्यवारको यह व्रत करना चाहिये। ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजाकर सायंकाल रक्तचन्दनसे एक द्वादशदल कमलकी रचना करे और उसके द्वादश दलोंमें सूर्य, दिवाकर, विवस्वान्, भग्न, वरुण, महेंद्र, आदित्य, शान्त, सूर्यके अश्व, यम, मार्तण्ड तथा रविकी स्थापना करे और उनका पूजन कर तिल, रक्तचन्दन, फल तथा अक्षतसे युक्त अर्घ्य प्रदान करे। अनन्तर विसर्जन कर दे। रात्रिमें भगवान् भास्करका स्मरण करता हुआ तैलरहित भोजन करे। व्रतके पूर्व दिन शनिवारको तैलश्रावण न करे। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त व्रत करके उद्यापन करे और यथाशक्ति गुह्यसे पूर्ण एक ताम्रपात्रमें स्वर्णकमल स्थापित करे तथा उसके ऊपर स्वर्णमयी भगवान् सूर्यकी द्विभुज प्रतिमा स्थापित करे, साथ ही एक सुवर्णमयी सखत्सा गी भी स्थापित करे। इनका पूजन कर विद्वान् ब्राह्मणको यह सब सामग्री निवेदित कर दे।

इस प्रकार जो स्त्री-पुरुष इस व्रतको वर्षभर सम्पन्न कर विधिपूर्वक उद्यापन करते हैं, वे नीरोग, धार्मिक, धन-धान्य, पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न हो जाते हैं और अन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त करते हैं।

**भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—**राजन् ! अब मैं संक्रान्तिके समय किये जानेवाले उद्यापनरूप अन्य व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो इस लोकमें समस्त कामनाओंके फलका

प्रदाता और परलोकमें अक्षय फलदायक है। सूर्यके उत्तरायण या दक्षिणावर्तके दिन अथवा विषुवयोगमें इस संक्रान्तिव्रतका आरम्भ करना चाहिये। इस व्रतमें संक्रान्तिके पहले दिन एक बार भोजन करके (रात्रिमें शयन करे।) संक्रान्तिके दिन श्रतःकाल टातुन करनेके पश्चात् तिलमिश्रित जलसे स्नान करना चाहिये। सूर्य-संक्रान्तिके दिन भूमिपर चन्दनसे कर्णिकरसहित अष्टदल कमलकी रचना करे और उसपर सूर्यका आवाहन करे। कर्णिकरमें 'सूर्याय नमः', पूर्वदलपर 'आदित्याय नमः', अग्निकोणस्थित दलपर 'सप्तार्धियाय नमः', दक्षिण दलपर 'ब्रह्मपञ्चानाय नमः', नैऋत्यकोणवाले दलपर 'सन्धिरे नमः', पश्चिमदलपर 'वसुताय नमः', वायव्यकोणस्थित दलपर 'सप्तसप्तथे नमः', उत्तरदलपर 'मार्तण्डाय नमः' और ईशानकोणवाले दलपर 'विष्णवे नमः'—इन मन्त्रोंसे सूर्यदेवको स्थापित कर उनकी बार-बार अर्चना करे। तत्पश्चात् केटीपर भी चन्दन, पुष्पमाला, फल और साध पदार्थोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये और अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। पुनः अपनी शक्तिके अनुसार सोनेका कमल बनाकर उसे धृतपूर्व पात्र और कलशके साथ ब्राह्मणको दान कर दे। तत्पश्चात् चन्दन और पुष्पयुक्त जलसे भूमिपर सूर्यदेवको अर्घ्य प्रदान करे (अर्घ्यका मानार्थ इस प्रकार है—) 'अनन्त ! आप ही विश्व हैं, विश्व आपका स्वरूप है, आप विश्वमें सर्वोच्च तेजस्वी, स्वयं उत्पन्न होनेवाले, धाता और स्रष्टा, सामवेद एवं यजुर्वेदके स्वामी हैं, आपके बारंबार नमस्कार है।' इस विधिसे मनुष्यको प्रत्येक मासमें सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये अथवा (यदि ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो) वर्षकी समस्तिके दिन यह सारा कार्य बारह बार करे (दोनोंका फल समान ही है)।

एक वर्ष व्यतीत होनेपर धृतमिश्रित खीरसे अग्नि और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भलीभाँति संतुष्ट करे और बारह गी एवं

रत्नसहित स्वर्णमय कमलके साथ कलशोंको दान कर दे। इसी प्रकार सोने, चाँदी अथवा तँबिकी शेषनागसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनाकर दान करना चाहिये। जो ऐसा करनेमें असमर्थ हो, वे आटेकी शेषसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनाकर स्वर्णनिर्मित सूर्यके साथ दान कर सकता है। जबतक इस मृत्युलोकमें महेन्द्र आदि देवगणों, हिमालय आदि पर्वतों और सतों समुद्रोंसे युक्त पृथ्वीका अस्तित्व है, तबतक स्वर्गलोकमें अश्विल गन्धर्वसमूह उस व्रतकी भर्त्सनाँति पूजा करते हैं।

पुण्य क्षीण होनेपर वह सृष्टिके आदिमें उत्तम कुल और शीलसे सम्पन्न होकर भूतलपर सतों द्वीपोंका अधीश्वर होता है। वह सुन्दर रूप और सुन्दर पत्नीसे युक्त होता है, बहुत-से पुत्र और भाई-बन्धु उसके चरणोंकी वन्दना करते हैं। इस प्रकार जो मनुष्य सूर्य-संक्रान्तिके इस पुण्यमयी अश्विल विधिके भक्तिपूर्वक पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेकी सम्मति देता है, वह भी इन्द्रलोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है। (अध्याय ११५-११६)



### भद्राका चरित्र एवं उसके व्रतकी विधि

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! लोकमें भद्रा विधि नामसे प्रसिद्ध है, वह कैसी है, कौन है, वह किसकी पुत्री है, उसका पूजन किस विधिसे किया जाता है ? कृपया आप बतानेका कष्ट करें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! भद्रा भगवान् सूर्यनारायणकी कन्या है। यह भगवान् सूर्यकी पत्नी छपासे उत्पन्न है और शनैश्चरकी सगी बहिन है। वह काले वर्ण, लम्बे केश, बड़े-बड़े दाँत और बहुत ही भयंकर रूपवाली है। जन्मते ही वह संसारका घास करनेके लिये दौड़ी, यज्ञोंमें विघ्न-बाधा पहुँचाने लगी और उसका तथा मङ्गल-यात्रा आदिमें उपद्रव करने लगी और पूरे जगत्को पीड़ा पहुँचाने लगी। उसके उच्छृङ्खल स्वाभावको देखकर भगवान् सूर्य अत्यन्त चिन्तित हो उठे और उन्होंने शीघ्र ही उसका विवाह करनेका विचार किया। जब जिस-जिस भी देवता, अमुर, किन्नर आदिसे सूर्यनारायणने विवाहका प्रस्ताव रखा, तब उस भयंकर कन्यासे कोई भी विवाह करनेको तैयार न हुआ। दुःखित हो सूर्यनारायणने अपनी कन्याके विवाहके लिये मण्डप बनवाया, पर उसने मण्डप-तोरण आदि सबको उखाड़कर फेंक दिया और सभी लोगोंको कष्ट देने लगी। सूर्यनारायणने सोचा कि इस दुष्टा, कुरूप, स्वेच्छाचारिणी कन्याका विवाह किसके साथ किया जाय। इसी समय प्रजाके दुःखको देखकर ब्रह्माजीने भी सूर्यके पास आकर उनकी कन्याद्वारा किये गये

दुष्कर्मोंको बतलाया। यह सुनकर सूर्यनारायणने कहा— 'ब्रह्मन् ! आप ही तो इस संसारके कर्ता तथा भर्ता हैं, फिर आप मुझसे ऐसा क्यों कह रहे हैं। जो भी आप उचित सम्झे वही करे।' सूर्यनारायणका ऐसा बचन सुनकर ब्रह्माजीने विष्टिके बुलाकर कहा— 'भद्रे ! जब, बालव, कौलव आदि कारणोंके अन्तमें तुम निवास करो और जो व्यक्ति यात्रा, प्रवेश, मङ्गल्य कृत्य, खेती, व्यापार, उद्योग आदि कार्य तुम्हारे समयमें करे, उन्हींमें तुम विघ्न करो। तीन दिनतक किसी प्रकारकी बाधा न डाले। चौथे दिनके आये भागमें देवता और अमुर तुम्हारी पूजा करेंगे। जो तुम्हारा आदर न करें उनका कार्य तुम ध्वस्त कर देना।' इस प्रकार विष्टिके उपदेश देकर ब्रह्माजी अपने धामको चले गये, इधर विष्टि भी देवता, दैत्य, मनुष्य सब प्राणियोंको कष्ट देती हुई घूमने लगी। महाराज ! इस तरहसे भद्राकी उत्पत्ति हुई और वह अति दुष्ट प्रकृतिकी है, इसलिये मङ्गलिक कार्योंमें उसका अवश्य त्याग करना चाहिये।

भद्रा पाँच घड़ी मुखमें, दो घड़ी कण्ठमें, ग्यारह घड़ी हृदयमें, चार घड़ी नाभिमें, पाँच घड़ी कटिमें और तीन घड़ी पुच्छमें स्थित रहती है। जब भद्रा मुखमें रहती है तब कार्यका नाश होता है, कण्ठमें धनका नाश, हृदयमें प्राणका नाश, नाभिमें कलह, कटिमें अर्थभंश होता है पर पुच्छमें निश्चितरूपसे विजय एवं कार्य-सिद्धि हो जाती है<sup>१</sup>।

१-मुखे तु षट्पदः पञ्च हे कण्ठे तु सप्त स्थिते। इदि कटिमे पञ्चैव निवेद्यस्तिस्रः पुच्छे जल्पकः। मुखे

चैकदश प्रोक्तव्यतस्तौ नाभिमण्डले ॥  
कार्यविकाराय प्रोक्तव्यं धननाशिने ॥

भद्राके बारह नाम हैं—(१) धन्या, (२) दधिमुखी, (३) भद्रा, (४) महामारी, (५) लगनना, (६) कालरात्रि, (७) महाह्रदा, (८) विष्टि, (९) कुलपुत्रिका, (१०) भैरवी, (११) महाकाली तथा (१२) अमुरक्षयकरी।

इन बारह नामोंका प्रातःकाल उठकर जो स्मरण करता है, उसे किसी भी व्याधिका भय नहीं होता। रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं। उसके कार्यमें कोई विघ्न नहीं होता। युद्धमें तथा राजकुलमें वह विजय प्राप्त करता है जो विधिपूर्वक नित्य विष्टिका पूजन करता है, निःसंदेह उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। अब मैं भद्राके व्रतकी विधि बता रहा हूँ—

राजन् ! जिस दिन भद्रा हो उस दिन उपवास करना चाहिये। यदि रात्रिके समय भद्रा हो तो दो दिनतक एकभुक्त व्रत करना चाहिये। एक प्रहरके बाद भद्रा हो तो तीन प्रहरतक उपवास करना चाहिये अथवा एकभुक्त रहना चाहिये। स्त्री अथवा पुरुष अतर्क दिन सुगन्ध आमलक लगाकर सर्वैषधि-युक्त जलसे स्नान करे अथवा नदी आदिर जाकर विधिपूर्वक स्नान करे। देवता एवं पितरोंका तर्पण तथा पूजन कर कुशकी भद्राकी मूर्ति बनाये और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे

उसकी पूजा करे। भद्राके बारह नामोंसे एक सौ आठ बार हवन करनेके बाद तिल और पायस ब्राह्मणको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर तिलमिश्रित कुशराशका भोजन करना चाहिये। फिर पूजनेके अन्तमें इस प्रकार प्रार्थना करने चाहिये—

छायासूर्यमुते देवि विष्टिगिष्टार्थदायिनि।

पूजितासि पद्माशक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव ॥

(उत्तरपर्व ११७। ३९)

इस प्रकार सत्रह भद्राव्रत कर अन्तमें उद्यापन करे। लोहेकी पीठपर भद्राकी मूर्तिको स्थापित कर काल वस्त्र पहनाकर गन्ध, पुष्प आदिसे पूजन कर प्रार्थना करे। लोहा, तैल, तिल, कड़ुआमहित काली गाय, काल कम्बल और पद्माशक्ति दक्षिणके साथ वह मूर्ति ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये और विसर्जन करना चाहिये। इस विधिसे जो भी व्यक्ति भद्राव्रत और व्रतका उद्यापन करता है, उसके किसी भी कार्यमें विघ्न नहीं पड़ता। भद्राव्रत करनेवाले व्यक्तिको प्रेत, विराट्, डाकिनी, शक्तिनी तथा ग्रह आदि कष्ट नहीं देते। उसका इष्टसे वियोग नहीं होता और अन्तमें उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। (अध्याय ११७)

### महर्षि अगस्त्यकी कथा और उनके अर्घ्य-दानकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! अब आप सभी पापोंको दूर करनेवाले अगस्त्यमुनिके चरित्र, अर्घ्यदानकी विधि और अगस्त्योदय-कालका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! एक बार देवश्रेष्ठ मित्र और वरुण दोनों मन्दराचलपर कठिन तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्यामें बाधा डालनेके लिये इन्द्रने उर्वशी अप्सराको भेजा। उसे देखकर दोनों क्रुद्ध हो उठे। अपने

मनके विकारको जानकर उन्होंने अपना तेज एक कुम्भमें स्थापित कर दिया। राजा निर्मिके शापसे उसी कुम्भसे प्रथम महर्षि वसिष्ठका अनन्तर दिव्य तपोधन महात्मा अगस्त्यका प्रदुर्भाव हुआ।

अगस्त्यमुनिका विवाह लोपामुद्रासे हुआ। अनन्तर विद्योसे धिरे हुए अगस्त्यमुनि अपनी पत्नीके साथ रहकर मलयपर्वतके एक प्रदेशमें वैखानस-विधिसे अनुसार अत्यन्त

हृदि प्राणहर ज्ञेया राधा तु कलाम्बुः। कलाम्बुर्वाकीर्षते विष्टिपुच्छे पुच्छे जयः ॥

(उत्तरपर्व ११७। २४—२५)

१-धन्या दधिमुखी भद्रा महामारी लगनना। कालरात्रिमहाह्रदा विष्टिका कुलपुत्रिका ॥

भैरवी य महाकाली अमुरक्षयकरी। इन्द्रासि तु नमोनि प्रातस्तथा यः पठेत् ॥

न य व्याधिर्भेत् तस्य रोगी रोगक्षयमुच्यते। कदाः सर्वान्मृत्युः सुप्तं य किनादि जयते ॥

सो राजकुले ह्यते सर्वत्र विजयी भवेत् ॥

(उत्तरपर्व ११७। २७—३०)

२-भद्राके विषयमें ज्योतिष-ग्रन्थोंमें विस्तारसे वर्णन मिलता है, विशेषकर पुरातन-विद्यापीठकी पीपूषधारा व्याख्यामें। पञ्चाङ्गोंकी यह व्यापक वस्तु है। यह प्रायः प्रत्येक द्वितीय, तृतीय, सप्तमी, अष्टमी और इन्द्रासि-ज्योतिषोंकी लगी रहती है। इसका पूरा समय प्रायः २४ घण्टेका होता है। इस अध्यायमें उसके रहस्योंकी टीकासे सम्बन्धनेका प्रयत्न किया गया है और उसकी शक्तिका भी उदात्त कालका है।



कठोर तप करने लगे। वे बहुत कालतक तपस्या करते रहे, उसी समय बड़े ही दुराचारी और ब्राह्मणोंद्वारा किये जा रहे यज्ञोंका विध्वंस करनेवाले दो दैत्य जिनका नाम इल्वल और वातापि था, वहाँ उपस्थित हुए। ये दोनों बड़े ही मायावी थे। इन दोनोंका प्रतिदिनका कार्य यह था कि एक भाई मेघ बनकर विविध प्रकारके भोजनोंका रूप धारण कर लेता और दूसरा भाई श्राद्धमें भोजन करने-हेतु ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर बुलता और भोजन कराता। भोजन कर लेनेके तुरंत बाद ही इल्वल अपने भाईका नम लेकर पुकारता। दैत्यकी पुकार सुनते ही उसका दूसरा भाई ब्राह्मणोंके पेटको चीरता हुआ बाहर निकल जाता था। इस प्रकार उन दोनों दैत्योंने अनेक ब्राह्मणों तथा मुनियोंको मार डाला।

एक दिनकी बात है, इल्वलने भृगुवंशमें उत्पन्न ब्राह्मणोंके साथ अगस्त्यमुनिको भोजनके लिये आमन्त्रित किया। भोजनके समय अगस्त्यमुनिने इल्वलके द्वारा बनाया गया भोजन सारा-का-सारा खा डाला, पर मुनि निर्बिकर होकर झुड़ हो गये थे। इल्वलने पूर्वरीतिसे अपने भाई वातापिको पुकारकर कहा—'भाई! अब क्यों विलम्ब कर रहे हो, मुनिके शरीरको चीरकर बाहर आ जाओ।' इसपर अगस्त्यमुनिने कहा—'अरे दुष्ट दैत्य! तुम्हारा भाई वातापि तो उदरमें ही भस्म होकर समाप्त हो गया, अब यह बाहर कहाँसे आयेगा। यह सुनकर इल्वल बहुत ही झुड़ हो उठा, परन्तु अगस्त्यमुनिने उसको भी अपनी झुड़ दृष्टिसे जलकर भस्म कर डाला। उन दोनों दैत्योंके मारे जानेपर शेष दैत्य भी मुनिके वैरको स्मरण करते हुए भयभीत होकर समुद्रमें जाकर छिप गये। वे रात्रिके समय समुद्रसे बाहर निकलकर मुनियोंका भक्षण करते, यज्ञपात्र फेंक डालते और पुनः समुद्रमें जाकर छिप जाते। दैत्योंकि इस प्रकारके उद्वेगको देखकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि सभी देवता आपसमें विचारकर महर्षि अगस्त्यजीके पास आकर बोले—'ब्रह्मर्षे! आप समुद्रके जलको सोख लीजिये।' यह सुनकर अगस्त्यजीने अपनेमें आग्नेयी धारणाका अवधान कर समुद्रके जलका पान कर लिया। समुद्रके सूख जानेपर देवताओंने उन सभी दैत्योंका संहार कर डाला।

इस प्रकार महर्षि अगस्त्यने इस संसारको निष्कण्टक कर

दिया। उसके बाद गङ्गाजीके जलसे समुद्र पुनः भर गया। तब देवता और दैत्योंने मिलकर मन्दराचल पर्वतको मथानी तथा नगराज वासुकिसे रस्सी बनाकर समुद्रका मन्थन किया। उस समय समुद्रसे चन्द्रमा, लक्ष्मी, अमृत, कौस्तुभमणि, ऐरावर हाथी आदि उत्तम-उत्तम रत्न निकले। समुद्रसे ही अति भयंकर कालकूट विष भी निकला, जिसके गन्धमात्रसे ही देवता और दैत्य सभी मूर्च्छित होने लगे। इस कालकूट विषका कुछ भाग भगवान् शंकरने पान कर लिया। जिससे वे नीलकण्ठ कहलाये, तब ब्रह्माजीने कहा कि 'भगवान् शंकरके अतिरिक्त संसारमें ऐसा किसीमें सामर्थ्य नहीं है, जो इस शेष विषका पान करे, अतः देवगणों। आप सब दक्षिण दिशामें लक्ष्मके समीप निवास करनेवाले अगस्त्यमुनिके पास जायें, वे हमलोगोंके शरणदाता हैं। ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर सभी देवता अगस्त्यमुनिके पास गये। मुनिब्रह्म अगस्त्यने सबको भयभीत पाकर उन्हें यह अवज्ञामन दिया कि मैं उस विषको अपने तपोबलके प्रभावसे हिमालय पर्वतमें प्रक्षिप्त कर दूँगा। तब महर्षि अगस्त्यजीके तपोबलके प्रभावसे वही विष हिमालयके शिखरों, निकुञ्जों तथा वृक्षोंमें बिलर गया और शेष बचे हुए विषको धतूरा, अर्क आदि वृक्षोंमें उन्होंने बाँट दिया। उसी हिमालय पर्वतके विषसे युक्त वायुके प्रभावसे प्राणियोंमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं, जिससे प्राणियोंको कष्ट सहन करना पड़ता है। उस विषयुक्त वायुका प्रभाव वृक्षकी संज्ञानिसे लेकर सिंह-संज्ञानितक बना रहता है। बादमें उसका वेग शान्त हो जाता है। इस प्रकार कालकूट विषके विनाशकारी प्रभावसे अगस्त्यमुनिने समस्त प्राणियोंकी रक्षा की।

पूर्वकालमें प्रजाकी बहुत कृद्धि हुई। उस समय ब्रह्माजीने अपने शरीरसे मृत्युको उत्पन्न किया और मृत्युने प्रजाका भयंकर विनाश किया। एक दिन वह मृत्यु अगस्त्यमुनिके समीप भी आयी। अगस्त्यजीने क्रोधपरी दृष्टिसे मृत्युको तत्काल भस्म कर दिया। पुनः ब्रह्माजीको दूसरी व्याधिरूप मृत्युकी उत्पत्ति करना पड़ी।

दण्डकशरण्यामें श्वेत नामक एक राजा रहता था, स्वर्ग जानेपर भी वह प्रतिदिन क्षुधाके कारण अपने मांसको ही खाकर कष्ट भोग रहा था। एक दिन दुःखी हो राजाने अगस्त्यमुनिसे कहा—'महाराज! सभी वस्तुओंका दान तो

मैंने किया है, परंतु अन्न और जलका दान मैं नहीं कर सका और न मैंने श्राद्ध ही किया। इसलिये मुझे इस रूपमें प्रतिदिन अपना ही मांस खाना पड़ रहा है। प्रभो! आप दया करके कोई उपाय कीजिये, जिससे कि मुझे इस विपत्तिसे छुटकारा प्राप्त हो। राजाद्वारा इस प्रकार दीन वचन सुनकर अगस्त्यमुनि दयार्द्र हो उठे और उन्होंने राजाद्वारा श्राद्ध कराया। श्राद्धके फलस्वरूप सहसा वह दिव्य देह धारणकर स्वर्गलोकमें दिव्य भोग भोगने लगा।

एक बार विन्ध्यचल पर्वतके हृदयमें यह श्रवण उठा कि सूर्यन्तरायण मेरुपर्वतकी पश्चिमा तो करते हैं, पर मेरी नहीं करते। क्यों न मैं उनका मार्ग ऐक हूँ। मनमें यह निश्चय कर विन्ध्यगिरि प्रतिदिन बढ़ने लगा। विन्ध्यचलको बढ़ते हुए देखकर सभी देवता व्याकुल हो उठे और उन्होंने अगस्त्यमुनिके पास जाकर निवेदन किया—‘प्रभो! आप कृपाकर सूर्यके मार्गको अवलोक करनेवाले उस विन्ध्यगिरिके रोके और उसे स्थिर कर दें।’ देवताओंका विनयपुलक वचन सुनकर अगस्त्यजीने विन्ध्यचल पर्वतके पास पहुँचकर कहा—‘पर्वतोत्तम! मैं तीर्थयात्रा करने जा रहा हूँ, तुम थोड़ा मोघे हो जाओ, तो उस पार चला जाऊँ।’ मुनिकी आज्ञामें विन्ध्यचल नीचा हो गया। अगस्त्यमुनिने पर्वतको लौटकर कहा—‘जबतक मैं तीर्थयात्रासे वापस नहीं आ जाता, जबतक तुम इसी स्थितिमें रहना।’ इतना कहकर अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशाको चले गये और फिर वापस नहीं लौटे। आज भी आकाशमें दक्षिण दिशामें देदीप्यमान हो रहे हैं। और लोषामुद्राके साथ महर्षि अगस्त्यकी यह विलोकी वन्दन करता है।

एक समयकी बात है, अपनी पत्नी लोषामुद्राकी इच्छापर अगस्त्यजीने कुबेरको बुलाकर आनन्दके सभी ऐश्वर्य महल, शय्या, वस्त्राभूषण आदि उन्हें उपलब्ध करा दिये और लोषामुद्राके साथ अगस्त्यजी बहुत समयतक आनन्दित होते रहे।

राजन्! इस प्रकार अगस्त्यमुनिके अनेक अद्भुत दिव्य चरित्र हैं। आप भी भगवान् अगस्त्यके लिये अर्घ्य प्रदान करें, इससे आपको महान् पुण्य प्राप्त होगा। उनके अर्घ्यदानकी विधि इस प्रकार है—

जब कन्या राशिमें सूर्यके सात अंश (५।२२) शेष रहते हैं, उसी दिन महर्षि अगस्त्यका पूर्वमें उदय होता है, उसी समय उनके निमित्त अर्घ्य देना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि प्रातः श्वेत तिलोंसे स्नानकर श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्पोंकी माला आदिसे विभूषित होकर पञ्चरत्नसहित एक सुवर्ण कलश स्थापित करें। उसके ऊपर अनेक प्रकारके भोज्य पदार्थ और सप्तधान्यसहित धौकर पात्र रखें। उसके ऊपर जटाधारी, हाथमें कमण्डलु धारण किये हुए, शिष्योंके साथ अगस्त्यमुनिकी स्तुति-प्रतिष्ठा बनाकर स्थापित करना चाहिये। तत्पश्चात् श्वेत चन्दन, कमेठीके पुष्प, उत्तम धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनकी पूजा करनेके बाद अर्घ्य देना चाहिये। खजूर, नारियल, कृष्णान्द, खीर, कज्जली, कबडैटक, आरवेरल, बीजपूर (किजौर), बैंगन, अन्तर, नारंगी, कैला, कुशा, काश, दूर्वादि अंकुर, नीलकण्ठ तथा अंकुरित अन्न—यह सभी सामग्री एक बर्तनके पात्रमें रखकर सुवर्ण, चाँदी अथवा तक्षिका अर्घ्यपात्र बना हो सिरसे लगाकर प्रसन्न-चित्तसे जानुओंको पृथ्वीपर टेककर दक्षिणाभिमुख हो इन मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक भगवान् अगस्त्यको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये—

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निप्रास्तसम्भव ।  
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥  
विन्ध्यवृद्धिदक्षिणकर मेघलोपविधापह ।  
राजवल्लभ देवर्षे लंकावास नमोऽस्तु ते ॥  
वातापिर्भीक्षुलो येन समुद्राः शोषिताः पुरा ।  
लोषामुद्रपतिः श्रीमान् योऽस्तौ तस्मै नमो नमः ॥  
येनेदितेन पापानि प्रलये यान्ति व्याधयः ।  
तस्मै नमोऽस्तवगल्वाय सशिष्याय सुपुत्रिणे ॥

(उत्तरार्ध १९८।६९—७२)

‘देवर्षे! आपका वर्ष काश-पुष्पके समान है, आप अग्नि और मरुतसे उद्भूत हैं। मित्रावरुणके पुत्र कुम्भयोने! आपको नमस्कार है। आप वृष्टिमें अमृतका संचार करनेवाले हैं, आपने बढ़ते हुए विन्ध्यगिरिके निवृत्त किया था और आप दक्षिण दिशामें निवास करते हैं, आपको नमस्कार है। आपने वातापि रालसको भस्म कर दिया तथा समुद्रको सोख लिया, लोषामुद्राके पति भगवान् अगस्त्य! आपको बार-बार नमस्कार है। आपके उदय होनेपर सारी व्याधियाँ नष्ट हो जाती

है, शिष्यों और पुत्रोंके साथ भगवन् ! आपको नमस्कार है।

इस प्रकार अर्घ्य प्रदान कर वह प्रतिमा विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मणको दानमें दे दे।

किसी एक फल अथवा धान्य आदिका एक वर्षतक त्याग करे। इस विधिसे यदि ब्राह्मण सात वर्षतक अर्घ्य दे तो चारों वेदोंका ज्ञाता और सभी शस्त्रोंका मर्मज्ञ हो जाता है। क्षत्रिय समस्त पृथ्वीको जीतकर राजा बनता है। वैश्य धन-धान्य तथा पशुओं एवं समृद्धिको प्राप्त करता है तथा गृह धन,

सम्पन्न, आरोग्य प्राप्त करता है और स्त्रियोंको सौभाग्य, ऋद्धि-वृद्धि तथा पुत्रकी प्राप्ति होती है। विधवाको अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है, कन्याको श्रेष्ठ पति प्राप्त होता है तथा रोगी अगस्त्यमुनिको अर्घ्य देकर रोगसे छुटकारा पा जाता है। जिस देशमें भगवान् अगस्त्यका इस विधिसे पूजन होता है और अर्घ्य दिया जाता है, वहाँ कभी दुर्भिक्ष, अकाल आदिका भय नहीं होता। अगस्त्य ऋषिके आश्वानको सुननेवाले सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं। (अध्याय ११८)

—ॐ—

### नवोदित चन्द्र, गुरु एवं शुक्रको अर्घ्य देनेकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं नवोदित चन्द्रमाको अर्घ्य देनेकी विधि बता रहा हूँ। प्रतिमास शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको प्रदोषकालके समय भूमिपर गेबराका एक मण्डल बनाकर उसमें रोहिणीसहित चन्द्रमाकी प्रतिमाको स्थापित करके श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, अनेक प्रकारके फल, नैवेद्य, दही, श्वेत वस्त्र तथा दुर्वाक्षुर आदिसे उनका पूजन करे और इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे—

नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः ।

आध्यायस्य स मे त्वेवं सोमराज नमो नमः ॥

(उत्तरपर्व ११९।६)

जो व्यक्ति इस विधिसे चन्द्रमाको प्रतिमास अर्घ्य देता है, उसे पुत्र, पौत्र, धन, पशु, आरोग्य आदिकी प्राप्ति होती है तथा सौ वर्षतक सुख भोगकर अन्तमें वह चन्द्रलोकको और फिर मोक्षको प्राप्त करता है।

यजन् ! शुक्रके दोषकी निवृत्तिके लिये याज्ञके अश्विनमें, गमनकालमें और शुक्रोदयके समय शुक्रदेवकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। शुक्रकी पूजन-विधिको मैं बता रहा हूँ, उसे आप ध्यानपूर्वक सुने—

सुवर्ण, चाँदी अथवा कोस्यके पात्रमें मोतीयुक्त चाँदीकी

शुक्रकी मूर्तिको पुष्प तथा श्वेत वस्त्रसे अलंकृतकर श्वेत चावलपेपर स्थापित करे। षोडशोपचार अथवा पञ्चोपचारसे शुक्रदेवकी पूजा करके इस मन्त्रसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करे—

नमस्ते सर्वदिवेश नमस्ते भृगुनन्दन ।

कवे सर्वाभिर्भिक्ष्यार्थं गृहणार्थं नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १२०।४)

तदनन्तर प्रणामपूर्वक मूर्तिको विसर्जित कर सकत्सा गौके साथ वह प्रतिमा तथा अन्य सभी सामग्री ब्राह्मणको दे दे। इस विधिसे शुक्रदेवकी पूजा करनेसे सभी मनःकामनाओंकी पूर्ति हो जाती है और फसल अच्छी होती है।

इसी प्रकार सुवर्ण आदिके पात्रमें सुवर्णकी बृहस्पतिकी मूर्ति स्थापित करे। प्रतिमाको सर्षपयुक्त जल तथा पञ्चगव्यसे स्नान कराकर पीत पुष्प तथा पीत वस्त्रोंसे अलंकृत करे। अनन्तर विविध उपचारोंसे उनका पूजन कर अर्घ्य प्रदान कर पीसे हवन करे। सकत्सा गौके साथ वह बृहस्पतिकी मूर्ति दक्षिणसहित ब्राह्मणको दान कर दे। यात्राकाल, बृहस्पतिकी संक्रान्ति और उनके उदयके समय जो इनका पूजन करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। शुक्र तथा बृहस्पतिकी इस विधिसे पूजन करनेसे पूजकके घरमें उनका दोष नहीं होता। (अध्याय ११९-१२०)



१-इस ब्रह्मका उल्लेख मत्स्यपुराण अध्याय ६१ अंशमें तथा इनकी कथा, इनका अनेक आश्रमोंमें निवास और अगस्त्यार्चनपर ऋग्वेद १।१७९।६ से लेकर अग्नि, गरुड, बृहद्गम आदि पुराणोंकामें अनेक सामग्री मिली पड़ी है। डेमादि, गोबल तथा राजाकर आदिने भी इन्हें अपने व्रत-निबन्धमें कई पृष्ठोंमें संगृहीत किया है।

### प्रकीर्णं व्रतं<sup>१</sup>

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! अब मैं अत्यन्त

गुप्त विविध प्रकीर्ण व्रतोंका वर्णन कर रहा हूँ। जो प्रातः स्नानकर अश्वत्थ वृक्षका पूजनकर ब्राह्मणोंको तिलसे भरे हुए पात्रका दान करता है, उसे कुत-अकुत किसी कार्यके लिये शोक नहीं करना पड़ता। यह पात्रव्रत सभी पात्रोंको दूर करनेवाला है। सुवर्णकी बृहस्पतिकी प्रतिमा बनाकर उसे पीत वस्त्रादिसे अलंकृतकर पुण्य दिनमें ब्राह्मणको दान करना चाहिये। यह पात्रव्रत बल और बुद्धिप्रदायक है। एकभुक्त रहकर लवण, कटु, तिक्त, जीरक, मरिच, होंग और सौंठसे युक्त पदार्थ तथा शिलाजीत—ये सात पदार्थ सात कुटुम्बी ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये, इस शिलाव्रतको करनेसे लक्ष्मीलोककी तथा वाक्पटुता प्राप्त होती है। नक्तव्रतकर गाय, वस्त्र और सुवर्णका सुदर्शनकर तथा त्रिशूल गृहस्थ ब्राह्मणको दानमें दे और उन्हें प्रणाम कर 'शिवकेशवौ प्रीयेताम्' यह वाक्य बड़े। यह शिवकेशवव्रत महापातकोंको भी नष्ट कर देता है। एक वर्षतक एकभुक्त रहकर सुवर्णका बना हुआ बेल और उपरुक्तेसहित तिलधेनु ब्राह्मणको दान करे। इस व्रतको रुद्रव्रत कहते हैं। यह व्रत सभी प्रकारके पाप एवं शोकको दूर करता है और जतीको शिवलोककी प्राप्ति कराता है।

पञ्चमी तिथिके दिन सबीषधिमिश्रित जलसे स्नानकर गृहस्थाश्रमके सात उपकरण—घर, ऊखल, मूष, सिल, थाली, धड़ा तथा चूल्हाका दान गृहस्थ ब्राह्मणको देना चाहिये। इसे गृहाव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेसे सभी सुख प्राप्त होते हैं। इस व्रतका उपदेश अत्रिमुनिने अनसूतको किया था।

सुवर्णका कमल तथा नीलकमल उर्जसपात्रसहित श्रद्धासे गृहस्थ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। यह नीलव्रत है। इस व्रतको जो कोई भी व्यक्ति करता है, उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। अषाढ़ आदि चार महीनोंमें तैलपञ्च नहों करना चाहिये। अन्तमें पारणामे तिलके तेलसे भर हुआ नव धड़ा ब्राह्मणको दे और धी तथा पायसयुक्त भोजन कराये, इस व्रतको प्रीतिव्रत कहते हैं। इसे भक्तिपूर्वक करनेसे

विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

चैत्र मासमें दही, दूध, घी और गुड़, खीर, ईखके दूध बने पदार्थोंका त्याग करना चाहिये और बादमें दो ब्राह्मणोंकी पूजाकर दही, दूध तथा दो वस्त्र, रससे भरे पात्र आदि पदा 'गौरी मे प्रीयेताम्' कहकर ब्राह्मणको देना चाहिये। यह गौरीव्रत है। इस व्रतको जो करता है, उसे गौरीलोककी प्राप्ति होती है।

त्रयोदशीसे एक वर्षतक नक्तव्रत करनेके बाद पारणामे दो वस्त्रोसहित सुवर्णका अशोक वृक्ष तथा ब्राह्मणको दाक्षिण्य देकर 'प्रभुः प्रीयेताम्' यह वाक्य कहना चाहिये। यह कामव्रत है। इस व्रतको करनेसे सभी प्रकारके शोक दूर हो जाते हैं तथा विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। अषाढ़ आदि चार मासोंमें अपने नख नहीं काटने चाहिये और बैंगनका भोजन भी नहीं करना चाहिये। अन्तमें वरतिक पूर्णिमाके दिन घी और शहदसे भरे हुए घटके साथ सुवर्णका बैंगन ब्राह्मणको दान दे। इसे शिवव्रत कहते हैं। शिवव्रत करनेवाला व्यक्ति रुद्रलोकको प्राप्त करता है। इसी प्रकार पूर्णिमाको एकभुक्तव्रत करनेके बाद चन्दनसे पूर्णिमाकी मूर्ति बनाकर उसका पूजन करे। अनन्तर दूध, दही, घी, शहद और श्वेत शर्करा—इन पाँच सामग्रियोंसे भरे हुए पाँच घड़े पाँच ब्राह्मणोंको दानमें दे। इस व्रतको पञ्चव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेसे समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। हेमन्त और शिशिर ऋतुमें उद्धृत पुण्यका त्यागकर फल्गुनकी पूर्णिमाको यथाशक्ति सुवर्णके बने हुए तीन पुष्प ब्राह्मणको दान देकर 'शिवकेशवौ प्रीयेताम्' इस वाक्यका उच्चारण करना चाहिये। इसे सौगन्धव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेसे शिरःप्रदेशसे सुगन्धि उत्पन्न होती रहती है और जतीको उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

फल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको नमक नहीं खाना चाहिये। जो व्यक्ति एक वर्षतक नियमपूर्वक इस सौभाग्यव्रतको करके अन्तमें सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा कर गृहके साथ गृहस्थके उपयोगी सामग्रियों तथा उत्तम शय्याका दान देकर 'भगवानी प्रीयेताम्' इस वाक्यको कहता है, उसे गौरीलोककी प्राप्ति होती है। यह उत्तम सौभाग्यको प्रदान



करनेवाला है।

संध्या-समय एक वर्षतक मौनव्रत रखकर पारणाकर तथा घृतकुम्भ, दो वस्त्र और षण्ण ब्राह्मणको दान करना चाहिये। इसे सारस्वतव्रत कहते हैं। यह व्रत विद्या और रूपको देनेवाला है। इस व्रतको करनेसे सरस्वतीलोककी प्राप्ति होती है।

एक वर्षतक पञ्चमी तिथिको उपवास करनेके बाद सुवर्णकमल और श्रेष्ठ गौ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। इसे लक्ष्मीव्रत कहते हैं। यह व्रत कान्ति एवं सौभाग्यको प्रदान करता है। व्रतीको जन्म-जन्ममें लक्ष्मीकी प्राप्ति और अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

जो स्त्री वैश्र माससे अश्रम कर विष्णुमासे (प्रातःकाल) एक वर्षतक जलका पान करे और (भगवान् सूर्यके निमित्त) जलधारा प्रदान करे और वर्षके अन्तमें घृतपूर्ण नखीन कलशका दान करे तो उसे सौभाग्य प्राप्त होता है। इसे धाराव्रत कहा गया है। यह सभी रोगोंका नाशक, कान्ति एवं सौभाग्य-प्रदायक तथा सपत्नीके दर्पको नाश करनेवाला है।

गौरीरहित रुद्र, लक्ष्मीरहित विष्णु और राक्षसरहित भगवान् सूर्यकी मूर्तियोंके विधिपूर्वक स्थापित कर उनका पूजन करे, षण्णयुक्त गौ, दोहनी और दक्षिणाके साथ उस मूर्तियोंके ब्राह्मणको दान दे। इस व्रतको देवव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेसे शरीर दिव्य हो जाता है।

श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प आदिसे शिवलिंग और विष्णुकी मूर्तिका प्रतिदिन एक वर्षतक उपलेपन करनेके बाद जलसे धो हुए घटके साथ सुन्दर गाय ब्राह्मणको दान दे। यह शुक्लव्रत है। यह व्रत बहुत कल्याणकारी है। इस व्रतको करनेवाला शिवलोकको प्राप्त करता है।

अथर्व, सूर्यनारायण और गङ्गाजीका निम्न प्रणाम-पूर्वक पूजनकर नौ वर्षतक एकभुक्तव्रत करे, अन्तमें सप्तलोक ब्राह्मणकी पूजाकर तीन गाय और सुवर्णका वृक्ष ब्राह्मणको दान दे। इस व्रतको कीर्तिव्रत कहते हैं। यह व्रत ऐश्वर्य और कीर्तिको देनेवाला है। प्रतिदिन गोबरका मण्डल बनाकर उसमें अक्षतोंद्वारा कमल बनाये, उसके ऊपर शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, गौरी तथा गणपतिको धीसे स्नान कराकर एक वर्षतक प्रतिदिन पूजन करनेके बाद सामवेदका गान करके अन्तमें

अष्ट अंगुलके सुवर्ण-कमलसहित उत्तम गाय ब्राह्मणको दान दे। इस व्रतको सामव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति शिवलोकको प्राप्त करता है।

सन्मीको एकभुक्तव्रत कर अन्तमें कन्याओंको भोजन कराये तथा उन्हें कंचुकी, दो वस्त्र प्रदान करे एवं सुवर्णका सिंहासन भी ब्राह्मणको दे। इस व्रतको वीरव्रत कहते हैं। जो स्त्री इस व्रतको करती है, उसे अनेक जन्मोंतक सुन्दर रूप, अखण्ड सौभाग्य और सुखकी प्राप्ति होती रहती है। व्रतीको शिवलोककी प्राप्ति होती है। अम्बावात्यासे जो एक वर्षपर्यन्त श्राद्ध करता है और श्राद्धपूर्वक पौष पयस्विनी सवत्सा गौ, पीले वस्त्र तथा जलपूर्ण कलश दान करता है, वह व्यक्ति अपने पूर्वजोंका उद्धारकर विष्णुलोकको प्राप्त करता है। यह विष्णुव्रत कहलाता है।

जो स्त्री एक वर्षतक ताम्बूलका त्यागकर अन्तमें सुवर्णके तीन ताम्बूल बनाकर उसमें चुनकी जगह मोती रखकर तथा सुसर्पिके शूर्पिके साथ गणेशको निवेदित कर ब्राह्मणको दान करती है, उसे कभी भी दुर्भाग्यकी प्राप्ति नहीं होती, साथ ही मुक्तमें उत्तम सुगन्ध और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। यह पद्मव्रत है। वैश्र, वैशाख, ज्येष्ठ तथा अषाढ़—इन चार मासोंमें अथवा एक मास अथवा एक पक्षपर्यन्त जलका अर्घ्यचित्तव्रत करना चाहिये। अन्तमें जलपूर्ण कलश, अन्न, वस्त्र, खे, सप्तधान्य, तिलपात्र और सुवर्ण ब्राह्मणको दे। इस व्रतको वारिव्रत कहते हैं। वारिव्रतको करनेवाला व्यक्ति एक कल्पपर्यन्त ब्राह्मणलोकमें निवास करनेके बाद पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा होता है।

जो एक वर्षतक पञ्चामृतसे भगवान् शिव और भगवान् विष्णुको स्नान कराकर अन्तमें गाय, शङ्ख और सुवर्ण ब्राह्मणको दान करता है, वह बहुत कालतक शिवलोकमें निवास करता है और राजाका पद प्राप्त करता है। यह वृत्तिव्रत कहलाता है। जो व्यक्ति सर्वथा मांसाहारका परित्याग कर अन्तमें सुवर्णका हरिण और सवत्सा गौ ब्राह्मणको दान करता है, उसे अक्षमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। इसे अहिसाव्रत कहते हैं, यह सम्पूर्ण दान्तियोंको देनेवाला है। जो माघ मासमें प्रातःकाल स्नानकर अन्तमें ब्राह्मण-दम्पतिकी वस्त्र, आभूषण, पुष्पमाला आदिसे पूजाकर उनको स्वादिष्ट भोजन कराता है,

वह आरोग्य और सौभाग्यको प्राप्त करता है और कल्पपर्यन्त सूर्यलोकमें निवास करता है। इस व्रतको सूर्यव्रत कहते हैं।

जो आषाढ़ आदि चार मासमें प्रातःकाल स्नानकर कार्तिक पूर्णिमाके दिन धूलकुम्भ और गौ गृहस्थ ब्राह्मणको दान देकर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मण-भोजन कराता है, उसकी सभी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसे अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। यह वैष्णवव्रत कहलाता है। जो एक अयनसे दूसरे अयनतक मधु और घीका त्याग करके अन्तमें घी और गौ ब्राह्मणको दानकर घी और पापस ब्राह्मणको भोजन कराता है, उसे इहिल और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इस व्रतको शीलव्रत कहते हैं। जो (नियतकालतक) प्रतिदिन संध्याके समय दीपदान करता है तथा अर्घ्य पदार्थ एवं तेलका सेवन नहीं करता, फिर व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको दीपक, सुवर्णके बने चक्र, विगुल और दो वस्त्र दान करता है, वह महान् तेजस्वी होता है। यह कान्ति प्रदान करनेवाला व्रत दीपव्रत कहलाता है।

जो स्त्री एकभुक्त रहकर एक सातहताक गन्ध, पुष्प, रत्न चन्दन आदिसे भगवती गौरीकी पूजा करती है, साथ ही प्रत्येक दिन क्रम-क्रमसे कुमुद, माधवी, गौरी, भजानी, 'हर्षती, उमा तथा काली—इन सात नामोंसे एक-एक सुवासिनी स्त्रीका पुष्प, चन्दन, कुंकुम, ताम्बूल तथा नारिकेल एवं अलङ्कारोंसे पूजनकर 'कुमुदा प्रीयताम्' इस प्रकारसे कहकर विमर्जन करती है तथा आठवें दिन उत्तरी पूजित सुवासिनी स्त्रियोंको निमन्त्रित कर उन्हें षड्विंश भोजन आदिसे तृप्तकर वस्त्र, माला तथा आभूषण एवं दर्पण आदि प्रदान करती है, साथ ही एक ब्राह्मणकी भी पूजा करती है, उसे सुन्दर देह और सौभाग्य प्राप्त होता है, इसे सप्तसुन्दरव्रत कहा जाता है। चैत्र मासमें सभी प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंका त्याग करना चाहिये और अन्तमें सुगन्धद्रव्यसे पूर्ण एक सीपी, दो सफेद वस्त्र अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। इस व्रतको वरुणव्रत कहते हैं। इसके करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और वरुणलोककी प्राप्ति होती है।

वैशाख मासमें नमकका त्यागकर अन्तमें सक्ता गौ ब्राह्मणको दे। यह कान्तिव्रत है। इस व्रतको करनेसे कीर्ति और कान्तिकी वृद्धि होती है तथा अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति

होती है। जो तीन पलसे अधिक परिमाणका सोनेका ब्रह्मण्ड बनाकर उसे तिलकी ढेरीमें रखे तथा 'मै अहंकाररूपी तिलका दान करनेवाला हूँ' ऐसी भावना करके घीसे अग्निको तथा दक्षिणासे ब्राह्मणको तृप्त करे एवं तीन दिनतक तिलव्रती रहे फिर माला, वस्त्र तथा आभूषणोंद्वारा ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करके विद्यात्माकी तृप्तिके उद्देश्यसे किसी शुभ दिनमें तिलसहित ब्रह्मण्ड ब्राह्मणको दान करे तो ऐसा करनेवाला पुरुष पुनर्जन्मसे रहित ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। इसका नाम ब्रह्मव्रत है। यह मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला है।

जो तीन दिनतक दुग्धका आहारकर सुवर्णसहित सक्ता गौ तथा एक पलसे अधिक सुवर्णसे कल्पवृक्ष बनाकर चावलके ढेरपर स्थापित कर उत्तम वस्त्र और पुष्पमालाओंसे ढककर ब्राह्मणको दान करता है, उसे कल्पधर स्वर्गमें निवास-स्थान मिलता है, इसे कल्पव्रत कहते हैं। जो अग्राधितयागकर सभी अलङ्कारोंसे अलङ्कृत एक श्रेष्ठ बहिर्याका व्यतीपात तथा ग्रहण, अयन-संक्रान्तिमें ब्राह्मणको दान करता है, उसे परलोकगमनमें कोई कष्ट नहीं होता तथा उसका मार्ग सुखदायी होता है, इसे द्वारव्रत कहते हैं।

जो एक वर्षतक अष्टमीको रात्रिमें एक बार भोजन करता है तथा अन्तमें ब्राह्मणको पर्यस्विनी गौका दान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है। इसे सुगतिव्रत कहते हैं। जो हेमन्त और शिशिर ऋतुमें ईधनका दान करता है और अन्तमें घी तथा गाय ब्राह्मणको दान करता है, वह आरोग्य, सुति, कान्ति तथा ब्रह्मपदको प्राप्त करता है। यह वैधानरव्रत सभी पशुओंका नशक है। जो एकव्रदशीको नक्षत्रतक चैत्र मासके धित्रा नक्षत्रमें सुवर्णका शंख और चक्र ब्राह्मणको दान करता है, वह कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास कर पृथ्वीपर राजाका पद प्राप्त करता है। यह विष्णुव्रत कहलाता है। जो एक वर्षतक पञ्चमीको दुग्धहार कर अन्तमें दो गाय ब्राह्मणको दान करता है, वह एक कल्पतक लक्ष्मीलोकमें निवास करता है। यह देवीव्रत कहलाता है। जो एक वर्षतक सप्तमीके दिन नक्षत्रतक अन्तमें पर्यस्विनी गाय ब्राह्मणको दान करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। इसे धानुव्रत कहते हैं। जो चतुर्थीको एक वर्षतक रात्रिमें भोजन करता है और अन्तमें आठ गौएँ अग्निहोत्री ब्राह्मणको दान करता है, उसके सभी

तरहके विघ्न दूर हो जाते हैं। इसे विनायकव्रत कहते हैं। जो चातुर्मास्यमें फलेक स्वर्ग कर कर्तिकमें सुवर्णक फल, दो गौ, दो श्वेत वस्त्र और घौसे पूर्ण घट दक्षिणसहित ब्राह्मणको दान करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। इसे फलव्रत कहते हैं।

एक वर्षतक सप्तमीको उपवास कर अन्तमें सुवर्णक कमल बनाकर और कांस्यकी दोहनीसहित सबल गौ पौराणिक ब्राह्मणको दान करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह सौरव्रत है। जो बारह द्वादशियोंको उपवास करके अन्तमें यन्त्रशक्ति वस्त्रसहित जलपूर्ण बारह घट ब्राह्मणको दान करता है, उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। यह गोविन्दव्रत भगवान् गोविन्दके पदको प्राप्त करनेवाला है।

कार्तिक पूर्णिमाको कृष्णार्गक रात्रिमें भोजन करना चाहिये। इस व्रतको कृष्णव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेसे गोलोककी प्राप्ति होती है। कृष्ण-प्रत्यक्षितके अन्तमें गोदान कर यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये। यह प्राजापत्यव्रत है। इससे पापशुद्धि होती है। जो एक वर्षतक चतुर्दशीको नवव्रत करके अन्तमें दो गायोंका दान करता है, वह औष-पदको प्राप्त करता है। यह षष्पव्रत है। सात रात्रि उपवास कर ब्राह्मणको पुनर्पूर्ण घटका दान करे। इसे ब्रह्मव्रत कहते हैं, इससे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको उपवास कर रात्रिके समय पञ्चगव्य-पान करे अर्थात् कपित्थ गौका मूत्र, कृष्णा गौका गोबर, श्वेत गौका दूध, लाल गौका दही तथा कजरी गौका घी लेकर मन्त्रोंसे कुशोदक मिलकर प्राशन करे। दूसरे दिन प्रातः स्नानकर देवता और पितरोंका तर्पण आदि करनेके बाद ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी घीन होकर भोजन करे। इसे ब्रह्मकुर्व्वव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेसे बाल्य, यौवन और बुढ़ापेमें किये गये सभी प्रकारके पापोंका नाश हो जाता है। जो एक वर्षतक तृतीयाको बिना फलाये अन्न, फल इत्यादिका भोजन करता है और अन्तमें सुन्दर गौ ब्राह्मणको दानमें देता है, वह शिवलोकमें निवास करता है। इसे ऋषिव्रत कहते हैं।

एक वर्षतक ताम्बूल आदि मुखवासके पदार्थोंका स्वाग-कर अन्तमें ब्राह्मणको गायका दान करे। यह सुमुखव्रत है।

इससे कुबेरलोककी प्राप्ति होती है। रात्रिभर जलमें निवास कर प्रातःकाल जो गोदान करता है, उसे वरुणलोककी प्राप्ति होती है। यह वरुणव्रत कहलाता है। जो चान्द्रायणव्रत करनेके बाद सुवर्णका चन्द्रमा बनाकर ब्राह्मणको दान करता है, उसे चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। यह चन्द्रव्रत है।

ज्येष्ठ मासकी अष्टमी और चतुर्दशीको पञ्चाग्नि-सेवन करके सुवर्णसहित गौका ब्राह्मणको दान करे, यह रुद्रव्रत है। इससे रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। जो एक वर्षतक तृतीयाको शिवालयमें उपलेपन करनेके बाद गोदान करता है वह स्वर्गलोक प्राप्त करता है। यह भवानीव्रत है।

जो माघ मासकी सप्तमी तिथिके रात्रिमें आर्द्र वस्त्रोंको धारण किये रहता है और उपवास कर ब्राह्मणको गौका दान करता है, वह कल्पभरतक स्वर्गमें निवास करता है। यह तापनव्रत कहलाता है। जो तीन रात्रि उपवास कर फलगुणकी पूर्णिमाको गृहदान करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह ध्याव्रत है। पूर्णमासीको उपवासकर तीनों संध्याओंमें वस्त्र, अभूषण, भोजन आदि देकर सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। इस व्रतको इन्द्रव्रत कहते हैं। इस व्रतके प्रथमसे उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। जो शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको नमकसे भरे हुए कंसिके पात्रके साथ वस्त्र और दक्षिणा एक वर्षतक ब्राह्मणको देता है और अन्तमें शिवमन्दिरमें गोदान करता है, वह कल्पभरतक शिवलोकमें निवास करनेके बाद राजाओंका राजा होता है। इसे सोमव्रत कहते हैं। एक वर्षतक प्रत्येक प्रतिपदाको एक समय भोजन करनेके बाद कपित्थ गौ ब्राह्मणको दान करे। यह आग्नेयव्रत है। इसके करनेसे अग्निलोककी प्राप्ति होती है।

जो माघ मासकी एकादशी, चतुर्दशी और अष्टमीको एकभुक्त रहता है तथा वस्त्र, जूता, कंबल, चर्म आदि श्वेत निवारण करनेवाली वस्तुओंका दान करता है तथा चैत्रमें इन्हीं तिथियोंमें छल्ल, पेखा आदि उष्णनिवारक पदार्थोंका दान करता है, उसे अश्वमेध यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है। यह सौख्यव्रत है। एक वर्षतक दशमी तिथिके एकभुक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी स्त्री-रूप दस दिशाओंकी मूर्ति तिलोकी रात्रिभर स्थापितकर गायसहित ब्राह्मणको दान करनेसे महापातक दूर हो जाते हैं। यह विघ्नव्रत है। इसे करनेसे

ब्रह्माण्डका अधिपत्य मिलता है। जो शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको नक्षत्रत करके सूर्यनारायणका पूजनकर सप्तधान्य और लवण ब्राह्मणको दान देता है, वह अपने सात कुल्लोक उद्धार करता है। यह धान्यव्रत है। एक मास उपवासकर जो ब्राह्मणको गाय प्रदान करता है, उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। इसे भीमव्रत कहते हैं।

जो तीस पलसे अधिक पर्वत और समुद्रोंसहित स्वर्गकी पृथ्वी बनाकर तिलोकी राशिपर रखकर कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है तथा दूध पीकर रहता है, वह सात कल्पतक रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह महीव्रत कहलाता है।

माघ अथवा चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तुल्यकाके गुड़का भक्षण करे तथा सभी उपसर्गोंसहित गुडधेनु ब्राह्मणको दान दे, उसे उमाव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेवाला गौरीलोकमें निवास करता है। जो एक वर्षतक केवल एक ही अन्नका भोजन करता है और भक्ष्य पदार्थोंके साथ जलका पात्र दान करता है, वह कल्पपर्यन्त शिवलोकमें निवास करता है। इसे प्राप्तिव्रत कहते हैं। जो कार्तिकमें आरम्भ कर प्रत्येक मासकी तृतीयाको रात्रिमें गोमूत्रमें पकवायी गयी लपसीका ग्रहण करता है, वह गौरीलोकमें एक कल्पतक निवास करता है, अनन्तर पृथ्वीपर राजा होता है। यह महान् कल्याणकारी व्रत है। जो पुरुष कन्यादान करता है अथवा कराता है, वह अपने इच्छित कुल्लोकसहित ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। कन्यादानसे बढ़कर कोई भी दान उत्तम नहीं है। इस दानको करनेसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। यह कन्यादानव्रत है। तिलचिह्नका हाथी बनाकर दो लाल वस्त्र, अंकुश, चापर, माल्य आदिसे उसके सजाकर तथा ताम्रपात्रमें स्थापित करनेके बाद वस्त्राभूषण आदिसे पत्नीसहित ब्राह्मणका पूजन करके गलेतक जलमें स्थित होकर वह हाथी उनके दान कर दे। यह कान्तारव्रत है। इस व्रतको करनेसे जंगल आदिसे सम्बन्धित समस्त संकट और पापोंसे छुटकारा मिल जाता है।

जो ज्येष्ठा नक्षत्र आनेपर 'त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रम्' आदि मन्त्रोंसे इन्द्रदेवताका व्रत-पूजन तथा हवन करते हैं, वे प्रलयपर्यन्त इन्द्रलोकमें निवास करते हैं। इसे पुरन्दरव्रत या इन्द्रव्रत कहते हैं। जो पञ्चमीको दूधका आहार करके सुवर्णकी

चाग-प्रतिमा ब्राह्मणको देता है, उसे कभी सर्वका भय नहीं रहता। शुक्ल पक्षकी अष्टमीको उपवास कर दो श्वेत वस्त्र और घण्टासे भूषित बैल ब्राह्मणको दान दे। इसे वृषव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेवाला एक कल्पतक शिवलोकमें निवास करता है तथा पुनः राजाका पद प्राप्त करता है। उतरायणके दिन एक सेर घीसे सूर्यनारायणको स्नान कराकर उत्तम घोड़ी ब्राह्मणको दे। इस व्रतको रात्रीव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेवाले व्यक्तिको अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है तथा अन्तमें वह पुनः भाई, स्त्री आदिसहित सूर्यलोकमें निवास करता है। जो नवमीको नक्षत्रतकर भगवती विन्ध्यवासिनीकी पूजाकर पिछरके साथ सुवर्णका शुक्ल ब्राह्मणको प्रदान करता है, उसे उत्तम चाणी और अन्तमें अग्निलोककी प्राप्ति होती है। इसे आग्नेयव्रत कहते हैं।

विष्णुम्य आदि सत्ताईस योगोंमें नक्षत्रत करके क्रमसे घी, तेल, फल, ईश, जौ, गेहूँ, चना, सेम, शालि-चावल, नमक, दही, दूध, वस्त्र, सुवर्ण, कंबल, गाय, बैल, छतरी, जूता, कपूर, कुंकुम, चन्दन, पुष्प, लोहा, ताम्र, वांस्य और चाँदी ब्राह्मणको देना चाहिये। यह योगव्रत है। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसको कभी अपने इष्टसे वियोग नहीं होता। जो कार्तिकी पूर्णिमासे आरम्भ कर आश्विनकी पूर्णिमातक बारह पूर्णिमाओंमें क्रमसे मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन—इन बारह राशियोंकी स्वर्ण-प्रतिमाओंको वस्त्र, माल्य आदिसे अलंकृत एवं पूजितकर दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको दान करता है, उसके सम्पूर्ण उपद्रवोंका शमन हो जाता है एवं सारी आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसे सोमलोककी प्राप्ति होती है। यह राशिव्रत कहलाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— महाराज ! मैं इन विविध व्रतोंको बतलाया है, इन व्रतोंकी विधि श्रवण करने या पढ़ने-मात्रसे ही पातक, महापातक और उपपातक नष्ट हो जाते हैं। जो कोई भी व्यक्ति इन व्रतोंको भक्तिपूर्वक करेगा, उसे धन, सौख्य, संतान, स्वर्ग आदि कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं होगा।

(अध्याय १२१)



### माघ-स्नान-विधि

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! कलियुगमें मनुष्योंको स्नान-कर्ममें शिथिलता रहती है, फिर भी माघ-स्नानका विशेष फल होनेसे इसकी विधिकी कर्णन कर रहा हूँ। जिसके हाथ, पाँव, छापी, मन अच्छी तरह संयत हैं और जो विद्या, तप तथा कीर्तिसे सम्पन्न है, उन्हे ही तीर्थ, स्नान-दान आदि पुण्य कर्मोंका शास्त्रोंमें निर्दिष्ट फल प्राप्त होता है। परंतु श्रद्धाहीन, पापी, नास्तिक, संशयात्मा और हेतुवादी (युक्तार्थिक) इन पाँच व्यक्तियोंको शास्त्रोंक तीर्थ-स्नान आदिका फल नहीं मिलता<sup>१</sup>।

प्रयाग, पुष्कर तथा कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंमें अथवा चाहे जिस स्थानपर माघ-स्नान करना हो तो प्रातःकाल ही स्नान करना चाहिये। माघ मासमें प्रातः सूर्योदयसे पूर्व स्नान करनेसे सभी महापातक दूर हो जाते हैं और प्रजापत्य-यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण सदा प्रातःकाल स्नान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। उष्ण जलसे स्नान, बिना ज्ञानके मन्त्रका जप, श्रोत्रिय ब्राह्मणके बिना श्राद्ध और सार्वकालिक समय भोजन व्यर्थ होता है। वायव्य, चारुण, ब्राह्म और दिव्य—ये चार प्रकारके स्नान होते हैं। गायोंके रजसे वायव्य, मन्वोंसे ब्राह्म, समुद्र, नदी, तालाब इत्यादिके जलसे चारुण तथा वर्षिके जलसे स्नान करना दिव्य स्नान कहलाता है। इनमें चारुण स्नान विशिष्ट स्नान है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी और बालक, तरुण, वृद्ध, स्त्री तथा नपुंसक आदि सभी माघ मासमें तीर्थोंमें स्नान करनेसे उत्तम फल प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मन्त्रपूर्वक स्नान करें और स्त्री तथा शूद्रोंको मन्त्रहीन स्नान करना चाहिये। माघ मासमें जलका यह कहना है कि जो सूर्योदय होते ही मुझमें स्नान करता है, उसके ब्रह्महत्या, सुरापान आदि बड़े-से-बड़े पाप भी हम तत्काल धोकर उसे सर्वथा शुद्ध एवं पवित्र कर डालते हैं<sup>२</sup>।

माघ-स्नानके व्रत करनेवाले व्रतीको चाहिये कि वह संन्यासीकी भाँति संयम-नियमसे रहे, दुष्टोंका साथ नहीं करे। इस प्रकारके नियमोंका दृढ़तासे पालन करनेसे सूर्य-चन्द्रके सम्मान उत्तम ऐश्वर्यको प्राप्ति होती है।

फौव-फाल्गुनके मध्य मकरके सूर्यमें तीस दिन प्रातः माघ-स्नान करना चाहिये। ये तीस दिन विशेष पुण्यप्रद हैं। माघके प्रथम दिन ही संकल्पपूर्वक माघ-स्नानका नियम ग्रहण करना चाहिये। स्नान करने जाते समय व्रतीको बिना वस्त्र ओढ़े जलसे जो कष्ट सहन करना पड़ता है, उससे उसे यात्रामें पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। तीर्थमें जाकर स्नानकर मस्तकपर मिट्टी लगाकर सूर्यको आर्घ्य देकर चित्तोंका तर्पण करे। जलसे बाहर निकलकर इष्टदेवको जलामकर शंख-चक्रधारी पुष्पचोतम भगवान् श्रीमाधवका पूजन करे। अपनी सामर्थ्यके अनुसार यदि हो सके तो प्रतिदिन हवन करे, एक बार भोजन करे, ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करे और भूमिपर शयन करे। असमर्थ होनेपर जितना नियमका पालन हो सके उतना ही करे, परंतु प्रातःस्नान अवश्य करना चाहिये। तिलका उबटन, तिलमिश्रित जलसे स्नान, तिलसे मितु-तर्पण, तिलका हवन, तिलका दान और तिलसे बनी हुई सामग्रीका भोजन करनेसे किसी भी प्रकारका कष्ट नहीं होता<sup>३</sup>। तीर्थमें शीतके निवारण करनेके लिये अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिये। तैल और अक्षिलेका दान करना चाहिये। इस प्रकार एक माह तक स्नानकर अन्तमें वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि देकर ब्राह्मणका पूजन करे और केवल, मृगकर्म, वस्त्र, रत्न तथा अनेक प्रकारके पहननेवाले कपड़े, रजाई, जुता तथा जो भी शीतनिवारक वस्त्र हैं, उनका दान कर 'माधवःप्रीयताम्' यह वाक्य कहना चाहिये। इस प्रकार माघ मासमें स्नान करनेवालेके अगम्यागमन, सुवर्णकी चोरी आदि गुप्त अथवा प्रकट जितने भी पातक हैं, सभी नष्ट

१-यस्य हस्ती च पादौ च कक्ष्यमनु सुसंयतम्। विद्या तथा कीर्तिश्च स तीर्थस्नानकुलोः।

अश्वघोषः कालका नीलकोट्यधिकसंज्ञः। हेतुविदाश्च पंडिते च तीर्थव्रतधर्माः॥ (उत्तरपर्व १२२।३-४)

२-माघमासे षट्पञ्चमः किञ्चिदभ्युदिते रज्ज्वैः ब्रह्मणे वा मृगानां वा क क क त त पुलेमहे॥ (उत्तरपर्व १२२।१५)

३-तिलस्नाने तिलोद्गीर्णे तिलमोक्षे तिलेदेवकी। तिलजोषे च दाने च कर्तव्ये न्यस्येदिति॥ (उत्तरपर्व १२२।२७)

हो जाते हैं। माध-आयी पिता, पितामह, प्रपितामह तथा माता, मातामह, वृद्धमातामह आदि इन्हीं कुल्लेखित सम्स्त पितरों

आदिका उद्धार कर और सभी आनन्दोंको प्राप्तकर अन्तमें विष्णुलोकको प्राप्त करता है<sup>१</sup>। (अध्याय १२२)

### स्नान और तर्पण-विधि

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**एकजन्म! स्नानके बिना न तो शरीर ही निर्मल होता है और न भावकी ही शुद्धि होती है, अतः शरीरकी शुद्धिके लिये सबसे पहले स्नान करनेका विधान है। घरमें रखे हुए अथवा तुरंतके निकाले हुए जलसे स्नान करना चाहिये। (किसी जलशय या नदीका स्नान सुलभ हो तो और उत्तम है।) मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको मूल मन्त्रके द्वारा तीर्थकी कल्पना कर लेनी चाहिये। 'इह नमो नारायणाय'—यह मूल मन्त्र है। पहले हाथमें कुश लेकर विधिपूर्वक आचमन करे तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए बाहर-भीतरसे पवित्र रहे। फिर चार हाथका चौथो मण्डल बनाकर उसमें निष्काङ्क्षित मनोद्वारा भगवती गङ्गाका आवाहन करे—'गङ्गे! तুম भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंमें प्रकट हुई हो, श्रीविष्णु ही तुम्हारे देवता हैं, इसीलिये तुम्हें वैष्णवी कहते हैं। देवि! तू जन्मसे लेकर मृत्यु तक मेरे द्वारा किये गये सम्स्त पापोंसे मेरा त्राण करे। सर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, इसे वायुदेवताने (गिनकर) कहा है। माता जाह्नवि। वे सब-के-सब तीर्थ तुम्हारे जलमें स्थित हैं। देवलोकमें तुम्हारा नाम नन्दिनी और नलिनी है। इनके अतिरिक्त क्षमा, पृथ्वी, आकाशगङ्गा, विश्वकरा, शिवा, अमृत, विद्याधरा, सुप्रसन्न, लोक-प्रसादिनी, क्षेमा, जाह्नवी, शान्त और शान्तिप्रदायिनी आदि भी तुम्हारे अनेकों नाम हैं<sup>२</sup>। जहाँ स्नानके समय इन पवित्र नामोंका वीरतन होता है, वहाँ त्रिपथगामिनी भगवती गङ्गा उपस्थित हो जाती है।

सात बार उपर्युक्त नामोंका जप करके सम्पूटके आकारमें

दोनों हाथोंको जोड़कर उनमें जल ले। तीन, चार, पाँच या सात बार उसे अपने मस्तकपर डाले, फिर विधिपूर्वक मूर्तिको अधिर्मान्त्रित कर अपने अङ्गोंमें लगाये। अधिर्मान्त्रित करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

अक्षकान्ते रथक्रान्ते विष्णुकान्ते वसुधरे।

मूर्तिके हर मे सर्वं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥

उद्धृतासि वराहेण कुञ्जोन शतधातुना।

नमस्ते सर्वलोकानामसुधारिणि सुव्रते॥

(उत्तरपर्व १२३।१२-१७)

'वसुधरे! तुम्हारे ऊपर अब और रथ चलाने करते हैं। भगवान् श्रीविष्णुने भी कामरूपसे तुम्हें एक पैरसे नापा था। मूर्तिके। मैंने जो कुछ कर्म किये हो, उन सबोंको दूर कर दो। देवि। भगवान् श्रीविष्णुने सैकड़ों भुजाओंवाले वराहका रूप धारण करके तुम्हें जलसे बाहर निकाला था। तूम सम्पूर्ण लोकोंके सम्स्त प्राणियोंमें प्राण सेचन करनेवाली हो। सुव्रते। तुम्हें मेरा नमस्कार है।'

इस प्रकार मूर्तिको लगाकर पुनः स्नान करे। फिर विधिपूर्वक आचमन करके उठे और शुद्ध सपेद धोती एवं चहर धारण कर त्रिलोकोंको तृप्त करनेके लिये तर्पण करे। सबसे पहले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और प्रजापति का तर्पण करे। तत्पश्चात् 'देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, श्रेष्ठ असुराओं, क्रूर सर्प, गरुड पक्षी, वृक्ष, जम्बक आदि असुर, विद्याधर, मेघ, आकाशचारी जीव, निरुधर जीव, पापी जीव तथा धर्मपरायण जीवोंको तृप्त करनेके लिये मैं जल देता हूँ—यह कहकर उन सबको जलज्जलि दे<sup>३</sup>। देवताओंका तर्पण करते समय यज्ञोपवीतको

१-माध-स्नान-मातामहके नामसे विभिन्न पुरुषोंके कई सन्तान पन्थ हैं। जिनका स्मरण भोग इस अध्यायमें उद्धृत है।

२-विष्णुकादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता। पत्ति नमस्तेनमस्तस्मदावधमरणातिशयात्॥

तिसः कोलजेऽर्धकोटी च तोषांना वायुदेवता। दिवि भूम्यन्तरीये च तानि ते स्तुति जाह्नवि॥

नन्दिनीलोकं ते नाम देवेषु नलिनीति च। क्षमा पृथ्वी च विद्वान् विश्वकरा शिवामृत॥

विद्याधरा सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी। क्षेमा तथा जाह्नवी च शान्ता शान्तिप्रदायिनी॥ (उत्तरपर्व १२३।५-८)

३-देवः यक्षराक्षसा नागा गन्धर्वभरता गणाः। क्रूराः सर्पाः सुरगणास्तथैव जम्बकद्वयः॥

बायें कंधेपर डाले रहे, तत्पश्चात् उसे गलेमें मालाकी भाँति कर ले और मनुष्यों, ऋषियों तथा ऋषिपुत्रोंका भक्तिपूर्वक तर्पण करे। 'सनक, सनन्दन, सन्वतन, कविल, आसुरि, वेंडु और पञ्चशिख'—ये सभी मेरे लिये जलसे सदा तृप्त हों।' ऐसी भावना करके जल दे। इसी प्रकार मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु, नारद तथा सम्पूर्ण देवर्षियों एवं ब्रह्मर्षियोंका अक्षतसहित जलके द्वारा तर्पण करे। इसके बाद यज्ञोपवीतको दायें कंधेपर रखकर बायें धुत्नेको पृथ्वीपर टेककर बैठे, फिर अग्निष्वात, बर्हिषद्, हविष्मन्, ऊग्रप, सुक्वली, भीम, सोमप तथा आग्र्यप-संज्ञक पित्तोक्त तिल और चन्दनयुक्त जलसे भक्तिपूर्वक तर्पण करे। इसी प्रकार हाथोंमें कुश लेकर पवित्र भावसे परलोकवासि पिता, पितामह आदि और मातामह आदिकर नाम-गोत्रका उच्चारण करते हुए तर्पण करे। इस क्रमसे विधि और भक्तिके साथ सबका तर्पण करके निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

येऽब्रान्धवा ब्रान्धवा वा येऽब्रजन्मनि ब्रान्धवाः ।

ते तृप्तिमश्मिन्ना यान् यक्षास्मत्तोऽभिव्राजन्ति ॥

(उत्तरपर्व १२४।२५)

जो लोग मेरे ब्रान्धव न हों, जो मेरे ब्रान्धव ही तथा जो दूसरे किसी जन्ममें मेरे ब्रान्धव रहे हों, वे सब मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हों। उनके मित्रा और जी जो कोई प्रणी मुझसे जलकी अधिलावा रखते हों, वे भी तृप्ति-लाभ करें।' (ऐसा कहकर उनके उद्देश्यसे जल गिराये।)

तत्पश्चात् विधिपूर्वक आचमन कर अपने आगे पुष्प और अक्षतोंसे कमलकी आकृति बनाये। फिर यज्ञपूर्वक सूर्यदेवके नामोंका उच्चारण करते हुए अक्षत, पुष्प और रक्तचन्दनमिश्रित

जलसे आर्य्य दे। अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते विष्णुसखाय वै ॥

सहस्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतजसे ।

नमस्ते सर्ववपुषे नमस्ते सर्वशक्तये ॥

जगत्सामिन् नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित ।

पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाद्गन्धधारिणे ॥

नमस्ते सर्वलोकेश सर्वसुरनमस्कृत ।

सुकृते दुष्कृते चैव सम्प्रजानासि सर्वदा ॥

सत्यदेव नमस्तेऽस्तु सर्वदेव नमोऽस्तु ते ।

दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १२३।२७—३१)

'हे भगवान् सूर्य ! आप विश्वरूप और भगवान् विष्णुके सखा हैं, इन दोनों रूपोंमें आपको नमस्कार है। आप सहस्रों किरणोंसे सुशोभित और सबके तेजरूप हैं, आपको सदा नमस्कार है। सर्वशक्तमान् भगवन् ! सर्वरूपधारी आप परमेश्वरके बार-बार नमस्कार है। दिव्य चन्दनसे भूषित और रंजकारके माली भगवन् ! आपको नमस्कार है। कुण्डल और अङ्गद आदि आभूषण धारण करनेवाले पद्मनाभ ! आपको नमस्कार है। भगवन् ! आप सम्पूर्ण लोकोंके ईश और सभी देवोंके द्वारा वन्दित हैं, आपको मेरा प्रणाम है। आप सदा सब पाप-पुण्यको भलीभाँति जानते हैं। सत्यदेव ! आपको नमस्कार है। सर्वदेव ! आपको नमस्कार है। दिवाकर ! आपको नमस्कार है। प्रभाकर ! आपको नमस्कार है।

इस प्रकार सूर्यदेवको नमस्कार कर तीन बार प्रदक्षिणा करे। फिर द्विज, गौ और सुवर्णका स्पर्श कर अपने घर जाय और वहाँ भगवान्की प्रतिमाका पूजन करे। (अध्याय १२३)

## रुद्र-स्नानकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! अब आप सभी दोषोंको शान्त करनेवाले रुद्र-स्नानके विधानका वर्णन करे।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! इस सम्बन्धमें महर्षि अगस्त्यके पूछनेपर देवसेनापति भगवान् स्कन्दने जो

कथाया था, उसे आप सुनें। जो मृतवत्सा (जिसके लङ्के अल्प अवस्थामें मर जाते हों), बन्ध्या, दुर्भगा, सेतानहीन या केवल कन्या जनती हों, उस स्त्रीको चाहिये कि वह रुद्र-स्नान करे। अष्टमी, चतुर्दशी अथवा रविवारके दिन नदीके तटपर या

विधिधरा	जलधारस्तदैकाग्रमिन् । निराधारः ये जीवाः पापकर्मिताश्च ये ॥	वे
	तेषामप्यन्यथायैर् टोपते सज्जिते मया ।	(उत्तरपर्व १२३।१५—१७)
१-सनकः सनन्दनश्चैव	तृतीयः सन्वतनः कविलश्चासुरिश्चैव	वेंडुः पञ्चशिखस्तथा ॥
सर्वे ते	तृत्विक्वायानु मरुतेनानुच सन्त ।	(उत्तरपर्व १२३।१८-१९)

महानदियोंके संगममें, दिवालयमें, गोष्ठमें अथवा अपने घरेमें सुयोग्य ब्राह्मणद्वारा स्नानविधिका परिज्ञानकर स्नान करे। वह गोबरद्वारा उपलिप्त स्थानमें एक उत्तम मण्डप बनाकर उसके मध्यमें अष्टदल कमल बनाये। उसके मध्यमें कर्णिकालके ऊपर भगवान् महादेवकी, उनके वाम तथा दक्षिण भागमें क्रमशः पार्वती एवं विनायककी और कमलके अष्टदलोंमें इन्द्रदि दिक्पालोंकी स्थापना करे। तदनन्तर गन्धार्द्र उपचारोंसे उनकी पूजा करे। मण्डपके चारों कोणोंमें कलश स्थापित करे। चारों दिशाओंमें भुत-बलि भी दे। मण्डपके अग्निकोणमें कुण्ड बनाकर नमक, सर्प, धी और मधुसे 'मा नस्तोके तनये' (यजु- १६।१६) इत्यादि वैदिक मन्त्रसे हवन करे। आचार्य, ब्रह्मा एवं ब्रह्मिणोंके साथ जपकाण्ड भी करण करे। एकदश रुद्रपाठ भी कराये। इस प्रकार दूसरे मण्डपका निर्माण कर उस व्रतकर्त्री स्त्रीको मण्डपमें बैठकर रुद्रपूजाक आचार्य

उसे स्नान कराये। अर्क-पत्रके दोनेमें जल लेकर रुद्रैकदशिनिका पाठ कर उस अभिमन्त्रित जलसे स्त्रीका अभिषेक करे। अनन्तर सप्तमृतिकामिश्रित जल, रुद्र-कलशके जल एवं इन्द्रार्द्र दिक्पालोंके पूजित कलशोंके अभिमन्त्रित जलसे उसे स्नान कराये। इस प्रकार रुद्र-स्नान-विधि पूर्ण हो जानेपर सर्पमयी धेनु, प्रत्यक्ष धेनु तथा अन्य सामग्री आचार्यको दान करे और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वस्त्र, दक्षिणा देकर क्षमा-याचना करे। जो स्त्री इस विधिसे स्नान करती है, वह सौभाग्य-सुख प्राप्त करती है और पुत्रवती होती है। उसके शरीरमें रहनेवाले सभी दोष ब्राह्मणोंकी आज्ञासे, रुद्र-स्नान करनेसे दूर हो जाते हैं। पुत्र, लक्ष्मी तथा सुखकी इच्छा करनेवाली नारीको यह व्रत अवश्य करना चाहिये, इससे यह जीवितवत्ता हो जाती है।

(अध्याय १२४)



### ग्रहण-स्नानका माहात्म्य और विधान<sup>१</sup>

**युधिष्ठिरने कहा—**इत्य और मन्त्रोंकी विधियोंके ज्ञाता (पूर्णवेदीगुरु) भगवान्। सूर्य एवं चन्द्रके ग्रहणके अवसरपर स्नानकी जो विधि है, मैं उसे सुनना चाहता हूँ।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**राजन्। जिस पुरुषकी राशिपर ग्रहमका द्रावण (लगना) होता है, उसके लिये मन्त्र और औषधसहित स्नानका जो विधान है, उसे मैं बताता रहा हूँ। ऐसी मनुष्यको चाहिये कि चन्द्र-ग्रहणके अवसरपर वार ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर गन्ध-माल्य आदिसे उनकी पूजा करे। ग्रहणके पूर्व ही औषध आदिको एकत्र कर ले। फिर छिद्ररहिता चार कलशोंकी, उनमें समुद्रकी भाँकना करके स्थापना करे। फिर उनमें सप्तमृतिक—हाथीसर, घुड़मूत्र, तन्मीक (बल्मोट-दिवाड़), नदीके संगम, सरोवर, गोशाला और राजद्वारके मिट्टी लाकर डाल दे। तत्पश्चात् उन कलशोंमें पञ्चगव्य, मोती, गोरोचना, कमल, शङ्ख, पञ्चरत्न, स्रष्टिक, श्वेत चन्दन, तीर्थ-जल, सरसों, राजदन्त (एक ओषधि-विशेष), कुमुद (कुई) खस, गुग्गुलु—यह सब डालकर उन

कलशोंपर देवताओंका आवाहन इस प्रकार करे—'सभी समुद्र, नदियाँ, नद और जल्युद्ध तीर्थ यज्ञमन्त्रके पत्रोंको गृह करनेके लिये यहाँ पधारे।' इसके बाद प्रार्थना करे—'जो देवताओंके स्वामी माने गये हैं तथा जिनके एक हजार नेत्र हैं, वे कवधारी इन्द्रदेव मेरी ग्रहणजन्य पीडाको दूर करें। जो समस्त देवताओंके मुखस्वरूप, सात जिह्वाओंसे युक्त और अनूल कान्तिवाले हैं, वे अग्निदेव चन्द्र-ग्रहणसे उत्पन्न हुई मेरी पीडाका विनाश करें। जो समस्त प्राणियोंके कर्मोंके साथी हैं तथा महिष जिनका वाहन है, वे धर्मस्वरूप यम चन्द्र-ग्रहणसे उन्मुक्त हुई मेरी पीडाको मिटाये। जो राक्षसगणोंके अधीश्वर, साक्षात् प्रलयार्थिके सद्गुण भयानक, खड्गधारी और अत्यन्त भयंकर हैं, वे निर्द्वैति देव मेरी ग्रहणजन्य पीडाको दूर करें। जो नागपञ्च धारण करनेवाले हैं तथा मकर जिनका वाहन है, वे जलघोषर साक्षात् कल्पदेव मेरी चन्द्र-ग्रहणजनित पीडाको नष्ट करें। जो प्राणरूपसे समस्त प्राणियोंकी रक्षा करते हैं, (तीव्रगामी) कृष्णमृग जिनका प्रिय वाहन है, वे वायुदेव मेरी

१-यह अध्याय मत्स्यपुराणके ६८ वे अध्यायमें इसी प्रकार प्राप्त है, लेकिन भविष्यपुराणका यह कुछ कुट्टिपूर्ण एवं अशुद्ध है, अतः उसे सुद्ध करनेके लिये मत्स्यपुराणकी सहायता ली गयी है।



चन्द्रग्रहणसे उत्पन्न हुई पीडाका विनाश करे।

‘जो (नव) निधियोंने<sup>१</sup> स्वामी तथा सङ्ग, विशूल और गदा धारण करनेवाले हैं, वे कुम्भदेव चन्द्र-ग्रहणसे उत्पन्न होनेवाले मेरे पापको नष्ट करें। जिसका ललाट चन्द्रमासे सुशोभित है, वृषभ जिनका वाहन है, जो पिनाक नामक धनुष (या विशूलको) धारण करनेवाले हैं, वे देवधिदेव होकर मेरी चन्द्र-ग्रहणजन्य पीडाका विनाश करें। ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यसहित त्रिलोकियों में जितने स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं, वे सभी मेरे (चन्द्रजन्य) पापको भस्म कर दें।’ इस प्रकार देवताओंको आमन्त्रित कर व्रती ब्रह्मदेव, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंकी ध्वनिके साथ-साथ उन उपकरणयुक्त कलशोंके जलसे स्वयं अभिषेक करें। फिर श्वेत पुष्पोंकी माला, चन्दन, वस्त्र और गोदानद्वारा उन ब्राह्मणोंकी तथा इष्ट देवताओंकी पूजा करे। तत्पश्चात् वे द्विजवर उन्हीं मन्त्रोंको वस्त्र-पट्ट अथवा कमलदलपर आर्द्रित करें फिर इक्षुयुक्त उन कलशोंको यज्ञमार्गके विरपर रख दें। उस समय यज्ञमान पूर्वाभिमुख हो

अपने इष्टदेवकी पूजा कर उन्हें नमस्कार करते हुए ग्रहण-कालको वस्त्रको व्यतीत करे। चन्द्र-ग्रहणके निवृत्त हो जानेपर मातृसिक कार्य कर गोदान करे और उस (मन्त्रद्वारा आर्द्रित) पट्टको स्नानादिसे शुद्ध हुए ब्राह्मणको दान कर दे।

जो मानव इस उपर्युक्त विधिके अनुसार ग्रहणका स्नान करता है, उसे न तो ग्रहणजन्य पीडा होती है और न उसके बन्धुजनोका विनाश ही होता है, अपितु उसे पुनरागमनरहित परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सूर्य-ग्रहणमें मन्त्रोंमें सदा सूर्यका नाम उच्चारण करना चाहिये। इसके अतिरिक्त चन्द्र-ग्रहण एवं सूर्य-ग्रहण—दोनों अवसरोंपर सूर्यके निमित्त पशुपति मर्षण और निशपति चन्द्रमाके निमित्त एक सुन्दर कपिल गौका दान करनेका विधान है। जो मनुष्य इस (ग्रहण-स्नानकी विधि) को नित्य सुनता अथवा दूसरेको श्रवण कराता है, वह सम्पूर्ण पापोंमें मुक्त होकर इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

(अध्याय १२५)

### मरणासत्र (मृत्युके पूर्व) प्राणीके कर्तव्य तथा ध्यानके चतुर्विध भेद

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन्। गृहस्थ व्यक्तिजो अपने अन्त समयमें क्या करना चाहिये<sup>१</sup>। कृपाकर इस विधिके आप बताये। मुझे यह सुननेकी बहुत ही अभिलाषा है।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज। जब मनुष्यको यह ज्ञात हो जाय कि उसका अन्त समीप आ गया है तो उसे गरुडध्वज भगवान् विष्णुका स्मरण करना चाहिये। स्नान करके पवित्र हो शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण कर अनेक प्रकारके पुष्पादि उपचारोंसे नारायणकी पूजा एवं स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करे। अपनी शक्तिके अनुसार गाय, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदिक दान करे और बन्धु, पुत्र, मित्र, स्त्री, श्वेत, धन, धान्य तथा पशु आदिसे चित्तको हटाकर ममत्वका परित्याग कर दे। मित्र, शत्रु, उदासीन अपने और पराये लोगोंके उपकार और

अपकारके विषयमें विचार न करे अर्थात् ज्ञान हो जाय। प्रयत्नपूर्वक सभी शुभ एवं अशुभ कर्मोंका परित्याग कर इन श्लोकोंका स्मरण करे—‘मैंने समस्त भोगों एवं मित्रोंका परित्याग कर दिया, भोजन भी छोड़ दिया तथा अनुलेपन, माल्य, आभूषण, गीत, दान, आसन, हवन आदि क्रियाएँ, पदार्थ, नित्य-वैभितिक और काय्य सभी क्रियाओंका उत्सर्जन कर दिया है। ब्राह्मणोंका भी मैंने परित्याग कर दिया है, आश्रमधर्म और वर्णधर्म भी मैंने छोड़ दिये हैं। जबतक मेरे हाथ-पैर चल रहे हैं, जबतक मैं स्वयं अपना कर्त्य कर लूँगा, मुझसे सभी निर्भय रहें, कोई भी पाप कर्म न करे। आकाश, जल, पृथ्वी, विवर, बिल, पर्वत, पत्थरोंके मध्य, धान्यादि फसलें, वस्त्र, शयन तथा आसनों आदिमें जो कोई प्राणी

१-पुराणों तथा महाभारतदिमें विधिपरीत पञ्चरात्र कुम्भदेव सप्त नै विधियोंके साथ ही प्रकट होनेकी बात मिलती है। पद, महापद, श्वेत, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और कर्ज—ये नै विधिमान हैं।

२-इसी तरहकी बातें गरुडपुराण, भागवत १।१९।३७-३८ आदिमें महाराज परीक्षितद्वारा महर्षि शुक्रदेवकी आदिसे पूछी गयी हैं तथा मनुष्यके जीवनका कय अन्त हो जाय, वह नहीं कहा जा सकता। अन्त सदा ही ध्यानपूर्वक भगवान्का स्मरण-भजन करते रहना चाहिये, यही सबका सारांश है।

अवस्थित है, वे मुझसे निर्भय होकर सुखी रहे। जगद्गुरु भगवान् विष्णुके अतिरिक्त मेरा कोई बन्धु नहीं। मेरे नीचे-ऊपर, दाहिने-बायें, मस्तक, हृदय, बाहुओं, नेत्रों तथा कानोंमें मित्र-रूपमें भगवान् विष्णु ही विराज रहे हैं।'

इस प्रकार सब कुछ छोड़कर सर्वेश भगवान् अच्युतको हृदयमें धारण कर निरन्तर वासुदेवके नामका कीर्तन करता रहे और जब मृत्यु अति समीप आ जाय, तब दक्षिणाम कुण्ड विछाड़कर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर सिरकर शयन करे तथा जगत्पति भगवान् विष्णुका इस प्रकार चिन्तन करे—

विष्णुं जिष्णुं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम् ।  
नारायणं नरं शौरिं वासुदेवं जनार्दनम् ॥  
वाराहं यज्ञपुराणं पुण्डरीकाक्षमभ्युक्तम् ।  
वामनं श्रीधरं कृष्णं नृसिंहमपराजितम् ॥  
पद्मनाभमङ्गं श्रीशं दुर्मोदमधोऽक्षजम् ।  
सर्वेश्वरेश्वरं शुद्धमननं विश्वसर्पिणम् ॥  
लक्ष्मिणं गदिनं शान्तं शङ्खिनं गरुडध्वजम् ।  
किरीटकौस्तुभधरं प्रणमान्यहमख्ययम् ॥  
अहमस्मि जगन्नाथ मयि वासं कुरु हुतम् ।  
आवयोरन्तरं मातु समीराकाशखेति ॥  
अयं विष्णुरयं शौरिरयं कृष्णः पुरो मम ।  
नीलैतपल्लवदश्यामः पद्मपत्रापलेश्वरः ॥  
एष पश्यतु मामीशः पदपाभ्यहमख्योऽक्षजम् ।  
इत्थं जपेदेकमनाः स्मरन् सर्वेश्वरं हरिम् ॥

(उत्तरार्ध १२५।१९—३५)

'भगवान् विष्णु, ज्ञिष्णु, द्विषोक्तेश, केशव, मधुसूदन, नारायण, नर, शौरि, वामदेव, जनार्दन, वाराह, यज्ञपुरुष, पृष्ण्डीकाक्ष, अच्युत, वामन, श्रीधर, कृष्ण, नृसिंह, अपराजित, परानाथ, अज, श्रीज, दामोदर, अयोधन

सर्वेश्वरेश्वर, शुद्ध, अनन्त, विश्वरूपी, चक्री, गदी, शक्त, शंखी, गरुडध्वज, विजितकौस्तुभधर तथा अव्यय परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ। जगन्नाथ ! मैं आपका ही हूँ, आप शीघ्र मुझमें निवास करें। वायु एवं आकाशकी तरह मुझमें और आपमें कोई अन्तर न रहे। मैं नीले कमलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन भगवान्, विष्णु अथवा शीरि अथवा भगवान् श्रीकृष्ण आपको अपने सामने देख रहा हूँ, आप भी मुझे देखें।'

इन मन्त्रोंको धड़कर भगवान् विष्णुको प्रणाम करे और उनके दर्शन करे तथा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्रको निरन्तर जप करता रहे। जो व्यक्ति प्रसन्नमुख, ईश्वर, वाक्, गदा तथा पद्म धारण किये हुए, कैयूर, कटक, कुण्डल, श्रीवत्स, पीताम्बर आदिमें विभूषित, नवीन मोषके समान शयनस्वरूप भगवान् विष्णुका ध्यान कर प्राणोंका परित्याग करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो भगवान् अच्युतमें लीन हो जाता है।

राजा युधिष्ठिरने पुनः पूछा—भगवन् ! अतः समयको जो यह विधि आपने बताया, वह स्वास्थ्यवर्धक रहनेपर ही सम्भव है, परन्तु अन्तःसमयमें तरुण और नीरोगी पुरुषोंकी भी चित्तवृत्ति मोहग्रस्त हो जाती है, वृद्ध और रोगियोंकी तो बात ही क्या है। अतिवृद्ध और रोगग्रस्त व्यक्तिके लिये कुशाङ्कित आसनपर ध्यान करना तो असम्भव ही है। इसीलिये प्रभो ! दूसरा भी कोई सुगम उपाय बतानेका कष्ट करें, जिससे साधन निष्फल न हो।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! यदि और कुछ करना सम्भव न हो तो सबसे सरल उपाय यह है कि चारों तरफसे चित्तवृत्ति हटाकर गोविन्दका स्मरण करते हुए प्राणका त्याग करना चाहिये, क्योंकि व्यक्ति जिस-जिस भावका स्मरण

[illegible]

कर प्राण त्यागता है, उसे वही भाव प्राप्त होता है। अतः सब प्रकारसे निवृत्त होकर निरन्तर वासुदेवका चिन्तन करना चाहिये<sup>१</sup>।

राजन् ! अब आप भगवान्‌के चिन्तन-ध्यानके स्वरूपको सुनें, जिन्हें महर्षि मार्कण्डेयजीने मुझसे कहा था—उज्य, उपभोग, शयन, भोजन, वाहन, मणि, स्त्री, गन्ध, माल्य, वस्त्र, आभूषण आदिमें यदि अत्यन्त मोह रहता है तो यह राजजन्त 'आद्य' ध्यान है।

यदि जलाने, मारने, तड़पाने, किसीके ऊपर प्रहार करनेकी द्वेषपूर्ण वृत्ति हो और दया न आये तो इसे ही क्रोधजनित 'रौद्र' ध्यान कहा गया है। वेदार्थके चिन्तन,

### इष्टापूर्तकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! विश्वपूर्वक वापी, कूप, तडाग, खावली, वृक्षोद्यान तथा देवमन्दिर आदिको निर्माण करनेवाले तथा इन कर्मोंमें सहयोगी—कर्मधर शिल्पी, सूत्रधार आदि सभी पुण्यकर्मा पुरुष अपने इष्टापूर्तधर्मके प्रभावसे सूर्य एवं चन्द्रमासी प्रभोंके समान कान्तिमान् विमानमें बैठकर दिव्यलोकको प्राप्त करते हैं। जलशय आदिकी सुदृष्टिके समय जो जीव मर जाते हैं, उन्हें भी उत्तम गति प्राप्त होती है। गायके शरीरमें जितने भी रोमकूप हैं, उतने दिव्य वर्षातक तडाग आदिको निर्माण करनेवाला स्वर्गमें निवास करता है। यदि उसके गिर दर्शितिके प्राप्त हुए हों तो उनका भी वह उद्धार कर देता है। पितृगण यह गाय गाते हैं कि देखो ! हमारे कुलमें एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने जलशयको निर्माणकर प्रतिष्ठा की। जिस तालाबके जलको पीकर गौर सत्पन्न हो जाती है, उस तालाब बनवानेवालेके सात कुलमें उद्धार हो जाता है। तडाग, वापी, देवालय और सभ्य छायावाले वृक्ष—ये चारों इस संसारसे उद्धार करते हैं।

इन्द्रियोंके उपशमन, मोक्षकी चिन्ता, प्राणियोंके कल्याणकी भावना आदि ही धर्मपूर्ण सत्त्विक ('धर्म्य') ध्यान है। समस्त इन्द्रियोंका अपने-अपने विषयोंसे निवृत्त हो जाना, हृदयमें इष्ट-अनिष्ट किसीकी भी चिन्ता नहीं करना और आत्मस्थ होकर एकमात्र परमेश्वरका चिन्तन करना, परमात्मनिष्ठ हो जाना—यह 'शुक्ल'-ध्यानका स्वरूप है। 'आद्य' ध्यानसे तिरस्कृत-वेदि तथा अधोगतिकी प्राप्ति होती है, 'रौद्र' ध्यानसे नरक प्राप्त होता है। 'धर्म्य' (सत्त्विक) ध्यानसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है और 'शुक्ल'-ध्यानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे कल्याणकारी 'शुक्ल' ध्यानमें ही मन-चित्त सदा लगा रहे। (अध्याय १२६)

जिस प्रकार पुत्रके देखनेसे माता-पिताके स्वरूपका ज्ञान होता है, उसी प्रकार जलशय देखने और जल पीनेसे उसके कर्तके शुभाशुभका ज्ञान होता है। इसलिये न्यायसे धनका उपार्जनकर तडाग आदि बनवाना चाहिये। धूप और गंधोंसे पशुकुल पक्षिक यदि तडागादिके समीप जलका पान करे और वृक्षोंकी घनी छायामें ठंडी हवाका सेवन करता हुआ विश्राम करे तो तडागादिकी प्रतिष्ठा करनेवाला व्यक्ति अपने मातृकुल और पितृकुलका उद्धार कर स्वयं भी सुख प्राप्त करता है। इष्टापूर्तकर्म करनेवाला पुरुष कृतकृत्य हो जाता है। इस लोकमें जो तडागादि बनवाता है, उसीका जन्म सफल है और उसीकी माता पुत्रियों कहलाती है। वही अजर है, वही अमर है। जबतक तडाग आदि स्थित हैं और उसकी निर्मल कर्तिका प्रचार-प्रसार होता रहता है, जबतक वह व्यक्ति स्वर्गवासका सुख प्राप्त करता है। जो व्यक्ति हंस आदि पक्षीको कमल और कुबलय आदि पुष्पोंसे युक्त अपने तडागमें जल पीता हुआ देखता है और जिसके तालाबमें घट, अञ्जलि, मुस तथा चंचु आदिसे अनेक जीव-जन्तु जल पीते हैं, उसी व्यक्तिका जन्म

१-तिष्ठन् पुञ्जं सन्नं गच्छंस्तथा ध्यायितस्तदा । उच्छन्तिच्छते गोविन्दं संसारात्तपो भवेत् ॥

यं यं चापि स्मरन् ध्यायेत् त्यज्यन्ते कलेषाम् । तं तपेयं वीर्यं सदा तद्वाचपातितः ॥

(उत्तरपर्व १२६। ३९—४०)

२-पशुपशुगणमें यह विषय तीन ज्योंमें तीन बार आया है और केंद्रमें लेकर सृष्टियों तथा अन्य पुराणोंमें भी बार-बार आता है। यह अन्तर्वेदी और बहिर्वेदीके नामसे विख्यात है। इसमें जलशय, वृक्ष, उद्यान आदि लगानेसे सर्वाधिक पुण्यका लभ बताया गया है। यहाँ इसका थोड़ा-सा संक्षेप कर दिया गया है। मात्र सारमूल ज्ञाने दी गयी है।

सफल है, उसकी कर्हातक प्रशंसा की जाय। जो तडाग आदि बनाकर उसके किनारे देवालय बनवाता है तथा उसमें देवप्रतिष्ठा करता है, उसके पुण्यका कर्हातक वर्णन किया जाय ? देवालयकी ईंट जबतक खण्ड-खण्ड न हो जाय, तबतक देवालय बनानेवाला व्यक्ति स्वर्गमें निवास करता है। कूप ऐसे स्थानपर बनवाना चाहिये, जहाँ बहुत-से जीव जल पी सकें, कूपका जल स्वादिष्ट हो तो कूप बनवानेवालेके सत्त कुलोंका उद्धार हो जाता है। जिसके बनाये हुए कूपका जल मनुष्य पीते हैं, वह सभी प्रकारका पुण्य प्राप्त कर लेता है, ऐसा मनुष्य सभी प्राणियोंका उपकार करता है। तडाग बनवाकर उसके तटपर वृक्षोंके बीच उत्तम देवालय बनवानेसे उस व्यक्तिकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त रहती है और बहुत समयतक दिव्य भोग भोगकर वह चक्रवर्ती राजाका पद प्राप्त करता है। जो व्यक्ति वापी, कूप, तडाग, धर्मशाला आदि बनवाकर अन्नका दान करता है और जिसका यक्षन उति मापूर है, उसका नाम यमराज भी नहीं लेते।

वे वृक्ष धन्य हैं, जो फल, फूल, पत्र, मूल, कल्कल, छाल, लकड़ी और छायाद्वारा सबका उपकार करते हैं। वस्तुओंके चाहनेवालोंको वे कभी निराश नहीं करते। धर्म-अर्थसे रहित बहुतसे पुरुषोंसे तो मार्गमें लगाना गया एक ही वृक्ष श्रेष्ठ है, जिसकी छायामें अधिक विश्राम करते हैं। सधन छायावाले श्रेष्ठ वृक्ष अपनी छाया, फलका और छालके द्वारा प्राणियोंको, पुण्यके द्वारा देवताओंको और फलोंके द्वारा पितरोंको प्रसन्न करते हैं। पुत्र तो निश्चित नहीं है कि एक वर्षपर भी श्राद्ध करेगा या नहीं, परंतु वृक्ष तो प्रतिदिन अपने फल-मूल, पत्र आदिका दानकर वृक्ष लगानेवालेका श्राद्ध करते हैं। वह फल न तो अग्रिहोत्रादि कर्म करनेसे और न ही पुत्र उत्पन्न करनेसे प्राप्त होता है, जो फल मार्गमें छायाद्वारा वृक्षके लगानेसे प्राप्त होता है।

छायादार वृक्ष, पुष्प देनेवाले वृक्ष, फल देनेवाले वृक्ष तथा वृक्षघटिका कुलीन स्त्रीकी भाँति अपने पितृकुल तथा पतिकुल दोनों कुलोंको उसी प्रकार सुख देनेवाले होते हैं, जैसे लगाये गये वृक्ष आदि अपने लगानेवाले तथा रक्षा आदि करनेवाले दोनोंके कुलोंका उद्धार कर देते हैं। जो भी बगीचा आदि लगाता है, उसे अवश्य ही उत्तम लोककी प्राप्ति होती है और वह व्यक्ति नित्य गायत्रीजपका, नित्य दानका और नित्य यज्ञ करनेका फल पाता है। जो पुरुष एक पीपल, एक नीम, एक बरगद, दस इमली तथा एक-एक कैश, बिल्व और अमलक तथा पाँच आमके वृक्ष लगाता है, वह कभी नरकका मुँह नहीं देखता<sup>१</sup>। जिसने जलशय्य न बनवाया हो और एक भी वृक्ष न लगाया हो, उसने संसारमें जन्म लेकर कौन-सा कार्य किया। वृक्षोंके सम्मान कोई भी परोपकारी नहीं है। वृक्ष धूम्ये खड़े रहकर दूसरोंको छाया प्रदान करते हैं तथा फल, पुष्प आदिसे सबका सत्कार करते हैं। मानवीको शुभ गति पुरुषोंके बिना नहीं होती—यह कथन तो उचित ही है, किन्तु यदि पुत्र कुपुत्र हो गया तो वह अपने पिताके लिये कलंकस्वरूप तथा नरकका हेतु भी बन जाता है। इसलिये विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि विधिपूर्वक वृक्षारोपण करके उसका फलन-पोषण करे। इससे संसारमें न तो कलंक होता है और न निन्द्य गति ही प्राप्त होती है, बल्कि कीर्ति, यश एवं अन्तमें शुभ गति प्राप्त होती है।

इसी प्रकार जो व्यक्ति भव्य देव-मन्दिर बनवाकर उसमें देवमूर्तियोंकी प्रतिमाओंको स्थापित करता है, मन्दिरमें अनुलेपन, देवताओंका अभिषेक, दीपदान तथा विविध उपचारोंद्वारा उनकी अर्घ्य करता अथवा करवाता है, वह इस संसारमें उन्वयश्री प्राप्त कर अन्तमें परमधामको प्राप्त करता है तथा इस लोकमें कीर्ति एवं यशस्वी शरीरसे प्रतिष्ठित रहता है। (अध्याय १२७—१२९)

### दीपदानकी महिमा-प्रसंगमें जातिस्मरा रानी ललिताका आख्यान

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! वह कौन-सा वत, तप, नियम अथवा दान है, जिसके करनेसे इस लोकमें

अत्यन्त तेजोमय शरीरकी प्राप्ति होती है। इसे आप बतायें। भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! किसी समय

१-अथत्यमेकं पित्रुपदमेकं न्यधोपमेकं दश तिष्ठिद्वीकान्। कर्त्तव्यमिच्छामस्तत्कर्त्तव्यं च पञ्चशतैरेवै नरकं न पश्येत्॥



पिगल नामके एक तपस्वी मधुरामें आकर प्रवास कर रहे थे। उन तपस्वीसे देवी जाम्बवतीने भी यही प्रश्न किया था, उस विषयको आप सुनें—पिगलमुनिने कहा था—‘देवि ! स्नेहान्ति, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, वैधुति, व्यतिपातयोग, उत्तरायण, दक्षिणायन, विषुव, एकादशी, शुक्ल पक्षको चतुर्दशी, तिथिक्षय, सामी तथा अष्टमी—इन पुण्य दिनोंमें स्नान कर, व्रतपरायण स्त्री अथवा पुरुषको अपने अंगनके मध्य धूत-कुम्भ और जलता हुआ दीपक भूमिदेवको दान देना चाहिये। इससे प्रदीप्त एवं ओजस्वी शरीर प्राप्त होती है।

**राजा सुधिधिरने पूछा—**मधुसूदन ! भूमिदेव देवता कौन है ? मेरे इस संशयको दूर करें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! पूर्वकालमें सत्ययुगके आदिमें विशंकु नामका एक (सूर्यवंशी) राजा था, जो सशरीर स्वर्गको जाना चाहता था। पर महर्षि वसिष्ठने उसे बाणधाल बना दिया, इससे विशंकु बहुत दुःखी हुआ और उसने विश्वामित्रजीसे समस्त वृत्तान्त कहा। इससे क्रुद्ध होकर विश्वामित्रने दूसरी सृष्टिकी रचना प्रारम्भ कर दी। उस सृष्टिमें सभी देवताओंके साथ-साथ विशंकुके लिये दूसरा स्वर्ग बनाव प्रारम्भ कर दिया और शुद्धाटक (सिंहाटक), नरियल, कोदण्ड, कृष्णाण्ड, ऊँट, भेड़ आदिक निर्माण किया और नये सार्वर्ष तथा देवताओंकी प्रतिमाका भी निर्माण कर दिया। उस समय इन्द्रने आकर इनकी प्रार्थना की और विश्वामित्रजीसे सृष्टि रोकनेका अनुरोध किया तथा दीपदान करनेकी सम्मति दी। जो प्रतिमाएँ इन्होंने बनायी थीं, उनमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवताओंका वास हुआ और वे ही इस संसारके प्राणियोंका कल्याण करनेके लिये मर्त्यलोकमें प्रतिमाओंमें मूर्तिमान् रूपमें स्थित हुए और नैवेद्यादिको ग्रहण करते हैं तथा अपने भक्तोंपर प्रसन्न होकर वरदान देते हैं, वे ही भूमिदेव कहलाते हैं। राजन् ! इसीलिये उनके सम्मुख दीपदान करना चाहिये। भगवान् सूर्यके लिये प्रदत्त दीपकी रक्तवस्त्रसे निर्मित वर्तिका ‘पूर्णवर्ति’ कहलाती है। इसी प्रकार शिवके लिये निर्मित श्वेत वस्त्रकी वर्तिका ‘ईश्वरवर्ति’, विष्णुके लिये निर्मित पीत वस्त्रकी वर्तिका ‘भोगवर्ति’, गौरीके लिये निर्मित कुसुम रंगके वस्त्रसे निर्मित वर्तिका ‘सौभाग्यवर्ति’, दुर्गके लिये लखके रंगके समान रंगवाले वस्त्रसे निर्मित वर्तिका

‘पूर्णवर्तिका’ कहलाती है। ऐसे ही ब्रह्माके लिये प्रदत्त वर्तिका ‘पद्मवर्ति’, नागोंके लिये प्रदत्त वर्तिका ‘नागवर्ति’ तथा ग्रहोंके लिये प्रदत्त वर्तिका ‘ग्रहवर्ति’ कहलाती है। इन देवताओंके लिये ऐसे ही वर्तिकायुक्त दीपकका दान करना चाहिये। पहले देवताका पूजन करनेके बाद बड़े पात्रमें घी भरकर दीपदान करना चाहिये। इस विधिसे जो दीपदान करता है, वह सुन्दर तेजस्वी विमानमें बैठकर स्वर्गमें जाता है और वहाँ प्रलयपर्यन्त निवास करता है। जिस प्रकार दीप प्रकाशित होता है, उसी प्रकार दीपदान करनेवाला व्यक्ति भी प्रकाशित होता है। दीपके शिखरकी भाँति उसकी भी ऊर्ध्वगति होती है। दीपक धूत या तेलके जलने चाहिये, वसा, मज्जा आदि तरलद्रव्य-युक्तके नहीं। जलते हुए दीपको बुझाना नहीं चाहिये, न ही उस स्थानसे हटाना चाहिये। दीप बुझा देनेवाला बन्ना होता है और दीपको बुझनेवाला अंधा होता है। दीपका बुझाना निन्दनीय कर्म है।

**राजन् !** आप दीपदानके माहात्म्यमें एक आख्यान सुनें—विदर्भ देशमें चित्रध्व नामका एक राजा रहता था। उस राजाके अनेक पुत्र थे और एक कन्या थी, जिसका नाम था ललिता। वह सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अत्यन्त सुन्दर थी। राजा चित्रध्वने धर्मका अनुसरण करनेवाले महाराज कशिपुवर चारुधर्मिके साथ ललिताका विवाह किया। चारुधर्मकी यह पत्नय रानी हुई। वह विष्णु-मन्दिरों सहस्रों प्रशस्ति दीपक प्रतिदिन जलाया करती थी। विशेषरूपसे अधिन-कर्त्तिकमें बड़े समारोहपूर्वक दीपदान करती थीं। वह कौटोह, गरलियों, मन्दिरों, पीपलके वृक्षके पास, गोशाला, पर्वतशिखर, नदीतटों तथा कुओंपर प्रतिदिन दीप-दान करती थी। एक बार उसकी सर्वाधिकारी उससे पूछा—‘ललिता ! तुम दीपदानका फल हमें भी बतलाओ। तुम्हारी भक्ति देवताओंके पूजन आदिमें न होकर दीपदानमें इतनी अधिक क्यों है ?’ यह सुनकर ललिताने कहा—‘सखियो ! तुमलोगोंसे मुझे कोई शिक्षावत नहीं है, न ही ईर्ष्या, इसलिये मैं तुमलोगोंसे दीपदानका फल कह रही हूँ। ब्रह्माजोंने मनुष्योंके उद्धारके लिये साक्षात् पार्वतीजीको मद्रदेशमें श्रेष्ठ देखिका नदीके रूपमें पृथ्वीपर अवतरित किया, वह पापोंका नाश करनेवाली है, उसमें एक बार भी स्नान करनेसे मनुष्य शिवजीका गण हो जाता

है। उस नदीमें जहाँ भगवान् विष्णुने नृसिंहरूपसे स्वयं स्नान किया था, उस स्थानको नृसिंहतीर्थ कहते हैं। नृसिंहतीर्थमें स्नान करनेमात्रसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

सौवीर नामके एक राजा थे, जिसके पुरोहित थे मैत्रेय। राजाने देविकाके तटपर एक विष्णुमन्दिर बनवाया। उस मन्दिरमें मैत्रेयजी प्रतिदिन पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे पूजन और दीपदान किया करते थे। वे एक दिन कार्तिकको पूर्णिमाको वहाँ दीपदानका बहुत बड़ा उत्सव मना रहे थे। रात्रिके समय सभी लोगोंने नींद आ गयी। उस मन्दिरमें अपने पूर्वजन्ममें भुविस्वरूपमें रहनेवाली मुझे दीपककी भूतवर्तिका खानेकी इच्छा हुई। उसी क्षण मुझे बिल्लीकी आवाज सुनायी दी। मैंने भयभीत होकर दीपककी बत्ती छोड़ दी और छिप गयी, वह दीपक बुझने नहीं पाया। मन्दिरमें पूर्ववत् प्रकाश हो गया। कुछ काल बाद मेरी मृत्यु हो गयी, पुनः मैं विदर्भदेशमें विश्वरथ राजाकी राजकन्या हुई और

काशिराज चारधर्मांको मैं पटरानी हुई। सखियों! कार्तिक मासमें विष्णुमन्दिरमें दीपदानका ऐसा सुन्दर फल होता है। चूँकि मैं भुविका थी, मेरा दीपदानका कोई संकल्प नहीं था, फिर भी मुझसे अनायास जो मन्दिरमें भयवश दीप प्रज्वलित हुआ अथवा मैं दीपको नष्ट न कर सकी, उस समय बिना परिज्ञानके मुझसे जो दीपदानका पुण्यकर्म हुआ था, उसी पुण्य-कर्मके फलस्वरूप आज मैं श्रेष्ठ महारानीके पदपर स्थित हूँ और मुझे अपने पूर्वजन्मका ज्ञान है। इसी कारण मैं आज भी निरन्तर दीपदान करती रहती हूँ। मैं दीपदानके फलको भलीभाँति जानती हूँ, इसलिये नित्य देवालयमें दीप जलाती हूँ।' ललितराज यह कथन सुनकर सभी सहोदरियाँ भी दीपदान करने लगीं और बहुत समयतक राज्य-सुख भोगकर सभी अपने पतिके साथ विष्णुलोकको चली गयीं। इस प्रकार जो भी पुरुष अथवा स्त्री दीप-दान करते हैं, वे उत्तम तेज प्राप्तकर विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं। (अध्याय १३०)

### वृषोत्सर्गकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! कार्तिक और माघकी पूर्णिमा, चैत्रकी पूर्णिमा तथा तृतीय और वैशाखकी पूर्णिमा एवं द्वादशीमें वृष लक्षणोंसे सम्पन्न वृषभको पार गौअँकि साथ छोड़नेसे अन्नत पुण्य प्राप्त होता है। इस वृषोत्सर्गकी विधिको गार्गाचार्यने मुझसे इस प्रकार बतलाया है—सबसे पहले षोडशमातृकाका पूजनकर मातृश्राद्ध तथा फिर आप्युदयिक श्राद्ध करना चाहिये। फिर एक कलश स्थापित कर उसपर रुद्रका पूजन करके भूतसे हवन करना चाहिये। उस सर्वाङ्गसुन्दर तरुण बछड़ेके बायं भागमें त्रिशूल और दक्षिण पागमें चक्रयुक्त विह्व अँकिजकर कुंकुम आदिसे अनुलिप्त करे, गलेमें पुष्पकी माला पहना दे। अनन्तर बार तरुण बछियाओंको भी भूषित कर उनके कानमें बड़े कि 'आपके पतिस्वरूप इस पुष्ट एवं सुन्दर वृषको मैं विसर्जित कर रहा हूँ, आप इसके साथ स्वच्छन्दतापूर्वक प्रसन्न होकर विहार करें।' पुनः उनके वक्षसे आच्छादितकर एवं स्वादित भोजनसे संतुष्ट कर देवालय, गोष्ठ अथवा नदी-संगम

आदि स्थानोंमें छोड़ना चाहिये। ये पुरुष धन्य हैं, जो स्वेच्छाचारी, गरजते हुए, ककुदात्त तथा अहंकारसे पूर्ण वृष छोड़ते हैं। इस विधिसे जो वृषोत्सर्ग करता है, उसके दस पुस्त पहलेके और दस पुस्त आगेके भी पुरुष सद्गतिको प्राप्त करते हैं। यदि वृष नदीके जलमें प्रवेश करता है और उसके सींगसे या पूँछसे जो जल उछलता है, उस तर्पणरूप जलसे वृषोत्सर्ग करनेवाले व्यक्तिके पितरोंको अक्षयतृप्ति प्राप्त होती है। अपने सींगसे या खुँसे यदि वह मिट्टी खोदता है तो वृषोत्सर्ग करनेवालेके पितरोंके लिये वह खोदी भूमि जल भर जानेपर मधुसूत्या बन जाती है। चार हजार हाथ लम्बे-चौड़े तडाग बननेसे पितरोंको उतनी तृप्ति नहीं होती, जितनी तृप्ति एक वृष छोड़नेसे होती है। मधु और तिलको एक साथ मिलाकर पिच्छदान करनेसे पितरोंको जो तृप्ति नहीं होती, वह तृप्ति एक वृषोत्सर्ग करनेसे प्राप्त होती है। जो व्यक्ति अपने पितरोंके उद्धारके लिये वृष छोड़ता है, वह स्वयं भी स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १३१)



## फाल्गुन-पूर्णिमोत्सव

**महाराज युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! फाल्गुनकी पूर्णिमाको ग्राम-ग्राम तथा नगर-नगरमें उत्सव क्यों मनाया जाता है और गाँवों एवं नगरोंमें होली क्यों जलाई जाती है ? क्या कारण है कि बालक उस दिन घर-घर अनाप-डानाप और मचाते हैं ? अडाडा किसे कहते हैं, उसे शीतोष्ण क्यों कहा जाता है तथा किसे देवताका पूजन किया जाता है । आप कृपया यह बतानेका कष्ट करें ।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**पार्थ ! सत्ययुगमें रघु नामके एक शूरीय प्रियवादी सर्वगुणसम्पन्न दानवी राजा थे । उन्होंने समस्त पृथ्वीको जीतकर सभी राजाओंको अपने वशमें करके पुत्रकी भाँति प्रजाका लालन-पालन किया । उनके राज्यमें कभी दुर्भिक्ष नहीं हुआ और न किसीकी अकाल मृत्यु हुई । अधर्ममें किसीकी शक्ति नहीं थी । पर एक दिन नगरोंके लोग राजद्वारपर सहस्र एकत्र होकर 'ग्रहि', 'ग्रहि' पुकारने लगे । राजाने इस तरह भयभीत लोगोंसे कारण पूछा । उन लोगोंने कहा कि महाराज ! ढोंडा नामकी एक राक्षसी प्रतिदिन हमारे बालकोंको काट देती है और उसपर किसी मन्त्र-तन्त्र, ओषधि आदिका प्रभाव भी नहीं पड़ता, उसका किसी भी प्रकार निवारण नहीं हो पा रहा है । नगरवासियोंका यह वचन सुनकर विस्मित राजाने राज्यपुरोहित महर्षि वसिष्ठ मुनिसँ उस राक्षसीके विषयमें पूछा । तब उन्होंने राजासे कहा—'राजन् ! माली नामका एक दैत्य है, उसीकी एक पुत्री है, जिसका नाम है ढोंडा । उसने बहुत समयतक उग्र तपस्या करके शिवजीको प्रसन्न किया । उन्होंने उससे वरदान माँगेनेको कहा ' इसपर ढोंडाने यह वरदान माँगा कि 'प्रभो ! देवता, दैत्य, मनुष्य आदि मुझे न मार सकें तथा अस्त्र-शस्त्र आदिसँ भी मेरा वध न हो, साथ ही दिनमें, रात्रिमें, शीतकाल, उष्णकाल तथा वर्षाकालमें, भीतर अथवा बाहर कहीं भी मुझे किसीसे भय न हो ।' इसपर भगवान् शंकरने 'तथास्तु' कहकर यह भी कहा कि 'तुम्हें उन्नत बालकोंसे भय होगा ।' इस प्रकार वर देकर भगवान् शिव अपने धामको चले गये । वही ढोंडा नामकी कामरूपिणी राक्षसी नित्य बालकोंको और प्रजाको पीड़ा देती है । 'अडाडा' मन्त्रका उच्चारण करनेपर वह ढोंडा शान्त हो जाती है । इसलिये उसको अडाडा भी कहते हैं । यही उस

राक्षसी ढोंडाका चरित्र है । अब मैं उससे पीछा छुड़ानेका उपाय बता रहा हूँ ।

राजन् ! आज फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी पूर्णिमा तिथिको सभी लोगोंको निद्रा होकर ब्रीडा करनी चाहिये और नाचना, गाना तथा हैसना चाहिये । बालक लकड़ियोंके बने हुए तलवार लेकर वीर सैनिकोंकी भाँति हर्षसे युद्धके लिये उत्सुक हो दौड़ते हुए निकल पड़ें और आनन्द मनायें । सूखी लकड़ी, उपले, सूखी पतियाँ आदि अधिक-से-अधिक एक सड़नपर इकट्ठाकर उस ढेरमें रक्षोन्न मनोसे अग्नि लगाकर उसमें हवनकर हैसकर ताल्यें बजाना चाहिये । उस जलने हुए ढेरकी तीन बार परिक्रमा कर बैठें, बड़े सभी आनन्ददायक विनोदपूर्ण वार्तावप करें और प्रसन्न रहें । इस प्रकार रक्षामनोसे, हवन करनेसे, कोलप्रहल करनेसे तथा बालकोंद्वारा तलवारोंके प्रहारके भयसे उस दुष्ट राक्षसीका निवारण हो जाता है ।

वसिष्ठजीका यह वचन सुनकर राजा रघुने सम्पूर्ण राज्यमें लोगोंसे इसी प्रकार उसका करनेको कहा और स्वयं भी उसमें सहयोग किया, जिससे वह राक्षसी विनष्ट हो गयी । उसी दिनसे इस लोकमें ढोंडाका उत्सव प्रसिद्ध हुआ और अडाडाकी परम्परा चली । ब्राह्मणोंद्वारा सभी दुष्टों और सभी लोगोंको शान्त करनेकाला वसोर्धरा-होम इस दिन किया जाता है, इसलिये इसको होलिका भी कहा जाता है । सब तिथियोंका रस एवं परम आनन्द देनेवाली यह फाल्गुनकी पूर्णिमा तिथि है । इस दिन रात्रिको बालकोंको विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये । गोबरसे लिपे-पुते घरके आँगनमें बहुतसे खड़्गहस्त बालक बुराने चाहिये और घरमें रक्षित बालकोंको काष्ठनिर्मित खड़्गसे स्पर्श करना चाहिये । हैसना, गाना, बजाना, नाचना आदि करके उत्सवके बाद गुड़ और बड़िया फक्कान देकर बालकोंको विमर्जित करना चाहिये । इस विधिसे ढोंडाका दोष अवश्य शान्त हो जाता है ।

**महाराज युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! दूसरे दिन चैत्र माससे वसन्त ऋतुका आगमन होता है, उस दिन क्या करना चाहिये ?

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! होलीके दूसरे

दिन प्रतिपदमें प्रातःकाल उठकर आवश्यक नित्यक्रियासे निवृत्त हो पितरों और देवताओंके लिये तर्पण-पूजन करना चाहिये और सभी दोषोंको शान्तिके लिये होलिकाको विभूतिकी वन्दना कर उसे अपने शरीरमें लगाना चाहिये। घरके आँगनको गोबरसे लीपकर उसमें एक चौकोर मण्डल बनाये और उसे रंगीन अक्षतोंसे अलंकृत करें। उसपर एक पीठ रखें। पीठपर सुवर्णसहित पल्लवोंसे समन्वित कलश स्थापित करें। उसी पीठपर श्वेत चन्दन भी स्थापित करना चाहिये। सौभाग्यवती स्त्रीको सुन्दर वस्त्र, आभूषण पहनकर दाही, दूध, अक्षत, गन्ध, पुष्प, वसोर्ध्वा आदिसे उस

श्वेतचण्डकी पूजा करनी चाहिये। फिर आग्रमंजरीसहित उस चन्दनका प्राशन करना चाहिये। इससे आयुकी वृद्धि, आरोग्यकी प्राप्ति तथा समस्त कामनाएँ सफल होती हैं। भोजनके समय पहले दिनका पकवान थोड़ा-सा खाकर इच्छानुसार भोजन करना चाहिये। इस विधिसे जो फलपुत्रोत्पत्ति मनाता है, उसके सभी मनोरथ अनायास ही सिद्ध हो जाते हैं। अर्ध-व्याधि सभीका विनाश हो जाता है और वह पुत्र, पौत्र, धन-धान्यसे पूर्ण हो जाता है। यह परम पवित्र, विजयदायिनी पूर्णिमा सब विघ्नोंको दूर करनेवाली है तथा सब विधियोंमें उत्तम है। (आध्याय १३२)

### दमनकोत्सव, दोलोत्सव तथा रथयात्रोत्सव आदिका वर्णन

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन्! इस संसारमें बहुतसे सुगन्धित पुष्प हैं, परंतु उनको छोड़कर दमनक (दीना) नामक पुष्प देवताओंको क्यों चढ़ाया जाता है तथा दोलोत्सव और रथयात्रोत्सव मनानेकी क्या विधि है, इसका वर्णन करनेकी आप कृपा करें।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**पार्थ! मन्दराचल पर्वतपर दमनक नामका एक श्रेष्ठ तथा अत्यन्त सुगन्धित वृक्ष उत्पन्न हुआ। उसके दिव्य गन्धके प्रभावसे देवाङ्गनाएँ विमृग्य हो गयीं और ऋषि-मुनि भी जप, तप वेदाध्ययन आदिसे प्रभुत हो गये। इस प्रकार उसके गन्धसे सब लोग उत्पन्न हो गये। सभी शुभ कर्तव्य एवं मङ्गल-कार्यमें विघ्न उपस्थित हो गया। यह देखकर ब्रह्माजीको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और वे दमनकसे बोले—‘दमनक! मैंने तुम्हें संसार (के दोषों) के दमन (शाप) करनेके लिये उत्पन्न किया है, किंतु तुमने सम्पूर्ण संसारको उद्धलित कर दिया है, तुम्हारा यह कर्म ठीक नहीं है। सज्जनोंका कहना है कि अतिशय सर्वत्र कर्म है। इसलिये ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे लोगोंमें उद्वेग न पैदा हो। एकका अपकार करनेवाला व्यक्ति अधम कहा जाता है, परंतु जो अनेकोंका अपकार करनेमें प्रयुक्त हो गया हो, उसके लिये क्या कहा जाय? तुमने तो बहुतसे लोगोंको दुःख दिया है, इसलिये मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि कोई भी व्यक्ति तुम्हारे

पुष्पको देवकार्य तथा पितृकार्यमें आजसे ग्रहण नहीं करेगा।’ ब्रह्माजीद्वारा दिये गये शापको सुनकर दमनकने कहा—‘महाराज! मैंने द्वेषवश अथवा क्रोधवश किसीका अपकार नहीं किया है। आपने ही मुझे इतना सुगन्ध दिया है कि उसके प्रभावसे सभी लोग स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं। इसमें मेरा क्या दोष है। आपने ही मेरा ऐसा स्वभाव बनाया है। जिसकी जो प्रकृति होती है, उसे वह त्याग नहीं सकता; क्योंकि प्रकृति त्यागनेमें वह असमर्थ होता है।’ निरपराध होते हुए भी आपने मुझे शाप दिया है।’ दमनककी इस तर्कसंगत बातको सुनकर ब्रह्माजीने कहा—‘दमनक! तुम्हारा कथन ठीक है। मैंने तुम्हें शाप दिया है। उसका मुझे हार्दिक दुःख है। उसकी निवृत्तिके लिये मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि वसन्त-ऋतुमें तुम सभी देवताओंके मस्तकपर चढ़ोगे। जो व्यक्ति भक्तिभावसे दमनक पुष्प देवताओंपर चढ़ायेगा, उसे सदा सुख प्राप्त होगा। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी दमनक-चतुर्दशीके नामसे विख्यात होगे और उस दिन व्रत-नियमके पालन करनेसे ज्योंके सभी पाप नष्ट हो जायेंगे। इतना कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और दमनक भी अपने गन्धसे त्रिभुवनको वसित करता हुआ शिवजीके निवास-स्थान मन्दराचलपर रहने लगा। उसी दिनसे लोकमें दमनक-पूजा प्रसिद्ध हुई।’

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज! अब मैं

१-यं यस्य जन्तेः प्रकृतिः शुभा वा यदि वेत्या। स तत्त्वमेव स्मते दुष्कृते सुकृते तथा ॥ (उत्तरपर्व १३३। १५)

२-अग्नि, मत्स्य और शिवपुराणमें इसका अधिक विस्तारसे वर्णन है।



दोलोत्सवका वर्णन कर रहा हूँ। किसी समय नन्दनवनमें दोलोत्सव हुआ। वसन्त ऋतुमें देवाङ्गनाएँ और देवता मिलकर दोला-खीड़ा करने लगे। नन्दनवनमें यह मनोहारी उत्सव देखकर भगवती पार्वतीजीने शंकरजीसे कहा—‘भगवन् ! इस खीड़ाको आप देखें। आप मेरे लिये भी एक दोला बनवाइये, जिसपर मैं आपके साथ बैठकर दोला-खीड़ा कर सकूँ।’ पार्वतीजीके यह कहनेपर शिवजीने देवताओंको अपने पास बुलाकर दोला बनानेको कहा। देवताओंने शिवजीके कथनानुसार सुन्दर उत्तम इष्टापूर्तमय दो सत्त्व गाढ़कर उसपर सत्यस्वरूप एक लकड़ीका पट्टा रखा और वायुकि नागकी रस्सी बनाकर उसके फणोंपर बैठनेके लिये राजर्जटिल पीठकी रचना की। उस फणके ऊपर अत्यन्त मृदुल कपास और रेशमी वस्त्र बिछाकर दोलाकी शोभा बढ़ानेके लिये मोतियोंके गुच्छों और फूल-मालाओंसे उसे सजा दिया। इस प्रकार देवताओंने अति उत्तम दोला तैयार कर भगवान् शंकरको आदरपूर्वक प्रदान किया। अनन्तर भगवान् चन्द्रभूषण भगवती पार्वतीके साथ दोलापर बैठ गये। भगवान् शंकरके पर्वट दोला झुलने लगे तथा जाया और विजया दोनों सखियाँ पैर धुलने लगीं। उस समय पार्वतीजीने बहुत ही मधुर स्वरमें गीत गाया, जिससे शिवजी आनन्दमग्न हो गये। गन्धर्व गीत गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं और चारण विविध प्रकारके बाजे बजानेमें संलग्न हो गये। परन्तु शिवजीके दोला-विहारसे सभी पर्वत काँपने लगे, समुद्रमें हलचल मच गयी, प्रचण्ड पवन चलने लगा, सारा लोक ब्रस हो गया। इस प्रकार त्रैलोक्यको अति व्याकुल देखकर इन्द्रादि सभी देवगणोंने सभीके पापोंका नाश करनेवाले शिवजीके पास आकर प्रणाम किया और प्रार्थना कर कहने लगे—‘नाथ ! अब आप दोला-लीलासे निवृत्त हों, क्योंकि त्रैलोक्यको क्षोभ प्राप्त हो रहा है।’ इस प्रकार देवताओंकी प्रार्थना सुनकर प्रसन्न हो शिवजीने दोलासे उतरकर कहा कि ‘आजसे वसन्त ऋतुमें जो व्यक्ति इस दोलोत्सवको करेगा तथा नैवेद्य अर्पित कर तत्काल देवताओंके मूल मन्त्रोंसे उन्हें दोलापर आरोहण करवेगा, करेगा, आनन्द मनायेगा और स्तुति-पाठ करेगा, वह सभी अपीष्टोंको प्राप्त करेगा।’

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महाराज ! अब मैं

रथयात्राका वर्णन करता हूँ।

एक बार चैत्र मासमें मलयपर देवताओंसे समावृत भगवान् शंकर शान्तभावसे विराजमान थे। इसी समय मृत्युलोकमें इधर-उधर घूमते हुए देवर्षि नारद ब्रह्मलोकमें भगवान् शंकरके पास आये। उन्होंने भगवान्को प्रणाम किया और अश्रमपर बैठ गये। सर्वज्ञ भगवान् शंकरने देवर्षि नारदसे पूछा—‘भूने ! आपका आगमन कहाँसे हो रहा है ?’ नारद बोले—‘देवदेव ! मैं मृत्युलोकमें आ रहा हूँ। वहाँ कामदेवके मित्र वसन्त ऋतुने सारा संसार अपने वशमें कर लिया है। वहाँ मन्द-मन्द सुगन्धित मलय पवन बहता है। वसन्त ऋतुके सहयोगी—कोकिल, आलमजरी आदि सभी उसके कर्पणमें सहयोग प्रदान कर रहे हैं। नगर-नगर और ग्राम-ग्राममें वसन्त ऋतु यह घोषणा कर रहा है कि इस संसारका ही नहीं, अपितु तीनों लोकोंका स्वामी एकमात्र कामदेव है। भगवन् ! उसीके शासनमें सभी लोग उन्मत्त हो रहे हैं। चैत्र मासका यह विचित्र प्रभाव देखकर मैं आपसे निवेदन करने आया हूँ।’ नारदजीका बचन सुनकर भगवान् शंकर गन्धर्व, अप्सरा, मुनिगण और सभी देवताओंको साथ लेकर मृत्युलोकमें आये और उन्होंने देखा कि जैसा नारदजीने कहा था, वही स्थिति मृत्युलोकमें व्याप्त है। सब लोग उन्मत्त हो गये हैं। आनन्दमें मग्न हैं। शिवजी वसन्तकी शोभा देख ही रहे थे कि उनके साथ जो देवता आदि आये थे, वे भी अर्नन्दित हो गाने-बजाने लगे। वसन्तके प्रभावसे देवताओंको भी सुख देखकर शंकरने यह विचार किया कि यह तो बड़ा अनर्थ हो रहा है। इसके प्रतीकारका कोई-न-कोई उपाय करना ही चाहिये। जो अनर्थ होता हुआ देखकर भी उसके निवारणका उपाय नहीं करता, वह अवश्य ही विपत्तिमें पड़कर दुःखको प्राप्त करता है। अब मुझे इन सबकी उपादसे रक्षा करनी चाहिये और स्वामिभक्त वसन्त ऋतुका भी सम्मान रखना चाहिये। यह विचारकर शिवजीने वसन्त ऋतुको अपने पास बुलाकर कहा कि ‘वसन्त ! तुम केवल चैत्र मासमें अपना प्रभाव प्रकट करो, चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें सभी जीवोंको और विशेष रूपसे देवताओंको सुख देनेवाले हो जाओ।’ अनन्तर देवताओंको सत्यचित किया और यह भी कहा कि ‘जो व्यक्ति वसन्त ऋतुमें रथयात्रोत्सव करेगा, वह इस संसारमें

दिव्य भोगोंको भोगनेवाला तथा नोरोग होगा ।' इतना कहकर शिवजी सभी देवताओंके साथ अपने लोकको चले गये । वसन्त ऋतु भी शिवजीके आज्ञानुसार वनमें विहार करता हुआ अन्तर्धान हो गया । उसी दिनसे लोकमें रथयात्रोत्सवका प्रचार-प्रसार हुआ । जो देवताओंको रथयात्रा करता है, उसके धन, पशु, पुत्र आदिकी वृद्धि होती है और अन्तमें वह सद्भक्तिको प्राप्त करता है<sup>१</sup> ।

राजन् । अब आप विशेष तिथियोंका वर्णन सुने । तृतीयाको गौरी, चतुर्थीको गणपति, पञ्चमीको लक्ष्मी अथवा सरस्वती, षष्ठीको स्कन्द, सप्तमीको सूर्य, अष्टमी और चतुर्दशीको शिव, नवमीको चण्डिका, दशमीको वेदव्यास आदि शान्तचित्त ऋषि-महर्षि, एकादशी तथा द्वादशीको भगवान् विष्णु, त्रयोदशीको कामदेव और पूर्णिमाको सभी देवताओंका अर्चन-पूजन करना चाहिये । इस प्रकार देवताओंकी निर्दिष्ट तिथियोंमें ही टमनकोत्सव, दोस्तोत्सव और रथयात्रा आदि उत्सव करने चाहिये । इस प्रकार वसन्त ऋतुमें उत्सव करनेवाला व्यक्ति बहुत कालतक सगर्भका सुख भोगकर पुनः कक्षवती राजाका पद प्राप्त करता है ।

**भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—**राजन् । जब भगवान् शंकरने अपने नेत्रकी ज्वालासे कामदेवको भस्म कर डाला था, उस समय कामदेवकी पत्नियाँ रति और प्रीति दोनों रो-रोकर बिलाप करने लगीं । इसपर पार्वतीजीके हृदयमें दया उत्पन्न हो गयी और वे शिवजीसे प्रार्थना करने लगीं— 'महाराज । आप कृपाकर इस कामदेवको जीवन्तान दे और शरीर प्रदान कर दें ।' यह सुनकर प्रसन्न हो शिवजीने कहा— 'पार्वती । यद्यपि अब यह मूर्तिमान् रूपमें जीवित नहीं हो सकता, परंतु चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको प्रतिवर्ष एक बार यह मनसे उत्पन्न होकर जीवित होगा । चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको जो भी कामदेवका पूजन करेगा, वह वर्षभर सुखी रहेगा । इतना कहकर शिवजी कैलासपर

चले गये । राजन् । इसकी विधिसे सुने—चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको स्नान कर एक अशोकवृक्ष बनाकर उसके नीचे रति, प्रीति और वसन्तसहित कामदेवकी प्रतिमाको सिंदूर और हल्दीसे बनाना चाहिये अथवा सुवर्णकी मूर्ति स्थापित करनी चाहिये । मूर्ति ऐसी होनी चाहिये, जिसकी सेवामें विद्याधरियाँ तब जोड़े हों, अस्तराँ जिसके चारों तरफ खड़ी हों, गन्धर्व नृत्य कर रहे हों । इस प्रकार मध्याह्नके समय गन्ध, पुष्प, धूप, अक्षत, ताम्बूल, दीप, अनेक प्रकारके फल, नैवेद्य आदि उपचारोंसे कामदेवकी तथा अपने पतिव्रती भी पूजा करे । जो इस प्रकार प्रतिवर्ष कामोत्सव करता है, वह सुभिक्ष, शोम, अरोग्य, लक्ष्मी आदिको प्राप्त करता है । विष्णु, ब्रह्मा तथा सूर्य, चन्द्र आदि यह, कामदेव, वसन्त और गन्धर्व, असुर, राक्षस, सुपर्ण, नाग, पर्वत आदि उसपर प्रसन्न हो जाते हैं । उसको कभी शोक नहीं होता । जो स्त्री वसन्त ऋतुमें रति, प्रीति, वसन्त, मलयानिल आदि परिवारसहित कामदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करती है, वह सौभाग्य, रूप, पुत्र और सुखको प्राप्त करती है ।

**महाराज ।** इसी प्रकार ज्येष्ठ मसके प्रतिपद तिथिसे लेकर पूर्णिमातक भगवती भूतमाताका पूजनोत्सव मनाना चाहिये । अनेक प्रकारके मनोविनोदपूर्ण एवं हास्यपूर्ण गीत, नाटक आदिकर आयोजन करना चाहिये । नवमी अथवा एकादशीकी दीपक जलाकर अतीव भक्तिपूर्वक भगवतीके समीप ले जाने चाहिये ।

इस प्रकार पूर्णिमातक त्रयोदशके समय दीपमहोत्सव करना चाहिये और द्वादशके दिन भूतमाताका विशेष उत्सव मनाना चाहिये । इस प्रकार अनेक प्रकारके उत्सवोंसे भूतमाताका पूजन करनेवाले व्यक्ति सपरिवार प्रसन्न रहते हैं और उनके धामें किसी प्रकारका विग्रह उत्पन्न नहीं होता । यह भूतमाता भगवती पार्वतीके अंशसे समुद्भूत हैं ।

(अध्याय १३३—१३६)



१-कलकामसे इस रथयात्राका प्रचलन कम हो गया, किन्तु आजकल-शुक्ल द्वितीयाको सर्वत्र जगजायजीकी रथयात्रा निबलती है, विशेषकर पुरोमें ।

## नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण' के विशेषाङ्क के रूपमें 'संक्षिप्त भविष्यपुराण' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। विशेषाङ्क के रूपमें पुराणों के संक्षिप्त अनुवाद के प्रकाशनकी परम्परा 'कल्याण' में प्रारम्भसे ही चली आ रही है। पिछले कई दिनोंसे कुछ महानुभावोंका यह विशेष आग्रह था कि 'कल्याण' के विशेषाङ्क-रूपमें 'भविष्यपुराण' का प्रकाशन किया जाय। यह बात हमें भी अच्छी लगी; क्योंकि अतएव महापुराणों के अन्तर्गत भविष्यपुराण भी नवें महापुराणमें परिगणित है। साथ ही चतुर्वर्ग-चिन्तामणि, व्रतार्क, दानसागर, व्रतलाकर, जयसिंहकल्पद्रुम आदि सभी प्राचीन निबन्ध-ग्रन्थोंमें व्रत, दान एवं धार्मिक अनुष्ठान के प्रकरणमें मूल श्लोकोंका संदर्भ भी भविष्यपुराणका ही प्रायः मिलता है। इन सब कारणोंसे इस पुराणकी क्षेत्रता और महत्त्व विशेष रूपसे परिलक्षित होनेपर भी सामान्यजन इसकी विषयवस्तुसे अनभिज्ञ-जैसे ही हैं। इसलिये स्वाभाविकरूपसे यह प्रेरणा हुई कि भविष्यपुराणकी कथावस्तुको जनता-जनार्दन के प्रकाशमें लाने के लिये इस बार इसी महापुराणका संक्षिप्त अनुवाद विशेषाङ्क के रूपमें प्रस्तुत किया जाय। इस प्रेरणा के अनुसार ही यह निर्णय कार्यरूपमें परिणत हुआ।

वास्तवमें भविष्यपुराण सौर-प्रधान ग्रन्थ है। इसके अधिष्ठाता-देव भगवान् सूर्य हैं। सूर्यसायण प्रत्यक्ष देवता हैं। उनसे ही संसारकी प्रकाश, उष्ण, प्राणरक्ति, वृष्टि, अन्न और अन्य जीवनोपयोगी सामग्रीयाँ उपलब्ध होती हैं, उनके बिना पूरा विश्व अन्धकारमें विलीन होकर प्रलयको प्राप्त हो जायगा। सूर्योदय के बाद ही दिशाओं, नगर, पर्वत, ग्राम, मनुष्य और पशु-पक्षियोंका विभाजन और उनकी पहचान स्पष्ट होती है, अन्यथा सारा जगत् दृष्टिविहीन और परिचयरूप हो जाय। इस पुराण तथा अन्य पुराणों एवं वैदिक संहिताओं के अनुसार सूर्य ही वृक्ष, लता, गुल्म, पशु-पक्षी और देवता तथा मनुष्यों के प्राण हैं—'सूर्य आत्मा जगत्सत्सुखश्च।' इसलिये इनकी उपासनासे सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो, आयु-आरोग्यकी प्राप्ति हो, तो इसमें क्या आश्चर्य है? तब तो संध्याओंमें इन्हींकी उपासना की जाती है। भविष्यपुराणमें कहा गया है कि संध्यामें दीर्घकालतक सूर्योपासना करके

ऋषि-मुनियोंने दीर्घ आयु प्राप्त की थी—'ऋषयो दीर्घ-संध्यन्वादीर्घमायुरवाप्नुवुः।' सम्पूर्ण ज्योतिषक्र और ज्योतिष-शास्त्र के घड़ी-घंटे आदिके मूल निर्देशक सूर्य ही हैं। भगवान् सूर्यदेवकी महिमाका विस्तृत वर्णन इसी पुराणमें उपलब्ध होता है। इसके ब्राह्मणवर्णमें कई चमत्कारिक वर्णन प्राप्त होते हैं, जिन्हें बार-बार पढ़नेपर भी आकर्षण बना ही रहता है। इसी प्रकार मध्यमणवर्णकी कर्मकाण्डीय सामग्री, प्रतिसर्गपर्वकी ऐतिहासिक सामग्री और भक्तों के चरित्र बड़े भव्य और आकर्षक हैं। उत्तरपर्व के व्रत-धर्म-दान, सदाचार तथा देवोपासना आदिके निर्देशक सभी अध्याय बार-बार मननीय और शिक्षाप्रद हैं।

अब भारतवासी अपनी सनातन संस्कृति और सनातन परम्परासे विचलित-सा होकर किङ्कर्तव्यविमूढ़ हो रहा है। वह अपने आदर्श सर्वधर्मवाद तथा सर्वभूतात्मवाद के पवित्र सिद्धान्तको भूलकर एक देश-विशेषकी पार्थिव सीमामें अपनेको आबद्ध कर मोहित हो गया है और इसीको राष्ट्रियता और देशप्रेम के नामसे पुकारता है और उसी देश-विशेषकी केवल आर्थिक स्वतन्त्रताकी ही 'स्वराज्य' मानकर उसकी प्रतिके प्रयत्नमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री मानने लगा है। मनुष्यका पुरुषार्थ-चतुष्टय—अर्थ, धर्म, कर्म तथा मोक्ष अब केवल दो—'अर्थ और कर्म' में ही सीमित हो गया है और वह अर्थ-कर्म ही मोक्षानुगामी और धर्मसम्मत न होनेसे असुखी हो गया है। फलतः आजका मानव असुर मानव बनता जा रहा है। उसकी धर्मपर आस्था नहीं, भगवान् पर विश्वास नहीं। मनमाना आचरण करनेमें ही उसे गौरवका बोध होता है। सब ओर आज यही यथेच्छाचार और यही अधिकार तथा अर्थकी अपार लिप्सा एवं व्यक्तिगत स्वार्थकी पापमयी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। सभी प्रायः प्रमत्त हैं। शुद्ध स्वार्थकी निर्दिष्ट के लिये क्रूरता, निर्दयता, हिंसा और हत्याका आश्रय आतंकवाद के नामपर षड़त्सेसे लिया जा रहा है। ऐसे नाजुक समयमें पुराण-जैसे आध्यात्मिक ग्रन्थों के प्रचार-प्रसार, पठन-पाठन और आलोचनसे ही देशमें शान्तिमय वातावरण, सुस्थिरता और सच्चागम पर चलनेकी प्रवृत्ति जाग्रत हो सकती है। पुराणोंमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार के साथ-साथ यज्ञ,

व्रत, दान, तप, तीर्थसेवन, देवपूजन, श्राद्ध-तर्पण आदि शास्त्रविहित शुभकर्मोंमें तथा पारस्परिक उत्तम व्यवहारमें जनसाधारणको प्रवृत्त करनेके लिये उनके लौकिक एवं पारलौकिक फलोंका वर्णन किया गया है। भविष्यपुराणमें भी इन सब विषयोंका तथा इनके अतिरिक्त अन्धान्य कोई विषयोंका समावेश हुआ है। पाठकोंको सुविधाके लिये 'भविष्यपुराण'के भावोंका सार-संक्षेप इस विशेषाङ्कके प्रारम्भमें लेखरूपमें प्रस्तुत किया गया है। उसके अवलोकनसे भविष्यपुराणके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय पाठकोंके ध्यानमें आ सकेंगे। आशा है, पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

'भविष्यपुराण'के प्रकाशनका निर्णय जितनी सरलतासे हुआ, इसके सम्पादनमें उतनी ही कठिनाइयोंका भी अनुभव हुआ। भविष्यपुराण अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हुए भी मालूम पड़ता है इन दिनों विशेष-रूपसे उपेक्षित-सा रहा। 'केन्द्रेडर प्रेस'से प्रकाशित एक ही मूल संस्करण इस पुराणका उपलब्ध हो सका। अन्य प्रकाशित मूल प्रतियाँ भी इसीकी प्रतिलिपि मात्र थीं। इसके अतिरिक्त इस पुराणका कोई संस्करण तथा इस पुराणकी कोई टीका तथा किसी भी भाषामें कोई अनुवाद भी उपलब्ध नहीं हुआ। जिसके कारण मूल पाठ-भेद आदिका निर्णय करना कठिन था। जो संस्करण उपलब्ध हुए उनके मूल श्लोकोंमें अशुद्धियाँ मिलनेसे अनुवाद आदिके कार्यमें भी विशेष कठिनाईका अनुभव हुआ।

इस वर्षसे 'कल्याण'के वर्षका प्रारम्भ तीन मास पूर्व जनवरीसे कर दिया गया है। हम यह चाहते थे कि 'कल्याण'के अङ्क हम अपने पाठकोंको समयसे प्रेषित करें, परंतु इन अपरिहार्य विषम परिस्थितियोंके कारण अनुवाद-कार्य पूरा न होनेसे न चाहते हुए भी विलम्ब हो ही गया। इस विलम्बके कारण हमारे प्रिय पाठकोंको निश्चितरूपसे अधीर होना पड़ा होगा तथा कष्टका अनुभव भी हुआ होगा, जिसके लिये क्षमा-प्रार्थनाके अतिरिक्त मेरे पास कोई दूसरा उपाय भी नहीं है। भविष्यमें हमारा यह प्रयास अवश्य होगा कि समयसे

आपकी सेवामें 'कल्याण'के अङ्क प्रस्तुत हों।

भविष्यपुराणके इस संक्षिप्त अनुवादका कलेवर विशेषाङ्ककी पृष्ठ-संख्यासे अधिक होनेके कारण तीन परिशिष्टाङ्कोंमें यह पूर्ण हो सकेगा। ये परिशिष्टाङ्क पाठकोंके सेवामें यथासमय प्रेषित होंगे। इस अङ्कके सम्पादनमें जिन महानुभावोंने हमारी सहायता की है, उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। अनुवादका कार्य पूर्यकार ५० श्रीमहाप्रभुलालजी गेहवालीके द्वारा तथा उनके निरीक्षणमें सम्पन्न हुआ तथा पुराणके कुछ अंशोंका अनुवाद ५० श्रीमूलशंकरजी शास्त्रीके द्वारा सम्पन्न हुआ। हम इन दोनों महानुभावोंके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करते हैं। अनुवादके संशोधन आदि कार्यमें कारणसीके ५० श्रीलालब्रह्महारीजी शास्त्री तथा अपने 'कल्याण'-सम्पादकविषय विभागके ५० श्रीजानकीनाथजी शर्मा नि विशेष सहयोग प्रदान किया है। इनके प्रति भी हम हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। इस विशेषाङ्कके सम्पादन, प्रक्रम-संशोधन, चिह्ननिर्माण, मुद्रण आदि कार्यमें जिन-जिन लोगोंने हमें सहायता मिली है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते। इस बार भविष्यपुराणके सम्पादन-कार्यके क्रममें परमात्मप्रभु और उनकी ललित लीला-कथाओंका चिन्तन-मनन तथा स्वाध्यायका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा, यह हमारे लिये विशेष महत्त्वकी बात है। हमें आशा है, इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहाय पाठकोंको भी यह सौभाग्य-लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

अन्तमें हम अपनी ज़ुटियोंके लिये आप सबसे पुनः क्षमा-प्रार्थना करते हुए भगवान् श्रीवेदव्यासजीके चरणोंमें नमन करते हैं, जिनके कृपाप्रसादसे आज हम सभी जीवनका मार्गदर्शन कर लाभान्वित हैं—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरायणाः ।

सर्वे भवन्ति पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

—राधेदयाम सेमका

सम्पादक







# कल्याण

एहि सूर्य सहस्रोशो तेजोराशे जगत्पते ।  
अनुकम्पय मां भयस्या गुहाणार्घ्ये दिवाकर ॥

वर्ष ६६ } गोरखपुर, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१७, फरवरी १९९२ ई. { संख्या २  
पूर्ण संख्या ७८३

## कृष्णाय तुभ्यं नमः

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्दिषते  
दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रहृद्ये कुर्वते ।  
पीलस्य जपते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते  
म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

श्रीकृष्ण ! आपने मत्सररूप धारणकर प्रलयसमुद्रमें डूबे हुए कैटिक उद्धार किया, समुद्र-मन्थनके समय महाकुर्म बनकर पृथ्वीमण्डलको पीठपर धारण किया, महावराहके रूपमें कर्णार्णवमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया, नृसिंहके रूपमें हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंका विदारण किया, वामनके रूपमें राजा बलिको छल्य, परशुरामके रूपमें क्षत्रिय जातिको संहार किया, श्रीरामके रूपमें महाबली रावणपर विजय प्राप्त की, श्रीबलरामके रूपमें हलको शस्त्ररूपमें धारण किया, भगवान् बुद्धके रूपमें कठणका विस्तार किया था तथा कल्किके रूपमें म्लेच्छोंको मूर्च्छित करेंगे । इस प्रकार दशवतारके रूपमें प्रकट आपकी मैं वन्दना करता हूँ ।



## श्रावणपूर्णिमाको रक्षाबन्धनकी विधि

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! प्राचीन कालमें देवासुर-संग्राममें देवताओंद्वारा दानव पराजित हो गये। दुःखी होकर ये दैत्यराज बलिके साथ गुरु शुक्राचार्यजीके पास गये और अपनी पराजयका वृत्तान्त बतलाया। इसपर शुक्राचार्य बोले—'दैत्यराज ! आपको विषाद नहीं करना चाहिये। देववश कालकी गतिसे जय-पराजय तो होती ही रहती है। इस समय वर्षभरके लिये तुम देवराज इन्द्रके साथ संधि कर लो, क्योंकि इन्द्र-पत्नी शचीने इन्द्रको रक्षा-सूत्र बाँधकर अजेय बना दिया है। उसीके प्रभावसे दानवेन्द्र ! तुम इन्द्रसे परास्त हुए हो। एक वर्षतक प्रतीक्षा करो, उसके बाद तुम्हारा कल्याण होगा। अपने गुरु शुक्राचार्यके वचनोंको सुनकर सभी दानव निश्चिन्त हो गये और समयकी प्रतीक्षा करने लगे। राजन् ! यह रक्षाबन्धनका विलक्षण प्रभाव है, इससे विजय, सुख, पुत्र, आरोग्य और धन प्राप्त होता है।

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! किस विधिमें किस विधिसे रक्षाबन्धन करना चाहिये। इसे बतायें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! श्रावण मासकी पूर्णिमाके दिन प्रातःकाल उठकर शौच इत्यादि नित्य-क्रियासे निवृत्त होकर भुति-स्मृति-विधिसे स्नान कर देवताओं और पितरोंका निर्मल जलसे तर्पण करना चाहिये तथा उपवास-विधिसे वेदोक्त ऋषियोंका तर्पण भी करना चाहिये। ब्राह्मणवर्ग



## महानवमी-(विजयादशमी-) व्रत

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**महाराज ! महानवमी सब विधियोंमें श्रेष्ठ है। सभी प्रकारके मङ्गल और भाग्यलक्ष्मी प्रसन्नताके लिये सब लोगोंको और विशेषकर राजाओंको महानवमीका उत्सव अवश्य मनाना चाहिये।

**युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! इस महानवमी-व्रतका आरम्भ कबसे हुआ ? क्या यशोदके गर्भसे प्रदुर्भूत होनेके समयसे महानवमी-व्रतका प्रचलन हुआ अथवा इसके पूर्व सत्ययुग आदिमें भी यह महानवमी-व्रत था ? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**महाराज ! यह परमशक्ति सर्वव्यापिनी, भावगम्या, अनन्ता और आकाश आदि नामसे

देवताओंके उद्देश्यसे श्राद्ध करें। तदनन्तर अपराह्न-कालमें रक्षापोटलिका इस प्रकार बनाये—कपास अथवा रेशमके वस्त्रमें अक्षत, गौर सर्प, सुवर्ण, सरसों, दूर्वा तथा चन्द आदि पदार्थ रखकर उसे बाँधकर एक पोटलिका बना ले तथा उसे एक ताम्रपात्रमें रख ले और विधिपूर्वक उसके प्रतिष्ठित कर ले। आँगनको गोबरसे लीपकर एक चौकोर मण्डल बनाकर उसके ऊपर पीठ स्थापित करें और उसके ऊपर मन्त्रोसहित राजाको पुरोहितके साथ बैठना चाहिये। उस समय उपस्थित जन प्रसन्न-चित्त रहें। मङ्गल-ध्वनि करें। सर्वप्रथम ब्राह्मण तथा सुवासिनी क्षिराँ अर्घ्यादिके द्वारा राजाकी अर्चना करें। अनन्तर पुरोहित उस प्रतिष्ठित रक्षापोटलीको इस मन्त्रका पाठ करते हुए राजाके दाहिने हाथमें बाँधें—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः।

तेन त्वामभिषद्वापि रक्षे मा बल मा घल ॥

(उत्तरार्ध १३७।२०)

तत्पश्चात् राजाको चाहिये कि सुन्दर वस्त्र, भोजन और दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंकी पूजाकर उन्हें संतुष्ट करें। यह रक्षाबन्धन चारों वर्णोंको करना चाहिये। जो व्यक्ति इस विधिसे रक्षाबन्धन करता है, वह वर्षभर सुखी रहकर पुत्र-पौत्र और धनसे परिपूर्ण हो जाता है।

(अध्याय १३७)

विधिविख्यात है। उनका करती, सर्वमङ्गला, माया, कल्याणिनी, दुर्गा, जामुण्डा तथा शंकरप्रिया आदि अनेक नाम-रूपोंसे ध्यान और पूजन किया जाता है।

देव, दानव, राक्षस, गन्धर्व, नाग, यक्ष, किन्नर, नर आदि सभी अष्टमी तथा नवमीको उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। कन्यके सूर्यमें आश्विन मासके शुक्ल पक्षमें अष्टमीको यदि मूल नक्षत्र हो तो उसका नाम महानवमी है। यह महानवमी तिथि दोनों लोकोंमें अत्यन्त दुर्लभ है। आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी और नवमीको जगन्माता भगवती श्रीअम्बिकाका पूजन करनेसे सभी शत्रुओंपर विजय प्राप्त हो जाती है। यह तिथि पुण्य, पवित्रता, धर्म और सुखको देनेवाली है। इस दिन

मुण्डमालिनी चामुण्डाका पूजन अवश्य करना चाहिये। सभी कल्पों और मन्वन्तरोंमें देव, दैत्य आदि अनेक प्रकारके उपचारोंसे नवमी तिथिमें भगवतीकी पूजा किया करते हैं और तीनों लोकोंमें अवतार लेकर भगवती मर्यादाका पालन करती रहती हैं। राजन् ! यही परम्परा जगन्माता भगवती यशोदाके गर्भसे उत्पन्न हुई थीं और वे कंसके मस्तकपर पैर रखकर आकाशमें चली गयीं और फिर विन्ध्यचलमें स्थापित हुईं, तभीसे यह पूजा प्रवर्तित हुई।

भगवतीका यह उत्सव पहलेसे ही प्रसिद्ध था, परन्तु सभी प्राणियोंके उपकारके लिये तथा सभी विघ्न-बाधाओंकी शान्तिके लिये ही मैंने अपनी बहनके रूपमें भगवती विन्ध्यवासिनी देवीकी महिमाका विशेषरूपसे प्रचार किया। विन्ध्यवासिनी भगवतीके स्थानमें नव रात्रि, तीन रात्रि, एक रात्रि उपवास या अयाचितव्रत अथवा नक्तव्रत कर अनेक प्रकारके उपचारोंसे भगवतीकी आराधना करनी चाहिये। ग्राम-ग्राम, नगर-नगर और घर-घरमें सभी लोगोंको स्नान कर द्रव्यवर्षित होकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री आदि सभीको भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। विशेषकर राजाओंको तो यह पूजन अवश्य करना चाहिये।

विजयकी इच्छा रखनेवाले राजाको प्रतिपदासे अष्टमी-पर्यन्त लोहाभिहारिक कर्म (अस्त्र-शस्त्र-पूजन) करना चाहिये। सर्वप्रथम पूर्वोत्तर दालवाली भूमिमें नौ अथवा सात हाथ लम्बा-चौड़ा, पताकाओंसे सुसज्जित एक मण्डप बनाना चाहिये। उसमें अग्निकोणमें तीन मेखला और पीपलके समान योनिसे युक्त एक अति सुन्दर एक हाथके कुण्डकी रचना करनी चाहिये। राजाके चिह्न—छत्र, चामर, सिंहासन, अश्व, ध्वजा, पताका आदि और सभी प्रकारके अस्त्र-शस्त्र, मण्डपमें लट्कर रखे। उन सबका अधिवासन करे। इसके अनन्तर ब्राह्मणको चाहिये कि वह स्नानकर श्वेत वस्त्र धारणकर मण्डपादिकी पूजा करे और फिर ओंकारपूर्वक राजचिह्नके निर्दिष्ट मन्त्रोंद्वारा धृतसे संयुक्त पायससे हवन-कर्म करे। पूर्वकालमें बहुत ही बलवान्, शक्तिशाली लोह नामका एक दैत्य पैदा हुआ था। उसको देवताओंने मारकर खण्ड-खण्ड कर पृथ्वीपर गिरा दिया। वही दैत्य आज लोहाके रूपमें दिखायी पड़ता है। उसीके अङ्गोंमें ही विभिन्न प्रकारके लोहेकी उत्पत्ति हुई है। इसलिये उसी

समयसे लोहाभिहारिक कर्म राजाओंको विजय प्राप्त करनेमें सहायक सिद्ध हुआ, ऐसा ऋषियोंने बतलाया है। हवनका बन्ध हुआ शेष पायस हाथी और घोड़ोंको खिलाकर उनको अलङ्कृत कर माङ्गलिक घोष करते हुए रक्षकोंके साथ समारोहपूर्वक नगरमें घुमाना चाहिये। राजाको भी प्रतिदिन स्नानकर पितरों और देवताओंकी पूजा करनेके बाद राजचिह्नकी भी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये। इससे राजाको विजय, कीर्ति, आयु, यश तथा बलकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार लोहाभिहारिक कर्म करनेके अनन्तर अष्टमीके दिन पूर्वाह्नमें स्नान कर नियमपूर्वक सुवर्ण, चाँदी, पीपल, ताँबा, मृत्तिका, पाषाण, काष्ठ आदिकी दुर्गाकी सुन्दर मूर्ति बनाकर उत्तम सुसज्जित स्थानके बीच सिंहासनके ऊपर स्थापित करे। कुंकुम, चन्दन, सिन्दूर आदिसे उस मूर्तिको चर्चित कर कमल आदि पुष्प, धूप, टीप तथा नैवेद्य आदिसे अनेक बाजे-गाजेके साथ उनका पूजन करना चाहिये। बन्दीजन स्तुति करें। बहुतसे लोग छत्र-चामर आदि राजचिह्न लेकर चारों ओर खड़े होकर स्थित रहें। दीक्षयुक्त राजा पुरोहितके साथ विलम्बपूर्वसे भगवतीकी इस मन्त्रसे पूजा करे—

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।

दुर्गा शिवा क्षया धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥

अमृतोद्भवः श्रीगुह्यो महादेवीप्रियः सदा ।

विलम्बयन् प्रवच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ॥

(उत्तरपर्व १३८।८५-८७)

इस प्रकार पूजनकर उसी दिनसे द्रोणपुष्पी (गूमा) से पूजा करनी चाहिये। असुरोंके साथ युद्ध करनेसे जो क्षति भगवतीके शरीरको हुई उसकी पूर्ति द्रोणपुष्पीसे ही हुई। इसीलिये द्रोणपुष्पी भगवतीको अत्यन्त प्रिय है। फिर शत्रुओंके वधके लिये सङ्गको प्रणामकर सुभिक्ष, राज्य और अपने विजयकी प्राप्ति-हेतु भगवतीसे प्रार्थना करनी चाहिये और उनका ध्यान तथा इस स्तुतिकार पाठ करना चाहिये—

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिबे सर्वार्थसाधिके ।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

कुंकुमेन समालम्ब्ये चन्दनेन विलेपिते ।

विलम्बयन्कृतामाले दुर्गेऽहं शरणं गतः ॥

(उत्तरपर्व १३८।९३-९४)

इस प्रकार अष्टमीको सब प्रकारसे भगवतीका पूजन कर रत्रिको जागरण करना चाहिये और नृत्यादिक उत्सव करना चाहिये। प्रसन्नतापूर्वक रत्रिके बीत जानेपर नवमीको प्रातःकाल भगवतीकी बड़े समारोहके साथ विशेष पूजा करनी चाहिये। अषाढ़-समयमें रथके बीच भगवती दुर्गकी प्रतिमाको स्थापित कर पूरे राज्य भरमें भ्रमण करना चाहिये। अपनी सेनासहित राजाको भी साथ रहना चाहिये।

सभी प्रकारके विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये भूतशान्ति करनी



### इन्द्रध्वजोत्सवके प्रसंगमें उपरिचर वसुका वृत्तान्त

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**महायज्ञ। पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके समय महा आदि देवताओंने 'इन्द्रको विजय प्राप्त हो', इसलिये ध्वजपट्टिका निर्माण किया। ध्वजपट्टिकों देवताओं, सिद्ध-विद्याधर तथा नाग आदिने योंक पर्वतपर स्थापित कर सभी उपचारों—पुष्प, धूप तथा दीप्यादिसे उसको पूजा की और अनेक प्रकारके आभूषण, छत्र, घण्टा, किङ्किणी आदिसे उसे अलंकृत किया। उस ध्वजपट्टिको देखकर दैत्य ब्रह्म हो गये और युद्धमें देवताओंने उन्हें पराजित कर स्वर्गका राज्य प्राप्त कर लिया। दैत्य पतारल लोकमें चले गये। उसी दिनसे देवता उस इन्द्रपट्टिका पूजन और उत्सव करने लगे।

एक समय अपने महान् पुण्य-प्रतापके कारण राजा उपरिचर वसु स्वर्गमें आये। उनका देवताओंने बहुत सम्मान किया। उनसे प्रसन्न होकर इन्द्रने वह ध्वज उन्हें दिया और घर देते हुए कहा कि पृथ्वीमें इस ध्वजकी आप पूजा करें, इससे आपके राज्यके सभी दोष दूर हो जायेंगे और जो भी राजा वर्षा-ऋतुमें (भाद्रपद शुक्ल द्वादशी) श्रवण नक्षत्रमें इसका पूजन करेगा, उसके राज्यमें शैम और सुधिस बना रहेगा, किसी प्रकारका उपाद्रव नहीं होगा, प्रजाई प्रसन्न एवं नीरोग होगी, सर्वत्र धार्मिक यज्ञ होंगे। राज्यमें प्रजुर धन-सम्पत्ति होगी। इन्द्रका यह वचन सुनकर राजा उपरिचर वसु इन्द्र-ध्वजको लेकर अपने नगरमें चले आये और प्रतिवर्ष इन्द्र-ध्वजकी पूजा कर उत्सव मनाने लगे। इस ध्वजपट्टिको भी प्रत्यक्ष देवी माना गया है।

अब मैं इन्द्रध्वजके उत्सवकी विधि बता रहा हूँ। बीस हाथ लम्बे, सुपुष्ट, उत्तम काष्ठकी एक रश्मि बनाकर उसे सुन्दर

चाहिये। जिससे यात्रा निर्विघ्न पूर्ण हो। इस विधिसे जो राजा अथवा सामान्य व्यक्ति भगवतीकी यात्रा करता है, वह सभी प्रकारके पापोंसे छूटकर भगवतीके लोकको प्राप्त कर लेता है और उस व्यक्तिको शत्रु, चोर, ग्रह, विघ्न आदिका भय नहीं होता। भगवतीके भक्त सदा नीरोग, सुखी और निर्भय हो जाते हैं। जो व्यक्ति भगवतीके उत्सव-विधिकर श्रवण करता है या पढ़ता है, उसके भी सभी अमङ्गल दूर हो जाते हैं।

(अध्याय १३८)

रंग-विरंग वस्त्रोंसे सुसज्जित करे। उसमें तरह आभूषण लगावये। पहला आभूषण पिटक चौकोर होता है, इसे 'लोकपाल पिटक' कहते हैं, दूसरा आभूषण लाल रंगका वृत्तकार होता है, इसी प्रकार अन्य देवसम्बन्धी पिटकोंका निर्माण कर तथा दक्षिमें बाँधकर कुश, पुष्पमाला, घण्टा, चामर आदिसे समन्वित उस ध्वजको स्थापित करे। अनन्तर हवन करारकर गुहमें युक्त मिष्टान्न और पायस ब्राह्मणोंको भोजन कराये। भोजनोपरान्त उन्हे दक्षिणा दे। उस ध्वजको धीरेसे खड़ाकर स्थापित कर दे। नौ दिन या सात दिनतक उत्सव मनाना चाहिये। अनेक प्रकारके नृत्य, गायन, वादन कराते हुए मत्स्ययुद्ध आदि उत्सव भी कराने चाहिये। वस्त्राभूषण तथा खाद्यदि भोजनआदिसे सभी लोगोंको संतुष्ट कर सम्मानित करना चाहिये। रत्रिको जागरण कर ध्वजकी भलीभाँति रक्षा करनी चाहिये।

इन्द्रध्वजका पूजन, अर्चन तथा उत्सवादि कार्य सम्पन्न करना चाहिये। यदि एक वर्ष करनेके बाद दूसरे वर्ष किसी व्यवधानके कारण पूजादि कार्य न हो सके तो पुनः बारह वर्ष बाद ही करना चाहिये। ध्वजके अङ्ग-भङ्ग होनेपर अनेक प्रकारके उपद्रव प्रारम्भ हो जाते हैं। यदि ध्वजपर कौआ बैठ जाय तो दुर्धिस पड़ता है, उलूक बैठे तो राजाकी मृत्यु हो जाती है। कपोत बैठे तो प्रजाका विनाश होता है। इसलिये सावधान होकर उसकी रक्षा करनी चाहिये और भक्तिपूर्वक इन्द्रध्वजका उत्थापनकर पूजन करना चाहिये। यदि प्रमादवश ध्वज गिर पड़े या टूट जाय तो सोने अथवा चाँदीका ध्वज बनाकर उसका उत्थापन और अर्चनकर शान्तिक-पौष्टिक



आदि कर्म सम्पन्न कराये। ब्राह्मणको भोजन आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। इस विधिसे जो राजा इन्द्रध्वजकी यात्रा एवं पूजा करता है, उसके राज्यमें यथेष्ट वृष्टि होती है। मृत्यु और

अनेक प्रकारके ईति-भोति आदि दुर्योगों, कष्टोंका भय नहीं रहता तथा राजा शत्रुओंको पराजित कर चिर कलतक राज्य-सुख भोगकर अन्त समयमें इन्द्रलोकको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १३९)

### दीपमालिकोत्सव

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने यामनरूप धारणकर दानवराज बलिको छलकर इन्द्रको राज्यका भार सौंप दिया और राजा बलिको पाताल लोकमें स्थापित कर दिया। भगवान्ने बलिको यहाँ सदा रहना स्वीकार किया। कार्तिककी अमावास्याको रात्रिमें सारी पृथ्वीपर दैत्योंकी यथेष्ट चेष्टाएँ होती हैं।

**युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! कौमुदीतिथिकी विधिकी विशेष रूपसे बतानेकी कृपा करे। उस दिन किस वस्तुका दान किया जाता है। किस देवताकी पूजा की जाती है तथा कौन-सी ब्रिडा करनी चाहिये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**राजन् ! कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको प्रभातके समय नरकके भयको दूर करनेके लिये स्नान अवश्य करना चाहिये। अपराधों (विचित्रों) के पत्र सिरके ऊपर मन्त्र पढ़ते हुए धुमाये<sup>१</sup>। इसके बाद धर्मराजोंके नामों—यम, धर्मराज, मृत्यु, वैवस्वत, अमरक, काल तथा सर्वभूतक्षयका उच्चारण कर तर्पण करे। देवताओंकी पूजा करनेके बाद नरकसे बचनेके उद्देश्यसे दीप जलाये। प्रदोषके समय शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदिके मन्दिरोंमें, कोष्ठागार, चैत्य, सभामण्डप, नदीतट, महल, तडाग, उद्यान, वापी, मार्ग, हस्तिशाला तथा अश्वशाला आदि स्थानोंमें दीप प्रज्वलित करने चाहिये।

अमावास्याके दिन प्रातःकाल स्नानकर देवता और पितरोंका भक्तिपूर्वक पूजन-तर्पण आदि करे तथा पार्वण श्राद्ध करे। अनन्तर ब्राह्मणको दूध, दही, घृत और अनेक प्रकारके स्वादिष्ट भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करे और उन्हें संतुष्ट करे। अपराह्नकालमें राजाद्वारा अपने राज्यमें यह घोषित करना चाहिये कि 'आज इस लोकमें बलिक का शासन है। नगरके सभी

लोगोंको अपनी सामर्थ्यके अनुसार अपने घरको स्वच्छ—साफ-सुधरा करके नाना प्रकारके रंग-बिरंगे तोरण-पताकओं, पुष्पमालाओं तथा बंदनकारोंसे सजाना चाहिये। नगरके सभी लोगो अर्धत् नर-नारी, बाल-वृद्ध आदिको चाहिये कि सुन्दर उत्तम वस्त्र पहनकर कुंकुम, चन्दन आदिका लेप लगाकर ताम्बूलका भक्षण करते हुए आनन्दपूर्वक नृत्य-गीतादिकोंका आयोजन करें।' इस प्रकार अतीव उत्साहसे एवं प्रीतिपूर्वक इस दिन दीपोत्सव मनाया चाहिये। प्रदोषके समय दीपमाला प्रज्वलित कर अनेक प्रकारके दीप-बुझ खाड़े करने चाहिये। उस समय राक्षस लोकमें विचरण करते हैं। उनके भयको दूर करनेके लिये श्रेष्ठ बन्वाओंको दीप-बुझोंपर तण्डुल (धानका लावा) फेंकते हुए दीपकोंसे नीराजन करना चाहिये। दीपमालाओंकी जलनेसे प्रदोष-वेला दीपछिन्न हो जाती है और राक्षसोंद्वारा भय दूर हो जाता है। इस प्रकार अति शोभासम्पन्न नगरकी शोभा देखनेके उद्देश्यसे राजाको अपने मित्र, मन्त्री आदिके साथ अर्धरात्रिके समय धीरे-धीरे पैदल ही चलना चाहिये। राजकार्यचारी भी हाथमें प्रज्वलित दीपक लिये रहें। पूरे नगरकी रमणीयता देखकर राजाको यह मानना चाहिये कि राजा बलि जैसे ऊपर आज प्रसन्न हो गये होंगे। फिर राजा अपने महलमें वापस आ जाय।

आधी रात बीत जानेपर जब सब लोग निद्रामें हों, उस समय घरकी स्त्रियोंको चाहिये कि वे सुप बजाते हुए घरभरमें घूमती हुई आगनतक आये और इस प्रकार वे दरिद्रा—अलक्ष्मीका अपने घरसे निस्सारण करें। प्रातःकाल होते ही राजाको चाहिये कि वस्त्र, आभूषण आदि देकर ब्राह्मणों, सत्पुरुषोंको संतुष्ट करे और भोजन, ताम्बूल देकर मधुर वचनोंसे पण्डितोंका सत्कार करे तथा सामन्त, सिपाही और

१-मन्त्र इस प्रकार है—

हर यामनमार्गं जन्ममर्त्यं पुनः पुनः।

आपदं विदित्वं चापि ममपिह सर्वशः। अमार्गं न्यसेज्जु शरीरे यम शोधये ॥ (उत्तरपर्व १४०।९)

सेवक आदिको आपूषण, धन आदि देकर संतुष्ट करे तथा अनेक प्रकारके मल्लखरीडा आदिको आगोजन करे। राजाको मध्याह्नके अनन्तर नगरके पूर्व दिशामें ऊँचे स्तम्भ अथवा वृक्षोपर कुश और काशकी बनी मार्गपाली<sup>१</sup> बाँधकर उसकी पूजा करे। फिर हवन करे। अपनी प्रजाको भोजन देकर संतुष्ट करे। उस समय राजाको मार्गपालीकी आरती करनी चाहिये, यह आरती विजय प्रदान करती है। उसके बाद गाय, बैल, हाथी, घोड़ा, राजा, राजपुत्र, ब्राह्मण, शूद्र आदि सभी लोगोंको उस मार्गपालीके नीचेसे निकलना चाहिये। मार्गपालीको बाँधनेवाला अपने दोनों कुलोंका उद्धार करता है। इसका लङ्घन करनेवाले वर्षभर सुखी और नौरोग रहते हैं। फिर भूमिपर पाँच रंगोंसे मण्डल लिखकर उसके मध्यमें प्रसन्नमुख, द्विभुज, कुण्डल धारण करनेवाले कृष्णचन्द्र, बाण तथा मुर आदि दानवोंके साथ सर्वाभरणभूषित रत्नों विभूषणालीसहित राजा बलि की मूर्तिकी स्थापना करे और कमल, कुन्द, कङ्कड़, रक्त कमल आदि पुष्पों तथा गन्ध, दीप, नैवेद्य, अक्षत और दीपकों तथा अनेक उपहारोंसे राजा बलि की पूजा कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनस्तु प्रभो।

भविष्येन्नसुरासते पूजेयम् प्रतिगृह्यताम् ॥

(उत्तरपर्व १४०।५४)

इस प्रकार पूजन कर रात्रिकी जागरणपूर्वक महोत्सव करना चाहिये। नगरके लोग अपने-अपने घरमें शय्यामें बैठ

तन्दुल बाँधकर राजा बलिको उसमें स्थापित कर फल-पुष्पादिसे पूजन करें और बलिके उद्देश्यसे दान करें, क्योंकि राजा बलिके लिये जो व्यक्ति दान देता है, उसका दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है। भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर बलिसे पृथ्वीको प्राप्त किया और यह कर्तिकी अमावास्या तिथि राजा बलिको प्रदान की, उसी दिनसे यह कौमुदीका उत्सव प्रवृत्त हुआ है<sup>२</sup>। यह तिथि सभी उपद्रव, सभी प्रकारके विष, शोक आदिको दूर करनेवाली है। धन, पुष्टि, सुख आदि प्रदान करती है। 'कु' यह पृथ्वीका वाचक शब्द है और 'मुदी' का अर्थ होता है प्रसन्नता। इसलिये पृथ्वीपर सबको हर्ष देनेके कारण इसका नाम कौमुदी पड़ा। जो राजा वर्षभरमें एक दिन राजा बलिको उत्सव करता है, उसके राज्यमें रोग, शत्रु, महामारी और दुर्भिक्षका भय नहीं होता। सुमित्र, आरोग्य और सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। इस कौमुदी तिथिको जो व्यक्ति जिस भावमें रहता है, उसे वर्षभर उसी भावकी प्राप्ति होती है। यदि व्यक्ति उस दिन रुदन कर रहा हो तो रुदन, दुर्घटित है तो हर्ष, दुःखी है तो दुःख, सुखी है तो सुख, भोगसे भोग, स्वस्थतासे स्वस्थता तथा दीन रहनेसे दीनताकी प्राप्ति होती है<sup>३</sup>। इसलिये इस तिथिको हृष्ट और प्रसन्न रहना चाहिये। यह तिथि कैवल्य भी है, दानवी भी है और पैत्रिकी भी है। दीपमालाके दिन जो व्यक्ति भक्तिसे राजा बलिको पूजन-अर्चना करता है, वह वर्षभर आनन्दपूर्वक सुखसे व्यतीत करता है और उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। (अध्याय १४०)

### शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मों तथा नवग्रह-शान्तिकी विधिकी वर्णन\*

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये आप यह बतलानेकी कृपा करें कि सम्पूर्ण क्षमनाओंकी अविघल सिद्धिके लिये शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मोंका अनुष्ठान किस प्रकार करना चाहिये?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! लक्ष्मीकी कामना-बोले अथवा शान्तिके अभिलाषी तथा वृष्टि, दीर्घायु और पुष्टिकी इच्छासे युक्त मनुष्यको ग्रहयज्ञका समारम्भ करना चाहिये। मैं सम्पूर्ण शास्त्रोंका अवलोकन करनेके पश्चात् पुराणों

१-मार्गपाली दरवाजेके पास बना हुआ सागताड़ है, जो कुश, काश, तुण आदि और आष तथा अशोकके पत्तोंसे अलंकृत कर बनायी जाती है।

२-विष्णुका वसुधा तथा प्रीतिन सत्ये पुनः। उपकारयो दत्तहामुखं महोत्सवः ॥

ततः प्रभृति एजेन्द्र प्रवृत्त कौमुदी पुनः।

(उत्तरपर्व १४०।५९-६०)

३-जो यद्गुरो न भावेन तिष्ठत्यस्य युधिष्ठिर। हृष्टैर्यदिभ्यो न तस्य वर्षं प्रयाति हि ॥

रुदिते रोदिति क्व हृष्टो क्व प्रवृत्तः। पुनो प्लेस भजे क्व सत्यः सत्यो भवेदिति ॥ (उत्तरपर्व १४०।६८-६९)

४-यह पाँच आचर्यन कर्णों—नास्र, कान, गतिरूपिणि, अङ्गिरस एवं कर्णिकालयमेसे प्रथम एवं पाँचों शान्तिकरूपका समन्वित रूप है।

एवं श्रुतियोंद्वारा आदिष्ट इस ग्रहशान्तिका संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ। इसके लिये ज्योतिषीद्वारा बतलाये गये शुभ मुहूर्तमें ब्राह्मणद्वारा स्तुतिवाचन करके ग्रहों एवं ग्रहधिदेवोंकी स्थापना करके हवन प्रारम्भ करना चाहिये। पुराणों एवं श्रुतियोंके ज्ञाता विद्वानोंने तीन प्रकारके ग्रहयज्ञ बतलाये हैं। पहला दस हजार आहुतियोंका अयुतहोम, उससे बढ़कर दूसरा एक लाख आहुतियोंका लक्षहोम तथा सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला तीसरा एक करोड़ आहुतियोंका कोटि-होम होता है। दस हजार आहुतियोंवाला ग्रहयज्ञ नवग्रहयज्ञ कहलाता है। इसकी विधि जो पुराणों एवं श्रुतियोंमें बतलायी गयी है, प्रथम मैं उसका वर्णन कर रहा हूँ। (यजमान मण्डपनिर्माणके बाद) हवनकुण्डकी पूर्वोत्तर-दिशामें स्थापनके लिये एक वेदीका निर्माण कराये, जो दो बीता लम्बी-चौड़ी, एक बीता ऊँची, दो परिधिधोंसे सुरोभित और चौकोर हो। उसका मुख उत्तरकी ओर हो। पुनः कुण्डमें अग्निको स्थापना करके उस वेदीपर देवताओंका आवाहन करे। इस प्रकार उसपर बत्तीस देवताओंकी स्थापना करनी चाहिये।

सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु—ये लोगोके हितकारी ग्रह कहे गये हैं। इन ग्रहोंकी प्रतिमा क्रमशः ताँबा, स्पष्टिक, रक्तचन्दन, स्वर्ण, चाँदी तथा लोहेसे बनानी चाहिये। श्वेत चावलोंद्वारा वेदीके मध्यमें सूर्यकी, दक्षिणमें मंगलकी, उत्तरमें बृहस्पतिकी, पूर्वोत्तर-कोणपर बुधकी, पूर्वमें शुक्रकी, दक्षिण-पूर्वकोणपर चन्द्रमाकी, पश्चिममें शनिकी, पश्चिम-दक्षिणकोणपर राहुकी और पश्चिमोत्तरकोणपर केतुकी स्थापना करनी चाहिये। इन सभी ग्रहोंमें सूर्यके शिव, चन्द्रमाके पार्वती, मंगलके रुद्र, बुधके भगवान् विष्णु, बृहस्पतिके ब्रह्मा, शुक्रके इन्द्र, शनैश्वरके यम, राहुके काल और केतुके विष्वगुप्त अधिदेवता माने गये हैं। अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, सौवर्ण देवता, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा—ये सभी क्रमशः प्रत्यधिदेवता हैं। इनके अतिरिक्त विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश, सवित्री, लक्ष्मी तथा उमाको उनके पतिदेवताओंके साथ और अश्विनीकुमारोंका भी व्याहृतियोंके उच्चारणपूर्वक आवाहन करना चाहिये। उस

समय मंगलसहित सूर्यको लाल वर्णका, चन्द्रमा और शुक्रको श्वेत वर्णका, बुध और बृहस्पतिको पीत वर्णका, शनि और राहुको कृष्ण वर्णका तथा केतुको धूस्र वर्णका जानना और ध्यान करना चाहिये। बुद्धिमान् यज्ञकर्ता जो ग्रह जिस रंगका हो, उसे उसी रंगका वस्त्र और फूल समर्पित करे, सुगन्धित धूप दे। पुनः फल, पुष्प आदिके साथ सूर्यको गुड़ और चावलसे बने हुए अन्न (खीर) का, चन्द्रमाको धी और दूधसे बने हुए पदार्थका, मंगलको गोड़ियाका, बुधको क्षीरपट्टिक (दूधमें पके हुए साठीके चावल) का, बृहस्पतिको दही-भातका, शुक्रको धी-भातका, शनैश्वरको खिचड़ीका, राहुको अजम्बूगी नामक लताके फलके गूदाका और केतुको विचित्र रंगवाले भातका नैवेद्य अर्पण करके सभी प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंद्वारा पूजन करे।

वेदीके पूर्वोत्तरकोणपर एक छिद्ररहित कलशकी स्थापना करे, उसे दही और अक्षतसे सुरोभित, आग्निके फलत्वसे आच्छादित और दो वस्त्रोंसे परिरोहित करके उसके निकट फल रख दे। उसमें पञ्चरत्न डाल दे और उसे पञ्चभङ्ग (पीपल, बरगद, पाकड़, गूलर और आमके फलत्व) से युक्त कर दे। उसपर वरुण, गङ्गा आदि नदियों, सभी समुद्रों और सरोवरोंका आवाहन तथा स्थापन करे। राजेन्द्र। धर्मज्ञ पुरोहितको चाहिये कि वह हाथीसार, धुइशाल, चौराहे, विषमवट, नदीके संगम, कुण्ड और गोशालाकी मिट्टी लाकर उसे सर्वौषधिमिश्रित जलसे अधिष्ठाित कर यजमानके स्नानके लिये वहाँ प्रस्तुत कर दे तथा 'यजमानके पापको नष्ट करनेवाले सभी समुद्र, नदी, नद, बादल और सरोवर यहाँ पधरें' ऐसा कहकर इन देवताओंका आवाहन करे। तत्पश्चात् धी, जौ, चावल, तिल आदिसे हवन प्रारम्भ करे। मदार, पल्लार, खैर, चिचिडा, पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुरा—ये क्रमशः नवों ग्रहोंकी समिधाएँ हैं। इनमें प्रत्येक ग्रहके लिये मधु, धी और दही अथवा पायससे युक्त एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको सदा सभी कर्मोंमें अंगूठेके सिरेसे तर्जनीके सिरेतककी मापवाली तथा बरौंह, शाखा और पत्तोंसे रहित

समिधाओंकी कल्पना करनी चाहिये। परमार्थवेत्ता यजमान सभी देवताओंके लिये उन-उनके पुष्प-पुष्प मन्त्रोंका मन्त्र स्वरसे उच्चारण करते हुए समिधाओंका हवन करे। अनन्तर प्रत्येक देवताके लिये उसके मन्त्रद्वारा हवन करना चाहिये। ब्राह्मणको 'आ कृष्णेन रजसा' (यजुः ३३।४३) — इस मन्त्रका उच्चारण कर सूर्यको आहुति देनी चाहिये। पुनः 'इमे देवा' (यजुः ९।४०) इस मन्त्रसे चन्द्रमाको आहुति दे। मंगलके लिये 'अग्निर्मूर्धा' (यजुः १३।१४) इस मन्त्रसे आहुति दे। बुधके लिये 'उद्बुध्यस्व' (यजुः १५।५४) और देवगुरु बृहस्पतिके लिये 'बृहस्पते अति' (यजुः २६।३) ये मन्त्र माने गये हैं। शुक्रके लिये 'अन्नात्यरि' (यजुः १९।७५) और शनैश्चरके लिये 'शं नो देवीरभीष्टम्' (यजुः ३६।१२) इस मन्त्रसे आहुति दे। राहुके लिये 'कया नक्षत्र' (यजुः २७।३९) यह मन्त्र कहा गया है तथा केतुकी शान्तिके लिये 'केतु कृण्वन्' (यजुः २९।३७) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। वर आदि हवनीय पदार्थोंमें धी मिल्वाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन करना चाहिये, तत्पश्चात् व्याहृतिपौत्र उच्चारण करके धौकी दस आहुतियाँ अग्निमें डाले। पुनः श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर प्रत्येक देवताके मन्त्रोच्चारणपूर्वक वर आदि पदार्थोंका हवन करे।

फिर 'आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं' (ऋः ४।३।१, कृष्णयजुः तैः सं- १।३।१४।१) इस मन्त्रका उच्चारण कर रुद्रके लिये हवन और बलि देनी चाहिये। तत्पश्चात् उमाके लिये 'आपो हि द्या' (वाजसं- सं- ११।५०) — इस मन्त्रसे, स्वामिकार्तिक्रियके लिये 'स्यो मा' इस मन्त्रसे, विष्णुके लिये 'इदं विष्णुः' (यजुः ५।१५) इस मन्त्रसे, ब्रह्मके लिये 'तमीशानम्' (वाजसं- २५।१८) इस मन्त्रसे और इन्द्रके लिये 'इन्द्रमिदेवताय' — इस मन्त्रसे आहुति डाले। इसी प्रकार यमके लिये 'आयं गौः' (यजुः ३।६) इस मन्त्रसे हवन बतलाया गया है। कालके लिये 'ब्राह्मजज्ञानम्' (यजुः १३।३) यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है। अश्विके लिये 'अग्नि दूते वृणीमहे' (ऋक्सं- १।१२।१) यह मन्त्र बतलाया गया है। वरुणके लिये 'उदुतमं वरुणपाशम्' (ऋक्सं- १।२४।१५) यह मन्त्र कहा गया है। केतुमें पुष्पोंके लिये

'पुविष्यन्तरिक्षम्' — इस मन्त्रका पाठ है। विष्णुके लिये 'सहस्रशीर्षां पुरुषः' (वाजसं- सं- ३१।१) यह मन्त्र कहा गया है।

हवन समाप्त हो जानेपर चार ब्राह्मण अभिषेक-मन्त्रोंद्वारा उसी जलपूर्ण कलशसे पूर्व अथवा उत्तर मुख करके बैठे हुए यजमानका अभिषेक करे और ऐसा कहे — 'ब्रह्मा, विष्णु और शंखर — ये देवता आपका अभिषेक करें। जगदीश्वर वसुदेव-चन्दन श्रीकृष्ण, सामर्थ्यशाली संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध — ये सभी आपको विजय प्रदान करें। इन्द्र, अग्नि, ऐश्वर्यशाली यम, निर्व्रति, वरुण, पवन, कुम्भर, ब्रह्मासहित शिव, शेषनाग और दिक्पालगण — ये सभी आपकी रक्षा करें। कीर्ति, लक्ष्मी, भूति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, शान्ति, पुष्टि, कान्ति, तुष्टि — ये सभी माताएँ जो धर्मकी पत्नियाँ हैं, आकर आपको अभिषिक्त करें। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु — ये सभी ग्रह प्रसन्नतापूर्वक आपको अभिषिक्त करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, प्राणि, गौ, देवमाताएँ, देवपत्नियाँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सराओंकी समूह, अस्र, सभी राक्ष, नृपगण, वाहन, औषध, रत्न, (कला, काष्ठ आदि) कालके अत्यय, नदियाँ, सागर, पर्वत, तीर्थस्थान, बादल, नद — ये सभी सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये आपको अभिषिक्त करें।'

इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वाधि एवं सम्पूर्ण सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त जलसे स्नान करा दिये जानेके पश्चात् सप्तश्लोक यजमान श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत चन्दनका अनुलेप करे और विस्मयरहित होकर शान्त चित्तवाले ऋत्विजोंका प्रपन्नपूर्वक दक्षिणा आदि देकर पूजन करे तथा सूर्यके लिये क्षपिता गौका, चन्द्रमाके लिये शङ्खका, मंगलके लिये धार वहन करनेमें समर्थ एवं ऊँचे डीलबाले लाल रंगके कैलश, बुधके लिये सुवर्णका, बृहस्पतिके लिये एक जोड़ पीले वस्त्रका, शुक्रके लिये श्वेत रंगके घोड़ेका, शनैश्चरके लिये काली गौका, राहुके लिये लोहेकी बनी हुई वस्तुका और केतुके लिये उत्तम प्रकारके दानका विधान है। यजमानको ये सारे दक्षिणाएँ सुवर्णके साथ अथवा स्वर्णनिर्मित मूर्तिके रूपमें देने चाहिये अथवा जिस प्रकार गुरु (पुरोहित) प्रसन्न हो, उनसे



आज्ञानुसार सभी ब्राह्मणोंको सुवर्णसे अलंकृत गौरों अथवा केवल सुवर्ण दान करना चाहिये। पर सर्वत्र मन्त्रोच्चारणपूर्वक ही इन सभी दक्षिणाओंके देनेका विधान है।

दान देते समय सभी देय वस्तुओंसे पूष-पूष इम प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—'कृपिले ! तुम रोहिणीरूप हो, तीर्थ एवं देवता तुम्हारे स्वरूप हैं तथा तुम सम्पूर्ण देखोकी पूजनीया हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। शङ्ख ! तुम पुण्योक्ति भी पुण्य और मङ्गलोक्ति भी मङ्गल हो। भगवान् विष्णुने तुम्हें अपने हाथमें धारण किया है, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। जगत्को अहन्दित करनेवाले कृष्ण ! तुम वृषरूपसे धर्म और अष्टमूर्ति शिवजीके वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। सुवर्ण ! तुम ब्रह्माके आत्मस्वरूप, अग्निके स्वर्णमय बीज और अनन्त पुण्यके प्रदाता हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। दो पीले वस्त्र अर्थात् पीताम्बर भगवान् श्रीकृष्णको धारण प्रिय हैं, इसलिये विष्णो ! उसको दान करनेसे आप मुझे शान्ति प्रदान करें। अश्व ! तुम अश्वरूपसे विष्णु हो, अमृतसे उपज हुए हो तथा सूर्य एवं चन्द्रमाके नित्य वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। पृथ्वी ! तुम समस्त धेनुस्वरूपा, कृष्ण (गोविन्द) नामवाली और सदा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाली हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। लौह ! चैत्तिक विश्वके सभी सम्पादित होनेवाले लौह-कर्म हल एवं अस्त्र आदि सारे कार्य सदा तुम्हारे ही अधीन हैं, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। छाग ! चैत्तिक तुम सम्पूर्ण यज्ञोंके मुख्य अङ्गरूपसे निर्धारित हो और अग्निदेवके नित्य वाहन हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। गौ ! चैत्तिक गौओंके अङ्गोंमें चौदहों भुवन निवास करते हैं, इसलिये तुम मेरे लिये इहलोक एवं परलोकमें भी कल्याण प्रदान करो। जिस प्रकार भगवान् केशव तथा शिवकी शय्या कभी शून्य नहीं रहती, बल्कि लक्ष्मी तथा धार्वतीसे सदा सुशोभित रहती है, वैसे ही मेरे दान भी दान की गयी शय्या जन्म-जन्ममें सुखसे सम्पन्न रहे। जैसे सभी राजोंमें समस्त देवता निवास करते हैं, वैसे ही रज-दान करनेसे वे देवता मुझे शान्ति प्रदान करें। सभी दान भूमिदानकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते, अतः भूमि-दान करनेसे मुझे इस लोकमें शान्ति प्राप्त हो।' इस प्रकार कृपणता छोड़कर भक्तिपूर्वक रज, सुवर्ण, वस्त्रसमूह, धूप, पुष्पमाला

और चन्दन आदिसे ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये।

राजन् ! अब आप भक्तिपूर्वक ग्रहोंके स्वरूपोंको सुनें—(चित्र-प्रतिमादि विधानोंमें) सूर्यदेवकी दो भुजाएँ निर्दिष्ट हैं, वे कमलके आसनपर विराजमान रहते हैं, उनके दोनों हाथोंमें कमल सुशोभित रहते हैं। उनकी कान्ति कमलके भीतरी भागकी-सी है और वे सात घोड़ों तथा सात रस्सियोंसे जुते रथपर अरुण रहते हैं। चन्द्रमा गौरवर्ण, श्वेत वस्त्र और श्वेत अश्वयुक्त है तथा उनके आभूषण भी श्वेत वर्णके हैं। धरणीनन्दन मंगलकी चार भुजाएँ हैं। वे अपने चारों हाथोंमें शङ्ख, डाल, गदा तथा वरद-मुद्रा धारण किये हैं, उनके शरीरकी कान्ति कनेरके पुष्प-सरीखी है। वे लाल रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। पीत चन्दनसे अनुलिप्त है। वे दिव्य सोनेके रथपर विराजमान हैं। देवताओं और दैत्योंके गुरु बृहस्पति और शुक्रकी प्रतिमाएँ क्रमशः पीत और श्वेत वर्णकी होनी चाहिये। उनके चार भुजाएँ हैं, जिनमें वे दण्ड, सदाशकी माला, कमण्डलु और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। शनैश्वरकी शरीर-कान्ति इन्द्रनीलमणिकी-सी है। वे ग्रीधर सवार होते हैं और हाथमें धनुष-बाण, त्रिशूल और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। राहुका मुख सिंहके समान भयंकर है। उनके हाथोंमें तलवार, कवच, त्रिशूल और वरमुद्रा शोभा पाती है तथा वे नीले रंगके सिंहासनपर आसीन होते हैं। ध्यान (प्रतिमा) में ऐसे ही राहु प्रशस्त माने गये हैं। केतु बहुतैर है। उन सबकी दो भुजाएँ हैं। उनके शरीर आदि धूसरवर्णके हैं। उनके मुख विकृत हैं। वे दोनों हाथोंमें गदा एवं वरमुद्रा धारण किये हैं और नित्य ग्रीधर सम्भासीन रहते हैं। इन सभी लोक-हितकारी ग्रहोंको किरीटसे सुशोभित कर देना चाहिये तथा इन सबकी ऊँचाई अपने हाथके प्रमाणसे एक सौ आठ अङ्गुल (साढ़े चार हाथ) करे होनी चाहिये।

हे पाण्डुनन्दन ! यह मैंने आपको नवग्रहोंका स्वरूप बतलाया है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ऐसी प्रतिमा बनाकर इनकी पूजा करे। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे ग्रहोंकी पूजा करता है, वह इस लोकमें सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा अन्तमें स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यदि किसी निर्धन मनुष्यको कोई ग्रह नित्य पीड़ा पहुँचा रहा हो तो उस

बुद्धिमान्को चाहिये कि उस ग्रहकी यज्ञपूर्वक भलीभाँति पूजा करके तत्पश्चात् शेष ग्रहोंकी भी अर्चना करे, क्योंकि ग्रह, गौ, राजा और ब्राह्मण—ये विशेषरूपसे पूजित होनेपर रक्षा करते हैं, अन्यथा अवहेलना किये जानेपर जलाकर भस्म कर देते हैं। इसलिये वैभक्की अभिलाषा रखनेवाले मनुष्यको दक्षिणासे रहित यज्ञ नहीं करना चाहिये, क्योंकि भरपूर दक्षिणा देनेसे (यज्ञका प्रधान) देवता भी संतुष्ट हो जाता है। नवग्रहोंकी यज्ञमें यह दस हजार आहुतियोंवाला हवन ही होता है। इसी प्रकार विवाह, उत्सव, यज्ञ, देवप्रतिष्ठा आदि कर्मोंमें तथा चित्तकी उद्दिष्टता एवं आकस्मिक विपत्तियोंमें भी यह दस हजार आहुतियोंवाला हवन ही बतलाया गया है। इसके बाद अब मैं एक लाख आहुतियोंवाले यज्ञकी विधि बतला रहा हूँ, सुनिये।

विद्वानोंने सम्पूर्ण यजमानाओंकी मिट्टिके लिये लक्षहोमका विधान किया है, क्योंकि यह पितरोंको परम प्रिय और साक्षात् भोग एवं मोक्षरूपी फलका प्रदाता है। बुद्धिमान् यजमानको चाहिये कि ग्रहबल और तारबलको अपने अनुकूल पक्षकर ब्राह्मणद्वारा स्तुतिवाचन कराये और अपने गृहके पूर्वोत्तर दिशामें अथवा शिवमन्दिरकी समीपवर्ती भूमिपर विधानपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये, जो दस हाथ अथवा आठ हाथ लम्बा-चौड़ा चौकोर हो तथा उसका मुख (प्रवेशद्वार) उत्तर दिशाकी ओर हो। उसकी भूमिको यज्ञपूर्वक पूर्वोत्तर दिशाकी ओर बालू बना देना चाहिये।

तदनन्तर मण्डपके पूर्वोत्तर भागमें यथार्थ लक्षहोमसे युक्त एक सुन्दर कुण्ड<sup>१</sup> तैयार कराये। परिमाणसे कम अथवा अधिक परिमाणमें बना हुआ कुण्ड अनेकों प्रसन्नकर भय देनेवाला हो जाता है, इसलिये शान्तिकुण्डको परिमाणके अनुकूल ही बनाना चाहिये। ब्रह्मर्षि लक्षहोमको अप्रतहोमसे दसगुना अधिक फलदायक बतलाया है, इसलिये इसे प्रयज्ञ-पूर्वक आहुतियों और दक्षिणाओंद्वारा सम्पादित करना चाहिये। लक्षहोममें कुण्ड चार हाथ लम्बा और दो हाथ चौड़ा होता है, उसके भी मुखस्थानपर योनि बनी होती है और वह तीन मेखलाओंसे युक्त होता है। देवताओंकी स्थापनाके लिये एक वेदीका भी विधान बतलाया है, जो तीन परिधिसे युक्त हो।

इनमें पहली परिधि दो अङ्गुल ऊँची शेष दो एक-एक अङ्गुल ऊँची होनी चाहिये। विद्वानोंने इन सबकी चौड़ाई दो अङ्गुलकी बतलायी है। वेदीके ऊपर दस अङ्गुल ऊँची एक दीवाल बनायी जाय, उसीपर पहलेकी ही भाँति फूल और अक्षतोंसे देवताओंका अग्राहण किया जाय। राजेन्द्र ! अधिदेवताओं एवं प्रत्यधिदेवताओंसहित सभी ग्रहोंको सूर्यके सम्मुख ही स्थापित करना चाहिये, उत्तराभिमुख अथवा पराङ्मुख नहीं। लक्ष्मीकामी मनुष्यको इस यज्ञमें (सभी देवताओंके अतिरिक्त) गरुडकी भी पूजा करनी चाहिये। (उस समय ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—) 'गरुड ! तुम्हारे शरीरसे सामवेदकी ध्वनि निकलती रहती है, तुम भगवान् विष्णुके वाहन और नित्य विष्णुका पायको हरनेवाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।'।

तत्पश्चात् पहलेकी तरह कलशकी स्थापना करके हवन आरम्भ करे। एक लाख आहुतियोंसे हवन करनेके पश्चात् पुनः समिधाओंकी संख्याके बराबर और अधिक आहुतियाँ डाले। फिर अग्निके ऊपर धृतकुम्भसे वसोर्धारा गिराये। (वसोर्धारकी विधि यह है—) भुजा-बराबर लम्बी गूलरकी लकड़ीसे, जो खोखली न हो तथा सीधी एवं गौली हो, सुखा बनाकर उसे दो खंभोंपर रखकर उसके द्वारा अग्निके ऊपर सम्यक् प्रकारसे षीकी धरा गिराये। उस समय अग्निमूक्त (ऋ० से० १।१), विष्णुमूक्त (वाजसे० ५।१-२२), रुद्रमूक्त (वही १६) और इन्द्र (सोम) मूक्त (ऋ० १।११) पाठ करना चाहिये तथा महावैष्णव साम और ज्येष्ठसामका गान करना चाहिये। तदुपरान्त पूर्ववत् यजमान स्नान कर स्तुतिवाचन कराये तथा कम-ज्येष्ठरहित होकर शान्तिचित्तसे पूर्ववत् ऋत्विजोंको पुषक्-पुषक् दक्षिणा प्रदान करे। नवग्रहयज्ञके अयुतहोममें चार वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको अथवा श्रुतिके जानकर एवं शान्त स्वभाववाले दो ही ऋत्विजोंको नियुक्त करना चाहिये। विस्तारमें नहीं फैसना चाहिये।

इसी प्रकार लक्षहोममें अपने सामर्थ्यके अनुकूल मत्सर-रहित होकर दस, आठ अथवा चार ऋत्विजोंको नियुक्त करना चाहिये। पाण्डवश्रेष्ठ ! सम्पत्तिशाली यजमानको यथाशक्ति मध्य पदार्थ, आपूषण, वस्त्रोंसहित शय्या, स्वर्णनिर्मित कपड़े,

१- 'कल्याण' अभिरुद्राङ्क अ० २४ की टिप्पणीमें कुण्ड-मन्दार-निर्माणकी पूरी विधि द्रष्टव्य है।

कुण्डल और अँगूठी आदि सभी वस्तुएँ लक्षहोममें नवग्रह-यज्ञसे दसगुनी अधिक देनी चाहिये। मनुष्यको कृष्णतण्डुल दक्षिणारहित यज्ञ नहीं करना चाहिये। जो लोभ अथवा अज्ञानसे भरपूर दक्षिणा नहीं देता, उसका कुल नष्ट हो जाता है। समृद्धिकामी मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार अन्नका दान करना चाहिये, क्योंकि अन्न-दानरहित किया हुआ यज्ञ दुर्भिक्षरूप फलका दाता हो जाता है। अन्नहीन यज्ञ राक्षसों, मन्त्रहीन ऋत्विजोंको और दक्षिणारहित यज्ञ यज्ञकर्त्ताको जलाकर नष्ट कर देता है। इस प्रकार (विधिहीन) यज्ञके सम्मान अन्य कोई शत्रु नहीं है। अल्प धनवाले मनुष्यको कभी लक्षहोम नहीं करना चाहिये, क्योंकि यज्ञमें (दक्षिणा आदिके लिये) प्रकट हुआ विग्रह सदाके लिये कष्टकारक हो जाता है। स्वल्प सम्पत्तिवाला मनुष्य केवल पुरोहितकी अथवा दो या तीन ब्राह्मणोंकी भक्तिके साथ विधिपूर्वक पूजा करे अथवा एक ही वेदज्ञ ब्राह्मणकी भक्तिके साथ दक्षिणा आदिसे प्रयत्नपूर्वक अर्चना करे, बहुतोंके चक्षरमें न पड़े। अधिक सम्पत्ति होनेपर

लक्षहोम करना चाहिये, क्योंकि यह अधिक लाभदायक है। इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। वह आठ सौ कल्पोंतक शिवलोकमें वसुगण, आदित्यगण और मरुद्गणोंद्वारा पूजित होता है तथा अन्तमें मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य किसी विशेष कामनासे इस लक्षहोमको विधिपूर्वक सम्पन्न करता है, उसे उस कामनाकी प्राप्ति तो हो ही जाती है, साथ ही वह अविनाशी पदको भी प्राप्त कर लेता है। इसका अनुष्ठान करनेसे पुत्रार्थको पुत्रकी प्राप्ति होती है, धनार्थी धन लाभ करता है, भार्याार्थी सुन्दर पत्नी, कुमारी कन्या सुन्दर पति, राज्यसे भट्ट हुआ राजा राज्य और लक्ष्मीका अभिलाषी लक्ष्मी प्राप्त करता है। इस प्रकार मनुष्य जिस वस्तुकी अभिलाषा करता है, उसे वह प्रचुर मात्रामें प्राप्त हो जाती है। जो निष्कामभावसे इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।

(अध्याय १४१)

### कोटिहोमका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! प्राचीन धरतमें प्रतिष्ठान (पैठण) नामक नगरमें सेवराज नामके एक महान् भाग्यशाली राजा थे। वे सभी शस्त्रोंमें निपुण, ब्रह्मरत्नके ज्ञाता, पितृभक्त तथा देव-ब्राह्मणोंके उपासक थे।

एक समयकी बात है, ब्राह्मणोंके पुत्र महायोगी सनक राजा सेवराजके पास आये। उन्हें देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने मुनिको आसन देकर प्रणाम किया तथा आर्य, पाद्य आदिसे उनका सत्कारकर अपना राज्य और स्वयंको भी उनके लिये समर्पित किया। मुनिने भी राजाद्वारा किये गये अधिवादन और सत्कारको स्वीकार किया। उसके बाद ब्राह्मण सनकने अनेक राजाओं, महाराजाओंके चरित और इतिहास-पुराण आदिकी कथाएँ उन्हें सुनायीं। राजा कथा सुनकर आत्मविभोर हो उठे। इसी अवसरपर राजा सेवराजने जगत्के प्राणियोंके हितकी दृष्टिसे सनकजीसे प्रार्थना करते हुए कहा—‘देवर्षे ! भूकम्प, उपलवृष्टि, प्रलयुद्ध, अन्तवृष्टि, रज्ज्योपद्रव आदि उत्पातोंकी शान्तिके लिये कोई उपाय बतानेकी कृपा करे, जिससे कि धन-धान्यकी वृद्धि, आरोग्य, सुख और सर्वकी

प्राप्ति हो।’ राजा सेवराजकी प्रार्थनाको सुनकर सनकजीने कहा—‘राजन् ! सभी कार्योंकी सिद्धि करनेवाले शान्तिप्रद कोटिहोमकी विधि बता रहा हूँ, जिसके करनेसे ब्रह्महत्यादि पातक छूट जाते हैं। सभी उत्तम शान्त हो जाते हैं। साथ ही आरोग्य एवं सुखकी भी प्राप्ति होती है। इसका विधान इस प्रकार है—

सबसे पहले शुद्ध मुहूर्त देखकर देवालय, नदीके तटपर, वनमें अथवा घरमें कोटिहोम करना चाहिये। सर्वप्रथम वेदवेत्ता ब्राह्मणका धरण कर गन्ध, अक्षत, पुष्प, माला, वस्त्र, आपूषण आदिसे उनका पूजनकर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वं मे गतिः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणः ।  
त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे सर्वं मे स्यान्धनोगतम् ॥  
आपट्टिमोक्षाय स मे कुरु यज्ञमनुत्तमम् ।  
कोटिहोमाख्यमतुलं ज्ञान्यर्थं सार्वकामिकम् ॥

(उत्तरपर्व १४२। १७-१८)

‘विप्रश्रेष्ठ ! आप ही हमलोगोंके माता-पिता हैं, आप ही

हमारे आश्रय है और आप ही गति है। आपके अनुग्रहसे हमारे सभी मनोरथ परिपूर्ण हो जायें। आपत्तिसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिये तथा सार्वकामिक शान्ति प्राप्त करनेके लिये आप कोटिहोम नामक उत्तम यज्ञ करा दें।'

आचार्यको भी श्वेत वस्त्र आदिसे अलंकृत होकर विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ पुण्याहवाचन करना चाहिये। पूर्व और उत्तरकी ओर ढालयुक्त समतल भूमिपर बने हुए मण्डपको ब्राह्मण सूत्र-द्वारा घेर दें। मण्डपका प्रमाण इस प्रकार है—एक सौ हाथ विस्तारका मण्डप उत्तम, पचास हाथका मध्यम तथा पच्चीस हाथका मण्डप निकृष्ट है, किन्तु शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार ही मण्डप बनाकर उसके बीचमें आठ हाथ लंबा-चौड़ा, तीन भेखलासे युक्त, चारह अंगुलके विस्तारयुक्त योनिमहिल एक चौरस कुण्ड बनाना चाहिये। कुण्डके पूर्व दिशामें चार हाथ लंबी-चौड़ी वेदी बनाये, जो एक हाथ उंची हो। उसमें सभी देवताओंको स्थापित करें। मण्डपकी भूमिको गेवर-मिट्टीसे अच्छी तरह लीपकर पञ्चपल्लवोंमें सुसज्जित जलपूर्ण चौदह कलशोंको स्थापित करना चाहिये। मण्डपके उत्तर पित्तन और तोरण लगाने चाहिये। सब सामग्री एकत्रित कर पुण्याहवाचन, स्वीस्तिवाचन, जयशब्दपूर्वक शुद्ध दिनसे पुरोहितको हवन प्रारम्भ करना चाहिये। मण्डपके पूर्वमें ब्रह्मा, मध्यमें विष्णु, पश्चिममें रुद्र, उत्तरमें यमु, ईशानमें ब्रह्म, अग्निज्वालामें महर्षि और शेष दिशाओंमें लोकपालोंकी (वेदिगोपर) स्थापना करें। गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे वैदिक और पौराणिक मन्त्रोंद्वारा स्वका अलग-अलग पूजन और प्रार्थना करें।

इसके पश्चात् वेदपाठी ब्राह्मणोंसहित विधानपूर्वक कुण्डका संस्कार करें। कुण्डमें अग्नि प्रज्वलितकर उस अग्निका नाम घृताचिंय रखें। विद्यावृद्ध, वर्षावृद्ध, गृहस्थ, जितेन्द्रिय, स्वकर्मनिष्ठ शुद्ध और ज्ञानशक्तिसम्पन्न एक सौ ब्राह्मणोंको हवनके लिये नियुक्त करें अथवा जिस संख्यामें उत्तम ब्राह्मण उपलब्ध हों, उनका ही वरण करना चाहिये। इसके बाद पञ्चमुख अग्निका ध्यान करना चाहिये। नामसहित उनकी सात जिह्वाओंकी पूजा करनी चाहिये। धुआँयुक्त अग्निके हवन करना व्यर्थ होता है। इसलिये प्रज्वलित अग्निके ही हवन करना चाहिये।

ऋग्वेदी ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख, यजुर्वेदीको उत्तराभिमुख, सामवेदीको पश्चिमाभिमुख और अथर्वणवेदी ब्राह्मणको दक्षिणाभिमुख बैठकर आचार और आज्ञाभागकी आहुतियाँ देने चाहिये। पहले ब्रह्माका स्थापन कर इस कर्मको आरम्भ करना चाहिये। आदिमें 'प्रणव' लगाकर अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका उच्चारण कर व्याहृतियोंसे हवन करना चाहिये। घी, काला तिल तथा जौ मिलाकर पलाशकी समिधाओंसे कोटिहोम करना चाहिये। एक हजार आहुति पूर्ण होनेपर पूर्णाहुति करनी चाहिये। पुनः उसी प्रकार हवन करना चाहिये। इस विधिसे कोटिहोम करना चाहिये। इसमें दस हजार बार पूर्णाहुतियाँ दी जाती हैं। इसमें सभी ब्राह्मणों और यजमानको काम, क्रोध आदि दोषोंसे दूर रहना चाहिये।

कोटिहोमकी विधिके सुनकर राजा संवरणने कहा कि महर्षे! इस कोटिहोममें बहुत अधिक समय लगेगा, इतने दिनोंका संयमसे रहना बहुत ही कठिन कार्य है। इसलिये कुण्डकर आप कोटिहोमकी संक्षिप्त विधि बतानेका कष्ट करें, जिससे कम समयमें यह विधि पूर्ण हो जाय।

राजाके इस प्रकारके वचनको सुनकर सनत्कुमुनिने कहा—'राजन्! कोटिहोम चार प्रकारका होता है—शतमुख, दशमुख, द्विमुख और एकमुख। समयानुसार इन चारोंमेंसे जो भी होम हो सके वही करना चाहिये। एक हाथ प्रमाणवाले उत्तम एक सौ कुण्ड बनाकर प्रत्येक कुण्डपर एक-एक ब्राह्मणको अथवा समय कम रहनेपर प्रत्येक कुण्डपर दस-दस ब्राह्मणोंको हवनके लिये नियुक्त करें। एक कुण्डमें अग्निका संस्कार कर उसी अग्निके अन्य कुण्डोंमें भी प्रज्वलित करना चाहिये। इस विधिद्वारा जो हवन किया जाता है, उससे एक ही कोटिहोम होता है, जो शतमुख होम कहलाता है। यदि समयका अभाव न हो तो दस कुण्ड बनाकर प्रत्येक कुण्डपर बीस-बीस ब्राह्मण हवनके लिये नियुक्त करने चाहिये। यह दशमुख नामक कोटिहोम है। यदि महीने-दो-महीनेका समय हो तो दो कुण्ड बनाकर प्रत्येक कुण्डपर पचास-पचास ब्राह्मणोंको हवनके लिये आमन्त्रित करना चाहिये। यह द्विमुख कोटिहोम है। अधिक-से-अधिक समय हो तो एक कुण्डमें अग्नि-स्थापन कर उत्तम कुलोत्पन्न वेदवेत्ता सदाचारी ब्राह्मणोंसे हवन करना चाहिये। इस हवनमें ब्राह्मणोंकी संख्याका कोई



नियम नहीं और समयकी सीमा भी निश्चित नहीं है। यह एकमुख कोटिहोम स्वेच्छयज्ञ कहलाता है। इस स्वेच्छयज्ञमें बहुत समय लगता है और बीचमें अनेक प्रकारके विघ्न भी उत्पन्न हो जाते हैं। धन और शरीरकी स्थिरताका कुछ भी भरोसा नहीं है। इसलिये संक्षेपसे ही यज्ञ करना चाहिये।

यज्ञ सम्पन्न कर अच्छी प्रकारसे महोत्सव मनाना चाहिये। सभी ब्राह्मणोंको कटक, कुण्डल, वस्त्र, दक्षिणा, एक सौ गाय, एक सौ घोड़े और स्वर्ण आदि प्रदान करना चाहिये तथा पुरोहितकी पूजा करनी चाहिये। दीनों, अन्धों तथा कृपणों

आदिको भोजन देकर अन्तमें कलशोंके जलसे अवभृथ स्नान करे और ब्राह्मण यजमानका अभिषेक करे। इस विधिसे जो राजा या व्यक्ति कोटिहोम करता है, वह आरोग्य, पुत्र, राज्यवृद्धि, ऐश्वर्य, धन-धान्य प्राप्त कर सभी प्रकारसे संतुष्ट रहता है तथा उसको प्रहरीडा भी नहीं भोगनी पड़ती। राज्यमें अन्धवृष्टि, उत्पात, महामारी, दुर्भिक्ष आदि कभी नहीं होते। सभी तरहके पाप और ग्रहोंकी पीड़ाको दूर करनेवाला शान्तिदायक यह कोटिहोम है, इसको करनेवाला व्यक्ति इन्द्रलोकको प्राप्त कर लेता है<sup>१</sup>। (अध्याय १४२)

### महाशान्ति-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं भगवान् शंकरद्वारा कही गयी महाशान्तिके विधान बतलाता हूँ, यह राजाओंके लिये कल्याणकारी है तथा भयंकर विघ्नोंको दूर करनेवाली है। इस महाशान्तिको राजाके अभिषेक, राजा तथा दुःस्वप्नके समय, दुर्निमित्तमें, ग्रहोंकी प्रतिकूलतामें, बिजली और उल्काके गिरनेपर, जन्म-मरणमें केतुके उदय होनेपर, पृथ्वी-कम्पन और प्रभृतिफलमें, मूलगण्डाचलमें, मिथुन संततिके उत्पत्तिकालमें, राजाके छत्र अथवा ध्वजके अपने स्थानसे पतनके समय, वस्त्र, उलूक और कम्बुतरके धरमें प्रवेश करनेपर, क्रूर ग्रहकी दृष्टि पड़नेपर या जन्मके समय क्रूर ग्रहोंके योग होनेपर, लग्नकुण्डलीमें इन्द्रा, चतुर्थ और अष्टम स्थानमें बृहस्पति, शनि, सूर्य एवं मंगलके स्थित होनेपर तथा बुधके समय, वस्त्र, आयुध, शणि, केश, गौ, अश्वके विनाशके समय, रात्रिमें इन्द्रधनुष दिखायी पड़नेपर, घरके तुला-भंगके समय तथा सूर्य और चन्द्र-ग्रहण आदिके समयमें यह महाशान्ति प्रशस्त मानी गयी है। इसके करनेसे सभी दुर्निमित्त शान्त हो जाते हैं। पाण्डव ! उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा शीलसम्पन्न वैदिक ब्राह्मणोंसे इस महाशान्तिको करना चाहिये। विशेषरूपसे अथर्ववेद, यजुर्वेद तथा ऋग्वेदके ज्ञाता, पवित्र ज्ञानसम्पन्न, जप-होमपरायण और अनेक कृच्छ्रादि बातोंके द्वारा शुद्ध व्यक्ति इसमें प्रशस्त माने गये हैं। प्रथम भगवान्की

आराधना करके क्रियाका आरम्भ करना चाहिये।

इस का करह हाथका एक सुन्दर मण्डप बनाकर उसके मध्यमें चार हाथकी वेदी बनाये और आग्नेय दिशामें एक हाथ प्रमाणवाला एक सुन्दर कुण्ड बनवाये और वह कुण्ड तीन मेखलाओंसे युक्त तथा योनिसे विभूषित होना चाहिये। मण्डपको चन्दन, माला, तोरण आदिसे अलंकृत कर गोबरसे लीपना चाहिये। मण्डपमें वेदीके ऊपर आग्नेयादि कोशोंमें क्रमशः चार और बीचमें पाँचवाँ कलश स्थापित करना चाहिये। कलशोंको पञ्चपल्लवी, सर्वोपधि, पञ्चरत्न, रोचना, चन्दन, सदाभूतिक, धान्य तथा पुण्य तीर्थके जल, नारिकेल आदिसे भलीभाँति स्थापित करना चाहिये। ब्राह्मकूर्ध-विधानसे पञ्चगव्यका निर्माण करे। इसके अनन्तर वैदिक मन्त्रोंसे कलशोंको अभिमन्त्रित कर उनका पूजन करे। मध्य कुम्भको सरकुम्भ कहा जाता है।

इसके बाद स्वस्तिवाचन करना चाहिये। अनन्तर अग्निर्कार्य सम्पन्न करे। 'अग्नि दूतः' (यजुः २२।१७) इस मन्त्रके द्वारा कुण्डमें अग्नि स्थापित करे। 'हिरण्यगर्भः' (यजुः १३।४) इस मन्त्रसे ब्राह्मसनको स्थापित करे। अग्नि-पूजनके अनन्तर आन्य (मृत) का संस्कार करे, अनन्तर विधिपूर्वक पञ्चैव द्रव्योंको यथावत् स्थापित करना चाहिये। इसके बाद पुरुषसूक्त (यजुः ३१।१-१६) का पाठ करते हुए

१-वर्तमान समयके लिये यह विधान अव्यक्त उपयोगी है। सम्पन्न, धर्मालस तथा राजनीतिज्ञोंको इसका आश्रय लेकर विश्व-कल्याण करना चाहिये। आजकल विश्वमें अनेक दैवी और सामाजिक उन्मत्त व्याप्त हैं। कोटिहोमपर कोटिरहोमात्मक-पद्धति आदि अनेक मन्त्र प्रचलित हैं किन्तु यह प्रकरण भी उपयोगी है।

चरुका निर्माण करे। उसके सिद्ध होनेके बाद पृथ्वीपर स्थापित करे। इसके पश्चात् शमीकी अठारह तथा पल्लराखी सात समिधाओंको अग्नि प्रज्वलित करनेके लिये कुण्डमें डाले। आधार और आज्य-भाग-संज्ञक हवन करनेके बाद 'जातवेदसे' (ऋ० १।१९।१) इस ऋचाके द्वारा चौकी सात आहुतियाँ प्रदान करे। पुनः 'जातवेदसे' इस मन्त्रसे स्थालीपाकद्रव्यका हवन करे। 'तरत् स मन्दी' (ऋ० ९।५८।१-४) इस सूक्तसे चार बार हवन करे। इसके बाद 'यथाय सोमे' (ऋ० १०।१४।२३) इस मन्त्रसे 'स्वाहा' शब्दका प्रयोगकर सात आहुतियाँ दे। तदनन्तर 'इदं विष्णुर्मि' (यजु० ५।१५) इस मन्त्रसे सात बार आहुति दे। फिर २७ नक्षत्रोंके लिये २७ आहुतियाँ दे। अनन्तर 'यत्कर्मणा' इसके द्वारा हवन करनेके बाद स्विष्टकृत् हवन करे। तदनन्तर घृतसहित तिलसे ग्रहहोम करे। इसके बाद प्रायश्चित्त-निमित्तक हवन करके होम-कर्मको समाप्त करे। तदनन्तर श्रेष्ठ द्विज यजमानको दुर्निमित्तकी शान्तिके लिये चौथे कलशोंके जलसे मन्त्रोंके द्वारा यथाक्रम अभिषेक करे। 'सहस्राक्षेण' (ऋ० १०।१६१।३) इस मन्त्रसे प्रथम

कलशोंके जलसे, 'शतायुषा' द्वारा द्वितीय कलशोंके जलसे, 'सञ्जोषा' (ऋ० ३।४७।२) इस मन्त्रसे तृतीय कलशोंके जलसे, 'विद्यानि देव' (ऋ० ५।८२।५) इस मन्त्रसे चतुर्थ कलशोंके जलसे तथा 'ब्रह्ममसु' इस मन्त्रसे पञ्चम कलशोंके जलसे अभिषेक करे। इसके बाद 'नमोस्तु सर्वभूतेभ्यः' इस मन्त्रसे दिशाओंको बलि-नैवेद्य प्रदान करे।

यजमानके स्नान करनेके समय ब्राह्मणगण शान्तिको पाठ करे। चारों ओर शान्ति-जलसे जलकी धारा गिरावे। अन्तमें पुण्यपाकहवनपूर्वक शान्तिकर्मको सम्पन्न करे। ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, शय्य, आसन एवं दक्षिणा दे। दान, अनाद्य, विशिष्ट श्रोत्रियोंको भी भोजन आदि प्रदान करना चाहिये। ऐसा करनेसे आयुकी वृद्धि और शत्रुपर तात्क्षण विजय प्राप्त होती है तथा पुत्र-लाभ होता है। जैसे शस्त्रोंका प्रहार कवचमें हट जाता है, वैसे ही दैवी शक्ति भी इस शान्तिकर्मसे दूर हो जाती है। अहिंसक, इन्द्रियसंयमी, धर्मसे घन अर्जित करनेवाला, दया और दक्षिणासे युक्त व्यक्तिके लिये सभी यह अनुकूल हो जाते हैं।

(अध्याय १४३)



### विनायक-शान्ति'

महाराज युधिष्ठिरने कहा—देवेश! विष्णो! अब आप विनायक-शान्तिकी विधि मुझे बताइये, जिसके करनेसे सभी मानव समस्त आपत्तियोंसे मुक्त हो जाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजेंद्र! विनायकके प्रिय श्रेष्ठ शान्तिका मैं वर्णन करता हूँ, इसके आचरणसे सभी अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं। यह विनायक-शान्ति सम्पूर्ण विश्वको दूर करनेके लिये की जाती है। स्वप्नमें जलमें अवगहन करना, मुण्डित सिरों तथा गेरुआ वस्त्रोंके देखना, मस्तकसहित शत्रु, बिना किसी कारणके ही दुःखी होना, कार्यमें असफल हो जाना इत्यादि विनायकद्वारा गृहीत होनेपर ही दिखायी देते हैं। विनायकद्वारा गृहीत हो जानेपर राजपुत्र राज्यको प्राप्त नहीं कर सकता, कुमारी पति नहीं प्राप्त कर सकती, गर्भिणी पुत्रको

और श्रेष्ठिय आचार्यत्वको प्राप्त नहीं कर पाता। विद्यार्थी पढ़ नहीं पाता, व्यापारी व्यापारमें लाभ नहीं पाता और कृषक कृषिकार्यमें सफल नहीं होता।

इसलिये इन विघ्नोंको दूर करनेके लिये पुण्य दिनमें स्नान-कार्य करना चाहिये। पीले सरसोंकी खली, घृत और सुगन्धित कुंकुमका उबटन लगाकर स्नान कर पवित्र हो जाय। ब्राह्मणोंद्वारा स्तुतिवाचन करावे। विधिपूर्वक कलश-स्थापन करे और ब्राह्मण अभिमन्त्रित जलके द्वारा यजमानका अभिषेक करे और इस प्रकार करे—

सहस्राक्षं शतधारमृषिणा वचनं कृतम्।

तेन स्वामभिधिञ्जामि पावमान्यः पुनस्तु ते॥

भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः।

१-अहिंसक, दानस्य धर्मोक्त धनस्य च। दण्डदक्षिण्य युक्तस्य सर्वं सानुग्रहा ऋतः॥ (१४३-४५)

२-यह प्रकरण याज्ञवल्क्य आदि ग्रन्थः अभिषेकित स्मृतियोंमें और पुराणोंमें भी इसी प्रकार पाए जाते हैं।

भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ह्यः ॥

यते केशेषु दौर्भाग्यं सीमने यच्च मूर्धनि ।

ललाटे कर्णयोरक्षगोरापस्तद्वन्तु ते सदा ॥

(उत्तरपर्व १४४।१२—२४)

—मैं तुम्हें अभिषिक्त कर रहा हूँ, पापमानों श्रावणोंकी अधिष्ठातृदेवता तुम्हें पवित्र करें। महाराजा वरुण, भगवान् सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु तथा सप्तर्षिगण अपना-अपना तेज तुममें आधान करें। तुम्हारे केशों, सीमन्त, मस्तक, ललाट, कानों एवं आँखोंमें जो भी दौर्भाग्य है, उसको ये अप् देवता नष्ट करें।

अनन्तर कुशाको दक्षिण हाथमें ग्रहण कर सरसोंके तेलसे हवन करें। मित, समित, साल, कालकंठक, कृष्णशङ्ख तथा राजपुष्पके अन्तमें स्वाहा समन्वित कर हवन करें।

### नक्षत्रार्चन-विधि (रोगावलिचक्र)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्। एक बार कौशिकमुनि अभिष्टोत्र करनेके बाद सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उसी समय महर्षि गग्नि उनसे पूछा—‘ब्रह्मन्। वंटीगृहमें निरुद्ध हो अथवा विषम परिस्थितियोंमें अवकट्ट, दम्बु, शत्रु अथवा हिंस्र पशुओंसे विग्र हो तथा व्याधियोंसे पीड़ित हो ऐसे व्यक्तिकी कैसे मुक्ति हो सकती है। इसे आप मुझे बतलवें।’

कौशिक मुनि बोले—गर्भाधानके समय, जन्म-नक्षत्रमें, मृत्यु-सम्बन्धी ज्ञान होनेपर जिसको रोग-व्याधि उत्पन्न हो जाती है, उसे कह तो होता ही है, उसकी मृत्यु भी सम्भाव्य है। यदि कृत्तिका नक्षत्रमें कोई व्याधि होती है तो वह पीड़ा नौ राततक बनी रहती है। रोहिणीमें तीन राततक, मूर्गशिरामें पाँच राततक और यदि आश्लेषमें रोग उत्पन्न हो तो वह व्याधि प्राण-वियोगिनी हो जाती है। पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्रमें सप्त रात, आश्लेषामें नौ रात, मघामें बीस दिन, पूर्वाषाढानुनीमें दो मास, उत्तराषाढानुनीमें तीन पक्ष (४५ दिन), हस्तमें स्वल्पकालिक पीड़ा, चित्रामें आधे मास, स्वातीमें दो मास, विशाखामें बीस दिन, अनुराधामें दस दिन, ज्येष्ठामें आधे मास

चतुष्पथपर कुश बिछाकर सूपमें इनके निमित्त बलि-नैवेद्य अर्पण करें। छिछेले हुए फूल तथा दूर्वाससे अर्घ्य दें। मण्डलमें अर्घ्य प्रदानकर विनायककी माता अम्बिकाकी पूजा करें और यह प्रार्थना करें—मातः। आप मुझे रूप, यश, ऐश्वर्य, पुत्र तथा धन प्रदान करें और मेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करें। अनन्तर सफेद वस्त्र, सफेद माला और श्वेत चन्दन धारणकर ब्राह्मणको भोजन करावें और गुरुको दो वस्त्र प्रदान करें। इस प्रकार ग्रहोंकी और विनायककी विधिपूर्वक पूजा करनेसे सम्पूर्ण कर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है और लक्ष्मीकी भी प्राप्ति हो जाती है। भगवान् सूर्य, कार्तिकेय एवं महागणपतिकी पूजा करके मनुष्य सभी सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १४४)

और मूलमें मृत्यु हो जाती है। पूर्वाषाढामें पंद्रह दिन, उत्तराषाढामें बीस दिन, श्रवणमें दो मास, धनिष्ठामें आधे मास, शतभिषामें दस दिन, पूर्वाषाढपदमें नौ दिन, उत्तराषाढ-पदमें पंद्रह दिन, रेवतीमें द्वात्रिंशत् या अश्विनीमें एक दिन-रात कह होता है।

मुने। कुछ विशिष्ट नक्षत्रोंमें व्याधि उत्पन्न होनेपर मनुष्यके प्राणतक भी चले जाते हैं<sup>१</sup>, इसमें संदेह नहीं। इसकी विरोध जानकरीके लिये ज्योतिषियोंसे भी परामर्श करना चाहिये।

रोगके प्रारम्भिक नक्षत्रका ज्ञान हो जानेपर उस नक्षत्रके अधिदेवताके निमित्त निर्दिष्ट द्रव्योंद्वारा हवन करनेसे रोग-व्याधिके शान्ति हो जाती है। व्याधि नक्षत्रके किस चरणमें उत्पन्न हुई है, इसका ठीक पता लगाकर आपतिजनक स्थितियोंमें व्याधिसे मुक्तिके लिये उस नक्षत्रके स्वामीके मन्त्रोंसे अभीष्ट समिधाद्वारा हवन करना चाहिये। अश्विनी नक्षत्रमें क्षीरी (दूधवाले—बट, पीपल, खिरनी आदि) वृक्षोंकी समिधासे अश्विनीकुमारोंके मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये। भरणीमें

१-रूप देखें यश देखें भग ऐश्वर्य देखें पुत्र देखें धन देखें सर्वस्व देखें मे = (१४४।२१)

२-ज्योतिर्निबन्ध आदि ज्योतिष-ग्रन्थोंके अनुसार आर्द्रा, आश्लेष, पुष्या, शक्र, ज्येष्ठ पूर्वाषाढा और पू-षा में मृत्युका भय होता है या बीमारी विग्र हो जाती है। अतः इसकी निवृत्तिके लिये नक्षत्र मन्त्र आदिका ज्ञान-हवन करना चाहिये।

‘यमदैवत यमाय स्वाहा’ इस मन्त्रसे घी, मधु और तिलसे हवन करना चाहिये। इसी प्रकार कृतिकामे घी अग्निके मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये। रोहिणीमें प्रजापतिके मन्त्रसे, मृगशिरामे घीसे, पुनर्वसुमें दितिदेवीके लिये दूध और घी-मिश्रित आहुति प्रदान करनी चाहिये। पुष्यमें बृहस्पतिके मन्त्रोंसे घी और दूधद्वारा, आश्लेषाके देवता सर्प हैं, अतः बड़के दूध और घीसे मिश्रित आहुति देनी चाहिये। इसी प्रकार स्वाती, मूल

आदि सभी नक्षत्रोंमें घी-मिश्रित आहुति देनी चाहिये।

मुने ! ब्रह्माजीने यह बतलाया है कि विधिपूर्वक गायत्री-मन्त्रद्वारा भी प्रायः एक सहस्र (१,०००) भूतकी आहुतियाँ देनेपर सम्पूर्ण ज्वर एवं व्याधियोंका सद्यः उपशमन हो सकता है। क्योंकि गायत्रीका अर्थ ही है कि गान, हवन, पूजनद्वारा ज्ञान करनेवाली।

(अध्याय १४५)



### अपराधशतशमन-व्रत

महर्षि वसिष्ठजीने राजा इक्ष्वाकुसे कहा—राजन् ! अब आपको एक व्रत बतला रहा हूँ, जिससे महाफलकी प्राप्ति होती है और सैकड़ों दोष—पापोंका शमन हो जाता है।

राजा इक्ष्वाकुने पूछा—ब्रह्मन् ! मुख्यरूपसे सौ अपराध या दोष-पाप कौन-कौन हैं और वह व्रत कौन-सा है, जिसके अनुष्ठानमात्रसे उनकी शान्ति हो जाती है। इस व्रतमें किस देवताकी पूजा होती है और किस समय यह व्रत किया जाता है, आप बतलानेकी कृपा करें।

महर्षि वसिष्ठ बोले—महज्जहो ! अपराधशतशमन-व्रतको सुनो, जिसका अनुष्ठान करनेमात्रसे मनुष्यको सभी प्रकारकी कामनाएँ और सुखियाँ प्राप्त हो जाती हैं। कृत-अकृत सभी गुरुतर पाप रुईकी रेशिके समान जलकर भस्म हो जाते हैं। राजन् ! अब आप इन अपराधोंके नाम और लक्षणको सुनें—अनाश्रमित्व—चारों आश्रमोंसे बाहर रहकर सख्खन्द नास्तिक-वृत्ति अपनाना, अनग्नित्व—अग्निहोत्र, हवन आदि सभी कार्योंका परित्याग, व्रतहीनता—कोई भी सत्य, ब्रह्मचर्य और एकादशी आदि व्रतोंका पालन न करना, अदातृत्व—कभी भी कुछ भी अन्न, धन या अशरीरार्थ आदि न देना, अरहौच, निर्दयता, लोभ, क्षमाशून्यता, जनपीड़ा, प्रपञ्चमें पड़ना, अमङ्गल, व्रतभङ्ग, नास्तिकता, वेदनिन्दा, कठोरता, असत्यता, हिंसा, चोरी, इन्द्रिय-परायणता, मनकी वशमें न रहना, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, शठता, धूर्तता, कटुभाषण, प्रमाद, स्त्री, पुत्र, माता आदिका पालन न करना, अपूज्यकी पूजा करना, ब्राह्मणका त्याग, जप न करना, बलिबैधदेव तथा पशुपक्षका त्याग, संध्या, तर्पण, हवन आदि नित्यकर्मोंका परित्याग, अग्निका बुझाना, ऋतुकालके बिना ही स्त्री-सम्पर्क, पर्व आदिमें स्त्री-

सहवास, चुगली, दूसरेकी स्त्रीके साथ गमन, वेश्यागमिता, अपराधको दान देना, अल्पदान, अल्पजसङ्ग, माता-पिताकी सेवा न करना, सबसे झगड़ा करना, पुराण और स्मृतियोंका अन्यास करना, अपरुच्य-भक्षण, स्वामि-द्रोह, बिना विचार करके करना, कृषि-कार्य करना, भार्यासंग्रह, मनपर विजय न प्राप्त करना, विद्याकी विस्मृति, शास्त्रका त्याग करना, ऋण लेकर वापस न करना, विक्रय करना, सदा कामनाओंका दास होना, भार्या, पुत्र एवं कन्या आदिका विक्रय करना, पशु, मैथुन, इन्धनार्थ वृक्ष काटना, बिलोंमें पानी आदि डालना, तड़पादिके जलको दूषित करना, विद्याका विक्रय, स्ववृत्तिका परित्याग, याचना, कुर्मित्व, स्त्री-वध, गो-वध, मित्र-वध, भूग-हत्या, पौरोहित्य, दूसरेका अन्न और शूद्रके अन्नको ग्रहण करना, शूद्रका अग्निकर्म सम्पन्न करना, विधिविहीन कर्मका निष्पादन, कुपुत्रता, विद्वान् होनेपर याचना करना, याचालता, प्रतिग्रह लेना, श्रौत-संस्कारहीनता, आतं व्यक्तिका दुःख दूर न करना, ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णचोरी, गुरुपत्नीगमन तथा पारिवर्तियोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करना—ये अपराध हैं। अन्य तत्त्ववेत्ताओंमें भी विविध प्रकारके अपराधोंको कहा है।

अनघ ! भगवान् सत्येशकी पूजा करनेसे तत्क्षण सभी प्रकारके अपराध नष्ट हो जाते हैं। मनुष्योंद्वारा व्रत और पूजन करनेसे भगवान् स्वयं उसके वशमें हो जाते हैं। ये जगत्पति भगवान् विष्णु लक्ष्मीके साथ सत्यरूपी ध्वजके ऊपर स्थित रहते हैं। इनके पूर्वमें कामदेव, दक्षिणमें नृसिंह भगवान्, पश्चिममें भगवान् कर्पिल, उत्तरमें वराह तथा ऊर्ध्वमें अच्युत स्थित रहते हैं। इन्हीं ही ब्रह्मपञ्चक जानना चाहिये। ये ही सत्येश हैं, इन्हींकी सदैव पूजा करनी चाहिये। ये सत्येश



भगवान् पद्म, कौमोदकी गदा, पाञ्चजन्य शंख तथा सुदर्शन चक्र धारण किये रहते हैं। उनके चरणकमलके अप्रभागसे पवित्र गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ है। इनकी आठ शक्तियाँ हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—जया, विजया, जयन्ती, पद्म-नाशिनी, उन्मीलनी, खंजुली, त्रिसुशा और विवर्धना। वे भगवान् हरि शुक्लाम्बरधारी, सौम्य, प्रसन्नमुख, सभी आभरणोंसे युक्त, शोभायमान और भुक्ति-मুক্তिप्रदाता हैं।

राजन् ! उनकी जिस विधिसे प्रत्यक्षपूर्वक पूजा करनी चाहिये, उसे आप सुनं। मार्गशीर्ष आदि बारह मासमें द्वादशी, अमावास्या अथवा अष्टमीके दिन शुक्ल या कृष्ण पक्षका विचार किये बिना शुद्ध होकर उपवासपूर्वक व्रत करना चाहिये। शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें जन्मदर्शनी पूजा करनेका संकल्प लेना चाहिये। इस प्रकार नियम ग्रहण करके दन्तधावनपूर्वक तड्ढग, पुष्कर अथवा धरपर ही खानकर नित्य-नैमित्तिक कर्म करने चाहिये। एक पल सुखनिक पानसे लक्ष्मीसहित सत्येशकी प्रतिमा जनवाये जो अष्टशक्तियोंसे समन्वित पद्मासनपर स्थित हो। दुग्धसे पूरित कुम्भपर स्थित सुवर्ण-पद्मके ऊपर उस प्रतिमाको स्थापित करें। उस पद्मकी कर्णिकओंपर देवाधिदेवकी आठ शक्तियोंकी पूजा करें। अनन्तर भगवान् सत्येश (विष्णु) और सत्या (लक्ष्मी) की विधिवत् विविध पाद्यादि उपचारोंसे पूजा करें। अनन्तर इस

प्रकार प्रार्थना करें—

कृष्ण कृष्ण प्रभो राम राम कृष्ण विभो हरे ।  
त्राहि मां सर्वदुःखेभ्यो रमया सह माधव ॥  
पूजा चेवं भया दत्ता पितामह जगद्गुरो ।  
गृहाण जगदीशान नारायण नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १४६।४८-४९)

अनन्तर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणको दान देकर व्रतका समापन करना चाहिये। इस व्रतको दोनों पक्षोंमें करें और वर्ष पूरा होनेपर उद्यापन करें। ब्राह्मणसे प्रार्थना करें कि हे ब्राह्मण देवता ! मैं सभी पाप दूर हो जायँ। ब्राह्मण कहे—‘आपके सभी पाप एवं दुःख दूर हो जायँ।’ तदनन्तर ब्राह्मणको वह मूर्ति समर्पित कर समापन करना चाहिये।

राजन् ! ब्रह्माजीने कहा है कि इस व्रतको करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है। जो फल सभी वेदोंके अध्ययनसे और सभी तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे प्राप्त होता है, उससे कोटिगुना फल इस व्रतके आचरणसे होता है और व्रतीको इस लोकमें धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, मित्र तथा सुखकी प्राप्ति होती है। व्रतको करनेवाले व्यक्तिको विद्या और आरोग्यकी भी प्राप्ति होती है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसमें कोई संदेह नहीं है। जो इसको पढ़ता अथवा सुनता है, उसके भी सभी पाप दूर हो जाते हैं। (अध्याय १४६)



### काञ्चनपुरीव्रत-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! एक बार विश्वके उत्पत्ति, पालन और संहारकारक अक्षर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु क्षेत्रद्वीपमें सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उसी समय जगन्माता लक्ष्मीने उनके चरणोंमें पञ्चाङ्ग प्रणाम कर उनसे पूछा—‘भगवन् ! आप भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं। महाभाग ! मुझपर भी दया करके आप कोई ऐसा रूप-सौभाग्यदायक सर्वोत्तम व्रत बतलायें, जिसके आचरणसे समस्त तीर्थ आदि पुण्य कर्मोंका फल प्राप्त हो जाय।’

भगवान् विष्णु बोले—देवि ! जिस प्रकार आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम, वनोंमें ब्राह्मण, नदियोंमें गङ्गा, जलाशयोंमें समुद्र, देवताओंमें विष्णु (मैं) तथा स्त्रियोंमें तुम (लक्ष्मी) श्रेष्ठ हो, उसी प्रकार व्रतोंमें काञ्चनपुरी व्रत उत्तम है। इस व्रतका पहले

भगवती पार्वतीने भगवान् शंकरके साथ अनुष्ठान किया था। सीताजीने भी भगवान् श्रीरामके साथ इसी व्रतका पालन कर अखण्ड साम्राज्य प्राप्त किया था। दमयन्तीके वियोगमें राजा नलने भी इस व्रतको किया था। जनवासी पाण्डवोंने भी द्रौपदीके साथ इस व्रतका आचरण किया और सभी कष्टोंसे मुक्त होकर साम्राज्य-लाभ किया। भद्रे ! यह व्रत स्वर्ग और मोक्षको प्रदान करनेवाला है। रम्भा, मेनका, इन्द्राणी (शची) सत्यभामा, शशिदत्ता, अरुन्धती, उर्वशी तथा देवदत्ता आदि श्रेष्ठ स्त्रियोंने इस व्रतका आचरण करके सौभाग्य, सुख और अपने मनोरथ प्राप्त किये थे। पातालमें नागकन्याओंने और गण्धरी, सरस्वती एवं सावित्री आदि उत्तम देवियों तथा अन्य नारियोंने सभी कामनाओंकी पूर्तिकी अभिलाषासे इस व्रतका

अनुष्ठान किया था। यह व्रत सभी प्रकारके दुःखोंका नाशक, प्रीतिवर्धक तथा व्रतोंमें उत्तम है, इसलिये इस व्रतका मैं वर्णन कर रहा हूँ। इसके अनुष्ठानसे ब्रह्महत्या आदि महापातकोंके करनेवाले, तौल-मापमें कमी करनेवाले, कन्या बेचनेवाले, गौ बेचनेवाले, अगम्यागमनमें लिप्त, मांसभक्षी, खरजपुष्पके यहाँ भोजन करनेवाले, भूमिका हरण करनेवाले आदि पापकर्मी भी पापोंसे निःसंदेह मुक्त हो जाते हैं। इसकी विधि इस प्रकार है—

देवि ! यह काञ्चनपुरी-व्रत किसी महोत्सवमें शुद्ध या कृष्ण पक्षकी तृतीया, एकदशी, पूर्णिमा, संक्रान्ति, अमावास्या तथा अष्टमीको उपवासपूर्वक किया जा सकता है। व्रती इस दिन काञ्चनपुरी बनवाकर दान करे। वह पूर्वार्द्धमें नदी आदिके शुद्ध निर्मल जलमें स्नान करे। पहले मन्त्रपूर्वक पवित्र मृत्तिका ग्रहणकर उसे शरीरमें लगाये फिर जलमें गोले लगाये। इस विधिसे स्नान कर शुद्धात्मा व्रती अपने घर आये और उस दिन किसी पाखण्डी, विधवा, भूत, राक्षस आदिसे बातलाप न करे। अपना हाथ-पैर धोकर पवित्र हो अवधमन करे। एक उत्तम जलसे भरा स्वर्णयुक्त शंख लेकर उस जलको द्वादशवार-मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर 'हरि' इस मन्त्रका जप कर जल पी ले। शमीवृक्षसे चार स्रग्भीसे युक्त एक वेदी बनाये जो चार हाथ प्रमाणकी हो। वेदीको पुष्पमाला, वितान, दिव्य धूप आदिसे अधिवासित और अलंकृत कर ले। वेदीके मध्यमें एक पटलकी रचना करे। मण्डलके बीचमें सुन्दर एक भद्रपीठका निर्माण कराये। भद्रपीठके ऊपर सुन्दर आसनपर लक्ष्मीके साथ भगवान् जनार्दनकी स्थापना करे। मण्डलके अग्र भागमें जलपूर्ण कलशकी स्थापना कर उसमें क्षीरसागरकी कल्पना करे। कलशपर चार पल, दो पल अथवा एक पलकी काञ्चन-पुरीकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर स्थापित करे। उसके अगे कदली-सम्भ और तोरण लगाये। फिर ब्राह्मणोंद्वारा उसकी प्रतिष्ठा करये।

उस पुरीके मध्यमें विष्णुसहित लक्ष्मीकी सुवर्णमय प्रतिमाकी स्थापना करनी चाहिये। पञ्चामृतसे देवेश नारायण तथा लक्ष्मीको स्नान कराकर मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए चन्दन, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा उनका पूजन करना चाहिये। इन्द्रादि लोकपालोंकी पूजा भी यथाक्रमसे करनी चाहिये।

विभिन्नवारणके लिये गणपति तथा नवग्रहोंका पूजन कर हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् पायस, सोहाल, फेनी, मोदक आदिक नैवेद्य अर्पितकर देश-कालके अनुसार फल भी अर्पण करना चाहिये। दस दिशाओंमें दस धृतपूरित दीपक प्रज्वलित करे। पुष्पमाला, चन्दन आदि भी चढ़ाये, साथ ही विष्णुस्तवकाज, पुरुषसूक्त आदिक पाठ करे। सोलह सपत्नीक ब्राह्मणोंमें लक्ष्मी-विष्णुकी भावना कर पूजा करे। अन्तमें पूजित सभी पदार्थ उन्हें निवेदित कर प्रार्थना करे कि 'ब्राह्मण देवता ! भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हो जायें।' शय्या-दान तथा गो-दान भी करे। जो काञ्चनपुरी आदिकी प्रतिमा पूजित की गयी है, उसे व्रती देख न सके, इसलिये वस्त्रसे आच्छादितकर अपने नेत्रोंको वस्त्रसे ढककर दीपक साथ मण्डपमें ले आवे और आचार्य वझे—'आप सभी कामनाओंको देनेवाली एवं दुःख-दौर्भाग्यको दूर करनेवाली इस रमणीय काञ्चनपुरीका दर्शन करें।'।

अनन्तर व्रती नेत्रोंके वस्त्रको खोलकर गुलके सम्मुख पुष्पाञ्जलि देकर उस शुभ पुरीका दर्शन करे। तदनन्तर चाँदी, तंबी अथवा किसी शंखमें पञ्जरल, गङ्गाजल, फल, सरसों, अखट, रोचना तथा दहीमिश्रित अर्घ्य बनाकर भगवान् विष्णुको प्रदान करे और प्रार्थना करे—'सभी कामनाओंकी पूर्ण करनेवाले भगवान् लक्ष्मीनारायण ! आप इस सुवर्णपुरीके प्रदान करनेसे मनोवाञ्छित फल पूर्ण करें। नारायण ! लक्ष्मीकान्त ! जगन्नाथ ! आप इस अर्घ्यकी ग्रहण करें, आपको नमस्कार है।'।

इस प्रकार महादेवकी भगवान् विष्णुको अर्घ्य देकर प्रतिपूर्वक देखी लक्ष्मीकी भी अर्घ्य प्रदान करना चाहिये और कहना चाहिये कि 'देवि ! आप ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, पार्वती एवं भगवान् कार्तिकेयसे पूजित हैं। धर्मकी कामनासे भरे ह्यार भी आप पूजित हैं, आप मुझे सौभाग्य, पुत्र, धन, पौत्र प्रदान करें। देवि ! आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्यकी ग्रहण कर मुझे सुख प्रदान करें।' इस प्रकार व्रतकी पूर्णकर महोत्सव बनाये एवं रक्षिते जागरण करे। निद्राहित होकर जागरण करनेसे सौ यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। प्रातःकाल निर्मल जलसे स्नानकर पितर और देवताओंकी पूजाकर सपत्नीक ब्राह्मणोंको वस्त्र देकर भोजन कराये और यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान कर क्षमा-याचना

करे। दीन, अंध, बधिर, पंगु आदि सबको संतुष्ट करे। अनन्तर पारणा करे। तदनन्तर मधुर पायसयुक्त व्यञ्जनोंसे मित्र और बान्धवोंके साथ भोजन करे। ऐसा करनेसे व्रतो ब्रह्मलोकको प्राप्त कर ब्रह्माके साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है।

अनन्तर रुद्रलोक, उसके बाद विष्णुलोकको प्राप्त करता है। देवि ! काञ्चनपुरी नामक यह व्रत पूर्वसमयमें तुमने भी किया था, उसी पुण्यके प्रभावसे त्रैलोक्यपूजित मुझे स्वामीके रूपमें तुमने प्राप्त किया है। (अध्याय १४७)

### कन्यादान एवं ब्राह्मणोंकी परिचर्याका माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! जो विवाह करने योग्य कन्याको अलंकृतकर ब्राह्मणविधिसे सुव्योम्न्य वस्त्रोंके प्रदान करता है, वह सात पूर्व और सात आगे अनेकाली पीढ़ियोंको तथा अपने कुलके सभी मनुष्योंको भी इस कन्या-दानके पुण्यसे तार देता है, इसमें संदेह नहीं। जो प्राज्ञपत्य-विधिके द्वारा कन्या-दान करता है, वह दक्षप्रजापतिके लोकको प्राप्त करता है। वह अपना उद्धार कर अपार पुण्य प्राप्त करता है तथा अन्तमें स्वर्गलोक प्राप्त करता है। जो पृथ्वी, गौ, अश्व, गजका दान होन वर्णको करता है, वह घोर नरकमें पड़ता है। शूलक लेकर कन्यका दान करनेवाला घोर नरक प्राप्त करता है और हजारों वर्षोंतक अपवित्र लाल-भक्षण करता हुआ नरकमें जीवनयापन करता है। इसलिये सवर्णा कन्या सवर्णको ही प्रदान करनी चाहिये। ब्राह्मणके बालक अथवा किसी अनाथको जो चूड़ाकरण, उपनयन आदि संस्कारोंसे संस्कृत करता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है। अनाथ कन्याका विवाह करने-वाला स्वर्गमें पूजित होता है<sup>१</sup>। पूर्वजोंने कहा है कि जो

कन्यादानके साथ प्रदीप्त शुद्ध स्वर्णका दान करता है, वह द्विगुणित कन्यादानका फल प्राप्त करता है। कन्याकी पूजासे विष्णुकी पूजाके समान पुण्य होता है।

महाराज ! पृथ्वीपर ब्राह्मण ही देवता हैं, स्वर्गमें ब्राह्मण ही देवता हैं। इतना ही नहीं सौनों लोकोंमें ब्राह्मणसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। ब्राह्मणोंमें यह शक्ति है कि वे मन्त्र-बलके प्रभावसे देवताको अदेवता और अदेवताको देवता बना देते हैं। इसीलिये महाभाग ! ब्राह्मणकी सदा पूजा करनी चाहिये। देवगण ब्राह्मणसे ही पूर्वमें उत्पन्न हुए ऐसा स्मृतियोंका कथन है। सम्पूर्ण जगत् ब्राह्मणसे ही उत्पन्न है। इसलिये ब्राह्मण पूज्यतम है। देवगण, पितृगण, ऋषिगण जिसके मुखसे भोजन करते हैं, उस ब्राह्मणसे श्रेष्ठ और कौन हो सकता है ? धर्मज्ञ ! ब्राह्मणोंका कल्याणकरनेवाला व्यक्ति स्वर्गलोकमें पूजित होता है। जब प्रत्यक्ष देवता ब्राह्मण संतुष्ट होकर खोलते हैं तो यह समझना चाहिये कि परलोकमें देवताओंकी ही यह वाणी है। उसीसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है, अतः सदा ब्राह्मणकी सेवा करनी चाहिये। (अध्याय १४८—१५०)

### दानकी महिमा और प्रत्यक्ष धेनु-दानकी विधि

महाराज सुधृष्टिरे पूछा—भगवन् ! आपके श्रीमुखसे मैंने पुराणोंके विषयोंको सुन। व्रतोंको भी मैंने विस्तारपूर्वक सुना, संसारकी असारताको भी मैंने समझा, अब मैं दानके माहात्म्यको सुनना चाहता हूँ। दान किस समय, किसको, किस विधिसे देना चाहिये, यह सब बतानेकी कृपा करें। मेरी समझसे दानसे बढ़कर अन्य कोई पुण्य कार्य नहीं है, क्योंकि धनिकोंका धन चोरोंद्वारा चुराया जा सकता है अथवा राजाद्वारा छिनवाया जा सकता है, अतः धन रहनेपर

दान अवश्य करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मृत्युके उपरान्त धन आदि वैभव व्यक्तिके साथ नहीं जाते, परंतु ब्राह्मणको दिया गया दान परलोकमें पाथेय बनकर उसके साथ जाता है। दण्ड, पुष्ट, बलवान् शरीर पानेसे भी कोई लाभ नहीं है, जबतक कि किसीका उपकार न करे। उपकारहीन जीवन व्यर्थ है। इसलिये एक प्रांससे आधा अथवा उससे भी कम मात्रामें किसी चाहनेवाले व्यक्तिको दान क्यों नहीं दिया जाता।

१- द्विगुणमन्त्रे वा संकुर्वीत ह कर्मिणः।

चूड़ापनयनादीं सोऽश्वमेधकृतं लभेत्। अनाथं कन्यां दत्वा नरकलोके गच्छेत् ॥ (उत्तरपर्व १४८। ७-८)

इच्छानुसार धन कब और किसको प्राप्त हुआ या होगा? धर्म, अर्थ तथा कामके विषयमें सचेष्ट होकर जिसने प्रयत्न नहीं किया, उसका जीवन लोहारकी धौकनीकी भाँति व्यर्थ ही चलता है। जिस व्यक्तिने न दान दिया, न हवन किया, तीर्थ-स्थानोंमें प्राण नहीं त्यागा, सुवर्ण, अन्न-वस्त्र तथा जल आदिसे ब्राह्मणोंको सत्कार नहीं किया, वही व्यक्ति जन्म-जन्ममें अन्न, वस्त्ररहित, रोगसे ग्रसित, साथमें कष्टाल लेकर दर-दर भटकता हुआ याचना करता रहता है। अनेक प्रकारके कष्टोंको सहकर प्राणोंसे भी अधिक प्रिय जो धन एकत्र किया गया है, उसकी एक ही सुगति है दान। शेष भोग और नाश तो प्रत्यक्ष विपत्तियाँ ही हैं<sup>१</sup>। उपभोगसे और दानसे धनका नाश नहीं होता, केवल पूर्व-पुण्यके क्षीण होनेसे ही धनका नाश होता है। भरणोपरान्त धनपर अपना स्वामित्व नहीं रह जाता, इसलिये अपने हाथसे ही सुपात्रको धनका दान कर लेना चाहिये। राजन्! दान देनेके अनेक रूप हैं, इस विषयमें व्यास, वाल्मीकि, मनु आदि महापुरुषोंने पहले ही बतलाया है कि पूर्वजन्ममें किये गये व्रत, दान एवं देवपूजन आदि पुण्यकर्म ही दूसरे जन्ममें फलीभूत होते हैं।

**राजा युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन्! भगवान् विष्णु, शिव एवं ब्राह्मणोंकी प्रसन्नताके लिये जो दान जिस विधिसे देना चाहिये आप उस विधिको वर्णन करें।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज! गौ, धूमि और सरस्वती—ये तीन दान सभी दानोंमें श्रेष्ठ और मुख्य हैं। ये अतिदान कहे गये हैं<sup>२</sup>। गायोंके दुहने, पृथ्वीको जोतकर अन्न उपजाने तथा विद्याके पढ़ने-पढ़ानेसे सात कुलोंका उद्धार होता है। अब मैं दान देने योग्य गौके लक्षणों और गोदानकी विधि बता रहा हूँ—महाराज! सुपूष्ट, सुन्दर, सवत्स, पर्याप्तनी-

और न्यायपूर्वक अर्जित धनसे प्राप्त गौ श्रेष्ठ ब्राह्मणको देना चाहिये। वृद्धा, रोगिणी, जन्म्या, अङ्गहीन, मृतवत्सा, दुःशीला और दुग्धरहित तथा अन्यथापूर्वक प्राप्त गौका कभी दान नहीं करना चाहिये। राजन्! किसी पुण्य दिनमें स्नानकर पितरोंका तर्पण कर भगवान् शिव और विष्णुका धी और दुग्धसे अभिषेक करनेके बाद सोनेकी सींगयुक्त, रौप्य खुरवाली, काँस्यके दोहन-पात्रसहित सवत्सा गौका पुण्य आदिसे भत्तेभाँति पूजन करना चाहिये, उसे वस्त्र तथा माला आदिसे अलंकृत कर ले। गौको पूर्व या उत्तराभिमुख खड़ा करना चाहिये। अनन्तर दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको गौका दान करना चाहिये और प्रार्थनापूर्वक इस प्रकार प्रदक्षिणा करनी चाहिये—

गायत्री मघाव्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ॥

गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्बहम् ।

(उत्तरपर्व १५१।३९-४०)

गायत्री पूँछ पकड़कर, हाथीका सूँठ, घोड़ेका कान तथा दासीके सिरका स्पर्श कर और भृगुवर्मकी पूँछ पकड़कर दान करना चाहिये। जब ब्राह्मण गाय लेकर जाने लगे तो उसके पीछे-पीछे आठ-दस कदम तक जाना चाहिये। इस विधिसे जो व्यक्ति गोदान करता है, उसे सभी प्रकारके अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। सात जन्मोंमें किये गये पापका उसी क्षण नाश हो जाता है। राजन्! यह विधि दक्षप्रजापतिके लिये भगवान् विष्णुने कही है। गोदान करनेवाला चतुर्दश इन्द्रोंके समयतक स्वर्गमें निवास करता है। यह गोदान सभी पापोंको दूर करनेवाला है। इससे बड़कर और कोई प्रायश्चित्त नहीं है। गोदान ही एक ऐसा दान है, जो जन्म-जन्मान्तरतक फल देता रहता है। (अध्याय १५१)

### तिलधेनु-दानकी विधि

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**महाराज! अब मैं राजा हूँ। जिससे दाता ब्रह्महत्यादि महापातकों तथा सभी भगवान् वाराहके द्वारा कहे गये तिलधेनु-दानकी विधि बता

उपायतकोंसे मुक्त हो जाता है और स्वर्गमें निवास करता है।

१-प्रासादधर्मणि प्रासार्थधर्मः किं न दीयते। इष्टानुगतो विधाय कदा कस्य भविष्यति ॥ (उत्तरपर्व १५१।६)

२-अथासत्तलस्यस्य प्राणेष्वेवमि प्राणयः। गतिर्लोक्य विदित्य दानमन्य विदित्य ॥ (उत्तरपर्व १५१।११)

दानं भोगो नारसिक्तो गायो भवन्ति धनस्य। को न ददाति न भुङ्क्ते तस्य दुःखो गतिर्भवेति ॥ (सुधीमन्त्रजाकरी)

तो धन धन प्रथम गति जायते। धन्य पुनस्ततः प्रति सोऽप्यप्यप्य ॥ (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड)

३-त्रोष्णादतिदानानि गवः पृथ्वी सरस्वती ॥ (उत्तरपर्व १५१।१८)



पहले पृथ्वीको गोबरसे लीपकर उसपर काला मृगघर्म तथा उसके चारों ओर कुश बिछा ले। तदनन्तर उसपर गन्धकी आकृतिके रूपमें तिलकी राशि फैला ले अर्थात् तिलमयी धेनु बना ले। सफेद, कृष्ण, भूरे तथा गोमूत्रवर्णके तिलोंसे धेनुकी रचना करनी चाहिये। चार आङ्गुलके मानकी गाय और एक द्रोण तिलसे बछड़ेका निर्माण करे। गायके खुरोंके पास चाँदी, सींगोंके पास स्वर्ण, जिह्वाके पास शङ्कर, मुखके पास गुड़, गलकम्बलके पास कम्बल, पैरोंके स्थानमें ईश, पीठके स्थानपर तौबा और नेत्रोंके लिये मुक्ता रखनी चाहिये। इसी प्रकार कर्णोंके स्थानपर पीपलके पत्ते, दाँतोंके स्थानपर फल, पूँछके स्थानपर माला और स्तनोंके स्थानपर मक्खन रखे। सिरके स्थानपर सफेद वस्त्र, रोमोंके स्थानपर सफेद सरसों रख दे। सुन्दर फलों तथा मणि-मुक्ताओंसे उस तिलमयी कल्पित धेनुको सुसज्जित करे। कांस्यकी दोहनी भी समीपमें रख दे। किसी पुण्य पक्षके दिन उस धेनुका पूजन इत्यादि कर ब्राह्मणको दान कर दे और इस मन्त्रसे पढ़ते हुए प्रार्थनापूर्वक प्रदक्षिणा करे—

या त्वहमीः सर्वभूतानां या नै देवेभ्यश्चक्रियता ।

धेनुरुपेण सा देवी मम पापं व्यरोहन् ॥

(उत्तरपर्व १५२।१५)

दक्षिणासहित गाय ब्राह्मणको दे दे। इस विधिसे जो तिलधेनुका दान करता है, वह व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।

जो व्यक्ति इस दानका अनुमोदन कर प्रसन्नचित्त होकर प्रशंसा करते हैं तथा विधिपूर्वक जो ब्राह्मण दान ग्रहण करते हैं वे भी ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। प्रशन्न, सुरक्षित, वेदव्रतपरायण ब्राह्मणके लिये तिलधेनुका दान करनेवाले

व्यक्तिको अपने कृत-अकृतका शोक नहीं करना पड़ता। तिलधेनु-दान करनेवाले व्यक्तिको तीन दिन अथवा एक दिन तिलका ही भोजन करना चाहिये। दान करनेसे मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं और उसके अंदर पवित्रता आ जाती है। तिलका भक्षण करना चान्दायणव्रतसे अधिक श्रेष्ठ माना गया है। काल्य, युवा अथवा वृद्धावस्थामें मन, वचन तथा कर्मसे जो पाप हुआ हो अथवा अभक्ष्य-भक्षण, अगम्यागमन, अपेक्षान इत्यादि जो पातक, महापातक और उपपातक किये गये हों, वे सब तिलधेनुके दानसे दूर हो जाते हैं। पवित्र यज्ञ आदि नदियोंमें धुंकने तथा नग्न स्नान करनेसे जो पाप होता है, वह भी नष्ट हो जाता है। तिलधेनुका दान करनेवाला व्यक्ति यमलोकके मार्गकी भयंकर खतनाओका अतिक्रमणकर सुवर्णके विम्बनमें बैठकर उत्तम लोकमें चला जाता है। राजन् । वैश्वदेव्ययमें कथा-प्रसंगके समय मुनिवरोंने यह विधि सुनयी और नारदजीने मुझे इस विधिको उपदेश किया, यही तिलधेनु-दानकी विधि मैंने आपसे कही है। तिलधेनुका दान करना पवित्र, पुण्य और मातृत्वप्रद तथा वीर्यवर्धक है। आठवें समय ब्राह्मणोंको इस माहात्म्यका श्रवण करनेसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। गौ, घर, शय्या और कन्या एक व्यक्तिको ही देनी चाहिये, क्योंकि विवाहजनसे दोनोंको अर्धेणैतकी प्राप्ति होती है और धिक्काय करनेसे सात कुल दुर्गतिको प्राप्त करते हैं। इस दानके प्रभावसे दान करनेवाला उत्तम विम्बनमें बैठकर साक्षात् विष्णुभगवान्के समीप पहुँच जाता है। माघ अथवा कार्तिककी पूर्णिमा, चन्द्र-सूर्य-ग्रहण, अयन-संक्रान्ति, विषुव-योग, व्यतीपात-योग, वैशाख अथवा मार्गशीर्षकी पूर्णिमा और गजच्छाया-योगमें तिलधेनुका दान प्रशस्त माना गया है। (अध्याय १५२)

### जलधेनु-दानके प्रसंगमें महर्षि मुद्गलका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं जलधेनु-दानकी विधि बत रहा हूँ, जिससे देवाधिदेव भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। उत्तम जलसे पूर्ण एक कलश स्थापित करे, उसमें पञ्चराज, धान्य, दूर्वा, पञ्चपल्लव, कुष्ठसहक ओषधि, खरश, जटामांसी, मुर, प्रियंगु और अजिता छोड़े। फिर उसे दो श्वेत वस्त्रों, यज्ञोपवीत और पुष्पमालाओंसे

अलंकृत करे। कुशके आसनपर कलशको रखकर उसके आस-पास जूता, छत्र आदि तथा चारों दिशाओंमें चाँदीके चार पाशोंमें तिल, दही, घृत तथा मधु भरकर रखे। कलशमें सयत्सा धेनुकी कल्पना कर उसे गोमयसे उपलिप्त कर दे। पूँछके स्थानपर माला लटक दे। समीपमें दोहनपात्र भी रख ले। इसके बाद सब उपचारोंसे भगवान् विष्णुकी यथाशक्ति

पूजाकर उस कलशमें जलधेनुकी अभिमन्त्रणा करे और इस प्रकार कहे—

विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहावा न विभावसोः ।

सोमशक्रार्कशक्तिर्या धेनुरुपेण साऽमु मे ॥

(उत्तरार्ध १५३।८)

‘जो गौमाता भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें लक्ष्मीके रूपमें निवास करती है और अग्निदेवकी पत्नी स्वाहा तथा चन्द्रमा, सूर्य एवं इन्द्रकी शक्ति-रूपमें प्रतिष्ठित है वे मेरे लिये इस जलरूपी कलशमें अधिष्ठित हों ।’

इस मन्त्रसे कलशमें धेनुकी प्रतिष्ठित कर कस्त-सम्पन्नित उस जलधेनुका तथा जलशायी भगवान् अभ्युत गोविन्दका भलीभाँति पूजन करे । तदनन्तर खीतरण और शान्तिविश होकर भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये उस कलशस्थित जलधेनुका स्वाहाणकी दान कर दे और इस प्रकार कहे—

शेषपर्यङ्कशयनः श्रीमान् शार्ङ्गविभूषितः ।

जलशायी जगद्योनिः प्रीयतां मय केशवः ॥

(उत्तरार्ध १५३।११)

‘शेषनागरूपी शय्यापर शयन करनेवाले, शार्ङ्गधनुससे विभूषित, जलशायी, जगद्योनि ! श्रीसम्पन्न भगवान् केशव ! आप (इस दानरूपी कर्मसे) मुझपर प्रसन्न हों ।’

दान करनेके बाद उस दिन गोव्रत करना चाहिये । इस विधिसे जलधेनुका दान करनेवाला व्यक्ति सभी प्रकारके आनन्दको प्राप्त करता है तथा उसे सार्वकालिक अनुल शान्ति प्राप्त होती है एवं सभी मनोरथोंकी सिद्धि हो जाती है, इसमें कोई संदेह नहीं ।

राजन् ! इस विषयमें एक आख्यान सुन चला है जो इस प्रकार है—किसी समय जातिस्मर महात्मा मुद्गल ऋषि भ्रमण करते हुए यमलोकमें गये । वहाँ जाकर उन्होंने देखा

कि पापी जीव अनेक प्रकारके कुम्भोपासक आदि दारुण नरकमें कष्ट भोग रहे हैं और यमराजके अति भयंकर दूत उन्हें अनेक प्रकारके दुःख दे रहे हैं । मुद्गलमुनिको देखकर नरकके जीवोंकी पीड़ा शान्त हो गयी और उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई तथा वे सुखका अनुभव करने लगे । जीवोंको सुखी देखकर मुनिको बहुत आश्चर्य हुआ, उसपर उन्होंने यमराजसे इसका कारण पूछा । यमराजने कहा—‘मुने ! आपको देखकर नरकके जीवोंको जो प्रसन्नता हुई है, उसका कारण यह है कि आपने तीन जन्मोंमें विधिवत् जलधेनुका दान किया है, उसीके प्रभावसे आपका दर्शन सबको आह्लादित कर रहा है । जो आपका दर्शन करेंगे, आपका ध्यान करेंगे, आपकी चर्चा सुनेंगे अथवा आप जिन्हें देखेंगे, स्मरण करेंगे उनके भी सुख-शान्ति और आनन्द होगा । जलधेनुका दान करने-कालको हजारों जन्मोंतक कोई क्लेश नहीं होता । इससे अधिक प्रसन्नतादायक अन्य कोई कर्म नहीं है । मुने ! अब आप मेरे द्वारा आर्घ्य, पाद आदि स्वीकार कर अपने धामको जाइये । जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णका आश्रय ग्रहण किया है, वे मेरे द्वारा नियमन करने योग्य नहीं हैं । जो भगवान् श्रीकृष्णका पूजन-व्रत करता है, नित्य उनका ध्यान करता है, उनके कृष्ण, अभ्युत, अनन्त, वासुदेव आदि नामोंका निरन्तर उच्चारण करता है, वह इस लोकमें नहीं आता । जो ‘अच्युतः प्रीयताम्’ ऐसा कहकर दान देता है, वह मेरे लोकमें नहीं आता । वे भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं और हम सभी उनके आज्ञाकारी हैं । मैं लोकोंका संयमन करता हूँ और मेरा संयमन भगवान् श्रीकृष्ण करते हैं ।’ यमराजका यह वचन सुनकर अग्नि, शस्त्र आदिसे पीड़ित सब नरकके जीव भगवान्की स्तुति करते हुए उनके पवित्र नामोंका स्मरण करने लगे । भगवान् विष्णुका स्मरण करते ही उस पुण्यकर्मके

१-कृष्णसु पूजितो वैसु मे कृष्णार्कपुष्पिताः । वैश्व नित्यं नृकः कृष्णं न ते मयिष्येयताः ॥

ममः कृष्णभ्युत्थनत्त वासुदेवोत्पत्तिम् । वैश्ववर्धनविर्भावितं न ते मयिष्येयताः ॥

दाने दददितैरुक्तमच्युतः प्रीयतामिति । ब्रह्मदत्तः सर्वविश्वं न ते मयिष्येयताः ॥

स एव नाथः सर्वस्य तत्रियोगवत्ता वयम् । जनसंयमनश्चाह्वयन्मत्संयमने हतिः ॥

(उत्तरार्ध १५३।३०—३३)

ऐसे ही ‘हरिगुणवशोऽस्मि न स्वतन्त्रः, प्रपन्नो मेकमेव मय्यसि किम्’ आदि प्रत्येक पदार्थ इत्येक विष्णुपुराणके यमगीतामें हैं, जो प्रायः प्रतिदिन पठनीय हैं ।

प्रभावसे नरककी अग्नि शीतल हो गयी। यमराजके सभी अस्र-शस्त्र प्रभावशून्य हो गये, अस्त्रकार दूर हो गये। सर्वत्र प्रकाश छा गया। यमदूत मूर्च्छित हो गये। शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु बहने लगी। मधुर ध्वनियाँ होने लगीं। पूय और रुधिरकी नदियोंमें उत्तम गङ्गाजल प्रवाहित होने लगा। सभी जीव दुःखसे छूटकर उत्तम वस्त्र, आभूषण, माला आदिसे विभूषित हो गये तथा तीनों पापोंसे मुक्त हो गये। यह अद्भुत दृश्य देखकर धर्मराज उन निष्ठाप नरकीय जीवोंका पाछादिसे अर्चन करने लगे और इसे भगवान् विष्णुकी महिमा समझकर उनको बार-बार प्रणाम करने लगे।

यमराज इस प्रकार स्तुति कर ही रहे थे कि उनके देखते-ही-देखते नरकके सभी जीव दिव्य विमानोंमें बैठकर स्वर्गमें चले गये। मुद्गल ऋषि भी यह सब चरित्र देखकर अपने भ्रममें चले आये और भगवान् विष्णुका प्रभाव तथा जलधेनु-दानके माहात्म्यका बार-बार स्मरण करते हुए कहने लगे—

अहो ! भगवान् विष्णुकी माया बड़ी विचित्र और कठिन है, जिससे मोहित होकर प्राणै परमेश्वरको नहीं पहचान पाता। इसी कारण जीव कौट, जै, पतञ्ज, वृक्ष, लता, पशु, पक्षी आदि योनियोंमें भ्रमण करते हैं और अपनी मुक्तिके लिये प्रयत्न नहीं करते। यह आश्चर्य है कि मायासे मोहित व्यक्ति अपना हित नहीं पहचान पाता। विष्णुभगवान्की माया यद्यपि बड़ी ही विचित्र है, परंतु भगवान्का आश्रय ग्रहण करनेपर

व्यक्ति उस मायाको दूर कर लेता है। जो व्यक्ति मानव-जन्म पाकर भी भगवान्की आराधना नहीं करता, उसका मनुष्यके रूपमें जन्म लेना ही व्यर्थ है। ऐसा कौन अभाग्य व्यक्ति होगा, जो भगवान्की आराधना नहीं करेगा, जबकि भक्तिपूर्वक छोटी-सी भी आराधना की जाय तो भगवान् विष्णु इस लोक तथा परलोकमें उसका कल्याण कर देते हैं। भगवान्को धन, वस्त्र, आभूषण आदि कुछ भी नहीं चाहिये। उन्हें तो मात्र हृदयकी भक्ति एवं शुद्ध प्रेम चाहिये<sup>१</sup>। इसलिये जीव ! तुम भगवान्से दूर क्यों रहते हो। हजारों जन्मोंके बाद इस कर्मभूमिमें दुर्लभ मानव-रूपमें जन्म लेकर जो व्यक्ति श्रीविष्णुकी आराधना और जलधेनुका दान नहीं करता, उस व्यक्तिपर यह जन्म ही व्यर्थ है। वह व्यक्ति मायाके जालमें पड़ा रहता है। मुद्गल ऋषिने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा कि 'मनुष्यो ! मैं पुनः-पुनःकरकर कहता हूँ कि आपलोगोंको दोनों लोकोंमें कल्याण प्राप्त करनेके लिये श्रीविष्णुभगवान्की आराधना और जलधेनुका दान करना चाहिये। नरककी घातना अर्थात् दुःखदायिनी है, इसे मैं स्वयं अपनी आँखोंसे देखा है। विचार करनेपर यह सत्य ही मालूम पड़ता है कि उस दुःखसे बचनेके लिये भगवान् विष्णुमें अपने मनको लगाना चाहिये, यही श्रेयस्कर उपाय है'<sup>२</sup>।

(अध्याय १५३)

### घृतधेनुदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं घृतधेनुदान और घृतधेनु-निर्माणकी विधि बता रहा हूँ, इसे आप प्रेमपूर्वक सुने। गायके घीसे भरे हुए कलशको गायकी आकृतिमें बनाकर उन्हें गन्ध, पुष्प आदिसे अलंकृत कर श्वेत वस्त्रसे भलीभाँति ढँक दे और दोहन-स्थानपर काँसकी दोहनी रख दे। पैरोंकी जगहपर ईश्वरके डंडे, गुरुकी जगहपर चाँदी, आँखोंके स्थानपर सोना, सींगोंके स्थानपर अंगरुकाछ, दोनों

जगत्वमें सप्तधान्य, गलकम्बलके स्थानपर उन्नी वस्त्र, नासिकोंके स्थानपर तुरण्कदेशीय कपूर, स्तनोंके स्थानपर फल, जिह्वेके स्थानपर शर्करा, मुखके स्थानपर दूधमिश्रित गुड, ग्रीवकी जगहपर रेशमी वस्त्र तथा रोओंकी जगहपर सफेद (गौर) सरसों और पीठकी जगह ताम्रपात्र स्थापित करे। इस प्रकारसे घृतधेनुकी रचना करे। इसी प्रकार घृतधेनुके पास ही घृतधेनु-वत्सकी भी कल्पना करे। तदनन्तर विधिपूर्वक घृत-

१-यो न वितर्दिष्विषीर्न वसेष्विर्न भूषीः। तुष्यते हृदयेन कलत्रेणैव न पूजयेत्॥ (उत्तरपर्व १५३।६५)

२-पार्थि मुद्गलश्रेष्ठ मुद्गलसुराज सभी उपरान्तमें कहा है और इसकी धर्मनिष्ठा एवं भक्तिकी विशिष्ट कथा महाभारतके सनुप्रसीय मुद्गलेपाख्यानमें भी अतीव आकर्षक है। धर्मकी उन्नतिके कारण मुद्गलसुराज अब अत्र-तुल-सा हो रहा है। ऐसे ही गणेशपुराण भी तुल-सा हो रहा है। समस्त व्यक्तियोंको इन दोहेको प्रकाशित करनेका अत्यंत आवश्यकता है।

धेनुकी प्रतिष्ठाकर भलीभाँति पूजन करे और इस प्रकार कहे—

आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम् ।

आज्यं सुराणामाहारः सर्वमाज्ये प्रतिष्ठितम् ॥

त्वं चैवाज्यमयी देवि कल्पितासि मया किल ।

सर्वपापापनोदाय सुखाय भव भामिनि ॥

(उत्तरपर्व १५४।८-९)

‘धृतको तेजोवर्धक तथा पापपहारी बतलया गया है। देवताओंका आहार धृत ही है, सभी कुछ धृतमें ही प्रतिष्ठित है, इसलिये धृतमयी देवि। तुम मेरे द्वारा धृतकुण्डोंमें कल्पित की गयी हो, मेरे पापोंको नष्टकर मुझे अनन्द प्रदान करो।’

### लवणधेनुदान-विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्। आप इस प्रकारके दानकी विधिको वर्णन करें, जिसे करनेसे सभी दानोंका फल प्राप्त हो जाय एवं सभी पापोंका नाश हो जाय और सभी मनोरथ सिद्ध हो जायें तथा व्यक्ति शुद्ध हो जाय।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज। सभी दानोंमें लवणधेनुका दान उत्तम है। इससे ब्रह्महत्या, गोहत्या, पितृहत्या, गुरुपत्नीगमन, विश्वासघात, कुराता आदि अनेक प्रकारके पापोंका आचरण करनेवाला व्यक्ति मुक्त हो जाता है। वह धन, धान्य, पुत्र, पौत्र एवं सुख प्राप्त कर दीर्घायु होकर इस संसारके सुखको भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है। अब मैं इस लवणधेनुदानकी विधिको बता रहा हूँ—

भूमिको गोबरसे लीपकर उसके ऊपर कुश बिछा दे तथा उसके ऊपर मेघका चर्म बिछा दे। उसपर पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके बैठे। चाहे कोई मनुष्य धनी हो या गरीब प्रायः एक आड़क अर्थात् चार सेर लवण रखकर उसमें धेनुकी कल्पना करनी चाहिये। सुवर्णमण्डित चन्दनकाष्ठके सींग, चाँदीके छुर, ईखके पैर, फलोंके स्तन, शर्कराकी मिष्ठान, चन्दनकी नासिका, सीपके कान, मोतियोंकी आँखोंकी कल्पना कर उसके कपोलमें सत्तुपिण्ड, मुखमें जौ, दोनों पाखोंमें तिल और गेहूँ—इस प्रकार सप्तधान्य उस लवणधेनुके अङ्गोंमें स्थापित

ऐसा कहकर दक्षिणासहित धृतधेनुका दान ब्राह्मणको दे दे और कहे कि ब्राह्मणदेवता। मेरा उपकार करनेके लिये आप इस आज्यमयी धेनुको ग्रहण करें। उस दिन धृतका ही आहार करना चाहिये। इसी विधिसे नवनीत (मक्खन) धेनुका भी दान करना चाहिये। धृतधेनुका दान करनेवाला व्यक्ति उस लोकमें निवास करता है, जहाँ भी और दूधकी नदियाँ बहती हैं। वह व्यक्ति अपने सात पीढ़ीके लोगोंका भी उद्धार कर देता है। ये फल तो सर्वप्रथम दान देनेवाले व्यक्तिबोधक हैं, किन्तु जो व्यक्ति निष्कामभावसे धृतधेनुका दान करता है, वह निष्कलमष होकर परम पदको प्राप्त करता है। धृत सर्वदेवमयी है, इसलिये धृतके दानसे सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। (अध्याय १५४)

करे। इसी प्रकार ताँदसे पीठ, गुड़पिण्डसे अपान-देश, कम्बलसे पैँजकर, अंगूरसे चार स्तनोंका, मधुर फलों एवं मधुमे योनि-देशकी रचना करनी चाहिये। इस प्रकार उपयुक्त सामग्रियोंसे लवण-धेनुकी रचनाकर सेरभर नमस्कार मानसे उसके वस्त्रकी कल्पना करे। धेनु तथा बाछड़ेको वस्त्र-आभूषण आदिसे अलंकृत करे। तदनन्तर सत्य स्नान कर देवताओं और ब्राह्मणकी पूजा करे। स्त्री-पुरुषके साथ गायत्री पूजा एवं दक्षिणा करे और इस मन्त्रको पढ़कर नमस्कार करे—

लवणे वै रसाः सर्वे लवणे सर्वदिवताः ।

सर्वदेवमये देवि लवणाख्ये नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १५५।१८)

‘लवणमें सभी रस निहित हैं। सभी देवताओंका निवास लवणमें रहता है, इसलिये सर्वदेवमयी लवणधेनु! आपको मेरा नमस्कार है।’

अनन्तर दक्षिणाके साथ वह धेनु ब्राह्मणको समर्पित कर दे। राजन्! लवणधेनुका दान करनेसे सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा और सभी यज्ञों तथा दानोंका भी फल प्राप्त हो जाता है। इस विधिसे जो व्यक्ति रसमयी लवणधेनुका दान करता है, उसे सौभाग्य, सुख, आरोग्य, सम्पत्ति, धन-धान्यकी प्राप्ति होती है तथा वह प्रलयपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है।

(अध्याय १५५)



## सुवर्णधेनुदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं सुवर्णधेनुदानकी विधि बता रहा हूँ, जिससे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। पचास पल (प्रयः तीन किलो), पचीस पल अथवा जितनी भी सामर्थ्य हो उस मानमें शुद्ध सुवर्णसे रत्नजटित सुन्दर कपिला सुवर्णधेनुकी रचना करनी चाहिये। उसके चतुर्थांशसे उसका वस्त्र बनाये। गलेमें चाँदीकी भेंटी लगाये, रेशमी वस्त्र ओढ़ाये, इसी प्रकार होंके दाँत, वैदूर्यका गलकम्बल, तबिके सींग, मोतीकी अँखें और मूँगेकी जीभ बनाये। कृष्णमृगचर्मके ऊपर एक प्रस्थ गुड़ रखकर उसके ऊपर सुवर्णधेनुको स्थापित करे। अनेक प्रकारके फलपुल आठ कलश, अठारह प्रकारके धान्य, छाता, जूता, आसन, भोजन-सामग्री, तबिका दोहनपात्र, दीपक, लवण, शर्करा आदि स्थापित करे। तदनन्तर खान कर सुवर्णधेनुकी प्रदक्षिणा कर उसकी भलीभाँति पूजा करे। पूजनके अनन्तर प्रार्थनापूर्वक उस सुवर्णधेनुको दक्षिणा तथा सभी उपसक्तोंके साथ ब्राह्मणको दान करे।

राजन्। गौके जिस अङ्गमें जो देवता, मनु एवं तीर्थ

(अध्याय १५६)

## रत्नधेनुदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्। अब मैं गोलेक प्राप्ति करानेवाले अत्युत्तम रत्नधेनु-दानकी विधि बता रहा हूँ। जिससे पुण्य दिनमें भूमिकी पवित्र गोबरसे लीपकर उसमें धेनुकी कल्पना करे। पृथ्वीपर कृष्णमृगचर्म बिछाकर उसपर एक श्रेण लवण रखकर उसके ऊपर विधिपूर्वक संस्कारसहित रत्नमयी धेनु स्थापित करे। बुद्धिमान् पुरुष उसके मुखमें इक्ष्वासी पक्षरागमणि तथा चरणोंमें पुष्कराग स्थापित करे। उस गौके ललाटपर सोनेका तिलक, उसकी दोनों आँखोंमें सौ मोती, दोनों भौंहोंपर सौ मूँगा और दोनों कानोंकी जगह दो सोने

निवास करते हैं वे इस प्रकार हैं<sup>१</sup>—नेत्रोंमें सूर्य और चन्द्रमा, जिह्वामें सरस्वती, दाँतोंमें मरुद्ग, कानोंमें अश्विनीकुमार सींगके अग्रभागमें रुद्र और ब्रह्मा, ककुट्में गन्धर्व और अप्सराएँ, कुक्षिमें चारों समुद्र, योनिमें गङ्गा, रोमकूपोंमें ऋषिगण, अफनदेशमें पृथ्वी, आँतोंमें नाग, अस्थियोंमें पर्वत, पैरोंमें चतुर्विध पुरुषार्थ, हुँकारमें चारों वेद, कण्ठमें रुद्र, पृष्ठभागमें मेरु और समस्त शरीरमें भगवान् विष्णु निवास करते हैं। इस प्रकार यह सुवर्णधेनु सर्वदेवमयी और परम पवित्र है।

जो व्यक्ति सुवर्णधेनुका दान करता है, वह मानो सभी प्रकारके दान कर लेता है। इस कर्मभूमिमें यह दान बहुत दुर्लभ है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक कर्त्तव्यधेनुका दान करना चाहिये। इससे संसारसे उद्धार हो जाता है और कीर्ति तथा शान्तिकी प्राप्ति होती है तथा उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और अन्तमें उसे शिवलोककी प्राप्ति होती है।

लगाये। उसके सींग सोनेके होने चाहिये। सिरकी जगह सौ हीरोंको स्थापित करना चाहिये। कण्ठ और नेत्र-पलकोंमें सौ गोमेदक, पृष्ठभागमें सौ इन्द्रनील (नीलम), दोनों पार्श्वस्थानोंमें सौ वैदूर्य (विल्लौर), उदरपर स्फटिक तथा कटिदेशपर सौ सौगन्धिक (माणिक-ताल) मणि रखना चाहिये। खुरोंकी सर्वमय, पैरोंकी मुक्ता (मोतियों) की लङ्घियोंसे युक्त कर तथा दोनों नाकोंकी सूर्यकांत तथा चन्द्रकांत मणियोंसे रचना कर कर्पूर और वन्दनसे वर्धित करे<sup>२</sup>। रोमोंकी केसर और नाभिकी चाँदीसे बनवाये। गुदामें सौ ताल मणियोंको लगाना चाहिये।

१-नेत्रयोः सूर्यशशिनौ जिह्वायां तु सरस्वती। दांत्येभ्य मास्ते देवः कर्णयोस्तु तपस्विनौ॥

गुह्याग्रेण सदा वासा देवौ शरित्तामहौ॥ गन्धर्वपरमहोय ककुटं तु प्रीक्षितः॥

कुक्षौ समुद्राश्च चारो येन विपणनीमहे॥

अप्यप्ये रोमकूपेषु अपाने वसुधा स्थिता। अन्तेषु नाग विद्वेजः पर्वतश्च विष्णु स्थितः॥

धर्मवशात्पर्यमोक्षासु पादेभ्य परिसंस्थितः। हुँकारे च चतुर्वेदः कण्ठे रुद्रः प्रीक्षितः॥

पृष्ठभागे स्थिते मेरुर्विष्णुः सर्वशक्तिगः। एवं सर्वमयी देवी क्वचन विद्वत्पथि॥ (उत्तरपर्व १५६। १६—२०)

२-इतने बहुमूल्य रत्नोंका दान करनेके उल्लेखसे तोच, धूर्तता या अव्यवधानकी कल्पनाकर बर्णित नहीं होना चाहिये, क्योंकि पूर्ण

अन्य रत्नोंको संधिभागोंपर लगाना चाहिये। जीभको शकरसे, गोबरको गुड़से और गोमूत्रको घीसे कनना चाहिये। दाही-दूध प्रत्यक्ष ही रखे। पैँछके अप्रभागपर चमर तथा स्नानेके पास तबिकी दोहनी रखनी चाहिये।

इसी प्रकार गौके चतुर्धारासे बछड़ा बनाना चाहिये। इसके बाद धेनुको आमन्त्रित करे। उस समय गुड़धेनुकी तरह आवाहन कर यह कहना चाहिये—‘देवि ! चूँकि रुद्र, इन्द्र, चन्द्रमा, ब्रह्मा, विष्णु—ये सभी तुम्हें देवताओंका निवासस्थान मानते हैं तथा समस्त त्रिभुवन तुम्हारे ही शरीरमें व्याप्त है,

अतः तुम भवसागरसे पीड़ित मेरा शीघ्र ही उद्धार करो।’ इस प्रकार आमन्त्रित करनेके बाद गौकी पूजा तथा परिक्रमा कर भक्तिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम करके उस रत्नधेनुका दान ब्राह्मणको दक्षिणाके साथ करे, अन्तमें क्षमा-प्रार्थना करे। इस प्रकार सम्पूर्ण विधिषोंको जाननेवाला जो पुरुष इस रत्नधेनुका दान करता है, वह शिवलोक (कैलास या सुमेरुस्थित दिव्य शिवधाम) को प्राप्त करता है तथा पुनः बहुत समयके बाद इस पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा होता है और उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। (अध्याय १५७)

### उभयमुखी धेनु-दानका माहात्म्य

**महाराज युधिष्ठिरने पूछा—**प्रभो ! उभयमुखी अर्थात् प्रसवके समयमें गौका दान किस प्रकार करना चाहिये और उसके दानका क्या फल है। इसे आप बतायें।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! उभयमुखी गौ-दानका संयोग बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है। जबतक बछड़ेके पैर प्रसवके समय भीतर हों और केवल सिर बाहर दिखलायी दे उस समय वह गौ माने साक्षात् सप्तदीश्वरी पृथ्वी है<sup>१</sup>। ऐसी उभयमुखी गौके दानके फलका वर्णन शक्य नहीं। यज्ञ और दान करनेसे जो फल प्राप्त नहीं होता, वह

फल केवल उभयमुखी-धेनुके दानसे ही प्राप्त हो जाता है और तत्काल उद्धार हो जाता है। सौँगोंके सर्पोंसे, खुरोंको चाँदीसे तथा पैँछको मोतीकी मालाओंसे अलंकृतकर जो उभयमुखी धेनुका दान करता है, वह गौ और बछड़ेके शरीरमें जितने रोम हैं, उतने ही हजार वर्षतक स्वर्गमें पूजित होता है तथा अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। जो व्यक्ति सुवर्णसहित उभयमुखी धेनुका दान करता है, उसके लिये गोलोक और ब्रह्मलोक सुलभ हो जाता है। दुर्बल, अङ्गहीन गौ और दक्षिणासे रहित दान नहीं करना चाहिये। (अध्याय १५८)

### गोसहस्रदान-विधि

**महाराज युधिष्ठिरने पूछा—**जनार्दन ! आप गोसहस्र-दानका विधान बतायें। यह किस समय किस विधिसे किया जाता है।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**प्रजेश्वर ! गौएँ सम्पूर्ण संसारमें पवित्र हैं और गौएँ ही उत्तम आश्रयस्थान हैं। संसारकी अजीबिकाके लिये ब्राह्मणोंने इनकी सृष्टि की है। तीनों लोकोंके हितकी कामनासे गौकी सृष्टि प्रथम की गयी है। इनके मूत्र और पुरीषसे देवमन्दिर भी पवित्र हो जाते हैं औरोंके लिये तो कहना ही क्या<sup>२</sup> ! गौएँ काम्य यज्ञोंकी मूलाधार हैं,

इनमें सभी देवताओंका निवास है। गोमयमें साक्षात् लक्ष्मीका निवास है। ब्राह्मण और गौ—दोनों एक ही कुलके दो रूप हैं। एकमें मन्त्र अधिष्ठित है और एकमें हविष्य-पदार्थ। इन्हीं गौओंके पुत्रोंके द्वारा सारे संसार और देवताओंका भरण-पोषण होता है। राजन् ! आप ऐसी विशिष्ट गुणमयी गौके दानका विधान सुनें। एकमात्र सर्वगुण तथा सर्वलक्षण-सम्पन्न गौका दान करनेपर समस्त कुटुम्ब तर जाता है, फिर यदि अधिक गौएँ दानमें दी जायँ तो उनके माहात्म्यके विषयमें क्या कहा जाय ?

धर्माचरण, देवाह्वन और ईमानदारी तथा परस्पर उत्कारकी भावनासे भारत देश ही समृद्ध था कि कोई वस्तु दाम लेकर नहीं बेची जाती थी। इस बातको ‘कल्याण’के ‘हिन्दू संस्कृति-अङ्क’ से लेकर १९६८ के कई सप्ताहण अङ्कमें बार-बार प्रमाणोद्धार सिद्ध किया गया है।

१-अन्य पुराणोंमें भी इसका महत्त्व आया है और इसकी परिक्रमसे सप्तदीश्वरी पृथ्वीकी परिक्रमका पुण्य कल्पित गया है।

२-याज्ञिक मूलपुरीषेण देवतायजमन्विषि। शुक्लेति समस्तमन्त्रा किं भूतनीधेक ततः ॥ (उत्तरार्क १५९।३)

प्राचीन कालमें महाराज नहुष और महामति यक्षिनि भी सहस्रों गौओंका दान किया था, जिसके प्रभावसे वे ब्राह्मण-स्थानको प्राप्त हो गये। पुत्रकी कामनासे देवी अर्द्धतिने भी गङ्गाजीके तटपर अपार गोदान किया था, जिसके फलस्वरूप उन्होंने तीनों लोकोंके स्वामी नारायण (भगवान् वामन—उपेन्द्र) को पुत्ररूपमें प्राप्त किया।

राजन् ! ऐसा सुना जाता है कि पितृगण इस प्रकारकी गाथा गाते हैं—क्या मेरे कुलमें ऐसा कोई पुण्यकाम पुत्र होगा, जो सहस्रों गौओंका दान करेगा, जिसके पुण्यकर्मसे हम सब परमसिद्धिको प्राप्त कर सकेंगे, अथवा हमारे कुलमें सहस्रों गोदान करनेवाली कोई दुहिता (कन्या) होगी जो अपने पुण्यकर्मके आधारपर मेरे लिये मोक्षकी सीढ़ी तैयार कर देगी।

राजन् ! अब मैं शास्त्रोक्त सार्वकामिक गोसहस्रदानरूप यज्ञकी विधि बता रहा हूँ। दादा किसी तीर्थस्थान अथवा गोष्ठ या अपने घरपर ही दस या बारह हाथका लम्बा-चौड़ा एक सुन्दर मण्डप बनवाये। उसमें तोरण लगाये जायें। उसके चारों दिशओंमें चार दरवाजे लगाये जायें। मण्डपके मध्यमें चार हाथकी एक सुन्दर बेदी बनाये। इस बेदीके पूर्वोत्तर-दिशा (ईशानकोण)में एक हाथके घमाणकी प्रत्येदीका निर्माण करे। ग्रहयज्ञके विधानसे उसपर क्रमसे ग्रहोंकी स्थापना करे। सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रकी अर्चना करनी चाहिये। यज्ञके लिये ऋत्विजोंका वरण, पुनः बेदीके पूर्वोत्तर-भागमें एक शिव कुण्डका निर्माण कर द्वार-प्रदेशमें फलबोरेसे सुरोर्ध्वत ओ-ओ कलशोंकी स्थापना करनी चाहिये और उनमें पञ्जरल डाल देना चाहिये। तदनन्तर हवन करना चाहिये। तुलापुरुषदानके सम्मान इसमें भी लोकपालोंके निमित्त बलि-नैवेद्य प्रदत्त करना चाहिये। सहस्रों गौओंमेंसे सक्त्ता दस गौओंको अलग कर उन्हें वस्त्र और माला आदिसे खूब अलंकृत कर ले। इन दसों

गौओंके मध्य जाकर विधिपूर्वक सबकी पूजा करे। इनके गलेमें सोनेकी घंटी, तबिके दोहनपात्र, खुरोंमें चाँदी और मस्तकको सुवर्ण-तिलकसे अलंकृत कर सींगोंमें भी सोना लगा दे। गोमालाके चतुर्दिक् चमर डुलाना चाहिये। इस प्रसंगमें मुनियोंने सुवर्णमय नन्दिकेश्वर (वृषभ) को लवणके ऊपर रखकर अथवा प्रत्यक्ष वृषभके भी दानका विधान बतलाया है। इस प्रकार दस-दस गौके क्रमसे गोसहस्र या गोशत दान करना चाहिये। यदि संख्यामें सम्पूर्ण गौएँ उपलब्ध न हो सकें तो दस गौओंकी पूजाकर शेष गौओंकी परिकल्पना कर उनका दान करना चाहिये।

तदनन्तर पुण्यकाल आनेपर गीत एवं मातृलिक शब्दोंके साथ वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वविधिमिश्रित जलसे स्नान कराया हुआ यजमान अङ्गलिये पुष्प लेकर इस प्रकार उच्चारण करे—'विष्णुर्हृत्स्वरूप विष्णुमाताओंको नमस्कार है। लोकोंको धारण करनेवाली रोहिणीरूप गौओंको बारम्बार प्रणाम है। गौओंके अङ्गोंमें इक्षीसों भुवन तथा सद्गति देवताओंका निवास है, वे रोहिणीस्वरूप<sup>१</sup> माताएँ मेरी रक्षा करें। गौएँ मेरे अग्रभागमें रहें, गौएँ मेरे पृष्ठभागमें रहें, गौएँ नित्य मेरे चारों ओर वर्तमान रहें और मैं गौओंके मध्यमें निवास करूँ<sup>२</sup>। वैदिक तुम्हीं वृषरूपसे सनातन धर्म और भगवान् शिवके वाहन हो, अतः मेरी रक्षा करो।' इस प्रकार आमन्त्रित कर बुद्धिमान् यजमान सभी सामर्थ्योंके साथ एक गौ और नन्दिकेश्वरको गुरुको दान कर दे तथा उन दसों गौमेंसे एक-एक तथा हजार गौओंमेंसे एक-एक सौ, पचास-पचास अथवा बीस-बीस गौ प्रत्येक ऋत्विजको समर्पित कर दे। तत्पश्चात् उनकी आज्ञासे अन्य ब्राह्मणोंको दस-दस या पाँच-पाँच गौएँ देनी चाहिये। एक ही गाय बहुलोकोंको नहीं देनी चाहिये, क्योंकि वह दोषप्रदायिनी हो जाती है। बुद्धिमान् यजमानको आरोग्यवृद्धिके लिये एक-एकको अनेक

१-दुहिता या कुले कश्चिद् गोसहस्रप्रदायिनी। लोकानः सुवर्णवर्णं धारयन्ति न संशयः ॥

(उत्तरपर्व १५९।१४)

२-विधिपुण्याने कार-कार गौओंकी अपार महिमा और गोसहस्र-दान आदिकी विधिको निर्देश यही सूचित करता है कि भारत गो-भक्त देश था और यहाँ दूध-दहीसे सम्पुष्ट जीवन बहती थी। वृषभके जन्ममें गो-धारणकी कथा और यहाँकी अद्भुत गो-सम्पत्तिकी कथा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। आज जो भारत केवल-सा बन गया है तथा राजदण्ड, सुवर्णपुत्री महक गोदान आदिकी बातें कल्पना-सी लगती होगी, वह सब शास्त्रोंकी दृष्टि और गो-भक्ति-श्रुतताका ही परिणाम है।

३-वाचसने-८।४१ आदिमें कार-कार रोहिणीरूप गौओंको कामधेनु एवं सुधिमकाय कहा गया है। रोहिणी गौ प्रायः लाल वर्णकी होती है।

४-गवो गमाप्रतः सन्तु गवो मे सन्तु पुष्टः। गवो मे सर्वतः सन्तु गवो मध्ये वसन्त्यसम् ॥ (उत्तरपर्व १५९।३३)

गौएँ देनी चाहिये। इस प्रकार एक हजार गोदान करनेवाला यजमान एक दिनके लिये पुनः पयोव्रत करे और इस महादानका अनुकीर्तन स्वयं सुनाये अथवा सुने।

यदि उसे विपुल समृद्धिकी इच्छा हो तो उस दिन ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिये। इस विधिसे जो मनुष्य एक हजार गौओंका दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त

होकर सिद्धों एवं चारणोंद्वारा सेवित होता है। वह क्षुद्र घटियोंसे सुरक्षित सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर आरुढ़ होकर सभी लोकपालोंके लोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है। इस गोसहस्र-दानसे पुरुष अपने इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। गोदानमें गौ, पाश, काल एवं विधिका विशेषरूपसे विचार करना चाहिये। (अध्याय १५९)

### वृषभदानकी महिमा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—जनार्दन ! आपकी अमृतमयी वाणीसे मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, मैं हृदयमें एक कौतुहल है। तीनों लोकोंमें यह प्रसिद्ध है कि गौओंका स्वामी—गोपति (वृषभ) गोविन्दस्वरूप है, अतः प्रभो ! ऐसे महनीय वृषभ-दानका फल बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! सुनिये, यह वृषभ-दान पवित्रोंमें पवित्रतम और दानमें सबसे उत्तम दान है। एक स्वस्थ इष्ट-पुष्ट वृषभके दानका फल दस धेनुओंके दानसे अधिक है। इष्ट-पुष्ट, युवा, सुन्दर, सुरीला, स्वस्थान् और ककुद्मान् एक ही शुभ लक्षणसम्पन्न वृषभके दानसे उस दान करनेवाले व्यक्तिके सभी कुल्लोक उद्धार हो जाता है। पुण्ययुक्त दिन वृषभकी पूछमें चौड़ी लगाकर तथा प्रतीकृति उसे अलंकृत कर दे, तदनन्तर दक्षिणके साथ उस वृषभ दान ब्राह्मणकी देकर इस प्रकार प्रार्थना करें—

धर्मसत्वं वृषभलेषणं जगद्दानन्दकारकः ।

अष्टपुनैरधिष्ठानमृतः पाहि सनातन ॥

(उत्तरार्क १६०।५)

(अध्याय १६०)

### कपिलादानकी महिमा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—जगरपते ! अब आप कपिला-दानका माहात्म्य बतलानेकी कृपा करें, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाला एवं दानोंमें परम पुण्यप्रद है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महामते ! इस सम्बन्धमें प्राचीन कालमें विनताधने भगवान् वाराह एवं धरणीदेवीके जिस संवादको मुझे बताया था उसे आप सुने। धरणीदेवीके पूछनेपर भगवान् वाराहने कहा कि 'धृष्टे ! कपिला गौके दान करनेसे सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है तथा यह परम पवित्र है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने सम्पूर्ण तेजोंका सार एकत्र कर रखेमें

अग्निहोत्रकी सम्पन्नताके लिये कपिल गौकी रचना की थी। कपिल गौ पवित्रोंको पवित्र करनेवाली, मङ्गल्लोका मङ्गल तथा परम पुण्यमयी है। तप इसीका रूप है, व्रतोंमें यह उत्तम व्रत, दानोंमें उत्तम दान तथा निधियोंमें यह अक्षय निधि है। पृथ्वीमें गुप्त रूपसे या प्रकट रूपसे जितने पवित्र तीर्थ हैं एवं सम्पूर्ण लोकमें द्विजातियोंद्वारा सायंकाल और प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि हवनकी जो भी क्रियाएँ हैं, वे सभी कपिल गायके घृत, क्षीर तथा दहीसे होती हैं। भूमिनि ! कपिलके सिर और श्रोत्रोंमें सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल



उठकर उसके गले एवं मस्तकके गिरे हुए जलको श्रद्धापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करता है, वह पवित्र हो जाता है और उसी क्षण उसके पाप भस्म हो जाते हैं। प्रातःकाल उठकर जिसने कपिला गौकी प्रदक्षिणा की, उसने मानो सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर ली। वसुधारे ! कपिला गौकी एक प्रदक्षिणा करनेपर भी दस जन्मके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। पवित्र व्रतके आचरण करनेवाले पुरुषको कपिला गौके मूत्रसे स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मानो गङ्गा आदि सभी तीर्थोंमें स्नान कर चुका। भक्तिपूर्वक एक बार कपिलानेक गोमूत्रसे स्नान करनेपर मनुष्यके जीवनभरके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। एक हजार गौके दानका फल एक कपिला गौके दानके समान है। गौओंकी यज्ञपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। गौके दूध-दही, घृत, गोमूत्र, गोमय आदिको अपवित्र नहीं करना चाहिये। गौओंके शरीरको सुजलना और उनके सेवा करना परम श्रेष्ठ धर्म माना गया है। गौके भय एवं रोगको निवृत्तिमें उसकी भलीभाँति सेवा करनी चाहिये। जो गौओंके चरनेके लिये हरी-भरी गोबरभूमिका दान करता है, वह दिव्य स्वर्गलोकका फल प्राप्त करता है। साक्षात् ब्राह्मणोंने कपिला गौके दस भेद बतलाये हैं। इस कपिला गौका जो श्रोत्रिय ब्राह्मणको दान करता है वह अपराधोंसे अलंकृत दिव्य विमानपर प्रतिष्ठित होकर स्वर्ग जाता है। सोनेके समान रंगवाली कपिला प्रथम श्रेणीकी है और गौर पिङ्गलवर्णवाली द्वितीय श्रेणीकी। तिसरी लाल-पीले नेत्रवाली, चौथी अश्वि के समान नेत्रवाली, पाँचवीं जुरङ्गे समान वर्णवाली, छठी धीके समान पिङ्गलवर्णवाली, सातवीं उजली-पीली, आठवीं दुग्धवर्णके समान पीली, नवीं पाटलवर्णवाली तथा दसवीं पीले पैलवाली<sup>१</sup>। ये सभी कपिलाएँ संसार-सागरसे उद्धार कर देती हैं, इसमें संशय नहीं। जो शूद्र होकर कपिलका दान लेता है और उसका दूध पीता है, वह पतित होकर चंडाल हो जाता है और अन्तमें नरकमें जाता है। इसलिये किसी ब्राह्मणैतरको कपिलका दान नहीं लेना चाहिये। श्रोत्रिय, धनहीन, सदाचारी तथा अग्निहोत्री ब्राह्मणको एक कपिला गौका दान करनेसे दाता सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।

गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि दान देनेके लिये जल्दी ही प्रसव करनेवाली धेनुका पालन करे। जिस समय वह कपिला धेनु आधा प्रसव करनेकी स्थितिमें हो जाय, उसी समय उसे ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये। जब उत्पन्न होनेवाले बछड़ेका मुँह यौनिके बाहर दीखने लगे और शेष अङ्ग अभी भीतर ही रहें, अर्थात् अभी पूरे गर्भका उसने मोचन (बाहर) नहीं किया, तबतक वह धेनु सम्पूर्ण पृथ्वीके समान मानी जाती है। वसुधारे ! ऐसी गायका दान करनेवाले पुरुष ब्रह्मवादियोंसे सुपूजित होकर ब्रह्मलोकमें उतने करोड़ वर्षोंतक निवास करते हैं, जितनी कि धेनु और बछड़ेके रोमोंकी संख्याएँ होती हैं। सोनेसे सौंघ तथा चाँदीसे सुरूको सम्पन्न करके कपिला गौका दान करते समय उस धेनुका पुच्छ ब्राह्मणके हाथपर रख दे। हाथपर बल लेकर शुद्ध वाणीमें ब्राह्मणसे संकल्प पढ़वावे। जो पुरुष इस प्रकार (उभयमुखी गौका) दान करता है, उसने मानो समुद्रमें घिरी तथा पर्वतों, वनों एवं राज्योंसे परिपूर्ण समूची पृथ्वीका दान कर दिया—इसमें कोई संशय नहीं। ऐसा मनुष्य इस दानसे निश्चय ही पृथ्वी-दानके तुल्य फलका भागी होता है। वह अपने पितरोंके साथ प्रसवतापूर्वक भगवान् विष्णुके परम धाममें पहुँच जाता है। ब्राह्मणका धन छीननेवाला, गोपाती अथवा गर्भपात करनेवाला, दूसरोंको ठगनेवाला, केदनिन्दक, नास्तिक, ब्राह्मणोंका निन्दक और सत्कर्ममें दोषदर्शित रखनेवाला महान् पापी समझा जाता है। किंतु ऐसा धोर पापी भी बहुतसे सुवर्णोंसे युक्त उभयमुखी कपिलानेक दानसे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। दाताको चाहिये कि उस दिन सूर्यका भोजन करे अथवा दूधके ही सहारे रहे।

जो इस प्रकार उभयमुखी कपिला गौका दान करता है वह सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका फल प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर समाहितचित्तमें तीन बार भक्तिपूर्वक इस कल्प—“गोदान-विधान”को पढ़ता है, उसके वर्षभरके किये हुए पाप उसी क्षण इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे वायुके झोंकेसे धूलके समूह। जो पुरुष श्राद्धके अवसरपर इस परम पावन प्रसङ्गका पाठ करता है, उस बुद्धिमान् पुरुषके अन्तरमें दिव्य सेलसर भर जाते हैं और पितर उसकी वस्तुओंको बड़े

१-कपिलानेक भेदों एवं उनकी अथ महिमाका वर्णन महाभारतके वैष्णवधर्मपर्वमें हुआ है, जो अष्टमोधिक पर्वका अन्तिम भाग है। पणिनि-व्याकरण (५।२।१७) के गणपठके अनुसार कपि अर्थात् बन्दके समान वर्णवाली गायको कपिला कहते हैं।

प्रेमसे ग्रहण करते हैं। जो अमावास्याको ब्राह्मणोंके सम्मुख है। जो पुरुष मन लगाकर निरन्तर इसका श्रवण करता है, इसका पाठ करता है, उसके पितर सौ वर्षके लिये तृप्त हो जाते उसके सौ वर्षके पाप नष्ट हो जाते हैं। (अध्याय १६१)

### महिषी एवं मेघी-दानकी विधि

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**एकम् । अथ मै पापनाशक, पुण्यप्रद तथा आयु और सुखप्रदायक महिषीके दानकी विधि बता रहा हूँ। सूर्य-चन्द्रग्रहण, कार्तिक-पूर्णिमा, अयनसंक्रान्ति, शुक्ल पक्षकी चातुर्दशी आदि पर्व-दिनोंमें अथवा जब भी सामर्थ्य हो, उसी समय सांसारिक दुःखकी निवृत्तिके लिये महिषी-दान करना चाहिये। शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा अलंकृत महिषी उत्तम विद्वान् ब्राह्मणको देने चाहिये। दान देनेके समय इस मन्त्रको पढ़ना चाहिये—

इन्द्रादिलोकपालानां या राजपहिषी शुभा ।  
महिषीदानमाहात्म्यात् सासु मे सर्वकामदा ॥  
धर्मराजस्य साहाय्ये यस्य पुत्रः प्रतिष्ठितः ।  
महिषासुरस्य जननी या सासु वरदा मम ॥

(उत्तरपर्व १६२।९-१०)

‘जो इन्द्रादि लोकपालोंकी कल्याणकारिणी राजपहिषी है और धर्मराजकी साहायता करनेके लिये जिसका पुत्र (महिष) उनका वाहन बना हुआ है तथा जो महिषासुरकी जननी है, वह मेरे लिये वरदायिनी हो। इस महिषी-दानसे मेरी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जायें।’

प्रदक्षिणाके पश्चात् पूष्ट-भागसे महिषीका दान करना चाहिये। वस्त्र, आभूषण और दक्षिणाके साथ महिषी

ब्राह्मणको देकर विसर्जन करना चाहिये। इस विधिसे जो व्यक्ति महिषीका दान करता है, वह इस लोक तथा परलोकमें वाञ्छित फल प्राप्त करता है।

**महाराज !** इसी प्रकार मेघी-दान भी सभी पापोंको दूर करनेवाला है। एक सुवर्णमयी मेघीकी प्रतिमा बनाकर उसे उत्तम भूषण, रेशमी वस्त्र, चन्दन, पुष्पमाला आदिसे अलंकृतकर अथवा प्रत्यक्ष मेघीको अलंकृतकर उसका दान करना चाहिये। ग्रहण, विषुवयोग, अयनसंक्रान्ति आदि पवित्र दिनोंमें, दुःखग्र देखनेपर, अमावास्यामें अथवा जब भी श्रद्धा हो तब इसका दान करना चाहिये। दानके समय शिव-पार्वती, ब्रह्मा-गणेश, लक्ष्मी-नारायण तथा रति-कामदेवकी पूजा करनी चाहिये, साथ ही लोकपालों और प्रहरी भी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर हवन करना चाहिये। ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। पूजनके बाद मेघीकी प्रतिमाको तिलके कलशपर स्थापित कर उसके सामने नमक रखकर विधिपूर्वक पूजन करे और गृहस्थ ब्राह्मणको उसका दान कर दे। इस दानके प्रभावसे निःसंतानको पुत्र और निर्धनको धन प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति इस दानकी विधिको सुनता है, वह भी अहोरात्रमें किन्ने गये पापोंसे छूट जाता है।

(अध्याय १६२-१६३)

### भूमिदानकी महिमा

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**महाराज ! अथ मै सभी पापोंको दूर करनेवाले भूमिदानकी विधि बता रहा हूँ। जो अग्निहोत्री, दरिद्र-कुटुम्बी तथा वैदिक ब्राह्मणको दक्षिणमण्डित भूमिका दान करता है, वह बहुत समयतक ऐश्वर्यका भोगकर अन्तर्गम्य दिव्य विमानमें बैठकर विष्णुलोकको जाता है। जबतक उसके द्वारा प्रदत्त भूमिपर अंकुर उपजते रहते हैं, तबतक भूमिदाता विष्णुलोकमें पूजित होता है। भूमिदानके अतिरिक्त और कोई भी दान विशिष्ट नहीं माना गया है। पुरुषार्थ ! अन्य दान कालक्रमसे क्षीण हो जाते हैं, परंतु भूमिदानका पुण्य क्षीण नहीं होता। जो व्यक्ति सत्यसम्पन्न

भूमिका दान करता है, वह जबतक भगवान् सूर्य रहेंगे, तबतक सूर्यलोकमें वह पूजित होता रहेगा। धन-धान्य, सुवर्ण, रत्न, आभूषण आदि सब दान करनेका फल भूमिदान करनेवाला प्राप्त कर लेता है। जिसने भूमिदान किया, उसने माने समुद्र, नदी, पर्वत, सम-विषम स्थल, गन्ध, रस, खोरपुक ओषधि, पुष्प, फल, कमल, उत्पल आदि सब कुछ दान कर दिया। दक्षिणासे युक्त अग्निहोम आदि यज्ञ करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य भूमिदान करनेसे प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मणको भूमिदान देकर पुनः उससे वापस नहीं लेना चाहिये। सत्यसम्पन्न भूमिका दान करनेवाले व्यक्तिके पितर

प्रलयपर्यन्त संतुष्ट रहते हैं। अपनी आजीविकाके निमित्त जो पाप पुरुषसे होता है, वे सारे पाप गोचर्म-मात्र<sup>१</sup> भूमिके दान करनेसे दूर हो जाते हैं। एक हजार स्वर्ण मुद्राके दानसे जो फल बतलाया गया है, वही फल गोचर्म-प्रमाणमें भूमिके दान देनेसे प्राप्त हो जाता है। नरोत्तम ! हजारों कपिल गौओंके दान करनेके समान पुण्य गोचर्म-मात्र भूमि देनेसे प्राप्त होता है। सगर आदि अनेक राजाओंने भूमिके उपयोग किया है, परंतु अपने-अपने आधिपत्यमें जिसने भी भूमिके दान किया, सभीको उसका फल प्राप्त हुआ। यमदूत, मृत्युदण्ड, असिपत्रवन, वरुणके घोर पाश और रौरवादि अनेक नरक और उनकी दारुण यातनाएँ भूमिदान करनेवालेके समीप नहीं आतीं। चित्रगुप्त, मृत्यु, काल, यम आदि सब भूमिदाताकी पूजा करते हैं। राजन् ! भगवान् रुद्र, प्रजापति, इन्द्रादि देवता और असुरगण भूमिके दान करनेवालेकी पूजा करते हैं, स्वयं मैं भी उसकी अतीव प्रसन्नतासे पूजा करता हूँ। जिस भाँति माता अपनी संतानका और गौ जैसे अपने वस्तुका दूध आदिके द्वारा पालन करती है, उसी प्रकार रसमयी भूमि भी भूमि देनेवालेकी रक्षा और पालन-पोषण करती है। जिस

प्रकार जलके सेचनसे बीज अंकुरित होते हैं, उसी प्रकार भूमिदानसे सब मनोरथ अंकुरित होकर सफल सिद्ध होते हैं। जिस प्रकार सूर्यके उदय होते ही उनके प्रकाशसे अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार भूमिके दानसे सभी प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं।

भूमिके दान देकर वापस लेनेवालेको यमदूत वारुण पाशसे बाँधकर पूय तथा शोणितसे भरे कुण्डोंमें डालते हैं। अपने द्वारा दी गयी अथवा दूसरे व्यक्तिके द्वारा दी गयी भूमिके जो व्यक्ति अपहरण करता है, वह प्रलयपर्यन्त नरकजीममें आलस्य रहता है। दानमें प्राप्त भूमिके हरण हो जानेपर दुःखित व्यक्तिके रोने-कलपनेसे जितने अशुभिन्दु गिरते हैं, उतने हजार वर्षतक भूमिके हरण करनेवाला नरकमें काट भोगता है। ब्राह्मणको भूमिदान देकर जो व्यक्ति पुनः उस भूमिके हरण करता है, उसे उल्टा लटकर कर कुम्भीपाक नरकमें पकड़ा जाता है। दिव्य हजार वर्षके बाद वह व्यक्ति कुम्भीपाकसे निकलकर इस भूमिपर जन्म लेता है और सात जन्मतक अनेक प्रकारके कष्टोंको भोगता रहता है। इसलिए भूमिके हरण नहीं करना चाहिये। (अध्याय १६४)

### सुवर्णरचित भूदानकी विधि

**महाराज युधिष्ठिरने पूछा—**भगवन् ! भूमिके दान तो क्षत्रिय ही कर सकते हैं, क्योंकि क्षत्रिय ही भूमिके उपार्जन करनेमें, उसका दान करनेमें और उसके पालन करनेमें समर्थ होते हैं और लोगोंसे न तो भूमिके दान हो सकता है, न ही उसका पालन ही हो सकता है। अतः आप कोई ऐसा उपाय बताइये जो भूमिदानके समकक्ष हो।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**महाराज ! यदि भूमिके दान सम्भव न हो तो सुवर्णके द्वारा भूमिपालकी अव्यक्ति बनाकर और नदी-पर्वतोंको रेखांकित कर उसे ही दान कर देना चाहिये। इससे सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका फल प्राप्त हो जाता है। अब मैं इसकी विधि बता रहा हूँ।

सूर्य-चन्द्र-ग्रहण, जन्मनक्षत्र, विषुवयोग, युगादि तिथियों तथा अयनसंक्रान्ति आदि पुण्य समयोंमें पापक्षय और यशस्के प्राप्तिके लिये इस दानको करना चाहिये। अन्य भी प्रशस्त

समयोंमें जब धन एकत्र हो जाय, इस दानको किया जा सकता है। एक सौ पलसे लेकर कम-के-कम पाँच पलतक अर्थात् अपनी सामर्थ्यके अनुसार सुवर्णकी जम्बूद्वीपके आकारमें पृथ्वीकी प्रतिमा बनानी चाहिये। जिसके मध्यमें मेरु पर्वत तथा यक्षास्थान अन्य पर्वत अङ्कित हों। वह पृथ्वी सस्यसम्पन्न तथा लोकपालसे रक्षित, ब्रह्मा, इंद्र आदि देवताओंसे सुशोभित तथा सभी राजा आदि आभूषणोंसे अलंकृत हो। बाईस हाथ लम्बा-चौड़ा तोरणयुक्त चार द्वारोंवाला एक सुन्दर मण्डप बनाकर उसमें चार हाथकी वेदी बनानी चाहिये। ईशानकोणमें वेदीपर देवताओंका स्थापन करे और अग्निकोणमें कुण्ड बनाये। पताका-तोरण आदिसे मण्डपको सजा ले। अनन्तर पञ्चलोकपाल और नवग्रहोंका षोडशोपचार पूजन करनेके बाद ब्राह्मणोंसे हवन कराना चाहिये। ब्राह्मणवर्ग वेदध्वनि करते हुए तथा मङ्गलघोषपूर्वक भेरी, शङ्ख इत्यादि वाद्योंकी ध्वनिके साथ

उस सुवर्णमयी पृथ्वीकी प्रतिमाको मण्डपमें लाकर तिल बिछी हुई केदीपर स्थापित करे। तत्पश्चात् उसके चारों ओर अठारह प्रकारके अश्वों, लवणादि रसों और जलसे भरे आठ माङ्गलिक कलशोंको स्थापित करना चाहिये। उसे रेशमी चंदोख, विविध प्रकारके फल, मनोहर रेशमी वस्त्र और चन्दनद्वारा अलंकृत करना चाहिये। इस प्रकार अधिवासनपूर्वक पृथ्वीका सार कार्य सम्पन्न कर स्वयं श्वेत वस्त्र और पुष्पमाला धारणकर, श्वेत वर्णक आभूषणोंसे विभूषित हो अङ्गलिये पुष्प लेकर प्रदक्षिणा करे तथा पुण्यकाल आनेपर इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—

नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवन् यतः ।  
धात्री त्वमसि भूतानामतः पाहि वसुधारे ॥  
वसु धारयसे यस्मात् सर्वसौख्यप्रदोऽयम् ।  
वसुधारा ततो जाता तस्मात् पाहि भयादलम् ॥  
वसुधारेऽपि नो गच्छेद्यस्मादन्तं तवाचले ।  
अनन्तायै नमस्तुभ्यै पाहि संसारकर्मिणात् ॥  
त्वमेव लक्ष्मीर्गोविन्दे शिष्ये गौरीति संस्थिता ।  
गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रक्षी प्रभा ॥  
बुद्धिर्बृहस्पते स्मृता पेधा मुनिषु संस्थिता ।  
विश्वं व्याप्य स्थिता यस्मात् ततो विद्यम्बरा मता ॥  
धृतिः क्षितिः क्षमा शोणी पृथिवी वसुधा मही ।  
प्लाभिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात् ॥

(उत्तरार्णव १५५।२१—२६)

‘वसुधारे। चैकिं तुम्हीं सभी देवताओं तथा सम्पूर्ण

जीवनिकार्यको भवनभूत तथा धात्री हो, अतः मेरी रक्षा करो। तुम्हें नमस्कार है। चैकिं तुम सभी प्रकारके सुख प्रदाता वसुओंको धारण करती हो, इसीसे तुम्हारा नाम वसुधारा है, तुम संसार-भयसे मेरी रक्षा करो। अवले! चैकिं ब्रह्मा भी तुम्हारे अन्तर्गत नहीं प्राप्त कर सकते, इसलिये तुम अनन्ता हो, तुम्हें प्रणम है। तुम इस संसाररूप कीचड़से मेरी रक्षा करो। तुम्हीं विष्णुमें लक्ष्मी, शिवमें गौरी, ब्रह्माके समीप गायत्री, वज्रनाम ज्योत्स्ना, रविमें प्रभा, बृहस्पतिमें बुद्धि और मुनियोंमें मेधा-रूपमें स्थित हो। चैकिं तुम समस्त विश्वमें व्याप्त हो, इसलिये विद्यम्बरा कही जाती हो। धृति, क्षिति, क्षमा, शोनी, पृथ्वी, वसुधा तथा मही—ये तुम्हारी मूर्तियाँ हैं। देवि। तुम अपनी इन मूर्तियोंद्वारा इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करो।’

इस प्रकार उच्चारणकर पृथ्वीकी मूर्ति बाह्यणोंको निवेदित कर दे। उस पृथ्वीका अधा अधवा चौधार्ध भाग गुरुको समर्पित करे। जो मनुष्य पुण्यकाल आनेपर सुवर्णनिर्मित कल्पानमयी पृथ्वीकी सुवर्णमूर्तिका इस विधिके साथ दान करता है, वह वैश्वय पदको प्राप्त होता है तथा शुद्ध घंटिकाओं (घुंघरू) से सुरोभित एवं सूर्यके समान तेजस्वी विमानद्वारा वैकुण्ठमें जाकर तीन कल्पपर्यन्त निवास करता है और पुण्य क्षीण होनेपर इस संसारमें आकर वह धार्मिक चात्रवर्ती राजा होता है।

(अध्याय १६५)

### हलपंक्तिदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! अब मैं सर्व-पापनाशक तथा सर्वसौख्यप्रद हलपंक्ति-दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिससे सभी प्रकारके दानोक्त फल प्राप्त हो जाता है। एक हलके लिये चार बैलोंकी आवश्यकता होती है और दस हलोंकी एक पंक्ति होती है। साखूकी लकड़ीसे दस हल बनवाकर उन्हें सुवर्ण-पट्ट और रत्नोंसे मढ़कर अलंकृत कर ले। वस्त्र, स्वर्ण, पुष्प तथा चन्दन आदिसे मण्डित कर, सुन्दर, बड़े-पुष्ट, उत्तम वृष उन हलोंमें जोतने चाहिये। बैलोंके कंधोंपर जुआ भी रखे, साथमें कील लगा हुआ अंकुश आदि उपकरण भी रहने चाहिये। पर्यंकालमें हलपंक्तिके साथ

सस्यसम्पन्न बड़ा ग्राम, छोटा ग्राम अथवा सौ निवर्तन (सौ खीया) अथवा पचास निवर्तन भूमि देनी चाहिये। इसका दान विशेषरूपसे कार्तिकी, वैशाखी, अयनसंक्रान्ति, जन्मनक्षत्र, ग्रहण, विषुवयोगमें करे। वेदवेत्ता, सदाचारी, सम्पूर्णज्ञ, अलंकृत दस ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। दस हाथ प्रमाणवाला एक मण्डप बनाकर उसमें पूर्व दिशामें एक हाथ प्रमाणवाले दो अथवा एक कुण्ड बनवाये। निमन्त्रित ब्राह्मणोंसे प्लाशकी समिधा, घी, काला तिल और खीरसे व्याहृतियों, पर्जन्यसूक्त, आदित्यसूक्त और रुद्रमन्त्रोंसे हवन कराये। तदनन्तर यजमान स्नान कर शुक्ल वस्त्र आदिसे अलंकृत हो सप्तधान्यके ऊपर



हलपतिको स्थापित करे और उसमें बैलोंको जोते। उस समय विविध प्रकारके वाद्य-यन्त्रोंको बजाना चाहिये और ब्राह्मणवर्ग वेद-पाठ करें। यजमान दानके समय पुष्पाञ्जलि प्रहण कर इन मन्त्रोंको पढ़े—

यस्माद् देवगणाः सर्वे हले तिष्ठन्ति सर्वदा ।

युषस्कन्धे संनिहितास्तस्माद्भक्तिः शिष्येऽस्तु मे ॥

यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नाहंनि षोडशीन् ।

दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्मं चास्तु दुष्ठा सदा ॥

(उत्तरपर्व १६६। १६७-१७०)

‘चूँकि बैलश्रेके कंधेपर स्थित हलमें सभी देवगण सदा स्थित रहते हैं, अतः भगवान् शंकरमें मेरी भक्ति हो। अन्य समस्त दान भूमिदानकी सोलहवीं कलाके भी तुल्य नहीं हैं, अतः धर्ममें मेरी सुदृढ़ भक्ति हो।’ इसके बाद भूमि और हल उन ब्राह्मणोंको दे दे। इस प्रकार जो व्यक्ति हलपतिकका दान

करता है, वह अपने इच्छीस कुलोंसहित स्वर्ग जाता है। सात जन्मतक उस व्यक्तिको निर्धनता, दुर्भाग्य, व्याधि आदि दुःख नहीं भोगने पड़ते और वह पृथ्वीका अधिपति होता है। पुण्डित ! दान करते समय जो भक्तिपूर्वक इस दानकर्मका दर्शन करता है, वह भी जन्मभर किये गये पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस दानको महाराज दिलीप, ययाति, शिबि, निमि, भरत आदि सभी श्रेष्ठ राजर्षियोंने किया, जिसके प्रभावसे वे राजा आज भी स्वर्गका सुख भोग रहे हैं। इसलिये भक्तिपूर्वक सभी स्त्री-पुरुषोंको यह दान करना चाहिये। यदि दस हलपतिकका दान करनेमें समर्थ न हो तो पाँच, चार अथवा एक ही हलका दान करे। हल-पतिकका दान करनेवाले हलसे जितनी मिट्टी उठती है और बैलोंके शरीरमें जितने भी रोम होते हैं, उतने ही हजार वर्षतक शिवलोकमें निवासकर अन्तमें पृथ्वीपर श्रेष्ठ राजा होते हैं। (अध्याय १६६)

### आपाक-दानके प्रसंगमें राजा हव्यवाहनकी कथा

महाराज पुण्डितने पूछा—भगवन् ! कृपाकर अब ऐसा कोई दान बतायें, जिससे मनुष्य धन, पुत्र और सौभाग्यसे सम्पन्न हो सके।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मैं इस सम्बन्धमें एक इतिहास कह रहा हूँ, आप श्रद्धापूर्वक सुनिये। किसी समय चन्द्रवंशमें हव्यवाहन नामका एक राजा हुआ था। उसके राज्यमें न कोई उपद्रव होता था और न कोई उसका शत्रु ही था। सभी नीरोग रहते थे। वह बड़ा प्रतापी, स्वस्थ, बली और शत्रुओपर विजय प्राप्त करनेवाला था। परंतु पूर्वजन्मके अशुभ कर्मके प्रभावसे उसके पास कोई ऐसा मन्त्री नहीं था जो राज्यको सुचारुरूपसे चला सके तथा उसे कोई पुत्र, मित्र या सहायक बन्धु-बान्धव भी न था। उसे कभी समयसे भोजन आदि भी नहीं मिल पाता था। इस कारण वह राजा सदा चिन्तित रहता था।

एक बार उसके यहाँ पिप्पलाद मुनि पधारे। राजाकी पटरानी शुभाकतीने मुनिकी श्रद्धापूर्वक पाद्य, अर्घ्य आदिसे पूजा की और आसनपर उन्हें बैठाकर निवेदन किया कि ‘मुनीश्वर ! यह निष्कण्टक राज्य तो हमें मिला है, परंतु मन्त्री, मित्र, पुत्र आदि हमें क्यों नहीं प्राप्त हुए। इसका कारण

कतनेकी कृपा करे।’ रानीका वचन सुनकर पिप्पलाद मुनिने कहा कि—‘देवि ! पूर्वजन्ममें किये गये कर्मके फल ही अगले जन्ममें प्राप्त होते हैं, यह कर्मभूमि है, अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। जिस पदार्थका पूर्वजन्ममें मनुष्यने सम्पदन नहीं किया है, उसे शत्रु, मित्र, बान्धव, राजा आदि कोई भी नहीं दे सकते। पूर्वजन्ममें तुमने राज्यका दान किया था, वह तुम्हें प्राप्त हो गया, परंतु तुमलोगोंने मित्र, भृत्य आदिसे कोई सम्बन्ध नहीं रखा, अतः इस जन्ममें ये सब कैसे प्राप्त होंगे ?’

इसपर रानी शुभाकती बोली—महाराज ! पूर्वजन्ममें जो हुआ वह तो बीत गया, अब इस समय आप ऐसा कोई वत, दान, उपवास, मन्त्र अथवा सिद्धयोग बतानेकी कृपा करें, जिससे मुझे पुत्र, धन, मित्र, भृत्य इत्यादि प्राप्त हो सकें। रानीका वचन सुनकर पिप्पलाद मुनि बोले—‘भद्रे ! एक आपाक नामका महादान है, जो सभी सम्पत्तियोंका प्रदायक है। श्रद्धापूर्वक कोई भी आपाकका दान करता है तो उसे महान् लाभ होता है। इसलिये तुम श्रद्धासे आपाकदान करो।’ मुनिके कथनानुसार रानी शुभाकतीने आपाकदान किया। फलतः उसे पुत्र, मित्र, धन और भृत्य प्राप्त हो गये।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज ! अब मैं उस आपाक-दानकी विधि बता रहा हूँ, आप ब्रह्मपूर्वक सुनें। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि वह और तारावत्क विचारकर शुभ मुहूर्तमें अगर, चन्दन, धूप, पुष्प, वस्त्र, आभूषण, नैवेद्य आदिसे भार्गव (कुम्हार) का ऐसा सम्मान करे, जिससे वह संतुष्ट हो और उससे निवेदन करे कि महाभाग ! आप विश्वकर्मास्वरूप हैं। आप मेरे लिये सुन्दर छोटे-बड़े मिट्टीके घड़े, स्थाली, कसौरी, कलश आदि पात्रोंका निर्माण करें। भार्गव भी उन पात्रोंको बनाये। तदनन्तर विधिपूर्वक एक अर्घ्य—भट्टी लगाये। अनन्तर उन एक हजार मिट्टीके पात्रोंको अर्घ्यमें स्थापित कर सार्यकालके समय उसमें अर्घ्य प्रज्वलित करे और रात्रिको जागरणकर वाद्य, गीत, नृत्य आदिको व्यवस्थाकर उत्सव मनावे। सुप्रभात होते ही यजमान अर्घ्यकी अग्निको शान्तकर पात्रोंको बाहर निकाल ले। अनन्तर सनमकर धेत वस्त्र पहनकर उनमेंसे सोलह पात्रोंको सामने स्थापित करे। रक्तवस्त्रसे उन्हें आच्छादितकर पुष्पमालाओंसे उसका अर्चन करे और ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन आदि करकर भार्गवका भी पूजन करे। ये पात्र माणिक्य, सोने, चाँदी अथवा मिट्टीतकके हो सकते हैं। सौभाग्यवती स्त्रियोंकी पूजाकर भाण्डोंकी

प्रदर्शना करने चाहिये और इन मन्त्रोंको पढ़ते हुए उन पात्रोंका दान करना चाहिये—

आपाक ब्रह्मरूपोऽसि भाण्डानीमानि जन्तवः ।

प्रदानात् ते प्रजापुष्टिः स्वर्गश्चास्तु ममाक्षयः ॥

भाण्डरूपाणि दान्यत्र कल्पितानि मया किल ।

भूत्वा सत्पात्ररूपाणि उपतिष्ठन्तु तानि मे ॥

(उत्तरपर्व १६७। ३२-३३)

‘आपाक (अर्घ्य) ! आप ब्रह्मरूप हैं और ये सभी भाण्ड प्राणीरूप हैं। आपके दान करनेसे मुझे प्रजाओंसे पुष्टि प्राप्त हो, अक्षय स्वर्ग प्राप्त हो। मैंने जितने पात्र निर्माण कराये हैं, ये सभी सत्पात्रोंके रूपमें मेरे समक्ष प्रस्तुत रहें।’

जिसकी इच्छा जिस पात्रको लेनेकी हो उसे वह स्वयं ही ले ले, लेके नहीं। इस विधिसे जो पुरुष अथवा स्त्री इस आपाक-दानको करते हैं, उससे तीन जन्मतक विश्वकर्मा संतुष्ट रहते हैं और पुत्र, मित्र, भृत्य, धर आदि सभी पदार्थ मिल जाते हैं। जो स्त्री इस दानको भक्तिपूर्वक करती है, वह सौभाग्यशाली पतिके साथ पुत्र-पौत्रादि सभी पदार्थोंको प्राप्त कर लेती है और अन्तमें अपने पतिसहित स्वर्गको जाती है। नरेश्वर ! यह आपाक-दान भूमिदानके समान ही है। (अध्याय १६७)

### गृहदान-विधि

महाराज पुष्टिद्वारे कहा—भगवन् ! आप सभी शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं, अतः आप गृहदानकी विधि और महिमा बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! गार्हस्थ्यधर्मसे बढ़कर कोई धर्म नहीं और असत्यसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। ब्राह्मणसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं और गृहदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। धन, धान्य, स्त्री, पुत्र, हाथी, घोड़ा, गौ, भृत्य आदिसे परिपूर्ण घर स्वर्गसे भी अधिक सुख देनेवाला है। जिस प्रकार सभी प्राणी माताके आश्रयसे जीवित रहते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रय भी गृहस्थ-आश्रमपर ही अवभूत हैं। अपने घर रात्रिको पैर फैलाकर सोनेमें जो सुख है, वह सुख स्वर्गमें भी नहीं। अपने घरमें शाकका भोजन करना भी उत्तम सुख है, इसलिये महाराज ! सुन्दर घर बनवाकर ब्राह्मणको देना चाहिये। जो व्यक्ति शैव, वैष्णव, योगी, दीन, अनाथ,

अप्यगत आदिके लिये गृह, धर्मशाला बनाता है, उस व्यक्तिको सभी व्रत और सभी प्रकारके दान करनेका फल प्राप्त हो जाता है। पक्षे ईटसे सुदृढ़, ऊँचा, शुभवर्ण, जाली, झरोखा, सम्प, कपाट आदिसे युक्त, जलशय्य और पुष्प-वाटिकामें भूषित, उत्तम आँगनसे सुशोभित सुन्दर घर बनना चाहिये। गृह कछुएकी पीठके समान ऊँचा एवं वरामर्दसे सुसज्जित होना चाहिये। उसे कई मंजिलों तथा गलियों आदिसे समन्वित होना चाहिये। लोहा, सोना, चाँदी, लौका, लकड़ी, मृत्तिका आदिके पात्र, वस्त्र, चर्म, बल्कल, तृण, पाषाण, पात्र, रत्न, आभूषण, गाय, भैस, घोड़ा, बैल, सभी प्रकारके धान्य, धी, तेल, गुड़, तिल, चावल, ईख, मूँग, गेहूँ, सरसों, मटर, अरहर, चना, उड़द, नमक, खजूर, द्राक्षा, जीरा, धनिया, चूल्हा, चक्की, छलनी, ऊखल, मूसल, सूप, होंदी, मथानी, झाड़ू तथा जलकुम्भ आदि ये सब गृहस्थके

उपकरण हैं, इनको धरमें स्थापित करनेके बाद शुभ मुहूर्तमें कुलीन एवं शीलसम्पन्न, वेदशास्त्रके जाननेवाले, गृहस्थधर्मका पालन करनेवाले, जितेन्द्रिय सपत्नीक ब्राह्मणोंको बुलाकर वस्त्र, गन्ध, आपूषण, पुष्पमाला आदिसे उनका पूजन कर शान्तिकर्मके लिये उनको नियुक्त करना चाहिये। परके आँगनमें एक मेखलासहित कुण्डका निर्माण करवाना चाहिये। ब्राह्मणोंद्वारा तुष्टि-पुष्टि प्रदान करनेवाला प्रहयाग करे। ब्राह्मण रक्षोघ्नसूक्त पढ़नेके बाद वास्तु-पूजाकर सभी दिशाओंमें भूतबलि दे। इसके बाद यजमान पुण्य पवित्र घोषके साथ ब्राह्मणोंको दानके निमित्त बनाये गये उन घरमें प्रवेश कराये और वहाँ शय्याओंपर उन सपत्नीक ब्राह्मणोंको बिठलाये। जिस घरको पूर्वमें ही जिस ब्राह्मणके लिये नियत किया गया है उसे 'इदं गृहं गृहाण' 'इस गृहको ग्रहण करें' ऐसा कहकर

प्रदान करे। ब्राह्मण 'स्वस्ति' कहें और 'कोऽप्तात्' (यजुः ७।४८) इस मन्त्रका पाठ करें। यदि सामर्थ्य हो तो एक-एक घर ब्राह्मणोंको दे अथवा एक ही घर बनवाकर एक सत्पात्र ब्राह्मणको देना चाहिये। राजन् ! शीत, वायु और भूपरसे रक्षा करनेवाली तुणमयी कुटी ब्राह्मणोंको देनेपर भी जब सभी कामनाओंकी पूर्ति हो जाती है और स्वर्ग प्राप्त होता है तो फिर उत्तम घर दान देनेके फलका वर्णन कहाँ तक किया जा सकता है ! गाय, भूमि, सुवर्ण आदिके दान और अनेक प्रकारके दम-निकमोंका पालन गृहदानके सोलहवें भागकी भी बराबरी नहीं कर सकते। जो व्यक्ति सभी सामग्रियोंसहित सुदृढ़ और सुन्दर घर ब्राह्मणको दान करता है, वह शिष्यलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १६८)

### अन्नदानकी महिमाके प्रसंगमें राजा श्वेत और एक वैश्यकी कथा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! किसी समय मुनिवर्गमें अन्नदानका जो माहात्म्य कहा था, उसे मैं कह रहा हूँ, आप एकाग्रचित्त होकर सुनें। अन्य ! आप अन्नदान करें, जिससे तत्काल संतुष्टि प्राप्त होती है। वनमें श्रीरामचन्द्रजीने दुःखी होकर लक्ष्मणसे कहा था—'लक्ष्मण ! सम्पूर्ण पृथ्वी अन्नसे परिपूर्ण है, फिर भी हमलोगोंको अन्न नहीं मिल रहा है, इससे यही जान पड़ता है कि हमलोगोंने पूर्वजन्ममें ब्राह्मणोंको कभी अन्नका भोजन नहीं कराया।' मनुष्य जिस कर्मकपी बीजको बोता है, जैसा कर्म करता है, वह उसीका फल पाता है। संसारमें यह ठीक ही कहा जाता है कि बिना दिये कुछ नहीं मिलता। भोजन-योग्य जिस अन्नका दान किया जाता है, वह अन्न दान परम श्रेयस्कृत है। भारत ! भोज्य पदार्थोंमें बहुतसे पदार्थ हैं, किंतु अन्नका दान सब दानोंसे श्रेष्ठ दान है। सत्यसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं, संतोषसे बढ़ा कोई सुख नहीं और अन्नदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। स्नान, अनुलेपन और वस्त्रालंकारोंसे मनुष्योंको वैसी तृप्ति नहीं होती, जैसी भोजनसे होती है। इस विषयमें एक इतिहास है—

राजन् ! बहुत पहले एक श्वेत नामके चक्रवर्ती राजा हुए हैं, उन्होंने अनेक यज्ञ किये और अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्त

की। अनेक प्रकारका दान दिये और धर्मपूर्वक राज्यपर शासन किया। राजाने अनेक प्रकारके उत्तम भोग भोगकर अन्तमें राज्यका परित्याग कर वनमें जाकर तपस्या की। अन्तमें वे दिव्य विमानमें अस्सद होकर स्वर्ग गये। वहाँ विद्याधर, किन्नर आदिके साथ विहार करने लगे। अप्सराएँ उनकी सेवामें रहती थीं। गन्धर्व उन्हीं श्वेत सुनाकर रिझाते, इन्द्र भी उनका बड़ा सम्मान करते थे। राजाको दिव्य वस्त्र, आपूषण, पुष्पमाला आदि पहननेको तो मिलता था, परंतु भोजनके समय विमानमें बैठकर भूलोकमें आकर अपने पूर्व-शरीरके मांसको प्रतिदिन खाना पड़ता था। प्रतिदिन मांसका भोजन करनेके बाद भी पूर्वजन्मके कर्मके कारण उस पूर्वशरीरका मांस घटता नहीं था। इस प्रकार प्रतिदिन मांस-भक्षणसे व्याकुल होकर राजाने ब्रह्माजीसे कहा—'ब्रह्मन् ! आपके अनुग्रहसे मुझे स्वर्गका सुख प्राप्त हुआ है, सभी देवता मेरा आदर करते हैं। सभी सामग्री उपभोगके लिये प्राप्त होती रहती है, परंतु सभी भोगोंके रहते हुए भी यह पापिनी क्षुधा कभी शान्त नहीं होती, मुझे सदा सताती रहती है। इसी कारण मुझे अपने पूर्व-शरीरके मांसको प्रतिदिन खानेके लिये भूलोकमें जाना पड़ता है और इसमें मुझे बड़ी घृणा होती है। मैंने कौन-सा ऐसा पाप किया

है, जिससे मुझे उत्तम भोजन नहीं मिलता। आप कृपाकर ऐसा कोई उपाय बतायें जिससे मेरा यह दुःख दूर हो जाय।

**ब्रह्माजी बोले—**राजन् ! आपने अनेक प्रकारके दान दिये हैं, बहुत-से यज्ञ किये हैं और गुरुजनोंको भी संतुष्ट किया है, परंतु ब्राह्मणोंको स्वादिष्ट उत्तम व्यक्तियोंका भोजन नहीं कराया। अन्नदान न करनेसे ही आज आपको यह दशा हो रही है। अन्नसे बढ़कर कोई सौख्यनी नहीं। अन्नको ही अमृत जानना चाहिये। इसलिये अब आप पृथ्वीपर जाकर केंद्रशास्त्र जाननेवाले कुलीन ब्राह्मणोंको भोजन करायें। उससे आपको यह दुःख दूर हो जायगा।

ब्रह्माजीका वचन सुनकर राजा श्रोतने पृथ्वीपर आकर महर्षि अगस्त्यजीको परमभक्तिसे भोजन कराया और अपने गलेकी दिव्य एकावली (माला<sup>१</sup>) को दक्षिणाके रूपमें समर्पित किया। अगस्त्यजीको भोजन कराते ही राजा श्रोत संतुष्ट हो गये और सभी देवता वहाँ आकर अश्वि आदरपूर्वक राजाको विमानमें बैठकर स्वर्गलोक चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने जब रावणका वध कर दिया, तब वह एकावली अगस्त्यजीने श्रीरामचन्द्रजीको दे दी। यह अन्नदानका ही महात्म्य है।

मेरा वचन सत्य है कि प्राणियोंके लिये अन्नसे बढ़कर कोई उत्तम पदार्थ नहीं है। अन्न जीवोंका प्राण है। अन्न ही तेज, बल और सुख है। इसलिये अन्नदाता प्राणदाता है। भूखा व्यक्ति जिस दूसरे व्यक्तिके घर अज्ञा करके जाता है और वहाँसे संतुष्ट होकर आता है तो भोजन देनेवाला व्यक्ति धन्य हो जाता है, उसके समान पुण्यकर्मा और कौन होय ? दीक्षा-प्राप्त स्वातक, कर्षिता गौ, याज्ञिक, राजा, भिक्षु तथा महोदधि—ये सब दर्शनमात्रसे पवित्र कर देते हैं। इसलिये घरपर आये भूखे व्यक्तिको जो भोजन न दे सके उसका गृहस्थाश्रम व्यर्थ है। अन्नके बिना कोई अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकता। मनुष्योंका दुष्कृत अर्थात् किया हुआ दूषित कर्म अन्नमें प्रविष्ट हो जाता है, इसलिये जो ऐसे व्यक्तिको अन्न खाता है, वह अन्न देनेवालेके दुष्कृतका ही भक्षण करता है। इसके विपरीत अमृतमय पवित्र पराश्रका भोजन करनेवाले व्यक्तिको एक महीनेका किया हुआ पुण्य

अन्नदाताको प्राप्त हो जाता है। जिस अन्नके दानका इतना महत्व है, उसका दान क्यों नहीं करते ? (अर्थात् थोड़ा-बहुत अवश्य करो, करना चाहिये।) जो व्यक्ति ब्राह्मण-अतिथि आदिको भोजन आदि करने तथा भिक्षा देनेके पूर्व ही स्व भोजन कर लेता है, वह केवल पाप ही भक्षण करता है। जिस व्यक्तिने दस हजार या एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराया है, उसने मائة ब्रह्मलोकमें अपना स्थान बना लिया।

प्राचीन कालमें वाराणसीमें वैश्य और ब्राह्मणोंका पूजक धनेश्वर नामका एक वैश्य रहता था। उसकी दुकानमें एक स्थानपर एक सर्पिणीने अंडा दिया और वह उस अंडेको छोड़कर कहीं अन्यत्र चली गयी। वैश्यने अंडेको देखा और उसपर दयाकर उसकी रक्षा करने लगा। कुछ समय बाद अंडेको फोड़कर कृष्ण सर्पका बच्चा बाहर निकला। उस सर्पके बच्चेको वैश्य प्रतिदिन दूध पिलाता था। वह सर्प भी वैश्यके पैरोपर लोटता, उसके अङ्गोंको चाटता और पूरे घरमें निर्भय हो घूमता रहता। वैश्य भी भलीभाँति सर्पकी रक्षा करता। थोड़े ही समयमें वह भवेकर सर्प हो गया। किसी समयकी बात है, वह धनेश्वर गङ्गा-स्नान करनेके लिये गया था और उसका पुत्र दुकानपर बैठकर सायान बेंच रहा था। उसी समय वह सर्प उस लड़केके पैरोंके बीचसे निकला, जिससे वह लड़का डर गया और उसने सर्पको डटेसे मारा। चोट लगते ही सर्प उछलकर वैश्यपुत्रके सिरपर बैठ गया और क्रोधित होकर कहने लगा—‘मूर्ख ! मैं तुम्हारे पितृकी शरणमें हूँ और तुम्हारे पितृने ही मेरा पालन-पोषण किया है, इसलिये मैं तुम्हारा भी भला ही चाहता था, परंतु तुम्हने मुझे अकरण ही प्रतर्जित किया है, इसलिये अब मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूँगा।’ सर्पके इस प्रकार कहनेके साथ ही वैश्यके धामे दुःखी हो सब रोने लगे।

उसी समय अच्युत, गोविन्द, अनन्त आदि भगवान्के पवित्र नामोंका उच्चारण करता हुआ स्नान कर वह धनेश्वर भी घर आ गया। पुत्रकी वैसी स्थिति देखकर उसने सर्पसे कहा—‘पत्रग ! तुम मेरे पुत्रके मस्तकपर फण फैलाये क्यों बैठे हो ? यह ठीक ही कहा गया है कि मूर्ख मित्र और हीन

१-महाराज श्रोतकी कथा कई स्थानोंपर है, किन्तु काशीकीय रामचरण उलकाश्रमके ७३ तथा ७८ सर्गमें बड़ी रम्य शैली और मधुर पदार्थोंमें वर्णित हुई है। वहाँ एकावली मल्लकी जगह केसु अर्द्ध दिव्य अप्सराकी बात निर्दिष्ट है।



जातिमें उत्पन्न प्राणीके साथ सम्बन्ध करना अपने हाथसे जलता हुआ अंगारा उठाना है।' वणिक्को बात सुनकर साँपने कहा—'धनेश्वर ! तुम्हारे पुत्रने मुझे निरपराध ही मारा है, इसलिये तुम्हारे सामने ही मैं इसका प्राण ले रहा हूँ, जिससे अन्य कोई भी व्यक्ति ऐसा काम न करे।' यह सुनकर धनेश्वरने कहा—'सर्प ! जो उपकार, भक्ति तथा स्नेह आदिको भूलकर अपने रास्तेसे भटक जाय अर्थात् अपने कर्तव्यमार्गको छोड़ दे, उसे कौन रोक सकता है, परंतु क्षणमात्र तुम इस बालकको छोड़ दो, दंश न करो, जिससे मैं ब्राह्मणोंको भोजन कराकर अपना और्ध्वदैहिक कर्म अपने हाथसे कर सकूँ, क्योंकि बादमें मेरे पास कोई पुत्र नहीं रहेगा।' सर्पने इस बातको स्वीकार कर लिया।

तदनन्तर वैश्यने वेदवेत्ता और जितेन्द्रिय एक हजार ब्राह्मणों तथा संन्यासियों आदिको घी, पायससहित मधुर स्वादिष्ट भोजन कराया। भोजनसे संतुष्ट हो ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर कहा—

वणिक्पुत्रं चिरं जीव नश्यन्तु तव शत्रवः ।

अभीष्टफलसंसिद्धिरस्तु मे ब्राह्मणाद्यया ॥

(उत्तरपर्व १६९।६३)

'वणिक्पुत्र ! ब्राह्मणोंकी आज्ञासे तुम चिरंजीवी होओ, तुम्हारे सभी शत्रु नष्ट हो जायें और तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जाय।'।

ऐसा कहकर ब्राह्मणोंने अन्न और पुष्प वैश्यपुत्रके मस्तकपर छोड़े। ब्राह्मणोंकि वाग्वचसे ताड़ित होकर वह सर्प

मस्तकसे गिरा और मर गया। सर्पको मरा हुआ देखकर धनेश्वरको बड़ा दुःख हुआ और वह सोचने लगा कि मैंने इस सर्पको पुष्पकी भीति पाला था और आज यह मेरे ही दोषसे मर गया। यह बड़ा ही अनुचित हुआ। उपकार करनेवालेमें जो साधुता रखता है, उसकी साधुतामें कौन-सी विशेषता रहती है ? अर्थात् वह प्रशंसाके योग्य नहीं है, किंतु जो अस्कारियोंमें साधुता रखता है, उसकी साधुता ही सरहनीय है?।

इस प्रकार अनेक प्रकारसे पछाताप करते हुए दुःखी होकर वैश्यने न तो उस दिन भोजन किया, न ही रात्रिमें सो सका। प्रातःकाल होते ही गङ्गामें स्नान कर देवता-पितरोंका पूजन-तर्पण आदिकर घर आया और पुनः एक हजार ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके उत्तम व्यञ्जनोंका भोजन कराकर संतुष्ट किया। इसपर ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर कहा—'धनेश्वर ! हमलोग तुमसे बहुत ही संतुष्ट हैं, इसलिये तुम घर भाँगी।' यह सुनकर उसने घर भाँगा कि 'यह मृत सर्प पुनः जीवित हो जाय।' वैश्यके यह कहनेपर ब्राह्मणोंने अभिभ्रमवित जल सर्पके ऊपर छिड़का। जलके छीटे पड़ते ही वह सर्प जीवित हो गया। यह देखकर धनेश्वर बड़ा ही प्रसन्न हुआ और नगरके लोग धनेश्वरकी प्रशंसा करने लगे।

महाराज ! यह सहस्र-ब्राह्मण-भोजन (अन्नदान) का संक्षेपसे मैंने माहात्म्य वर्णन किया। जो व्यक्ति ब्राह्मणोंकी और अध्यागतोंकी अन्न देता है, वह बहुत दिनतक संसार-सुखको भोगकर विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय १६९)



### स्थालीदानकी महिमायें द्रौपदीके पूर्वजन्मकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! आपके द्वारा अन्नदानके माहात्म्यको सुनकर मुझे भी एक बात स्मरण आ रही है। जिसे मैंने अपनी आँखोंसे देखा है, उसे मैं आपको सुनाता हूँ। जिस समय दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदिने घूतक्रीडामें छलसे हमारे राज्यको छीन लिया और हमलोग द्रौपदीके साथ वल्कल वस्त्र तथा मृग-चर्म धारण कर वनको

जा रहे थे, उस समय नगरके लोग और सदाचारी ब्राह्मण स्नेहसे हमारे साथ चलने लगे। उन्हें देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं यह सोचने लगा कि जो व्यक्ति ब्राह्मण, मित्र, भूत आदिको पोषण करता है, उसीका जीवन सफल है। अपना पेट तो मनुष्य, जीव, जन्तु, पशु, पक्षी सभी भर लेते हैं। अध्यागत, सुहृद्गर्ग और कुटुम्बको छोड़कर जो व्यक्ति

१-मूर्ख मित्र सम्बन्ध हीनजतिवन्ते हि ॥ २-कलेज्जुषेद्राजान् स स्वास्तेन कर्षति ॥ (उत्तरपर्व १६९।५६)

२-उपकारिणु यः साधुः साधुत्वे तथा को गुणः। अस्कारिणु यः साधुः स साधुः सिद्धिर्निष्ठते ॥ (उत्तरपर्व १६९।६०)

केवल अपना ही पेट भरता है, वह जीवित होते हुए भी मरे हुएके समान है। यही सोचकर मैं उन ब्राह्मणोंसे कहा कि आपलोग त्रिकालज्ञ और ज्ञान-विज्ञानमें चरंगत हैं और मेरे सेहके वशीभूत होकर ही आये हैं। अब कोई ऐसा उपाय बतानेकी कृपा कीजिये जिससे कि भाई, बन्धु, मित्र, भृत्यसहित आपलोगोंके लिये भी भोजन आदिक प्रबन्ध हो सके, क्योंकि इस निर्जन वनमें हमे बारह वर्ष बिताना है। मेरे इस प्रकारके वचनको सुनकर मैत्रेय मुनिने मुझसे कहा कि ब्रह्मेण्य ! एक प्राचीन वृत्तान्त मैंने दिव्य दृष्टिसे देखा है, जिसे मैं कह रहा हूँ, आप ध्यानसे सुने।

किसी समय एक तपोवनमें कोई दुर्भगा, दण्डि, ब्राह्मचारिणी ब्राह्मणी निवास कर रही थी। वह इस दशमें भी प्रतिदिन ब्राह्मणोंका पूजन किया करती। उसकी शर्म-दमसे परिपूर्ण श्रद्धाको देखकर एक दिन ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर उससे कहा—‘सुजते ! हमलोग तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, तुम कोई चर माँगे ?’ तब ब्राह्मणीने कहा—‘महाराज ! किसी व्रत अथवा दानकी ऐसी विधि बतानेकी कृपा कीजिये, जिसके करनेसे मैं पतिकी प्रिय, पुत्रवती, सौभाग्यवती, धनाढ्य तथा लोकमें प्रशंसके योग्य हो जाऊँ।’

ब्राह्मणीका यह वचन सुनकर वसिष्ठजीने कहा कि ब्राह्मणी ! मैं तुम्हें सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले स्थालीदानकी विधि बता रहा हूँ। पाँच सौ पल, दो सौ पचास पल अथवा एक सौ पचीस पल तनिक पात्र बनाये अथवा सामर्थ्य न हो तो मिट्टीकी उत्तम हाँड़ी बना ले। वह गहरी और सुदृढ़ हो। उसे मृग तथा चावलसे बने पदार्थसे भरकर चन्दनसे चर्चित कर एक मण्डलके मध्यमें स्थापित कर ले तथा उसके समीप सब प्रकार शाक, जलपात्र, धौक्ष पात्र रखे और पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र आदिसे उसका पूजन करे और इस प्रकार उस पात्रकी प्रार्थना करे—

ज्वलज्वलनपार्श्वस्थैस्तण्डुलैः सज्जलैरपि ।  
न भवेद्भोज्यसंसिद्धिर्भूतानां पिठरी विना ॥  
त्वं सिद्धिः सिद्धिकामानां त्वं पुष्टिः पुष्टिमिच्छताम् ।  
अतस्त्वां प्रणमाम्याशु सत्यं कुरु वचो मम ॥

ज्ञातिबन्धुसुहृद्वर्गे विप्रे प्रेष्यजने तथा ।  
अभुक्तवति नम्रीयात् तथा भव वरप्रदा ॥

(उत्तरपर्व १७०। २२—२४)

इसका भाव यह है कि समीप ही प्रज्वलित अग्नि हो, चावल हो तथा जल भी हो, किन्तु यदि स्थाली (बटलोई) न हो तो भोजन नहीं पकाया जा सकता। स्थाली ! तुम सिद्धि चाहनेवालोंके लिये सिद्धि तथा पुष्टि चाहनेवालोंके लिये पुष्टि-स्वरूप हो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। मेरी बातको सत्य करो। मेरे ज्ञातिवर्ग, सुहृद्वर्ग, बन्धुवर्ग तथा भृत्यवर्ग आदि जबतक भोजन न कर लें, तबतक तुममें-से भोजन घटे नहीं—ऐसा कर प्रदान करो।

यह मन्त्र पढ़कर वह पात्र द्विजश्रेष्ठको दान कर दे। यह दान रविवार, सोमवार, चतुर्दशी, अष्टमी, एकादशी अथवा तृतीयको करना चाहिये। वसिष्ठजीका यह उपदेश मानकर वह ब्राह्मणी नित्य ब्राह्मणोंके दक्षिणासहित स्थालीपात्र देने लगी। पार्श्व ! उसी पुण्यके प्रभावसे जन्मान्तरमें वही ब्राह्मणी द्रौपदी-रूपमें तुम्हारी भार्या हुई है और दान देनेमें द्रौपदीका हाथ कभी शून्य नहीं रहेगा; क्योंकि वह द्रौपदी, सती, शची, स्वाहा, सावित्री, धृ, अश्विनी तथा लक्ष्मीके रूपमें जहाँ रह रही हो, वहाँ फिर कौन-सा पदार्थ दुर्लभ हो सकता है। इतना कहकर मैत्रेय मुनिने कहा कि महाराज युधिष्ठिर ! यह द्रौपदी अपनी स्थालीसे अन्न दे तो सम्पूर्ण जगत्को तृप्त कर सकती है, फिर इन छोटेसे ब्राह्मणोंके भोजन आदिके विषयमें आप क्यों चिन्तित होते हैं ?

मैत्रेयजीका ऐसा वचन सुनकर भगवन् ! हमलोगोंने भी वैसा ही किया और सभी परिजनोंके साथ ब्राह्मणोंको नित्य भोजन कराने लगे। प्रभो ! अन्नदानके प्रसंगसे यह स्थालीदानकी विधि मैंने कही, इसलिये आप मेरी भूष्टताको क्षमा करें। जो व्यक्ति सुन्दर ताम्रकी स्थाली बनाकर चावलसे उसे भरकर पर्व-दिनमें इस विधिसे ब्राह्मणको देता है, उसके घर सुख, सम्बन्धी, बान्धव, मित्र, भृत्य और अतिथि नित्य भोजन करें तो भी भोजनकी कमी नहीं होती।

(अध्याय १७०)



## गीताप्रेससे प्रकाशित कल्याणके पुनर्मुद्रित पुराण-साहित्य

महाभारत-सटीक, सचित्र, सजिल्द, छः खण्डोंमें सेट [ कोड नं० 728 ]—धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके महान् उपदेशों एवं प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओंके उल्लेखसहित इसमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग, नीति, सदाचार, अध्यात्म, राजनीति, कूटनीति आदि मानव-जीवनके उपयोगी विषयोंका विस्तृत वर्णन है। यह ग्रन्थ संक्षिप्त महाभारत (केवल भाग) (कोड नं० 39, 511), सचित्र, सजिल्द सेटके रूपमें (दो खण्डोंमें) भी उपलब्ध है।

संक्षिप्त पञ्चपुराण सचित्र, सजिल्द [ कोड नं० 44 ]—इसमें भगवान् विष्णुके महात्म्यके साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों एवं उनके परात्पररूपोंके विस्तृत वर्णन, एकादशी माहात्म्य, शालग्रामका स्वरूप और उनकी महिमा, तुलसीवृक्षकी महिमा, भगवद्धर्म-कौतुक आदिकी विस्तृत चर्चा है।

संक्षिप्त स्कन्दपुराण सचित्र, सजिल्द [ कोड नं० 279 ]—इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती-चरित्र, शिव पार्वती-विवाह, कुमार काशिकेशके जन्मकी कथा तथा तारकामुर-वध आदिका वर्णन है। इसके अतिरिक्त अनेक आख्यान एवं बहुत-से रोचक, ज्ञानप्रद प्रसंग और आदर्श-चरित्रोंका भी विस्तृत वर्णन है।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत सचित्र, सजिल्द [ कोड नं० 1133 ]—इसमें पराशरिक्त भगवतीके स्वरूप-तत्त्व-महिमा आदिके तार्किक विवेचनसहित भगवतीकी मन्तेरम स्तोत्रा-कथाओंका सरस एवं कल्याणकारी वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें देवी-माहात्म्य, देवी-अवतारकी विधि एवं उपसमन्वय भी विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

संक्षिप्त शिवपुराण सचित्र, सजिल्द [ कोड नं० 789 ]—सुप्रसिद्ध शिवपुराणका यह संक्षिप्त अनुवाद—परात्पर परमेश्वर शिवके कल्याणमय स्वरूप-विवेचन, तत्त्व-रहस्य, महिमा, स्तोत्र आदिके रोचक वर्णनसे युक्त है।

संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराण सचित्र, सजिल्द [ कोड नं० 631 ]—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अधिपत्यरूपा प्रकृति-श्रीराधाकी सर्वप्रधानताके साथ श्रीकृष्णकी गौरीक-स्तोत्र तथा अवतार-स्तोत्रका विस्तृत वर्णन है।

श्रीमद्भागवत सचित्र, सजिल्द दो खण्डोंमें सेट [ कोड नं० 26, 27 ]—इस महापुराणमें साधन-भक्ति, सिद्धा-भक्ति, मार्गा-मार्ग, पुष्टि-मार्ग, अनुग्रहमार्ग आदिका सुन्दर सन्वय है। इस ग्रन्थका मूल-अंग्रेजी अनुवाद दो खण्डोंमें (कोड नं० 56, 57), भागवत सुधासागर (कोड नं० 28), शुक-सुधा-सागर (कोड नं० 252) सम्पूर्ण भाषानुवाद, मूल-छोटा टाइप (ग्रन्थालय) तथा मूल-मज्जल संस्करण भी उपलब्ध है।

महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण सचित्र, सजिल्द [ कोड नं० 38 ]—इस ग्रन्थमें भगवान् श्रीकृष्णकी अर्गाणित रामायणी कथाओंके साथ सततगोपाल-मन्त्र, अनुष्ठान-विधि तथा अनेक शिक्षाप्रद कथाओंका अनुपम संग्रह है।

सं० ब्रह्मपुराण सचित्र, सजिल्द [ कोड नं० 1111 ]—इसमें सृष्टिकी उत्पत्ति, पृथुका पावन चरित्र, सूर्य एवं चन्द्रवंशका वर्णन, श्रीकृष्णचरित्र, कल्पवृक्षकी माकण्डेय मुनिकी पण्डित तथा तीर्थीके वर्णनमें अनेक आख्यानोका अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है। ब्रह्मका विस्तृत विवेचन होनेके कारण यह ब्रह्मपुराण कहा जाता है।

सं० मार्कण्डेयपुराण सचित्र, सजिल्द [ कोड नं० 539 ]—इस पुराणमें दुर्गासप्तशतीकी कथा एवं बचड़ी देवीका माहात्म्य, हरिश्चन्द्रकी कथा, मरालसा-चरित्र, अत्रि-अनुसूयाकी कथा, धर्मका स्वरूप, दत्तात्रेय-चरित्र आदि अनेक उपाख्यानोका विस्तृत वर्णन है।

सं० नारदपुराण सचित्र, सजिल्द [ कोड नं० 1183 ]—इसमें सदाचार-महिमा, वर्णाश्रम-धर्म, भक्ति तथा भक्तके लक्षण, विविध प्रकारके मन्त्र, देवगूजन, तीर्थ-माहात्म्य, दान-धर्मके साथ अनेक भक्तिपरक आख्यानोका बड़ा ही सरस वर्णन किया गया है। इसमें पुराणके पौर्वोक्त लक्षणोका सम्यक् रूपसे परिपाक हुआ है।

श्रीविष्णुपुराण सचित्र, सजिल्द (हिन्दी-अनुवाद) छोटा टाइप [ कोड नं० 1264 ]—यह विष्णव-भक्तिका मूलधार है। इसमें सृष्टिवर्णनके साथ, मन्वन्तर, वेदकी हस्ताओंका विवेचन, ब्रह्म-निरूपण, सूर्य-चन्द्रवंशके राजाओंके उपाख्यान, कलिधर्म-निरूपण, ब्रह्म-वर्णन तथा भगवान् वासुदेवके चरित्रका वर्णन तथा भक्ति ज्ञान एवं उपासनाके साथ अनेक आख्यानोका सुन्दर विवेचन किया गया है।

श्रीविष्णुपुराण-सानुवाद, सचित्र, सजिल्द (कोड नं० 48) ब्रह्मचर्यमें पहलेसे ही उपलब्ध है।

## गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित 'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

1184 श्रीकृष्णार्क.....(कल्याणवर्ष ६)	631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराणार्क.....(कल्याणवर्ष ३७)
749 ईश्वरार्क.....( " " ७)	1135 भगवद्वाच-महिमा और
635 शिवार्क.....( " " ८)	प्रार्थना-अङ्क.....( " " ३९)
41 शक्ति-अङ्क.....( " " ९)	572 पारम्येक और पुनर्जन्मार्क.....( " " ४३)
616 योगार्क.....( " " १०)	517 श्रीगर्गसंहिता-अङ्क.....( " " ४४)
627 संत-अङ्क.....( " " १२)	1113 परमिहपुराणम्.....( " " ४५)
604 साधनार्क.....( " " १५)	657 श्रीगोश-अङ्क.....( " " ४८)
1104 भगवत्तार्क.....( " " १६)	42 श्रीहनुमान-अङ्क.....( " " ४९)
39 सं० महाभारत.....( " " १७)	791 मूर्धार्क.....( " " ५३)
511 ( दो खण्डोंमें )	584 सं० भविष्यपुराणार्क.....( " " ६६)
1002 सं० वाल्मीकिरामायणार्क.....( " " ६८)	586 शिवोपासनाार्क.....( " " ६७)
44 सं० पद्मपुराण.....( " " ६९)	628 श्रीरामभक्ति-अङ्क.....( " " ६८)
539 सं० मारकण्डेयपुराण.....( " " २१)	653 गोमेक-अङ्क.....( " " ६९)
1111 सं० ब्रह्मपुराण.....( " " २३)	448 भगवद्गीता-अङ्क.....( " " ७२)
43 नारी-अङ्क.....( " " २२)	1044 वेदकथार्क.....( " " ७३)
659 उपनिषद्-अङ्क.....( " " २३)	1189 सं० गङ्गपुराणार्क.....( " " ७४)
518 हिन्दू-संस्कृति-अङ्क.....( " " २४)	
279 सं० स्कन्दपुराणार्क.....( " " २५)	
40 भक्तचरिताङ्क.....( " " २६)	
573 बालक-अङ्क.....( " " २७)	
1183 सं० नारदपुराण.....( " " २८)	
48 श्री श्रीविष्णुपुराण	
( हिन्दी-अनुवादसहित ).....( " " २८)	
667 संतकाशी-अङ्क.....( " " २९)	
587 सत्कथा-अङ्क.....( " " ३०)	
636 तीर्थार्क.....( " " ३१)	
660 भक्ति-अङ्क.....( " " ३२)	
1133 सं० श्रीमद्देवीभागवत ( केवल हिन्दी ).....( " " ३४)	
574 सं० योगवसिष्ठ-अङ्क.....( " " ३५)	
789 सं० शिवपुराण.....( " " ३६)	

### उपनिषद्

ईशादि ती उपनिषद्	अन्वय, हिंदी-व्याख्यासहित
बृहदारण्यकोपनिषद्	सानुवाद, शंकरभाष्यसहित
छान्दोग्योपनिषद्	सानुवाद, शंकरभाष्यसहित
ईशावास्योपनिषद्	सानुवाद, शंकरभाष्यसहित
कैतौपनिषद्	सानुवाद, शंकरभाष्यसहित
कठोपनिषद्	सानुवाद, शंकरभाष्यसहित
माण्डूक्योपनिषद्	सानुवाद, शंकरभाष्यसहित
मुण्डकोपनिषद्	सानुवाद, शंकरभाष्यसहित
प्रश्नोपनिषद्	सानुवाद, शंकरभाष्यसहित
श्रितिर्योपनिषद्	सानुवाद, शंकरभाष्यसहित
ऐतरेयोपनिषद्	सानुवाद, शंकरभाष्यसहित
श्वेताश्वतथोपनिषद्	सानुवाद, शंकरभाष्यसहित